॥ श्रीः ॥

श्रीमन्महामहिमचरकचतुरानन-
श्रीचक्रपाणिविरचितः ।

चक्रदत्तः ।

श्रीवाराणसीहिन्दूविश्वविद्यालयस्थायुर्वेदविद्याल्या-
ध्यापकायुर्वेदाचार्य-बी. ए. इत्युपाधिधारिश्री-
पण्डितजगन्नाथशर्मवाजपेयिप्रणीतया सुबोधि-
न्याख्यव्याख्यया समलङ्कृतः ।

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक "लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

कल्याण-बम्बई.

सं० १९९८, शके १८६३.

CHAKRADATTA

BY

CHAKRAPANI DATTA.

TRANSLATED AND MADE EASY.

BY

AYURVEDACHARYA

PANDIT JAGANNATHASHARMA BAJPEYEE,

Professor,

Ayurveda College, Benares Hindu University.

THIRD EDITION.

PUBLISHED BY

THE PROPRIETOR,

SHRI LAXMI VENKATESHWAR STEAM PRESS.

KALYAN-BOMBAY.

द्वितीय संस्करणके विषयमें दो शब्द ।

उस परम पिता परमात्माको कोटिशः धन्यवाद है कि, जिसकी असीम अनुकम्पासे " सुबोधिनी सहित चक्रदत्त " के द्वितीय संस्करण प्रकाशित करनेका सुअवसर समुपलब्ध हुआ । अनेक त्रुटियोंके रहते हुए भी प्रथम संस्करणको पाठकोंने जिस प्रकार अपनाया उससे परम सन्तोष हुआ । इस संस्करणमें पहिलेकी प्रायः सभी त्रुटियां दूर कर दी गई हैं, फिर भी भूल होना मनुष्यमें स्वाभाविक है अतः सहृदय महानुभावोंसे सादर निवेदन है कि, यदि कोई त्रुटि उनकी दृष्टिमें आवे तो उसे कृपया लेखक या प्रकाशकके पास लिखकर भेज दें । उनके प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हुए तीसरे संस्करणमें उन त्रुटियोंका सुधार कर दिया जायगा ।

विनम्र निवेदकः—

जगन्नाथ शर्मा वाजपेयी.

विनम्र-निवेदनम् ।

मान्नीय-वाचक-महोदयाः !

मनुष्य जीवनका फल धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी चारों पदार्थोंका प्राप्त करना है, पर शरीरकी आरोग्यता विना उनमेंसे एक भी नहीं सम्पादन किया जा सकता ।

जैसा कि महर्षि अग्निवेशने कहा है–

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥

उस आरोग्य शरीरकी रक्षा तथा रोग उत्पन्न हो जानेपर उनके विनाशके उपायोंका वर्णन ही "आयुर्वेद" है ।

अतएव परम कुशल वाग्भटने लिखा है–

आयुष्कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

उस आयुर्वेदके आचार्य सर्व प्रथम देवाधिदेव ब्रह्मा, ततः प्रजापति, ततः अश्विनीकुमार, ततः इन्द्र, ततः भरद्वाज, ततः अग्निवेशादि हुए । उन आचार्योंने अपनी अपनी विस्तृत संहिताएँ सर्व साधारणके उपकारार्थ बनायीं । पर समयके परिवर्तनसे अल्पायु तथा सामान्यबुद्धियुक्त मनुष्यमात्रको उन संहिताओंसे सार निकालना कठिन समझ, करुणार्द्र महर्षियों तथा सामयिक विद्वानोंने उन संहिताओंको अनेक अङ्गोंमें विभक्त कर दिया । अतः साधारण रीतिसे उसके दो विभाग हुए । १ रोगचिकित्सा, और २ स्वास्थ्यरक्षा ।

जैसा कि श्रीमान् सुश्रुतने लिखा है–

इह खल्वायुर्वेदप्रयोजनम्, व्याध्युपसृष्टानां
व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम् इति ।

उसमें रोगविनाशार्थ शीघ्र क्रियाकी आवश्यकताका अनुभव कर रोगविनाशमें प्रथम ज्ञेय विषय रोगको जानना चाहिये ।

तदुक्तं चरके–

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ।
ततः कर्म भिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥

श्रीमान् माधवकारने "माधवनिदान" नामक रोगनिर्णायक-ग्रन्थका संग्रह किया । इसके कुछ समयानन्तर ही श्रीमान् चरकचतुरानन दत्तोपाह्व चक्रपाणिजीने इस चिकित्सासारसंग्रह "चक्रदत्त" की रचना की । माधवनिदानके अनन्तर ही इसकी रचना हुई, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । क्योंकि जिस क्रमसे रोगोंका वर्णन श्रीमान् माधवकारने किया है, उसी क्रमसे चिकित्सा विधान इस ग्रन्थमें वर्णित है । इस ग्रन्थके रचयिता नयपाल नामक वङ्गदेशीय नरेन्द्रके प्रधान वैद्य थे, जैसा कि उन्होंने अपना परिचय इसी ग्रन्थके अन्तमें दिया है । इस ग्रन्थकी रचनाके साथ ही उन्होंने चरकसंहिताकी "आयुर्वेददीपिका" नामक व्याख्या भी की थी ।

इसी लिये उन्हें चरकचतुराननकी उपाधि भी प्राप्त हुई थी, जैसा कि उनकी चरकसंहिता व्याख्याकी समाप्तिके परिचयसे विदित होता है।

इनके आविर्भावका समय ईसवीय ११०० का मध्यकाल है।

जैसा कि श्रीमान् वर्तमान धन्वन्तरि महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेनजीने प्रत्यक्ष शारीरके उपोद्घातमें लिखा है:—

ततश्च परमेकादशशतके चक्रपाणिर्नाम नयपालराजस्य वैद्यवरः प्रादुर्बभूव पुनश्च चक्रपाणिकालश्च ख्रीस्तीयैकादशशतक मध्यभाग इति सर्ववादिसम्मतः सिद्धान्तः पूर्वोक्तहेतुः।

इसकी उपयोगिता तथा सारवत्ताका अनुभव कर ही चरकसंहिताके टीकाकार श्रीयुत शिवदाससेनजीने इसकी "तत्त्वचन्द्रिका" नामक संस्कृत व्याख्या की। श्रीशिवदाससेनजीका जन्मकाल १५०० ई० के लगभग माना जाता है।

यह ग्रन्थ बंगालमें बना था, अतएव प्रथम बङ्गालमें ही इसका प्रचार भी अधिक हुआ और अबतक बङ्गालमें चिकित्साग्रन्थोंमें "चक्रदत्त" श्रेष्ठ समझा जाता है। इस ग्रन्थमें आर्ष प्रणालीके अनुसार स्वल्पमूल्यमें तैयार होने और पूर्ण लाभ पहुँचानेवाले क्वाथ, कल्क, चूर्ण, अवलेह, घृत, तैल, आसव, अरिष्ट आदि लिखे गये हैं और उनके बनानेकी विधिका विवेचन इसमें पूर्णरूपसे किया गया है।

इसकी उपयोगिताको स्वीकार कर ही अन्य प्रान्तोंके विभिन्न विद्यालयोंने अपने पाठ्य ग्रन्थोंमें इसे रक्खा, यहाँतक कि हिन्दू विश्वविद्यालयमें प्रोफेसर नियत होनेपर मुझे भी सर्व प्रथम इसी ग्रन्थके पढानेकी आज्ञा मिली। यह सन् १९२५ ई० के अगस्त मासका अवसर था। उस समय बाजारमें जो "चक्रदत्त" मिलता था, वह अत्यन्त विकृतावस्थामें था, अतएव मेरे हृदयमें यह भाव उत्पन्न हुआ कि इस ग्रन्थपर सरल हिन्दी टीका लिख तथा इसे संशुद्ध कर प्रकाशित करना चाहिये। अतः मैंने इस "सुबोधिनी" नामक टीकाका लिखना प्रारम्भ किया और वह श्रीगुरुपूर्णिमा संवत् १९८३ को समाप्त हुई, अतएव श्रीगुरुजीके करकमलोंमें अर्पित है।

यद्यपि सन् १९२६ ई० में कुछ संस्करण विशेष सुधारके साथ निकल चुके हैं, पर मुझे विश्वास है कि आप इस सुबोधिनी टीकाको विवेचनात्मक बुद्धिसे पढकर इसकी उपयोगिता अवश्य स्वीकार करेंगे। इस स्वल्प सेवासे यदि सर्वसाधारणको कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूंगा। इस पुस्तकके छापने प्रकाशित करने और दुबारा छापनेका अधिकार आदि सब स्वत्व सहित श्रीमान् "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष श्रीसेठ खेमराजजी श्रीकृष्णदासजीको समर्पण कर दिया है।

विनम्र-निवेदकः—
जगन्नाथशर्मा वाजपेयी आयुर्वेदाचार्यः
प्रोफेसर आयुर्वेद-हिन्दूविश्वविद्यालय-वाराणसीस्थः

॥ श्रीः ॥

अथ चक्रदत्तस्थविषयानुक्रमणिका ।

अथ ज्वरातिसाराधिकारः।

अथाग्निमांद्याधिकारः।

अथ क्रिमिरोगाधिकारः।

अथ पाण्डुरोगाधिकारः।

अथ परिणामशूलाधिकारः।

अथोदावर्ताधिकारः।

अथानाहाधिकारः।

अथ गुल्माधिकारः।

अथ श्लीपदाधिकारः ।

अथ विद्रध्यधिकारः ।

अथ व्रणशोथाधिकारः ।

अथ नाडीव्रणाधिकारः ।

अथ मुखरोगाधिकारः ।

अथ कर्णरोगाधिकारः ।

अथ शिरोरोगाधिकारः ।

अथासृग्दराधिकारः ।

अथ योनिव्यापदधिकारः ।

इति चक्रदत्तस्थ-विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

श्रीगणेशाय नमः ।

चक्रदत्तः

सुबोधिन्याख्यभाषाटीकयोपेतः ।

अथ ज्वराधिकारः ।

मङ्गलाचरणम् ।

गुणत्रयविभेदेन मूर्तित्रयमुपेयुषे ।
त्रयीभुवे त्रिनेत्राय त्रिलोकीपतये नमः ॥ १ ॥

टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ।

लक्ष्मीं विवर्द्धयतु कीर्तिततिं तनोतु
शान्तिं ददातु विदधातु शरीररक्षाम् ।
विघ्नान्विनाशयतु बुद्धिमुपाकरोतु
भावान्प्रकाशयतु मे गुरुपादरेणुः ॥ १ ॥
चिकित्सैकफलस्यास्य चक्रदत्तस्य बोधिनीम् ।
टीकां करोमि भाषायां सद्वैद्या अनुमन्वताम् ॥ २ ॥

सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणरूपी भेदोंसे त्रिमूर्तियों (ब्रह्मा, विष्णु, महेशता) को प्राप्त होनेवाले, तीनों वेदोंके प्रकाशक या तीनों लोकोंके उत्पादक तथा उनके स्वामी श्रीशिवजीके लिये प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

अभिधेयादिप्रतिज्ञा ।

नानायुर्वेदविख्यातसद्योगैश्चक्रपाणिना ।
क्रियते संग्रहो गूढवाक्यबोधकवाक्यवान् ॥ २ ॥

चक्रपाणिजी अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थोंमें लिखे हुए उत्तम योगोंका उनके गूढार्थ वाक्योंको स्पष्ट कर संग्रह करते हैं ॥ २ ॥

चिकित्साविधिः ।

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ।
ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ ३ ॥

वैद्यको प्रथम निदान पूर्वरूपादिके द्वारा रोगकी परीक्षा करनी चाहिये, तदनन्तर औषधका निश्चय कर शास्त्रज्ञानपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

नवज्वरे त्याज्यानि ।

नवज्वरे दिवास्वप्नस्नानाभ्यङ्गान्नमैथुनम् ।
क्रोधप्रवातव्यायामकषायांश्च विवर्जयेत् ॥ ४ ॥

नवीन ज्वरमें दिनमें सोना, स्नान, मालिश, अन्न, मैथुन, क्रोध, अधिकवायु, कसरत तथा क्वाथका त्याग करना चाहिये ॥ ४ ॥

लंघनस्य प्राधान्यं विधिः फलं मर्यादा च ।

ज्वरे लङ्घनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात् ।
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥ ५ ॥
आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान्पिधापयन् ।
विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत् ॥ ६ ॥
अनवस्थितदोषाग्नेर्लङ्घनं दोषपाचनम् ।
ज्वरघ्नं दीपनं काङ्क्षारुचिलाघवकारकम् ॥ ७ ॥
प्राणाविरोधिना चैनं लंघनेनोपपादयेत् ।
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥ ८ ॥

नवीन ज्वरमें लंघन (उपवास कराना) ही उचित है, पर क्षयज (धातुक्षयज तथा राजयक्ष्महेतुक) वातजन्य,

भयजन्य तथा काम, क्रोध, शोक और थकावटसे उत्पन्नज्वरमें लंघन न करना चाहिये। साम (आमयुक्त) दोष आमाशयमें पहुँच अग्निको नष्ट कर रसादिवाही मार्गोंको बन्द करता हुआ ज्वर उत्पन्न करता है, अतः लंघन करना चाहिये । लंघन अव्यवस्थित (न्यूनाधिक्यको प्राप्त) दोष तथा अग्निको स्वस्थान तथा समान मानमें प्राप्त करता और आमका पाचन, ज्वरका नाश, अग्निकी दीप्ति, भोजनकी अभिलाषा तथा भोजनमें रुचि उत्पन्न करता और शरीरको हलका बनाता है। पर लंघन इतना ही कराना चाहिये कि जिससे बलका अधिक ह्रास न हो, क्योंकि आरोग्यका आश्रय बल ही है और आरोग्यप्राप्तिके लिये ही चिकित्सा है ॥ ५–८ ॥

लंघननिषेधः ।

तत्तु मारुतक्षुत्तृष्णामुखशोषभ्रमान्विते ।
कार्यं न बाले वृद्धे च न गर्भिण्यां न दुर्बले ॥ ९ ॥

वातज्वरवालेको तथा भूख, प्यास, मुखशोष व भ्रमसे पीडित तथा बालक, वृद्ध व गर्भिणीको लंघन न कराना चाहिये ॥ ९ ॥

सम्यग्लंघितलक्षणम् ।

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे ।
हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्लमे गते ॥ १० ॥
स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पिपासासहोदये ।
कृतं लंघनमादेश्यन्निर्व्यथे चान्तरात्मनि ॥ ११ ॥

अपानवायु, मूत्र तथा मलका भलीभांति निःसरण हो, शरीर हलका हो, हृदय हलका हो, डकार साफ आवे, कण्ठमें कफका संसर्ग न हो, मुखकी विरसता नष्ट हो गयी हो, तन्द्रा तथा ग्लानि दूर हो गयी हो, पसीना निकलता हो, भोजनमें रुचि हो, भूख तथा प्यास रोकनेकी शक्ति न रही हो और मन प्रसन्न हो तो समझना चाहिये कि लंघन ठीक होगया॥ १०॥ ११॥

अतिलंघितदोषाः ।

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च ।
क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः ॥ १२ ॥
मनसः संभ्रमोऽभीक्ष्णमूर्ध्ववातस्तमो हृदि ।
देहाग्निबलहानिश्च लंघनेऽतिकृते भवेत् ॥ १३ ॥

अति लंघन करनेसे सन्धि तथा शरीरमें पीडा, खांसी, मुखका सूखना, भूखका नाश, अरुचि, प्यास, कान तथा नेत्रोंमें निर्बलता (स्वविषयग्रहणासामर्थ्य) मनकी अनवस्थितता, अधिक डकारका आना, बेहोशी तथा शरीर, अग्नि व बलकी क्षीणता होती है ॥ १२ ॥ १३ ॥

वमनावस्थामाह ।

सद्यो भुक्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते ।
वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्भटः ॥ १४ ॥
कफप्रधानानुत्क्लिष्टान्दोषानामाशयस्थितान् ।
बुद्ध्वा ज्वरकरान्काले वम्यानां वमनैर्हरेत् ॥ १५ ॥

भोजन करनेके अनन्तर ही आये हुए तथा अधिक भोजन करनेसे आये हुए ज्वरमें वमनयोग्य[1] रोगियोंको वमन कराना हितकर है। यदि ज्वर-कारक दोष कफप्रधान, आमाशयमें स्थित तथा बढ़े हुए (हृल्लासादियुक्त) हों, तो उन्हें कफवृद्धिके समय अर्थात् प्रातःकाल वमनयोग्य रोगियोंको वमन कराकर निकलवा देना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

अनुचितवमनदोषाः ।

अनुपस्थितदोषाणां वमनं तरुणे ज्वरे ।
हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहं च कुरुते भृशम् ॥ १६ ॥

नवीन ज्वरमें भी यदि दो दोष उत्क्लिष्ट (हृल्लासादियुक्त) न हों तो वमन कराना, हृदयमें दर्द, श्वास, अफरा तथा मूर्छाका हेतु हो जाता है ॥ १६ ॥

जलनियमः ।

तृष्यते सलिलं चोष्णं दद्याद्वातकफज्वरे ।
मद्योत्थे पैत्तिके वाथ शीतलं तिक्तकैः शृतम् ॥ १७ ॥
दीपनं पाचनं चैव ज्वरघ्नमुभयं च तत् ।
स्रोतसां शोधनं बल्यं रुचिस्वेदप्रदं शिवम् ॥ १८ ॥

वातकफज्वरमें प्यासकी शान्तिके लिये गरम गरम जल पिलाना चाहिये तथा मद्य पीनेसे व पित्तसे उत्पन्न ज्वरमें तिक्तरस युक्त ओषधियोंके साथ औटानेके अनन्तर छान, ठण्डा कर देना चाहिये ॥ १७ ॥ इस प्रकार प्रयुक्त जल अग्निदीपक, आमपाचक, ज्वरनाशक, छिद्रशोधक, बलवर्धक, रुचिकारक और पसीना लानेवाला और कल्याणकर होता है ॥ १८ ॥

षडङ्गजलम् ।

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः ।
शृतशीतं जलं दद्यात्पिपासाज्वरशान्तये ॥ १९ ॥

पिपासायुक्त ज्वरकी शान्तिके लिये नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खश, लाल चन्दन, सुगन्धवाला तथा सोंठ डाल औटाकर, ठण्डा किया जल देना चाहिये ॥ १९ ॥

[1] वमनके योग्य तथा अयोग्य इसी ग्रन्थमें आगे वमनाधिकारमें बतावेंगे, अतः वहांसे जानना ।

पूर्वापरग्रन्थविरोधपरिहारमाह ।

मुख्यभेषजसम्बन्धो निषिद्धस्तरुणे ज्वरे ।
तोयपेयादिसंस्कारे निर्दोषं तेन भेषजम् ॥ २० ॥

नवीन ज्वरमें प्रधान औषध (क्वाथ चूर्ण आदि) का निषेध है, पर जल या अन्नके संस्कारमें औषध प्रयोग दोषकारक नहीं होता ॥ २० ॥

जलपाकविधिः ।

यदप्सु शृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते ।
कर्षमात्रं तत्र द्रव्यं साधयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि ॥ २१ ॥
अर्धशृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ।

जो षडङ्गादि द्रव्य गरम कर ठण्ढे पानीमें दिये जाते हैं अर्थात् जहां केवल जल कुछ औषधियोंके साथ पकाकर ठण्ढा करना लिखा है वहां १ तोला द्रव्य ६४ तोला जलमें पकाना चाहिये । आधी रहने पर पीने तथा पेया यूप मण्डादिके लिये प्रयुक्त करना चाहिये ॥ २१ ॥

पथ्यविधिः ।

वमितं लंघितं काले यवागूभिरुपाचरेत् ॥ २२ ॥
यथास्वौषधसिद्धाभिर्मण्डपूर्वाभिरादितः ।

आवश्यकतानुसार वमन तथा लंघन करानेके अनन्तर पथ्यके समयपर तत्तद्दोष शामक ओषधियोंके साथ औटे हुए जलसे सिद्ध किया मण्ड तथा यवागू आदि क्रमशः देना चाहिये ॥ २२ ॥–

विशिष्टं पथ्यम् ।

लाजपेयां सुखजरां पिप्पलीनागरैः शृताम् ॥ २३ ॥
पिबेज्ज्वरी ज्वरहरां क्षुद्वानल्पाग्निरादितः ।
पेयां वा रक्तशालीनां पार्श्वबस्तिशिरोरुजि ॥ २४ ॥
श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरां पिबेत् ।
कोष्ठे विबद्धे सरुजि पिबेत्पेयां शृतां ज्वरी ॥२५॥
मृद्वीकापिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।

जो ज्वरी कुछ अग्निके उदय होनेसे बुभुक्षित हो उसे प्रथम छोटी पीपल तथा सोंठसे पकाये हुए जलसे सिद्ध की हुई पेया देनी चाहिये । इससे ज्वर नष्ट होगा । तथा पसुलियों, मूत्राशयके ऊपर अथवा शिरमें शूलके साथ यदि ज्वर हो तो गोखुरू, छोटी कटेरीसे सिद्ध किये हुए जलमें लाल चावलोंकी पेया बनाकर पिलानी चाहिये । यदि मलमूत्रादिकी रुकावटके साथ उदरमें पीडा तथा ज्वर हो तो मुनक्का, पिपरामूल, चव्य, चीतेकी जड, सोंठके जलमें बनायी गयी पेया पिलानी चाहिये ॥ २३–२५ ॥

द्वन्द्व–सन्निपातज्वरेषु पथ्यम् ।

पञ्चमूल्या लघीयस्या गुर्व्या ताभ्यां सधान्यया॥२६
कणया यूषपेयादि साधनं स्याद्यथाक्रमम् ।
वातपित्ते वातकफे त्रिदोषे श्लेष्मपित्तजे ॥ २७ ॥

वातपित्तज्वरमें लघुपञ्चमूल (शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, गोखुरू) के जलसे, वातकफज्वरमें वृहत्पञ्चमूल (बेलका गूदा, सोनापाठा, खम्भार, पाढल, अरणी) से, सन्निपातज्वरमें दोनों पञ्चमूलों (दशमूल) से, कफपित्तज्वरमें धनियाके सहित छोटी पीपलसे सिद्ध किये जलमें यूप पेया आदि बनाकर देना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥

व्याघ्र्यादियवागूः ।

यवागूः स्यात्त्रिदोषघ्नी व्याघ्रीदुःस्पर्शगोक्षुरैः ।

छोटी कटेरी, जवासा, गोखुरूके जलमें सिद्ध की गयी यवागू त्रिदोषनाशक होती है ।

कल्कसाध्ययवाग्वादिपरिभाषा ।

कर्षार्धं वा कणाशुण्ठ्योः कल्कद्रव्यस्य वा पलम्२८
विनीय पाचयेद्युक्त्या वारिप्रस्थेन चापराम् ।

छोटी पीपल व सोंठ प्रत्येक छः छः माशे ले अथवा कल्कद्रव्य ४ तोला ले कल्क बना एकप्रस्थ जल (द्रवद्वैगुण्यात् १२८ तोला) में मिला कल्कसाध्य यवागू बनाना चाहिये । इसी प्रकार यदि अधिक यवाग्वादि बनाना हो तो जलादिका प्रमाण बढ़ा देना चाहिये ॥ २८ ॥ यहां पर कणा व शुण्ठी तीक्ष्ण द्रव्यका तथा कल्क द्रव्य मृदु द्रव्योंका उपलक्षण है । इसका भाव यह है कि तीक्ष्णवीर्य द्रव्य आधा कर्ष, और मृदुवीर्य द्रव्य १ पल लेकर १ प्रस्थ जलमें पका अर्धावशिष्ट रहने पर उतार छानकर पेया यवागू आदि बनाना चाहिये ।

पेयादिसाधनार्थं क्वाथादिपरिभाषा ।

षडङ्गपरिभाषैव प्रायः पेयादिसम्मता ॥ २९ ॥
यवागूमुचिताद्भक्ताच्चतुर्भागकृतां वदेत् ।

पेया, यवागू आदि बनानेके लिये षडंगपरिभाषासे ही व्यवहार करना चाहिये । पूर्वाभ्यस्त अन्नकी अपेक्षा चतुर्थांश चावलोंकी यवागू बनानी चाहिये ॥ २९ ॥

१ जल द्रव होनेसे ' द्रवद्वैगुण्यमिति नियमात् ' १२८ तोला छोडना चाहिये ।

मण्डादिलक्षणम् ।

सिक्थकै रहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्विता३०॥
यवागूर्बहुसिक्था स्याद्विलेपी विरलद्रवा ।

सिक्थरहित 'मण्ड,' सिक्थसहित 'पेया,' अधिक सीथसहित 'यवागू' तथा सिक्थ ही जिसमें अधिक हों और द्रव कम हो उसे " विलेपी " कहते हैं * ॥ ३० ॥

मण्डादिसाधनार्थं जलमानम् ।

अन्नं पञ्चगुणे साध्यं विलेपी तु चतुर्गुणे ॥ ३१ ॥
मण्डश्चतुर्दशगुणे यवागूः षड्गुणेऽम्भसि ।

भात पञ्चगुण जलमें, विलेपी चतुर्गुण जलमें, मण्ड चतुर्दशगुण जलमें तथा यवागू छः गुण जलमें पकानी चाहिये ÷ ॥ ३१ ॥-

यवागूनिषेधः ।

पांशुधाने यथा वृष्टिः क्लेदयत्यतिकर्दमम् ॥ ३२ ॥
तथा श्लेष्मणि संवृद्धे यवागूः श्लेष्मवर्द्धिनी ।
मदात्यये मद्यनित्ये ग्रीष्मे पित्तकफाधिके ॥ ३३ ॥
ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च यवागूरहिता ज्वरे ।
तत्र तर्पणमेवाग्रे प्रदेयं लाजसक्तुभिः ॥ ३४ ॥
ज्वरापहैः फलरसैर्युक्तं समधुशर्करम् ।

जिस प्रकार वृष्टि मिट्टीके ढेरको अधिक कीचड़ बना देती है उसी प्रकार बढे हुए कफको यवागू अधिक बढ़ा देती है, अतः कफाधिक ज्वरमें, तथा मदात्ययमें, नित्य मद्य पीनेवालोंके लिये, ग्रीष्मऋतुमें, पित्तकफकी अधिकतामें तथा ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तसे युक्त ज्वरमें यवागू न देनी चाहिये । ऐसी दशामें ज्वर नाशक फलोंके रस तथा मधु व शक्कर के सहित लाई के सक्तुओंसे तर्पण ही कराना चाहिये ॥ ३२-३४ ॥

तर्पणपरिभाषा ।

द्रवेणालोडितास्ते स्युस्तर्पणं लाजसक्तवः॥३५॥

द्रवद्रव्य (जल या क्षीर या फलरस) में मिलाये हुए खीलके सक्तु तर्पण कहे जाते हैं । अर्थात् तृप्तिकारक होते हैं ॥ ३५ ॥

ज्वरविशेषे पथ्यविशेषः ।

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः ।
मुद्गयूषौदनश्चापि देयः कफसमुद्भवे ॥ ३६ ॥
स एव सितया युक्तः शीतः पित्तज्वरे हितः ।
रक्तशाल्यादयः शस्ताः पुराणाःषष्टिकैः सह॥३७॥
यवाग्वोदनलाजार्थे ज्वरितानां ज्वरापहाः ।
मुद्गामलकयूषस्तु वातपित्तात्मके हितः ॥ ३८ ॥
ह्रस्वमूलकयूषस्तु कफवातात्मके हितः ।
निम्ब(निम्बु)मूलक(कूलक)यूषस्तु हितः पित्तकफात्मके

श्रम उपवास तथा वातसे उत्पन्न ज्वरमें नित्य मांसरस तथा भात हितकारक होता है । कफजन्य ज्वरमें मूंगका यूष और भात देना चाहिये । तथा मूंगका यूष व भात मिश्री मिला ठण्डा कर पित्तज्वरमें देना चाहिये । यवागू भात तथा लाईके लिये, ज्वरनाशक पुराने लाल चावल तथा साठीके चावल ज्वरवालोंके लिये देना चाहिये । वातपित्तज्वरमें मूंग तथा आमलाका यूष हित है । छोटी मूलीका यूष कफवातज्वरमें हितकारक है । नीमकी पत्ती तथा मूलीका यूष अथवा परवलके पत्तोंका यूष निम्बूके रसके साथ अथवा नीमकी पत्ती और परवलकी पत्तीका यूष पित्तकफज्वरमें हितकर है ॥ ३६-३९ ॥

ज्वरनाशकयूषद्रव्याणि ।

मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थांश्चाढकानपि ।
आहारकाले यूषार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत् ॥ ४० ॥

ज्वरमें भोजनके समय मूंग, मसूर, चना, कुलथी तथा अरहरका यूष देना चाहिये ॥ ४० ॥

---

* इस विषयमें अनेक मतभेद हैं । कुछ लोगोंका सिद्धान्त है कि यवागूका ही उपरिस्थ द्रव मण्ड है तथा कणसहित यवागू पेया तथा विरलद्रवयुक्त यवागू विलेपी कही जाती है, पर आगेके ही श्लोकमें मण्डादिके लिये अलग अलग जलका परिमाण दिया गया है, अतः ऊपर लिखित अर्थ ही ठीक जचता है । वैसे यदि कोई पेया तथा विलेपीको भी यवागू कहे तो कहे, पर पेया, विलेपी, यवागू तीनों पृथक् २ ही हैं । ÷ इस श्लोकमें पेया साधनार्थ जलमान नहीं लिखा, पर पूर्वश्लोकमें लिख चुके हैं-' पेया सिक्थसमन्विता ' इससे सिद्ध होता है कि सिक्थरहित अर्थात् छानकर द्रवमात्र लिया गया मण्ड और सिक्थसहित अर्थात् जिसका मण्ड नहीं निकाला गया उसे पेया कहते हैं और जलमान दोनोंका एक ही है, कुछ लोग यहां लिखी गयी यवागूको ही पेया मानते हैं, पर इससे पूर्वापर प्रबल ग्रन्थविरोध उत्पन्न हो जाता है । तथा कुछ लोग चावलोंके गल जानेसे मण्ड तथा जिसमें चावल जलमें मिल न जाय उसे पेया कहते हैं । मण्डमें छाननेकी आवश्यकता उनके मतसे नहीं । पर यह अर्थ भी ठीक नहीं प्रतीत होता ।

ज्वरहरशाकद्रव्याणि ।

पटोलपत्रं वार्ताकं कुलकं कारवेल्लकम् ।
कर्कोटकं पर्पटकं गोजिह्वां बालमूलकम् ॥ ४१ ॥
पत्रं गुडूच्याः शाकार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत् ।

ज्वरमें परवलके पत्ते, बैंगन, परवल, करैला, खेखसा (पड़ोरा अथवा वनपरौरा), पित्तपापड़ा, जंगली गोभी, कच्ची मूली तथा गुर्चके पत्तोंका शाक देना चाहिये ॥ ४१ ॥–

पथ्यावश्यकता ।

ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ॥ ४२ ॥
अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽपि वा ।

भोजनका समय निश्चित हो जानेपर अरुचि होनेपर भी हितकारक पदार्थ खाना ही चाहिये । उस समय भोजन न करनेसे बल क्षीण होता है अथवा मृत्यु हो जाती है ॥ ४२ ॥–

अरुचिचिकित्सा ।

अरुचौ मातुलुङ्गस्य केशरं साज्यसैन्धवम् ॥ ४३ ॥
धात्रीद्राक्षासितानां वा कल्कमास्येन धारयेत् ।

अरुचिमें बिजौरे नीम्बूका केशर (रसभरी थैलियां) घी व सेंधा नमकके साथ अथवा आमला, मुनक्का व मिश्रीकी चटनी मुखमें रखना चाहिये ॥ ४३ ॥

सातत्यात्स्वाद्वभावाद्वा पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम् ॥ ४४ ॥
कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत्पुनः ।

सदा एक ही वस्तु खानेसे अथवा स्वादिष्ठ न होनेसे यदि पथ्य अच्छा न लगता हो तो भिन्न भिन्न कल्पनाओं (संयोग संस्कारादि) से पथ्यको पुनः रुचिकारक बनावे ॥ ४४ ॥–

भोजनसमयः ।

ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा दिनान्ते भोजयेल्लघु ॥ ४५ ॥
श्लेष्मक्षये विवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ।

जिसे ज्वर आ रहा हो अथवा जो शीघ्र ही ज्वरमुक्त हुआ हो उसे सायंकाल (अपराह्न) में हलका भोजन देना चाहिये । उस समय कफ क्षीण रहनेसे गरमी बढ़ती है, अतएव अग्नि दीप्त होता है ॥ ४५ ॥–

अपथ्यभक्षणनिषेधः ।

गुर्वभिष्यंदकाले च ज्वरी नाद्यात्कथञ्चन ॥ ४६ ॥
नहि तस्याहितं भुक्तमायुषे वा सुखाय वा ।

ज्वरीको गुरु (द्रव्यगुरु–लड्डूआदि, मात्रागुरु–अधिक भोजन) अभिष्यन्दि (दोष–धातु–मल–स्रोतो रोधक) तथा असमयमें भोजन न करना चाहिये । अहित भोजन उसकी आयु या सुखके लिये हितकर नहीं हो सकता ॥ ४६ ॥–

ज्वरपाचनानि ।

लंघनं स्वेदनं कालो यवाग्वस्तिक्तको रसः ॥ ४७ ॥
पाचनान्यविपक्वानां दोषाणां तरुणे ज्वरे ।

लंघन, पसीना निकालना, समयकी (आठ दिनकी) प्रतीक्षा, यवागू व तिक्तरस (पेया, यवागू आदिके संस्कारमें) नवीन ज्वरमें आम दोषका पाचन करते हैं ॥ ४७ ॥–

ज्वरस्य तारुण्यादिनिश्चयः ।

आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ॥ ४८ ॥
मध्यं द्वादशरात्रं तु पुराणमत उत्तरम् ।

सात रात्रि पर्यन्त (ज्वरोत्पत्तिदिवससे) ' तरुण ' ज्वर, बारह रात्रि पर्यन्त 'मध्य' ज्वर, इसके अनन्तर ' पुराण ' ज्वर विद्वान् लोग मानते हैं ॥ ४८ ॥

तत्र चिकित्सा ।

पाचनं शमनीयं वा कषायं पाययेत्तु तम् ॥ ४९ ॥
ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नप्रतिभोजितम् ।
सप्ताहात्परतोऽस्तब्धे सामे स्यात्पाचनं ज्वरे ॥५०॥
निरामे शमनं स्तब्धे सामे नौषधमाचरेत् ।

ज्वरवालेको ६ दिन बीत जानेपर अर्थात् सातवें दिन हलका पथ्य देकर आठवें दिन भी यदि दोष साम हों तो पाचन कषाय, यदि निराम हों तो शमनकारक कषाय, पिलाना चाहिये । सात दिनके अनन्तर यदि दोष साम होनेपर भी निकल रह हों तो पाचन कषाय देना चाहिये । निराम हों तो शमन कषाय देना चाहिये । और यदि दोष साम तथा विबद्ध हों तो औषध न देना चाहिये ॥ ४९ ॥ ५० ॥

आमज्वरलक्षणम् ।

लालाप्रसेको हृल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः ॥ ५१ ॥
तन्द्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता ।
क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवाञ्ज्वरः॥ ५२ ॥
आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ।
भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम् ॥ ५३ ॥

---

१ तरुणज्वर लिखकर भी अविपक्व दोष जो लिखा है अतः मध्यज्वरमें भी यदि दोष आम हो तो पाचन ही देना चाहिये ।

लारका बहना, मिचलाईका होना, हृदयका भारी होना अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, भोजनका न पचना, मुखका स्वाद खराब रहना, शरीरका भारीपन, भूखका न लगना, पेशाबका अधिक आना, जकड़ाहट, ज्वरके वेगका आधिक्य "आम ज्वरके" लक्षण हैं। ऐसी अवस्थामें औषध न देना चाहिये। औषध आमदोषयुक्त ज्वरको अधिक बढ़ा देता है ॥ ५१-५३ ॥

निरामज्वरलक्षणम्।

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च।
पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम् ॥ ५४ ॥

जब ज्वर हलका हो गया हो, शरीर हलका हो गया हो, मलका निःसरण होता हो, उस समय दोष परिपक्व समझना चाहिये और तभी औषध देना चाहिये ॥ ५४ ॥

सर्वज्वरपाचनकषायः।

नागरं देवकाष्ठं च धान्यकं बृहतीद्वयम्।
दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरिताय ज्वरापहम् ॥ ५५ ॥

सोंठ, देवदारु, धनियां, छोटी कटेरी तथा बड़ी कटेरीका क्काथ ज्वरमें प्रथम पाचनके लिये देना चाहिये ॥ ५५ ॥

औषधनिषेधः।

पीताम्बुर्लंघितः क्षीणोऽजीर्णी भुक्तः पिपासितः।
न पिबेदौषधं जन्तुः संशोधनमथेतरत् ॥ ५६ ॥

जिसने जल पी लिया है अथवा लंघन किया है, जो क्षीण तथा अजीर्णयुक्त है, जिसने भोजन किया है अथवा जिसे प्यास लग रही है, उसे संशोधन तथा संशमन कोई भी औषध न पीना चाहिये ॥ ५६ ॥

अन्नसंयुक्तासंयुक्तौषधफलम्।

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं
हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव।
तद्बालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतं
ग्लानिं परां नयति चाशु बलक्षयं च ॥ ५७ ॥

अन्नहीन (केवल) औषध अधिक गुण करता है तथा निःसन्देह शीघ्र ही रोगको नष्ट करता है, पर वही बालक, वृद्ध, स्त्रियां तथा सुकुमार पुरुष यदि सेवन करें तो अधिक ग्लानि तथा बलको क्षीण करता है ॥ ५७ ॥

औषधपाकलक्षणम्।

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कता।
लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः ॥ ५८ ॥

औषधके ठीक परिपक्व हो जानेपर वायुकी अनुलोमता, स्वास्थ्य, भूख, प्यास, मनकी प्रसन्नता, शरीरका हलकापन, इंद्रियोंको अपने विषय ग्रहण करनेमें उत्साह तथा डकारकी शुद्धि होती है ॥ ५८ ॥

अजीर्णौषधलक्षणम्।

क्लमो दाहोऽङ्गसदनं भ्रमो मूर्च्छा शिरोरुजा।
अरतिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः ॥ ५९ ॥

औषधके ठीक परिपक्व न होनेपर ग्लानि, जलन, शरीरशैथिल्य, चक्कर, मूर्छा, शिरमें दर्द, बेचैनी तथा बलकी क्षीणता होती है ॥ ५९ ॥

अजीर्णान्नौषधयोरौषधान्नसेवने दोषाः।

औषधशेषे भुक्तं पीतं तथौषधं सशेषेऽन्ने।
न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥ ६० ॥

औषधके विना पचे भोजन करना तथा अन्नके विना पचे औषध सेवन करना रोगको भी शान्त नहीं करता तथा अन्य रोगोंको भी उत्पन्न कर देता है ॥ ६० ॥

भोजनावृतभेषजगुणाः।

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्या-
दन्नावृतं नच मुहुर्वदनान्निरेति।
प्राग्भुक्तसेवितमथौषधमेतदेव
दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुवराङ्गनाभ्यः ॥ ६१ ॥

भोजनके अव्यवहितपूर्व औषध खानेसे शीघ्र पच जाती है। बल क्षीण नहीं करती। तथा अन्नसे आच्छादित होनेके कारण मुखसे (अस्वादिष्ट होनेके कारण) निकलती भी नहीं। वृद्ध, बालक, सुकुमार तथा स्त्रियोंको इसी प्रकार औषध खिलाना चाहिये ॥ ६१ ॥

मात्रानिश्चयः।

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः।
व्याधिं द्रव्यं च कोष्ठं च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ६०

मात्राका ठीक निश्चय नहीं किया जा सकता, क्योंकि सब रोगियोंके लिये तथा सब औषधोंकी एकही मात्रा नहीं हो सकती। अतः दोष, अग्नि, बल, अवस्था, रोग, द्रव्य, कोष्ठका निश्चय कर मात्रा निश्चित करनी चाहिये ॥ ६२ ॥

सामान्यमात्राः।

उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमे।
जघन्यस्य पलार्धेन स्नेहक्वाथ्यौषधेषु च ॥ ६३ ॥

स्नेह, तथा क्वाथ्य (जिनका काढा बनाया जाय) औषधियोंकी मात्रा पूर्णबलादि-युक्तके लिये ४ तोला, मध्यके लिये ३ तोला तथा हीनके लिये २ तोला की है ॥ ६३ ॥

क्वाथे जलमानम् ।

कर्षादौ तु पलं यावद्दद्यात्षोडशिकं जलम् ।
ततस्तु कुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत् ॥ ६४ ॥
क्वाथ्यद्रव्यपले कुर्यात्प्रस्थार्धं पादशेषितम् ।

एक तोलेसे चार तोलातक औषधमें १६ गुणा जल छोडना (इसमें द्रवद्वैगुण्यसे द्विगुण नहीं लिया जा सकता, क्योंकि इसमें कर्षसे ही वर्णन है) चाहिये । एक पलसे ऊपर ४ पल-पर्यन्त अष्टगुणा जल छोडना चाहिये। (यह परिभाषा पेय क्वाथके लिये नहीं है। क्योंकि पीनेके लिये ४ तोलेसे अधिक क्वाथ्यका वर्णन कहीं नहीं है) पूर्वोक्त परिभाषाको ही स्पष्ट करते हुए लिखते हैं । १ पल क्वाथ्य द्रव्य ३२ तोला द्रवद्वैगुण्यात् ६४ तोला जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर पिलाना चाहिये ॥ ६४ ॥ *

मानपरिभाषा ।

द्वात्रिंशन्माषकैर्माषश्चरकस्य तु तैः पलम् ॥ ६५ ॥
अष्टचत्वारिंशता स्यात्सुश्रुतस्य तु माषकः ।
द्वादशभिर्धान्यमाषैश्चतुःषष्ट्या तु तैः पलम् ॥ ६६॥
एतच्च तुलितं पञ्चरक्तिमाषात्मकं पलम् ।
चरकार्धपलोन्मानं चरके दशरक्तिकैः ॥ ६७ ॥
माषैः पलं चतुःषष्ट्या यद्भवेत्तत्तथेरितम् ।

१ वर्तमान समयमें २ तो० ही उत्तम, १ तो० हीन और १॥ तो० मध्यम समझना चाहिये ।

२ " रक्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत् ।
शुष्कद्रवार्द्रयोश्चापि तुल्यं मानं प्रकीर्तितम् "

इस सिद्धान्तसे रक्तिकासे कुडव पर्यन्त मानवाचक शब्दोंका जहां प्रयोग होगा वहां समान ही द्रव तथा आर्द्र भी लिये जायँगे । इससे अधिक अर्थात् शराव आदि शब्दोंसे जहां वर्णन हो वहां, " द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः " इस सिद्धान्तसे द्रवादि द्विगुण लिये जाते हैं । अतएव पूर्वमें कर्ष मान है, अतः द्विगुण नहीं लिया जाता । उत्तरार्द्धमें प्रस्थशब्दसे वर्णन है, अतः द्विगुण लिया जाता है । क्वाथ मिट्टीके नवीन पात्रमें खुला मन्दाग्निपर पकाना चाहिये । * वर्तमान समयके लिये आधी मात्रा ही पर्याप्त होगी ।

तस्मात्पलं चतुःषष्ट्या माषकैर्दशरक्तिकैः ॥ ६८ ॥
चरकानुमतं वैद्यैश्चिकित्सासूपयुज्यते ।

चरकके मतसे ३२ उडदोंका १ माशा, ४८

१ यहां जो चरकका माशा ३२ उडदोंका बताया है उसे १० रत्तीका न समझना चाहिये । क्योंकि १२ उड़द जब ५ रत्ती हुए तो २४ उड़द ही १० रत्ती होंगे । अतः दश रत्तीका माशा फर्जी है । २४ उड़दका मान कर ६४ माशेका पल माना है । अतः पलकी परिभाषामें चरकके सिद्धान्तसे २ भाग और सुश्रुतके सिद्धान्तसे १ भाग लिया जा सकेगा । आजकलके प्रचलित मानसे इस मानका निर्णय करना भी आवश्यक है । अतः उसे यहां पर लिख देना उचित समझता हूँ । चरकका पल ६४० रत्तीका हुआ, वर्तमान माशा ८ रत्तीका होता है, अतः ८० माशे हुए । १२ माशेका तोला होता है, ६ तोला ८ माशे हुए । इसीप्रकार सुश्रुतका पल ३२० रत्तीका और वह ३ तोला ४ माशाके बराबर हुआ । पर यहांपर टीकामें जो मान स्थान स्थान पर दिया गया है वह इन दोनों मानोंसे भी कुछ भिन्न पर प्रचलित दिया गया है । वह इस प्रकार है, अनेक आचार्योंने सुश्रुतके पांच रत्तीके माषाको ही ६ रत्तीका लिखा है । यथा शार्ङ्गधरः—

"षड्भिस्तु रक्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ । माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥ टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते । कोलद्वयं च कर्षः स्यात् स प्रोक्तः पाणिमानिका " ॥ अर्थात् इनके सिद्धान्तसे ६ रत्ती = १ माषा । ४ माष (२४ रत्ती) = १ शाण । ४ शाण (९६ रत्ती) = १ कर्ष । इस प्रकार इनके मतसे कर्ष ९६ रत्तीका हुआ । आजकल प्रचलित (गवर्नमेण्टद्वारा भी निश्चित (मान ८ रत्ती = १ माशा । १२ माशा (९६ रत्ती) १ तोला इस प्रकार प्रचलित १ तोला और पूर्वोक्त कर्ष दोनों ९६ रत्तीके होते हैं, अतएव बराबर हुए । अतः इसी सिद्धान्तसे टीकामें पल (४ कर्ष) = ४ तोला, कुडव (१६ कर्ष) = १६ तोला, प्रस्थ (६४ कर्ष) = ६४ तोला, आढक (२५६ कर्ष) = २५६ तोला और प्रचलित सेर ८० तोलाका होता है । इस प्रकार ३ सेर १६ तोला और द्रोण १०२४ कर्ष = १२ सेर ६४ तोला । इसी प्रकार ५ तोलेकी छटाक प्रचलित है, अतएव ६४ तोलेकी छटाकें बना लेनेपर १२ छ. ४ तो० अतः द्रोण = १२ सेर ६४ तोला या १२ सेर १२ छ. ४ तो० भी लिखा-

माशाका १ पल । सुश्रुतके सिद्धान्तसे १२ उड़दोंका १ माशा, ६४ माशाका १ पल होता है । यह पल पञ्च रत्तीके बराबरवाले माशेसे ६४ माशेका होता है और चरकका आधे पलके बराबर होता है । चरकका पल १० रत्तीके माशेसे ६४ माशेका होता है और यही १० रत्तीके माशेसे ६४ माशेका पल वैद्यलोग चिकित्सामें उपयुक्त करते हैं ॥ ६५-६८ ॥-

वातज्वरचिकित्सा ।

बिल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथःस्याद्वातिके ज्वरे ॥६९॥
पाचनं पिप्पलीमूलं गुडूची विश्वजोऽथवा ।
किराताब्दामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ ७० ॥
सस्थिराकलशीविश्वैः क्वाथो वातज्वरापहः ।
रास्ना वृक्षादनी दारु सरलं सैलवालुकम् ॥७१ ॥
कषायः शर्कराक्षौद्रयुक्तो वातज्वरापहः ।

वातज्वरमें पाचनके लिये बिल्वादिपञ्चमूल (बेलकी छाल, सोनापाठा, खम्भार, पाढ़ल, अरणी) का क्वाथ अथवा पिप-रामूल, गुर्च, सोंठका क्वाथ अथवा चिरायता नागरमोथा, गुर्च, सुगंधवाला (नेत्रवाला), छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखुरू, शालिपर्णी, पृश्निपर्णीका क्वाथ अथवा रासन, बान्दा, देवदारु, सरल, एलुवाका क्वाथ शर्करा व शहद मिलाकर देना चाहिये ॥ ६९-७१ ॥-

प्रक्षेपानुपानमानम् ।

प्रक्षेपः पादिकः क्वाथ्यात्स्नेहे कल्कसमो मतः७२
परिभाषामिमामन्ये प्रक्षेपेऽप्यूचिरे यथा ।
कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानां च सर्वशः॥७३॥
द्रवशुक्त्या स लेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः ।
मात्रा क्षौद्रघृतादीनां स्नेहक्वाथेषु चूर्णवत् ॥७४॥

काढ़ेमें प्रक्षेप[1] काढ़ेकी ओषधियोंसे चतुर्थांश तथा स्नेह (घृतादि) में कल्कसम " कल्कस्तु स्नेहपादिकः " अर्थात् चतुर्थांश ही छोड़ना चाहिये । कुछ आचार्य अग्रिम परिभाषाको भी प्रक्षेपविषयक मानते हैं । उसका इसका ऐक्य ही है विरोध नहीं । १ तोला ओषध (चूर्ण, कल्क या गोली आदि)२तोला द्रव-द्रव्य मिलाकर चाटना चाहिये तथा ४ तोला द्रव्यद्रव्य मिलाकर पीना चाहिये तथा शहद और घीकी मात्रा स्नेह तथा क्वाथमें चूर्णके समान अर्थात् चतुर्थांश स्नेह तथा क्वाथ्यद्रव्यसे मानना चाहिये[1] ॥ ७२-७४ ॥

विभिन्नाः क्वाथाः ।

बिल्वादि पञ्चमूली च गुडूच्यामलके तथा ।
कुस्तुम्बुरुसमो ह्येष कषायो वातिके ज्वरे ॥ ७५ ॥
पिप्पलीशारिवाद्राक्षाशतपुष्पाहरेणुभिः ।
कृतः कषायः सगुडो हन्यात्पवनजं ज्वरम् ॥ ७६ ॥
गुडूची शारिवा द्राक्षा शतपुष्पा पुनर्नवा ।
सगुडोऽयं कषायः स्याद्वातज्वरविनाशनः ॥ ७७ ॥
द्राक्षागुडूचीकाश्मर्यत्रायमाणाः सशारिवाः ।
निःक्वाथ्य सगुडं क्वाथं पिबेद्वातज्वरापहम्॥७८॥
शतावरीगुडूचीभ्यां स्वरसो यन्त्रपीडितः ।
गुडप्रगाढः शमयेत्सद्योऽनिलकृतं ज्वरम् ॥ ७९ ॥

बिल्वादि, पञ्चमूल, गुर्च, आमला तथा धनियांका क्वाथ वातज्वरको नष्ट करता है । छोटी पीपल, शारिवा, (अनन्त-मूल), मुनक्का, सौंफ, सम्भालूके बीज मिलाकर बनाया गया काथ गुडके साथ अथवा गुर्च, शारिवा मुनक्का, सौंफ, पुनर्नवा (सांठ) का काथ गुडके साथ अथवा मुनक्का, गुर्च, खम्भार, त्रायमाण व शारिवाका क्वाथ, गुडके साथ वातज्वरको नष्ट करता है । इसी प्रकार शतावरी व गुर्चका यन्त्रसे दबाकर निकाला गया स्वरस २ तोला, गुड आधा तोला मिलाकर पीनेसे वातज्वर शान्त होता है ॥ ७५-७९ ॥

पित्तज्वरचिकित्सा ।

कलिङ्गं कटुफलं मुस्तं पाठा तिक्तकरोहिणी ।
पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥ ८० ॥
सक्षौद्रं पाचनं पित्ते तिक्ताब्देन्द्रयवैः कृतम् ।
लोध्रोत्पलामृतापद्मशारिवाणां सशर्करः ॥ ८१ ॥
क्वाथः पित्तज्वरं हन्यादथवा पर्पटोद्भवः ।
पटोलेन्द्रयवक्वाथो मधुना[2] मधुरीकृतः
तीव्रपित्तज्वरामर्दी पानात्तृड्दाहनाशनः ॥ ८२ ॥
दुरालभापर्पटकप्रियङ्गु-
भूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम् ।
जलं पिबेच्छर्करयावगाढं
तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥ ८३ ॥

—जा सकता है । पर द्रवद्रव्योंके मान कुड़वके ऊपर प्रायः दूने हो जाते हैं, अतएव द्रवद्रव्योंका प्रस्थ ६४ २ = १२८ कर्ष= १२८ तोला = १ सेर ९ छ. ३ तो० लिखा जा सकता है । पर जहां दूना मान न लिखा हो और द्रवद्रव्यकी प्राप्ति हो वहां दूना कर लेना चाहिये ॥

[1] क्वाथादिमें जो कुछ सिद्ध होनेपर मिलाते हैं, उसे प्रक्षेप कहते हैं ।

[1] जहां क्वाथकी प्रधानता हो वहां ' प्रक्षेपः ' इत्यादि परिभाषा, और जहां चूर्णादिकी प्रधानता हो वहां ' कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य ' इत्यादि परिभाषा समझना चाहिये । " मात्रा क्षौद्र-घृतादीनाम् " इत्यादि परिभाषा तो " प्रक्षेपः पादिकः " इसीको स्पष्ट करती है ।

[2] शहदको काथके ठण्डे हो जाने पर ही मिलाना चाहिये ।

इन्द्रयव, कायफर, नागरमोथा, पाढ़, कुटकीका काथ शर्करा मिलाकर पीनेसे पित्तज्वरको शान्त करता है। तथा कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रयवका काथ शहद मिला हुआ पित्तज्वरका पाचन करता है। पठानीलोध, नीलकमल (नीलोफर) गुर्च, कमल, शारिवा (अनन्तमूल) का काथ शक्करके सहित अथवा अकेले पित्तपापड़ाका काथ शक्करके साथ देनेसे पित्तज्वरको शान्त करता है। तथैव परवलकी पत्ती व इन्द्रयवका काथ शहद डाल कर देना चाहिये। अथवा यवासा, पित्तपापडा, प्रियङ्गु (फूलप्रियङ्गु) चिरायता, रुसाहके फूल तथा कुटकीका काथ शक्कर मिलाकर प्यास, पित्तज्वर तथा दाहवालेको पीना चाहिये ॥ ८०-८३ ॥

त्रायमाणादिकाथः ।

त्रायमाणा च मधुकं पिप्पलीमूलमेव च ।
किराततिक्तकं मुस्तं मधूकं सविभीतकम् ॥ ८४ ॥
सशर्करं पीतमेतत्पित्तज्वरनिबर्हणम् ।

त्रायमाण, (एक प्रसिद्ध लता है, पंसारी लाललाल बीजा दे देते हैं वह नहीं है) मौरेठी, पिपरामूल, चिरायता, नागरमोथा, महुआ, वहेड़ा-इनका काथ वना, ठंढ़ा कर शकर, मिलाकर देनेसे पित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ ८४ ॥-

मृद्वीकादिक्वाथः ।

मृद्वीका मधुकं निम्बं कटुका रोहिणी समा ।
अवश्यायस्थितं पाक्यमेतत्पित्तज्वरापहम् ॥ ८५ ॥

मुनक्का, मौरेठी, नीमकी छाल, कुटकी सम भाग ले, काथ वना, रात्रिमें ओसमें रखकर सवेरे पिलानेसे पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ८५ ॥

पर्पटादिकाथः ।

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः ।
किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरैः ॥

अकेला ही पित्तपापड़ा पित्तज्वरको शान्त करता है और यदि लाल चन्दन, नेत्रवाला तथा सोंठ मिला दी जाय तो क्या कहना ? अर्थात् अवश्य ही पित्तज्वरको शान्त करेगा ८६॥

विश्वादिकाथः ।

विश्वाम्बुपर्पटोशीरघनचन्दनसाधितम् ।
दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत् ॥ ८७ ॥

सोंठ, सुगन्धवाला, पित्तपापडा, खश, नागरमोथा, लाल चंदनसे वनाकर ठंडा किया गया काथ प्यास, वमन, ज्वर तथा जलनको शान्त करता है ॥ ८७ ॥

अपरः पर्पटादिः ।

पर्पटामृतधात्रीणां क्वाथः पित्तज्वरापहः ।
द्राक्षारग्वधयोश्चापि काश्मर्याश्चाथवा पुनः ॥ ८८ ॥

पित्तपापड़ा, गुर्च, आमलाका काथ पित्तज्वरको नष्ट करता है। इसी प्रकार मुनक्का, व अमलतासका गूदा तथा खम्भारका काथ लाभ करता है ॥ ८८ ॥

द्राक्षादिकाथः ।

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिक्ताक्वाथं सशम्याकफलं विदध्यात् । प्रलापमूर्छाभ्रमदाहशोषतृष्णान्विते पित्तभवे ज्वरे तु ॥ ८९ ॥

मुनक्का, वड़ी हर्रका छिलका, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, कुटकी तथा अमलतासके गूदेका काथ प्रलाप, मूर्छा, भ्रम, दाह, मुख सूखना तथा प्याससे युक्त पित्तज्वरमें देना चाहिये ॥ ८९ ॥

अन्तर्दाहचिकित्सा ।

व्युषितं धान्याकजलं प्रातः पीतं सशर्करं पुंसाम् ।
अन्तर्दाहं शमयत्यचिराद् दूरप्ररूढमपि ॥ ९० ॥

१ पल धनियां ६ पल जलमें सायङ्काल भिगो देना चाहिये, सवेरे मल छान शक्कर मिलाकर पीनेसे कठिन अन्तर्दाह शीघ्र ही शान्त हो जाता है ॥ ९० ॥

शीतक्रियाविधानम् ।

पित्तज्वरेण तप्तस्य क्रियां शीतां समाचरेत् ।

पित्तज्वरसे तप्त पुरुषके लिये शीतल चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् जिसका पित्तज्वर अधिक समयका हो गया है शान्त नहीं होता, उसके लिये शीतल लेपादि करना चाहिये।

विदार्यादिलेपः ।

विदारी दाडिमं लोध्रं दधित्थं बीजपूरकम् ॥ ९१ ॥
एभिः प्रदिह्यान्मूर्धानं तृड्दाहार्तस्य देहिनः ।

जिस रोगीको प्यास अधिक लगती है तथा जलन अधिक होती है, उसके शिरमें विदारीकन्द, अनारका फल, पठानीलोध, कैथेका गूदा तथा विजौरे निम्बूके केशरका लेप करना चाहिये ॥ ९१ ॥

अन्य लेपाः ।

घृतभृष्टाम्लपिष्टा च धात्री लेपाच्च दाहनुत् ॥ ९२ ॥

आमलेको घीमें भून निम्बूके रसके साथ पीसकर लेप करनेसे जलन नष्ट होती है ॥ ९२ ॥

अम्लपिष्टैः सुशीतैर्वा पलाशतरुजैर्दहेत् ।
वदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टकस्य च ॥ ९३ ॥

निम्बूके रस अथवा काञ्जीमें पीसकर ढाकके पत्तोंका अथवा बेरकी पत्ती अथवा नीमकी पत्तीके फेनका लेप करना चाहिये९३

कालेयचन्दनानन्तायष्टीबदरकाञ्जिकैः ।
सघृतैःस्याच्छिरोलेपस्तृष्णादाहार्तिशान्तये ॥९४॥

पीला चन्दन, सफेद चन्दन, यवासा, मौरेठी, बेरकी पत्ती सबको महीन पीस घी तथा काञ्जी मिलाकर प्यास, दाह तथा बेचैनीकी शान्तिके लिये शिरमें लेप करना चाहिये ॥९४॥

जलधारा ।

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्र-
कांस्यादि पात्रं प्रणिधाय नाभौ ।
तत्राम्बुधारा बहुला पतन्ती
निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीता ॥ ९५ ॥

रोगीको उत्तान सुलाकर उसकी नाभीपर गहरा ताम्रपात्र रख उसमें ठण्डे जलकी धारा अधिक समय तक छोड़नेसे तत्काल दाहको शान्त कर देती हैं[1] ॥ ९५ ॥

पीतकाञ्जिकवस्त्रावगुण्ठनं दाहनाशनम् ।

कपड़ेको चौपर्त कर काञ्जीमें भिगोकर शिर, हृदय तथा पेटपर रखनेसे दाह शान्त होता है ।

जिह्वातालुगलक्लोमशोषे मूर्ध्नि तु दापयेत् ।
केशरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् ॥ ९६ ॥

जिह्वा, तालु, गला तथा क्लोम (पिपासास्थान) के सूखनेपर मस्तकमें बिजौरे निम्बूका केशर, शहद तथा सेंधानमक मिलाकर रखना चाहिये ॥ ९६ ॥

कफज्वरचिकित्सा ।

मातुलुङ्गशिफाविश्वब्राह्मीग्रन्थिकसंभवम् ।
कफज्वरेऽम्बु सक्षारं पाचनं वा कणादिकम् ॥९७॥

बिजौरे निम्बूकी जड़, सोंठ, ब्राह्मी, पिपरामूल सब समान भाग ले क्वाथ बना जवाखार मिलाकर पिलानेसे कफज्वरका पाचन होता है । अथवा पिप्पल्यादि क्वाथ यवक्षार मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ९७ ॥

पिप्पल्यादिक्वाथः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।
मरिचैलाजमोदेन्दुपाठारेणुकजीरकम् ॥ ९८ ॥
भार्ङ्गी महानिम्बफलं रोहिणी हिङ्गु सर्षपम् ।
विडङ्गातिविषे मूर्वा चेत्ययं कीर्तितो गणः ॥ ९९॥
पिप्पल्यादिः कफहरः प्रतिश्यारोचकानिलान् ।
निहन्यादीपनो गुल्मशूलघ्नस्त्वामपाचनः ॥ १०० ॥

[1] जल शरीरमें न पड़ने पावे, इसका ध्यान रहे ।

पीपल छोटी, पिपरामूल, चव्य, चीतेकी जड़, सोंठ, काली मिर्च, इलायची बड़ी, अजमोद, इन्द्रयव, पाढ़ी, सम्भालूके बीज, सफेद जीरा, भारङ्गी, बकायनके फल, हींग, कुटकी, सरसों, वायविडंग, अतीस, मूर्वा यह ' पिप्पल्यादि गण ' कहा जाता है । यह कफ, जुखाम, अरुचि तथा वायुको नष्ट करता, अग्निको दीप्त करता तथा गुल्म व शूलको नष्ट करता और आमका पाचन करता है ॥ ९८-१०० ॥

कटुकादिक्वाथः ।

कटुकं चित्रकं निम्बं हरिद्रातिविषे वचाम् ।
कुष्ठमिन्द्रयवं मूर्वां पटोलं चापि साधितम्॥१०१॥
पिबेन्मरिचसंयुक्तं सक्षौद्रं श्लैष्मिके ज्वरे ।

कुटकी, चीतकी जड़, नीमकी छाल, हल्दी, अतीस, बच दूधिया, कूठ, इंद्रजव, मूर्वा, परवलके पत्ते इनका क्वाथ बनाकर काली मिर्च तथा शहद मिलाकर कफज्वरमें देना चाहिये ॥ १०१ ॥–

निम्बादिक्वाथः ।

निम्बविश्वामृतादारु शटी भूनिम्बपौष्करम् ॥१०२
पिप्पल्यौ बृहती चेति क्वाथो हन्ति कफज्वरम् ।

नीमकी छाल, सोंठ, गुर्च, देवदारु, कपूरकचरी, चिरायता, पोहकरमूल, छोटी पीपल, बड़ी पीपल, बड़ी कटेरी इन समस्त औषधियोंका बनाया क्वाथ कफज्वरको नष्ट करता है ॥ १०२ ॥–

सिन्दुवारक्वाथः ।

सिन्दुवारदलक्वाथः सोषणः कफजे ज्वरे ॥१०३॥
जंघयोश्च बले क्षीणे कर्णे वा पिहिते पिबेत्॥

सम्भालूके पत्तोंका काढ़ा काली मिर्च मिलाकर देनेसे कफज्वर, कानोंकी अवरुद्धता तथा जंघाओंकी निर्बलताको दूर करता है ॥ १०३ ॥–

आमलक्यादिक्वाथः ।

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः ॥
सर्वज्वरकफातङ्कभेदी दीपनपाचनः ॥ १०४ ॥

आँवलेका छिल्का, बड़ी हर्रका छिल्का, छोटी पीपल, चीतकी जड़ यह " आमलक्यादि गण " समस्त ज्वर तथा कफके रोगोंको नष्ट करता है, दस्त साफ लाता है, अग्निको दीप्त तथा आमका पाचन करता है ॥ १०४ ॥

त्रिफलादिक्वाथः ।

त्रिफलापटोलवासाछिन्नरुहातिक्तरोहिणीपड्ग्रन्थाः ।
मधुना श्लेष्मसमुत्थे दशमूलीवासकस्य वा क्वाथः॥

आमला, हर्र, बहेड़ा, परवलके पत्ते, रुसाहके फूल, गुर्च, कुटकी, बच–इन औषधियोंका क्वाथ अथवा दशमूल (शालिपर्णी पृश्निपर्णीवृहतीद्वयगोक्षुराः । बिल्वश्योनाककाश्मर्यपाटलागणिकारिकाः) और रुसाहकी छाल या फूलोंका क्वाथ शहदके साथ कफज्वरको शान्त करता है ॥ १०५ ॥

मुस्तादिक्वाथः।

मुस्तं वत्सकबीजानि त्रिफला कटुरोहिणी।
परूषकाणि च क्वाथः कफज्वरविनाशनः ॥१०६॥

नागरमोथा, इन्द्रयव, त्रिफला, कुटकी, फालसाका क्वाथ कफज्वरको शान्त करता है ॥ १०६ ॥

चातुर्भद्रावलेहिका।

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी कृष्णा च मधुना सह।
कासश्वासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत्॥१०७॥

कायफर, पोहकरमूल, काकडासिंगी, छोटी पीपल सब चीजें साफ की हुई समान भाग ले कूट कपड़छान कर शहदमें मिलाकर चटनी बना लेनी चाहिये। यह अवलेह[1] कास, श्वास, ज्वरको नष्ट करनेवाला तथा कफ नाश करनेमें श्रेष्ठ है ॥१०७॥

चूर्णादिमानम्।

कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानां च सर्वशः।
द्रवशुक्त्या स लेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः १०८॥

"यह श्लोक पहिले भी लिखा जा चुका है।" १ तोला चूर्ण, कल्क या गोली, २ तोला द्रव द्रव्यसे चाटना चाहिये अर्थात् जहां लेह हो वहां द्विगुण द्रव छोड़ना चाहिये, जहां पान हो वहां चतुर्गुण द्रव छोड़ना चाहिये ॥ १०८ ॥

अवलेहसेवनसमयः।

ऊर्ध्वजत्रुगरोगघ्नी सायं स्यादवलेहिका।
अधोरोगहरी या तु सा पूर्वं भोजनान्मता॥१०९॥

जत्रुसे ऊपरके रोगों (कास, श्वास आदि) को नष्ट करनेवाला अवलेह सायङ्काल चाटना चाहिये। जो अधोगामी रोगोंको नष्ट करनेवाला हो उसे भोजनसे पहिले देना चाहिये ॥ १०९ ॥

पिप्पल्यवलेहः।

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः कासश्वासज्वरापहः।
प्लीहानं हन्ति हिक्कां च बालानां च प्रशस्यते॥११०

छोटी पीपलका चूर्ण तथा शहद मिलाकर बनाया गया अवलेह कासश्वासयुक्त ज्वर, प्लीहा तथा हिक्काको नष्ट करता है और बालकोंके लिये अधिक हितकर है ॥ ११० ॥

द्वन्द्वजचिकित्सा।

संसृष्टदोषेषु हितं संसृष्टमथ पाचनम्।

मिले हुए दोषोंमें मिला हुआ पाचन हितकर होता है।

वातपित्तज्वराचिकित्सा।

विश्वामृताब्दभूनिम्बैः पञ्चमूलीसमन्वितैः।
कृतः कषायो हन्त्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम् १११॥

सोंठ, गुर्च, नागरमोथा, चिरायता तथा लघुपञ्चमूल (शालिपर्ण्यादि) का क्वाथ शीघ्र ही वातपित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ १११ ॥

त्रिफलादिक्वाथः।

त्रिफलाशाल्मलीरास्नाराजवृक्षाटरूषकैः।
शृतमम्बु हरेत्तूर्णं वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ ११२ ॥

त्रिफला, सेमरका मुसरा, रासन, अमलतासका गूदा, रुसाहके फूल या छालका क्वाथ वातपित्तज्वरको शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ११२ ॥

किरातादिक्वाथः।

किराततिक्तममृतां द्राक्षामामलकीं शटीम्।
निष्क्वाथ्य पित्तानिलजे क्वाथं तं सगुडं पिबेत्११३

चिरायता, गुर्च, मुनक्का, आमला तथा कचूरका क्वाथ गुड़ मिलाकर पीना चाहिये ॥ ११३ ॥

निदिग्धिकादिक्वाथः।

निदिग्धिकाबलारास्नात्रायमाणामृतायुतैः।
मसूरविदलैः क्वाथो वातपित्तज्वरं जयेत् ॥ ११४ ॥

छोटी कटेरी, खरैटी, रासन, त्रायमाण, गुर्च तथा मसूरकी दालका क्वाथ वातपित्तज्वरको शान्त करता है ११४ ॥

पञ्चभद्रक्वाथः।

गुडूची पर्पटं मुस्तं किरातं विश्वभेषजम्।
वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं शुभम् ॥ ११५ ॥

गुर्च, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता तथा सोंठका क्वाथ 'पञ्चभद्र' कहा जाता है। यह वातपित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ ११५ ॥

---

[1] यह अवलेह बालकोंके ज्वर खांसी आदिमें बहुत लाभ करता है। बालकोंको ४ रत्तीसे १ माशातककी मात्रा देनी चाहिये। तथा बलानुसार २ माशे, ३ माशे या ४ माशेकी मात्रा जवान रोगियोंके लिये देनी चाहिये। यही व्यवहार है। यद्यपि मात्रा १ तोलाकी आगेके श्लोकमें कहेंगे, पर वह आजकलके लिये बहुत है।

मधुकादिशीतकषायः ।

मधुकं सारिवे द्राक्षा मधूकं चन्दनोत्पलम् ।
काश्मरीं पद्मकं लोध्रं त्रिफलां पद्मकेशरम् ॥ ११६ ॥
परूषकं मृणालं च न्यसेदुत्तमवारिणि ।
मधुलाजसितायुक्तं तत्पीतमुषितं निशि ॥ ११७ ॥
वातपित्तज्वरं दाहतृष्णामूर्च्छावमिभ्रमान् ।
शमयेद्रक्तपित्तं च जीमूतानिव मारुतः ॥ ११८ ॥

मौरेठी, दोनों सारिवा, मुनक्का, महुआ, लाल चन्दन, नीलोफर, खम्भार, पद्माख, पठानी लोध, आमला, हर्र, बहेड़ा, कमलका केशर, फालसा, कमलकी डण्डी सबको दूर कुचा किया चूर्ण रात्रिमें षड्गुण गरम जलमें मिला मिट्टीके वर्तनमें रख सवेरे शहद मिश्री और खील मिलाकर पीनेसे वातपित्तज्वर, दाह, प्यास, मूर्छा, वमन, चक्कर और रक्तपित्तको इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे वायु मेघोंके समूहको नष्ट कर देता है ॥ ११६–११८ ॥

पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा (पटोलादिक्काथः)

पटोलं चन्दनं मूर्वा तिक्ता पाठामृतागणः ।
पित्तश्लेष्मारुचिच्छर्दिज्वरकण्डूविषापहः ॥ ११९ ॥

परवलके पत्ते, लाल चन्दन, मूर्वा, कुटकी, पाढ़, गुर्च यह 'पटोलादि क्काथ' पित्त, कफ, अरुचि, वमन, ज्वर, खुजली और विषको नष्ट करता है ॥ ११९ ॥

गुडूच्यादिक्वाथः ।

गुडूची निम्बधान्याकं पद्मकं चन्दनानि च ।
एष सर्वज्वरान्हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः ॥
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥ १२० ॥

गुर्च, नीमकी छाल, धनियां, पद्माख, लाल चन्दन, यह 'गुडूच्यादि क्काथ' समस्त ज्वरोंको नष्ट कर अग्निको दीप्त करता है । मिचलाई, अरुचि, वमन, प्यास तथा दाहको नष्ट करता है ॥ १२० ॥

किराततपाठादि ।

किरातं नागरं मुस्तं गुडूचीं च कफाधिके ।
पाठोदीच्यमृणालैस्तु सह पित्ताधिके पिबेत् १२१ ॥

चिरायता, सोंठ, नागरमोथा, गुर्चका क्काथ बनाकर पित्तकफज्वरमें यदि कफकी अधिकता हो तो देना चाहिये । यदि पित्तकी अधिकता हो तो इन्हीं ओषधियोंके साथ पाढ़ सुगन्धवाला तथा कमलके फूल मिला क्काथ बनाकर देना चाहिये १२१

कण्टकार्यादिक्वाथः ।

कण्टकार्यमृताभाङ्गीनागरेन्द्रयवासकम् ।
भूनिम्बं चन्दनं मुस्तं पटोलं कटुरोहिणी ॥ १२२ ॥
कषायं पाययेदेतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ।
दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासहृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ १२३ ॥

छोटी कटेरी, गुर्च, भार्ङ्गी, सोंठ, इन्द्रयव, यवासा, चिरायता, लाल चन्दन, नागरमोथा, परवलके पत्ते, कुटकी, इन सबका क्काथ बनाकर पिलाना चाहिये । यह पित्तकफज्वर, जलन, प्यास, अरुचि, वमन, कास तथा पसुलियोंके दर्दको नष्ट करता है ॥ १२२–१२३ ॥

वासारसः ।

सपत्रपुष्पवासाया रसः क्षौद्रसितायुतः ।
कफपित्तज्वरं हन्ति सास्रपित्तं सकामलम् ॥ १२४ ॥

रुसाहेके पत्ते तथा फूलोंसे निकाला गया स्वरस २ तोला, शहद तथा मिश्री दोनों मिलाकर ६ मासे मिलाकर पीनेसे कफपित्तज्वर, रक्तपित्त तथा कामलाको नष्ट करता है ॥ १२४ ॥

पटोलादिक्वाथः ।

पटोलं पिचुमर्दश्च त्रिफला मधुकं बला ।
साधितोऽयं कषायः स्यात्पित्तश्लेष्मोद्भवे ज्वरे १२५

परवलके पत्ते, नीमकी छाल, आमला, हर्र, बहेड़ा, मौरेठी, खरेटी इनका क्काथ पित्तकफज्वरको नष्ट करता है ॥ १२५ ॥

अमृताष्टकक्वाथः ।

गुडूचीन्द्रयवारिष्टपटोलं कटुरोहिणी ।
नागरं चन्दनं मुस्तं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ॥ १२६ ॥
अमृताष्टक इत्येष पित्तश्लेष्मज्वरापहः ।
हृल्लासारोचकच्छर्दितृष्णादाहनिवारणः ॥ १२७ ॥

गुर्च, इन्द्रयव, नीमकी छाल, परवलकी पत्ती, कुटकी, सोंठ, लाल चन्दन, नागरमोथा, इनका क्वाथ बना छोटी पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे पित्तकफज्वर, मिचलाई, अरुचि, वमन, प्यास तथा दाह नष्ट होता है । इसे 'अमृताष्टक' कहते हैं ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

अपरः पटोलादिः ।

पटोलयवधान्याकं मुद्गामलकचन्दनम् ।
पैत्तिके श्लेष्मपित्तोत्थे ज्वरे तृट्छर्दिदाहनुत् ॥ १२८ ॥

परवलकी पत्ती, यव, धनियां, मूंग, आमला, लाल चन्दन इन सबका क्काथ पित्तज्वर तथा कफपित्तज्वरमें देना चाहिये । यह प्यास, वमन तथा दाहको नष्ट करता है ॥ १२८ ॥

---

१ वासाके पत्तों व फूलोंको जलसे धो साफ कपड़ेसे पोंछकर खूब महीन पीसना चाहिये, तभी स्वरस निकलेगा । पिस जानेपर साफ कपड़ेसे छान लेना चाहिये ।

पञ्चतिक्तकषायः ।

क्षुद्रामृताभ्यां सह नागरेण सपौष्करं चैव किराततिक्तम्।
पिबेत्कषायं त्विह पञ्चतिक्तं ज्वरं निहन्त्यष्टविधं समग्रम्

छोटी कटेरी, गुर्च, सोंठ, पोहकरमूल व चिरायताका बनाया गया क्वाथ समस्त ज्वरोंको नष्ट करता है । इसे ' पञ्चतिक्त कषाय ' कहते हैं ॥ १२९ ॥

कटुकीचूर्णम् ।

सशर्करामक्षमात्रां कटुकामुष्णवारिणा ।
पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्तसमुद्भवम् ॥१३०॥

एक तोला कुटकीका चूर्ण बराबर मिश्री मिलाकर गरम जलसे पीनेसे कफपित्तज्वर शान्त होता है ॥ १३० ॥

धान्यादिः ।

दीपनं कफविच्छेदि वातपित्तानुलोमनम् ।
ज्वरघ्नं पाचनं भेदि शृतं धान्यपटोलयोः ॥१३१॥

धनियां तथा परवलकी पत्तीका क्काथ कफनाशक, अग्निदीपक, पाचन, दस्तावर, ज्वरनाशक तथा वातपित्तका अनुलोमन करता है ॥ १३१ ॥

वातश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।

कफवातज्वरे स्वेदान्कारयेद्रूक्षनिर्मितान् ।
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् ।
हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति ॥१४२॥

कफवातज्वरमें रूक्ष पदार्थोंसे पसीना निकालना चाहिये । पसीना निकालना छिद्रोंको मुलायम कर अग्निको अपने स्थानमें ला वातकफकी जकड़ाहटको दूर कर ज्वरको नष्ट करता है॥१३२॥

वालुकास्वेदः ।

खर्परभृष्टपटास्थितकाञ्जिकसिक्तो हि वालुकास्वेदः ।
शमयति वातकफामयमस्तकशूलाङ्गभङ्गादीन् ॥ १३३॥

खपरेमें गरम की हुई वालूको कपडेमें रख काञ्जीमें डुबोकर सेंक करनेसे वातकफजन्य रोग, मस्तकशूल तथा शरीरकी पीड़ा आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १३३ ॥

मुस्तादिक्काथः ।

मुस्तनागरभूनिम्बं त्रयमेतत्त्रिकार्षिकम् ।
कफवातामशमनं पाचनं ज्वरनाशनम् ॥ १३४ ॥

नागरमोथा, सोंठ, चिरायता तीनों एक एक तोला ले क्काथ बनाकर पिलानेसे आमको पचाकर कफवातज्वरको शान्त करता है ॥ १३४ ॥

१ दोनों मिलकर एक तोला होना चाहिये ।

पञ्चकोलम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।
दीपनीयः स्मृतो वर्गः कफानिलगदापहः ॥१३५॥

छोटी पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीतकी जड, सोंठ यह ' पञ्चकोल ' कफवातजन्य रोगोंको नष्ट करनेवाला तथा अग्निको दीप्त करनेवाला है ॥ १३५ ॥

पिप्पलीक्काथः ।

पिप्पलीभिः शृतं तोयमनभिष्यन्दि दीपनम् ।
वातश्लेष्मविकारघ्नं प्लीहज्वरविनाशनम् ॥ १३६ ॥

छोटी पीपलका क्काथ छिद्रोंको साफ कर वातकफजन्यरोग तथा प्लीहा और ज्वरको नष्ट करता है ॥ १३६ ॥

आरग्वधादिक्वाथः ।

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ता-
हरीतकीभिः क्वथितः कषायः ।
सामे सशूले कफवातयुक्ते
ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च ॥ १३७ ॥

अमलतासका गूदा, पिपरामूल, नागरमोथा, कुटकी तथा बड़ी हर्रके छिलकेसे बनाया गया क्काथ आम तथा शूलयुक्त कफवातज्वरको नष्ट करनेवाला, दीपन तथा पाचन है ॥ १३७ ॥

क्षुद्रादिक्वाथः ।

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैः
कृतः कषायः कफमारुतोद्भवे ।
सश्वासकासारुचिपार्श्वरुक्करे
ज्वरे त्रिदोषप्रभवे च शस्यते ॥ १३८ ॥

छोटी कटेरी, गुर्च, सोंठ तथा पोहकरमूलसे बनाया गया क्काथ श्वास, कास, अरुचि, पसुलियोंकी पीड़ा सहित कफवातजन्य ज्वरमें तथा त्रिदोषज्वरमें भी अधिक लाभ करता है १३८

दशमूलक्वाथः ।

दशमूलीरसः पेयः कणायुक्तः कफानिले ।
अविपाकेऽतिनिद्रायां पार्श्वरुक्श्वासकासके ॥१३९॥

दशमूलका क्काथ पीपलका चूर्ण मिलाकर पार्श्वशूल, श्वास, कास तथा आमयुक्त कफवातज्वरमें देना चाहिये ॥ १३९ ॥

मुस्तादिक्वाथः ।

मुस्तं पर्पटकः शुण्ठी गुडूची सदुरालभा ।
कफवातारुचिच्छर्दिदाहशोषज्वरापहः ॥ १४० ॥

नागरमोथा, पित्तपापड़ा, सोंठ, गुर्च और यवासाका क्काथ कफवातजन्य अरुचि, वमन, दाह मुखका सूखना और ज्वरको नष्ट करता है ॥ १४० ॥

दार्वादिक्वाथः ।

दारुपर्पटभार्ग्यब्दवचाधान्यककट्फलैः ।
साभयाविश्वभूतीकैः ('पूतीकैःभूतिक्तैः')
क्वाथो हिंगुमधूत्कटः ॥ १४१ ॥
कफवातज्वरे पीतो हिक्काश्वासगलग्रहान् ।
कासशोषप्रसेकांश्च हन्यात्तरुमिवाशनिः ॥ १४२ ॥

देवदारु, पित्तपापडा, भारङ्गी, नागरमोथा, वच, धनियां, कायफर, बड़ी हर्र, सोंठ, अजवाइनका क्वाथ, हींग तथा शहद मिलाकर देना चाहिये । यह क्वाथ कफवातज्वर, हिक्का, श्वास, गलेकी जकड़ाहट, कास, मुखका सूखना तथा मिचलाहटको इस प्रकार नष्ट करता है, जैसे वज्र वृक्षको नष्ट करदेता है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

हिंग्वादिमानम् ।

मात्रा क्षौद्रघृतादीनां स्नेहक्वाथेषु चूर्णवत् ।
माषिकं हिङ्गुसिन्धूत्थं जरणाद्यास्तु शाणिकाः १४३

स्नेह तथा क्वाथमें घी तथा शहदकी मात्रा चूर्णके समान अर्थात् स्नेह तथा क्वाथ्यद्रव्यसे चतुर्थांश छोड़ना चाहिये । हींग तथा सेंधानमक १ माशा और जीरा आदिक ३ माशे छोड़ना चाहिये ॥ १४३ ॥

मुखवैरस्यनाशनम् ।

मातुलुङ्गफलकेशरो धृतः
सिन्धुजन्ममरिचान्वितो मुखे ।
हन्ति वातकफरोगमास्यगं
शोषमाशु जडतामरोचकम् ॥ १४४ ॥

बिजौरे निम्बूका गूदा, सेंधानमक तथा काली मिर्चके साथ मुखमें रखनेसे वातकफजन्य मुखरोग, मुखका सूखना, जड़ता तथा अरुचि तत्काल नष्ट हो जाती है ॥ १४४ ॥

सन्निपातज्वरचिकित्सा ।

लंघनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा ।
अवलेहोऽञ्जनं चैव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ १४५
सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्यादामकफापहम् ।
पश्चाच्छलेष्मणि संक्षीणे शमयेत्पित्तमारुतौ॥१४६॥

सन्निपातज्वरमें पहिले लंघन, वालुकास्वेद, नस्य, निष्ठीवन, अवलेह तथा अञ्जनका प्रयोग करना चाहिये । तथा पहिले आम और कफ को शान्त करनेका उपाय करना चाहिये । तदनन्तर पित्त और वायुको शान्त करना चाहिये ॥१४५-१४६

लंघनम् ।

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा ।
लंघनं सन्निपातेषु कुर्याद्वारोग्यदर्शनात् ॥ १४७ ॥

सन्निपात ज्वरमें तीन, पांच अथवा दश दिन अथवा जबतक आरोग्य न हो, तबतक लंघन कराना चाहिये ॥ १४७ ॥

लंघनसहिष्णुता ।

दोषाणामेव सा शक्तिर्लंघने या सहिष्णुता ।
न हि दोषक्षये कश्चित्सहते लंघनादिकम् ॥१४८॥

दोषोंकी ही शक्तिसे मनुष्य लंघन सहन कर सकता है । दोषोंके नष्ट हो जानेपर कोई लंघन नहीं सह सकता ॥ १४८ ॥

निष्ठीवनम् ।

आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं सकटुत्रिकम् ।
आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः ॥१४९॥

अदरखका स्वरस, सेंधानमक, सोंठ, मिर्च व पीपल मिलाकर गलेतक मुखमें बार बार रखना चाहिये और थूकना चाहिये १४९
तेनास्य हृदयाच्छ्लेष्मा मन्यापार्श्वशिरोगलात् ।
लीनोऽप्याकृष्यते शुष्को लाघवं चास्य जायते१५०
पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च मूर्च्छाकासगलामयाः ।
मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ॥१५१॥
सकृद् द्वित्रिचतुः कुर्याद् दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ।
एतद्धि परमं प्राहुर्भेषजं सान्निपातिनाम् ॥ १५२ ॥

निष्ठीवनसे हृदय, मन्या (गलेके बगलकी शिरायें), पसुलियां, शिर तथा गलेमें सूखा तथा रुका हुआ कफ खिंच आता है । तथा यह अङ्ग हलके हो जाते हैं और सन्धियोंका दर्द, शरीरका दर्द, मूर्च्छा, कास तथा गलेके रोग, मुख तथा नेत्रोंका भारीपन, जड़ता तथा मिचलाई शांत होती है । दोषोंका बलाबल देखकर एक, दो, तीन या चार बार तक निष्ठीवन कराना चाहिये । सन्निपातवालोंके लिये यह उत्तम प्रयोग है ॥ १५०-१५२ ॥

नस्यम् ।

मातुलुङ्गार्द्रकरसं कोष्णं त्रिलवणान्वितम् ।
अन्यद्वा सिद्धिविहितं तीक्ष्णं नस्यं प्रयोजयेत् १५३

बिजौरे निम्बूका रस, अदरखका रस कुछ गरम कर सेंधव, सामुद्र, सौवर्चल नमक मिलाकर नस्य देना चाहिये । अथवा सिद्धिस्थानमें कहे गये अन्य तीक्ष्ण नस्योंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १५३ ॥

---

१ किसी पुस्तकमें 'भूतीक' के स्थानमें 'पूतीक' तथा किसीमें 'भूतिक्त' पाठ है । पर यह पाचनक्वाथ है, हिंगु भी पड़ती है । अतः साहचर्यसे अजवाइन ही छोड़ना उचित प्रतीत होता है। पूतीक=पूतिकञ्जा । भूतिक्त=चिरायता । २ यह मात्रा वर्तमानसमयमें अधिक होगी । अतः वैद्योंको इसका निर्णय स्वयं करना चाहिये । मेरे विचारसे भुनी हींग २ रत्ती और नमक १ माशे डालना ठीक होगा ।

तेन प्रभिद्यते श्लेष्मा प्रभिन्नश्च प्रसिच्यते ।
शिरोहृदयकण्ठास्यपार्श्वरुक् चोपशाम्यति॥१५४॥

नस्य से कफ फट–फट कर गिर जाता है तथा शिर, हृदय, कण्ठ, मुख और पसलियोंकी पीड़ा शान्त होती है ॥ १५४ ॥

संज्ञाकारकं नस्यम् ।

मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाः समाः ।
श्लक्ष्णं पिष्ट्वाम्भसा नस्यं कुर्यात्संज्ञाप्रबोधनम्१५५
सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपं कुष्ठमेव च ।
वस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम्॥ १५६॥

महुएके भीतरका कूट, सेंधानमक, वच, कालीमिर्चें, छोटी पीपल, समान भाग ले महीन पीस जलमें मिलाकर नस्य देनेसे वेहोशी दूर होती है । इसी प्रकार सेंधानमक, सहिंजनके वीज, सरसों, कूठ इन्हें वकरेके मूत्रके साथ पीसकर नस्य देनेसे भी वेहोशी दूर होती है ॥ १५५–१५६ ॥

अञ्जनम् ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः ।
अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥१५७॥

सिरसके वीज, गोमूत्र, छोटी पीपल, काली मिर्च, सेंधानमक, लहसुन, शुद्ध मनशिल तथा बचको महीन पीस कर नेत्रोंमें आञ्जनेसे वेहोशी व तन्द्रा दूर होती है ॥ १५७ ॥

अष्टांगावलेहिका ।

कट्फलं पौष्करं शृंगी व्योषं यासश्च कारवी ।
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं चैतन्मधुना सह लेहयेत् ॥ १५८॥
एषावलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ।
हिक्कां श्वासं च कासं च कण्ठरोगं नियच्छति१२९

कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंही, सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल, यवासा, काला जीरा सब समान भाग ले चूर्ण कपड़छान कर शहदके साथ चटाना चाहिये । यह चटनी कठिन सन्निपातज्वर, हिक्का, श्वास, कास तथा इतर कण्ठरोगोंको नष्ट करती है ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

मधुव्यवस्था ।

ऊर्ध्वगश्लेष्महरणे उष्णे स्वेदादिकर्मणि ।
विरोध्युष्णे मधु त्यक्त्वा कार्यैपार्द्रकजै रसैः॥१६०

शहद गरम पदार्थोंके साथ गरम किया हुआ तथा गरम शरीरमें भी निषिद्ध होता है । और सन्निपातज्वरमें ऊर्ध्वगत श्लेष्मा नष्ट करनेके लिये उष्ण स्वेदादि कर्म किये जाते हैं। अतः यह चटनी शहदके साथ न वना कर अदरखके रससे ही वनानी चाहिये ॥ १६० ॥

पञ्चमुष्टिकः ।

यवकोलकुलत्थानां मुद्गमूलकखण्डयोः ।
एकैकमुष्टिमाहृत्य पचेदष्टगुणे जले ॥ १६१ ॥
पञ्चमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफापहः ।
शस्यते गुल्मशूले च श्वासे कासे क्षये ज्वरे ॥१६॥

यव, वेर, कुलथी, मूंग, मूलीके टुकड़े एक एक मुष्टि (अन्तनख मुष्टि या ४ तोलाँ) प्रत्येक द्रव्य लेकर अठगुने जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर कई वारमें थोड़ा थोड़ा पिलाना चाहिये । यह वात, पित्त, कफ, गुल्म, शूल, श्वास, कास, धातुक्षय या यक्ष्मा तथा ज्वरको शान्त करता है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

पञ्चमूल्यादिक्वाथः ।

पञ्चमूली किरातादिर्गणो योज्यस्त्रिदोषजे ।
पित्तोत्कटे च मधुना कणया च कफोत्कटे॥१६३॥

---

१ सन्निपातज्वरचिकित्सामें अनेक क्रियायें वतायी गयी हैं, अतः समस्त क्रियायें एक साथ करनी चाहियें ? या एक एक यह शंका उत्पन्न हुई, इसीको स्पष्ट करनेके लिये सुश्रुतने लिखा है–" क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् । पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रियासंकरो हितः ॥ " इससे एक कालमें अनेक क्रियायें निषिद्ध ही सिद्ध हुईं । पर उक्त सुश्रुतोक्त व्यवस्था अन्तःपरिमार्जन–चिकित्सा अथवा जहां एक क्रियासे दूसरी क्रियामें विरोध पड़ता हो, वहींके लिये है । क्योंकि अन्तः-परिमार्जक अनेक प्रयोगोंसे अग्निमान्द्य या कोष्ठभेदादि उत्पन्न हो जायँगे अथवा विरुद्ध गुणवाली औषधियोंसे परस्पर विरोध उत्पन्न हो जायँगे अथवा विरुद्ध गुणवाली औषधियोंसे परस्पर विरोध उत्पन्न हो जानेपर एकका भी गुण नहीं होगा । पर यहां सब प्रयोग अन्तःपरिमार्जक या परस्पर विरोधी नहीं हैं, अतः कोई विरोध नहीं पड़ता । इसी सिद्धान्तका समर्थन श्रीयुत वृन्दजीने भी किया है । यथा–" क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिः क्रियासांकर्यमिष्यते । भिन्नरूपतया यास्तु ताः कुर्वन्ति न दूषणम् ॥" और अञ्जन, नस्य, अवलेह आदि वलवती व्यापत्तियोंके दूर करनेके लिये किये जाते हैं, अतः कोई विरोध न समझना चाहिये ॥

२ किसी किसीका मत है कि उपरोक्त द्रव्य सब मिलकर ४ तो० लेना चाहिये, पर यह आहार द्रव्य है, अतः प्रत्येक ही ४ तो०लेना उचित है । इसी योगमें धानिया, सोंठ मिलाकर इसे ' सप्तमुष्टिक ' भी कहते हैं ।

लघुपञ्चमूल तथा किराताादि गणकी औषधियें चिरायता, सोंठ, नागरमोथा, गुर्चको पित्तप्रधान त्रिदोषज्वरमें शहदके साथ तथा कफप्रधानमें छोटी पीपलके चूर्णके साथ देना चाहिये ॥ १६३ ॥

दशमूलम् ।

बिल्वश्योनाककाश्मर्यपाटलागणिकारिकाः ।
दीपनं कफवातघ्नं पञ्चमूलमिदं महत् ॥ १६४ ॥
शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।
वातपित्तहरं वृष्यं कनीयः पञ्चमूलकम् ॥ ६५ ॥
उभयं दशमूलं तु सन्निपातज्वरापहम् ।
कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कण्ठहृद्ग्रहनाशनम् ॥ १६६ ॥

वेलकी जड़की छाल, सोनापाठा, खम्भार, पाढ़ल, अरणी इसे " महत्पञ्चमूल " कहते हैं । यह अग्निको दीप्त करनेवाला तथा कफवायुको नष्ट करनेवाला है । सरिवन, पिठिवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी तथा गोखुरू यह " लघुपञ्चमूल " वातपित्तको नष्ट करनेवाला तथा बाजीकर है । दोनों मिलकर ' दशमूल ' कहा जाता है । यह खांसी, श्वास, तन्द्रा तथा पार्श्वशूलमें विशेष लाभ करता है । सन्निपातज्वरको नष्ट करता है । छोटी पीपलके चूर्णके साथ कण्ठ तथा हृदयकी जकड़ाहटको नष्ट करता है ॥ १६४–१६६ ॥

चतुर्दशांगक्वाथः ।

चिरज्वरे वातकफोल्बणे वा
त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः ।
किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः
शुद्ध्यर्थिने वा त्रिवृताविमिश्रः ॥ १६७ ॥

वातकफप्रधान जीर्णज्वरमें अथवा वातकफप्रधान सन्निपातज्वरमें दशमूलके सहित किराततिक्तादिगण (" किराततिक्तकं मुस्तं गुडूची नागरं तथा") की औषधियोंका क्वाथ देना चाहिये। यदि विरेचनद्वारा शुद्धि कराना आवश्यक हो तो निशोथका चूर्ण मिलाकर देना चाहिये ॥ १६७ ॥

अष्टादशाङ्गक्वाथः ।

दशमूली शठी शृङ्गी पौष्करं सदुरालभम् ।
भार्ङ्गी कुटजबीजं च पटोलं कटुरोहिणी १६८॥
अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापहः ।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः १६९॥

दशमूल, कचूर, काकड़ासिंगी, पोहकरमूल, यवासा, भारंगी, इन्द्रयव, परवलके पत्ते, कुटकी इसे ' अष्टादशांग क्वाथ ' कहते हैं । यह सन्निपातज्वर, खांसी, हृदयकी जकड़ाहट, पसुलियोंका दर्द, श्वास, हिक्का तथा वमनको नष्ट करता है॥ १६८॥१६९ ॥

अपरोऽष्टादशाङ्गः ।

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्द-
तिक्तेन्द्रबीजधनिकेभकणाकषायः ।
तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोह-
श्वासादियुक्तमखिलं ज्वरमाशु हन्ति ॥ १७०॥

चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रयव, धनियां, और गजपीपल इनका क्वाथ, तन्द्रा, प्रलाप, कास, अरुचि, दाह, मोह, तथा श्वासादियुक्त समस्त ज्वरोंको नष्ट करता है ॥ १७० ॥

मुस्तादिक्वाथः ।

मुस्तपर्पटकोशीरदेवदारुमहौषधम् ।
त्रिफला धन्वयासश्च नीली कम्पिल्लकं त्रिवृत् ॥
किराततिक्तकं पाठा बला कटुकरोहिणी ।
मधुकं पिप्पलीमूलं मुस्ताद्यो गण उच्यते १७२॥
अष्टादशाङ्गमुदितमेतद्वा सन्निपातनुत् ।
पित्तोत्तरे सन्निपाते हितं चोक्तं मनीषिभिः ।
मन्यास्तम्भ उरोघाते उरःपार्श्वशिरोग्रहे१७३ ॥

नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खश, देवदारु, सोंठ त्रिफला, यवासा, नील कबीला, निसोथ, चिरायता, पाठा, खरेंटी (बरियारीबीज) कुटकी, मौरेठी तथा पिपरामूल यह ' मुस्तादिगण ' अथवा ' अष्टादशांग ' क्वाथ कहा जाता है । यह पित्तप्रधान सन्निपातमें विशेष हितकर है। मन्यास्तम्भ, छातीके दर्द तथा छाती, पसली व शिरकी जकड़ाहटको नष्ट करता है ॥ १७१–१७३ ॥

शट्यादिक्वाथः ।

शटी पुष्करमूलं च व्याघ्री शृंगी दुरालभा ।
गुडूची नागरं पाठा किरातं कटुरोहिणी ॥ १७४॥
एष शट्यादिको वर्गः सन्निपातज्वरापहः ।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासे तन्द्रयां च शस्यते १७५ ॥

कचूर, पोहकरमूल, छोटी कटेरी, काकड़ासिंगी, यवासा, गुर्च, सोंठ, पाढ़, चिरायता, कुटकी यह "शट्यादिक्वाथ" सन्निपातज्वर, कास, हृदयकी जकड़ाहट, पार्श्वशूल, तथा तंद्राको नष्ट करताहै ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

बृहत्यादिक्वाथः ।

बृहत्यौ पुष्करं भार्ङ्गी शठी शृंगी दुरालभा ।
वत्सकस्य च बीजानि पटोलं कटुरोहिणी॥१७६॥
बृहत्यादिर्गणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः ।
कासादिषु च सर्वेषु देयः सोपद्रवेषु च ॥ १७७ ॥

दोनों कटेरी, पुष्करमूल, भारंगी, कचूर, काकड़ासिंही, यवासा, इंद्रयव, परवलके पत्ते, कुटकी–यह "बृहत्यादिकाथ" सन्निपातज्वर तथा उपद्रवसहित समस्त कासोंको नष्ट करता है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

भाङ्गर्यादिकाथः ।

भार्ङ्गी पुष्करमूलं च रास्नां बिल्वं यवानिकाम् ।
नागरं दशमूलं च पिप्पलीं चाप्सु साधयेत् १७८॥
सान्निपातज्वरे देयं हृत्पार्श्वानाहशूलिनाम् ।
कासश्वासाग्निमन्दत्वं तन्द्रां च विनियच्छति १७९

भारङ्गी, पोहकरमूल, रासन, बेलकी छाल, अजवायन, सोंठ, दशमूल तथा छोटी पीपलका काथ सन्निपातज्वर, हृदय तथा पसलियोंके दर्द, अफारा, कास, श्वास, अग्निमंदता तथा तंद्राको नष्ट करता है ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

द्विपञ्चमूल्यादिकाथः ।

द्विपञ्चमूलीषड्ग्रन्थाविश्वगृध्रनखीद्वयात् ।
कफवातहरः काथः सान्निपातहरः परः ॥ १८० ॥

दशमूल, वच, सोंठ, नख, नखीसे बनाया गया काथ कफ, वात तथा सन्निपातको नष्ट करता है ॥ १८० ॥

अभिन्यासचिकित्सा (कारव्यादिकषायः ।)

कारवीपुष्करैरण्डत्रायन्तीनागरामृताः ।
दशमूलीशठीशृंगीयासभार्ङ्गीपुनर्नवाः ॥ १८१ ॥
तुल्या मूत्रेण निष्क्वाथ्य पीताः स्रोतोविशोधनाः ।
अभिन्यासं ज्वरं घोरमाशु घ्नन्ति समुद्धतम् १८२॥

काला जीरा, पोहकरमूल, एरण्डकी छाल, त्रायमाण, सोंठ, गुर्च, दशमूल, कचूर, काकड़ासिंही, यवासा, भारङ्गी, पुनर्नवा–सब समान भाग ले गोमूत्रमें काथ बनाकर पिलानेसे छिद्रोंको शुद्ध कर बढ़े हुए घोर अभिन्यासज्वरको शान्त करता है ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

मातुलुङ्गादिकाथः ।

मातुलुङ्गाश्मभिद्बिल्वव्याघ्रीपाठोरुबूकजः ।
काथो लवणमूत्राढयोऽभिन्यासानाहशूलनुत् १८३॥

बिजौरे निंबूकी जड़, पाषाणभेद, बेलकी छाल, छोटी कटेरी, पाढ़ी, एरण्डकी छालका काथ गोमूत्र तथा सेंधानमक मिलाकर पीनेसे अभिन्यासज्वर, अफारा तथा दर्दको नष्ट करता है ॥ १८३ ॥

अभिन्यासलक्षणम् ।

निद्रोपेतमभिन्यासं क्षीणं विद्याद्धतौजसम् ।

जिस सन्निपातज्वरमें निद्रा अधिक हो, रोगी क्षीण हो, उसे 'हतौजस' या 'अभिन्यास' कहते हैं । जैसा कि भगवान् सुश्रुतने लिखा है–" अभिन्यासं तु तं प्राहुर्हतौजसमथापरे । सन्निपातज्वरं कृच्छ्रमसाध्यमपरे जगुः ।

कण्ठरोगादिचिकित्सा ।

कण्ठरोधकफश्वासहिक्कासंन्यासपीडितः ।
मातुलुङ्गार्द्रकरसं दशमूल्यम्भसा पिबेत् ॥ १८४ ॥

कण्ठावरोध, कफ, श्वास, हिक्का तथा अभिन्यास ज्वरसे पीड़ित मनुष्यको दशमूलके काढ़ेके साथ बिजौरे निंबू तथा अदरखका रस पिलाना चाहिये ॥ १८४ ॥

व्योषादिकाथः ।

व्योषाब्दत्रिफलातिक्तापटोलारिष्टवासकैः ।
सभूनिम्बामृतायासैस्त्रिदोषज्वरनुज्जलम् ॥ १८५ ॥

सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, नागरमोथा, त्रिफला, कुटकी, परवलकी पत्ती, नीमकी छाल, रुसाहके फूल या छाल, चिरायता, गुर्च, तथा यवासा–इनसे बनाया हुआ काथ त्रिदोषज्वरको नष्ट करता है ॥ १८५ ॥

त्रिवृतादिकाथः ।

त्रिवृद्विशालात्रिफलाकटुकारग्वधैः कृतः ।
सक्षारो भेदनः काथः पेयः सर्वज्वरापहः ॥१८६॥

निसोथ, इन्द्रायनकी जड़, त्रिफला, कुटकी, अमलतासके गूदेसे बनाया गया काथ जवाखार मिलाकर पिलानेसे समस्त ज्वरोंको नष्ट करता है ॥ १८६ ॥

स्वेदबाहुल्यचिकित्सा ।

स्वेदोद्गमे ज्वरे देयश्चूर्णो भृष्टकुलत्थजः ॥ १८७ ॥

पसीनेके अधिक आनेपर कुलथी भून, महीन चूर्ण कर उरीना चाहिये ॥ १८७ ॥

जिह्वादोषचिकित्सा ।

घर्षेज्जिह्वां जडां सिन्धुत्र्यूषणैः साम्लवेतसैः ।
उच्छुष्कां स्फुटितां जिह्वां द्राक्षया मधुपिष्टया १८८
लेपयेत्सघृतं चास्यं सान्निपातात्मके ज्वरे ।

जड़ जिह्वाको सेंधानमक, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) तथा अम्लवेतके चूर्णसे घिसना चाहिये । यदि जिह्वा सूख तथा

---

१ " नखी पञ्चविधा ज्ञेया गंधार्थं गंधतत्परैः । काचिद्बदरपत्राभा तथोत्पलदला मता ॥ काचिदश्वखुराकारा गजकर्णसमाऽपरा । वराहकर्णसंकाशा पञ्चमी परिकीर्तिता ॥ " इस भांति पांच प्रकारके नख होते हैं । इनमेंसे पूर्वके दो बदरपत्र तथा उत्पलपत्रका प्रयोग करना चाहिये । अथवा रक्त, श्वेतपुष्पभेदसे लेना चाहिये

१ पसीना अधिक आनेपर उसे पोंछना न चाहिये, किन्तु यही चूर्ण उरीते रहना चाहिये (एक रत्तीकी मात्रासे मूंगेकी भस्मका प्रयोग भी शीघ्र पसीना बन्द करता है)

फट गयी हो, तो मुखमें घी लगाकर पिसी हुई मुनक्का शहदमें मिलाकर लगाना चाहिये ॥ १८८ ॥

निद्रानाशचिकित्सा ।

काकजंघाजटा निद्रां जनयेच्छिरसि स्थिता १८९॥

काकजंघाकी जड़ महीन पीस शिरमें लेप करनेसे निद्राको उत्पन्न करती है ॥ १८९ ॥

सन्निपाते विशेषव्यवस्था ।

सान्निपाते प्रकम्पन्तं प्रलपन्तं न बृंहयेत् ।
तृष्णादाहाभिभूतेऽपि न दद्याच्छीतलं जलम् १९०

सन्निपातमें कम्पनेवाले तथा प्रलाप करनेवालेको भी बृंहण चिकित्सा न करनी चाहिये । और प्यास तथा दाहसे व्याकुल होनेपर भी ठण्ढा जल न देना चाहिये ॥ १९० ॥

कर्णमूललक्षणम् ।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः ।
शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ १९१ ॥

सन्निपातज्वरके अन्तमें कानके नीचे कठिन सूजन हो जाती है, इससे कोई ही बचता है ॥ १९१ ॥

तच्चिकित्सा ।

रक्तावसेचनैः पूर्वं सर्पिष्पानैश्च तं जयेत् ।
प्रदेहैः कफपित्तघ्नैर्वमनैः कवलग्रहैः ॥ १९२ ॥

उसे पहिले घृत पिलाकर रक्त निकलवाना (जोंक या शिराव्यध द्वारा) चाहिये । तथा कफपित्तनाशक लेप व कवलग्रह अथवा वमन कराकर कर्णमूल शांत करना चाहिये ॥ १९२ ॥

गैरिकादिलेपः ।

गैरिकं पांशुजं शुण्ठी वचाकटुककाञ्जिकैः ।
कर्णशोथहरो लेपः सन्निपातज्वरे भृशम् ॥१९३ ॥

गेरू, खारी नमक, सोंठ, वच दूधिया और कुटकीको महीन पीस काञ्जीके साथ सन्निपातज्वरमें कर्णमूलमें लेप करना चाहिये ॥ १९३ ॥

---

१ यहां पर 'अन्त' शब्दका समीप अर्थ भी करते हैं, अतः यह अर्थ हो जाता है कि सन्निपातज्वरके समीपमें (अर्थात् पहिले या अन्तमें या मध्यमें) कठिन शोथ कर्णमूलमें हो जाता है, इससे कोई ही बचता है अर्थात् यह कष्टसाध्य होता है । अतएव कुछ आचार्योंने लिखा है " ज्वरस्य पूर्वं ज्वरमध्यतो वा ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोथः । क्रमेण साध्यः खलु कष्टसाध्यस्ततस्त्वसाध्यः कथितो भिषग्भिः ॥ " इसीको पाठभेदसे " क्रमादसाध्यः खलु कष्टसाध्यस्ततस्तु साध्यः कथितो मुनीन्द्रैः " लिखा है । यह रोगविज्ञानका विषय है, अतः वहींसे निर्णय करना चाहिये ।

कुलत्थादिलेपः ।

कुलत्थकट्फले शुण्ठी कारवी च समांशकैः ।
सुखोष्णैर्लेपनं कार्यं कर्णमूले मुहुर्मुहुः ॥ १९४ ॥

कुलथी, कायफल, सोंठ, काला जीरा समान भाग ले, पानीके साथ महीन पीस, गरम कर गुनगुना गुनगुना लेप करना चाहिये ॥ १९४ ॥

जीर्णज्वरचिकित्सा ।

निदिग्धिकानागरकामृतानां
क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ।
जीर्णज्वरारोचककासशूल-
श्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ १९५ ॥

छोटी कटेरी, सोंठ तथा गुर्चका क्वाथ छोटी पीपलका चूर्ण मिलाकर, जीर्णज्वर, अरुचि, कास, शूल, श्वास, अग्निमांद्य, अर्दित तथा पीनस रोगमें पीना चाहिये ॥ १९५ ॥

अस्य समयः ।

हन्त्यूर्ध्वगामयं प्रायः सायं तेनोपयुज्यते ।

अधिकतर ऊर्ध्वगामी रोगोंको यह क्वाथ नष्ट करता है, अतः इसका सायंकाल प्रयोग किया जाता है ।

गुडूचीक्वाथः ।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः क्वाथश्छिन्नरुहोद्भवः ॥ १९६॥
जीर्णज्वरकफध्वंसी पञ्चमूलीकृतोऽथवा ।

गुर्चका क्वाथ, छोटी पीपलका चूर्ण मिला, अथवा लघुपञ्चमूलका क्वाथ पिप्पली चूर्ण मिला, जीर्णज्वर तथा कफको नष्ट करता है ॥ १९६ ॥-

गुडपिप्पलीगुणाः ।

कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुक्रिमिरोगनुत् ॥१९७
जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली ।

गुड़के सहित छोटी पीपल का चूर्ण कास, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृद्रोग, पाण्डुरोग, क्रिमिरोग, जीर्णज्वर तथा अग्निमान्द्यको नष्ट करता है ॥ १९७ ॥-

विषमज्वरचिकित्सा ।

कलिङ्गकाः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी ॥ १९८ ॥
पटोलं शारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ।
निम्बं पटोलं त्रिफला मृद्वीका मुस्तवत्सकौ ॥१९९॥
किराततिक्तममृता चन्दनं विश्वभेषजम् ।
गुडूच्यामलकं मुस्तमर्धश्लोकसमापनाः ॥ २०० ॥
कषायाः शमयन्त्याशु पञ्च पञ्चविधान् ज्वरान् ।
सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान् ॥ २०१ ॥

इन्द्रयव, परवलकी पत्ती तथा कुटकीका क्काथ सन्ततज्वरको, परवलकी पत्ती शारिवा, नागरमोथा, पाढ़ी तथा कुटकीका सतत-ज्वरको, नीमकी छाल,परवलकी पत्ती, त्रिफला, मुनक्का, नागरमोथा, व कुड़ेकी छाल, अन्येद्युष्कज्वरको, चिरायता, गुर्च, लालचन्दन, सोंठ तृतीयज्वरको तथा गुर्च, आमला व नागरमोथाका क्काथ चातुर्थिकज्वरको शान्त करता है ॥ १९८–२०१ ॥

त्रिफलाक्काथः ।

गुडप्रगाढां त्रिफलां पिबेद्वा विषमार्दितः ।

विषमज्वरसे पीड़ित पुरुषको त्रिफलाका क्काथ गुड़ मिलाकर पीना चाहिये ।

गुडूच्यादिक्काथः ।

गुडूचीमुस्तधात्रीणां कषायं वा समाक्षिकम् ॥ २०२

अथवा गुर्च, नागरमोथा व आमलाका क्काथ बना ठण्ढाकर शहद डालके पीना चाहिये ॥ २०२ ॥

योगान्तरम् ।

दीर्घपत्रककर्णाख्यनेत्रं खदिरसंयुतम् ।
ताम्बूलैस्तद्दिने भुक्तं प्रातर्विषमनाशनम् ॥ २०३ ॥

लहसुनका बीज तथा कत्था प्रातःकाल पानमें रखकर खानेसे विषमज्वर नष्ट होता है ॥ २०३॥

मुस्तादिक्काथः ।

मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकण्टकारिकाक्काथः ।
पीतः सकणाचूर्णः समधुर्विषमज्वरं हन्ति ॥२०४॥

नागरमोथा, आमला, गुर्च, सोंठ तथा छोटी कटेरीका क्काथ, छोटी पीपलका चूर्ण तथा शहद मिलाकर पीनेसे विषमज्वरको नष्ट करता है ॥ २०४ ॥

महौषधादिक्काथः ।

महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकैः ।
क्काथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजितः ॥ २०५॥

सोंठ, गुर्च, नागरमोथा, लालचन्दन, खश तथा धनियांका क्काथ मिश्री तथा शहद मिलाकर पीनेसे तृतीयकज्वर नष्ट होता है ॥ २०५ ॥

वासादिक्काथः ।

वासाधात्रीस्थिरादारुपथ्यानागरसाधितः ।
सितामधुयुतः क्काथश्चातुर्थिकनिवारणः ॥ २०६ ॥

अडूसा, आमला, शालिपर्णी, देवदारु, छोटी हरड़ तथा सोंठका क्काथ मिश्री तथा शहद मिला हुआ चातुर्थिक ज्वरको नष्ट करता है ॥ २०६ ॥

सामान्यचिकित्सा ।

मधुना सर्वज्वरनुच्छेफालीदलजो रसः ।
अजाजी गुडसंयुक्ता विषमज्वरनाशिनी ।
अग्निसादं जयेत्सम्यग्वातरोगांश्च नाशयेत् ॥२०७॥

सम्भालू अथवा हरसिंगारके पत्तोंका रस शहदके साथ सेवन करनेसे समस्त विषमज्वर शान्त होते हैं । सफेद जीरेका[1] चूर्ण गुड़के साथ विषमज्वर, अग्निमान्द्य तथा वातरोगोंको नष्ट करता है ॥ २०७ ॥

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं
योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्तः ।
विमुच्यते सोऽप्यचिराज्ज्वरेण
वातामयैश्चापि सुघोररूपैः ॥ २०८ ॥

जो मनुष्य लगातार लहसुनकी चटनी तिलतैल मिलाकर चाटता है, वह विषमज्वर तथा कठिन वातरोगोंसे शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ॥ २०८ ॥

प्रातः प्रातः ससर्पिर्वा रसोनमुपयोजयेत् ।
पिप्पलीं वर्द्धमानां वा पिबेत्क्षीररसाशनः ॥२०९॥
षट्पलं वा पिबेत्सर्पिः पथ्यां वा मधुना लिहेत् ।

प्रातःकाल घीके साथ लहसुनका प्रयोग करना चाहिये । अथवा दूध अथवा मांसरसका भोजन करता हुआ वर्द्धमान-पिप्पलीका[2] प्रयोग करे । अथवा षट्पल घृत (आगे लिखेंगे) पीवे । या शहदके साथ छोटी हर्रका चूर्ण चाटे ॥ २०९ ॥

पयस्तैलं घृतं चैव विदारीक्षुरसं मधु ॥ २१० ॥
सम्मर्द्य पाययेदेतद्विषमज्वरनाशनम् ।

विषमज्वर नाश करनेके लिये दूध, तैल, घी, विदारीकन्दका रस, ईखका रस, शहद एकमें मिलाकर पिलाना चाहिये॥२१०॥

पिप्पलीशर्कराक्षौद्रं घृतं क्षीरं यथाबलम् ।
खजेन मथितं पेयं विषमज्वरनाशनम् ॥ २११ ॥

छोटी पीपल, मिश्री, शहद, घी व दूध मथानीसे मथकर अपनी शक्तिके अनुसार पीना चाहिये । इससे विषमज्वर नष्ट होगा ॥ २११ ॥

पयसा वृषदंशस्य शकृद्वेगागमे पिबेत् ।
वृषस्य दधिमण्डेन सुरया वा ससैन्धवम् ॥ २१२ ॥

बिड़ालकी विष्ठा दूधके साथ, अथवा बैलका गोबर, सेंधानमक मिलाकर दहीके तोड़ या शराबके साथ पीना चाहिये ॥ २१२ ॥

१—यह योग अधिकतर चातुर्थिक ज्वरमें लाभ करता है ।

१ जीरा भूनकर चूर्ण बनाना चाहिये ।

२ वर्धमानपिप्पली ३ या ५ या ७ बलाबलके अनुसार ११ दिन या २१ दिन तक प्रतिदिन बढ़ाना चाहिये । उसी प्रकार उतने ही दिनमें घटाना चाहिये । ऐसा शास्त्रोक्त विधान है । पर आजकलके लिये १ या ३ पीपलसे बढ़ाना हितकर होगा ॥ ३ इस योगमें दूध गरम किया हुआ अष्टगुण तथा अन्य द्रव्य १ भाग प्रत्येक छोड़ना उचित होगा ।

विषमज्वरहरविरेचनम् ।

नीलिनीमजगन्धां च त्रिवृतां कटुरोहिणीम् ।
पिबेज्ज्वरस्यागमने स्नेहस्वेदोपपादितः ॥ २१३ ॥

पहिले स्नेहन तथा स्वेदन कर ज्वर आनेवाले दिन नील, बवई, निसोथ व कुटकीका क्वाथ पूर्णमात्रामें पिलाना चाहिये, इससे विरेचन होगा ॥ २१३ ॥

विषमज्वरे पथ्यम् ।

सुरां समण्डां पानार्थे भक्ष्यार्थे चरणायुधम् ।
तित्तिरींश्च मयूरांश्च प्रयुञ्ज्याद्विषमज्वरे ॥ २१४ ॥

विषमज्वरमें मण्ड या शराब पीनेके लिये भोजनके लिये मुर्गे, तीतर या मयूरोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ २१४ ॥

अम्लोटजसहस्रेण दलेन सुकृतां पिबेत् ।
पेयां घृतप्लुतां जंतुश्चातुर्थिकहरीं त्र्यहम् ॥२१५ ॥

१००० आमलोनियां (चांगेरी) की पत्तीकी पेया बना घी मिलाकर तीन दिनतक विषमज्वर नाश करनेके लिये पीना चाहिये ॥ २१५ ॥

विषमज्वरहरमञ्जनम् ।

सैन्धवं पिप्पलीनां च तण्डुलाः समनःशिलाः ।
नेत्राञ्जनं तैलपिष्टं विषमज्वरनाशनम् ॥ २१६ ॥

सेंधानमक, छोटी पीपलके दाने, शुद्ध मनशिल तेलमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे विषमज्वर नष्ट होता है ॥ २१६ ॥

नस्यम् ।

व्याघ्रीरसाहिङ्गुसमा नस्यं तद्वत्ससैन्धवा ॥२१७॥

छोटी कटेरी, रासन, हींग तथा सेंधानमकका नस्य इसी प्रकार विषमज्वरको नष्ट करता है ॥ २१७ ॥

धूपः ।

कृष्णाम्बरदढावद्धगुग्गुलूलूकपुच्छजः ।
धूपश्चातुर्थिकं हन्ति तमः सूर्य इवोदितः ॥२१८ ॥

काले कपड़ेमें गुग्गुल तथा उल्लूकी पूंछ बांधकर धूप देनेसे चातुर्थिक ज्वर ऐसे नष्ट होता है, जैसे सूर्योदयसे अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥ २१८ ॥

नस्यान्तरम् ।

शिरीषपुष्पस्वरसो रजनीद्वयसंयुतः ।
नस्यं सर्पिःसमायोगाच्चातुर्थिकहरं परम् ॥ २१९ ॥

सिरसाके फूलोंका स्वरस, हल्दी, दारुहल्दीका चूर्ण तथा घी मिलाकर नस्य देनेसे चौथिया ज्वर छूट जाता है ॥ २१९ ॥

नस्यं चातुर्थिकं हन्ति रसो वागस्त्यपत्रजः ।
अगस्त्यके पत्तोंके रसका नस्य भी चातुर्थिकको नष्ट करता है ।

धूपान्तरम् ।

पलङ्कषा निम्बपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी ॥२२० ॥
सर्षपाः सयवाः सर्पिर्धूपनं ज्वरनाशनम् ।
पुरध्यामवचासर्जनिम्बार्कागुरुदारुभिः ॥ २२१ ॥
सर्वज्वरहरो धूपः कार्योऽयमपराजितः ।

गुग्गुलु, नीमके पत्ते, वच, कूठ, बड़ी हर्रका छिल्का, सरसों, यव, घी मिलाकर अथवा गुग्गुलु, रोहिष घास, वच, राल, नीमकी पत्ती, आककी जड़, अगर तथा देवदारुका धूप देना चाहिये ॥ २२० ॥ २२१ ॥–

वैडालं वा शकृद्योज्यं वेपमानस्य धूपने ॥ २२२ ॥

कम्पते हुए रोगीको बिडालकी विष्ठाका धूप देना चाहिये ॥ २२२ ॥

अपरे योगाः ।

अपामार्गजटा कट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः ।
बद्ध्वा वारे रवेस्तूर्णं ज्वरं हन्ति तृतीयकम् २२३॥

लटजीराकी जड़ सात लाल डोरोंसे कमरमें रविवारके दिन बांधनेसे तृतीयक (तीसरे दिन आनेवाला) ज्वर नष्ट होता है ॥ २२३ ॥

काकजंघा बला श्यामा ब्रह्मदण्डी कृताञ्जलिः ।
पृश्निपर्णी त्वपामार्गस्तथा भृंगराजोऽष्टमः ॥२२४॥
एषामन्यतमं मूलं पुष्येणोद्धृत्य यत्नतः ।
रक्तसूत्रेण संवेष्ट्य बद्धमैकाहिकं जयेत् ॥ २२५ ॥

काकजंघा, खरेंटी, निसोथ या विधारा, ब्रह्मदण्डी, लज्जालु, पिठिवन, लटजीरा तथा भांगरा–इनमेंसे किसी एककी जड़ पुष्यनक्षत्रमें उखाड़ लाल डोरेसे लपेटकर हाथ या गलेमें बांधनेसे एकाहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ २२४ ॥ २२५ ॥

मूलं जयन्त्याः शिरसा धृतं सर्वज्वरापहम् ।

अरणीकी जड़ चोटीमें बांधने अथवा जलसे पीसकर शिरमें लेप करनेसे समस्त ज्वर दूर होते हैं ।

विशिष्टचिकित्सा ।

कर्म साधारणं जह्यात्तृतीयकचतुर्थकौ ।
आगन्तुरनुबन्धो हि प्रायशो विषमज्वरे ॥ २२६॥

दोनों चिकित्सायें (दैवव्यपाश्रय–बलिमंगलहोमादि तथा युक्तिव्यपाश्रय-कषायलेहादि) तृतीयकचतुर्थक ज्वरको नष्ट करती हैं । केवल युक्तिव्यपाश्रय कषायादि ही नहीं । क्योंकि विषमज्वरमें प्रायः आगन्तुक (भूतादि) का संसर्ग होता है ॥ २२६ ॥

दैवव्यपाश्रयं कर्म ।

गंगाया उत्तरे कूले अपुत्रस्तापसो मृतः ।
तस्मै तिलोदके दत्ते मुच्यत्यैकाहिको ज्वरः ॥२२७॥
एतन्मंत्रेण चाश्वत्थपत्रहस्तः प्रतर्पयेत् ॥ २२८॥

पीपलका पत्र हाथमें लेकर " गंगाया उत्तरे कूले अपुत्रस्तापसो मृतः । तस्मै तिलोदकं नमः स्वधा " इस मन्त्रसे तर्पण करनेसे एकाहिक ज्वर छोड़ देता है ॥ २२७ ॥ २२८ ॥

सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम् ॥
पूजयन्प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात् ॥ २२९॥
विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान्सर्वान्व्यपोहति ॥ २३० ॥

उमासहित तथा अनुचरों व मातृगणसहित शंकरजीका नियमसे पूजन करनेसे विषमज्वर छूट जाता है । इसी प्रकार सर्वव्यापक, विराट्स्वरूप, चराचरस्वामी विष्णु भगवान्की सहस्र नामसे स्तुति करनेवाला विषमज्वरसे मुक्त होजाता है२२९॥२३०

सर्पिष्पानावस्था ।

ज्वराः कषायैर्वमनैर्लंघनैर्लघुभोजनैः ।
रूक्षस्य ये न शाम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषग्जितम्२३१

जो ज्वर कषाय, अवलेहादि तथा वमन, विरेचन, लंघन, स्वेदन तथा लघुभोजनसे नहीं शांत होते और शरीर रूक्ष हो जाता है, उनकी उत्तम चिकित्सा घृत है ॥ २३१ ॥

सर्पिर्निषेधः ।

निर्दशाहमपि ज्ञात्वा कफोत्तरमलंघितम् ।
न सर्पिः पाययेत्प्राज्ञः शमनैस्तमुपाचरेत् ॥२३२॥

दशे दिन बीत जानेपर भी जिसका कफ बढ़ा हुआ हो तथा लंघनके गुण उत्पन्न न हुए हों, उसे घृत न पिलाना चाहिये किन्तु शमनकारक उपाय करना चाहिये ॥ २३२ ॥

निर्दशाहे कफोत्तरे शमनमशनम् ।

यावल्लघुत्वादशनं दद्यान्मांसरसेन तु ।
मांसार्थमेणलावादीन्युक्त्या दद्याद्विचक्षणः ॥ २३३
कुक्कुटांश्च मयूरांश्च तित्तिरिं क्रौञ्चमेव च ।
गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः॥२३४
लंघनेनानिलबलं ज्वरे यद्यधिकं भवेत् ।
भिषङ् मात्राविकल्पज्ञो दद्यात्तानपि कालवित्२३५

जब तक ज्वर तथा शरीर हल्का न हो, तब तक हल्का पथ्य मांसरसके साथ देना चाहिये । मांसके लिये एणमृग अथवा लवा देना चाहिये । ज्वरमें कुछ वैद्य कुक्कुट, मयूर, तीहर तथा कौञ्चको देना उष्ण तथा भारी होनके कारण अनुचित समझते हैं—पर लंघन करनेसे यदि वायुका वेग अधिक हो तो मात्रा व कालका निश्चयकर वैद्य उन्हें भी देवे ॥ २३३–२३५ ॥

पिप्पल्याद्यं घृतम् ।

पिप्पल्यश्चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुरोहिणी ।
कलिंगकास्तामलकी शारिवातिविषे स्थिरा ॥२३६
द्राक्षामलकबिल्वानि त्रायमाणा निदिग्धिका ।
सिद्धमेतैर्घृतं सद्यो ज्वरं जीर्णमपोहति ॥ २३७ ॥
क्षयं कासं शिरः शूलं पार्श्वशूलं हलीमकम् ।
अङ्गाभितापमग्निं च विषमं सन्नियच्छति ॥ २३८ ॥
पिप्पल्याद्यमिदं क्वापि तन्त्रे क्षीरेण पच्यते ।

पीपल छोटी, चंदन लाल,नागरमोथा, खश, कुटकी, इंद्रयव, भुइ आमला, शारिवा, अतीस, शालिपर्णी, मुनक्का, आमला, बेलका गूदा, त्रायमाण, छोटी कटेरी—इनके कल्कसे चतुर्गुण घृत और घृतसे चतुर्गुण जल मिलाकर सिद्ध किया घृत शीघ्र ही जीर्ण ज्वरको नष्ट करता है । तथा क्षय, कास, शिरःशूल, पार्श्वशूल, हलीमक, शरीरकी जलन तथा विषमाग्निको नष्ट करता है ।

---

१ सामान्यतः दश दिनके अनंतर घी पिलाना लिखा है । यह उसका निषेध है ।

१ यहां ' हलीमकम् ' के स्थानमें ' अरोचकम् ' भी पाठान्तर है । तथा यहांपर घृतका मान नहीं लिखा, अतः " अनिर्दिष्टप्रमाणानां स्नेहानां प्रस्थ इष्यते । अनुक्ते क्वाथमाने तु पात्रमेकं प्रशस्यते " इस सामान्यपरिभाषासे १ प्रस्थ घृत लेना चाहिये । अथवा मान निर्देश न करनेका यह भी अभिप्राय है कि जितने घृतसे लाभ होनेकी सम्भावना हो, उतना घृत बनावे । तथा यहां पर यद्यपि चक्रपाणिजीने तथा शिवदासजीने घृतमूर्छनके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा, पर सामान्य नियम यही है कि स्नेह मूर्छित करके ही पाक करना चाहिये । अतः घृतमूर्छनकी विधि नीचे लिखी जाती है " पथ्याधात्रीविभीतैर्जलधररजनीमातुलुङ्गद्रवैश्च द्रव्यैरेतैः समस्तैः पलकपरिमितैर्मंदमंदानलेन । आज्यप्रस्थं विफेनं परिपचनगतं मूर्छयेद्वैद्यवर्यस्तस्मादामोपदोषं हरति च सकलं वीर्यवत्सौख्यदायि ॥ (भैषज्यरत्नावली) ॥ छोटी हर्र, आमला, बहेड़ा, नागरमोथा, हल्दी प्रत्येक ४ तोलाका कल्क तथा बिजौरे नीम्बूका रस ४ तोला छोड़कर, घी १ प्रस्थ (द्रवद्वैगुण्यात् २ प्रस्थ बंगालका ४ सेर तथा ८० तोलेके सेरसे १ सेर ९ छ. ३ तो०) का मूर्छन करना चाहिये । मूर्छनके लिये पहिले घी गरम करना चाहिये, जब घी पककरके फेन रहित होजाय, तब उतार ठण्ढाकर उपरोक्त कल्कादि छोड़ना चाहिये, फिर घीसे चौगुना जल छोड़ पाक कर छान लेना चाहिये । तथा जहाँ केवल दूधसे ही घृत पाक लिखा है, वहां घृतसे चतुर्गुण जलभी छोड़ना चाहिये, तथा कल्क घृतसे अष्टमांश ही छोड़ना चाहिये । यथा शार्ङ्गधरः—" दुग्धे दध्नि रसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशकः । कल्कस्य सम्यक्पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् " किन्तु यह समग्र परिभाषायें प्रायः अनित्य हो जाती हैं, अतः व्यवस्था वैद्यको स्वयं विचारकर करनी चाहिये ।

यह " पिप्पल्यादि " चतुर्गुण दूध मिलाकर भी पकाना किसी किसी ग्रन्थमें लिखा है ॥ २३६-२३८ ॥-

यत्राधिकरणेनोक्तिर्गणे स्यात्स्नेहसंविधौ ॥ २३९ ॥
तत्रैव कल्कनिर्यूहाविष्येते स्नेहवेदिना ।
एतद्वाक्यबलेनैव कल्कसाध्यपरं घृतम् ॥ २४० ॥

स्नेह सिद्ध करनेके लिये जिस गणमें अधिकार अर्थात् निश्चय कर दिया गया है, वहीं कल्क तथा क्वाथ दोनों छोड़े जाते हैं, इस वाक्यके बलसे ही घृत कल्क साध्य माना जाता है ॥ २३९ ॥ २४० ॥

जलस्नेहौषधानां तु प्रमाणं यत्र नेरितम् ।
तत्र स्यादौषधात्स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ २४१ ॥

जहां पर जल औषध तथा स्नेहका प्रमाण नहीं बताया गया, वहां औषधसे चतुर्गुण स्नेह तथा स्नेहसे चतुर्गुण जल छोड़ना चाहिये । यहां ' जल ' द्रवमात्रका उपलक्षण है ॥ २४१ ॥

अनुक्ते द्रवकार्ये तु सर्वत्र सलिलं मतम् ।

जहां द्रव द्रव्यका निर्देश नहीं किया गया, वहां जल ही छोड़ना चाहिये ।

घृततैलगुडादींश्च नैकाहादवतारयेत् ॥ २४२ ॥
व्युषितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान्यतः ॥

घी, तैल तथा गुड़ आदि एक ही दिनमें नहीं पकाना चाहिये, क्योंकि वासी रक्खे गये (कई दिनमें पकाये गये) विशेष गुण करते हैं ॥ २४२ ॥-

सिद्धस्नेहपरीक्षा ।

स्नेहकल्को यदाङ्गुल्या वर्तितो वर्तिवद्भवेत् ।
वह्नौ क्षिप्ते च नो शब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ २४३ ॥
शब्दस्योपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा ।
गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥ २४४ ॥
(घृतस्यैवं विपक्वस्य जानीयात्कुशलो भिषक् ।
फेनातिमात्रं तैलस्य शेषं घृतवदादिशेत् ॥ १ ॥)

जिस समय अंगुलीसे रगड़नेसे स्नेह कल्ककी वत्ती बनने लगे तथा अग्निमें छोड़नेसे शब्द न हो तथा स्नेहमें शब्द न हो और फेना शान्त होगया हो तथा गन्ध, वर्ण और रस उत्तम हो गया हो, उस समय घृत सिद्ध जानना चाहिये । इसी प्रकार तैल सिद्ध जानना चाहिये । पर तैलमें सिद्ध हो जानेपर फेना अधिक उठता है, शेष लक्षण सिद्ध घृतके समान होते हैं ॥ २४३ ॥ २४४ ॥

१ क्वचित्पुस्तके कोष्ठान्तर्गतः पाठो न दृश्यते ।

क्षीरषट्पलकं घृतम् ।

पञ्चकोलैः ससिन्धूत्थैः पलिकैः पयसा समम् ।
सर्पिःप्रस्थं शृतं प्लीहविषमज्वरगुल्मनुत् ॥ २४५ ॥
अत्र द्रवान्तरानुक्तेः क्षीरमेव चतुर्गुणम् ।
द्रवान्तरेण योगे हि क्षीरं स्नेहसमं भवेत् ॥ २४६ ॥

पञ्चकोल (छोटी पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीतकी जड़, सोंठ) तथा सेंधानमक प्रत्येक एक एक पल, घृत एक प्रस्थ दूध ४ प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये । घृतमात्र शेष रहनेपर उतार छानकर पिलाना चाहिये । यह घृत प्लीहा, विषमज्वर तथा गुल्मको नष्ट करता है । यहां दूसरे द्रव द्रव्यके न कहनेसे दूध ही चतुर्गुण छोड़ना चाहिये । तथा स्नेहके लिये चतुर्गुण जल भी छोड़ना चाहिये । जहां पर दूसरे द्रव द्रव्यका वर्णन हो, वहां दूध स्नेहके समान ही लेना चाहिये ॥ २४५ ॥ २४६ ॥

दशमूलषट्पलकं घृतम् ।

दशमूलीरसे सर्पिः सक्षीरे पञ्चकोलकैः ॥ २४७ ॥
सक्षारैर्हन्ति तत्सिद्धं ज्वरकासाग्निमन्दताः ।
वातपित्तकफव्याधीन्प्लीहानं चापि पाण्डुताम् ॥ २४८ ॥

दूध तथा दशमूलके क्वाथमें पञ्चकोल तथा यवाखारके साथ सिद्ध किया घृत ज्वर, कास, अग्निमान्द्य, वातकफ, पित्त-रोग, पांडुरोग तथा प्लीहाको नष्ट करता है ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

स्नेहे क्वाथ्यादिनियामिका परिभाषा ।

क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम् ।
स्नेहात्स्नेहसमं क्षीरं कल्कस्तु स्नेहपादिकः ॥ २४९ ॥
चतुर्गुणं त्वष्टगुणं द्रवद्वैगुण्यतो भवेत् ।
पञ्चप्रभृति यत्र स्युर्द्रवाणि स्नेहसंविधौ ॥ २५० ॥
तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक् च स्याच्चतुर्गुणम् ।

क्वाथ्यद्रव्यसे चतुर्गुण जल छोड़कर क्वाथ बनाना, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान क्वाथसे चतुर्थांश घृत मिलाकर पकाना चाहिये । स्नेहमें दूध स्नेहके बराबर छोड़ना चाहिये । कल्क स्नेहसे चतुर्थांश छोड़ना चाहिये । द्रवद्वैगुण्यके सिद्धान्तसे चतुर्गुण अष्टगुण होता है ।

१ पूर्वोक्त परिभाषानुसार सुश्रुतमानसे पल वर्तमान मानके ३ तोला ४ माशेके बराबर, उसी प्रकार प्रस्थ वर्तमान १० छ. ३ तोला ४ माशेके बराबर होता है और चरकमानसे पल ६ तोला ८ माशाका, तदनुसार प्रस्थ १ सेर ५ छ. १ तोला ८ माशेका होता है । और द्रवद्रव्य होनेसे द्विगुण कर दिया जाता है ।

जहांपर स्नेहविधानमें पञ्चप्रभृति (पांच या इससे अधिक) द्रव द्रव्य हों, वहां प्रत्येक स्नेहके समान छोड़ना चाहिये । इससे कम अर्थात् चार या तीन आदि हों तो स्नेहसे चतुर्गुणा छोड़ना चाहिये ॥ २४९ ॥ २५० ॥

वासाद्यं घृतम् ।

वासां गुडुचीं त्रिफलां त्रायमाणां यवासकम् ।
पक्त्वा तेन कषायेण पयसा द्विगुणेन च ॥ २५१ ॥
पिप्पलीमूलमृद्वीकाचन्दनोत्पलनागरैः ।
कल्कीकृतैश्च विपचेद् घृतं जीर्णज्वरापहम् ॥२५२॥

अडूसा, गुर्च, त्रिफला, त्रायमाण, यवासा-इनका क्वाथ स्नेहसे चतुर्गुण, दूध द्विगुणा तथा घृत १ भाग तथा घृतसे चतुर्थांश नीचे लिखी ओषधियोंका कल्क बना छोड़कर पाक करना चाहिये । कल्ककी ओषधियां-पिपरामूल, मुनक्का, लाल चन्दन, नीलोफर व सोंठ है । यह घृत जीर्णज्वरको नष्ट करता है ॥ २५१ ॥ २५२ ॥

गुडूच्यादिघृतपञ्चकम् ।

गुडूच्याः क्वाथकल्काभ्यां त्रिफलाया वृषस्य च ।
मृद्वीकाया बलायाश्च सिद्धाः स्नेहा ज्वरच्छिदः ॥२५३॥

पृथक् २ गुर्च, त्रिफला, अडूसा, मुनक्का अथवा वरियारीके क्वाथ कल्कसे सिद्ध घृत ज्वर नाशक होते हैं ॥ २५३ ॥

पेयादिदानसमयः ।

ज्वरे पेयाः कषायाश्च सर्पिः क्षीरं विरेचनम् ।
षडहे षडहे देयं कालं वीक्ष्यामयस्य च ॥ २५४ ॥

ज्वरमें पेया[1] (लंघन या यवागू) क्वाथ, घृत, दूध, विरेचन छः छः दिनके अनन्तर देना चाहिये तथा रोगका काल देखकर विशेष व्यवस्था करनी चाहिये ॥ २५४ ॥

क्षीरदानसमयः ।

जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम् ।
तदेव तरुणे पीतं विषवद्धान्ति मानवम् ॥ २५५ ॥

जीर्णज्वरमें कफके क्षीण होजानेपर दूध अमृतके तुल्य गुणदायक होता है, वही तरुणज्वरमें विषके तुल्य मारक हो जाता है ॥ २५५ ॥

पञ्चमूलीपयः ।

कासाच्छ्वासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलात्सपीनसात् ।
मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीशृतं पयः ॥ २५६ ॥

पञ्चमूल (लघु) से सिद्ध किये हुए दूधके पीनेसे कास, श्वास, शिरःशूल, पार्श्वशूल तथा पुराने ज्वरसे मनुष्य मुक्त हो जाता है ॥ २५६ ॥

क्षीरपाकविधिः ।

द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम् ।
क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥२५७॥

---

१ इस परिभाषामें अनेक सन्देह तथा मतभेद हैं । यदि प्रत्येक स्थानमें "चतुर्गुणं त्वष्टगुणम्" परिभाषा लगे तो क्वाथ्यद्रव्यसे जल भी अष्ट गुण ही छोडना पड़ेगा, तथा "पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम्" इसमें स्नेह तथा द्रव दोनों ही द्रव द्रव्य होनेसे कोई विशेषता न होगी, पर क्वाथ्य स्नेहसे आधा पड़ेगा । पर यह द्रवद्वैगुण्यकी परिभाषा कुड़वके अनन्तर ही लगेगी, पहले नहीं । यथा-"आर्द्राणां च द्रवाणां च द्विगुणाः कुड़वादयः" इस सिद्धान्तसे कुड़व आदि शब्दके प्रयोगसे जहां मानका वर्णन होगा, वहीं द्विगुण लिया जायगा, पर कहीं इन शब्दोंका प्रयोग न होनेपर भी विवक्षा कर द्विगुण लेते हैं । इसी प्रकार पञ्चप्रभृति भी अनेक विमतोंसे पूर्ण हैं । कुछ वैद्योंका सिद्धान्त है कि जहां पांच या पांचसे अधिक द्रव द्रव्य हों, वहां प्रत्येक स्नेहके समान लेना चाहिये और जहां पांचसे कम हों, वहां सब मिलकर स्नेहके चतुर्गुण लेना चाहिये । कुछका सिद्धान्त है कि पांचसे पूर्व द्रव्यद्रव्योंमें प्रत्येक स्नेहसे चतुर्गुण और पांचसे प्रत्येक स्नेहके समान लेना चाहिये । क्योंकि यदि पूर्वके मिलकर चतुर्गुण लिये जाते, तो जहां चार द्रव द्रव्य होते, वहां प्रत्येक स्नेहके समान लेनेसे स्नेहसे चतुर्गुण होही जाते, फिर पञ्चप्रभृति लिखना व्यर्थ ही है, चतुष्प्रभृति ही लिखना चाहिये । पर कुछ आचार्योंने इसी से "चतुष्प्रभृति यत्र स्युर्द्रवाणि स्नेहसंविधौ" यही निश्चित पाठ माना है । मेरे विचारसे तो पाठपरिवर्तनसे भी यह विषय स्पष्ट नहीं हो जाता । क्योंकि मिलकर चतुर्गुण हो, यह अर्थ किसी शब्दसे या भावसे नहीं आता । प्रत्युत 'स्नेहसमानि' से प्रत्येकका आकर्षण करना ही पड़ेगा । अन्यथा वहां भी मिलित ही स्नेहके समान लिये जायँगे, पर यह किसीको अभीष्ट नहीं हैं, अतः वह प्रत्येक अर्वाक्के साथ भी अन्वित होगा, इस प्रकार पांचसे कममें जहां विशेष विधि निषेध न हों, वहां प्रत्येक चतुर्गुण पांच तथा पांचसे अधिक द्रवद्रव्योंमें प्रत्येक स्नेहके समान लेना चाहिये । इस विषयमें और भी लिखा जा सकता है. पर विस्तार करना अभीष्ट नहीं । बुद्धिमानोंको स्वयं निर्णय करना चाहिये ।

[1] 'पेया' शब्द लंघनादिका उपलक्षण है । जिन ज्वरों (वातादिजन्य) में लंघनका निषेध है, उनमें पेया आदि तथा शेष में ६ दिन लंघन कराकर सातवें दिन हलका पथ्य दे । ज्वरको निराम समझकर आठवें दिन क्वाथ पिलाना चाहिये । निरामता विशेषतया आठवें दिन ही होती है । अतः उसी दिन क्वाथ पिलाना उचित है ।

औषधसे अष्टगुण दूध तथा दूधसे चतुर्गुण जल मिलाकर पकाना चाहिये । दूधमात्र शेष रहनेपर उतार लेना चाहिये । यही क्षीरपाककी विधि है ॥ २५७ ॥

त्रिकण्टकादिक्षीरम् ।

त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीगुडनागरसाधितम् ।
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं शोफज्वरहरं पयः ॥ २५८ ॥

गोखुरू, खरेटी, कटेरी, गुड़ तथा सोंठसे सिद्ध किया दूध मलमूत्रकी रुकावट, सूजन तथा ज्वरको नष्ट करता है ॥ २५८ ॥

वृश्चीराद्यं क्षीरम् ।

वृश्चीरविश्ववर्षाभूः पयश्चोदकमेव च ।
पचेत्क्षीरावशिष्टं तु तद्धि सर्वज्वरापहम् ॥ २५९ ॥

श्वेत पुनर्नवा, सोंठ, लाल पुनर्नवा, दूध और जल मिलाकर पकाना चाहिये । दूधमात्र शेष रह जानेपर उतार कर पिलाना चाहिये । यह समस्त ज्वरको नष्ट करता है ॥ २५९ ॥

क्षीरविनिश्चयः ।

शीतं कोष्णं ज्वरे क्षीरं यथास्वैरौषधैर्युतम् ।
एरण्डमूलसिद्धं वा ज्वरे सपरिकर्तिके ॥ २६० ॥

ज्वरमें जैसा दोष (वात या पित्त) हो, उसके अनुसार ओषधियों द्वारा सिद्ध कर पित्तमें शीत तथा वातमें कोष्ण दूधका प्रयोग करना चाहिये । और यदि गुदामें कर्तनके समान पीड़ा होती हो, तो एरण्डकी छालसे सिद्ध कर दूध पीना चाहिये ॥ २६० ॥

संशोधननिश्चयः ।

ज्वरिभ्यो बहुदोषेभ्य ऊर्ध्वं चाधश्च बुद्धिमान् ।
दद्यात्संशोधनं काले कल्पे यदुपदेक्ष्यते ॥ २६१ ॥

अधिक दोषयुक्त ज्वरवालोंके लिये संशोधनयोग्य कालमें ऊर्ध्वमार्ग तथा अधोमार्गसे संशोधन (वमन विरेचन) करना चाहिये जो कि कल्पस्थानमें कहेंगे ॥ २६१ ॥

वमनम् ।

मदनं पिप्पलीभिर्वा कलिङ्गैर्मधुकेन वा ।
युक्तमुष्णाम्बुना पीतं वमनं ज्वरशान्तये ॥२६२॥

मैनफल, छोटी पीपल, इन्द्रयव, अथवा मौरेठीके महीन चूर्णके साथ गरम जल मिलाकर पिलानेसे वमन होकर ज्वर शान्त होता है ॥ २६२ ॥

विरेचनम् ।

आरग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा ।
त्रिवृतां त्रायमाणांवा पयसा ज्वरितः पिबेत् ॥२६३

अमलतासका गूदा दूधके अथवा अङ्गूरके रसके साथ अथवा निसोथ व त्राणमाण दूधके साथ ज्वरवालेको पीना चाहिये, इससे हलका रेचन होगा ॥ २६३ ॥

संशोधननिषेधः ।

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं न विरेचनम् ।
कामं तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान् ॥२६४

ज्वरसे जो रोगी क्षीण हो रहा हो, उसको वमन अथवा विरेचन न करना चाहिये । किन्तु दूध पिलाकर अथवा निरूहण वस्ति देकर उसका मल निकालना चाहिये ॥ २६४ ॥

वस्तिविधानम् ।

प्रयोजयेज्ज्वरहरान्निरूहान्सानुवासनान् ।
पक्वाशयगते दोषे वक्ष्यन्ते ये च सिद्धिषु ॥२६५॥

दोष यदि पक्वाशयमें स्थित हों, तो सिद्धिस्थानमें जो निरूहण तथा अनुवासन वस्तियां बतायी गयी हैं, उनका प्रयोग करना चाहिये ॥ २६५ ॥

विरेचननस्यम् ।

गौरवे शिरसः शूले विबद्धेष्विन्द्रियेषु च ।
जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ २६६ ॥

शिरके भारीपन तथा दर्दमें तथा इन्द्रियोंके अपने विषय ग्रहण करनेमें असमर्थ होनेपर जीर्ण ज्वरमें शिरोविरेचन (नस्य) देना चाहिये, इससे इन्द्रियोंको अपने विषय ग्रहणकी रुचि उत्पन्न होती है ॥ २६६ ॥

अभ्यङ्गादिविभागः ।

अभ्यङ्गांश्च प्रदेहांश्च सस्नेहान्सानुवासनान् ।
विभज्य शीतोष्णकृतान्दद्याज्जीर्णज्वरे भिषक् २६७
तैराशु प्रशमं याति बहिर्मार्गगतो ज्वरः ।
लभन्ते सुखमङ्गानि बलं वर्णश्च वर्धते ॥ २६८ ॥

स्नेहके सहित अभ्यङ्ग (मालिश), लेप अथवा अनुवासन वस्ति शीत अथवा उष्ण पदार्थोंसे जैसी आवश्यकता हो, देना चाहिये । शीतजन्य ज्वरमें उष्ण तथा उष्णजन्य ज्वरमें शीत

---

१ क्षीरपाकमें औषध महीन पीस पानी मिला छान दूधमें मिलाकर पकाना चाहिये ।

१ " शीतेनोष्णकृतान्रोगाञ्छमयन्ति भिषग्विदः ।
ये च शीतकृता रोगास्तेषामुष्णं भिषग्जितम् " ॥
अर्थात् वैद्यजन शीतद्वारा उष्णजन्य रोगोंका शमन करते हैं और शीतजन्य रोगोंके शमनकी उष्ण ओषधि है ।

प्रयोग करना चाहिये । अभ्यङ्गादिसे त्वचामें प्राप्त ज्वर नष्ट हो जाता है, शरीरको सुख मिलता है, बल तथा वर्ण उत्तम होता है ॥ २६७ ॥ २६८ ॥

षट्कट्वरतैलम् ।

सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वा-
लाक्षानिशालोहितयष्टिकाभिः ।
तैलं ज्वरे षड्गुणकट्वरसिद्ध-
मभ्यञ्जनाच्छीतविदाहनुत्स्यात् ॥
दध्नः ससारकस्यात्र तक्रं कट्वरमिष्यते ।
घृतवत्तैलपाकोऽपि तैले फेनोऽधिकः परः ॥२७०॥

सज्जीखार, सोंठ, कूठ, मूर्वा, लाख, हलदी तथा मंजीठ कल्कसे चतुर्गुण तिलैंका तैल तथा तैलसे षड्गुण मट्ठा मिलाकर पकाया गया तैल शीत तथा जलनको नष्ट करता है । मक्खनके साहित मथे गये दधिको ही ' कट्वर ' कहते हैं । घीके समान ही तैलका भी पाक होता है । पर घीके पक जानेपर फेना नष्ट हो जाता है और तैलके पक जानेपर फेना उत्पन्न हो जाता है ॥ २६९ ॥ २७० ॥

---

१ यहां पर तिलतैलकी मूर्च्छा विधि भी नहीं लिखी है, अतः प्रतीत होता है कि श्रीमान् चक्रपाणिको मूर्छनकी आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई, अतएव उसके अनुयायी श्रीयुत शिवदासजीने भी अपनी तत्त्वचन्द्रिका नामक टीकामें नहीं किया । पर आजकल वङ्गदेशीय वैद्य विशेषकर मूर्च्छनकी आवश्यकता समझते हैं, अतः तिलतैलमूर्छा लिखी जाती है—" कृत्वा तैलं कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानलैस्तत्, तैलं निष्फेनभावं गतमिह च यदा शैत्ययुक्तं तदैव । मञ्जिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरनलिकैः सामलैः साक्षपथ्यैः, सूचीपत्राभिधैरुपहितमथितैर्गन्धयोगं जहाति ॥ १ ॥ तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपि मूर्छाविधौ, ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीह्रीबेरलोध्रान्विताः । सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याश्च पादांशिका, दुर्गन्धं विनिहत्य तैलमरुणं सौरभ्यमाकुर्वते ॥ २ ॥ " तिलतैलको कड़ाहीमें छोड़कर मन्द आंचपर उस समयतक पकावे, जबतक कि फेन जाता है । फिर उसे ठण्डा कर प्रथम तैलसे षोडशांश १⁄१६ मजीठका कल्क छोड़ना चाहिये । फिर अन्य त्रिफला, नागरमोथा, हलदी, सुगन्धबाला, लोध्र, केवड़ेकी जड़, वटजटा तथा नाड़ीशाक प्रत्येक मजीठसे चतुर्थांश ले कल्क कर छोड़ना चाहिये । फिर तैलसे चतुर्गुण जल छोड़ पकाकर छान लेना चाहिये । इस प्रकार मूर्छा कर लेनेसे तैलकी दुर्गन्ध मिट जाती और सुगन्ध आ जाती तथा तैल ईषद्रक्त वर्ण हो जाता है ।

अंगारकतैलम् ।

मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवारुणी ।
बृहती सैन्धवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी ॥२७१॥
आरनालाढकेनैव तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
तैलमंगारकं नाम सर्वज्वरविमोक्षणम् ॥ २७२ ॥

मूर्वा, लाख, हलदी, दारुहलदी, मजीठ, इन्द्रायण, बड़ी कटेरी, सेंधानमक, कूठ, रासन, जटामांसी तथा शतावरीका कल्क १ कुड़व, तिलतैल १ प्रस्थ, कांजी १ आढक मिलाकर पकाना चाहिये । तैलमात्र शेष रहनेपर उतार छान मालिश करनेसे ज्वर नष्ट होता है ॥ २७१ ॥ २७२ ॥

लाक्षादितैलम् ।

लाक्षाहरिद्रामञ्जिष्ठाकल्कैस्तैलं विपाचयेत् ।
षड्गुणेनारनालेन दाहशीतज्वरापहम् ॥ २७३ ॥

लाख, हल्दी व मजीठका कल्क उससे चतुर्गुण तिलतैल और उससे षड्गुण काञ्जी मिलाकर पकाना चाहिये । यह तैल मालिश करनेसे जलन तथा शीतसहित ज्वरको नष्ट करता है ॥ २७३ ॥

यवचूर्णादितैलम् ।

यवचूर्णार्धकुडवं मञ्जिष्ठार्धपलेन तु ।
तैलप्रस्थः शतगुणे काञ्जिके साधितो जयेत् ॥२७४
ज्वरं दाहं महावेगमंगानां च प्रहर्षणुत् ॥

यवका चूर्ण ८ तोला, मजीठ २ तोला, तैल १ प्रस्थ (१ सेर ९ छ० ३ तो०) कांजी १०० प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये । तैल मात्र शेष रहनेपर उतार छानकर रखना चाहिये । यह तैल महावेगयुक्त ज्वर, दाह तथा शीत दोनोंको नष्ट करता है ॥२७४॥

सर्जादितैलम् ।

सर्जकाञ्जिकसंसिद्धं तैलं शीताम्बुमर्दितम् ॥ २७५ ॥
ज्वरदाहापहं लेपात्सद्योवातास्रदाहनुत् ॥

राल तथा काञ्जीसे सिद्ध किया गया तैल ठण्डे जलमें मर्दन कर लेप करनेसे तत्काल ज्वरके दाह तथा वातरक्तके दाहको नष्ट करता है ॥ २७५ ॥–

तैलान्तरम् ।

चन्दनाद्यमगुर्वाद्यं तैलं चरककीर्तितम् ॥ २७६ ॥
तथा नारायणं तैलं जीर्णज्वरहरं परम् ॥

चन्दनादितैल, अगुर्वाद्यतैल तथा नारायणतैलका प्रयोग जीर्णज्वरनाशनार्थ करना चाहिये ॥ २७६ ॥–

आगन्तुकज्वरचिकित्सा ।

अभिघातज्वरो न स्यात्पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः ॥२७७॥

वांके पीने तथा मालिश करनेसे अभिघात ज्वर नहीं रहता ॥ २७७ ॥

क्षतानां व्रणितानां च क्षतव्रणचिकित्सया ।
ओषधीगन्धविषजौ विषपीतप्रबाधनैः ॥ २७८ ॥
जयेत्कषायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतैस्तथा ।

जिनके क्षत (आगन्तुक व्रण) अथवा व्रण (शारीर) हो गया हो, उनकी क्षतव्रणकी चिकित्सा करनी चाहिये । ओषधिगन्धजन्य तथा विषजन्य ज्वर में विषपीतके लिये जो क्वाथ बताये गये हैं, उनका प्रयोग करना चाहिये । तथा सर्वगन्ध द्रव्योंका क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये ॥ २७८ ॥-

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिना जयेत् ७९
दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ।

अभिचार (मारणक्रिया-श्येनयागादि) तथा अभिशाप (क्रुद्ध महर्षिके अनिष्ट वचन) तथा अशुभ वज्रादिपात अथवा ग्रहकी पीड़ासे उत्पन्न ज्वरको होम बलि, मङ्गल दान, स्वस्तिवाचन, अतिथिपूजन आदिसे जीतना चाहिये ॥ २७९ ॥

क्रोधकामादिज्वरचिकित्सा ।

क्रोधजे पित्तजित्काम्या अर्थाः सद्वाक्यमेव च२८०
आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ।
हर्षणैश्च शमं यान्ति कामक्रोधभयज्वराः ॥ २८१॥
कामात्क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात्कामसमुद्भवः ।
याति ताभ्यामुभाभ्यां च भयशोकसमुद्भवः २८२॥

क्रोधजन्य ज्वरमें पित्त शान्त करनेवाली चिकित्सा, इष्ट विषयोंकी प्राप्ति तथा मनोहर वार्तालाप लाभदायक होता है । काम, क्रोध तथा भयसे उत्पन्न ज्वर आश्वासन, इष्ट विषयोंकी प्राप्ति तथा प्रसन्नताकारक उपायोंसे शान्त होते हैं । कामसे क्रोधज्वर, क्रोधसे कामज्वर और उन दोनोंसे भय-शोकजन्य ज्वर शान्त हो जाता है ॥ २८० ॥ २८१ ॥ २८२ ॥

भूतज्वरचिकित्सा ।

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः ।
जयेद् भूताभिषंगोत्थं मनःसान्त्वैश्च मानसम् २८३

भूतविद्यामें (सुश्रुत-उत्तर तन्त्रमें) बताये बन्ध आवेशन, ताड़न आदिसे भूतज्वरको शान्त करना चाहिये । तथा मानसिक भयशोकादिजन्य ज्वरको मनको प्रसन्न करनेवाले उपायों तथा धीधैर्यात्मादिविज्ञानसे जीतना चाहिये ॥ २८३ ॥

ज्वरमुक्ते वर्ज्यानि ।

व्यायामं च व्यवायं च स्नानं चंक्रमणानि च ।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो बलवान्भवेत् ॥२८४॥

जब तक बलवान् न हो जाय, ज्वरमुक्त हो जानेपर भी कसरत, मैथुन व स्नान न करे, तथा विशेष टहले नहीं ॥२८४॥

विगतज्वरलक्षणम् ।

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः
पाको मुखे करणसौष्टवमव्यथत्वम् ।
स्वेदः क्षवः प्रकृतिगामिमनोऽन्नलिप्सा
कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥२८५॥

शरीर हलका हो जावे, ग्लानि, मूर्च्छा, तथा जलन शान्त हो जावें, मुखमें दाने पड़कर पक जावें, इन्द्रियां अपने अपने विषयोंको ग्रहण करनेमें समर्थ हों । किसी प्रकारकी पीड़ा न हो, पसीना तथा छींकें आती हो, मन प्रसन्न हो, भोजनमें रुचि हो तथा मस्तकमें खुजली होना-यह ज्वर मुक्त के लक्षण हैं ॥२८५॥

इति ज्वराधिकारः समाप्तः ।

अथ ज्वरातिसाराधिकारः ।

ज्वरातिसारे चिकित्सा ।

ज्वरातिसारे पेयादिक्रमः स्याल्लङ्घिते हितः ।
ज्वरातिसारी पेयां वा पिबेत्साम्लां शृतां नरः॥१॥
पृश्निपर्णीबलाबिल्वनागरोत्पलधान्यकैः ।

ज्वरातिसारमें लंघन करनेके अनन्तर पेया विलेपी आदिका क्रमशः सेवन करना हितकर होता है । तथा ज्वरातिसारवालेको

---

१ सर्वगन्धसे " चातुर्जातककर्पूरकक्कोलागुरुशिह्लकम् । लवङ्गसहितं चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् "

यह निघण्टूक्त गण न लेना चाहिये । किन्तु सुश्रुतोक्त -एलादि गण ही लेना चाहिये । क्योंकि यह गण बहिःपरिमार्जनार्थ उद्वर्तनादिके लिये ही है । सुश्रुतोक्त एलादिः-एला (एलायची) तगर, कुष्ठ (कूठ) मांसी (जटामांसी) ध्यामक (रौहिषतृण) त्वक् (दालचीनी) पत्र (तेज-पात) नागपुष्प (नागकेशर) प्रियंगु (गुजराती घेड़ला) हरेणुका (सम्भालूके, बीज) व्याघ्रनख (नखभेदः) शुक्ति (बदरपत्राकारा) चण्डा (चोरपुष्पी) स्थौणेयक (ग्रन्थिपर्ण) श्रीवेष्टक (गन्धाविरोजा) चोच (कल्मीतज) चोरक (चोरपुष्पीभेद) वालक (सुगन्धवाला) गुग्गुलु,सर्जरस (राल) तुरुष्क (शिलारस) कुन्दुरुक (कुन्दुरु खोटी बंगाली) स्पृक्का (मालतीपुष्प) अगर, उशीर (खश) भद्रदारु (देवदारु) पुन्नागकेशर (पुन्नागः पार्वतीयो वृक्षविशेषस्तत्केशरम्)। ' एलादिको वातकफो निहन्याद्विषमेव च । वर्णप्रसादनः कण्डूपिडिकाकोठनाशनः " इति ।

पिठिवन, खरेटी, वेलका गूदा, सोंठ, नीलोफर और धनियांके जलसे सिद्ध की हुई पेया अनार तथा निम्बूके रससे खट्टी कर पिलानी चाहिये ॥ १ ॥

पाठादिक्काथः ।

पाठेन्द्रयवभूनिम्बमुस्तपर्पटकामृताः ।
जयन्त्याममतीसारं सज्वरं समहौषधाः ॥ २ ॥

पाढ़ी, इन्द्रयव, चिरायता, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, गुर्च तथा सोंठका क्काथ ज्वरसहित आमातिसारको शान्त करता है ॥ २ ॥

नागरादिक्वाथः ।

नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः ।
सर्वज्वरहरः क्वाथः सर्वातीसारनाशनः ॥ ३ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, चिरायता, गुर्च तथा करैयाकी छालसे बनाया गया क्काथ सर्वज्वर तथा सर्वातिसारको नष्ट करता है ॥ ३ ॥

ह्रीबेरादिक्वाथः ।

ह्रीबेरातिविषामुस्तबिल्वधान्यकनागरैः ।
पिबेत्पिच्छाविबन्धघ्नं शूलदोषामपाचनम् ॥ ४ ॥
सरक्तं हन्त्यतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ ५ ॥

सुगन्धवाला, अतीस, नागरमोथा, बेलका गूदा, धनियां तथा सोंठसे सिद्ध किया क्काथ लासेदार मरोड़से तथा रक्तयुक्त दस्तोंके सहित ज्वरको नष्ट करता, शूलको नष्ट करता और दोष तथा आमका पाचन करता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

गुडूच्यादिक्वाथः ।

गुडूच्यतिविषाधान्यशुण्ठीबिल्वाब्दवालकैः ।
पाठाभूनिम्बकुटजचन्दनोशीरपद्मकैः ॥ ६ ॥
कषायः शीतलः पेयो ज्वरातीसारशान्तये ।
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥ ७ ॥

गुर्च, अतीस, धनियां, सोंठ, बेलका गूदा, नागरमोथा, सुगन्धवाला, पाढ़, चिरायता, कुरैयाकी छाल, लाल चन्दन, खश तथा पद्माखका क्काथ ठण्ढा कर, ज्वरातीसार, मिचलाई, अरुचि, वमन, प्यास और जलन शान्त करनेके लिये पीना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

उशीरादिक्वाथः ।

उशीरं वालकं मुस्तं धन्याकं विश्वभेषजम् ।
समंगा धातकी लोध्रं बिल्वं दीपनपाचनम् ॥ ८ ॥
हन्त्यरोचकपिच्छामं विबन्धं सातिवेदनम् ।
सशोणितमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ ९ ॥

खश, सुगन्धवाला, नागरमोथा, धनियां, सोंठ, लजावन्तीके बीज, धायके फूल, पठानीलोध, बेलका गूदा—इनका क्काथ अग्निको दीप्त तथा आमका पाचन करता है । अरुचि, लासेदार दस्तोंका आना, आम, विबन्ध, अधिक पीड़ा तथा रक्तके दस्तोंको "जो कि ज्वरके साथ अथवा ज्वरके विना हों," उन्हें नष्ट करता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

पञ्चमूल्यादिक्वाथः ।

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः ।
पाठाभूनिम्बह्रीबेरकुटजत्वक्फलैः शृतम् ॥ १० ॥
हन्ति सर्वानतीसाराञ्ज्वरदोषं वमिं तथा ।
सशूलोपद्रवं श्वासं कासं हन्यात्सुदारुणम् ॥ ११ ॥

लघुपञ्चमूल, खरेटी, बेलका गूदा, गुर्च, नागरमोथा, सोंठ, पाढ़, चिरायता, सुगन्धवाला, इन्द्रयव, तथा कुड़ेकी छालसे सिद्ध किया क्काथ—समस्त अतीसार, ज्वरदोष, वमन, शूल, श्वास तथा कठिन कासको नष्ट करता है ॥ १० ॥ ११ ॥

कलिंगादिक्वाथः ।

कलिंगातिविषाशुण्ठीकिराताम्बुयवासकम् ।
ज्वरातिसारसन्तापं नाशयेदविकल्पतः ॥ १२ ॥

इन्द्रयव, अतीस, सोंठ, चिरायता, सुगन्धवाला तथा यवासाका क्काथ ज्वरातिसार और सन्तापको निःसन्देह नष्ट करता है ॥ १२ ॥

वत्सकादिक्वाथः ।

वत्सकस्य फलं दारु रोहिणी गजपिप्पली ।
श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यवानिका ॥ १३ ॥
द्वावप्येतौ सिद्धयोगौ श्लोकार्द्धेनाभिभाषितौ ।
ज्वरातीसारशमनौ विशेषाद्दाहनाशनौ ॥ १४ ॥

इन्द्रयव, देवदारु, कुटकी, गजपीपल अथवा गोखरू, छोटी पीपल, धनियां, बेलका गूदा, पाढ़, अजवाइन ये आधे आधे श्लोकमें कहे गये दोनों योग ज्वरातिसार तथा दाहको नष्ट करते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

नागरादिक्वाथः ।

नागरामृतभूनिम्बबिल्ववालकवत्सकैः ।
समुस्तातिविषोशीरैर्ज्वरातीसारहृज्जलम् ॥ १५ ॥

सोंठ, गुर्च, चिरायता, बेलका गूदा, सुगन्धवाला, कुड़ेकी छाल, नागरमोथा, अतीस तथा खशका क्काथ—ज्वरातीसारको नष्ट करता है ॥ १५ ॥

मुस्तकादिक्वाथः ।

मुस्तकबिल्वातिविषापाठाभूनिम्बवत्सकैः क्वाथः ।
मकरन्दगर्भयुक्तो ज्वरातिसारौ जयेद्घोरौ ॥ १६ ॥

नागरमोथा, बेलका गूदा, अतीस, पाढ़, चिरायता तथा कुड़ेकी छालका क्वाथ ठण्डा कर शहद मिला पिलानेसे घोर ज्वर तथा अतिसारको नष्ट करता है ॥ १६ ॥

घनादिक्वाथः ।

घनजलपाठातिविषापथ्योत्पलधान्यरोहिणीविश्वैः ।
सेन्द्रयवैः कृतमम्भःसातीसारं ज्वरं जयति ॥१७॥

नागरमोथा, सुगन्धवाला, पाढ़, अतीस, छोटी हर्र, नीलोफर, धनियां, कुटकी, सोंठ तथा इन्द्रयवका क्वाथ ज्वरातिसारको नष्ट करता है ॥ १७ ॥

कलिङ्गादिगुटिका ।

कलिंगाबिल्वजम्ब्वाम्रकपित्थं सरसाञ्जनम् ।
लाक्षाहरिद्रे ह्रीवेरं कट्फलं शुकनासिकाम् ॥१८॥
लोध्रं मोचरसं शंखं धातकीं वटशुङ्गकम् ।
पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसम्मितान् ॥१९॥
छायाशुष्कान्पिबेच्छीघ्रं ज्वरातीसारशान्तये ।
रक्तप्रसादनाश्चैते शूलातीसारनाशनाः ॥२० ॥

इन्द्रयव, बेलका गूदा, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, कैथेका गूदा, रसौत, लाख, हलदी, दारुहल्दी, सुगन्धवाला, कैफरा, सोना पाठाकी छाल, पठानी लोध, मोचरस, शंखकी भस्म, धायके फूल, बरगदके नवीन पत्ते–सब समान भाग ले महीन पीस चावलके धोवनमें घोट एक तोलेकी गोली बनाकर चावलके धोवनके साथ ही खिलाना चाहिये । इन गोलियोंसे ज्वरातिसार, शूलयुक्त अतीसार तथा रक्त विकार नष्ट होते हैं ॥ १८–२० ॥

उत्पलादिचूर्णम् ।

उत्पलं दाडिमत्वक् च पद्मकेशरमेव च ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन ज्वरातीसारनाशनम् ॥ २१ ॥

नीलोफर, अनारके फलका छिलका, कमलका केशर इनका चूर्ण बना तण्डुलोदकके साथ ज्वरातिसारकी शान्तिके लिये पीना चाहिये ॥ २१ ॥

व्योषादिचूर्णम् ।

व्योषं वत्सकबीजं च निम्बभूनिम्बमार्कवम् ।
चित्रकं रोहिणीं पाठां दार्वीमतिविषां समाम् ॥२२॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतान्सर्वांस्तत्तुल्यां वत्सकत्वचम् ।
सर्वमेकत्र संयोज्य प्रपिबेत्तण्डुलाम्बुना ॥ २३ ॥
सक्षौद्रं वा लिहेदेतत्पाचनं ग्राहि भेषजम् ॥
तृष्णारुचिप्रशमनं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ २४ ॥
कामलां ग्रहणीदोषान्गुल्मं प्लीहानमेव च ।
प्रमेहं पाण्डुरोगं च श्वयथुं च विनाशयेत् ॥ २५ ॥

सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, इन्द्रयव, नीमकी छाल, चिरायता, भांगरा, चीतकी जड़, कुटकी, पाढ़ी, दारुहल्दी, अतीस–सब चीजें समान भाग ले कूटकर कपड़छान करना चाहिये । जितना चूर्ण हो उतनी ही कुड़ेकी छालका चूर्ण मिलाकर चावलके जलसे पिलाना चाहिये । अथवा शहदके साथ चटाना चाहिये । यह चूर्ण आमका पाचन तथा दस्तोंको बन्द करता है, प्यास तथा अरुचिके सहित ज्वरातीसारको नष्ट करता है, कामला, संग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, प्रमेह, पाण्डुरोग तथा सूजनको नष्ट करता है ॥ २२–२५ ॥

दशमूलीकषायः ।

दशमूलीकषायेण विश्वमक्षसमं पिबेत् ।
ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे ॥ २६ ॥

सोंठका चूर्ण १ तोला दशमूलके काढ़ेके साथ ज्वरातिसार तथा सूजन सहित ग्रहणी रोगको नष्ट करता है ॥ २६ ॥

विडंगादिचूर्णं क्वाथो वा ।

विडंगातिविषामुस्तं दारु पाठा कलिंगकम् ।
मरिचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् ॥ २७ ॥

वायविडंग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पाढ़, इन्द्रयव तथा काली मिर्चका चूर्ण कर सूजनयुक्त अतीसारमें देना चाहिये । अथवा क्वाथ बनाकर देना चाहिये ॥ २७ ॥

---

१ कलिङ्गके स्थानमें कुछ आचार्य " कट्वङ्ग " पढ़ते हैं । कट्वङ्ग=सोनापाठा । २ तण्डुलोदकविधि–" जलमष्टगुणं दत्त्वा पलं कण्डिततण्डुलान् । भावयित्वा ततो ग्राह्यं तण्डुलोदककर्मणि ॥ " ४ तोला चावल पानीमें मिला धोकर ३२ तोला जलमें मिलाकर कुछ देर रखनेके अनन्तर छानकर काममें लाना चाहिये ॥

१ इसका अनुपान जो ऊपर लिखा है ज्वरातिसारका है । भिन्न २ रोगोंमें भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ देना चाहिये ।

२ यहांपर क्वाथकी प्रधानता होनेसे " कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानां च सर्वशः । द्रवशुक्त्या स लेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः । " यह परिभाषा न लगेगी, किन्तु " क्वाथेन चूर्णपाने यत्तत्र क्वाथप्रधानता । प्रवर्तते न तेनात्र चूर्णापेक्षी चतुर्द्रवः ॥ " इस सिद्धान्तसे क्वाथकी प्रधानता निश्चित हो जानेपर " प्रक्षेपः पादिकः क्वाथ्यात् " के अनुसार क्वाथ्यद्रव्यसे चतुर्थांश चूर्णका प्रक्षेप करना चाहिये । अतएव पूर्ण मात्राके लिये शुण्ठीचूर्ण १ कर्ष लिखा है, क्वाथकी मात्रा हीन होनेपर प्रक्षेपरूप चूर्ण भी उतनी ही कम मात्रामें छोड़ना चाहिये ।

किरातादिचूर्णद्वयं क्वाथद्वयं च ।

किराताब्दामृताविश्वचन्दनोदीच्यवत्सकैः ।
शोथातिसारशमनं विशेषाज्ज्वरनाशनम् ॥ २८ ॥
किराताब्दामृतोदीच्यमुस्तचन्दनधान्यकैः ।
शोथातीसारतृड्दाहशमनो ज्वरनाशनः ॥ २९ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गुर्च, सोंठ, सफेद चन्दन, सुगन्धवाला तथा कुरैयाकी छालका चूर्ण–शोथातिसार तथा ज्वरको नष्ट करता है । इसी प्रकार चिरायता, नागरमोथा, गुर्च, नेत्रवाला, नागरमोथा, सफेद चन्दन व धनियांका चूर्ण शोथातिसार, प्यास, दाह तथा ज्वरको नष्ट करता है । अथवा इनका क्वाथ बनाकर देना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

इति ज्वरातिसाराधिकारः समाप्तः ।

अथातिसाराधिकारः ।

अतिसारविशेषज्ञानम् ।

आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः ।
अतः सर्वातिसारेषु ज्ञेयं पक्वामलक्षणम् ॥ १ ॥
मज्जत्यामा गुरुत्वाद्विट् पक्वा तूत्प्लवते जले ।
विनातिद्रवसंघातशैत्यश्लेष्मप्रदूषणात् ॥ २ ॥
शकृद् दुर्गन्धि साटोपविष्टम्भार्तिप्रसेकिनः ।
विपरीतं निरामं तु कफात्पक्वं च मज्जति ॥ ३ ॥

अतिसारमें आम–पक्वज्ञान विना चिकित्सा नहीं हो सकती, अतः समस्त अतीसारोंमें प्रथम आम–पक्व लक्षण जानना चाहिये । अतः उसका निर्णय कर देते हैं । आमयुक्त मल भारी होनेके कारण जलमें डूब जाता है तथा पक्व मल तैरता है, पर बहुत पतले बहुत कठिन तथा शीतलता और कफसे दूषित मलमें यह नियम नहीं लगता, अर्थात् अतिद्रव मल आम सहित भी जलमें तैरता है और अतिकठिन तथा कफ दूषित पक्व भी जलमें डूब जाता है । आमयुक्त मल दुर्गन्धित होता है । रोगीके पेटमें अफारा जकड़ाहट तथा पीडा होती है और मुखसे पानी आता रहता है । इससे विपरीत लक्षण होनेपर निराम समझना चाहिये । कफसे दूषित मल पक्व भी बैठ जाता है ॥ १–३ ॥

आमचिकित्सा ।

आमे विलंघनं शस्तमादौ पाचनमेव च ।
कार्यं चानशनस्यान्ते प्रद्रवं लघु भोजनम् ॥ ४ ॥
लंघनमेकं मुक्त्वा न चान्यदस्तीह भेषजं बलिनः ।
समुदीर्णं दोषचयं शमयति तत्पाचयत्यपि च ॥५॥

आमातिसारमें प्रथम लंघन तथा पाचन कराना चाहिये, लंघनके अनन्तर, शास्त्रोक्त द्रव पदार्थ भोजनके लिये देना चाहिये । बलवान् पुरुषके लिये एक लंघन छोड़कर अन्य औषध नहीं है । लंघन बढ़े हुए दोषोंको शान्त तथा आमका पाचन करता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

अतिसारे जलविधानम् ।

ह्रीवेरशृंगबेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा ।
मुस्तोदीच्यकृतं तोयं देयं वापि पिपासवे ॥

सुगन्धवाला, सोंठ अथवा नागरमोथा, पित्तपापड़ा अथवा नागरमोथा, सुगन्धवालासे सिद्ध किया हुआ जल पिपासावालेके लिये देना चाहिये ॥

अतिसारेऽन्नविधानम् ।

युक्तेऽन्नकाले क्षुत्क्षामं लघून्यन्नानि भोजयेत् ॥६॥
औषधसिद्धाः पेया लाजानां सक्तवोऽतिसारहिताः।
वस्त्रप्रस्रुतमण्डः पेया च मसूरयूषश्च ॥ ७ ॥
गुर्वी पिंडी खरात्यर्थं लघ्वी सैव विपर्य्ययात् ॥
सक्तूनामाशु जीर्येत मृदुत्वादवलेहिका ॥ ८ ॥

जब रोगी भूखसे व्याकुल हो और अन्नका समय उपस्थित हो, तब हलके पदार्थ यथा औषधि सिद्ध पेया अथवा खीलके सत्तू अथवा कपड़ेसे छाना हुआ मण्ड अथवा पेया अथवा मसूरका यूष देना चाहिये । सत्तुओंकी कड़ी पिंडी भारी और पतला अवलेह हलका होता है, अत एव हलके होनेसे पतले सत्तू जल्दी हजम होते हैं ॥ ६–८ ॥

आहारसंयोगिशालिपर्ण्यादिः ।

शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका ॥ ९ ॥
बलाश्वदंष्ट्राबिल्वानि पाठानागरधान्यकम् ।
एतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम् ॥ १० ॥

सरिवन, पिठिवन, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, खरेटी, गोखुरू, कच्चे बेलका गूदा, पाढ़ी, सोंठ, धनियां–इन द्रव्योंका आहारके सिद्ध करनेमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥

अपरः शालिपर्ण्यादिः ।

शालिपर्णीबलाबिल्वैः पृश्निपर्ण्या च साधिता ॥
दाडिमाम्ला हिता पेया पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ११

---

१ आमातिसारमें यद्यपि द्रव द्रव्य निषिद्ध है, यथा–" वर्जयेद्विदलं शूली कुष्ठी मांसं क्षयी स्त्रियम् । द्रवमन्नमतीसारी सर्वं च तरुणज्वरी "॥ पर यहां ' प्रद्रव ' पथ्य लिखा है, अतः प्रशब्द शास्त्रोक्त द्रव द्रव्यका प्रतिपादक है ।

सरिवन, खरेटी, बेलका गूदा, पिठवनसे सिद्ध की गयी तथा अनारका रस छोड़कर खट्टी की गयी पेया पित्तश्लेष्मातिसारवालेके लिये हितकर होती है ॥ ११ ॥

व्यञ्जननिषेधः ।

यवागूमुपयुञ्जानो नैव व्यञ्जनमाचरेत् ।
शाकमांसफलैर्युक्ता यवाग्वोऽम्लाश्च दुर्जराः ॥१२॥

यवागूका सेवन करनेवाला किसी व्यञ्जनका प्रयोग न करे, क्योंकि शाक, मांस और फल-रसोंसे युक्त अथवा खट्टी यवागू कठिनतासे हजम होती है ॥ १२ ॥

विशिष्टाहारविधानम् ।

धान्यपञ्चकसंसिद्धो धान्यविश्वकृतोऽथवा ।
आहारो भिषजा योज्यो वातश्लेष्मातिसारिणाम् ॥१३॥

धान्यपञ्चक (धनियां, सोंठ, मोथा, सुगन्धवाला, बेल) अथवा धनियां व सोंठसे सिद्ध किया आहार वैद्यको वातश्लेष्मातिसारवालेके लिये देना चाहिये ॥ १३ ॥

वातपित्ते पञ्चमूल्या कफे वा पञ्चकोलकैः ।
धान्योदीच्यशृतं तोयं तृष्णादाहातिसारनुत् ॥१४॥
आभ्यामेव सपाठाभ्यां सिद्धमाहारमाचरेत् ।

वातपित्तातिसारमें लघुपञ्चमूलसे, कफातिसारमें पञ्चकोल (" पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ") से तथा तृष्णा दाहयुक्त अतीसारमें धनियां व सुगन्धवालासे सिद्ध किया हुआ जल पीनेके लिये देना चाहिये । और धनियां सुगन्धवाला और पाढ़से सिद्ध जलसे पथ्य बनाकर देना चाहिये ॥ १४ ॥

सञ्चितदोषहरणम् ।

दोषाः सन्निचिता यस्य विदग्धाहारमूर्च्छिताः ॥१५॥
अतीसाराय कल्पन्ते भूयस्तान्सम्प्रवर्तयेत् ।
न तु संग्रहणं दद्यात्पूर्वमामातिसारिणे ॥ १६ ॥
दोषा ह्यादौ रुध्यमाना जनयन्त्यामयान्बहून् ।
शोथपांड्वामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान् ॥ १७ ॥
दण्डकालसकाध्मानान्ग्रहण्यर्शोगदांस्तथा ।

जिसके अविपक्व आहारसे बढ़े हुए दोष इकट्ठे होकर अतीसार उत्पन्न करते हैं, उन दोषोंको विरेचन द्वारा निकाल ही देना चाहिये । आमातिसारवालेको प्रथम दस्त बन्द करनेवाली औषध न देना चाहिये । क्योंकि बढ़े हुए दोष रुक जानेसे सूजन, पाण्डुरोग, प्लीहा, कुष्ठ, गुल्म, उदररोग, ज्वर, दण्डालसक, अफारा, ग्रहणी तथा अर्शआदि अनेक रोगोंको उत्पन्न कर देते हैं ॥ १५-१७ ॥

१-धान्यपञ्चकम्-"धान्यकं नागरं मुस्तं बिल्वं वालकमेव च। धान्यपञ्चकमाख्यातमामातीसारशूलनुत् " ।

स्तम्भनावस्था ।

क्षीणधातुबलार्तस्य बहुदोषोऽतिविस्रुतः ॥ १८ ॥
आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्पाचनान्मरणं भवेत् १९

जिसका धातु व बल क्षीण हो गया है, दस्त बहुत आचुके हैं, फिर भी दोष बढ़े हुए हैं और आम भी है, तो भी संग्राही औषध देना चाहिये, केवल पाचनसे मृत्यु हो सकती है ॥ १८ ॥-

विरेचनावस्था ।

स्तोकं स्तोकं विबद्धं वा सशूलं योऽतिसार्यते १९॥
अभयापिप्पलीकल्कैः सुखोष्णैस्तं विरेचयेत् ।

जिसको पीड़ाके सहित थोड़ा थोड़ा बँधा हुआ दस्त उतरता है, उसे कुछ गरम गरम हर्र तथा छोटी पीपलका कल्क देकर विरेचन कराना चाहिये ॥ १९ ॥—

धान्यपञ्चकम् ।

धान्यकं नागरं मुस्तं बालकं बिल्वमेव च ॥ २० ॥
आमशूलविबन्धघ्नं पाचनं वह्निदीपनम् ।
इदं धान्यचतुष्कं स्यात्पित्ते शुण्ठीं विना पुनः ॥२१॥

धनियां, सोंठ, नागरमोथा, सुगन्धवाला, बेलका गूदा, यह ' धान्यपञ्चक ' कहा जाता है । यह आम, शूल तथा विबन्धको नष्ट कर अग्निको दीपन करता है । पित्तातिसारमें सोंठको पृथक् कर शेष चार चीजें देनी चाहियें, इसे ' धान्यचतुष्क ' कहते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

प्रमथ्याः ।

पिप्पलीं नागरं धान्यं भूतीकं चाभयां वचाम् ।
ह्रीवेरभद्रमुस्तानि बिल्वं नागरधान्यकम् ॥ २२ ॥
पृश्निपर्णी श्वदंष्ट्रा च समंगा कण्टकारिका ।
तिस्रः प्रमथ्या विहिताः श्लोकार्धैरतिसारिणाम् २३॥
कफे पित्ते च वाते च क्रमादेताः प्रकीर्तिताः ।
संज्ञा प्रमथ्या ज्ञातव्या योगे पाचनदीपने ॥ २४ ॥

(१) छोटी पीपल, सोंठ, धनियां, अजवाइन, हर्र तथा वचसे (२) सुगन्धवाला, नागरमोथा, बेलका गूदा, सोंठ व धनियांसे (३) तथा पिठवन, गोखरू, लज्जालु, भटकटैयाकी जड़से बनायी गयी आधे आधे श्लोकमें कही गई तीन ' प्रमथ्या ' क्रमशः प्रथम कफ, द्वितीय पित्त तथा तृतीय वातजन्य अतिसारमें देना चाहिये । ' प्रमथ्या ' पाचन दीपन योगको ही कहते हैं । अर्थात् यह तीनों प्रयोग चूर्ण अथवा कषायद्वारा दीपन पाचन करते हैं ॥ २२-२४ ॥

आमातिसारघ्नचूर्णम् ।

त्र्यूषणातिविषाहिंगुबलासौवर्चलाभयाः ।
पीत्वोष्णेनाम्भसा हन्यादामातीसारमुद्धतम् ॥२५॥

सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, अतीस, भूनी हींग, खरेटी, काला नमक, बड़ी हर्रका छिल्का कूट कपड़ छानकर गरम जलके साथ पीनेसे उद्धत आमातीसार नष्ट होता है । (इसकी मात्रा ३ माशेसे ६ माशे तक है) ॥ २५ ॥

पिप्पलीमूलादिचूर्णम् ।

अथवा पिप्पलीमूलपिप्पलीद्वयचित्रकान्।
सौवर्चलवचाव्योषहिङ्गुप्रतिविषाभयाः ॥ २६ ॥
पिबेच्छ्लेष्मातिसारार्तश्चूर्णिताश्चोष्णवारिणा ।

अथवा पिपरामूल, दोनों पीपल, चीतकी जड़, काला नमक, बच–दूधिया, सोंठ, मिर्च, पीपल, भूनी हींग, अतीस, हर्रका छिलका कूट कपड़ छानकर श्लेष्मातिसारसे पीड़ित रोगीको गरम जलके साथ पीना चाहिये ॥ २६ ॥–

हरिद्रादिचूर्णम् ।

हरिद्रादिं वचादिं वा पिबेदामेषु बुद्धिमान् ॥२७॥
खडयूषयवागूषु पिप्पल्यादिं प्रयोजयेत् ।

आमातिसारमें हरिद्रादिगण (" हरिद्रा दारुहरिद्रा कलशी-कुटजबीजानि मधुकश्चेति") अथवा वचादिगण "(वचा मुस्तातिविषाभयाभद्रदारु नागरश्चेति ") का प्रयोग करना चाहिये। तथा खड़ चटनीयां, अचार, यूष, यवागू आदिमें पिप्पल्यादिगण (ज्वराधिकारोक्त) का प्रयोग करना चाहिये ॥ २७ ॥–

खडयूषकाम्बलिकौ ।

तक्रे कपित्थचाङ्गेरीमरिचाजाजिचित्रकैः ॥ २८ ॥
सुपक्कः खडयूषोऽयमयं काम्बलिकोऽपरः ।
दध्यम्लो लवणस्नेहतिलमाषसमन्वितः ॥२९ ॥

मट्ठेमें कैथा, अमलोनियां, काली मिर्च, जीरा, चीतकी जड़ तथा यूष होनेसे मूंग भी छोड़ना चाहिये, तीक्ष्ण द्रव्य छःछः माशे, साधारण द्रव्य एक एक पल, तक्र एक प्रस्थ छोड़कर पकाकर छान लेना चाहिये । यह "खडयूष" कहा जाता है और दही, लवण, स्नेह, तिल, उड़द मिलाकर पकाया गया " काम्बलिक " कहा जाता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

१ पिप्पल्यादिगणका पाठ सुश्रुतसंहितामें इसप्रकार है– " पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृंगवेरमरिचहस्तिपिप्पलीहरेणुकैलाजमोदेन्द्रयवपाठाजीरकसर्षपमहानिम्बफलहिङ्गुभार्गीमधुरसातिविषावचाविडंगानि कटुरोहिणी चेति" । " पिप्पल्यादिकफहरः प्रतिश्यायानिलारुचीः । निहन्याद्दीपनो गुल्मशूलघ्नश्चामपाचनः ॥

नागरादिपानीयम् ।

नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरैः ।
तृष्णातीसारशूलघ्नं पाचनं दीपनं लघु ॥ ३० ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा अथवा धनियां व सोंठसे सिद्ध किया जल प्यास, अतीसार तथा शूलको नष्ट करता है, हलका, पाचन तथा दीपन है ॥ ३० ॥

पाठादिक्काथश्चूर्णं वा ।

पाठावत्सकबीजानि हरीतक्यो महौषधम् ।
एतदामसमुत्थानमतीसारं सवेदनम् ॥ ३१ ॥
कफात्मकं सपित्तञ्च वर्चो बध्नाति च ध्रुवम् ।

पाढ, इन्द्रयव, बड़ी हर्रका छिल्का और सोंठका चूर्ण अथवा क्काथ कफ अथवा पित्तसे उत्पन्न पीड़ा सहित आमातिसारको नष्ट करता तथा मलको गाढ़ा करता है ॥ ३१ ॥

मुस्ताक्षीरम् ।

पयस्युत्क्काथ्य मुस्तां वा विंशतिम्भद्रकाह्वयाः॥३२॥
क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हन्यादामं सवेदनम् ।

२० मोथेकी जड़ दूध तथा जल मिलाकर पकाना चाहिये. दूध मात्र शेष रहनेपर पीनेसे पीड़ायुक्त आमातिसार नष्ट होता है ॥ ३२ ॥–

संग्रहणावस्था ।

पक्कोऽसकृदतीसारो ग्रहणी मार्दवाद्यदा ॥ ३३ ॥
प्रवर्तते तदा कार्यः क्षिप्रं सांग्राहिको विधिः ।

ग्रहणीके कमजोर हो जानेपर जब पके हुए दस्त वारबार आते हैं, उस समय तत्काल संग्राहक औषधका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३३ ॥–

पञ्चमूल्यादिक्काथश्चूर्णं वा ।

पञ्चमूलीबलाविश्वधान्यकोत्पलबिल्वजाः ॥ ३४ ५
वातातिसारिणे देयास्तक्रेणान्यतमेन वा ।

लघुपञ्चमूल, खरेंटी, सोंठ, धनियां, नीलोफर, बेलका गूदा, सबका चूर्ण बनाकर मट्ठेके साथ अथवा अन्य किसी द्रव द्रव्यके साथ देना चाहिये । अथवा इनका क्काथ बनाकर पिलाना चाहिये ॥ ३४ ॥–

कञ्चटादिक्काथः ।

कञ्चटजम्बूदाडिमशृङ्गाटकपत्रबिल्वह्रीबेरम् ॥ ३५ ॥
जलधरनागरसहितं गङ्गामपि वेगिनीं रुन्ध्यात् ।

१ क्षीरपाकविधिः–" द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥ " यहां दूध बकरीका लेना चाहिये ।

चौलाई अथवा जलपिप्पली, जामुनके पत्ते, अनारके पत्ते, सिंघाड़ाके पत्ते, बेलका गूदा, सुगन्धवाला, नागरमोथा तथा सोंठका क्वाथ वेगयुक्त अतीसारको नष्ट करता है ॥ ३५ ॥

नाभिपूरणम् ।

कृत्वालवालं सुदृढं पिष्टैर्वामलकैर्भिषक् ॥ ३६ ॥
आर्द्रकस्वरसेनाशु पूरयेन्नाभिमण्डलम् ।
नदीवेगोपमं घोरमतीसारं निरोधयेत् ॥ ३७ ॥

आमलोंको महीन पीसकर नाभिके चारों ओर मेड़ बांधनी चाहिये, फिर अदरखका रस नाभिमण्डलमें भर देना चाहिये। इससे नदीके वेगके समान बढ़ा हुआ अतिसार नष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

किराततिक्तादिक्काथः ।

किराततिक्तकं मुस्तं वत्सकं सरसाञ्जनम् ॥
पिबेत्पित्तातिसारघ्नं सक्षौद्रं वेदनापहम् ॥ ३८ ॥

चिरायता, नागरमोथा, कुड़ेकी छाल, तथा रसौतका क्काथ शहद मिलाकर पीनेसे पीड़ायुक्त पित्तातिसार नष्ट हो जाता है। अथवा इसका चूर्ण बनाके शहद व चावलके जलसे सेवन करना चाहिये ॥ ३८ ॥

वत्सकबीजक्काथः ।

पलं वत्सकबीजस्य श्रपयित्वा जलं पिबेत् ।
यो रसाशी जयेच्छीघ्रं स पैत्तं जठरामयम् ॥३९॥

एक पल इन्द्रयवका क्काथ बनाकर पीने तथा मांस रसके साथ भोजन करनेसे पैत्तिक अतीसार नष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥

मधुकादिचूर्णम् ॥

मधुकं कट्फलं लोध्रं दाडिमस्य फलत्वचम् ।
पित्तातिसारे मध्वक्तं पाययेत्तण्डुलाम्बुना ॥ ४० ॥

मौरेठी, कायफल, पठानी लोध, अनारका छिलका सब समान भाग ले, चूर्ण बना, शहद मिलाकर चटाना चाहिये और ऊपरसे चावलका धोवन जल पिलाना चाहिये, इससे पित्तातिसार नष्ट होता है ॥ ४० ॥

कुटजादिचूर्णं क्काथो वा ।

कुटजातिविषामुस्तं हरिद्रापर्णिनीद्वयम् ।
सक्षौद्रशर्करं शस्तं पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ ४१॥

कुड़ेकी छाल, अतीस, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, माषपर्णी, मुद्गपर्णीका क्काथ अथवा चूर्ण बनाकर शहद व मिश्री मिलाकर पीनेसे पित्तश्लेष्मातिसार नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

क्वाथान्तरम् ।

कुटजत्वक्फलं मुस्तं क्काथयित्वा जलं पिबेत् ।
अतीसारं जयत्याशु शर्करामधुयोजितम् ॥ ४२ ॥

कुड़ेकी छाल, इन्द्रयव, तथा नागरमोथाका क्काथ शक्कर तथा शहद मिलाकर पीनेसे अतीसार नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

बिल्वादिक्वाथः ।

बिल्वचूतास्थिनिर्यूहः पीतः सक्षौद्रशर्करः ।
निहन्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ ४३॥

कच्चे बेलका गूदा तथा आमकी गुठलीका क्काथ शक्कर तथा शहदके साथ पीनेसे अग्नि आहुतिके समान वमन तथा अतीसारको नष्ट करता है ॥ ४३ ॥

पटोलादिक्वाथः ।

पटोलयवधान्याकक्काथः पेयः सुशीतलः ।
शर्करामधुसंयुक्तश्छर्द्यतीसारनाशनः ॥ ४४ ॥

परवलके पत्ते, यव तथा धनियांका क्काथ ठण्डा कर शक्कर तथा शहद मिलाकर पीनेसे वमन तथा अतीसार नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

प्रियंग्वादिचूर्णम् ।

प्रियंग्वञ्जनमुस्ताख्यं पाययेत्तु यथाबलम् ।
तृष्णातीसारछर्दिघ्नं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ॥ ४५ ॥

फूलप्रियंगु, रसौत तथा नागरमोथाका चूर्ण बनाके शहद तथा चावलके धोवनके साथ बलके अनुसार सेवन करनेसे प्यास, वमन तथा अतीसार नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

वातपित्तातिसारे कल्कः ।

कलिंगकवचामुस्तं दारु सातिविषं समम् ।
कल्कं तण्डुलतोयेन पिबेत्पित्तानिलामयी ॥ ४६ ॥

इन्द्रयव, वच दूधिया, नागरमोथा, देवदारु तथा अतीसका कल्क चावलके धोवनके साथ पीनेसे वातपित्तातिसारको नष्ट करता है ॥ ४६ ॥

कुटजादिक्काथः ।

कुटजं दाडिमं मुस्तं धातकीबिल्वबालकम् ।
लोध्रचन्दनपाठाश्च कषायं मधुना पिबेत् ॥ ४७ ॥
सामे सशूले रक्तेऽपि पिच्छास्रावेषु शस्यते ।
कुटजादिरिति ख्यातः सर्वातीसारनाशनः ॥ ४८ ॥

कुड़ेकी छाल, अनारका छिलका, नागरमोथा, धायके फूल, बेलका गूदा, सुगन्धवाला, पठानी लोध, लाल चन्दन तथा पाढ़का

काढ़ा शहद मिलाकर पीनेसे आमशूल, रक्त तथा लासेदार दस्तोंको रोकता है तथा यह "कुटजादि" क्वाथ समस्त अतीसारोंको नष्ट करता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

समङ्गादिक्वाथः ।

समंगातिविषा मुस्तं विश्वं ह्रीबेरधातकी ।
कुटजत्वक्फलं बिल्वं क्वाथः सर्वातिसारनुत् ॥४९॥

लज्जावन्तीके बीज, अतीस, नागरमोथा, सोंठ, सुगन्धवाला, धायके फूल, कुड़ेकी छाल, इन्द्रयव, बेलका गूदा-सबका क्वाथ बनाकर पीनेसे समस्त अतीसार नष्ट होते हैं ॥ ४९ ॥

हिज्जलस्वरसः ।

दलोत्थः स्वरसः पेयो हिज्जलस्य समाक्षिकः ।
जयत्यामममतीसारं क्वाथो वा कुटजत्वचः ॥ ५० ॥

हिज्जल (समुद्रफल) के पत्तोंका स्वरस शहदके साथ अथवा कुड़ेकी छालका क्वाथ आमातिसारको नष्ट करता है॥५०॥

वटारोहकल्कः ।

वटारोहं तु सम्पिष्य श्लक्ष्णं तण्डुलवारिणा ।
तं पिबेत्तक्रसंयुक्तमतीसाररुजापहम् ॥ ५१ ॥

बरगदकी बौंको चावलके धोवनके साथ महीन पीस मट्ठेके साथ मिलाकर अतीसारकी पीड़ा नष्ट करनेके लिये पीना चाहिये ॥ ५१ ॥

अङ्कोठमूलकल्कः ।

सतण्डुलजलपिष्टांकोठमूलकर्षार्धपानमपहरति ।
सर्वातिसारग्रहणीरोगसमूहं महाघोरम् ॥ ५२ ॥

६ माशे अंकोहरकी जड़को चावलके जलके साथ पीसकर पीनेसे समस्त अतीसार तथा घोर ग्रहणीरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

बब्बूलदलकल्कः ।

कल्कः कोमलबब्बूलदलात्पीतोऽतिसारहा ।

कोमल बब्बूलकी पत्तीका कल्क जलमें छानकर पीनेसे अतीसारको नष्ट करता है ।

कुटजावलेहः ।

कुटजत्वक्कृतः क्वाथो घनीभूतः सुशीतलः ॥ ५३ ॥
लेहितोऽतिविषायुक्तः सर्वातीसारनुद्भवेत् ।
वदन्त्यत्राष्टमांशेन क्वाथादतिविषारजः ॥ ५४ ॥
प्रक्षेप्यत्वात्पादिकं तु लेहादिति च नो मतिः ।

कुड़ेकी छालके क्वाथको गाढ़ा कर ठण्ढा होनेपर अतीस चूर्ण मिलाकर चाटनेसे समस्त अतीसार नष्ट होते हैं । क्वाथकी अपेक्षा अष्टमांश अतीसका चूर्ण छोड़ना कुछ आचार्य बतलाते हैं, पर प्रक्षेप होनेसे चतुर्थांश ही छोड़ना चाहिये, यह ग्रन्थकारका मत है । तथा अन्यत्र भी यही व्यवस्था समझना चाहिये । यदुक्तम्-"लेहे तु यत्र नो भागो निर्दिष्टो द्रवकल्कयोः। तत्रापि पादिकः कल्क द्रवात्कार्यो विजानता" ॥ ५३ ॥५४ ॥-

अंकोठवटकः ।

सदाऽथांकोठपाठानां मूलं त्वक्कुटजस्य च ॥५५॥
शाल्मलीशालनिर्यासधातकीलोध्रदाडिमम् ।
पिष्ट्वाक्षसम्मितान्कृत्वा वटकांस्तण्डुलाम्बुना ॥५६॥
तेनैव मधुसंयुक्तानेकैकान्प्रातरुत्थितः ।
पिबेदत्ययमापन्नो विड्विसर्गेण मानवः ॥ ५७ ॥
अंकोठवटको नाम्ना सर्वातीसारनाशनः ।

दारुहल्दी, अंकोहर, पाढ़की जड़, कुड़ेकी छाल, मोचरस, राल, धायके फूल, पठानी लोध, अनारका छिलका, सब समान भाग ले, महीन पीसकर चावलके धोवनके साथ एक एक तोलेकी गोली बनानी चाहिये और उसी जलके साथ शहदमें मिलाकर प्रातःकाल सेवन करना चाहिये । यह 'अंकोठवटक' समस्त अतीसारोंको नष्ट करता है ॥ ५५-५७ ॥-

रक्तातिसारचिकित्सा ।

पयस्यर्द्धोदके छागे ह्रीबेरोत्पलनागरैः ॥ ५८ ॥
पेया रक्तातिसारघ्नी पृश्निपर्ण्या च साधिता ।

आधे जल मिले हुए बकरीके दूधमें सुगन्धवाला, नीलोफर, नागरमोथा[1] तथा पिठिवनका क्वाथ मिलाकर बनायी गयी पेया रक्तातीसारको नष्ट करती है ॥ ५८ ॥

रसाञ्जनादिकल्कः ।

रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य फलं त्वचम् ॥५९॥
धातकीं शृंगवेरं च प्रपिबेत्तण्डुलाम्बुना ।
क्षौद्रेण युक्तं नुदति रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ६० ॥
मन्दं दीपयते चाग्निं शूलं चापि निवर्तयेत् ।

रसौत, अतीस, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, धायके फूल, सोंठ-सब समान समान भाग ले महीन पीस चावलके धोवनसे शहदके साथ चाटकर उतारनेसे बढ़ा हुआ रक्तातीसार नष्ट होता है । मन्द अग्निको दीप्त तथा शूलको नष्ट करता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥

---

१ अत्र नागरम्मुस्तमेव न तु शुण्ठी "अजाक्षीरकोद्रीघनजलोत्पलैः" इति जतुकर्णसंवादात् शिवदासेनापि स्वीकृतम् ।

विडंगादिचूर्णं क्वाथो वा ।

विडंगातिविषा मुस्तं दारु पाठा कलिंगकम् ६१॥
मरिचेन च संयुक्तं शोथातीसारनाशनम्॥६२॥

वायविडंग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पाढ, इन्द्रयव, कालीमिर्च, इनका चूर्ण अथवा क्वाथ पीनेसे सूजनयुक्त अतीसार नष्ट होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

वत्सकादिकषायः ।

सवत्सकःसातिविषःसबिल्वः
सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः
सामे सशूले सहशोणिते च
चिरप्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे ॥ ६३ ॥

कुड़ेकी छाल, अतीस, बेलका गूदा, सुगन्धवाला व नागरमोथासे बनाया गया क्वाथ आमशूल, रक्त सहित तथा अधिक समयसे उत्पन्न हुए अतीसारको नष्ट करता है ॥ ६३ ॥

दाडिमादिकषायः ।

कषायो मधुना पीतस्त्वचो दाडिमवत्सकात् ।
सद्यो जयेदतीसारं सरक्तं दुर्निवारकम् ॥६४॥

अनारके छिलकेका तथा कुड़ेकी छालका क्वाथ शहदके साथ पीनेसे तत्काल ही कठिन रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ६४ ॥

बिल्वकल्कः ।

गुडेन खादयेद्बिल्वं रक्तातीसारनाशनम् ।
आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगविनाशनम् ॥६५॥

कच्चे बेलका कल्क गुड़के साथ खानेसे रक्तातीसार, आमदोष, शूल, मलकी रुकावट तथा अन्य उदररोग नष्ट होते हैं ॥ ६५ ॥

बिल्वादिकल्कः ।

बिल्वाब्दधातकीपाठाशुंठीमोचरसाः समाः ।
पीता रुन्धन्त्यतीसारं गुडतक्रेण दुर्जयम् ६६ ॥

बेलका गूदा, नागरमोथा, धायके फूल, पाढ, सोंठ, मोचरस-सब समान भाग ले कल्क कर गुड़ तथा मट्ठेमें मिलाकर पीनेसे कठिन रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ६६ ॥

शल्लक्यादिकल्कः ।

शल्लकीबदरीजम्बूप्रियालाम्रार्जुनत्वचः ।
पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक्शोणितनाशनाः ६७

शाल, बेर, जामुन, चिरौंजी, आम्र तथा अर्जुन-इनमेंसे किसीकी छालका कल्क दूध तथा शहदके साथ सेवन करनेसे रक्तातीसारको नष्ट करता है ॥ ६७ ॥

जम्ब्वाम्रामलकीनां तु पल्लवानथ कुट्टयेत्
संगृह्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत् ॥ ६८ ॥
तं पिबेन्मधुना युक्तं रक्तातीसारनाशनम् ।

जामुन, आम तथा आमलाके पत्तोंको कूट स्वरस निकाल बकरीका दूध तथा शहद मिलाकर पीना चाहिये । इससे रक्तातिसार नष्ट होगा ॥ ६८ ॥-

तण्डुलीयकल्कः ।

ज्येष्ठाम्बुना तण्डुलीयं पीतं चससितामधु ॥६९॥
पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा क्षीरभुग्जयेत् ।
रक्तातिसारं पीत्वा वा तया सिद्धं घृतं नरः ॥७०॥

चौलाईका कल्क मिश्री तथा शहद मिलाकर चावलके जलके साथ पीनेसे रक्तातिसार नष्ट होता है । इसी प्रकार शतावरीका कल्क दूधके साथ पीनेसे तथा दूधका पथ्य लेनेसे रक्तातीसार नष्ट होता है । इसी प्रकार इन्हीं औषधियों द्वारा सिद्ध घृतसे भी रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

कुटजावलेहः ।

कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागजले शृतम् ।
तथैव विपचेद् भूयो दाडिमोदकसंयुतम् ॥ ७१ ॥
यावत्स्यैव लसीकाभं शृतं तमुपकल्पयेत् ।
तस्यार्द्धकर्षं तक्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान् ॥ ७२ ॥
अवश्यमरणीयोऽपि मृत्योर्याति न गोचरम् ।
क्वाथतुल्यं दाडिमाम्बु भागानुक्तौ समं यतः ॥७३॥

कुड़ेकी छाल एक पल लेकर महीन पीस अष्टगुण जलमें पकाकर अष्टमांश रहनेपर इसीके बराबर अनारका रस मिलाकर जबतक गाढ़ा न हो जाय, तबतक पकाना चाहिये. गाढ़ा हो जानेपर इसको उतारकर छः माशेकी मात्रा मट्ठेके साथ पीनी चाहिये । इससे मुमूर्षु भी रक्तातिसारी आरोग्य लाभ करता है । इसमें क्वाथके समानही अनारका रस छोड़ना चाहिये । क्योंकि जहां भागका विशेष वर्णन न हो, वहां समान भाग ही छोड़ा जाता है ॥ ७१-७३ ॥

तिलकल्कः ।

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्कराभागसंयुतः ।
आजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति ॥७४॥

काले तिलका कल्क १ भाग, शर्करा ५ भाग, दोनोंसे चतुर्गुण बकरीका दूध मिलाकर पीनेसे तत्काल रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ७४ ॥

---

१ इस अवलेहमें कुड़ेकी छालका क्वाथ छाना नहीं जाता, अतः कल्क महीन छोड़ना चाहिये ।

गुदप्रपाकादिचिकित्सा ।

गुददाहे प्रपाके वा पटोलमधुकाम्बुना ।
सेकादिकं प्रशंसन्ति च्छागेन पयसाऽपि वा ॥७५॥
गुदभ्रंशे प्रकर्तव्या चिकित्सा तत्प्रकीर्तिता ।

गुदाकी जलन तथा गुदाके पक जानेपर परवलकी पत्ती तथा मुलहटीके क्वाथसे अथवा बकरीके दूधसे सिञ्चन (तर) करना चाहिये । गुदभ्रंश (कांच निकलने) में गुदभ्रंशकी चिकित्सा (क्षुद्ररोगाधिकारोक्त) करनी चाहिये ॥ ७५ ॥

पुटपाकयोग्यावस्था ।

अवेदनं सुसम्पक्वं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् ।
नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ ७६ ॥

जिसकी अग्नि दीप्त है, पीड़ा भी नहीं होती, दोष परिपक्व हो गये हैं, पर अधिक समयसे अनेक प्रकारके दस्त आ रहे हैं, इन्हें पुटपाक द्वारा आरोग्य करना चाहिये ॥ ७६ ॥

कुटजपुटपाकः ।

स्निग्धं घनं कुटजवल्कमजन्तुजग्ध-
मादाय तत्क्षणमतीव च पोथयित्वा ।
जम्बूपलाशपुटतण्डुलतोयसिक्तं
बद्धं कुशेन च बहिर्घनपङ्कलिप्तम् ॥ ७७ ॥
सुस्विन्नमेतदवपीड्य रसं गृहीत्वा
क्षौद्रेण युक्तमतिसारवते प्रदद्यात् ।
कृष्णात्रिपुत्रमतपूजित एष योगः
सर्वातिसारहरणे स्वयमेव राजा ॥ ७८ ॥
स्वरसस्य गुरुत्वेन पुटपाकपलं पिबेत्[1] ।
पुटपाकस्य पाके च बहिरारक्तवर्णता ॥ ७९ ॥

जो कीड़े आदिसे खराव न हुई हो, ऐसी चिकनी मोटी तथा ताजी कुड़ेकी छालको खूब कूट चावलके जलसे तरकर जामुनके पत्तोंके सम्पुटमें रख कुशोंसे लपेट बाहर गीली मिट्टीसे मोटा लेप कर कण्डोंमें पकाना चाहिये, पक जानेपर मिट्टी पत्ते अलग कर स्वरस निकालना चाहिये, फिर उसे शहदके साथ अतिसारवालेको देना चाहिये । यह योग भगवान् पुनर्वसुद्वारा कहा गया समस्त अतीसारोंके नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है । स्वरसकी अपेक्षा पुटपाक हल्का होता है, अतः इसे ४ तोला पीना चाहिये तथा पुटपाकको तबतक पकाना चाहिये, जबतक बाहर लाल न हो जावे ॥ ७७-७९ ॥

---

१ तथा च शार्ङ्गधरः-स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत् । निशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत् ॥

श्योनाकपुटपाकः ।

त्वक्पिण्डं दीर्घवृन्तस्य काश्मरीपत्रवेष्टितम्[1] ।
मृदावलिप्तं सुकृतमङ्गारेष्ववकूलयेत् ॥ ८० ॥
स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय यत्नवः ।
शीतीकृतं मधुयुतं पाययेदुदरामये ॥ ८१ ॥

सोनापाठाकी छालके पिण्डको खम्भारके पत्तोंमें लपेट कुशोंसे बांध ऊपरसे मिट्टीका लेप करना चाहिये, पुनः अंगारोंमें पकाना चाहिये । पकजाने पर निकालकर रस निचोड़ ठण्डा कर शहद मिलाकर अतीसारमें पिलाना चाहिये ॥ ८० ॥ ८१ ॥

कुटजलेहः ।

शतं कुटजमूलस्य क्षुण्णं तोयार्मणे[2] पचेत् ।
क्वाथे पादावशेषेऽस्मिँल्लेहे पूते पुनः पचेत् ॥ ८२ ॥
सौवर्चलयवक्षारविडसैन्धवपिप्पलीः ।
धातकीन्द्रयवाजाजीचूर्णं दत्वा पलद्वयम् ॥ ८३ ॥
लिह्याद्बदरमात्रं तच्छीतं क्षौद्रेण संयुतम् ॥
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥
दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥ ८४ ॥

कुड़ेकी छाल एक सौ १०० तोले, एक द्रोण जलमें पकाना चाहिये । क्वाथ चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर पुनः अवलेह पकाना चाहिये । अवलेह कुछ गाढ़ा हो जानेपर काला नमक, यवाखार, विड़नमक, सेंधानमक, छोटी पीपल, धायके फूल, इन्द्रयव, जीरा-सब मिलाकर आठ तोले अर्थात् प्रत्येक एक तोला डालना चाहिये । तैयार हो जानेपर उतार ठण्ढाकर अर्ध कर्षकी मात्रासे शहद मिलाकर चाटना चाहिये । इससे अनेक प्रकारकी पीड़ाओंसे युक्त अनेक प्रकारके, पक्व तथा अपक्व अतिसार तथा कठिन ग्रहणी रोग तथा प्रवाहिका रोग नष्ट होते हैं ॥ ८२-८४ ॥

कुटजाष्टकः ।

तुलामथार्द्रां गिरिमल्लिकायाः
संक्षुद्य पक्त्वा रसमाददीत ।
तस्मिन्सुपूते पलसम्मितानि
श्लक्ष्णानि पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥ ८५ ॥

---

१ इस प्रयोगको सुश्रुतमें कुछ अधिक बढ़ा दिया है, यथा-" त्वक्पिण्डं दीर्घवृन्तस्य पद्मकेशरसंयुतम् । काश्मरीपद्मपत्रैश्चावेष्ट्य सूत्रेण तं दृढम् " । शेषम्पूर्ववत् । अर्थात् सोना पाठाकी छाल व कमलका केशर समान भाग ले महीन पीस कमल व काश्मरीके पत्तोंसे लपेट कर पूर्ववत् पुट पाक द्वारा पकाना चाहिये । २ अर्मणो=द्रोणः ।

पाठां समङ्गातिविषां समुस्तां
बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनाम् ।
प्रक्षिप्य भूयो विपचेत्तु तावद्
दर्वीप्रलेपः स्वरसस्तु यावत् ॥ ८६ ॥

पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन
मण्डेन चाजापयसाऽथवाऽपि ।
निहन्ति सर्वं त्वतिसारमुग्रं
कृष्णं सितं लोहितपीतकं वा ॥ ८७ ॥

दोषं ग्रहण्यां विविधं च रक्तं
शूलं तथार्शांसि सशोणितानि ।
असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं
निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ ८८ ॥

कुड़ेकी गीली छाल १ तुला लें, १ द्रोण जलमें पकाकर चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर फिर पकाना चाहिये, पकाते समय मोचरस १ पल, पाढ़ १ पल, लज्जालुके बीज १ पल, अतीस १ पल, नागरमोथा १ पल, बेलका गूदा १ पल धायके फूल १ पल सबका-चूर्ण कर छोड़ना चाहिये, फिर जब कलछुलमें चिपकने लग जाय, तब उतारकर रख लेना चाहिये । इसको आवश्यकतानुसार ठण्डे जल, मण्ड अथवा बकरीके दूधके साथ पीनेसे समस्त अतीसार, ग्रहणी-दोष, रक्तपित्तशूल, रक्तार्श तथा प्रदररोग नष्ट होते हैं ।[1] ॥ ८५-८८ ॥

अनुक्त-जलमानपरिभाषा ।

तुलाद्रव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रव्यतुला मता ।

जहांपर एक तुला द्रव्यका क्वाथ बनाना हो, वहां एक द्रोण जल छोड़ना चाहिये । इसी प्रकार एक द्रोण जलमें एक तुला द्रव्य छोड़ना चाहिये ।

षडङ्गघृतम् ।

वत्सकस्य च बीजानि दार्व्याश्च त्वच उत्तमाः ८९॥
पिप्पली शृंगवेरं च लाक्षा कटुकरोहिणी ।
षड्भिरेभिर्घृतं सिद्धं पेयं मण्डावचारितम् ॥
अतीसारं जयेच्छीघ्रं त्रिदोषमपि दारुणम् ॥ ९० ॥

इन्द्रयव, दारुहल्दीकी उत्तम छाल, छोटी पीपल, सोंठ, लाख, कुटकी-इन छः ओषधियोंके कल्कसे चतुर्गुण घृत और घृतसे चतुर्गुण जल छोड़कर सिद्ध करना चाहिये । इसे मण्डके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज अतीसार भी नष्ट होता है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

क्षीरिद्रुमाद्यं घृतम् ।

क्षीरिद्रुमाभीरुरसे विपक्वं
तज्जैश्च कल्कैः पयसा च सर्पिः ।
सितोपलार्धं मधुपादयुक्तं
रक्तातिसारं शमयत्युदीर्णम् ॥ ९१ ॥

क्षीरिवृक्ष (वट, गूलर आदि) मिलित अथवा किसी एकके क्वाथ और शतावरके रसमें घृत तथा घृतके समान दूध छोड़कर और इन्हीं ओषधियोंका कल्क छोड़ घृत पकाना चाहिये । इस घृतको आधी मिश्री तथा चतुर्थांश शहद मिलाकर सेवन करनेसे रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ९१ ॥

क्षीरपानावस्था ।

जीर्णेऽमृतोपमं क्षीरमतीसारे विशेषतः ।
छागं तद्भेषजैः सिद्धं देयं वा वारिसाधितम् ॥९२॥

पुराने अतीसारमें दूध विशेष हितकर होता है । अतः बकरीका दूध अतीसारनाशक ओषधियोंके साथ सिद्धकर अथवा केवल जलके साथ सिद्ध कर पीना चाहिये ॥ ९२ ॥

वातशुद्ध्युपायः ।

बालं बिल्वं गुडं तैलं पिप्पली विश्वभेषजम् ।
लिह्याद्वाते प्रतिहते सशूले सप्रवाहिके ॥ ९३ ॥

जिसकी वायु न खुलती हो, शूलके सहित बारबार दस्त आते हों, उसे कच्चे बेलका गूदा, गुड़, तैल, छोटी पीपल तथा सोंठ मिलाकर चाटना चाहिये ॥ ९३ ॥

प्रवाहिकाचिकित्सा ।

पयसा पिप्पलीकल्कः पीतो वा मरिचोद्भवः ।
त्र्यहात्प्रवाहिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥९४

दूधके साथ पीपल अथवा काली मिर्चका कल्क तीन दिन पीनेसे पुराना प्रवाहिकारोग नष्ट हो जाता है ॥ ९४ ॥

दध्नः सरोऽम्लः स्नेहाढ्यः खडो हन्यात्प्रवाहिकाम् ।
बिल्वोषणं गुडं लोध्रं तैलं लिह्यात्प्रवाहणे ॥ ९५ ॥

---

[1] यद्यपि यहांपर चूर्ण पकाते समय ही छोड़ना लिखा है, पर वह अवलेहपाक हो जानेपर ही छोड़ना चाहिये, यही शिवदासजीका मत है । इसकी मात्रा ४ मासेसे ८ मासेतक है । शहद मिलाकर चाटना चाहिये ।

१ इसी घृतमें कुटजकी छालका कल्क भी छोड़ दिया जाय तो "सप्तांग घृत" हो जाता है । जैसे कि वैद्यप्रदीपे-"मण्डेन पेयं तरसर्पिः सप्तांगं कुटजत्वचा" ।

खट्टे दहीका तोड़ तथा काले तिलका तेल मिला हुआ 'खड' कहा जाता है । यह प्रवाहिकारोगको नष्ट करता है । इसी प्रकार कच्चे बेलका गूदा, काली मिर्च, गुड़, पठानी लोध व काले तिलका तेल मिलाकर चाटनेसे प्रवाहिका रोग नष्ट होता है ॥ ९५ ॥

दध्ना ससारेण समाक्षिकेण
भुञ्जीत निश्चारकपीडितस्तु ।
सुतप्तकुप्यक्वथितेन वापि
क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन ॥ ९६ ॥

प्रवाहिकावालेको विना मक्खन निकाले हुए दही शहदके साथ अथवा अच्छी तरह तपाये हुये सोने चान्दीसे भिन्न धातुसे बुझाकर ठण्डे किये हुए दूधमें शहद मिलाकर उसीके साथ भोजन करना चाहिये ॥ ९६ ॥

दीप्ताग्निर्निष्पुरीषो यः सार्यते फेनिलं शकृत् ।
स पिबेत्फाणितं शुण्ठीदधितैलपयोघृतम् ॥ ९७ ॥

जिसकी अग्नि दीप्त है, मल भी अधिक नहीं है, पर फेनिल दस्त आते हैं, उसे राब-सोंठ, दही, तेल, दूध व घी मिलाकर पीना चाहिये ॥ १७ ॥

अतिसारस्यासाध्यलक्षणम् ।

शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ।
छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत् ।
बहुमेही नरो यस्तु भिन्नविट्को न जीवति ॥९८॥

शोथ, शूल, ज्वर, तृष्णा, श्वास, कास, अरुचि, छर्दि, मूर्च्छा, हिक्कायुक्त अतिसारवालेकी चिकित्सा न करनी चाहिये । इसी प्रकार जिसे पेशाब अधिक लगता है और पतले दस्त आते हैं, वह भी असाध्य होता है ॥ ९८ ॥

अतीसारे वर्जनीयानि ।

स्नानाभ्यङ्गावगाहांश्च गुरुस्निग्धातिभोजनम् ।
व्यायाममग्निसन्तापमतीसारी विवर्जयेत् ॥ ९९ ॥

अतिसारवालेको स्नान, अभ्यङ्ग, जलमें बैठना, गुरु तथा स्निग्ध भोजन, अतिभोजन, व्यायाम तथा अग्निमें तापना निषिद्ध है ॥ ९९ ॥

इत्यतीसाराधिकारः समाप्तः ।

अथ ग्रहण्यधिकारः ।

ग्रहणीप्रतिक्रियाक्रमः ।

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत् ।
अतीसारोक्तविधिना तस्यामं च विपाचयेत् ॥१॥
शरीरानुगते सामे रसे लंघनपाचनम् ।

ग्रहणीमें प्राप्त दोषकी अजीर्णके समान चिकित्सा करनी चाहिये और अतीसारकी विधिसे आमका पाचन करना चाहिये । तथा यदि समस्त शरीरमें आमरस व्याप्त हो गया हो, तो लंघन, पाचन कराना चाहिये ॥ १ ॥-

विशुद्धामाशयायास्मै पञ्चकोलादिभिर्युतम् ।
दद्यात्पेयादि लघ्वन्नं पुनर्योगांश्च दीपकान् ॥ २

वमन, विरेचन तथा लंघनादि द्वारा आमाशयके शुद्ध हो जाने पर पञ्चकोलादिसे सिद्ध किया हुआ हल्का पेयादि अन्न तथा अग्निदीपक योगोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

ग्रहण्यां पेया ।

कपित्थबिल्वचांगेरीतक्रदाडिमसाधिता ।
पाचिनी ग्राहिणी पेया सवाते पाञ्चमूलिकी ॥३॥

कैथेका गूदा, बेलका गूदा, अमलोनिया, अनारका छिल्का अथवा दाना सब मिलाकर एक पल, रक्तशालि या साठीके चावल १ पल, मट्ठा १४ पल, अथवा मट्ठा, ७ पल, जल ७ पल मिलाकर पेया बनानी चाहिये । यह कफवातग्रहणीमें हितकर होती है । केवल वातग्रहणीमें लघु पञ्चमूलकी पेया बनानी चाहिये ॥ ३ ॥

तक्रस्यात्र वैशिष्ट्यम् ।

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्राहि लाघवात् ।
पथ्यं मधुरपाकित्वान्नच पित्तप्रकोपणम् ॥ ४ ॥
कषायोष्णविकाशित्वाद्रौक्ष्याच्चैव कफे हितम् ।
वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहि तत् ॥५॥

मट्ठा अग्निको दीप्त करनेवाला, दस्तको रोकनेवाला तथा हल्का होनेसे ग्रहणीवालोंके लिये अधिक हितकर होता है, पाकमें मीठा होनेसे पित्तको कुपित नहीं करता, कसैला, गरम, विकाशि (स्रोतोंको शुद्ध करनेवाला) तथा रूक्ष होनेसे कफमें हित करता है, वातमें मीठा, खट्टा तथा सान्द्र होनेसे हितकर

---

१ "कुप्य" शब्दका अर्थ सोना चांदीसे भिन्न धातु है। वैद्यक शब्दसिन्धुमें इसे जस्ता माना है । शिवदासजी विना आभूषणादिमें परिणत सुवर्णादिको भी 'कुप्य' लिखते हैं। अथवा पाठभेद कर कूर्प मानते हैं और उसे दक्षिण देशमें होनेवाला शंखनाभिकी आकृतिवाला पाषाणभेद मानते हैं । निश्चारकको प्रवाहिका ही कहते हैं । यथा-" निर्वाहयेत्सफेनं च पुरीषं यो मुहुर्मुहुः । प्रवाहिकेति साख्याता कैश्चिन्निश्चारकश्च सः " । हिन्दीमें इस रोगको 'पेचिश' कहते हैं ।

१ पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ इनको 'पञ्चकोल' कहते हैं ॥

होता है, तत्कालका बनाया हुआ मट्ठा विशेष जलन नहीं करता ॥ ४ ॥ ५ ॥

शुण्ठ्यादिक्काथः ।

शुण्ठीं समुस्तातिविषां गुडूचीं
पिबेज्जलेन कथितां समांशाम् ।
मन्दानलत्वे सततामतायामामानुबन्धे ग्रहणीगदे च ॥ ६ ॥

सोंठ, नागरमोथा, अतीस, गुर्च सब चीजें समान भाग ले क्वाथ बनाकर मन्दाग्नि, आमदोष तथा ग्रहणीमें पीना चाहिये ॥ ६ ॥

धान्यकादिक्काथः ।

धान्यकातिविषोदीच्ययमानीमुस्तनागरम् ।
बलाद्विपर्णीबिल्वं च दद्याद्दीपनपाचनम् ॥ ७ ॥

धनियां, अतीस, सुगन्धवाला, अजवाइन, नागरमोथा, सोंठ, खरेटी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, तथा बेलका गूदा अग्निको दीप्त तथा आमका पाचन करता है ॥ ७ ॥

चित्रकादिगुटिका ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च ।
व्योषहिंग्वजमोदा च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ८ ॥
गुटिका मातुलुंगस्य दाडिमाम्लरसेन वा ।
कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥ ९ ॥

चीतकी जड़, पिपरामूल, यवाखार, सज्जीखार, पांचों नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, भुनी हींग, अजवाइन, और चव्य—सबको समान भागले कूट छान बिजौरे निम्बूके रस अथवा खट्टे अनारके रससे गोली बना लेनी चाहिये । यह आमका पाचन तथा अग्निको दीप्त करती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

पञ्चलवणगणना ।

सौवर्चलं सैन्धवं च विडमौद्भिदमेव च ।
सामुद्रेण समं पञ्च लवणान्यत्र योजयेत् ॥ १० ॥

काला नमक, सेंधा नमक, विड नमक, खारी या साम्भर नमक, सामुद्र नमक—यह "पांच लवण" कहे जाते हैं ॥ १० ॥

श्रीफलकल्कः ।

श्रीफलशलाटुकल्को नागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः ।
ग्रहणीगदमत्युग्रं तक्रभुजा शीलितो जयति ॥ ११ ॥

कच्चे बेलके गूदाका कल्क सोंठके चूर्ण तथा गुड़के साथ सेवन करनेसे तथा मट्ठेके पथ्यसे कठिन ग्रहणीरोग नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

श्रीफलपुटपाकः ।

जम्बूदाडिमशृंगाटपाठाकञ्चटपल्लवैः ।
पक्वं पर्युषितं बालबिल्वं सगुडनागरम् ॥ १२ ॥
हन्ति सर्वानतीसारान्ग्रहणीमतिदुस्तराम् ।

जामुन, अनार, सिंघाड़ा, पाढ़, चौंलाईके पत्तोंको लपेट डोरेसे या कुशसे बांधकर अङ्गारोंमें भुना गया कच्चा बेल, पर्युषित (बासी) समान भाग गुड़ तथा जितनेमें कटु हो जाय, उतनी सोंठ मिलाकर खानेसे समस्त अतिसार तथा ग्रहणी नष्ट होती है ॥ १२ ॥

नागरादिक्काथः ।

नागरातिविषामुस्तक्वाथः स्यादामपाचनः ॥ १३ ॥
चूर्णं हिंग्वष्टकं वातग्रहण्यां तु घृतानि च ।

सोंठ, अतीस, नागरमोथाका क्वाथ आमका पाचन करता है । "हिंग्वष्टक" चूर्ण घीके साथ सेवन करनेसे वातग्रहणीको नष्ट करता है, तथा आगे लिखे घृत वातज ग्रहणीको शान्त करते हैं ॥ १३ ॥

नागरादिचूर्णम् ।

नागरातिविषामुस्तं धातकी सरसाञ्जनम् ॥ १४ ॥
वत्सकत्वक्फलं बिल्वं पाठां कटुकरोहिणीम् ॥
पिबेत्समांशं तच्चूर्णं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ॥ १५ ॥
पैत्तिके ग्रहणीदोषे रक्तं यश्चोपवेश्यते ।
अर्शांस्यथ गुदे शूलं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥ १६ ॥
नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ।
शीतकषायमानेन तण्डुलोदककल्पना ॥ १७ ॥
केऽप्यष्टगुणतोयेन प्राहुस्तण्डुलभावनाम् ।

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, धायके फूल, रसौत, कुड़ेकी छाल, इन्द्रयव, बेलका गूदा, पाढ़, कुटकी—समान भाग ले चूर्ण बनाकर शहद तथा चावलके पानीके साथ सेवन करनेसे पैत्तिक ग्रहणी, रक्तके दस्त, रक्तार्श, गुदाका शूल व प्रवाहिका रोग नष्ट होते हैं । शीतकषायकी विधि अर्थात् षड्गुण जलमें रक्खा गया छाना गया अथवा किसीके सिद्धान्तसे अष्टगुणजलमें रखकर छाना गया " तण्डुलोदक " कहा जाता है ॥ १४–१७ ॥–

भूनिम्बाद्यं चूर्णम् ।

भूनिम्बकटुकाव्योषमुस्तकेन्द्रयवान्समान् ॥ १८ ॥
द्वौ चित्रकाद्वत्सकत्वग्भागान्षोडश चूर्णयेत् ।
गुडशीताम्बुना पीतं ग्रहणीदोषगुल्मनुत् ॥ १९ ॥

कामलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारनुत् ।
गुडयोगाद् गुडाम्बु स्याद् गुडवर्णरसान्वितम् २०॥

चिरायता, कुटकी, त्रिकटु, नागरमोथा, इन्द्रयव, समान भाग, चीतकी जड़ दो भाग, कुड़ेकी छाल सोलह भाग लेकर चूर्ण बनावे । गुड़ मिले ठण्डे जलके साथ पीनेसे यह चूर्ण ग्रहणीरोग तथा गुल्मको नष्ट करता है । कामला, ज्वर, पांडुरोग, प्रमेह, अरुचि, अतीसारको नष्ट करता है । गुड़ मिलाकर मीठा बनाया गया जल "गुडाम्बु" कहा जाता है ॥ १८–२० ॥

कफग्रहण्याश्चिकित्सा ।

ग्रहण्यां श्लेष्मदुष्टायां वमितस्य यथाविधि ।
कट्वम्ललवणक्षारैस्तीक्ष्णैश्चाग्निं विवर्धयेत् ॥ २१॥

श्लेष्मग्रहणीमें विधिपूर्वक वमन कराकर तीक्ष्ण, कटु, अम्ल, लवण, क्षार, पदार्थोंसे अग्नि दीप्त करना चाहिये ॥ २१ ॥

ग्रन्थिकादिचूर्णम् ।

समूलां पिप्पलीं क्षारौ द्वौ पञ्च लवणानि च ।
मातुलुंगाभयारास्नाशठीमरिचनागरम् ॥ २२ ॥
कृत्वा समांशं तच्चूर्णं पिबेत्प्रातः सुखाम्बुना ।
श्लैष्मिके ग्रहणीदोषे बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ २३ ॥
ऐतैरेवौषधैः सिद्धं सर्पिः पेयं समारुते ।

पीपल छोटी, पिपरामूल, यवाखार, सज्जीखार, पांचों नमक, बिजौरे निम्बूकी जड़, बड़ी हर्रका छिलका, रासन, कचूर, काली मिर्च, सोंठ–सब समान भाग ले चूर्ण बनाकर कुछ गर्म जलके साथ सेवन करनेसे कफजन्य ग्रहणीरोग नष्ट होता है, बल, वर्ण तथा अग्निकी वृद्धि होती है । इन्हीं औषधियोंद्वारा सिद्ध किया घृत वातग्रहणीको नष्ट करता है ॥ २२ ॥ २३ ॥—

भल्लातकक्षारः ।

भल्लातकं त्रिकटुकं त्रिफला लवणत्रयम् ॥ २४ ॥
अन्तर्धूमं द्विपलिकं गोपुरीषाग्निना दहेत् ।
सक्षारः सर्पिषा पेयो भोज्ये वाऽप्यवचारितः॥२५॥
हृत्पाण्डुग्रहणीदोषगुल्मोदावर्तशूलनुत् ।

भिलावा, सोंठ, मिर्च, पीपल, आमला, हर्ड़, बहेड़ा, सेंधानमक, कालानमक, सामुद्रनमक प्रत्येक ८ तोले हंडियामें बन्दकर गायके गोबरके कण्डोंकी आंचसे जलाना चाहिये । पुनः महीन पीस छानकर घीके साथ पीने अथवा भोजनमें प्रयोग करनेसे हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, गुल्म, उदावर्त तथा शूलको नष्ट करता है॥ २४ ॥ २५ ॥–

सन्निपातग्रहणीचिकित्सा ।

सर्वजायां ग्रहण्यां तु सामान्यो विधिरिष्यते॥२६॥

सन्निपातज ग्रहणीमें सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये॥२६॥

द्विगुणोत्तरचूर्णम् ।

चूर्णं मरिचमहौषधकुटजत्वक्संभवं क्रमाद् द्विगुणम्।
गुडमिश्रमथितपीतं ग्रहणीदोषापहं ख्यातम् ॥ २७॥

काली मिर्च, सोंठ, कुड़ेकी छाल क्रमशः एककी अपेक्षा दूसरा द्विगुण ले चूर्ण बनावे । इसे गुड़ मिला बिना मक्खन निकाले मथे हुए दहीके साथ पीनेसे ग्रहणीदोष नष्ट होता है ॥ २७ ॥

पाठादिचूर्णम् ।

पाठाबिल्वानलव्योषजम्बूदाडिमधातकी ।
कटुकातिविषामुस्तदार्वीभूनिम्बवत्सकैः ॥ २८ ॥
सर्वैरेतैः समं चूर्णं कौटजं तण्डुलाम्बुना ।
सक्षौद्रं च पिबेच्छर्दिज्वरातीसारशूलवान् ॥ २९ ॥
तृड्दाहग्रहणीदोपारोचकानलसादजित् ।

पाढ़, बेलका गूदा, चीतेकी जड़, सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल, जामुनकी गुठली, अनारका छिलका, धायके फूल, कुटकी, अतीस, मोथा, दारुहल्दी, चिरायता, कुड़ेकी छाल–इन सबको समान भाग ले सबके समान इन्द्रयव ले कूट कपड़ छानकर शहद तथा चावलके जलके साथ सेवन करनेसे वमन, ज्वर, अतीसार, शूल, तृषा, दाह, ग्रहणीदोष, अरोचक तथा मन्दाग्नि नष्ट होती हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥–

कपित्थाष्टकचूर्णम् ।

यवानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः ॥ ३० ॥
मरिचाग्निजलाजाजीधान्यसौवर्चलैः समैः ।
वृक्षाम्लधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमतिन्दुकैः ॥३१॥
त्रिगुणैः षड्गुणसितैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः ।
चूर्णोऽतिसारग्रहणीक्षयगुल्मगलामयान् ॥ ३२ ॥
कासं श्वासारुचिं हिक्कां कपित्थाष्टमिदं जयेत् ।

---

१ यहां पर "षड्गुणसितैः" के अर्थ करनेमें अनेक प्रकारकी शंकायें करते हैं । प्रथम यह कि यवान्यादि समस्त द्रव्योंसे षड्गुण । दूसरी यह कि वृक्षाम्लादिसे षड्गुण । जैसा कि अरु. णदत्तने वाग्भट टीकामें लिखा है । तीसरी यह कि कपित्थसे षड्गुण । पर यह समग्र मत अव्यावहारिक हैं । अतः उपरोक्त नियमसे ही छोड़ना चाहिये ॥

अजवाइन, पिपरामूल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, सोंठ, काली मिर्च, चीतकी जड़, नेत्रवाला, सफेद जीरा, धनियां, काला नमक—प्रत्येक एक भाग, अम्लवेत, धायके फूल, छोटी पीपल, बेलका गूदा, अनारका छिलका, तेंदू—प्रत्येक तीन तीन भाग, मिश्री छः भाग, कैथेका गूदा आठ भाग ले कूट कपड़छान कर चूर्ण बनाना चाहिये। यह चूर्ण अतीसार, ग्रहणी, क्षय, गुल्म, गलेके रोग, कास, श्वास, अरुचि तथा हिक्काको नष्ट करता है ॥ ३०–३२ ॥–

दाडिमाष्टकचूर्णम् ।

कर्षोन्मिता तुगाक्षीरी चातुर्जातं द्विकार्षिकम् ॥ ३३ ॥
यवानीधान्यकाजाजीग्रन्थिव्योषं पलांशिकम् ।
पलानि दाडिमादष्टौ सितायाश्चैकतः कृतः ।
गुणैः कपित्थाष्टकवच्चूर्णोऽयं दाडिमाष्टकः ॥ ३४ ॥

वंशलोचन १ तोला, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर—प्रत्येक दो तोला, अजवाइन, धनियां, सफेद जीरा, पिपरामूल, त्रिकटु—प्रत्येक ४ तोला, अनारदाना ३२ तोला, मिश्री ३२ तोला, सबका विधिपूर्वक बनाया गया चूर्ण कपित्थाष्टकके समान लाभदायक होता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

वार्ताकुगुटिका ।

चतुष्पलं सुधाकाण्डात्रिपलं लवणत्रयात् ॥ ३५ ॥
वार्ताकुकुडवश्चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात्पले ।
दग्धानि वार्ताकुरसे गुटिका भोजनोत्तराः ॥ ३६ ॥
भुक्तं भुक्तं पचन्त्याशु कासश्वासार्शसां हिताः ।
विषूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगशमनाश्च ताः ॥ ३७ ॥

थूहरकी लकड़ी १६ तोला, सेंधा नमक, काला नमक, सामुद्र नमक मिलाकर १२ तोला, सूखा बैंगन १६ तोला, आककी जड़ ३२ तोला, चीतकी जड़ ८ तोला, सब चीजें कूट ताजे बैंगनके रसमें मिला भंडियामें बन्दकर पकाना चाहिये। फिर उस भस्मको बैंगनके ही रसमें घोटकर एक मासेकी गोली बना लेनी चाहिये। भोजनके अनन्तर सेवन करनेसे भोजनको तत्काल पचाती हैं, तथा कास, श्वास, प्रतिश्याय, अर्श, विषूचिका और हृद्रोगको नष्ट करती हैं ॥ ३५–३७ ॥

त्र्यूषणादिघृतम् ।

त्र्यूषणत्रिफलाकल्के बिल्वमात्रे गुडात्पले ।
सर्पिषोऽष्टपलं पक्त्वा मात्रां मन्दानलः पिबेत् ॥ ३८ ॥

त्रिकटु तथा त्रिफलाका कल्क एक पल, गुड़ एक पल, घृत आठ पल, चतुर्गुण जल छोड़कर पकाना चाहिये। घृतमात्र शेष रहनेपर उतार छानकर मात्रासे सेवन करना चाहिये ॥ ३८ ॥

मसूरघृतम् ।

मसूरस्य कषायेण बिल्वगर्भं पचेद् घृतम् ।
हन्ति कुक्ष्यामयान्सर्वान्ग्रहणीपाण्डुकामलाः ॥ ३९ ॥
केवलं व्रीहिप्राण्यंगक्वाथो व्युष्टस्तु दोषलः ।

मसूरके काढ़ेके साथ कच्चे बेलके गूदेका कल्क छोड़कर पकाया गया घृत समस्त उदरविकार, ग्रहणी, पाण्डुरोग तथा कामलाको नष्ट करता है। केवल धान्य या प्राण्यङ्ग (मांसादि) का क्वाथ बासी हो जानेसे दोषकारक होता है, अतः यह घृत ताजा ही (एक ही दिनमें) पकाना चाहिये, कई दिन तक न पकाते रहना चाहिये ॥ ३९ ॥–

शुण्ठीघृतम् ।

विश्वौषधस्य गर्भेण दशमूलजले शृतम् ।
घृतं निहन्याच्छ्वयथुं ग्रहणीसामतामयम् ॥ ४० ॥
घृतं नागरकल्केन सिद्धं वातानुलोमनम् ।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ ४१ ॥

दशमूलका क्वाथ तथा सोंठका कल्क मिलाकर पकाया गया घृत सूजन तथा ग्रहणीकी सामताको नष्ट करता है। तथा केवल सोंठके कल्कसे भी सिद्ध किया गया घृत ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, कास, तथा ज्वरको नष्ट करता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

चित्रकघृतम् ।

चित्रकक्वाथकल्काभ्यां ग्रहणीघ्नं शृतं हविः ।
गुल्मशोथोदरप्लीहशूलार्शोघ्नं प्रदीपनम् ॥ ४२ ॥

चित्रकके क्वाथ तथा कल्कसे सिद्ध किया गया घृत ग्रहणी, गुल्म, सूजन, उदररोग, प्लीहा, शूल तथा अर्शको नष्ट करता और अग्निको दीप्त करता है ॥ ४२ ॥

बिल्वादिघृतम् ।

बिल्वाग्निचव्यार्द्रकशृंगवेर—
क्वाथेन कल्केन च सिद्धमाज्यम् ।
सच्छागदुग्धं ग्रहणीगदोत्थ—
शोथाग्निमान्द्यारुचिनुद्वरिष्ठम् ॥ ४३ ॥

बेलका गूदा, चीतकी, जड़, चव्य, अदरख, सोंठके क्वाथ तथा कल्क तथा बकरीके दूधके साथ सिद्ध किया गया घृत ग्रहणीरोगसे उत्पन्न सूजन, अग्निमांद्य तथा अरुचिको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ४३ ॥

---

१ पहिले सब चीजोंका चूर्ण कूट छान लेना चाहिये, तब मिश्री मिलाना चाहिये।

चांगेरीघृतम् ।

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ।
श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यवानिका॥४४
चांगेरीस्वरसे सर्पिः कल्कैरेतैर्विपाचितम् ।
चतुर्गुणेन दध्ना च तद् घृतं कफवातनुत् ॥ ४५ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ।
गुदभ्रंशार्तिमानाहं घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ४६ ॥

सोंठ, पिपरामूल, चीतकी जड़, चव्य, गोखरू, छोटी पीपल, धनियां कच्चे बेलका गूदा, पाढ़ तथा अजवाइनका कल्क, अमलोनियाका स्वरस तथा चतुर्गुण दही मिलाकर सिद्ध किया गया घृत कफ तथा वायुजन्य अर्श, ग्रहणीदोष, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, (कांच निकलना) तथा अफाराको नष्ट करता है ॥ ४४–४६ ॥

मरिचाद्यं घृतम् ।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं पिप्पली तथा ।
भल्लातकं यवानी च विडंगं हस्तिपिप्पली ॥ ४७ ॥
हिङ्गुसौवर्चलं चैव बिडसैन्धवदार्व्यथ ।
सामुद्रं सयवक्षारं चित्रको वचया सह ॥ ४८ ॥
एतैरर्द्धपलैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
दशमूलीरसे सिद्धं पयसा द्विगुणेन च ॥ ४९ ॥
मन्दाग्नीनां हितं चैतद् ग्रहणीदोषनाशनम् ।
विष्टम्भमामं दौर्बल्यं प्लीहानमपकर्षति ॥ ५० ॥
कासं श्वासं क्षयं चैव दुर्नाम सभगन्दरम् ।
कफजान् हन्ति रोगांश्च वातजान्क्रिमिसम्भवान्५१
तान्सर्वान्नाशयत्याशु शुष्कं दार्वनलो यथा ।

काली मिर्च, पिपरामूल, सोंठ, छोटी पीपल, भिलावा, अजवाइन, वायविडंग, गजपीपल, हींग, काला नमक, विडनमक, सेंधा नमक, दारुहल्दी, सामुद्र नमक, यवक्षार, चीतकी जड़ तथा वच प्रत्येक दो दो तोला, घी चौसठ तोला, (द्रवद्वैगुण्यात् १२८ ॥ तो०=१ सेर ९ छ० ३ तो०) घीसे द्विगुण दूध तथा द्विगुण ही दशमूलका क्राथ मिलाकर पकाना चाहिये । यह घृत मन्दाग्नि, ग्रहणीदोष, कब्जियत, आमदोष, दुर्बलता, प्लीहा, कास, श्वास, क्षय, अर्श, भगन्दर तथा कफवात वं क्रिमिजन्य रोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सूखी लकड़ीको अग्नि भस्म कर देता है ॥ ४७–५१ ॥

महाषट्पलकं घृतम् ।

सौवर्चलं पञ्चकोलं सैन्धवं हपुषां वचाम् ॥५२॥
अजमोदां यवक्षारं हिंगु जीरकमौद्भिदम् ।
कृष्णाजाजीं सभूतीकं कल्कीकृत्य पलार्धकम् ।
आर्द्रकस्य रसं चुक्रं क्षीरं मस्त्वम्लकाञ्जिकम् ।
दशमूलकषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५४ ॥
भक्तेन सह दातव्यं निर्भक्तं वा विचक्षणैः ।
क्रिमिप्लीहोदराजीर्णज्वरकुष्ठप्रवाहिकाम् ॥ ५५ ॥
वातरोगान् कफव्याधीन्हन्याच्छूलमरोचकम् ।
पाण्डुरोगं क्षयं कासं दौर्बल्यं ग्रहणीगदम् ॥ ५६॥
महाषट्पलकं नाम वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।

काला नमक, छोटी पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीतकी जड़, सोंठ, सेंधानमक, हाऊवेर, वच दूधिया, अजमोदा, यवाखार, हींग, सफेद जीरा, खारी नमक, काला जीरा, अजवाइन–प्रत्येक वस्तु दो दो तोले लेके कल्क बनाकर तथा अदरखका रस, चुक्र, दूध, दहीका तोड़, खट्टी काञ्जी तथा दशमूलका क्राथ प्रत्येक एक एक प्रस्थ छोड़कर एक प्रस्थ घृत पकाना चाहिये । यह घृत भोजनके साथ अथवा केवल सेवन करना चाहिये । यह घृत क्रिमि, प्लीहा, उदररोग, अजीर्ण, ज्वर, कुष्ठ, प्रवाहिका, वात रोग, कफरोग, शूल, अरोचक, पाण्डुरोग, क्षय, कास, दुर्बलता तथा ग्रहणीरोगको ऐसे नष्ट कर देता है जैसे इन्द्रवज्र वृक्षको नष्ट करता है ॥ ५२–५६ ॥

चुक्रनिर्माणविधिः ।

यन्मस्त्वादि शुचौ भाण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकम् ५७
धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते ।
द्विगुणं गुडमध्वारनालमस्तुक्रमादिह ॥ ५८ ॥

शुद्ध पात्रमें गुड़ १ भाग, शहद २ भाग, काञ्जी ४ भाग, दहीका तोड़ ८ भाग भरकर अनाजके ढेरमें तीन रात्रि तक रखनेसे सिरका रूप "चुक्र" बन जाता है ॥ ५७॥ ५८ ॥

बृहच्चुक्रविधानम् ।

प्रस्थं तण्डुलतोयतस्तुपजलात्प्रस्थत्रयं चाम्लतः
प्रस्थार्धं दधितोऽम्लमूलकपलान्यष्टौ गुडान्मानिके ।

---

१ यहां पर "हस्तिपिप्पली" से चव्य ही लेना चाहिये । ऐसा ही जतुकर्णने भी माना है और हस्तिपिप्पली चव्यका पर्याय भी है । तद्यथा "चविका कोलवल्ली च हस्तिपिप्पल्यपीष्यते " इति ।

(२) दुग्धे दध्नि रसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशकः । कल्कस्य सम्यक् पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥ इस परिभाषाके अनुसार यहां कल्क चतुर्थांश और कल्कसे चतुर्गुण जल छोड़ना चाहिये ।

१ इसमें 'वचाम्' के स्थानमें 'विडम्' भी पाठान्तर है ।
२ दध्नस्तूपरि यत्तोयं तन्मस्तु परिकीर्तितम् ।

मान्यौ शोधितशृंगवेरशकला द्वे सिन्धवजाज्योःपले
द्वे कृष्णोषणयोर्निशापलयुगं निक्षिप्य भाण्डे दृढे५९
स्निग्धे धान्ययवादिराशिनिहितं त्रीन्वासरान्स्थाप-
येद् ग्रीष्मे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षासु पुष्पागमे।
षट्शीतेऽष्टदिनान्यतः परमिदं विस्राव्य सञ्चूर्णये-
च्चातुर्जातपलेन संहितमिदं शुक्तं च चुक्रं च तत्॥६०
हन्याद्वातकफामदोषजनितान्नानाविधानामयान् ।
दुर्नामानिलगुल्मशूलजठरान्हत्वाऽनलं दीपयेत्॥६१॥

तंडुलोदक (पूर्ववर्णित विधिसे बनाया) एक प्रस्थ, तुषोदक (भूसी सहित यव व उड़दकी काञ्जी) तीन प्रस्थ, काञ्जी तीन प्रस्थ, दही आधा प्रस्थ, काञ्जीमें उठायी गयी मूली आठ पल, गुड़ दो मानी अर्थात् एक प्रस्थ, साफ किये अदरकके टुकड़े एक प्रस्थ, सेंधा नमक दो पल, सफेद जीरा दो पल, छोटी पीपल दो पल, काली मिर्च दो पल, हल्दी ४ पल सब एक चिकने तथा दृढ बर्तनमें भर मुख बन्दकर धान्यराशिमें रख देना चाहिये । ग्रीष्म तथा शरदृतुमें तीन दिन, वर्षा कालमें चार दिन, वसन्त ऋतुमें छः दिन तथा शीतकालमें आठ दिनतक रखना चाहिये । फिर निकाल छानकर दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशरका चूर्ण प्रत्येकका एक एक पल मिलाना चाहिये । यह 'शुक्त' तथा 'चुक्र' कहा जाता है । यह वातकफ तथा आमदोषजन्य अनेक प्रकारके रोग, अर्श, वातगुल्म, शूल, उदररोग आदिको नष्ट करता तथा अग्निको दीप्त करता है ॥ ५९-६१ ॥

तक्रारिष्टम् ।

यवान्यामलकं पथ्या मरिचं त्रिपलांशकम् ।
लवणानि पलांशानि पञ्च चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ६२॥
तक्रकंसासुतं जातं तक्रारिष्टं पिबेन्नरः ।
दीपनं शोथगुल्मार्शः क्रिमिमेहोदरापहम् ॥ ६३॥

अजवाइन, आमला, छोटी हर्र, काली मिर्च प्रत्येक १२ तोला, पांचो नमक प्रत्येक ४ तोला सब महीन कपड़छान चूर्ण कर एक आढ़क (२५६ तोला द्रवद्वैगुण्यात् ६ सेर ३२ तोला) मट्ठा मिलाकर धान्यराशिमें रखकर खट्टा कर लेना चाहिये । फिर इसे ४ तोलाकी मात्रासे पीना चाहिये । यह अग्निको दीप्त करनेवाला तथा शोथ, गुल्म, अर्श, क्रिमिरोग, प्रमेह तथा उदररोगको नष्ट करता है ॥ ६२ ॥ ६२ ॥

काञ्जीसन्धानम् ।

वाट्यस्य दद्याद्यवशक्तुकानां
पृथक्पृथक्त्वाढकसम्मितं च ।
मध्यप्रमाणानि च मूलकानि ।
दद्याच्चतुःषष्टिसुकल्पितानि ॥ ६४ ॥
द्रोणेऽम्भसः प्लाव्य घटे सुधौते
दद्यादिदं भेषजजातयुक्तम् ।
क्षारद्वयं तुम्बुरुवस्तगन्धा-
धनीयकं स्याद्विडसैन्धवं च ॥ ६५ ॥
सौवर्चलं हिंगु शिवाटिकां च
चव्यं च दद्याद् द्विपलप्रमाणम् ।
इमानि चान्यानि पलोन्मितानि
विजर्जरीकृत्य घटे क्षिपेच्च ॥ ६६ ॥
कृष्णामजाजीमुपकुञ्चिकां च
तथासुरीं कारविचित्रकं च ।
पक्षस्थितोऽयं बलवर्णदेह-
वयस्करोऽतीव बलप्रदश्च ॥ ६७ ॥
कां जीवयामीति यतः प्रवृत्त-
स्ततकाञ्जिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
आयामकालाज्जरयेच्च भक्त-
मायामिकेति प्रवदन्ति चैनम् ॥ ६८ ॥
दकोदरं गुल्ममथ प्लिहानं
हृद्रोगमानाहमरोचकं च ।
मन्दाग्नितां कोष्ठगतं च शूल-
मर्शोविकारान्सभगन्दरांश्च ॥ ६९ ॥
वातामयानाशु निहन्ति सर्वान्
संसेव्यमानो विधिवन्नराणाम् ॥ ७० ॥

तुष रहित यवोंका बनाया गया मण्ड तथा यवोंके सत्तू अलग अलग एक एक आढ़क, मध्यम प्रमाणकी अर्थात् न अधिक पतली न मोटी मूलीके ६४ टुकड़े एक द्रोण जल-ये सब एक साथ धोये हुए घड़ेमें भरना चाहिये, तथा नीचे लिखी ओषधियां दुरकुचाकर छोड़ना चाहिये । यवाखार, सज्जीखार, तुमरू, नेपाली धनियां, अजवाइन, धनियां, विडनमक, सेंधानमक, काला नमक, भुनी हींग, हिंगुपत्री या वंशपत्री (नाड़ी), पुनर्नवा, चव्य-प्रत्येक दो दो पल तथा छोटी पीपल, सफेद जीरा, कलौंजी, राई, काला जीरा, चीतकी जड़-प्रत्येक एक एक पल छोड़कर घड़ेका मुख बन्द कर रख देना चाहिये । पन्द्रह दिनके बाद निकाल छानकर पीना चाहिये । यह बल, वर्ण तथा शरीरको बढ़ाता है, जीवनी शक्तिको प्रदान करता है, अतएव इसे 'काञ्जी' कहते हैं । भोजनको एक प्रहरके अन्दर ही पचा देता है, अतएव इसे 'आयामिका' कहते हैं । जलोदर, गुल्म, प्लीहा, हृद्रोग, अफारा, अरुचि, मन्दाग्नि, कोष्ठशूल, अर्श, भगन्दर तथा समस्त वातरोगोंको नष्ट करता है ॥ ६४-७० ॥

(१) बृहच्चुकोक्त ऋतुभेदसे समयका निश्चय करना चाहिये ।

कल्याणकगुडः ।

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्य
शुद्धस्य दत्त्वाऽर्धतुलां गुडस्य ।
चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्य-
व्योषेभकृष्णाहपुषाजमोदैः ॥ ७१ ॥

विडंगसिन्धुत्रिफलायमानी-
पाठाग्निधान्यैश्च पलप्रमाणैः ।
दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टा-
वष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥ ७२ ॥

तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं
यथेष्टचेष्टं त्रिसुगन्धियुक्तम् ।
अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः
सश्वासकासस्वरभेदशोथाः ॥ ७३ ॥

शाम्यन्ति चायं चिरमन्थराग्ने-
र्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः ।
स्त्रीणां च वन्ध्यामयनाशनोऽयं
कल्याणको नाम गुडः प्रदिष्टः ॥ ७४ ॥

तैले मनाग्भर्जयन्ति त्रिवृदत्र चिकित्सकाः ।
अत्रोक्तमानसाधर्म्यात्त्रिसुगन्धि पलं पृथक् ७५

आमलेका रस तीन प्रस्थ (१९२ तोला द्रवद्वैगुण्यात् ३८४ तोला=४ सेर १२ छ० ४ तोला), साफ गुड़ २॥ सेर, पिपरामूल, सफेद जीरा, चव्य, त्रिकटु, गजपीपल, हाऊबेर, अजवाइन, वायविडंग, सेंधानमक, आमला, हर्र, बहेड़ा, अजवाइन, पाढ़, चीतकी जड़, धनियां प्रत्येक चार तोला ले चूर्ण कर तथा निसोथका चूर्ण ३२ तोला तथा तिलका तैल ३२ तोला एकमें छोड़ पकाकर अवलेह सिद्ध होनेपर दालचीनी, तेजपात, इलायची प्रत्येकका चूर्ण ४ तोला छोड़कर १ तोलाकी मात्रासे सेवन करना चाहिये । इससे समस्त ग्रहणीरोग, श्वास, कास, स्वरभेद, शोथ नष्ट होते हैं, मंदाग्नि तथा नष्ट पुंस्त्वको उद्दीप्त करता है तथा स्त्रियोंके वन्ध्यात्वदोषको नष्ट करता है । इसे ' कल्याणकगुड ' कहते हैं । इसमें निसोथ तैलमें कुछ देर भूनकर छोड़ते हैं । त्रिसुगन्धिका परिमाण न लिखनेपर भी उपरोक्त मानके अनुसार प्रत्येक एक पल लेते हैं ॥ ७१–७५ ॥

१ यह अन्तःपरिमार्जन प्रयोग है, अतः अजमोदसे अजवाइन ही लेना चाहिये । अतः अजवाइन दो भाग छोड़ना चाहिये । यदुक्तम्–"एकमप्यौषधं योगे यस्मिन्यत्पुनरुच्यते । मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद् द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः" ॥

कूष्माण्डगुडकल्याणकः ।

कूष्माण्डकानां रूढानां सुस्विन्नं निष्कुलत्वचाम् ।
सर्पिःप्रस्थे पलशतं ताम्रभाण्डे शनैः पचेत् ॥ ७६ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ।
धान्यकानि विडंगानि यवानी मरिचानि च ॥ ७७ ॥
त्रिफला चाजमोदा च कलिंगाजाजिसैन्धवम् ।
एकैकस्य पलं चैव त्रिवृदष्टपलं भवेत् ॥ ७८ ॥
तैलस्य च पलान्यष्टौ गुडपञ्चाशदेव तु ।
प्रस्थैस्त्रिभिः समेतं तु रसेनामलकस्य च ॥ ७९ ॥
यदा दर्वीप्रलेपस्तु तदैनमवतारयेत् ।
यथाशक्ति गुडान्कुर्यात्कर्षकर्षार्धमानकान् ॥ ८० ॥
अनेन विधिना चैव प्रयुक्तस्तु जयेदिमान् ।
प्रसह्य ग्रहणीरोगान्कुष्ठान्यर्शोभगन्दरान् ॥ ८१ ॥
ज्वरमानाहहृद्रोगगुल्मोदरविषूचिकाः ।
कामलापाण्डुरोगांश्च प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥ ८२ ॥
वातशोणितवीसर्पान्ददुचर्महलीमकान् ।
कफपित्तानिलान्सर्वान्प्ररूढांश्च व्यपोहति ॥ ८३ ॥
व्याधिक्षीणा वयःक्षीणाः स्त्रीषु क्षीणाश्च ये नराः ।
तेषां वृष्यश्च वल्यश्च वयःस्थापन एव च ॥ ८४ ॥
गुडकल्याणको नाम वन्ध्यानां गर्भदः परः ।

अच्छे पके हुए कुम्हड़ोंके छिल्का तथा बीजरहित टुकड़े प्रथम मन्द आंचमें उबालना चाहिये, मुलायम होजानेपर उतार ठण्ढाकर रस निकाल कर अलग रखना चाहिये । फिर ५ सेर सूखे टुकड़ोंको ताम्रपात्रमें ६४ तोला घृतमें मन्द अग्निसे पकाना चाहिये । जब सुगन्ध आने लगे, तब आमलेका रस ३ प्रस्थ, गुड़ २॥ सेर, तिलका तैल ३२ तोला, छोटी पीपल, पिपरामूल, चीतकी जड़, गजपीपल, धनियां, वायविडंग, अजवाइन, काली मिर्च, त्रिफला, अजमोद, इन्द्रयव, जीरा, सेन्धानमक प्रत्येक ४ तोला, निसोथ ३२ तोला तथा कुम्हड़ेका रस मिलाकर उस समय तक पकाना चाहिये, जबतक कलछीमें चिपकने न लग जाय । कड़ा होजानेपर एक तोला या छः माशाकी मात्रासे प्रयोग करना चाहिये । यह ग्रहणीरोग, कुष्ठ, अर्श, भगन्दर, ज्वर, अफारा, हृद्रोग, गुल्म, उदररोग, विषूचिका, कामला, पाण्डुरोग, प्रमह, वातरक्त, वीसर्प, दद्रु, चर्मरोग, तथा हलीमकादि, कफ, पित्त व वातजन्य समस्त

१ इसमें गुड़का आमलक रसमें छान लेना चाहिये, फिर तला हुआ पेठा उसी रसमें मिलाकर पाक करना चाहिये । सम्यक् पक्वगुडलक्षणम्–" सुखमर्दः सुखस्पर्शो गन्धवर्णरसान्वितः । पीडितो भजते मुद्रां गुडः पाकमुपागतः ॥ " इसकी मात्रा ६ माशेकी शिवदासजीने लिखी है और वही उपयुक्त है ।

रोगोंको नष्ट करता है । यह ' गुड़ कल्याणक ' रोग, स्त्रीगमन तथा वृद्धावस्था होनेसे जो क्षीण हो गये हैं उनके लिये वाजीकर, बलदायक तथा वयःस्थापक है और वन्ध्यास्त्रियोंके गर्भ उत्पन्न करनेवाला है ॥ ७६-८४ ॥

रसपर्पटी ।

याऽम्लपित्ते विधातव्या गुडिका च क्षुधावती ॥ ८५ ॥
तत्र प्रोक्तविधा शुद्धौ समानौ रसगन्धकौ ।
संमर्द्य कज्जलाभं तु कुर्यात्पात्रे दृढाश्रये ॥ ८६ ॥
ततो बादरवह्निस्थलोहपात्रे द्रवीकृतम् ।
गोमयोपरि विन्यस्तकदलीपत्रपातनात् ॥ ८७ ॥
कुर्यात्पर्पटिकाकारमस्य रक्तिद्वयं क्रमात् ।
द्वादशरक्तिका यावत्प्रयोगः प्रहरार्धतः ॥ ८८ ॥
तदूर्ध्वं बहुपूगस्य भक्षणं दिवसे पुनः ।
तृतीय एव मांसाज्यदुग्धान्यत्र विधीयते ॥ ८९ ॥
वर्ज्यं विदाहिस्त्रीरम्भामूलं तैलं च सार्षपम् ।
क्षुद्रमत्स्याम्बुजखगांस्त्यक्त्वोन्निद्रः पयः पिबेत् ॥९०॥
ग्रहणीक्षयकुष्ठार्शःशोफाजीर्णविनाशिनी ।
रसपर्पटिका ख्याता निबद्धा चक्रपाणिना ॥ ९१ ॥

अम्लपित्ताधिकारोक्त क्षुधावती गुटिकाकी विधिसे शुद्ध पारद व गन्धक समान भाग लेकर दृढ पात्रमें कज्जली करे, पुनः बेरीकी लकड़ीकी निर्धूम अग्निमें लोह पात्र रखकर कज्जलीको छोड़े, जब कज्जली पतली हो जावे, तो गोबरके ऊपर बिछे केलेके पत्तेके ऊपर ढालकर दूसरे केलेके पत्तेसे ढक ऊपरसे गोबरसे ढककर कुछ देर रहने देना चाहिये । फिर घोटकर २ रत्तीकी मात्रासे बढ़ाकर क्रमशः बारह रत्ती तक सेवन करना चाहिये । इसके खानेके १॥ घण्टे बाद सुपारी खूब खाना चाहिये, पुनः तीसरे दिनसे मांस, घृत, दूध आदि सेवन करना चाहिये । जलन करनेवाले पदार्थ, स्त्रीगमन, केलाकी जड़, सरसोंका तेल, छोटी मछली तथा अन्य जलके समीपके पक्षी सेवन न करे । निद्राके अनन्तर दूधका सेवन करे । यह ' रसपर्पटी ' ग्रहणी, क्षय, कुष्ठ, अर्श, शोप तथा अजीर्णको नष्ट करती है । इस रसपर्पटीका चक्रपाणिने आविष्कार किया है ॥ ८५-९१ ॥

ताम्रयोगः ।

स्थाल्यां संमर्द्य दातव्यौ माषिकौ रसगन्धकौ ।
नखक्षुण्णं तदुपरि तण्डुलीयं द्विमाषिकम् ॥ ९२ ॥
ततो नैपालताम्रादि पिधाय सुकरालितम् ।
पांशुना पूरयेदूर्ध्वं सर्वां स्थालीं ततोऽनलः ॥९३॥
स्थाल्यधो नालिका यावदेयस्तेन मृतस्य च ।
ताम्री ताम्रस्य रक्त्येका त्रिफलाचूर्णरक्तिका॥९४॥
त्र्यूषणस्य च रक्त्येका विडंगस्य च तन्मधु ।
घृतेनालोड्य लेढव्यं प्रथमे दिवसे ततः ॥ ९५ ॥
रक्तिवृद्धिः प्रतिदिनं कार्या ताम्रादिषु त्रिषु ।
स्थिरा विडंगरक्तिस्तु यदा भेदो विवक्षितः ॥९६॥
तदा विडंगं त्वधिकं दद्याद्रक्तिद्वयं पुनः ।
द्वादशाहं योगवृद्धिस्ततो ह्रासक्रमोऽप्ययम् ॥९७॥
ग्रहणीमम्लपित्तं च क्षयं शूलं च सर्वदा ।
ताम्रयोगो जयत्येप बलवर्णाग्निवर्धनः ॥ ९८ ॥

शुद्ध पारद १ माशा, शुद्ध गन्धक १ माशा दोनोंको खरलमें घोट कजली भंडियामें छोड़ना चाहिये, उसकेऊपर महीन पिसी चौराईका चूर्ण दो माशा छोड़कर ऊपरसे कण्टकवेधी ताम्रपत्र १५ माशेकी कटोरी बन्दकर ऊपरसे दूसरी कटोरीसे ढक सन्धि-बन्दकर देना चाहिये, ऊपरसे बालू भर देना चाहिये, फिर भंडिया चूल्हेपर चढ़ाकर नीचे अग्नि जलाना चाहिये, एक घण्टातक आंच देना चाहिये, इस प्रकार सिद्ध की गयी ताम्रभस्म १ रत्ती, त्रिफलाचूर्ण

---

१ रसग्रन्थोंमें अनेक प्रकारकी पर्पटी लिखी गयी हैं, पर उनके लिखनेसे ग्रन्थ बहुत बढ़ जायगा, अतः उन्हें न लिखकर अत्यन्त प्रसिद्ध तथा गुणकारी सुवर्णपर्पटीको लिख देता हूँ:–"शुद्धसूतं पलमितं तुर्यांशस्वर्णसंयुतम् । मर्दयेन्निम्बुनीरेण यावदेकत्वमाप्नुयात् ॥ १ ॥ प्रक्षाल्योष्णाम्बुना पश्चात्पलमात्रे तु गन्धके । द्रुते लोहमये पात्रे बादरानलयोगतः ॥ २ ॥ प्रक्षिप्य चालयेल्लोह्या मन्दं लोहशलाकया । ततः पाकं विदित्वा तु रम्भापत्रे शनैः क्षिपेत् ॥ ३ ॥ गोमयस्थे तदुपरि रम्भापत्रेण यन्त्रयेत् । शीतं तच्चूर्णितं गुञ्जाक्रमवृद्धं निषेवयेत् ॥ ४ ॥ माषमात्रं भवेद्यावत्ततो मात्रां न वर्धयेत् । सक्षौद्रेणोषणेनैव लेहयेद्भिषगुत्तमः ॥ ५ ॥ ग्रहणीं हन्ति शोषं च सुवर्णरसपर्पटी । सद्यो बलकरी शुक्रवर्द्धिनी वह्निदीपनी ॥ ६ ॥ क्षयकासश्वासमेहशूलातीसारपाण्डुनुत् । " इसमें बनानेकी विधि जो लिखी है उससे वर्तमान वृद्ध वैद्योंका व्यवहार कुछ भिन्न है और वही उत्तम है । वह यह कि, प्रथम शुद्ध सोनेके वर्क एक तोला ४ तोला पारदके साथ घोटना, फिर उसीमें गन्धक मिलाकर कज्जली बनाना, शेष यथोक्त करना चाहिये ।

---

१ इसमें पारद गन्धककी कज्जली २ मासे छोड़ना चाहिये तथा मात्रा १ रत्तीकी लिखी है, पर यह अधिक है, वर्तमान समयमें आधी रत्तीसे ही बढ़ाना उत्तम है । ताम्रभस्मकी अनेक विधियां हैं, उन्हें रसग्रन्थोंसे जानना चाहिये । पर यहांके लिये जितना आवश्यक है, श्रीमान् चक्रपाणिजीने स्वयं लिख दिया है । विषय बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं ।

१ रत्ती, त्रिकटुचूर्ण १ रत्ती, वायविडंग १ रत्ती, सब घृत तथा शहदमें मिलाकर चटाना चाहिये । इतनी मात्रा प्रथम दिन देना चाहिये । फिर प्रतिदिन सब चीजें एक एक रत्ती बढ़ाना चाहिये, केवल वायविडंग न बढ़ाना चाहिये । पर यदि कब्जियत या अफारा आदि हो, तो विरेचनके लिये वायविडंग २ रत्ती छोड़ना चाहिये । इस प्रकार १२ दिन तक एक एक रत्ती बढ़ाना चाहिये, और इसी प्रकार फिर एक एक रत्ती कम करना चाहिये । यह ग्रहणी, अम्लपित्त, क्षय तथा शूलको नष्ट करता है, बल, वर्ण तथा अग्निको दीप्त करता है ॥ ९२-९८ ॥

इति ग्रहण्यधिकारः समाप्तः ।

अथार्शोऽधिकारः ।

अर्शसाञ्चिकित्साभेदाः ।

दुर्नाम्नां साधनोपायश्चतुर्धा परिकीर्तितः ।
भेषजक्षारशस्त्राग्निसाध्यत्वादाद्य उच्यते ॥ १ ॥

अर्श (१) औषध, (२) क्षार, (३) शस्त्र तथा (४) अग्नि इन चार उपायोंसे अच्छा होता है, इनमें प्रथम औषधका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

यद्वायोरानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये ।
अनुपानौषधद्रव्यं तत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥ २ ॥

जिससे वायुका अनुलोमन तथा अग्नि व बलकी वृद्धि हो, वह अनुपान तथा औषध अर्शवालोंको सदैव सेवन करना चाहिये ॥ २ ॥

शुष्कार्शसां प्रलेपादिक्रिया तीक्ष्णा विधीयते ।
स्राविणां रक्तमालोक्य क्रिया कार्यास्रपैत्तिकी ॥३॥

बवासीरके सूखे मस्सोंमें तीक्ष्ण लेपादि करना चाहिये, तथा रक्त बहन करनेवाले मस्सोंमें रक्तपित्तनाशक लेपादि करना चाहिये ॥ ३ ॥

अर्शोघ्नलेपाः ।

स्नुक्क्षीरं रजनीयुक्तं लेपाद् दुर्नामनाशनम् ।
कोशातकीरजोघर्षान्निपतन्ति गुदोद्भवाः ॥ ४ ॥
अर्कक्षीरं सुधाक्षीरं तिक्ततुम्ब्याश्च पल्लवाः ।
करञ्जो वस्तमूत्रेण लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ॥ ५ ॥
अर्शोघ्नी गुदगा वर्तिर्गुडघोषाफलोद्भवा ।
ज्योत्स्निकामूलकल्केन लेपो रक्तार्शसां हितः ॥६ ॥
तुम्बीबीजं सोद्भिदं तु काञ्जीपिष्टं गुटीत्रयम् ।
अर्शोहरं गुदस्थं स्याद्दधि माहिषमश्नतः ॥ ७ ॥

(१) थूहरका दूध हलदीके चूर्णके साथ लेपकरनेसे अर्श को नष्ट करता है । इसी प्रकार (२) कड़ुई तोरईका चूर्ण घिसनेसे मस्से कट जाते हैं । तथा (३) आकका दूध, थूहरका दूध, कड़ुई तोम्बीके पत्ते तथा कञ्जाके बीज-सब बकरेके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे मस्से नष्ट होते हैं । तथा (४) गुड़ व कड़ुई तोरईकी वत्ती बनाकर गुदामें लेप करनेसे अर्शके मस्से नष्ट होते हैं । तथा कड़ुई तोरईकी जड़का कल्क लेप करनेसे 'रक्तार्श' को नष्ट करता है । कड़ुई तोम्बीके बीज व खारीनमक अथवा साम्भरनमक समान भाग ले काञ्जीमें पीस गोली बनाकर गुदामें रखनेसे तीन गोलीमें ही बवासीर नष्ट होता है । इस प्रयोगमें भैंसीके दहीका पथ्य लेना चाहिये ॥ ४-७ ॥

लिङ्गार्शसि लेपः ।

अपामार्गाङ्घ्रिजः क्षारो हरितालेन संयुतः ।
लेपनं लिङ्गसम्भूतमर्शो नाशयति ध्रुवम् ॥ ८ ॥

अपामार्ग (लटजीरा) की जड़का क्षार तथा हरताल एकमें घोटकर लेप करनेसे " लिङ्गार्श " नष्ट होता है ॥ ८ ॥

अपरो लेपः ।

महाबोधिप्रदेशस्य पथ्या कोशातकीरजः ।
फेनेन लेपतो हन्ति लिंगवर्तिमसंशयम् ॥ ९ ॥

छोटी हर्र, कड़ुई तोरई, समुद्रफेन तीनों महीन पीस पानीके साथ लेप करनेसे 'लिङ्गार्श' निःसन्देह नष्ट होता है ॥ ९ ॥

विशेषव्यवस्था ।

वातातिसारवद्भिन्नवर्चास्यर्शांस्युपाचरेत् ।
उदावर्तविधानेन गाढविट्कानि चासकृत् ॥ १० ॥

बवासीरके साथ यदि दस्त आते हों, तो अतीसारके समान और यदि कड़े दस्त आते हों, तो उदावर्तके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १० ॥

तक्रप्राधान्यम् ।

विड्विबन्धे हितं तक्रं यमानीविडसंयुतम् ।
वातश्लेष्मार्शसां तक्रात्परं नास्तीह भेषजम् ॥११॥
तत्प्रयोज्यं यथादोषं सस्नेहं रूक्षमेव वा ।
न विरोहंति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहताः ॥१२॥

मलकी रुकावटमें अजवाइन तथा विडनमक युक्त मट्ठा पिलाना चाहिये । वातकफ-जन्य अर्शके लिये मट्ठेसे बढ़कर

---

१ तक्रलक्षणम् ।-" दधि प्रमथितं पादजलोपेतं सरोज्झितम् । तक्रमत्र समाख्यातं त्रिदोषशमनं परम् । अथवो विड्विबन्धे च-

कोई औषध नहीं है । वह वातजन्य बवासीरमें विना मक्खन निकाले तथा कफजन्यमें मक्खन निकाल कर पीना चाहिये । मट्ठेके सेवनसे नष्ट हुआ अर्श फिर नहीं उत्पन्न होता है॥११॥१२

विशेषतक्रविधानम् ।

त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत् ।
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत् ॥ १३ ॥

ताजी चीतकी जड़की छालको महीन पीसकर घड़ेमें लेप करना चाहिये, फिर उसी घड़ेमें जमाया गया दही अथवा उसी दहीका बनाया मट्ठा पीनेसे अर्श नष्ट होता है ॥ १३ ॥

अभयाप्रयोगाः ।

पित्तश्लेष्मप्रशमनी कच्छूकण्डूरुजापहा ।
गुदजान्नाशयत्याशु योजिता सगुडाभया ॥ १४ ॥
सगुडां पिप्पलीयुक्तामभयां घृतभर्जिताम् ।
त्रिवृद्दन्तीयुतां वापि भक्षयेदानुलोमिकीम् ॥१५ ॥

गुड़के साथ हर्रके चूर्णको खानेसे खुजली, छाले तथा बवासीरके मस्से नष्ट होते हैं । इसी प्रकार घीमें भूंजी गयी हरीतकीका चूर्ण पीपलके चूर्ण तथा गुड़के साथ सेवन करनेसे अथवा निसोथ व दन्तीकी जड़के चूर्णके साथ सेवन करनेसे दस्त साफ आता है । बवासीर नष्ट होती है ॥ १४ ॥

अन्ये योगाः ।

तिलारुष्करसंयोगं भक्षयेदग्निवर्धनम् ।
कुष्ठरोगहरं श्रेष्ठमर्शसां नाशनं परम् ॥ १६ ॥

तिलभल्लातकं पथ्या गुडश्चेति समांशकम् ।
दुर्नामकासश्वासघ्नं प्लीहपांडुज्वरापहम् ॥ १७ ॥
गोमूत्रव्युषितां दद्यात्सगुडां वा हरीतकीम् ।
पञ्चकोलकयुक्तं वा तक्रमस्मै प्रदापयेत् ॥ १८ ॥
मृल्लिप्तं सूरणं कन्दं पक्त्वाग्नौ पुटपाकवत् ।
अद्यात्सतैललवणं दुर्नामविनिवृत्तये ॥ १९ ॥
स्विन्नं वार्ताकुफलं घोषायाः क्षारजन सलिलेन ।
तद् घृतभृष्टं युक्तं गुडेनातृप्तितो योऽत्ति ॥ २० ॥
पिबति च तक्रं नूनं तस्याश्वेवातिवृद्धगुदजानि ॥
यान्ति विनाशं पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण॥२१॥

—तक्रं स्यादमृतोपमम् । न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगा न तक्रसेवी व्यथते कदाचित् । यथा सुराणाममृतं हि स्वर्गे तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ कैलासे यदि तक्रमस्ति गिरिशः किं नीलकण्ठो भवेद्वैकुण्ठे यदि कृष्णतामनुभवेदद्यापि किं केशवः । इन्द्रो दुर्भगतां क्षयं द्विजपतिर्लम्बोदरत्वं गणः कुष्ठित्वं च कुबेरको दहनतामग्निश्च किं विंदति " ॥

असितानां तिलानां प्राक् प्रकुञ्चं शीतवार्यनु ।
खादतोऽर्शांसि नश्यन्ति द्विजदार्ढ्याङ्गपुष्टिदम् २२

तिल तथा शुद्ध भिलावांका चूर्ण अग्निको दीप्त करता है, कुष्ठ तथा अर्शको नष्ट करता है । तथा काले तिल, भिलावा, छोटी हर्र, गुड़ समान भाग ले चूर्ण अथवा गोली बनाकर सेवन करनेसे अर्श, कास, श्वास, प्लीहा, पांडुरोग तथा ज्वर नष्ट होता है । इसी प्रकार गोमूत्रमें बसायी (रात्रिभर भिगोई गयी) बड़ी हर्र गुड़ मिलाकर सेवन करनेसे अथवा पञ्चकोलका चूर्ण मिलाकर मट्ठा पीनेसे अर्श नष्ट होता है । तथा जमीकन्दके ऊपर मिट्टीका लेपकर पुटपाकके विधानसे पका तैल तथा नमक मिलाकर सेवन करनेसे अर्श नष्ट होता है । तथा कड़ुई तोरई क्षार जलसे उबाले गये बैंगनको घीमें भूनकर गुड़के साथ तृप्ति पर्यन्त भोजन कर ऊपरसे मट्ठा पीनेसे निस्सन्देह तत्काल ही अर्श नष्ट हो जाता है तथा सात दिन सेवन करनेसे सहज अर्श भी नष्ट हो जाता है । काले तिल १ पल चबाकर ऊपरसे ठण्डा जल पीनेसे अर्श नष्ट होता है तथा दांत व शरीर पुष्ट होते हैं ॥ १६-२२ ॥

दन्त्यरिष्टः ।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोः पञ्चमूलयोः ।
भागान्पलांशानापोथ्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥२३
त्रिपलं त्रिफलायाश्च दलानां तत्र दापयेत् ।
रसे चतुर्थशेषे तु पूतशीते प्रदापयेत् ॥ २४ ॥
तुलां गुडस्य तत्तिष्ठेन्मासार्धं घृतभाजने ।
तन्मात्रया पिबन्नित्यमर्शोभ्यो विप्रमुच्यते ॥ २५ ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं वातवर्चोऽनुलोमनम् ।
दीपनं चारुचिघ्नं च दन्त्यरिष्टमिदं विदुः ।
पात्रेऽरिष्टादिसंन्धानं धातकीलोध्रलेपिते ॥ २६ ॥

जमालगोटाकी जड़ अथवा छोटी दन्ती, चीतकी जड़, लघु पञ्चमूल, वृहत्पञ्चमूल प्रत्येक एक पल तथा त्रिफलाका छिल्का तीन पल सब दुरकुचाकर एक द्रोण जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार ५ सेर गुड़ मिलाकर घीके बर्तनमें १५ दिन तक रखना चाहिये । फिर छानकर

१ भल्लातक—शोधनविधिः—भल्लातकानि पक्वानि समानीय क्षिपेज्जले । मज्जन्ति यानि तत्रैव शुद्ध्यर्थं तानि योजयेत् । इष्टकाचूर्णनिकरैर्घर्षणे निर्विषं भवेत् ॥

२ इस प्रयोगको ग्रन्थान्तरमें महीने भर रखनेके लिये लिखा है । यथा—" त्रिफलादशमूलाग्निकुम्भानां पलं पलम् । वारिद्रोणे स्थितः पादशेषो गुडतुलायुतः ॥ आज्यभाण्डे स्थितो मासं दन्त्यरिष्टो निषेवितः " ॥ श्रीयुत शिवदासजीने स्मृति द्वैधका दृष्टान्त देकर दोनोंको प्रमाणिक बताया है । मेरे विचारसे शीत, उष्ण, काल भेदसे १५ या १ मास रखना चाहिये, अर्थात् उष्ण कालमें १५ दिन और शीत कालमें एक महीना ।

चार तोलाकी मात्रा पीनेसे अर्श नष्ट हो जाता है, तथा ग्रहणी, पाण्डुरोगोंको भी नष्ट कर मल व वायुकी शुद्धता, अग्निकी दीप्ति तथा अरुचिको नष्ट करता है। इसे 'दन्त्यरिष्ट' कहते हैं। धायके फूल तथा पठानीलोधसे लेप किये पात्रमें अरिष्टादि सन्धान करना चाहिये ॥ २३–२६ ॥

नागराद्यो मोदकः ।

सनागरारुष्करवृद्धदारुकं
गुडेन यो मोदकमत्त्युदारकम् ।
अशेषदुर्नामकरोगदारकं
करोति वृद्धं सहसैव दारकम् ॥ २७ ॥

सोंठ, शुद्ध भिलावां तथा विधायरा तीनोंको गुड़के साथ गोली बना सेवन करनेसे समस्त अर्श नष्ट होते हैं। तथा शरीर बलवान् होता है ॥ २७ ॥

गुडमानम् ।

चूर्णे चूर्णसमो ज्ञेयो मोदके द्विगुणो गुडः ।

गुड़ चूर्णमें चूर्णके समान तथा गोलियोंमें चूर्णसे दूना छोड़ना चाहिये ॥ २८ ॥

प्राणदा गुटिका ।

त्रिपलं शृङ्गवेरस्य चतुर्थं मरिचस्य च ॥ २८ ॥
पिप्पल्याः कुडवार्धं च चव्यायाः पलमेव च ।
तालीशपत्रस्य पलं पलार्धं केशरस्य च ॥ २९ ॥
द्वे पले पिप्पलीमूलादर्धकर्षं च पत्रकात् ।
सूक्ष्मैलाकर्षमेकं तु कर्षं च त्वङ्मृणालयोः ॥३०॥
गुडात्पलानि तु त्रिंशच्चूर्णमेकत्र कारयेत् ।
अक्षप्रमाणा गुटिका प्राणदेति च सा स्मृता॥३१॥
पूर्वं भक्ष्याऽथ पश्चाच्च भोजनस्य यथाबलम् ।
मद्यं मांसरसं यूषं क्षीरं तोयं पिबेदनु ॥ ३२ ॥
हन्यादर्शांसि सर्वाणि सहजान्यस्रजानि च ।
वातपित्तकफोत्थानि सन्निपातोद्भवानि च ॥ ३३ ॥
पानात्यये मूत्रकृच्छ्रे वातरोगे गलग्रहे ।
विषमज्वरे च मन्देऽग्नौ पाण्डुरोगे तथैव च ॥३४॥
क्रिमिहृद्रोगिणां चैव गुल्मशूलार्तिनां तथा ।
श्वासकासपरीतानामेषा स्यादमृतोपमा ॥ ३५ ॥
शुण्ठ्याः स्थानेऽभया देया विड्ग्रहे पित्तवायुजे ।
प्राणदेयं सितां दत्त्वा चूर्णमानाच्चतुर्गुणाम् ॥ ३६ ॥
अम्लपित्ताग्निमान्द्यादौ प्रयोज्या गुदजातुरे ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं व्याधौ श्लेष्मभवे पलम् ॥३७॥
पलद्वयं त्वानिलजे पित्तजे तु पलत्रयम् ।

सोंठ १२ तोला, काली मिर्च ४ तोला, छोटी पीपल ८ तोला, चव्य ४ तोला, तालीशपत्र ४ तोला, नागकेशर २ तोला, पिपरामूल ८ तोला, तेजपात ६ माशे, छोटी इलायची १ तोला, दालचीनी ६ माशे, खश ६ माशे, गुड़ १॥ सेर–सब एकमें मिलाकर १ तोलाकी गोली बनाना चाहिये। इसे "प्राणदा वटी" कहते हैं। इसे भोजनके प्रथम तथा अनन्तर बलके अनुसार सेवन करना चाहिये। ऊपरसे मद्य, मांसरस, यूष, दूध अथवा जल पीना चाहिये। इससे सहज, रक्तज तथा दोषज समस्त बवासीर नष्ट होते हैं। मदात्यय, मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, स्वरभेद, विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डुरोग, क्रिमिरोग, हृद्रोग, गुल्म, शूल, श्वास, तथा कासचे पीड़ित मनुष्योंके लिये यह अमृतके तुल्य लाभदायक होती है। पित्तजन्य अर्शमें सोंठके स्थानमें बड़ी हर्रका छिल्का इसमें छोड़ना चाहिये। "इस प्राणदा वटी" को गुड़के स्थानमें चूर्णमानसे चतुर्गुण मिश्री छोड़ बनाकर अम्लपित्त तथा अग्निमांद्य आदिमें प्रयोग करना चाहिये। श्लेष्मजरोगमें अनुपान १ पल, वातजन्यमें २ पल तथा पित्तजन्यमें ३ पल सेवन करना चाहिये ॥ २८–३७ ॥–

कांकायनगुटिका ।

पथ्यापञ्चपलान्येकमजाज्या मरिचस्य च ॥ ३८ ॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागराः ।
पलाभिवृद्धाः क्रमशो यवाक्षरपलद्वयम् ॥ ३९ ॥
भल्लातकपलान्यष्टौ कन्दस्तु द्विगुणो मतः ।
द्विगुणेन गुडेनैषां वटकानक्षसंमितान् ॥ ४० ॥
कृत्वैनं भक्षयेत्प्रातस्तक्रमम्भोऽनु वा पिबेत् ।
मन्दाग्निं दीपयत्येषा ग्रहणीपाण्डुरोगनुत् ॥ ४१ ॥
कांकायनेन शिष्येभ्यः शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना ।
भिषग्जितमिति प्रोक्तं श्रेष्ठमर्शोविकारिणाम् ॥४२॥

हर्र २० तोला, जीरा सफेद ४ तोला, काली मिर्च ४ तोला, छोटी पीपल ४ तोला, पिपरामूल ८ तोला, चव्य १२ तोला, चीतकी जड़ १६ तोला, सोंठ २० तोला, यवाखार ८ तोला, भिलावा ३२ तोला, जमींकन्द ६४ तोला, सबका चूर्ण बनाकर द्विगुण गुड़से गोली १ तोलेके बराबर बनाना चाहिये। प्रातः-काल १ गोली खाके ऊपरसे मट्ठा या जल पीना चाहिये। यह गोली मन्दाग्निको दीप्त करती है, ग्रहणी तथा पांडुरोगको नष्ट करती है। कांकायनने यह गोली शस्त्रक्षारादिके विना अर्शके

---

१ ग्रन्थान्तरमें इसीको चाशनी बनाकर गोली बनाना लिखा है। यथा वाग्भटः–"पक्त्वैनं गुटिका कार्या गुडेन सितयापि वा। परं हि वह्निसंयोगाल्लघिमानं भजन्ति ताः।" विभिन्न-ग्रन्थोंमें यह योग पाठभेदसे लिखा है।

नष्ट करनेके लिये अपने शिष्योंके लिये बतलायी थी, अत एव इसे 'कांकायनवटी' कहते हैं ॥ ३८-४२ ॥

माणिभद्रमोदकः ।

विडंगसारामलकाभयानां
पलं पलं स्यात्त्रिवृतस्त्रयं च ।
गुडस्य षड् द्वादशभागयुक्ता
मासेन त्रिंशद् गुटिका विधेयाः ॥ ४३ ॥
निवारणे यक्षवरेण सृष्टः
स माणिभद्रः किल शाक्यभिक्षवे ।
अयं हि कासक्षयकुष्ठनाशनो
भगन्दरप्लीहजलोदरार्शसाम् ॥ ४४ ॥
यथेष्टचेष्टान्नविहारसेवी
अनेन वृद्धस्तरुणो भवेच्च ॥ ४५ ॥

वायविडङ्ग, आमला, बड़ी हर्र प्रत्येक ४ तोला, निसोथ १२ तोला, सब कूट छान २४ तोला गुड़ मिलाकर ३० गोली बनाना चाहिये । एक गोली प्रति दिन सेवन करना चाहिये । यह 'माणिभद्र' नामक गोली किसी यक्षने शाक्य भिक्षुके लिये बतलायी थी । यह कास, क्षय, कुष्ट, भगन्दर, प्लीहा, जलोदर तथा अर्शको नष्ट करती है । इसमें किसी प्रकारका परहेज नहीं है । इसके सेवनसे वृद्ध पुरुष भी जवान हो जाता है अर्थात् वाजीकरण भी है ॥ ४३-४५ ॥

स्वल्पशूरणमोदकः ।

मरिचमहौषधचित्रकसूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः ।
सर्वसमो गुडभागःसेव्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥४६
ज्वलनं ज्वलयति जाठरमुन्मूलयति शूलगुल्मगदान् ।
निःशेषयति श्लीपदमर्शांस्यपि नाशयत्याशु ॥ ४७ ॥

काली मिर्च १ भाग, सोंठ २ भाग, चीतकी जड़ ४ भाग, जमीकन्द ८ भाग, गुड़ १५ भाग-सब मिलाकर गोली बनानी चाहिये । इसका फल प्रसिद्ध है । अग्निको दीप्त करती है, उदररोग, शूल, गुल्म, श्लीपद तथा अर्श को शीघ्र ही नष्ट करती है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

बृहच्छूरणमोदकः ।

सूरणषोडशभागा वह्नेरष्टौ महौषधस्यातः ।
अर्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि चार्धेन ॥४८ ॥
त्रिफलाकणासमूलातालीशारुष्करक्रिमिघ्नानाम् ।
भागा महौषधसमा दहनांशा तालमूली च ॥४९॥
भागः सूरणतुल्यो दातव्यो वृद्धदारुकस्यापि ।
भृंगैले मरिचांशे सर्वाण्येकत्र संचूर्ण्य ॥ ५० ॥
द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽयं मोदकः प्रकामधनैः।
गुरुवृष्यभोज्यरहितैस्त्वितरेषूपद्रवं कुर्यात् ॥ ५१ ॥
भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन ।
भीमस्य मारुतेरपि येन तौ महाशनौ जातौ ॥५२॥
अग्निबलवृद्धिहेतुर्न केवलं सूरणो महावीर्यः ।
प्रभवति शस्त्रक्षाराग्निभिर्विनाप्यर्शसामेषः ॥ ५३ ॥
श्वयथुश्लीपदजिद्ग्रहणीमपि कफवातसम्भूताम् ।
नाशयति वलीपलितं मेधां कुरुते वृषत्वं च ॥ ५४॥
हिक्कां श्वासं कासं सराजयक्ष्मप्रमेहांश्च ।
प्लीहानं चाथोग्रं हन्ति सदैतद्रसायनं पुंसाम् ॥५५॥

जमीकन्द १६ भाग, चीतकी जड़ ८ भाग, सोंठ ४ भाग, मिर्च २ भाग, त्रिफला, छोटी पीपल, पिपरामूल, तालीसपत्र, भिलावां, वायविडङ्ग प्रत्येक ४ भाग, स्याहमुसली ८ भाग, विधायरा १६ भाग, भांगरा तथा छोटी इलायची प्रत्येक २भाग—सबका चूर्णकर द्विगुण गुड़ मिला गोली बनाकर इसे धनी पुरुषोंको सेवन करना चाहिये । गरीब लोगोंको इसे न खाना चाहिये, क्योंकि गुरु तथा वाजीकर द्रव्ये न खानेसे यह उपद्रव करता है । इस प्रयोगने प्रथम अगस्त्य तथा भीम हनुमानके भस्मक उत्पन्न कर दिया था, जिससे वे अधिक भोजन करनेवाले हुए । यह अग्नि, बल, बुद्धि तथा वीर्यको बढ़ता है, और शस्त्र क्षारादिके विना ही अर्शको नष्ट करता है । सूजन, श्लीपद तथा कफवात-जन्य ग्रहणीको नष्ट करता है । शरीरकी झुर्रियां तथा बालोंकी सफेदीको दूर करता है । मेधा तथा मैथुनशक्तिको बढ़ाता है । हिचकी, श्वास, कास, राज्जयक्ष्मा, प्रमेह तथा बढ़े हुए प्लीहाको यह नष्ट करता तथा रसायन है ॥ ४८-५५ ॥

सूरणपिण्डी ।

चूर्णीकृताः षोडश सूरणस्य
भागास्ततोऽर्धेन च चित्रकस्य ।
महौषधाद्वौ मरिचस्य चैको
गुडेन दुर्नामजयाय पिण्डी ॥ ५६ ॥
पिण्ड्यां गुडो मोदकवत्पिण्डत्वापत्तिकारकः॥५७॥

सूरणका चूर्ण १६ भाग, चीतकी जड़ ८ भाग, सोंठ, नागरमोथा, काली मिर्च-प्रत्येक एक भाग, चूर्णकर गुड़ मिला गोली बनाकर अर्शके नाशार्थ सेवन करना चाहिये । इसमें गुड़ मोदकके समान अर्थात् समस्त चूर्णसे दूना छोड़ना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

व्योषाद्यं चूर्णम् ।

व्योषाग्न्यरुष्करविडंगतिलाभयानां
चूर्णं गुडेन सहितं तु सदोपयोज्यम् ।

दुर्नामकुष्ठगरशोथशकृद्विबन्धा-
नग्नेर्जयत्यवलतां क्रिमिपाण्डुतां च ॥ ५८ ॥

सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, चीतकी जड़, मिलावां, वायविडंग, काले तिल, वड़ी हर्रका छिल्का-सवका चूर्ण वना गुड़के साथ सेवन करनेसे अर्श, कुष्ठ, कृत्रिम विष, सूजन मलकी रुकावट, क्रिमि तथा पाण्डुरोग नष्ट होते हैं। तथा अग्नि दीप्त होती है ॥ ५८ ॥

समशर्करं चूर्णम् ।

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलं
चूर्णीकृतं क्रमविवर्धितमूर्ध्वमन्त्यात् ।
खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्य-
कासारुचिश्वसनकण्ठहृदामयेषु ॥ ५९ ॥

सोंठ, छोटी पीपल, काली मिर्च, पान, दालचीनी, छोटी इलायची क्रमशः छः पांच, चार, तीन, दो, एक-भाग ले कूट छान सवके समान भाग मिश्री मिलाकर अर्श, अग्निमान्द्य, कास, अरुचि, श्वास, कण्ठ तथा हृदयके रोगोंमें खाना चाहिये ॥ ५९ ॥

लवणोत्तमाद्यं चूर्णम् ।

लवणोत्तमवह्निकलिङ्गयवान्
चिरबिल्वमहापिचुमर्दयुतान् ।
पिब सप्तदिनं मथिताललितान्
यदि मर्दितुमिच्छति पायुरुहान् ॥ ६० ॥

ववासीर नष्ट करनेके लिये सेंधानमक, चीतकी जड़, इन्द्रयव, कञ्जा, वकायनके वीज महीन पीस मट्ठामें मिलाकर सात दिन तक पीना चाहिये ॥ ६० ॥

नागार्जुनयोगः ।

त्रिफला[1]पञ्चलवणं कुष्ठं कटुकरोहिणी ।
देवदारुविड्गानि पिचुमर्दफलानि च ॥ ६१ ॥
वला चातिवला चैव हरिद्रे द्वे सुवर्चला ।
एतत्सम्भृत्य सम्भारं करञ्जत्वग्रसेन च ॥ ६२ ॥
पिष्ट्वा च गुटिकां कृत्वा वदरास्थिसमां बुधः ।
एकैकां तां समुद्धृत्य रोगे रोगे पृथक् पृथक्॥६३॥
उष्णेन वारिणा पीता शान्तमग्निं प्रदीपयेत् ।
अर्शांसि हन्ति तक्रेण गुल्ममम्लेन निर्हरेत् ॥६४॥
जन्तुदष्टं तु तोयेन त्वग्दोषं खदिराम्बुना ।
मूत्रकृच्छ्रं तु तोयेन हृद्रोगं तैलसंयुता ॥ ६५ ॥
इन्द्रस्वरससंयुक्ता सर्वज्वरविनाशिनी ।
मातुलुंगरसेनाथ सद्यः शूलहरी स्मृता ॥ ६६ ॥
कपित्थतिन्दुकानां तु रसेन सह मिश्रिता ।
विषाणि हन्ति सर्वाणि पानाशनप्रयोगतः ॥६७ ॥
गोशकृद्रससंयुक्ता हन्यात्कुष्ठानि सर्वशः ।
श्यामाकषायसहिता जलोदरविनाशिनी ॥ ६८ ॥
भक्तच्छन्दं जनयति भुक्तस्योपरि भक्षिता ।
अक्षिरोगेषु सर्वेषु मधुना घृष्य चाञ्जयेत् ॥ ६९ ॥
लेहमात्रेण नारीणां सद्यः प्रदरनाशिनी ।
व्यवहारे तथा द्यूते संग्रामे मृगयादिषु ॥
समालभ्य नरो ह्येनां क्षिप्रं विजयमाप्नुयात्॥७०॥

त्रिफला, पांचोंनमक, कूठ, कुटकी, देवदारु, वायविडंग, नीमके वीज, खरेटीके वीज, कंघी, हल्दी, दारुहल्दी, हुलहुल, सव कूट कञ्जाकी छालके रसमें घोटकर वेरकी गुठलीके वरावर गोली वना लेना चाहिये । एक एक गोली भिन्न भिन्न रोगोंमें भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ देना चाहिये। गरम जलके साथ मन्दाग्निको, मट्ठे साथ अर्शको, काञ्जीके साथ गुल्मको, जलके साथ कीड़ोंके, विषको, खदिर क्वाथके साथ त्वचाके रोगोंको, जलके साथ मूत्र कृच्छ्को, तैलके साथ हृद्रोगको, इन्द्रयवके क्वाथके साथ समस्त ज्वरोंको, विजौरे निम्बूके रसके साथ शूलको, कैथा तथा तेन्दूके रसके साथ समस्त विषोंको, गायके गोवरके रसके साथ समस्त कुष्ठोंको तथा निसोथके काढ़ेके साथ जलोदरको नष्ट करती है । भोजनके अनन्तर सेवन करनेसे शीघ्र ही भोजनकी इच्छा उत्पन्न करती है । समस्त नेत्ररोगोंमें शहदमें घिसकर लगाना चाहिये । शहदमें ही मिला चाटनेसे स्त्रियोंका प्रदररोग नष्ट होता है । व्यवहार, द्यूत, संग्राम तथा शिकार आदिमें इस गोलीको पास रखनेसे शीघ्र ही सफलता प्राप्त होती है ॥ ६१-७० ॥

विजयचूर्णम् ।

त्रिकत्रयवचाहिङ्गुपाठाक्षारनिशाद्वयम् ।
चव्यतिक्ताकलिङ्गाग्निशताह्वालवणानि च ॥ ७१॥
ग्रन्थिविल्वाजमोदा च गणोऽष्टाविंशतिर्मतः ।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥७२॥
ततो विडालपदकं पिवेदुष्णेन वारिणा ।
एरंडतैलयुक्तं वा सदा लिह्यात्ततो नरः ॥ ७३ ॥
कासं हन्यात्तथा शोथमर्शांसि च भगन्दरम् ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च वातगुल्मं तथोदरम् ॥ ७४ ॥

[1] इस प्रयोगमें आमला व वहेड़ा भी मिलाकर गोली वनानेके लिये ग्रन्थान्तरमें लिखा है । यथा-" गुडूच्यो-पवराचित्रतिलारुष्कविडंगकैः । कृता तु गुडिका हन्ति गुद-जानि विशेषतः । "

हिक्काश्वासप्रमेहांश्च कामलां पाण्डुरोगताम् ।
आमान्वयमुदावर्तमन्त्रवृद्धिं गुदाक्रिमीन् ॥ ७५ ॥
अन्ये च ग्रहणीदोषा ये मया परिकीर्तिताः ।
महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ ७६ ॥
अप्रजानां तु नारीणां प्रजावर्धनमेव च ।
विजयो नाम चूर्णोऽयं कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥७७॥

त्रिकटु, त्रिफला तथा त्रिमद (नागरमोथा, चीतकी जड़, वायविडंग) वच मीठी, भुनी हींग, पाढ़, यवाखार, हल्दी, दारुहल्दी, चव्य, कुटकी, इन्द्रयव, चीतकी जड़, सौंफ, पांचों नमक, पिपरामूल, बेलका गूदा, अजवाइन यह अट्ठाइस चीजें प्रत्येक समान भाग ले महीन चूर्ण कर १ तोलाकी मात्रा गरम जलके साथ सेवन करना चाहिये । अथवा एरण्डतैल मिलाकर चाटना चाहिये । यह चूर्ण कास, सूजन, हृद्रोग, अर्श, भगन्दर, पसलियोंका दर्द, वातगुल्म, उदररोग, हिक्का, श्वास, प्रमेह, कामला, पाण्डुरोग, आमयुक्त उदावर्त, अन्त्रवृद्धि, गुदाके कीड़े तथा ग्रहणीदोषोंको नष्ट करता है । ज्वर तथा भूतोन्मादसे पीड़ित तथा वन्ध्या स्त्रियोंके लिये परम उपकारी है । यह ' विजयचूर्ण ' भगवान् पुनर्वसुने कहा है ॥ ७१-७७ ॥

बाहुशालगुडः ।

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकं शटी ।
गवाक्षीमुस्तविश्वाह्वविडंगानि हरीतकी ॥ ७८ ॥
पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात् ।
षट्पलं वृद्धदारस्य सूरणस्य तु षोडश ॥ ७९ ॥
जलद्रोणद्वये काथ्यं चतुर्भागावशेषितम् ।
पूतं तु तं रसं भूयःकाथ्यस्यत्रिगुणो गुडः ॥८०॥
लेहं पचेत्तु तं तावद्यावद्दर्वीप्रलेपनम् ।
अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ८१॥
त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान्द्विपलांशिकान् ।
एलात्वङ्मरिचं चापि गजाह्वां चापि षट्पलाम्८२
द्वात्रिंशतं पलान्येवं चूर्णं दत्त्वा निधापयेत् ।
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसाशनः ॥ ८३ ॥
पञ्च गुल्मान्प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
जयेदर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च ॥ ८४ ॥
दीपयेद् ग्रहणीं मन्दां यक्ष्माणं चापकर्षति ।
पीनसे च प्रतिश्याये आढ्यवाते तथैव च ॥ ८५॥
अयं सर्वगदेष्वेव कल्याणो लेह उत्तमः ।
दुर्नामारिरयं चाशु दृष्टो वारसहस्रशः ॥ ८६ ॥
भवन्त्येनं प्रयुञ्जानाः शतवर्षं निरामयाः ।
आयुषो दैर्घ्यजननो वलीपलितनाशनः ॥ ८७ ॥
रसायनवरश्चैष मेधाजनन उत्तमः ।
गुडः श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारिः प्रकीर्तितः ८८॥

निसोथ, चव्य, जमालगोटाकी जड़ या छोटी दन्ती, गोखुरू, चीतकी जड़, कचूर, इन्द्रायणकी जड़, नागरमोथा, सोंठ, वायविडंग, हरड़ प्रत्येक ४ तोला, भिलावां ३२ तोले, विधायरा २४ तोला, जमीकन्द ६४ तोला सब दुरकुचाकर २ द्रोण जलमें पचाकर चतुर्थांश शेष रख, छानकर क्वाथ्य औषधियोंसे त्रिगुण (अर्थात् ४९२ तोला) गुड़ मिलाकर अवलेह बनाना चाहिये । जब गाढ़ा हो जाय, तब उतारकर निम्न लिखित औषधियोंका चूर्ण छोड़ना चाहिये । निसोथ, चव्य, जमीकन्द चीतकी जड़ प्रत्येक ८ तोला, इलायची, दालचीनी, काली मिर्च तथा गजपीपल प्रत्येक २४ तोला का चूर्ण बना छोड़कर रखना चाहिये । फिर मात्रासे इसका सेवन करना चाहिये । हजम हो जानेपर दूध तथा मांस रसादि सेवन करना चाहिये । यह पांचोंगुल्म, प्रमेह, पाण्डुरोग, हलीमक, अर्श, उदररोग, ग्रहणी, यक्ष्मा, पीनस, प्रतिश्याय तथा ऊरुस्तम्भको नष्ट करता है । यह समस्त रोगोंमें लाभ पहुंचाता है पर अर्शको विशेषतया नष्ट करता है । यह हजारों बारका अनुभूत है । इसके प्रयोग करनेवाले १०० वर्षतक नीरोग होकर जीते हैं । यह आयुको बढ़ाता, झुर्रियों तथा बालों की सफेदीको नष्ट करता तथा मेधाको बढ़ाता है । यह अर्शको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ ' बाहुशालनामक गुड ' उत्तम रसायन है ॥ ७८-८८ ॥

गुडपाकपरीक्षा ।

तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः ।
क्षिप्तश्च निश्चलस्तिष्ठेत्पतितस्तु न शीर्यते ॥ ८९ ॥
यदा दर्वीप्रलेपः स्याद्यावद्वा तन्तुली भवेत् ।
एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्तितः ॥ ९० ॥
सुखमर्दः सुखस्पर्शो गुडः पाकमुपागतः ।
पीडितो भजते मुद्रां गन्धवर्णरसान्वितः ॥ ९१ ॥

जलसे भरे हुए पात्रमें छोड़नेपर जब उतरावे नहीं और जहां गिरे वहीं बैठ जावे तथा जलमें फैले नहीं और कलछीमें चपकने लग जावे अथवा तार बन्धने लग जावें तथा मर्दन करनेमें, स्पर्श करनेमें अच्छा प्रतीत हो और दो अंगुलियोंके बीचमें दबानेसे अंगुलियोंकी रेखायें बनजावें तथा गन्ध वर्ण व रस उत्तम हो, तब समझना चाहिये कि गुड़ पाक उत्तम हुआ ॥ ८९-९१ ॥

गुडभल्लातकः ।

भल्लातकसहस्रे द्वे जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे रसे तस्मिन्पचेद् गुडतुलां भिषक् ॥ ९२॥
भल्लातकसहस्रार्धं छित्त्वा तत्रैव दापयेत् ।

सिद्धेऽस्मिंस्त्रिफलाव्योषयमानीमुस्तसैन्धवम् ॥९३॥
कर्षांशसंमितं दद्यात्त्वगेलापत्रकेशरम् ।
खादेदग्निबलापेक्षी प्रातरुत्थाय मानवः ॥ ९४ ॥
कुष्ठार्शःकामलामेहग्रहणीगुल्मपाण्डुताः ।
हन्यात्प्लीहोदरं कासक्रिमिरोगभगन्दरान् ।
गडभल्लातको ह्येष श्रेष्ठश्चार्शोविकारिणाम् ॥ ९५ ॥

१ धकुटे शुद्ध भल्लातक २००० दो हजार एक द्रोण जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर ५ सेर गुड़ तथा ५०० पांच सौ भिलावा कूटे हुए डालकर पकाना चाहिये । पाक तैयार हो जानेपर त्रिफला, त्रिकटु, अजवाइन, नागरमोथा, सेंधानमक, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर–सब एक एक तोला ले चूर्ण बना (कपड़छान किया) छोड़ उतारकर रख लेना चाहिये । अग्नि तथा बलके अनुसार इसकी मात्राका प्रातःकाल सेवन करना चाहिये । यह कुष्ठ, अर्श, कामला, प्रमेह, ग्रहणी, गुल्म, पाण्डु, प्लीहोदर, कास, क्रिमिरोग तथा भगन्दरको नष्ट करता है । तथा अर्शरोगवालोंके लिये विशेष हितकर है ॥ ९२–९५ ॥

द्वितीयगुडभल्लातकः ।

दशमूल्यमृता भार्ङ्गी श्वदंष्ट्रा चित्रकं शटी ।
भल्लातकसहस्रं च पलांशं क्राथयेद् बुधः ॥ ९६ ॥
पादशेषे जलद्रोणे रसे तस्मिन्विपाचयेत् ।
दत्त्वा गुडतुलामेकां लेहीभूतं समुद्धरेत् ॥ ९७ ॥
माक्षिकं पिप्पलीं तैलमौरुबूकं च दापयेत् ।
कुडवं कुडवं चात्र त्वगेलामरिचं तथा ॥ ९८ ॥
अर्शः कासमुदावर्तं पाण्डुत्वं शोथमव च ।
नाशयेद्वह्निसादं च गुडभल्लातकः स्मृतः ॥ ९९ ॥

दशमूल, गुर्च, भारङ्गी, गोखुरू, चीतकी जड़, कचूर प्रत्येक द्रव्य ४ तोला, भल्लातक अधकुटे १००० एक हजार सब एक द्रोण जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान ५ सेर गुड़ छोड़कर पकाना चाहिये । जब अवलेह तैयार हो जावे, तो ठण्ढाकर शहद १६ तोला, छोटी पीपलका महीन चूर्ण १६ तोला, शुद्ध एरण्डतैल १६ तोला, दालचीनी १६ तोला, तेजपात १६ तोला, छोटी इलायची १६ तोला, सबका महीन चूर्ण छोड़कर रख लेना चाहिये । यह अर्श, कास, उदावर्त, पाण्डुरोग, शोथ, अभिमान्द्यको नष्ट करता है । मात्रादि ऊपरके प्रयोगके अनुसार है ॥ ९६–९९ ॥

चव्यादिघृतम् ।

चव्यं त्रिकटुकं पाठां क्षारं कुस्तुम्बुरूणि च ।
यमानीं पिप्पलीमूलमुभे च विडसैन्धवे ॥ १०० ॥
चित्रकं बिल्वमभयां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ।
शकृद्वातानुलोम्यार्थं जातं दध्नि चतुर्गुणे ॥१०१॥
प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम् ।
गुदवंक्षणशूलं च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ १०२ ॥

चव्य, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, पाढ़, यवाखार, धनियां, अजवाइन, पिपरामूल, विडनमक, सेंधानमक, चीतकी जड़, बेलका गूदा, बड़ी हर्रका छिल्का सबका कल्क तथा चतुर्गुण दही तथा चतुर्गुण जल मिलाकर घृत पकाना चाहिये । यह घृत प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, दस्तोंका आना, गुदा तथा वंक्षणके शूलको नष्ट करता है ॥ १००–१०२ ॥

पलाशक्षारघृतम् ।

व्योषगर्भं पलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणि ।
साधितं पिबतः सर्पिः पतन्त्यर्शांस्यसंशयम् १०३॥

घृतसे त्रिगुण पलाशक्षार जल, घृतके समान जल और चतुर्थांश सोंठ, मिर्च, पीपलका कल्क छोड़कर पकाया गया घृत सेवन करनेसे अर्शके मस्सोंका अवश्य पातन होता है ॥ १०३ ॥

उदकषट्पलकं घृतम् ।

सक्षारैः पञ्चकोलैस्तु पलिकैस्त्रिगुणोदके ।
समक्षीरं घृतप्रस्थं ज्वरार्शःप्लीहकासनुत् ॥१०४॥

---

१ इसकी मात्रा ६ मासेसे प्रारम्भ कर २ तोला तक क्रमशः बढ़ाना चाहिये, और तैल, मिर्चा (लाल) खटाई, गुड़ आदि गरम चीजोंका परहेज रखना चाहिये तथा प्रतिश्यायमें नहीं खाना चाहिये और धूपमें कम निकलना चाहिये ।

२ भल्लातकके अनेक प्रयोग अनेक ग्रन्थोंमें कुछ पाठान्तर या प्रकरणान्तरसे हैं और सभी रसायन वाजीकरण बताये गये हैं । यथा–योगरत्नाकरवाजीकरणाधिकारमें अमृतभल्लातक तथा अर्शोऽधिकारमें भल्लातकावलेह, गदनिग्रह, लेहाधिकार इत्यादि । पर भल्लातक सेवन करानेके समय यह ध्यान रखना चाहिये कि, किसी किसीको भल्लातकसे शोथ हो जाता है, अतः जिसे शोथ हो जावे, उसे इसका सेवन न कराना चाहिये । तथा भल्लातकदोषनाशार्थ कच्ची गरी खिलाना चाहिये । और काले तिल व गरीका उबटन लगवाना चाहिये । तथा इमलीके पत्तेसे गरम जलसे स्नान कराना चाहिये । यही विधि यदि बनाते समय भल्लातककी छींटे आदि पड़ जानेसे शोथ हो जावे, तो करना चाहिये ।

१ क्षारपक्वघृतलक्षणम्–"यस्मिन्नवसरे क्षारतोयसाध्यघृतादिषु । फेनोद्गमस्य निर्वृत्तिर्दुग्धसमाकृतिः ॥ स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ।" अर्थात् क्षारजलसाध्य घृतोंमें जब फेनोद्गम हो जावे और बिगडे दूधके समान उसकी आकृति हो जावे, तभी सिद्ध घृत समझना चाहिये । दूसरा लक्षण नहीं ।

पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चीतकी जड़, सोंठ तथा यवक्षार प्रत्येक एक पल, घृत एक प्रस्थ, दूध एक प्रस्थ तथा जल ३ प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये, घृत मात्र शेष रहनेपर उतार छानकर रखना चाहिये। यह घृत ज्वर, अर्श, प्लीहा तथा कासको नष्ट करता है॥ १०४॥

सिंहामृतं घृतम्।

पचेद्वारिचतुर्द्रोणे कण्टकार्यमृताशतम्।
तत्राग्नित्रिफलाव्योपपूतिकत्वक्ककलिंगकैः॥ १०५॥
सकाश्मर्यविडंगैस्तु सिद्धं दुर्नाममेहनुत्।
घृतं सिंहामृतं नाम बोधितत्त्वेन भाषितम्॥१०६॥

छोटी कटेरीका पञ्चांग ५ सेर, गुर्च ५ सेर, जल ५१ सेर १६ तोला छोड़कर पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर घृत ३ सेर १६ तोला तथा नीचे लिखी ओषधियोंका मिलित कल्क एक प्रस्थ छोड़कर पकाना चाहिये। कल्क द्रव्य-(चीता, त्रिफला, त्रिकटु, कञ्जाकी छाल, इन्द्रयव, खम्भारकी छाल, वायविडंग)। यह घृत अर्श तथा प्रमेहको नष्ट करता है। इसका सर्व प्रथम किसी बौद्ध महात्माने प्रचार किया था॥ १०५॥ १०६॥

पिप्पलाद्यं तैलम्।

पिप्पली मधुकं विल्वं शताह्वां मदनं वचाम्।
कुष्ठं शटीं पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च॥१०७॥
पिष्ट्वा तैलं विपक्तव्यं द्विगुणक्षीरसंयुतम्।
अर्शसां मूढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम्[1]॥ १०८॥
गुदनिःसरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम्।
कट्यूरुपृष्ठदौर्वल्यमानाहं वङ्क्षणाश्रयम्॥१०९॥
पिच्छास्रावं गुदे शोथं वातवर्चोविनिग्रहम्।
उत्थानं वहुदोषं च जयेच्चैवानुवासनात्॥११०॥

छोटी पीपल, मौरेठी, वेलका गूदा, सौंफ, मैनफल, वच दूधिया, कूठ, कचूर, पोहकरमूल, चीतकी जड़, देवदारु-सब समान भाग ले कल्क बनाकर कल्कसे चतुर्गुण तैल और तैलसे द्विगुण दुग्ध और दुग्धसे द्विगुण जल मिलाकर पका लेना चाहिये। यह तैल अनुवासनसे अर्श, वायुकी रुकावट, कांच निकलना, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, कमर, ऊरु और पीठकी दुर्बलता, अफारा, लसेदार दस्तोंका आना, गुदाकी सूजन, मल तथा वायुका विबन्ध तथा दोषयुक्त वहुत दस्तोंका आना आदि रोगोंको नष्ट करता है॥ १०७-११०॥

रक्तार्शश्चिकित्सा।

रक्तार्शसामुपेक्षेत रक्तमादौ स्रवद्भिषक्।
दुष्टास्रे निगृहीते तु शूलानाहावसृग्गदाः॥ १११॥

बहते हुए रक्तकी प्रथम उपेक्षा ही करना चाहिये। क्योंकि दुष्ट रक्त रोक देनेसे शूल होजाता है तथा रक्तजन्य अन्य रोग भी हो जाते हैं॥ १११॥

रक्तस्रावघ्नी पेया।

लाजैः पेया पीता चुक्रिकाकेशरोत्पलैः।
हन्त्यस्रस्रावं सा तथा वलापृश्निपर्णीभ्याम्॥११२॥

अमलोनिया, नागकेशर तथा नीलोफरके जलमें अथवा खरेटी और पिठिवनके जलमें धानकी खीलसे बनायी गयी पेया सेवन करनेसे रक्तस्राव नष्ट होता है॥ ११२॥

रक्तार्शोनाशकसामान्ययोगाः।

शक्रकाथः सविश्वो वा किंवा विल्वशलाटवः[1]।
योज्या रक्तार्शसां तद्वज्ज्योत्स्निकामूललेपनम्॥११३॥
नवनीततिलाभ्यासात्केशरनवनीतशर्कराभ्यासात्।
दधिसरमथिताभ्यासाद् गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवहाः॥१४
समंगोत्पलमोचाह्वतिरीटतिलचन्दनैः।
छागक्षीरं प्रयोक्तव्यं गुदजे शोणितापहम्॥ ११५॥

---

[1] यद्यपि इस प्रयोगमें 'एकेनापि चातुर्गुण्यं द्वाभ्यामपि चातुर्गुण्यम्' इस परिभाषाके अनुसार द्विगुण ही जल सिद्ध होता है, पर कुछ आचार्योंका मत है कि-"क्षीरद्रव्यारनालैस्तु पाको यत्रेरितः क्वचित्। जलं चतुर्गुणं तत्र वीर्याधानार्थमावपेत्॥" यही उचित भी है-क्योंकि यही प्रयोग-सुश्रुतमें लिखा है। वहांपर कण्ठरवसे ही चतुर्गुण जल लिखा है। यथा-"शटीपुष्करकृष्णाह्वामदनामरदारुभिः। शताह्वकुष्ठयष्ट्याह्ववचाविल्वहुताशनैः। सुपिष्टं द्विगुणं क्षीरं तैलं तोयं चतुर्गुणम्। पक्त्वा बस्तौ निधातव्यं मूढवातानुलोमनम्।" एतदनुसारेण 'तच्छ्रेष्ठमनुवासनम्' इत्यस्य स्थानेऽपि 'तच्छ्रेष्ठमनुलोमनम्'। अर्थात् इसी सिद्धान्तसे 'तच्छ्रेष्ठमनुवासनम्' इसके स्थानमें भी 'तच्छ्रेष्ठमनुलोमनम्' यही होना चाहिये। यदि यह कहो कि यह तैल अनुवासनके लिये है, तो यह अर्थ 'जयेच्चैवानुवासनात्' से ही सिद्ध हो जायगा। और अनुवासन दो वार लिखनेसे पुनरुक्ति दोष भी आता है।

[1] यहां "शक्र" शब्दका अर्थ निश्चल नामक आचार्यके सिद्धान्तसे लिखा गया है और वह विशेषतया रक्तसंग्राहक है। पर शक्रका अर्थ इन्द्रयव (कुटजबीज) न होकर कुटजछाल ही होता है और चरकमें लिखा भी है "कुटजत्वङ्निर्यूहः सनागरः स्निग्धो रक्तसंग्रहणः"। और वाग्भटमें भी इसीका अनुवाद किया गया है। यथा-सकफे प्रपिबेत्पाक्यं शुण्ठीकुटजवल्कजम्"इति दिक्।

इन्द्रयवका काथ सोंठके चूर्णके साथ अथवा वेलके कच्चे गूदेका काथ पीनेसे और कड़वी तोरईकी जड़ पीसकर लेप करनेसे "रक्तार्श" नष्ट होता है। इसी प्रकार मक्खन व काले तिल अथवा कमलका केशर अथवा नागकेशर, मक्खन व मिश्री अथवा दहीका तोड़ व मथे हुए दही (विना मक्खन निकाले मट्ठे) के साथ सेवन करनेसे 'रक्तार्श' शान्त होता है। इसी प्रकार मञ्जीठ, नील कमल, मोचरस, लोध, काले तिल व चन्दनसे सिद्ध अजादुग्धके पीनेसे रक्तार्शसे वहनेवाला खून वन्द होता है। अथवा उपरोक्त औषधियोंका चूर्ण वकरीके दूधके साथ सेवन करना चाहिये ॥ ११३-११५ ॥

कुटजावलेहः ।

कुटजत्वक्पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशिष्टं तु कषायमवतारयेत् ॥ ११६ ॥
वस्त्रपूतं पुनः काथं पचेल्लेहत्वमागतम् ।
भल्लातकं विडंगानि त्रिकटु त्रिफलां तथा ॥११७॥
रसाञ्जनं चित्रकं च कुटजस्य फलानि च ।
वचामतिविषां बिल्वं प्रत्येकं च पलं पलम् ॥११८॥
त्रिंशत्पलानि गुडतः चूर्णीकृत्य निधापयेत् ।
मधुनः कुडवं दद्याद् घृतस्य कुडवं तथा ॥ ११९ ॥
एष लेहः शमयति चार्शो रक्तसमुद्भवम् ।
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥१२०
ये च दुर्नामजा रोगास्तान्सर्वान्नाशयत्यपि ।
अम्लपित्तमतीसारं पाण्डुरोगमरोचकम् ।
ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि ॥ १२१ ॥
अनुपानं घृतं दद्यान्मधु तक्रं जलं पयः ।
रोगानीकविनाशाय कौटजो लेह उच्यते ॥ १२२॥

कुड़ेकी छाल ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोलामें पकाना चाहिये। अष्टमांश शेष रहनेपर उतार छानकर १॥ सेर गुड़ और १६ तोले घी मिलाकर पकाना चाहिये। जव लेह सिद्ध हो जाय, तो भिलावां, वायविडंग त्रिकटु, त्रिफला, रसौत, चीलकी जड़, इन्द्रयव, वच, अतीस, वेलका गूदा प्रत्येक चार चार तोला छोड़ उतार लेना चाहिये। ठण्डा हो जानेपर शहद १६ तोला छोड़कर रख लेना चाहिये। यह लेह रक्तार्श, वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक तथा सहज अर्शको भी नष्ट करता है। और अम्लपित्त, अतीसार, पाण्डुरोग, अरोचक, ग्रहणीरोग, दुर्वलता, सूजन, कामलाको भी नष्ट करता है। अनुपानके लिये गोघृत, शहद, मट्ठा, जल अथवा दूध जो उचित हो, देना चाहिये। यह "कुटजावलेह" रोगसमूहको नष्ट करता है ॥ ११६-१२२ ॥

कुटजरसक्रिया ।

कुटजत्वचो विपाच्यं शतपलमार्द्रं महेन्द्रसलिलेन ।
यावत्स्यादरसं तद् द्रव्यं स्वरसस्ततो ग्राह्यः ॥ १२३ ॥
मोचारसः समंगा फलिनी च पलांशिभिस्त्रिभिस्तैश्च ।
वत्सकबीजं तुल्यं चूर्णीकृतमत्र दातव्यम् ॥ १२४ ॥
पूतोत्कथितः सान्द्रः सरसो दर्वीप्रलेपनो ग्राह्यः ।
मात्राकालोपहिता रसक्रियैषा जयत्यसृक्स्रावम् ॥१२५
छागलीपयसा युक्ता पेया मण्डेन वा यथाग्निबलम् ।
जीर्णौषधश्च शालीन्पयसा कथितेन भुञ्जीत ॥१२६ ॥
रक्तगुदजातिसारं शूलं सासृग्रुजो निहन्त्याशु ।
बलवच्च रक्तपित्तं रसक्रियैषा ह्युभयभागम् ॥ १२७ ॥

गीली कुड़ेकी छाल ५ सेर आकाशसे वर्से हुए एक द्रोण परिमित माहेंद्र[1] जलमें पकाना चाहिये। जव छालका रस जलमें आ जावे, तव उतार छानकर गाढ़ा करना चाहिये। गाढ़ा हो जानेपर मोचरस, मञ्जीठ, प्रियङ्गु प्रत्येक ४ तोले, इन्द्रयव १२ तोला चूर्णकर छोड़ना चाहिये। इसकी मात्रा प्रातःकाल वकरीके दूध या मण्डके साथ सेवन करनेसे रक्तस्रावको वन्द करती है। औषध पच जानेपर शालि चावलोंका भात गरम किये दूधके साथ खाना चाहिये। रक्तार्श, शूल तथा रक्तका वहना तथा बलवान् रक्तपित्त इससे नष्ट होता है ॥ १२३-१२७ ॥

कुटजाद्यं घृतम् ।

कुटजफलत्वक्केशरनीलोत्पललोध्रधातकीकल्कैः ।
सिद्धं घृतं विधेयं शूले रक्तार्शसां भिषजा ॥ १२८ ॥

इन्द्रयव, कुड़ेकी छाल, नागकेशर, नीलोफर, पठानी लोध, धायके फूल, इनका कल्क तथा कल्कसे चतुर्गुण घृत और घृतसे चतुर्गुण जल मिलाकर सिद्ध किया गया घृत रक्तार्शको नष्ट करता है ॥ १२८ ॥

सुनिषण्णकचांगेरीघृतम् ।

अवाक्पुष्पी बला दार्वी पृश्निपर्णी त्रिकण्टकम् ।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः ॥१२९॥
कषाय एष पेष्यास्तु जीवन्ती कटुरोहिणी ।
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवदारु च ॥ १३० ॥

---

१ माहेन्द्र-सलिल ग्रहण करनेकी विधि यह है कि वृष्टि प्रारम्भ होनेके डेढ़ घंटे वाद आकाशसे वरसता हुआ जल साफ वर्तनमें लेना चाहिये। यदुक्तम्-"यामार्द्धोर्ध्वं गृहीतं यद् वृष्टिप्रारम्भकालतः। शुद्धपात्रे वृष्टिजलं तन्माहेन्द्रजलं मतम्"।

कलिङ्गं शाल्मलीपुष्पं वीरा चन्दनमञ्जनम् ।
कट्फलं चित्रकं मुस्तं प्रियङ्ग्वतिविषे स्थिरा ॥१३१
पद्मोत्पलानां किञ्जल्कः समंगा सनिदिग्धिका ।
विल्वं मोचरसं पाठा भागाः स्युः कार्षिकाः पृथक्१३२
चतुष्प्रस्थशृतं प्रस्थं कषायमवतारयेत् ।
त्रिंशत्पलानि तु प्रस्थो विज्ञेयो द्विपलाधिकः ॥१३३
सुनिषण्णकचाङ्गेर्योः प्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च ।
सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १३४ ॥
एतदर्शःस्वतीसारे त्रिदोषे रुधिरस्रुतौ ।
प्रवाहणे गुदभ्रंशे पिच्छासु विविधासु च ॥ १३५॥
उत्थाने चापि बहुशः शोथशूलगुदामये ।
मूत्रग्रहे मूढवाते मन्दाग्नावरुचावपि ॥ १३६ ॥
प्रयोज्यं विधिवत्सर्पिर्बलवर्णाग्निवर्धनम् ।
विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥ १३७ ॥

सौंफ या सोवाके बीज, खरेंटीके बीज, दारुहल्दी, पिठिवन, गोखरू, बरगद, गूलर, पीपलके नवीन अंकुर प्रत्येक ८ तोला, ६ सेर ३२ तोला जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये । फिर इतना ही पतियाका स्वरस और इतना ही अमलोनियाका स्वरस तथा इतना ही घृत और इतनाही जल तथा नीचे लिखी ओषधियोंका कल्क छोड़कर घृत सिद्ध करना चाहिये । कल्कद्रव्य—जीवंती, कुटकी, छोटी पीपल, पिपरामूल, काली मिर्च, रसौत, देवदारु, इन्द्रयव, सेमरके फूल, शतावरी, लाल चन्दन, कायफल, चीतकी जड़, नागरमोथा, प्रियङ्गु, अतीस, शालपर्णी, नील कमलका केशर, मजीठ, छोटी कटेरी, बेलगिरी, लाल कमल तथा मोचरस और पाढ़ प्रत्येक एक एक तोला ले कल्क बना कर छोड़ना चाहिये । त्रिदोषज अतिसार, रक्तस्राव, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, लासेदार दस्तोंका आना, बहुत दस्तोंका आना, सूजन, शूल, अर्श, मूत्रावरोध, वायुकी रुकावट, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोगोंमें अनेक प्रकारके अन्न पानादिके साथ अथवा केवल इस घृतका प्रयोग करना चाहिये १२९–१३७

क्षारविधिः ।

प्रशस्तेऽहनि नक्षत्रे कृतमंगलपूर्वकम् ।
कालमुष्ककमाहृत्य दग्ध्वा भस्म समाहरेत् ॥१३८॥

आढकं त्वेकमादाय जलद्रोणे पचेद्भिषक् ।
चतुर्भागावशिष्टेन वस्त्रपूतेन वारिणा ॥ १३९ ॥
शङ्खचूर्णस्य कुडवं प्रक्षिप्य विपचेत्पुनः ।
शनैः शनैस्तु मृद्वग्नौ यावत्सान्द्रतनुर्भवेत् ॥ १४०॥
सर्जिकायावशूकाभ्यां शुण्ठी मरिचपिप्पली ।
वचा चातिविषा चैव हिंगुचित्रकयोस्तथा ॥१४१॥
एषां चूर्णानि निक्षिप्य पृथक्त्वेनाष्टमापकम् ।
दर्व्या संघट्टितं चापि स्थापयेदायसे घटे ।
एष वह्निसमः क्षारः कीर्तितः काश्यपादिभिः॥१४॥

अच्छे दिन तथा मुहूर्तमें मङ्गलाचरण आदि करके इतना काला मोखा लाकर जलाना चाहिये कि एक आढक अर्थात् तीन सेर १६ तोला भस्म तैयार हो जावे । फिर उस भस्मको एक द्रोण अर्थात् १२ सेर ६४ तोला जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार कर कई बार छान लेना चाहिये । फिर उस जलमें १६ तोला शंखकी भस्मका चूर्ण छोड़कर मन्द आंचसे पकाना चाहिये, जब तक कि कुछ गाढ़ा न हो जाय । पुनः सज्जीखार, यवाखार, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, दूधिया वच, अतीस, भुनी हींग, चीतकी जड़ प्रत्येकका चूर्ण ६ माशे (वर्तमानतौलसे) छोड़ कलछीसे चलाकर लोहपात्रमें रखना चाहिये । यह अग्निके समान तेज क्षार काश्यपादि महर्षियोंने बतलाया है ॥ १३८–१४१ ॥

प्रतिसारिणीयक्षारविधिः ।

तोये कालकमुष्ककस्य विपचेद्भस्माढकं षड्गुणे ।
पात्रे लोहमये दृढे विपुलधीर्दर्व्या शनैर्घट्टयन् ।
दग्ध्वाग्नौ बहुशङ्खनाभिशकलान्पूतावशेषे क्षिपे-
द्यद्येरण्डजनालमेष दहति क्षारो वरो वाक्शतात् ॥१४३
प्रायस्त्रिभागाशिष्टेऽस्मिन्नच्छपैच्छिल्यरक्तता ।
सञ्जायते तदा स्राव्यं क्षाराम्भो ग्राह्यमिष्यते ॥१४४॥
तुर्येणाष्टमकेन षोडशभवेनांशेन संव्यूहिमो
मध्यः श्रेष्ठ इति क्रमेण विहितःक्षारोदकाच्छंखकः१४५

काले मोखाकी भस्म ३ सेर १६ तोला, जल षड्गुण छोड़कर मजबूत लोहेकी कड़ाईमें कलछीसे धीरे धीरे चलाते हुए पकाना चाहिये । तृतीयांश शेष रहनेपर उतार छान शंखकी नाभिकी भस्म छोड़कर पुनः उस समय तक पकाना चाहिये कि एरन्डनाल इसमें १०० मात्रा उच्चारण काल तक रखनेसे जल जाय । यह उत्तम क्षार होगा । प्रायः तृतीयांश क्षारजल रह जानेपर स्वच्छता, लालापन तथा लालिमा आजाती है । उस समय छानकर क्षारजल लेना चाहिये । क्षारोदकसे चतुर्थांश, अष्टमांश, षोडशांश शंख भस्म छोड़नेसे क्रमशः संव्यूहिम (अर्थात्—मृदु) मध्यम तथा श्रेष्ठ क्षार बनता है ॥ १४२–१४५ ॥

---

१ " चतुर्गुणं त्वष्टगुणं द्रवद्वैगुण्यतो भवेत् " इस परिभाषाके अनुसार यद्यपि ४ प्रस्थका प्रस्थ ही लिया जाता अर्थात् ३२ पलका ही द्रवद्रव्यका प्रस्थ माना जाता है, फिर " त्रिंशत्पलानि तु प्रस्थो विज्ञेयो द्विपलाधिकः " इससे सिद्ध होता है कि द्रवद्वैगुण्य कारक परिभाषा अनित्य है अर्थात् सब जगह नहीं लगती । पर कुछ आचार्योंका मत है कि इसे शिष्योंके सुगम बोधार्थ ही लिखा है ।

क्षारपाकनिश्चयः ।

नातिसान्द्रो नातितनुः क्षारपाक उदाहृतः ।
दुर्नामकादौ निर्दिष्टः क्षारोऽयं प्रतिसारणः ॥१४६॥
पानीयो यस्तु गुल्मादौ तं वारानेकविंशतिम् ।
स्रावयेत्षड्गुणे तोये केचिदाहुश्चतुर्गुणे ॥ १४७ ॥

प्रतिसारण (लगानेवाला) क्षार न बहुत पतला न बहुत गाढ़ा पकाना चाहिये । अर्श आदिपर इसका प्रयोग होता है । पीनेके योग्य जो गुल्मादि नाशार्थ क्षार बनाया जाता है, उसमें भस्म षड्गुण या चतुर्गुण जलमें २१ वार छान ली जाती है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

क्षारसूत्रम् ।

भावितं रजनीचूर्णैः स्नुहीक्षीरे पुनः पुनः ।
बन्धनात्सुदृढं सूत्रं भिनत्त्यर्शो भगन्दरम् ॥१४८॥

हल्दीके चूर्णके साथ थूहरके दूधमें अनेक वार भावित सूत्र कसकर अर्शके ऊपर वांध देनेसे अर्श कटकर गिर जाता है ॥ १४८ ॥

क्षारपातनविधिः ।

प्राग्दक्षिणं ततो वामं पृष्ठजं चाग्रजं क्रमात् ।
पञ्चतिक्तेन संस्निह्य दहेत्क्षारेण वह्निना ॥१४९॥
वातजं श्लेष्मजं चार्शः क्षारेणास्रजपित्तजे ।
महान्ति तनुमूलानि छित्त्वैव बलिनो दहेत् ॥१५०॥
चर्मकीलं तथा छित्त्वा दहेदन्यतरेण वा ।
पक्वजम्बूपमो वर्णः क्षारदग्धः प्रशस्यते ॥ १५१ ॥
गोजीशेफालिकापत्रैरर्शः संलिख्य लेपयेत् ।
क्षारेण वाक्शतं तिष्ठेद्यन्त्रद्वारं पिधाय च ॥१५२॥

प्रथम दक्षिणसे क्षार कर्म या दाह प्रारम्भ करना चाहिये । प्रथम दक्षिण फिर वाम फिर पृष्ठवंशकी ओरका फिर अग्रभागके मस्सेको पञ्चतिक्तघृतसे स्निग्ध कर क्षार अथवा अग्निसे वातज या कफज अर्श दागना चाहिये । पित्तसे तथा रक्तसे उत्पन्न अर्श क्षारसे दग्ध करना चाहिये । पर जो मस्से बड़े हों और उनकी जड़ पतली हो, उन्हें शस्त्रद्वारा काट कर ही जलाना चाहिये । तथा चर्मकीलको शस्त्रसे काटकर क्षार अथवा अग्निसे जला देना चाहिये । क्षारसे जला हुआ यदि पके जामुनके सदृश नीला हो जाय, तो उसे उत्तम समझना चाहिये । अर्शको गाजुवा या सम्भालू आदि किसी कर्कश पत्रसे खुरचकर यन्त्र लगा सलाईसे क्षार लेपकर १०० मात्रा उच्चारण कालतक यन्त्रको बन्द रखन चाहिये ॥ १४९–१५२ ॥

क्षारेण सम्यग्दग्धस्य लक्षणम् ।

तं चापनीय वीक्षेत [1]पक्वजम्बूफलोपमम् ।
यदि च स्यात्ततो भद्रं नो चेल्लिम्पेत्तथा पुनः ॥१५३॥

फिर उस यन्त्रको निकालकर देखना चाहिये । यदि पके जामुनके फलके समान हो गया हो, तो ठीक, अन्यथा फिर उसी प्रकार लेप करना चाहिये ॥ १५३ ॥

क्षारदग्ध उत्तरकर्म ।

तत्तुषाम्बुप्लुतं साज्यं यष्टीकल्केन लेपयेत् ।

सम्यग्दग्ध व्रणको भूसीयुत धानकी काञ्जीसे सिंचित कर घी चुपर मौरेठीके कल्कका लेप करना चाहिये ।

अग्निदग्धलक्षणम् ।

न निम्नं तालवर्णाभं वह्निदग्धं स्थितासृजम् ॥

सम्यग्दग्धमें नीचा नहीं होता तालके वर्णयुक्त अर्थात् मुलायम सफेदी लिये होता है और रक्त रुक जाता है ॥ १५४ ॥

अग्निदग्ध उत्तरकर्म ।

निर्वाप्य मधुसर्पिर्भ्यां वह्निसञ्जातवेदनाम् ।
सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनगैरिकैः ॥ १५५ ॥
सामृतैः सर्पिषा युक्तैरालेपं कारयेद्भिषक् ।
मुहूर्तमुपवेश्योऽसौ तोयपूर्णेऽथ भाजने ॥ १५६ ॥

---

१ क्षारविधि सुश्रुत तथा वाग्भटसे विस्तारपूर्वक समझनी चाहिये । यहां सामान्य वर्णन किया गया है । पानीय क्षारमें विशेषता यह है कि कुछ आचार्योंका मत है कि चतुर्गुण या षड्गुण जलमें २१ वार छान लेनेसे ही पानीय क्षार तयार हो जाता है, पर कुछ आचार्योंका मत है कि भस्मको चतुर्गुण जलमें २१ वार छानकर छना हुआ जल कल्क सहित पकाना चाहिये, आधा बाकी रहनेपर कल्कपृथक् कर २१ वार छान लेना चाहिये । यही विधि विश्वामित्रने भी लिखी है । यथा–" पानाय भावनायाथ परिस्राव्यं चतुर्गुणे । जले चार्धावशिष्टे च क्षाराम्भो ग्राह्यमिष्यते ॥ " पानीयक्षारकी मात्रा पल, तीन कर्ष, या अर्द्ध पलरूप श्रीशिवदासजीने लिखी है । पर आजकलके लिये यह भी अधिक है । आजकल ६ मासे १ तोला और २ तोले क्रमशः हीन मध्यम उत्तम मात्रा समझना चाहिये ।

---

१ क्षारदग्धके सम्बन्धमें वाग्भटने लिखा है–" पक्वजम्ब्वसितं सन्नं सम्यग्दग्धं विपर्यये । ताम्रतातोदकण्ड्वाद्यैर्दुर्दग्धं तं पुनर्दहेत् ॥ अतिदग्धे स्रवेदर्क्तं मूर्छादाहज्वरादयः । विशेषादत्र सेकोऽम्लैर्लेपो मधु घृतं तिलाः ॥ वातपित्तहरा चेष्टा सर्वैव शिशिरा क्रिया । अम्लो हि शीतः स्पर्शेन क्षारस्तेनोपसंहितः ॥ यात्याशु, स्वादुतां तस्मादम्लैर्निर्वापयेत्तराम् ॥ "

अग्निसे उत्पन्न हुई पीड़ाको घी और शहद लगा कर शान्त करना चाहिये । तथा सम्यग्दग्धमें वंशलोचन प्लक्षकी छाल, सफेद चन्दन, गेरू और गुर्च सब महीन पीस घी मिलाकर लेप करना चाहिये । फिर जलसे भीगे हुए टवमें कुछ देर (दो घड़ीतक) बैठना चाहिये ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

उपद्रवचिकित्सा ।

क्षारमुष्णाम्बुना पाय्यं विबन्धे मूत्रवर्चसोः ।
दाहे वस्त्यादिजे लेपः शतधौतेन सर्पिषा ॥१५७॥
नवान्नं माषतक्रादि सेव्यं पाकाय जानता ।
पिबेद् व्रणविशुद्ध्यर्थं वराकाथं सगुग्गुलुम् ॥१५८॥

मल और मूत्रकी रुकावटमें गरम जलके साथ क्षार पिलाना चाहिये । यदि वस्त्यादिमें जलन हो तो १०० बार धोये हुए घृतका लेप करना चाहिये । यदि व्रण पकता हुआ जान पड़े, तो नवान्न, उड़द और मट्ठा आदि सेवन करना चाहिये । व्रणकी शुद्धिके लिये त्रिफलाकाथ शुद्ध गुग्गुलुके साथ पीना चाहिये ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

पथ्यम् ।

जीर्णे शाल्यन्नमुद्गादि पथ्यं तिक्ताज्यसैन्धवम् ॥१५९॥

भूख लगनेपर उत्तम चावलोंका भात, मूँगकी दाल, तिक्त औषधियां अथवा उनसे सिद्ध पञ्चतिक्त घृत, सेंधानमक आदि पथ्य लेना चाहिये ॥ १२९ ॥

अनुवासनावस्था ।

रूढसर्वव्रणं वैद्यः क्षारं[1] दत्त्वानुवासयेत् ।
पिप्पल्याद्येन तैलेन सेवेद्दीपनपाचनम् ॥ १६० ॥

समस्त व्रण ठीक हो जानेपर क्षार मिलाकर पिप्पल्यादि तैलसे अनुवासन वस्ति देना चाहिये । और दीपन पाचन औषधियोंका सेवन करना चाहिये ॥ १६० ॥

अग्निमुखं लौहम् ।

त्रिवृच्चित्रकनिर्गुण्डीस्नुहीमुण्डतिकाजटाः ।
प्रत्येकशोऽष्टपलिका जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पलत्रयं विडंगस्य व्योषात्कर्षत्रयं पृथक् ॥ १६१ ॥
त्रिफलायाः पञ्च पलं शिलाजतु पलं न्यसेत् ।
दिव्यौषधिहतस्यापि वैकंकतहतस्य वा ॥ १६२ ॥
पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहे सुचूर्णितम् ।
पलैश्चतुर्विंशतिभिर्मधुशर्करयोर्युतम् ॥ १६३ ॥
घनीभूते सुशीते च दापयेदवतारिते ।
एतदग्निमुखं नाम दुर्नामान्तकरं परम् ॥ १६४ ॥
सममग्निं करोत्याशु कालाग्निसमतेजसम् ।
पर्वता अपि जीर्यन्ते प्राशनादस्य देहिना ॥ १६५॥
गुरुवृष्यान्नपानानि पयोमांसरसो हितः ।
दुर्नामपांडुश्वयथुकुष्ठप्लीहोदरापहम् ॥ १६६ ॥
अकालपलितं चैतदामवातगुदामयम् ।
न स रोगोऽस्ति यं चापि न निहन्यादिदं क्षणात् १६७
करीरकाञ्जिकादीनि ककारादीनि वर्जयेत् ।
स्रवत्यतोऽन्यथा लौहं देहात्किट्टं च दुर्जरम् ॥१६८

निसोथ, चीतकी जड़, सम्भालूका पञ्चाङ्ग, थूहर, मुण्डीकी जड़ प्रत्येक आठ पल एक द्रोण जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर वायविडंग १२ तोला, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल प्रत्येक तीन तोला, आमला, हर्र, बहेड़ा प्रत्येक २० तोला, शिलाजतु ४ तोला, मनःशिला अथवा विकंकतसे भस्म किया हुआ तीक्ष्ण लौह ४८ तोला छोड़कर पकाना चाहिये । जब गाढ़ा पाक होजाय, तो उतार ठण्डाकर मधु ४८ तोला और शक्कर शुद्ध ४८ तोला मिलाकर रखना चाहिये । यह ' अग्निमुख लौह ' अर्शको नष्ट करनेमें उत्तम है, शीघ्र ही समाग्निको दीप्त कर देता है । इसके सेवनसे मनुष्य कठिन चीजोंको भी हजम कर डालता हैं । इसमें भारी, वाजीकर, अन्नपान दुग्ध तथा मांसरस हितकर हैं। अर्श, पाण्डु, सूजन, कुष्ट तथा प्लीहाको नष्ट करता हैं । असमय वालोंका सफेद हो जाना और आमवात आदि ऐसा कोई रोग नहीं है, जिसे यह शीघ्र ही नष्ट न कर दे । करीर, कांजी, करेला आदि ककारादि द्रव्य न सेवन करना चाहिये । अन्यथा लौह और किट्ट दुर्जर होनेसे विना पचे ही निकल जाता है ॥ १६१–१६८ ॥

---

[1] यद्यपि शिवदासजीने यहां पर ' क्षारं दत्त्वा ' का अर्थ क्षारवस्ति देकर किया है, पर श्रीमान् चक्रपाणिजीने क्षारवस्तिका कोई स्वतन्त्र विधान नहीं लिखा । अतः प्रतीत होता है कि उनको क्षार मिलाकर पिप्पल्यादि तैलसे ही अनुवासन देना अभीष्ट था ॥ २ " अज्झटेत्यपि पाठः । अज्झटा= भूम्यामलकी । '

1 यहां उक्त न होनेपर भी वैद्यलोग २४ पल घी छोड़ते हैं । क्योंकि घीके विना लौह पाक नहीं होता, शक्कर और घीके साथ पाक करना चाहिये और शहद ठण्डा हो जानेपर छोड़ना चाहिये । मनःशिलासे संक्षिप्त लौह मारणविधि—"लोहचूर्णं सुविमले पादांशां विमलां शिलाम् । दत्त्वा कुमारीपयसा वैकङ्कतजलेन वा ॥ सम्पेष्य भिषजां वर्यः पुटयेत्सम्पुटस्थितम् । एवं नातिचिरेणैव लौहं तु सुमृतं भवेत् ॥"

भल्लातकलौहम् ।

चित्रकं त्रिफला मुस्तं ग्रन्थिकं चविकामृता ।
हस्तिपिप्पल्यपामार्गदण्डोत्पलकुठेरकाः ॥ १६९ ॥
एषां चतुष्पलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ।
भल्लातकसहस्रे द्वे छित्त्वा तत्रैव दापयेत् ॥१७० ॥
तेन पादावशेषेण लोहपात्रे पचेद्भिषक् ।
तुलार्धं तीक्ष्णलोहस्य घृतस्य कुडवद्वयम् ॥ १७१ ॥
त्र्यूषणं त्रिफलावह्निसैन्धवं विडमौद्भिदम् ।
सौवर्चलविडंगानि पलिकांशानि कल्पयेत् ॥१७२॥
कुडवं वृद्धदारस्य तालमूल्यास्तथैव च ।
सूरणस्य पलान्यष्टौ चूर्णं कृत्वा विनिक्षिपेत् ॥१७३
सिद्धे शीते प्रदातव्यं मधुनः कुडवद्वयम् ।
प्रातर्भोजनकाले च ततः खादेद्यथाबलम् ॥ १७४॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं पाण्डुरोगमरोचकम् ।
क्रिमिगुल्माश्मरीमेहाञ्शूलं चाशु व्यपोहति ॥१७५
करोति शुक्रोपचयं वलीपलितनाशनम् ।
रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ॥ १७६ ॥

चीतकी जड़, आमला, हर्र, बहेड़ा, नागरमोथा, पिपरामूल, चव्य, गुर्च, गजपीपल, लटजीराकी जड़, सफेद फूलकी सहदेवी, सफेद तुलसी प्रत्येक १६ तोला ले दुरकुचाकर दुरकुट किये हुए भिलावें २००० डालकर एक द्रोण (१२ से० ६४ तोला द्रवद्वैगुण्यात् २५ सेर ९ छ० ३ तो०) जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर तीक्ष्ण लौहभस्म २॥ सेर, घी ३२ तोला, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, त्रिफला, चीतकी जड़, सेंधानमक, विड़लवण, खारी नमक, काला नमक, वायविड़ंग—प्रत्येक चार चार तोला विधायरा १६ तोला, मुसली १६ तोला, जमींकन्द ३२ तोला ले सबका महीन चूर्ण छोड़कर पकाना चाहिये । तैयार हो जानेपर उतार ठण्ढाकर मधु ३२ तोला छोड़कर रखना चाहिये । इसे प्रातः काल तथा भोजनके समय बलानुसार २ माशेसे १ तोला तक सेवन करना चाहिये । यह अर्श, ग्रहणीदोष, पाण्डुरोग, अरोचक, क्रिमिरोग, गुल्म, पथरी, प्रमेह तथा शूलको शीघ्र ही नष्ट करता है । वीर्यको बढ़ाता तथा शरीरके सिमटे व बालोंकी सफेदीको नष्ट करता है । यह श्रेष्ठ रसायन समस्त रोगोंको दूर करता है ॥ १६९–१७६ ॥

१ भल्लातक शुद्ध कर छोड़ना चाहिये । उसकी शोधन विधि आयुर्वेदविज्ञानमें निम्न लिखित हैः—" भल्लातकानि पक्कानि समानीय क्षिपेज्जले । मज्जन्ति यानि तत्रैव शुद्ध्यर्थं तानि योजयेत् ॥ इष्टिकाचूर्णनिकषैर्मर्दनान्निर्मलं भवेत् । अर्थात् भल्लातक प्रथम जलमें छोड़ना चाहिये । जो जलमें डूब जायें, उन्हें निकालकर ईंटके चूरेके साथ रगड़वाना चाहिये । पर हाथसे न रगड़कर किसी पात्र द्वारा रगड़ना अधिक उत्तम है ।

अर्शोघ्नी वटी ।

रसस्तु पादिकस्तुल्या विडंगमरिचाभ्रकाः ।
गंगापालंकजरसे खल्वयित्वा पुनः पुनः ॥ १७७ ॥
रक्तिमात्रा गुदार्शोघ्नी वह्निरत्यर्थदीपनी ।

रस (रससिन्दूर) १ तोला, वायविड़ंग, काली मिर्च अभ्रकभस्म प्रत्येक ४ तोला जलपालकके रसमें अनेक बार घोटकर १ रत्तीकी बनायी गयी गोली अग्निको दीप्त करती तथा अर्शको नष्ट करती है ॥ १७७ ॥

परिवर्जनीयानि ।

वेगावरोधस्त्रीपृष्ठयानमुत्कटकासनम् ।
यथास्वं दोषलं चान्नमर्शसः परिवर्जयेत् ॥ १७८ ॥

मूत्रपुरीषादिवेगावरोध, मैथुन, घोड़े आदिकी सवारी, उत्कुटुआं बैठना तथा जिस दोषसे अर्श हो, तद्दोषकारक अन्नपानादिका त्याग करना चाहिये ॥ १७८ ॥

इत्यर्शोऽधिकारः समाप्तः ।

अथाग्निमांद्याधिकारः ।

चिकित्साविचारः ।

समस्य रक्षणं कार्यं विषमे वातनिग्रहः ।
तीक्ष्णे पित्तप्रतीकारो मन्दे श्लेष्मविशोधनम् ॥ १॥

समाग्निकी रक्षा करनी चाहिये, विषमाग्निमें वातनाशक, तीक्ष्णाग्निमें पित्तनाशक और मन्दाग्निमें कफशोधक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

हिंग्वष्टकं चूर्णम् ।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे
समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः ।
प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेत—
ज्जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्यात् ॥२॥

१ रससिन्दूरनिर्माणविधिः—" पलमात्रं रसं शुद्धं तावन्मात्रं तु गन्धकम् । विधिवत्कज्जलीं कृत्वा न्यग्रोधाङ्कुरवारिभिः ॥ भावनात्रितयं दत्त्वा स्थालीमध्ये निधापयेत् । विरच्य कवचयिन्त्रं वालुकाभिः प्रपूरयेत् ॥ दद्यात्तदनु मन्दाग्निं भिषग्यामचतुष्टयम् । जायते रससिन्दूरं तरुणादित्यसन्निभम् ॥ "

सोंठ, मिर्च, पीपल, अजमोदा, सेंधानमक, सफेद जीरा, स्याह जीरा और भूनी हींग–सब समान भाग ले कूट कपड़छानकर चूर्ण बना लेना चाहिये । भोजनके समय प्रथम ग्रासमें घीके साथ खानेसे यह चूर्ण अग्निको दीप्त तथा वातरोगोंको नष्ट करता है ॥ २ ॥

अग्निदीपकाः सामान्याः योगाः ।

समयवशूकमहौषधचूर्णं लीढं घृतेन गोसर्गे ।
कुरुते क्षुधां सुखोदकपीतं सद्यो महौषधं चैकम् ॥३॥
अन्नमण्डं पिबेदुष्णं हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ।
विषमोऽपि समस्तेन मन्दो दीप्येत पावकः ॥ ४ ॥

प्रातःकाल घीके साथ समान भाग यवाखार और सोंठका चूर्ण चाटनेसे अथवा केवल सोंठका चूर्ण चाटनेसे अथवा केवल सोंठका चूर्ण गरम जलके साथ पीनेसे अग्नि दीप्त होता है । भातका मांड़ गरम गरम भूनी हींग व काला नमकका चूर्ण छोड़कर पीना चाहिये । इससे विषमाग्नि सम और मन्दाग्नि दीप्त होती है ॥ ३ ॥ ४ ॥

मण्डगुणाः ।

क्षुद्बोधनो बस्तिविशोधनश्च
प्राणप्रदः शोणितवर्धनश्च ।
ज्वरापहारी कफपित्तहन्ता
वायुं जयेदष्टगुणो हि मण्डः ॥ ५ ॥

माँड़में आठ गुण होते हैं । यह (१) भूखको बढ़ाता,(२) मूत्राशयको शुद्ध करता, (३) बल तथा रक्तको बढ़ाता, ज्वर (४) तथा कफ, पित्त, वायु तीनोंको (५–८) नष्ट करता है ॥ ५ ॥

अत्यग्निचिकित्सा ।

नारीक्षीरेण संयुक्तां पिबेदौदुम्बरीं त्वचम् ।
आभ्यां वा पायसं सिद्धं पिबेदत्यग्निशान्तये ॥ ६ ॥
यत्किञ्चिद् गुरु मेध्यं च श्लेष्मकारि च भेषजम् ।
सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥ ७ ॥

१ यहांपर अंतःपरिमार्जन होनेसे "अजमोद" शब्दसे अजवाइन ही लेना चाहिये । ऐसा ही समग्र खानेके प्रयोगोंमें लेना चाहिये । केवल लगानेके लिये अजमोद लेना चाहिये । इस प्रयोगमें हिंगुके विषयमें भी बड़ी शङ्कायें हैं । कुछ लोगोंका कथन है कि एक भागसे अष्टमांश हिंगु । कुछ लोगोंका कथन है कि, सातोंसे अष्टमांश । पर मेरे विचारसे "अष्टम" शब्द पूरणार्थक प्रत्ययसे निष्पन्न होनेके कारण " सप्त भागाः पूर्वमुक्ता अष्टमो हिंगुभागः " इस सिद्धान्तसे हींग बराबर ही छोड़ना चाहिये । इसकी मात्रा १॥ मासेसे ३ मासे तक देना चाहिये॥

मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपि भोज्यमस्योपकल्पयेत् ।
निरिन्धनोऽन्तरं लब्ध्वा यथैनं न निपातयेत् ॥ ८ ॥

स्त्रीके दूधके साथ गूलरकी छालका चूर्ण अथवा इसीसे सिद्ध की हुई खीर अत्यग्निशान्तिके लिये खाना चाहिये । जो द्रव्य गुरु, मेध्य, कफको बढ़ानेवाले होते हैं, वे सब अत्यग्निवालेंके लिये हितकर हैं, तथा दिनमें भोजन कर सोना भी हितकर है । अजीर्णमें भी इसे बार बार भोजन कराना चाहिये । जिससे कि अग्नि अवकाश पाकर इसे नष्ट न कर दे ॥ ६–८ ॥

विश्वादिक्काथः ।

विश्वाभयागुडूचीनां कषायेण षडूषणम् ।
पिबेच्छ्लेष्मणि मन्देऽग्नौ त्वक्पत्रसुरभीकृतम् ॥९॥
पञ्चकोलं समरिचं षडूषणमुदाहृतम् ।

सोंठ, बड़ी हर्रका छिलका तथा गुर्चके काढ़ेमें षडूषणका चूर्ण व दालचीनी, तेजपातका चूर्ण छोड़ पीनेसे कफका नाश तथा अग्नि दीप्त होती है । काली मिर्चके सहित पञ्चकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) को ' षडूषण ' कहा जाता है ॥ ९ ॥–

अग्निदीपका योगाः ।

हरीतकी भक्ष्यमाणा नागरेण गुडेन वा ।
सैन्धवोपहिता वापि सातत्येनाग्निदीपनी॥१०
सिन्धूत्थपथ्यमगधोद्भववह्निचूर्ण-
मुष्णाम्बुना पिबति यः खलु नष्टवह्निः ।
तस्यामिषेण सघृतेन युतं नवान्नं
भस्मीभवत्यशितमात्रमिह क्षणेन ॥ ११ ॥
सिन्धूत्थहिङ्गुत्रिफलायमानी-
व्योषैर्गुडांशैर्गुडिकां प्रकुर्यात् ।
तैर्भक्षितैस्त्वग्निमनाप्नुवन्वा
भुञ्जीत मन्दाग्निरपि प्रभूतम् ॥ १२ ॥
विडंगभल्लातकचित्रकामृताः
सनागरास्तुल्यगुडेन सर्पिषा ।
भजन्ति ये मन्दहुताशना नरा
भवन्ति ते वाडवतुल्यवह्नयः ॥ १३ ॥
गुडेन शुण्ठीमथवोपकुल्यां
पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा ।
आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु
वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात् ॥ १४ ॥
भोजनाग्रे हितं हृद्यं दीपनं लवणार्द्रकम् ।

बड़ी हर्रका चूर्ण सर्वदा, सोंठ अथवा गुड़ अथवा सेंधानमकके साथ खानेसे अग्निको दीप्त करता है। जो मन्दाग्निपीड़ित

मनुष्य सेंधा नमक, हर्र, छोटी पीपल, चीतकी जड़का चूर्ण गरम जलके साथ सेवन करता है, वह मांस तथा घृतसे युक्त नवान्न भी शीघ्र ही हजम कर जाता है । सेंधा नमक, भूनी हींग, आमला, हर्र, वहेड़ा, अजवाइन, सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल प्रत्येक समान भाग, सबसे द्विगुण गुड़ मिलाकर १ माशेकी गोली बना लेनी चाहिये । इनके खानेसे मनुष्य भोजनसे तृप्त नहीं होता और मन्दाग्निवाला भी बहुत खा जाता है । वायविडंग, शुद्ध भल्लातक, चीतकी जड़, गुर्च और सोंठ सबका महीन चूर्ण बना सबके समान गुड़ तथा घी मिलाकर जो मन्दाग्निवाले सेवन करते हैं, वे वाड़वाग्निके समान दीप्ताग्नि हो जाते हैं । गुड़के साथ सोंठ अथवा छोटी पीपल अथवा हर्र अथवा अनार दानाका चूर्ण–आमाजीर्ण, अर्श, तथा मलकी रुकावटमें नित्य सेवन करना चाहिये । भोजनके पहिले नमक और अदरख खाना सदा हितकर होता है ॥ १०–१४ ॥–

कपित्थादिखडः ।

कपित्थबिल्वचांगेरीमरिचाजाजिचित्रकैः ॥ १५॥
कफवातहरो ग्राही खडो दीपनपाचनः ।

कैथाका गूदा, बेलगिरी, अमलोनिया, काली मिर्च, सफेद जीरा, चीतकी जड़ इनसे बनायी चटनी कफवातनाशक, ग्राही तथा दीपन पाचन होती है ॥ १५ ॥–

शार्दूलकाञ्जिकः ।

पिप्पलीं शृंगवेरं च देवदारु सचित्रकम् ॥ १६ ॥
चविकां बिल्वपेशीं चाजमोदां च हरीतकीम् ।
महौषधं यमानीं च धान्यकं मरिचं तथा ॥ १७ ॥
जीरकं चापि हिङ्गु च काञ्जिकं साधयेद्भिषक् ।
एवं शार्दूलको नाम काञ्जिकोऽग्निबलप्रदः ॥ १८ ॥
सिद्धार्थतैलसंभृष्टो दश रोगान्व्यपोहति ।
कासं श्वासमतीसारं पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ १९ ॥
आमं च गुल्मशूलं च वातगुल्मं सवेदनम् ।
अर्शांसि श्वयथुं चैव भुक्ते पीते च सात्म्यतः ॥२०॥
क्षीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ।

पीपल छोटी, अदरख, देवदारु, चीतकी जड़, चव्य, बेलका गूदा, अजमोद, बड़ी हर्रका छिलका, सोंठ, अजवाइन, धनियां, काली मिर्च, सफेद जीरा, भूनी हींग–सब चीजें समान भाग ले अष्टगुण जलमें मिट्टीके वर्तनमें ७ दिनतक बन्दकर रखना चाहिये, फिर इसमें कड़वे तैलका छौंके लगाना चाहिये । यह 'शार्दूलकाञ्जिक' पीनेसे अग्नि तथा बलको बढ़ाता, कास, श्वास, अतीसार, पाण्डुरोग, कामला, आमदोष, गुल्म, शूल, तथा पीड़ा युक्त वातगुल्म, अर्श, सूजनको नष्ट करता है । इसे भोजनके अनन्तर जितनी रुचि हो, उतना पीना चाहिये । क्षीरपाक विधानसे (अर्थात् द्रव्यसे अष्टगुण जल छोड़कर) काञ्जी सिद्ध करना चाहिये ॥ १६–२० ॥

अग्निमुखचूर्णम् ।

हिङ्गुभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत् ॥२१
पिप्पली त्रिगुणा चैव शृंगवेरं चतुर्गुणम् ।
यमानिका पञ्चगुणा षड्गुणा च हरीतकी ॥ २२॥
चित्रकं सप्तगुणितं कुष्ठं चाष्टगुणं भवेत् ।
एतद्वातहरं चूर्णं पीतमात्रं प्रसन्नया ॥ २३ ॥
पिबेद्दध्ना मस्तुना वा सुरया कोष्णवारिणा ।
सोदावर्तमजीर्णं च प्लीहानमुदरं तथा ॥२४॥
अंगानि यस्य शीर्यन्ते विषं वा येन भक्षितम् ।
अर्शोहरं दीपनं च श्लेष्मघ्नं गुल्मनाशनम् ॥२५॥
कासं श्वासं निहन्त्याशु तथैव यक्ष्मनाशनम् ।
चूर्णमग्निमुखं नाम न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ २६ ॥

भुनी हींग १ भाग, दूधिया वच २ भाग, छोटी पीपल ३ भाग, सोंठ ४ भाग, अजवाइन ५ भाग, बड़ी हर्रका छिल्का ६ भाग, चीतकी जड़ ७ भाग, कूट ८ भाग सबको कूट कपड़छान करना चाहिये । यह चूर्ण शराबके साथ सेवन करनेसे शीघ्र ही वायुको नष्ट करता है । इसे दही, दहीके तोड़, शराब या गरम जलके साथ पीना चाहिये । यह उदावर्त, अजीर्ण, प्लीहा, उदररोगको नष्ट करता है । जिसके अंग गल रहे हों, या जिसने विष खा लिया है, उसके लिये भी यह लाभदायक है । अर्श, गुल्म, कास, श्वास तथा यक्ष्मा और कफको यह चूर्ण नष्ट करता तथा अग्निको दीप्त करता है । यह 'अग्निमुख' नमक चूर्ण कभी व्यर्थ नहीं होता । अर्थात् मन्दाग्निजन्य सभी रोगोंको नष्ट करता है ॥ २१–२६ ॥

---

१ उपरोक्त सैन्धवादि तथा विडंगादिमें गुड़के सम्बन्धमें सन्देह हैं । सैन्धवादिमें गुड़ांश पद है, अतः सिद्ध हुआ कि गुड़का योग्य अंश अर्थात् द्विगुण देना चाहिये । यदुक्तम्– "चूर्णे गुडसमो देयो मोदके द्विगुणो गुडः ।" परन्तु शिवदासजीका मत है कि, गुड़ श्लेष्माधिक अग्निमान्द्यमें अधिक देना उचित नहीं, अतः एक द्रव्यके समान ही छोड़ना चाहिये । तथा विडंगादि लेहमें 'तुल्यगुडेन सर्पिषा' का विशेषण कर समस्त चूर्णके समान भाग गुड़ और उतना ही घी मिलाना चाहिये । यही नागार्जुनका भी मत है । यथा "संचूर्णिता गुडूची विडंगभल्लातकनागरहुताशाः । ज्वलयन्ति जठरवह्निं समेन गुडसर्पिषा लीढाः ॥"

पानीयभक्तगुटिका ।

रसोऽर्धभागिकस्तुल्या विडंगमरिचाभ्रकाः ।
भक्तोदकेन संमर्द्य कुर्याद् गुञ्जासमां गुटीम् ॥२७॥
भक्तोदकानुपानैका सेव्या वह्निप्रदीपनी ।
वार्यन्नभोजनं चात्र प्रयोगे सात्म्यमिष्यते॥२८॥

रससिन्दूर आधा भाग, वायविडंग, काली मिर्च, अभ्रक भस्म प्रत्येक एक एक भाग सब घोटकर चावलके मांड़में गोली १ रत्तीकी मात्रासे बनाना चाहिये । और चावलके मांड़के ही साथ एक एक गोली प्रातःसायं खाना चाहिये । तथा जल चावलका भात ही पथ्य लेना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥

बृहदग्निमुखचूर्णम् ।

द्वौ क्षारौ चित्रकं पाठा करञ्जलवणानि च ।
सूक्ष्मैलापत्रकं भार्गी क्रिमिघ्नं हिंगु पौष्करम्॥२९॥
शटी दार्वी त्रिवृन्मुस्तं वचा सेन्द्रयवा तथा ।
धात्रीजीरकवृक्षाम्लं श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ ३०॥
अम्लवेतसमम्लीका यमानी सुरदारु च ।
अभयातिविषा श्यामा हवुषारग्वधं समम् ॥ ३१ ॥
तिलमुष्ककशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः ।
क्षाराणि लोहकिट्टं च तप्तं गोमूत्रसेचितम् ॥ ३२॥
समभागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
मातुलुंगरसेनैव भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ६३ ॥
दिनत्रयं च शुक्तेन चार्द्रकस्वरसेन च ।
अत्याग्निकारकं चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ॥ ३४ ॥
उपयुक्तविधानेन नाशयत्यचिराद्गदान् ।
अजीर्णकमथो गुल्मान्प्लीहानं गुदजानि च ॥ ३५ ॥
उदराण्यन्त्रवृद्धिं चाप्यष्ठीलां वातशोणितम् ।
प्रणुदत्युल्बणान्रोगान्नष्टं वह्निं च दीपयेत् ॥ ३६ ॥
समस्तव्यञ्जनोपेतं भक्तं दत्त्वा सुभाजने ।
दापयेदस्य चूर्णस्य बिडालपदमात्रकम् ॥ ३७ ॥
गोदोहमात्रात्तत्सर्वं द्रवीभवति सोष्मकम् ।

जवाखार, सज्जीखार, चीतकी जड़, पाढ़, कञ्जा, पांचों नमक, छोटी इलायची, तेजपात, भारङ्गी, वायविडंग, भुनी हींग, पोहकरमूल, कचूर, दारुहल्दी, निसोथ, नागरमोथा, मीठा वच, इन्द्रयव, आमला, सफेद जीरा, कोकम अथवा जम्बीरी नीम्बू, गजपीपल, कलौंजी, आम्लवेत, इमली, अजवाइन, देवदारु, बड़ी हर्रका छिल्का, अतीस, काला निसोथ, हाऊबेर, अमलतासका गूदा–सब समान भाग तथा तिल, मोखा, सहिंजन, तालमखाना तथा ढाक सबके क्षार तथा तपा तपा कर गोमूत्रमें बुझाया हुआ मण्डूर, सब समान भाग लेकर महीन चूर्ण करना चाहिये । फिर बिजौरे निम्बूके रससे ही तीन दिन भावना देनी चाहिये । फिर तीन दिन, सिरकेसे तथा ३ दिन अदरखके रससे भावना देनी चाहिये । यह चूर्ण अग्निको अत्यन्त दीप्त करता तथा नियमसे सेवन करनेसे शीघ्र ही अजीर्ण, गुल्म, प्लीहा, अर्श, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, अष्ठीला, वातरक्तको नष्ट करता तथा मन्द अग्निको दीप्त करता है । हरतरहके भोजन बनाकर थालीमें रखिये और यह चूर्ण १ तोला उसीमें मिला दीजिये, तो जितनी देरमें गाय दुही जाती है, उतनी ही देरमें सब अन्न गरम होकर पिघल जायगा ॥ २९–३७ ॥–

१ यहांपर कुछ लोग "रस" शब्दसे शुद्ध पारद ही लेते हैं और अकेले पारदका प्रयोग न होनेके कारण समान भाग गन्धक भी मिला कज्जली कर छोड़ते हैं ॥

भास्करलवणम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम् ॥३८॥
सैन्धवं च बिडं चैव पत्रं तालीशकेशरम् ।
एषां द्विपलिकान्भागान्पञ्च सौवर्चलस्य च ॥३९॥
मरिचाजाजिशुण्ठीनामेकैकस्य पलं पलम् ।
त्वगेले चार्धभागे च सामुद्रात्कुडवद्वयम् ॥ ४० ॥
दाडिमात्कुडवं चैव द्वे चाम्लवेतसात् ।
एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्यममृतोपमम् ॥ ४१॥
लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम् ।
जगतस्तु हितार्थाय वातश्लेष्मामयापहम् ॥ ४२ ॥
वातगुल्मं निहन्त्येतद्वातशूलानि यानि च ।
तक्रमस्तुसुरासीधुशुक्तकाञ्जिकयोजितम् ॥ ४३ ॥
जांगलानां तु मांसेन रसेषु विविधेषु च ।
मन्दाग्नेरग्नतः शक्तो भवेदाश्वेव पावकः ॥ ४४ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषकुष्ठामयभगन्दरान् ।
हृद्रोगमामदोषांश्च विविधानुदरस्थितान् ॥ ४५ ॥
प्लीहानमश्मरीं चैव श्वासकासोदरक्रिमीन् ॥४५॥
विशेषतः शर्करादीन्रोगान्नानाविधांस्तथा ॥ ४६ ॥
पाण्डुरोगांश्च विविधान्नाशयत्यशनिर्यथा ।

छोटी पीपल, पिपरामूल, धनियां, काला जीरा, सेंधानमक, विड़नमक, तजपात्र, तालीशपत्र, नागकेशर प्रत्येक ८ तोला, काला नमक २० तोला, काली मिर्च, सफेद जीरा, सोंठ प्रत्येक ४ तोला, दालचीनी, छोटी इलायची प्रत्येक २ दो तोला, सामुद्र नमक ३२ तोला, अनारदाना १६ तोला, अम्लवेत ८ तोला–सबको कूटकर कपड़छान चूर्ण करना चाहिये । यह 'भास्करलवण' भगवान् भास्करने संसारके कल्याणार्थ बनाया

था। यह उत्तम गन्धयुक्त तथा अमृततुल्य गुणदायक है। इसका प्रयोग मट्ठा, दहीका तोड़, सीधु, शराव, सिरका, काञ्जी, जांगल प्राणियोंके मांसरस या अन्य रसोंके साथ करना चाहिये। इससे मन्दाग्नि शीघ्र ही दीप्त होती है। यह चूर्ण वातगुल्म तथा वातशूल, अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ, भगन्दर, हृद्रोग, आमदोष, प्लीहा, अश्मरी, श्वास, कास, उदररोग, क्रिमिरोग, शर्करा तथा पांडुरोगको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे वज्र अन्य पदार्थोंको नष्ट करदेता है *॥ ३८–४६ ॥–

अग्निघृतम्।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली॥४७॥
हिङ्गु चव्याजमोदा च पञ्चैव लवणानि च।
द्वौ क्षारौ हपुषा चैव दद्यादर्धपलोन्मितान्॥ ४८॥
दधिकाञ्जिकशुक्तानि स्नेहमात्रासमानि च।
आर्द्रकस्वरसप्रस्थं घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ ४९॥
एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते
अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं तथा गुल्मोदरापहम्॥ ५०॥
ग्रन्थ्यर्बुदापचीकासकफमेदोऽनिलानपि।
नाशयेद् ग्रहणीदोषं श्वयथुं सभगन्दरम्॥ ५१॥
ये च वस्तिगता रोगा ये च कुक्षिसमाश्रिताः।
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः॥ ५२॥

छोटी पीपल, पिपरामूल, चीतकी जड़, गजपीपल, हींग, चव्य, अजमोद, पांचों नमक, यवाखार, सज्जीखार, तथा हाऊबेर प्रत्येक २ तोलाका कल्क, दही काञ्जी, सिरका तथा अदरखका रस प्रत्येक १ प्रस्थ और घी एक प्रस्थ छोड़कर पकाना चाहिये, यह घृत मन्दाग्निवालोंके लिये हितकर होता है। तथा अर्श, गुल्म, उदर, ग्रन्थि, अर्बुद, अपची, कास, कफ, मेद, वातरोग, ग्रहणीदोष, सूजन, भगन्दर आदि रोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्योदयसे अन्धकार नष्ट हो जाता है॥ ४७–५२॥

मस्तुषट्पलकं घृतम्।

पलिकैःपञ्चकोलैस्तु घृतं मस्तु चतुर्गुणम्।
सक्षारैः सिद्धमल्पाग्निं कफगुल्मं विनाशयेत्॥ ५३

पञ्चकोल तथा यवाखार प्रत्येक ४ तोला का कल्क तथा कल्कसे चतुर्गुण घृत और घृतसे चतुर्गुण दहीका तोड़ मिलाकर पकाना चाहिये। यह घृत मन्दाग्नि तथा कफ, गुल्मको नष्ट करता है॥ ५३॥

बृहदग्निघृतम्।

भल्लातकसहस्रार्धं जलद्रोणे विपाचयेत्।
अष्टभागावशेषं च कषायमवतारयेत्॥ ५४॥
घृतप्रस्थं समादाय कल्कानीमानि दापयेत्।
त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली॥५५॥
हिंगु चव्याजमोदा च पञ्चैव लवणानि च।
द्वौ क्षारौ हपुषा चैव दद्यादर्धपलोन्मितान्॥५६॥
दधिकाञ्जिकशुक्तानि स्नेहमात्रासमानि च।
आर्द्रकस्वरसं चैव सौभाञ्जनरसं तथा॥ ५७॥
तत्सर्वमेकतः कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते॥ ५८॥
अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं मूढवातानुलोमनम्।
कफवातोद्भवे गुल्मे श्लीपदे च दकोदरे॥ ५९॥
शोथं पाण्ड्वामयं कासं ग्रहणीं श्वासमेव च।
एतान्विनाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः॥ ६०॥

भिलावां ५०० दुरकुट कर एक द्रोण जलमें पकाना चाहिये। अष्टमांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये, फिर इसमें त्रिकटु, पिपरामूल, चीतकी जड़, गजपीपल, हींग, चव्य, अजमोद, पांचों नमक, यवाखार, सज्जीखार, हाऊबेर प्रत्येक २ तोलाका कल्क घृत ६४ तोला, दही, काञ्जी, सिरका, अदरखका रस, सहिंजनका रस प्रत्येक घृतके समान मिलाकर मन्दाग्निसे पकाना चाहिये। यह घृत, अर्श, कफवातोत्पन्न गुल्म, श्लीपद, जलोदर, सूजन, पाण्डुरोग, कास, ग्रहणी तथा श्वासको नष्ट करता तथा वायुका अनुलोमन इस प्रकार करता है जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट करता है॥ ५४–६०॥

क्षारगुडः।

द्वे पञ्चमूले त्रिफलामर्कमूलं शतावरीम्।
दन्तीं चित्रकमास्फोतां रास्नां पाठां सुधां शटीम्॥६१
पृथग्दशपलान्भागान्दग्ध्वा भस्म समावपेत्।
त्रिःसप्तकृत्वस्तद्भस्म जलद्रोणेन गालयेत्॥ ६२॥
तद्रसं साधयेदग्नौ चतुर्भागावशेषितम्।
ततो गुडतुलां दत्त्वा साधयेन्मृदुनाग्निना॥ ६३॥
सिद्धं गुडं तु विज्ञाय चूर्णानीमानि दापयेत्।
वृश्चिकालीं द्विकाकोल्यौ यवक्षारं समावपेत्॥६४॥
एते पंचपला भागाः पृथक् पंच पलानि च।

---

* कुछ पुस्तकोंमें "वडवामुख चूर्ण" मस्तुषट्पलकघृतके अनन्तर है। पर वह घृतके प्रकरणमें रखना उचित नहीं प्रतीत होता। अतः यहींपर लिखता हूं–"पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जबिल्वाग्निभिः सितातुल्यैः। वडवामुखं विजयते गुरुतरमपि भोजनं चूर्णम्॥" अर्थात् हर्र, सोंठ, छोटी पीपल, कञ्जा, बेलका गूदा, चीतकी जड़ प्रत्येक समान भाग ले चूर्ण कर चूर्णके समान मिश्री मिला देना चाहिये। यह चूर्ण गुरुतर भोजनको भी पचा देता है। इसका 'वडवामुख' नाम है। मात्रा २ माशेसे ४ माशे तक।

हरीतकीं त्रिकटुकं सर्जिकां चित्रकं वचाम् ॥६५॥
हिंग्वम्लवेतसाभ्यां च द्वे पले तत्र दापयेत् ।
अक्षप्रमाणां गुटिकां कृत्वा खादेद्यथाबलम् ॥६६॥
अजीर्णं जरयत्येपाजीर्णे सन्दीपयत्यपि ।
भुक्तं भुक्तं च जीर्येत पाण्डुत्वमपकर्पति ॥ ६७ ॥
प्लीहार्शःश्वयथुं चैव श्लेष्मकासमरोचकम् ।
मन्दाग्निविषमाग्नीनां कफे कण्ठोरसि स्थिते ॥६८॥
कुष्ठानि च प्रमेहांश्च गुल्मं चाशु नियच्छति ।
ख्यातः क्षारगुडो ह्येप रोगयुक्ते प्रयोजयेत् ॥६९॥

सरिवन, पिठिवन, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, बेलका गूदा, सोनापाठा, खम्भारकी छाल, पाढ़ल, अरणी, आमला, हर्र, बहेड़ा, आककी जड़, शतावरी, दन्ती, चीतकी जड़, आँस्फोता, रासन, पाढ़ी, थूहर, कचूर प्रत्येक ४० तोला जलाकर भस्म कर लेना चाहिये। इस भस्मको एक द्रोण जलमें २१ बार छानना चाहिये। फिर इस जलको अग्निपर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेप रहनेपर गुड़ ५ सेर छोड़कर मन्द आंचसे पकाना चाहिये। पाक तैयार हो जानेपर बिछुआ, काकोली, क्षीरकाकोली, यवाखार, बड़ी हर्रका छिल्का, सोंठ, मिर्च, पीपल, सज्जीखार, चीतकी जड़, बच–प्रत्येक २० तोला, भुनी हींग तथा अम्लवेत प्रत्येक ४ तोला सबका कपड़छान किया हुआ चूर्ण छोड़कर १ तोलाकी मात्रासे गोली बना लेना चाहिये। यह गोली बलानुसार सेवन करनेसे अजीर्णको नष्ट करती, अग्निको दीप्त करती, भोजनको पचाती तथा पाण्डुरोगको नष्ट करती है। तथा प्लीहा, अर्श, सूजन, कफजन्य कास तथा अरुचि, कुष्ट, प्रमेह तथा गुल्मको शीघ्र ही नष्ट करती है। मन्दाग्नि तथा विपमाग्निवालोंको लाभ पहुँचाती है। कण्ठ तथा छातीके कफको दूर करती है। इसे "क्षारगुड़" कहते हैं ॥ ६१–६९ ॥

चित्रकगुडः ।

नासारोगे विधातव्या या चित्रकहरीतकी ॥
विना धात्रीरसं सोऽस्मिन्प्रोक्तश्चित्रगुडोऽग्निदः ॥७०

नासारोगमें जो चित्रक हरीतकी लिखेंगे, उसमें आमलेका रस न छोड़नेसे 'चित्रक गुड़' तैयार होता है, यह अग्निको दीप्त करता है ॥ ७० ॥

आमाजीर्णचिकित्सा ।

वचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते ।

वच और लवणका चूर्ण गरम जलमें मिला पीकर वमन करनेसे आमाजीर्ण नष्ट होता है ॥

विदग्धाजीर्णचिकित्सा ।

अन्नं विदग्धं हि नरस्य शीघ्रं
शीताम्बुना वै परिपाकमेति ।
तद्ध्यस्य शैत्येन निहन्ति पित्त-
माक्लेदिभावाच्च नयत्यधस्तात् ॥ ७१ ॥
विदह्यते यस्य तु भुक्तमात्रं
दह्येत हृत्कोष्ठगलं च यस्य ।
द्राक्षासितामाक्षिकसंप्रयुक्तां
लीढ्वाभयां वै स सुखं लभेत ॥ ७२ ॥
हरीतकी धान्यतुषोदसिद्धा
सपिप्पली सैन्धवहिंगुयुक्ता ।
सोद्गारधूमं भृशमप्यजीर्णं
विजित्य सद्यो जनयेत्क्षुधां च ॥ ७३ ॥

मनुष्यका विदग्ध अन्न ठण्डे जलके पीनेसे पच जाता है। ठण्डा जल ठण्डे होनेसे पित्तको शान्त करता तथा गीला होनेसे नीचेको ले जाता है। जिसके भोजन करते ही अन्न विदग्ध हो जाता है, हृदय, कोष्ठ और गलेमें जलन होती है, वह मुनक्का, मिश्री और बड़ी हर्रका चूर्ण शहदसे चाटकर सुखी होता है। इसी प्रकार काञ्जीमें पकाई हर्रका चूर्ण, छोटी पीपल, सेंधानमक और भुनी हींगका चूर्ण मिलाकर फाकनेसे सधूम डकार और अजीर्णको नष्ट कर शीघ्र ही भूखको उत्पन्न करता है ॥ ७१–७३ ॥

विष्टब्धाजीर्ण–रसशेषाजीर्णचिकित्सा ।

विष्टब्धे स्वेदनं पथ्यं पेयं च लवणोदकम् ।
रसशेषे दिवास्वप्नो लङ्घनं वातवर्जनम् ॥ ७४ ॥

विष्टब्धाजीर्णमें पेट सेकना तथा नमक मिला गरम जल पीना हितकर होता है। रसशेपाजीर्णमें दिनमें सोना, लंघन और निर्वात स्थानमें रहना हितकर होता है ॥ ७४ ॥

दिवा स्वप्नयोगाः ।

व्यायामप्रमदाऽध्ववाहनरतक्लान्तानतीसारिणः
शूलश्वासवतस्तृपापरिगतान्हिक्कामरुत्पीडितान् ।
क्षीणान्क्षीणकफाञ्छिशून्मदहतान्वृद्धान् रसाजीर्णिनो
रात्रौ जागरितांस्तथा निरशनान्कामं दिवा स्वापयेत् ७५

कसरत, स्त्रीगमन, मार्ग, तथा सवारीसे थके हुए, अतीसारवालों तथा शूल, श्वास, तृषा, हिक्का व वायुसे पीड़ित पुरुषोंको, क्षीण तथा क्षीणकफवालोंको, बालकों, वृद्धों, रसा-

१ "आस्फोता" विष्णुक्रान्ताके नामसे ही प्रसिद्ध द्रव्यका विशेपतः मानते हैं। पर वङ्गदेशीय वैद्य एक दूसरी लताको ही मानते हैं।

जीर्णवालों तथा रात्रिमें जागरण करनेवालोंको और जिन्होंने भोजन नहीं किया, उन्हें दिनमें यथेष्ट सोना चाहिये ॥ ७५ ॥

अजीर्णस्य सामान्यचिकित्सा ।

आलिप्य जठरं प्राज्ञो हिंगुत्र्यूषणसैन्धवैः ।
दिवास्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥ ७६ ॥
धान्यनागरसिद्धं तु तोयं दद्याद्विचक्षणः ।
आमाजीर्णप्रशमनं दीपनं वस्तिशोधनम् ॥ ७७ ॥
पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं चूर्णं सौवर्चलं पिबेत् ।
मस्तुनोष्णोदकेनाथ बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ॥७८॥
चतुर्विधमजीर्णं च मन्दानलमथोऽरुचिम् ।
आध्मानं वातगुल्मं च शूलं चाशु नियच्छति ॥७९॥
भवेदजीर्णं प्रति यस्य शंका
स्निग्धस्य जन्तोर्बलिनोऽन्नकाले ।
पूर्वं सशुण्ठीमभयामशंकः
संप्राश्य भुञ्जीत हितं हिताशी ॥ ८० ॥
किञ्चिदामेन मन्दाग्निरभयागुडनागरम् ।
जग्ध्वा तक्रेण भुञ्जीत युक्तेनान्नं षडूषणैः ८१

भुनी हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, सेंधानमक सब गरम जलमें महीन पीस पेटपर लेप कर दिनमें सोनेसे समस्त अजीर्ण शान्त होते हैं । तथा धनियां और सोंठका क्वाथ आमाजीर्णको शान्त करता, अग्नि को दीप्त करता तथा मूत्राशयको शुद्ध करता है । हर्र व छोटी पीपलका चूर्ण काला नमक मिलाकर दहीके तोड़ अथवा गरम जलके साथ जैसा आवश्यक हो, पीवे । इससे अजीर्ण, मन्दाग्नि, अरुचि, पेटकी गुड़गुड़ाहट तथा वातगुल्म शीघ्र दूर होते हैं । यदि स्निग्ध तथा वलवान् मनुष्यको भोजनके समय अजीर्णकी शंका हो, तो पहिले सोंठ और हर्रके चूर्णको खाकर हितकारक हल्का पथ्य लेवे । यदि आमके कारण कुछ अग्निमन्द हो, तो हर्र, गुड़, और सोंठको खाकर षडूषण (पिप्पली पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक सोंठ, काली मिर्च) युक्त मट्ठेके साथ भात खावे ॥ ७६-८१ ॥

विषूचिकाचिकित्सा ।

विषूचिकायां वमितं विरिक्तं
सुलंघितं वा मनुजं विदित्वा ।
पेयादिभिर्दीपनपाचनैश्च
सम्यक्क्षुधार्तं समुपक्रमेत ॥ ८२ ॥

हैजेमें वमन, विरेचन तथा लंघन हो जानेके अनन्तर जब खूब भूख लगे, तो दीपन पाचन औषधियोंसे सिद्ध पेया विलेपी आदि देना चाहिये ॥ ८२ ॥

मर्दनम् ।

कुष्ठसैन्धवयोः कल्कं चुक्रतैलसमन्वितम् ।
विषूच्यां मर्दनं कोष्णं खल्लीशूलनिवारणम् ॥८३ ॥

कूठ, सेंधानमकका कल्क चूका और तैल मिला कुछ गरम कर मर्दन करना—हाथ पैर आदिके शूल नष्ट करता है ॥ ८३ ॥

वमनम् ।

करञ्जनिम्बशिखरिगुडूच्यर्जकवत्सकैः ।
पीतः कषायो वमनाद् घोरां हन्ति विषूचिकाम् ८४

कञ्जा, नीमकी छाल, लटजीरा, गुर्च, श्वेत तुलसी कुड़ेकी छाल—इनका क्वाथ पीकर वमन करनेसे घोर विषूचिका नष्ट होती है ॥ ८४ ॥

अञ्जनम् ।

व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रे
मूलं समावाप्य च मातुलुंग्याः ।
छायाविशुष्का गुडिकाः कृतास्ता
हन्युर्विषूचीं नयनाञ्जनेन ॥ ८५ ॥

त्रिकटु, कञ्जा, हल्दी, विजौरे निम्बूकी जड़ सब समभाग ले कूट छान जलमें घोट गोली बनाकर छायामें सुखा लेनी चाहिये । ये गोलियां आंखमें लगानेसे विषूचिकासे उत्पन्न वेहोशीको नष्ट करती हैं ॥ ८५ ॥

अपरमञ्जनम् ।

गुडपुष्पसारशिखरि-
तण्डुलगिरिकर्णिकाहरिद्राभिः ।
अञ्जनगुटिका विलयति
विषूचिकां त्रिकटुकसनाथा ॥ ८६ ॥

गुड़, मधु, अपामार्गके चावल, श्वेतपुष्पा-विष्णुक्रान्ता, हल्दी तथा त्रिकटु मिलाकर बनायी गयी गोली नेत्रमें लगानेसे विषूचिकाको नष्ट करती है ॥ ८६ ॥

उद्वर्तनं तैलमर्दनं वा ।

त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठै-
रम्लेन पिष्टैः सवचाशताह्वैः ।
उद्वर्तनं खल्लिविषूचिकाघ्नं
तैलं विपक्वं च तदर्थकारि ॥ ८७ ॥

दालचीनी, तेजपात, रासन, अगर, कूठ, सहिंजनेकी छाल, वच, सौंफ सबको महीन पीस काञ्जीमें मिलाकर उबटन लगानेसे खल्लीयुक्त विषूचिका नष्ट होती है । तथा इन्हीं चीजोंसे सिद्ध तैल भी यही गुण करता है ॥ ८७ ॥

उपद्रवचिकित्सा ।

पिपासायामनूत्क्लेशे लवंगस्याम्बु शस्यते ।
जातीफलस्य वा शीतं शृतं भद्रवनस्य वा ॥ ८८ ॥
विपूच्यामतिवृद्धायां पाष्ण्योर्दाहः प्रशस्यते ।
वमनं त्वलसे पूर्वं लवणेनोष्णवारिणा ॥ ८९ ॥
स्वेदो वर्तिर्लंघनं च क्रमश्चातोऽग्निवर्धनः
सरुक् चानद्धमुदरमम्लपिष्टैः प्रलेपयेत् ।
दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः ॥ ९० ॥
तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं
सक्षारमार्तिं जठरे निहन्यात् ।
स्वेदो घटैर्वा बहुवाष्पपूर्णै-
रुष्णैस्तथान्यैरपि पाणितापैः ॥ ९१ ॥

यदि मिचलाहट और प्यास अधिक हो, तो लवंगका जल अथवा जायफलका जल अथवा नागरमोथाका जल पीना चाहिये । बहुत बढ़ी विपूचिकामें एड़ियोंको दाग देना चाहिये । अलसक (जिसमें न वमन हो न दस्त) में पहिले नमक मिले गरम जलसे वमन कराना चाहिये । फिर स्वेदन, फलवर्तिधारण और लंघन कराकर अग्निवर्द्धक उपाय करने चाहियें । यदि पेटमें पीड़ा तथा अफारा हो, तो देवदारु, वच, कूट, सौंफ, हींग, सेंन्धानमकको काञ्जीमें पीसकर पेटपर लेप करना चाहिये । मट्ठेके साथ यवचूर्ण व यवाखार गरम कर लेप करनेसे उदरकी पीड़ाको नष्ट करता है । तथा भापसे भरे घटसे स्वेदन करना अथवा हाथ आदि गरमकर सेकनेसे उदरशूल नष्ट होता है ॥ ८८–९१ ॥

तीव्रार्तिरपि नाजीर्णी पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ।
दोषाच्छन्नोऽनलो नालं पक्तुं दोषौषधाशनम् ॥ ९२ ॥

अजीर्णी तीव्र पीड़ा होनेपर भी शूलघ्न औषध न खावे, क्योंकि आमसे ढका अग्नि दोष औषध और भोजनको नहीं पका सकता ॥ ९२ ॥

इत्यग्निमान्द्याधिकारः समाप्तः ।

अथ क्रिमिरोगाधिकारः ।

पारसीकयवानिकाचूर्णम् ।

पारसीकयवानिका पीता पर्युषितवारिणा प्रातः ।
गुडपूर्वा क्रिमिजातं कोष्ठगतं पातयत्याशु ॥ १ ॥

प्रथम गुड़ खाकर ऊपरसे खुरासानी अजवाइन वासी पानीके साथ उतारनेसे कोष्ठगत क्रिमिसमूहको गिरा देती है ॥ १ ॥

पारिभद्रार्कपत्रोत्थं रसं क्षौद्रयुतं पिबेत् ।
केवुकस्य रसं वापि पत्तूरस्याथ वा रसम् ।
लिह्यात्क्षौद्रेण वैडंगं चूर्णं क्रिमिविनाशनम् ॥ २ ॥

नीम तथा आकके पत्तोंका रस शहदके साथ अथवा केवुक अथवा जलपिप्पली (या पीतचन्दन) का रस अथवा बायविड़ंगका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे क्रिमि नष्ट होते हैं॥२॥

मुस्तादिक्काथः ।

मुस्ताखुपर्णीफलदारुशिग्रु-
क्काथः सकृष्णाक्रिमिशत्रुकल्कः ।
मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान्
क्रिमीन्निहन्ति क्रिमिजांश्च रोगान् ॥ ३ ॥

नागरमोथा, मूसाकानी, मैनफल, देवदारु, सहिंजनके बीजका क्काथ, छोटी पीपल तथा बायविड़ंगका चूर्ण छोड़कर पीनेसे दोनों मार्गोंसे अधिक समयसे आते हुए क्रिमियों तथा कीड़ोंसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको नष्ट करता है ॥ ३ ॥

पिष्टकपूपिकायोगः ।

आखुपर्णीदलैः पिष्टैः पिष्टकेन च पूपिकाम् ।
जग्ध्वा सौवीरकं चानु पिबेत्क्रिमिहरं परम् ॥ ४ ॥

मूसाकानीके पत्तोंको पीस आटेमें मिलाकर पूड़ी बनानी चाहिये । इन पूड़ियोंको खाकर ऊपरसे काञ्जी पीनेसे कीड़े नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

पलाशबीजयोगः ।

पलाशबीजस्वरसं पिबेद्वा क्षौद्रसंयुतम् ।
पिबेत्तद्बीजकल्कं वा तक्रेण क्रिमिनाशनम् ॥ ५ ॥

ढाकके बीजोंका स्वरस शहदके साथ अथवा उन्हींका कल्क मट्ठेके साथ पीनेसे क्रिमिरोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

सुरसादिगणक्काथः विडंगादिचूर्णं च ।

सुरसादिगणं वापि सर्वथैवोपयोजयेत् ।
विडंगसैन्धवक्षारकाम्पिल्लकहरीतकीः ॥ ६ ॥
पिबेत्तक्रेण संपिष्टाः सर्वक्रिमिनिवृत्तये ।

---

१ यहां मूसाकानीके पत्तोंके ३ भाग और पिष्टक (यवका आटा) १ भाग लेना शिवदासजीने सुश्रुतके टीकाकारका मत दिखलाते हुए लिखा है । निश्चलके मतसे पिष्टकसे चावलकी पिट्ठी होना चाहिये । पर क्रिमिनाशक होनेसे यवपिष्टक ही श्रेष्ठ है ।

सुरसादिगणकी[1] ओषधियोंका क्वाथ कल्क आदि बनाकर प्रयोग करना चाहिये । अथवा वायविड़ंग, सेंधानमक, यवाखार, कबीला, बड़ी हर्रका छिलका सबका चूर्ण बनाकर मट्ठेके साथ पीना चाहिये । इससे सब प्रकारके क्रिमि नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

विडंगादियवागूः ।

विडंगपिप्पलीमूलशिग्रुभिर्मरिचेन च ॥ ७ ॥
तक्रसिद्धा यवागूः स्यात्क्रिमिघ्नी ससुवर्चिका ।

वायविड़ंग, पिपरामूल, सहिंजनके बीज, काली मिर्चका कल्क छोड़कर मट्ठेमें सिद्ध की गई यवागू, सज्जीखार छोड़कर खानेसे सब तरहके कीड़े नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

बिम्बीघृतम् ।

पीतं बिम्बीघृतं हन्ति पक्वामाशयगान्क्रिमीन् ॥ ८ ॥

कड़वी कुन्दरूसे सिद्ध किया घी पीनेसे पक्वाशय तथा आमाशयमें होनेवाले कीड़े नष्ट होते हैं॥ ८ ॥

त्रिफलादिघृतम् ।

त्रिफला त्रिवृता दन्ती वचा काम्पिल्लकं तथा ।
सिद्धमेभिर्गवां मूत्रे सर्पिः क्रिमिविनाशनम् ॥ ९ ॥

त्रिफला, निसोथ, दन्ती, बच, कबीला–इनसे सिद्ध किया घृत कीड़ोंको नष्ट करता है । इसमें घृतसे चतुर्गुण गोमूत्र छोड़कर पकाना चाहिये ॥ ९ ॥

विडंगघृतम् ।

त्रिफलायास्त्रयः प्रस्था विडंगप्रस्थ एव च ।
द्विपलं दशमूलं च लाभतश्च विपाचयेत् ॥
पादशेषे जलद्रोणे शृते सर्पिर्विपाचयेत् ॥ १० ॥
प्रस्थोन्मितं सिन्धुयुतं तत्पलं क्रिमिनाशनम् ॥ ११ ॥
विडंगघृतमेतच्च लेह्यं शर्करया सह ।
सर्वान्क्रिमीन्प्रणुदति वज्रं मुक्तमिवासुरान् ॥ १२ ॥

त्रिफला (तीनों मिलकर) ३ प्रस्थ, वायविड़ंग १ प्रस्थ, दशमूलकी प्रत्येक ओषधि २ पल सब दुरकुचाकर १ द्रोण जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर १ प्रस्थ घृत छोड़कर पकाना चाहिये, तथा संधानमकका कल्क छोड़ना चाहिये । इस घृतको शर्कराके साथ सेवन करनेसे सब तरहके कीड़े इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे वज्रसे राक्षस ॥ १०–१२ ॥

यूकाचिकित्सा ।

रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धत्तूरपत्रजः ।
ताम्बूलपत्रजो वापि लेपो यूकाविनाशनः ॥ १३ ॥

पारदके साथ धतूरेके पत्तेका रस अथवा पानका रस लेप करनेसे जुएँ नष्ट होती हैं ॥ १३ ॥

विडंगादितैलम् ।

विडंगगन्धकशिला[1] सिद्धं सुरभीजलेन कटुतैलम् ।
आजन्म नयति नाशं लिक्षासहिताश्च यूकास्तु ॥ १४ ॥

वायविड़ंग, आमलासारगन्धक, मैनशिलका कल्क तथा गोमूत्र छोड़कर सिद्ध किया गया कटुतैल लगानेसे यावद्देह यूका तथा लीखें नहीं होतीं ॥ १४ ॥

इति क्रिमिरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ पाण्डुरोगाधिकारः ।

चिकित्साविचारः ।

साध्यं तु पाण्डवामयिनं समीक्ष्य
स्निग्धं घृतेनोर्ध्वमधश्च शुद्धम् ।

---

१ सुश्रुतमें इस प्रकार है–सुरसा (काली तुलसी), श्वेतसुरसा (सफेद तुलसी), फणिज्झक (मरुवा), अर्जक (बबई), भूस्तृण (छातियेतिप्रसिद्धम् । भूस्तृणं तु भवेच्छत्रं मालातृणकमित्यपि), सुगन्धक (रोहिष), सुमुख (वनबबई), कालमाल (अयमपि तुलसीभेदः), कासमर्द (कसौंदी), क्षवक (नकछिकनी), खरपुष्पा (बबईभेद), विडंग (वायविड़ंग), कट्फल (कैफरा), सुरसी (कपित्थपत्रा तुलसी), निर्गुण्डी (सम्भालू), कुलाहलोन्दुरकर्णिका (कुकुरशुङ्ग व मूसाकानी) फञ्जी (भारङ्गी), प्राचीबल (काकजंघा), काकमाच्यः (मकोय) विषमुष्टिकश्चेति (कुचिला) " सुरसादिर्गणो ह्येष कफहृत्क्रिमिसूदनः । प्रतिश्यायारुचिश्वासकासघ्नो व्रणशोधनः " ॥

१ शिला=मनः शिला । कुछ लोगोंका सिद्धान्त है कि "गन्धकशिला" एक ही पद है। अतः गन्धकशिला=गन्धकका ढेला। पर शिलाका मनःशिला ही अर्थ करना ठीक है, क्योंकि योगरत्नाकरमें पाठभेदसे यही तैल लिखा है । पर उसमें भी मनःशिला आवश्यक है । यथा—" सविडंगं च शिलया सिद्धं सुरभिजलेन कटुतैलम् । निखिला नयति विनाशं लिक्षासहिता दिनैर्यूकाः॥ " यहांपर यद्यपि "कटुतैल–मूर्छनविधि" नहीं लिखी । पर वैद्यलोग प्रायः मूर्छन करके ही तैल–पाक करते हैं । अतः कटुतैलमूर्छनविधि, लिखता हूं । " वयस्थारजनीमुस्तबिल्वदाडिमकेशरैः । कृष्णजीरकह्रीबेरनालिकैः सविभीतकैः ॥ एतैः समांशैः प्रस्थे च कर्षमात्रं प्रयोजयेत् । अरुणा द्विपलं तत्र तोयं चाढकसम्मितम् । कटुतैलं पचेत्तेन आमदोषहरं परम् ॥ " अस्यार्थः— आमला, हल्दी, नागरमोथा, बेलकी छाल, अनारकी छाल, नागकेशर, काला जीरा सुगन्धवाला, नाड़ी,–

सम्पादयेत्क्षौद्रघृतप्रगाढै-
हरीतकीचूर्णमयैः प्रयोगैः ॥ १ ॥

साध्य पाण्डुरोगीको देखकर प्रथम घृतपान द्वारा स्नेहन कर वमन तथा विरेचन कराना चाहिये, तदनन्तर शहद और घीके साथ हर्र मिले चूर्ण खिलाना चाहिये ॥ १ ॥

पिबेद् घृतं वा रजनीविपक्वं सत्रैफलं तैल्वकमेव चापि ।
विरेचनद्रव्यकृतान्पिबेद्वा योगांश्च वैरेचनिकान्घृतेन २

हल्दीका कल्क छोड़ सिद्ध किया घृत अथवा त्रिफला और लोधसे सिद्ध किया घृत अथवा घृतके साथ दस्त लानेवाले योगोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

विधिः स्निग्धोऽथ वातोत्थे तिक्तशीतस्तु पैत्तिके ।
श्लैष्मिके कटुरूक्षोष्णः कार्यो मिश्रस्तु मिश्रके ॥३॥

वातजन्य-पाण्डुरोगमें स्निग्ध विधि, पित्तजमें तिक्त, शीत और कफजमें कटु, रूक्ष, उष्ण और मिले हुए दोषोंमें मिली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

पांडुनाशकाः केचन योगाः ।

द्विशर्करं त्रिवृच्चूर्णं पलार्धं पैत्तिके पिबेत् ।
कफपाण्डुस्तु गोमूत्रयुक्तां क्लिन्नां हरीतकीम् ॥४ ॥
नागरं लोहचूर्णं वा कृष्णां पथ्यामथाश्मजम् ।
गुग्गुलं वाऽथ मूत्रेण कफपाण्ड्वामयी पिबेत् ॥५ ॥
सप्तरात्रं गवां मूत्रे भावितं वाप्ययोरजः ।
पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसा प्रपिबेन्नरः ॥ ६ ॥

पैत्तिक पाण्डुरोगमें २ तोला निसोथ द्विगुण शक्कर मिलाकर पीना चाहिये । कफज पाण्डुरोगमें गोमूत्रके साथ पकायी हुई हर्र गोमूत्रके साथ ही खाना चाहिये । सोंठ, लौहभस्म अथवा छोटी पीपल, अथवा हर्र व शिलाजतु अथवा शुद्ध गुग्गुल गोमूत्रके साथ कफज-पांडु रोगीको पीना चाहिये । अथवा ७ दिन गोमूत्रमें भावित लौह भस्म दूधके साथ पीना चाहिये ॥ ४-६ ॥

फलत्रिकादिक्वाथः ।

फलत्रिकामृतावासातिक्ताभूनिम्बनिम्बजः ।
क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्यात्पाण्डुरोगं सकामलम् ॥७ ॥

त्रिफला, गुर्च, रुसाहके फूल, कुटकी, चिरायता, नीमकी छालका क्वाथ शहदके साथ पीनेसे पाण्डुरोग सहित कामलारोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

अयस्तिलादिमोदकः ।

अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागैः
सर्वैः समं माक्षिकधातुचूर्णम् ।
तैर्मोदकः क्षौद्रयुतोऽनुतक्रः
पांड्वामये दूरगतेऽपि शस्तः ॥ ८ ॥

लौहभस्म, काले तिल, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल प्रत्येक ६ मासे सबके समान स्वर्ण-माक्षिक भस्म । सबको शहदमें सानकर गोली बना लेनी चाहिये । इसे मट्ठेके साथ सेवन करनेसे पुराना पाण्डुरोग भी नष्ट होता है * ॥ ८ ॥

मण्डूरविधिः ।

अयोमलं तु सन्तप्तं भूयो गोमूत्रवापितम् ।
मधुसर्पिर्युतं चूर्णं सह भक्तेन योजयेत् ॥ ९ ॥
दीपनं चाग्निजननं शोथपाण्ड्वामयापहम् ।

मण्डूरको तपा तपा कर गोमूत्रमें बुझा लेना चाहिये । फिर उसका चूर्णकर शहद और घीमें मिलाकर भोजनके साथ खिलाना चाहिये । इससे अग्नि दीप्त होती है और सूजन तथा पाण्डुरोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥-

नवायसं चूर्णम् ।

त्र्यूषणत्रिफलामुस्तविडंगचित्रकाः समाः ॥ १० ॥
नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ।
भक्षयेत्पांडुहृद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम् ॥ ११ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, आमला, हर्र, बहेड़ा, नागरमोथ

--बहेड़ा प्रत्येक १ तोला, मजीठ ८ तोला, कड़वा (सरसोंका) तैल (१ सेर ९ छ ३ तोला, वर्तमान) बंगाली ४ सेर तथा जल ६ सेर ३२ तो० (बंगाली १६ सेर) छोड़कर पका लेना चाहिये ।

१ " न वामयेत्तैमिरिकं न गुल्मिनं न चापि पाण्डूदररोगपीडितम् " । यद्यपि यह वमनका निषेध करता है, पर वहाँ " पीडित "शब्दसे विदित होता है कि चरमावस्थामें ही निषेध युक्त है, अतः प्रथम अवस्थामें वमन कराना विरुद्ध नहीं । अतएव सुश्रुतने लिखा है-" अवम्या अपि ये प्रोक्तास्तेऽप्यजीर्णव्यथातुराः । विषार्ताश्चोल्बणकफा वामनीयाः प्रयत्नतः "

२ गुग्गुल शोधनविधिसे शुद्ध कर ही लेना चाहिये । शोधनविधिः-" दुग्धे वा त्रिफलाक्वाथे दोलायन्त्रे विपाचितः । वाससा गालितो ग्राह्यः सर्वकर्मसु गुग्गुलुः । " अथवा-

-"अमृतायाः कषायेण स्वेदयित्वाऽथ गुग्गुलुम् । गृह्णीयादातपे शुष्कं तथावकरवर्जितम् ॥ " ग्राह्यगुग्गुलुलक्षणम्-" स नवो बृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वतिलेखनः । स्निग्धः काञ्चनसंकाशः पक्वजम्बूफलोपमः ॥ नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु पिच्छिलः । शुष्को दुर्गन्धिकश्चैव त्यक्तप्राकृतवर्णकः ॥ पुराणः स तु विज्ञेयो गुग्गुलुर्वीर्यवर्जितः " ॥

* लौह तथा स्वर्ण-माक्षिकका शोधन-मारण रसग्रन्थोंसे कीजिये ॥

चीतकी जड़, वायविडङ्ग सब समान भाग सबके समान लौह-भस्म मिलाना चाहिये । इस चूर्णको शहद और घीके साथ खानेसे पाण्डु, हृद्रोग, कुष्ठ अर्श और कामलारोग नष्ट होते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

योगराजः ।

त्रिफलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च ।
भागश्चित्रकमूलस्य विडंगानां तथैव च ॥ १२ ॥
पञ्चाश्मजतुनो भागास्तथा रूप्यमलस्य च ।
माक्षिकस्य विशुद्धस्य लौहस्य रजसस्तथा ॥ १३॥
अष्टौ भागाः सितायाश्च तत्सर्वं श्लक्ष्णचूर्णितम् ।
माक्षिकेणाप्लुतं स्थाप्यमायसे भाजने शुभे ॥ १४॥
उदुम्बरसमां मात्रां ततः खादेद्यथाग्निना ।
दिने दिने प्रयोगेण जीर्णे भोज्यं यथेप्सितम् ॥१५॥
वर्जयित्वा कुलत्थांश्च काकमाचीकपोतकान् ।
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥१६॥
रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ।
पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम् ॥१७॥
कुष्ठान्यजरकं मेहं श्वासं हिक्कामरोचकम् ।
विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च ॥१८॥

मिलित त्रिफला ३ भाग, मिलित त्रिकटु ३ भाग, चीतकी जड़ १ भाग, वायविडंग १ भाग, शिलाजतु ५ भाग, रौप्य माक्षिक भस्म ५ भाग, स्वर्णमाक्षिक भस्म ५ भाग, लौह-भस्म ५ भाग, मिश्री ८ भाग सबका महीन चूर्णकर शहदमें अवलेह सरीखा बनाकर लौह-पात्रमें रखना चाहिये । फिर इससे १ तोलाकी मात्रा तथा अग्निवलके अनुसार सेवन करना चाहिये। औषधका परिपाक हो जानेपर यथेप्सित भोजन करना चाहिये । पर कुलथी, मकोय और कबूतर नहीं खाना चाहिये । यह ' योगराजनामक योग ' अमृतके तुल्य गुणदायक होता है। समस्त रोगोंको नष्ट करनेवाला यह उत्तम रसायन विशेषकर पाण्डुरोग, विष, कास, यक्ष्मा, विषमज्वर, कुष्ठ, अजीर्णता, प्रमेह, श्वास, हिक्का, अरोचक, अपस्मार, कामला तथा अर्शको नष्ट करता है ॥ १२-१८ ॥

विशालाद्यं चूर्णम् ।

विशालाकटुकामुस्तकुष्ठदारुकलिंगकाः ।
कर्षांशा द्वि पिचुर्मूर्वा कर्षार्धा च घुणप्रिया ॥१९॥
पीत्वा तच्चूर्णमम्भोभिः सुखैर्लिह्यात्ततो मधु ।
पाण्डुरोगं ज्वरं दाहं कासं श्वासमरोचकम् ॥२०॥
गुल्मानाहामवातांश्च रक्तपित्तं च तज्जयेत् ।

इन्द्रायणकी जड़, कुटकी, नागरमोथा, कूठ, देवदारु, इन्द्रयव प्रत्येक एक तोला मूर्वा २ तोला, अतीस ६ माशे सबका महीन चूर्णकर गरम जलके साथ खाना चाहिये । फिर कुछ शहद चाटना चाहिये । यह पांडुरोग, ज्वर, दाह, कास, श्वास, अरोचक, गुल्म, आनाह, आमवात तथा रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ १९ २० ॥-

लौहक्षीरम् ।

लोहपात्रे शृतं क्षीरं सप्ताहं पथ्यभोजनः ॥ २१ ॥
पिबेत्पाण्ड्वामयी शोषी ग्रहणीदोषपीडितः ।

लोहपात्रमें पकाया गया दूध पथ्य भोजन करता हुआ पाण्डुरोगी, शोषी तथा ग्रहणीसे पीड़ित मनुष्य ७ दिन तक पीवे ॥ २१ ॥

कामलाचिकित्सा ।

कल्याणकं पञ्चगव्यं महातिक्तमथापि वा ॥ २२ ॥
स्नेहनार्थं घृतं दद्यात्कामलापाण्डुरोगिणे ।
रेचनं कामलार्तस्य स्निग्धस्यादौ प्रयोजयेत् ॥ २३॥
ततः प्रशमनी कार्या क्रिया वैद्येन जानता ।

कामला तथा पांडुरोगवालेको स्नेहनके लिये कल्याणक, पञ्चगव्य अथवा महातिक्त घृत देना चाहिये । स्नेहनके अनन्तर विरेचन देना चाहिये । फिर दोषोंको शान्त करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २२ ॥ २३ ॥-

कामलानाशका योगाः ।

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसः ॥२४
प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितः कामलापहः ।

त्रिफला अथवा गुर्च या दारुहल्दी या नीमका स्वरस प्रातःकाल शहदके साथ चाटनेसे कामलाको नष्ट करता है ॥ २४ ॥-

अञ्जनम् ।

अञ्जनं कामलार्तस्य द्रोणपुष्पीरसः स्मृतः ॥ २५ ॥

गूमाका रस कामलावालेकी आंखोंमें आंजना चाहिये ॥२५॥

अपरमञ्जनं नस्यं च ।

निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं वा संप्रकल्पयेत् ।
नस्यं कर्कोटमूलं वा घ्रेयं वा जालिनीफलम् ॥२६॥

हल्दी, गेरू और आमलेके चूर्णका अञ्जन लगाना चाहिये । अथवा खेखसाका चूर्ण अथवा कड़ुई तोरईके फलका चूर्ण सूंघना चाहिये अर्थात् नस्य लेना चाहिये ॥ २६ ॥

---

१ यह चूर्ण यकृत्, प्लीहा और शोथमें विलक्षण प्रभाव दिखाता है ।

२ इसमें कुछ आचार्य ' द्विपिचुः ' से २ तोला नीमकी छाल भी डालते हैं ।

लेहाः ।

सशर्करा कामलिनां त्रिभण्डी
हिता गवाक्षी सगुडा स शुण्ठी ॥ २७ ॥
दार्वी सत्रिफला व्योषविडंगान्ययसो रजः ।
मधुसर्पिर्युतं लिह्यात्कामलापाण्डुरोगवान् ॥ २८ ॥
तुल्या अयोरजःपथ्याहरिद्राः क्षौद्रसर्पिषा ।
चूर्णिताः कामली लिह्याद् गुडक्षौद्रेण वाभयाम् २९
धात्रीलौहरजोव्योषनिशाक्षौद्राज्यशर्कराः ।
लीढा निवारयन्त्याशु कामलामुद्धतामपि ॥ ३० ॥

कामलावालोंको शक्करके साथ निसोथका चूर्ण अथवा गुड़ और सोंठके साथ इन्द्रायणकी जड़का चूर्ण खाना चाहिये । तथा दारुहल्दी, त्रिफला, त्रिकटु, वायविडंग, लौहभस्म सब समान भाग ले शहद घी मिलाकर कामला तथा पाण्डुरोगवालेको चाटना चाहिये । तथा लौहभस्म, हर्र, हल्दी सब समान भाग ले शहद, व घीके साथ अथवा केवल बड़ी हर्रका चूर्ण गुड़ और शहदके साथ चाटना चाहिये । आमला, लौहभस्म, त्रिकटु, हल्दी, शहद, घी व शक्कर मिलाकर चाटनेसे कामला शीघ्र ही नष्ट होती है ॥ २७-३० ॥

कुम्भकामलाचिकित्सा ।

दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसं तु
गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ।
विचूर्ण्य लीढं मधुना चिरेण
कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ३१ ॥

लौहकिट्टको बहेड़ेकी लकड़ियोंसे तपाकर ८ बार गोमूत्रमें बुझा लेना चाहिये । फिर महीन चूर्णकर शहदके साथ चाटनेसे कुम्भ-कामला-नामक पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

हलीमकचिकित्सा ।

पाण्डुरोगक्रियां सर्वां योजयेच्च हलीमके ।
कामलायां च या दृष्टा सापि कार्या भिषग्वरैः॥३२॥

पाण्डुरोग तथा कामलाकी जो चिकित्सा कही गयी है, वही हलीमकमें भी करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

विडंगाद्यं लौहम् ।

विडंगमुस्तात्रिफलादेवदारुषडूषणैः ।
तुल्यमात्रमयश्चूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ ३३ ॥
तैरक्षमात्रां गुडिकां कृत्वा खादेद्दिने दिने ।
कामलापाण्डुरोगार्तः सुखमाप्स्यतेऽचिरात् ॥ ३४ ॥

वायविडंग, नागरमोथा, त्रिफला, देवदारु, षडूषण (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कालीमिर्च) सब समान भाग चूर्णकर सबके समान लौहभस्म मिलाकर अठ गुने गोमूत्रमें पकाना चाहिये । इसकी एक एक तोलाकी गोली बनाकर प्रतिदिन खाना चाहिये । इससे कामलावान् तथा पाण्डुरोगी शीघ्र ही आरोग्यतारूपी सुख पाते हैं ॥ ३३-३४ ॥

मण्डूरवटकाः ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडंगं चव्यचित्रकौ ।
दार्वीत्वङ् माक्षिको धातुर्ग्रन्थिकं देवदारु च ॥३५॥
एषां द्विपलिकान्भागांश्चूर्णं कृत्वा पृथक् पृथक् ।
मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥ ३६ ॥
मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तु प्रक्षिपेत्ततः ।
उदुम्बरसमान्कुर्याद्वटकांस्तान्यथाग्नितः ॥ ३७ ॥
उपयुञ्जीत तक्रेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम् ।
मण्डूरवटका ह्येते प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम् ॥३८ ॥
कुष्ठान्यजरकं शोथमूरुस्तम्भकफामयान् ।
अर्शांसि कामलामेहान्प्लीहानं शमयन्ति च ॥३९॥
निर्वाप्य बहुशो मूत्रे मण्डूरं ग्राह्यमिष्यते ।
ग्राहयन्त्यष्टगुणितं मूत्रं मण्डूरचूर्णतः ॥ ४० ॥

सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, चव्य, चीतकी जड़, दारुहल्दी, दालचीनी, सोना-मक्खीकी भस्म, पिपरामूल, देवदारु प्रत्येक ८ तोले ले चूर्ण करना चाहिये । चूर्णसे द्विगुण मण्डूर मिलाकर अठगुने गोमूत्रमें पकाना चाहिये । गाढ़ा हो जानेपर चूर्ण छोड़कर एक तोलाकी गोली बना लेना चाहिये । ओषधि पच जानेपर मट्ठेके साथ हितकर अन्न भोजन करे । यह लड्डू पाण्डुरोगवालेको प्राणदायक होते हैं । यह कुष्ठ, अजीर्ण, सूजन, ऊरुस्तम्भ, कफके रोग, अर्श, कामला, प्रमेह, प्लीहाको शान्त करते हैं। मण्डूर, गोमूत्रमें अनेक बार बुझाया हुआ लेना चाहिये, तथा पकानेमें मण्डूरसे अष्टगुण गोमूत्र छोड़कर पकाना चाहिये और आसन्न पाक होनेपर चूर्ण मिलाना चाहिये ॥ ३५-४० ॥

---

१ कुछ वैद्योंका मत है कि यहां पर लौह प्रधान है, अतः लोहसे ही अठगुना गोमूत्र लेकर प्रथम लोह गोमूत्रमें पकाना चाहिये । गाढ़ा हो जानेपर चूर्ण मिलाकर गोलियां बनानी चाहियें । क्योंकि चूर्ण मिलाकर पकानेसे चूर्ण जल जायगा । पर कुछ वैद्योंका मत है कि चूर्णके समान लोहभस्म मिलाकर सबसे अठगुने गोमूत्रमें पकाना चाहिये । यही मत उचित प्रतीत होता है । चक्रपाणिजीके शब्दोंसे यही अर्थ निकलता है । पर शिवदासजीने दोनों मतोंका निदर्शन किया है, अपना निश्चय नहीं लिखा । तथा यहां द्रवद्वैगुण्य नहीं होता, इसकी मात्रा वर्तमानकालके लिये ४ रत्तीसे १ माशेतक है ॥

पुनर्नवामण्डूरम् ।

पुनर्नवात्रिवृच्छुण्ठी पिप्पली मरिचानि च ।
विडंगं देवकाष्ठं च चित्रकं पुष्कराह्वयम् ॥ ४१ ॥
त्रिफला द्वे हरिद्रे च दन्ती च चविकं तथा ।
कुटजस्य फलं तिक्ता पिप्पलीमूलमुस्तकम् ॥ ४२ ॥
एतानि समभागानि मण्डूरं द्विगुणं ततः ।
गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा स्थापयेत्स्निग्धभाजने ॥४३ ॥
पाण्डुशोथोदरानाहशूलार्शःक्रिमिगुल्मनुत् ।

पुनर्नवा, निसोथ, सोंठ, छोटी पीपल, काली मिर्च, वायविडंग, देवदारु, चीतकी जड़, पोहकरमूल, आमला, हर्र, वहेड़ा, हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीकी जड़, चव्य, इन्द्रयव, कुटकी, पिपरामूल, नागरमोथा—प्रत्येक समान भाग और सबसे द्विगुण मण्डूर मिलाकर अठगुने गोमूत्रमें पकाकर चिकने वर्तनमें रखना चाहिये । यह पाण्डुरोग, शोथ, उदररोग, आनाह, शूल, अर्श, क्रिमि और गुल्मको नष्ट करता है ॥ ४१–४३ ॥–

मण्डूरवज्रवटकः ।

पञ्चकोलं समरिचं देवदारु फलात्रिकम् ॥ ४४ ॥
विडङ्गमुस्तयुक्ताश्च भागास्त्रिपलसंमिताः ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डूरं द्विगुणं ततः ॥४५ ॥
पक्त्वा चाष्टगुणे मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत् ।
ततोऽक्षमात्रान् गुडकान्पिबेत्तक्रेण तक्रभुक् ॥४६ ॥
पाण्डुरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
अर्शांसि ग्रहणीदोषमूरुस्तम्भमथापि वा ॥ ४७ ॥
क्रिमिं प्लीहानमुदरं गररोगं च नाशयेत् ।
मण्डूरवज्रनामायं रोगानीकविनाशनः ॥ ४८ ॥

पञ्चकोल, काली मिर्च, देवदारु, आमला, हर्र, वहेड़ा, वायविडंग, नागरमोथा—सब मिलाकर १२ तोला, इसमें २४ तोला शुद्ध मण्डूर मिलाकर अष्टगुण गोमूत्रमें पकाना चाहिये । गाढ़ा हो जानेपर १ तोलाकी मात्रा मट्ठेके साथ सेवन करना चाहिये और मट्ठा पीना चाहिये । यह 'मण्डूरवज्रवटक' मन्दाग्नि पांडुरोग, अरुचि, अर्श, ग्रहणी, ऊरुस्तम्भ, कीड़े, प्लीहा, उदररोग तथा गरदोषको नष्ट करता है ॥ ४४–४८ ॥

धात्र्यरिष्टः ।

धात्रीफलसहस्रे द्वे पीडयित्वा रसं भिषक् ।
क्षौद्राष्टभागं पिप्पल्याश्चूर्णार्धकुडवान्वितम् ॥४९॥
शर्करार्धतुलोन्मिश्रं पक्वं स्निग्धघटे स्थितम् ।
प्रपिबेत्पाण्डुरोगार्तो जीर्णे हितमिताशनः ॥ ५० ॥
कामलापाण्डुहृद्रोगवातास्रग्विषमज्वरान् ।
कासहिक्कारुचिश्वासानेषोऽरिष्टः प्रणाशयेत् ॥५१॥

२००० दो हजार आमलोंका रस निकाल कर रससे अष्टमांश शहद और छोटी पीपलका चूर्ण ८ तोला, शक्कर २॥ शेर मिलाकर, चिकने वर्तनमें रख देना चाहिये । अरिष्ट सिद्ध होजानेपर पाण्डुरोगीको इसे पिलाना चाहिये । इसके हजम हो जानेपर हितकारक थोड़ा भोजन करना चाहिये । यह अरिष्ट कामला, पाण्डु, हृद्रोग, वातरक्त, विषमज्वर, कास, हिक्का, अरुचि, श्वासको नष्ट करता है ॥ ४९–५१ ॥

द्राक्षाघृतम् ।

पुराणसर्पिषः प्रस्थो द्राक्षार्धप्रस्थसाधितः ।
कामलागुल्मपाण्ड्वार्तिज्वरमेहोदरापहः ॥ ५२ ॥

पुराना घी प्रस्थ, मुनक्काका कल्क आधा प्रस्थ, चतुर्गुण जल डालकर पका लना चाहिये । यह घृत कामला, गुल्म, पाण्डुरोग, ज्वर, प्रमेह तथा उदररोगको नष्ट करता है ॥ ५२ ॥

हरिद्रादिघृतम् ।

हरिद्रात्रिफलानिम्बबलामधुकसाधितम् ।
सक्षीरं माहिषं सर्पिः कामलाहरमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

हल्दी, त्रिफला, नीमकी छाल, खरेटी और मौरेठीके दूधके साथ सिद्ध किया भैंसका घी–कामलाको नष्ट करता है ॥ ५३ ॥

मूर्वाद्यं घृतम् ।

मूर्वातिक्तानिशायासकृष्णाचन्दनपर्पटैः ।
त्रायन्तीवत्सभूनिम्बपटोलाम्बुददारुभिः ॥ ५४ ॥
अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थं सिद्धं क्षीरे चतुर्गुणे ।
पाण्डुताज्वरविस्फोटशोथार्शोरक्तपित्तनुत् ॥ ७५ ॥

मूर्वा, कुटकी, हल्दी, जवासा, छोटी पीपल, लालचन्दन, पित्तपापड़ा, त्रायमाण, इन्द्रयवकी छाल, चिरायता, परवलकी पत्ती, नागरमोथा देवदारु–प्रत्येक एक एक कर्ष ले कल्क वनाकर एक सेर ९ छटांक ३ तोला घी, दूध ६ सेर ३२ तोला और सम्यक् पाकार्थ इतना ही जल मिलाकर पकाना चाहिये । यह पाण्डुरोग, ज्वर, फफोले, शोथ, अर्श और रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

व्योषाद्यं घृतम् ।

व्योषं बिल्वं द्विरजनी त्रिफला द्विपुनर्नवाः ।
मुस्तान्ययोरजः पाठा विडङ्गं देवदारु च ॥ ५६ ॥
वृश्चिकाली च भार्ङ्गी च सक्षीरैस्तैर्घृतं शृतम् ।
सर्वान्प्रशमयत्येतद्विकारान्मृत्तिकाकृतान् ॥ ५७ ॥

---

१ वासेति पाठान्तरम् ।

त्रिकटु, वेलका गूदा, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, दोनों पुनर्नवा, नागरमोथा, लौहभस्म, पाढ़, वायविडंग, देवदारु, विछुवा, भारङ्गी—इन सबका कल्क बना कल्कसे चतुर्गुण घृत और घृतसे चतुर्गुण दूध और इतना ही जल मिलाकर पकाना चाहिये । यह घृत मृत्तिकासे उत्पन्न समस्त विकारोंको नष्ट करता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

इति पाण्डुरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ रक्तपित्ताधिकारः ।

रक्तपित्तचिकित्साविचारः ।

नोद्रिक्तमादौ संग्राह्यं बलिनोऽप्यश्नतश्च यत् ।
हृत्पाण्डुग्रहणीदोषप्लीहगुल्मज्वरादिकृत् ॥ १ ॥
ऊर्ध्वं प्रवृत्तदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः ।
अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्तव्यमपतर्पणम् ॥ २ ॥
ऊर्ध्वगे तर्पणं पूर्वं कर्तव्यं च विरेचनम् ।
प्रागधोगमने पेया वमनं च यथाबलम् ॥ ३ ॥
तर्पणं सघृतक्षौद्रलाजचूर्णैः प्रदापयेत् ।
ऊर्ध्वगं रक्तपित्तं तत्पीतं काले व्यपोहति ॥ ४ ॥
जलं खर्जूरमृद्वीकामधुकैः सपरूषकैः ।
शृतशीतं प्रयोक्तव्यं तर्पणार्थे सशर्करम् ॥ ५ ॥

बलवान् तथा पूर्ण भोजन करते हुए, रोगीके बढ़े हुए रक्तपित्तको रोकना नहीं चाहिये । अन्यथा हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी, प्लीहा, गुल्म, और ज्वरादि उत्पन्न कर देता है । जिसका बल, मांस तथा अग्नि क्षीण नहीं है और ऊर्ध्वगामि–रक्तपित्त है, ऐसे रोगीको पहिले लंघन कराना चाहिये । जो क्षीणबलादि हो, उसे प्रथम तर्पण कराना चाहिये, फिर विरेचन कराना चाहिये । और जिसे अधोगामि–रक्तपित्त है, उसे पहिले पेया पिलाकर फिर वमन कराना चाहिये । तर्पणके लिये खीलके सत्तू बनाकर घी शहदके साथ चटानेसे तर्पण होता तथा ऊर्ध्वगामिरक्तपित्त नष्ट होता है । तथा खजूर (छुहारा), मुनक्का, मौरेठी और फाल्सासे सिद्ध जल शक्कर मिलाकर तर्पणके लिये पिलाना चाहिये ॥ १–५ ॥

त्रिवृतादिमोदकः ।

त्रिवृत्ता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु ।
मोदकः सन्निपातोर्ध्वरक्तपित्तज्वरापहः ॥ ६ ॥

निसोथ, त्रिफला, काला निसोथ, छोटी पीपल, शक्कर और शहद इनसे बनाये गये मोदक सन्निपात, ऊर्ध्वग रक्तपित्त तथा ज्वरको नष्ट करते हैं । इससे विरेचन होता है ॥ ६ ॥

अधोगामि-रक्तपित्तचिकित्सा ।

शालपर्ण्यादिना सिद्धा पेया पूर्वमधोगते ।
वमनं मदनोन्मिश्रो मन्थः सक्षौद्रशर्करः ॥ ७ ॥

अधोगामि–रक्तपित्तमें पहिले शालपर्ण्यादि लघुपञ्चमूलके जलसे सिद्ध पेया देनी चाहिये । फिर मैनफल, शहद और शक्कर मिला पानीसे पतला कर पिलाना चाहिये । इससे वमन होगा और अधोगामि–रक्तपित्त नष्ट होगा ॥ ७ ॥

पथ्यम् ।

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रशातिकाः ।
श्यामाकाश्च प्रियङ्गुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥८॥
मसूरमुद्गचणकाः मकुष्ठाश्चाढकीफलाः ।
प्रशस्ताः सूपयूषार्थे कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ ९ ॥
शाकं पटोलवेत्राग्रतण्डुलीयादिकं हितम् ।
मांसं लावकपोतादिशशैणहरिणादिजम् ॥ १० ॥
विना शुण्ठीं षडंगेन सिद्धं तोयं च दापयेत् ।

शालिके चावल, साठी, नीवार, कोदई, पसई, सावां, कांकुनका पथ्य–मसूर, मूँग, चना, मोथी, अरहरकी दालके साथ देना चाहिये । तथा परवल, बेतकी कोंपल, चौराई आदिका शाक और लवा, कबूतर, खरगोश तथा हरिणका मांस देना चाहिये । तथा षडंगकी औषधियोंसे सोंठ कम कर पांच औषधियोंसे सिद्ध जल पीनेको देना चाहिये ॥ ८–१० ॥

स्तम्भनावस्था ।

क्षीणमांसबलं बालं वृद्धं शोषानुबन्धिनम् ॥ ११ ॥
अवम्यमविरेच्यं च स्तम्भनैः समुपाचरेत् ।

जिसका बल, मांस क्षीण है, जो बालक वृद्ध अथवा राजयक्ष्मासे पीड़ित और वमन तथा विरेचनके अयोग्य है, उसे स्तम्भनद्वारा रोकना चाहिये ॥ ११ ॥–

स्तम्भकयोगाः ।

वृषपत्राणि निष्पीड्य रसं समधुशर्करम् ॥ १२ ॥
पिबेत्तेन शमं याति रक्तपित्तं सुदारुणम् ।
आटरूषकनिर्यूहे प्रियङ्गुर्मृत्तिकाञ्जने ।
विनीय लोध्रं सक्षौद्रं रक्तपित्तहरं पिबेत् ॥ १३ ॥
वासाकषायोत्पलमृत्प्रियङ्गु-
लोध्राञ्जनाम्भोरुहकेसराणि ।
पीतानि हन्युर्मधुशर्कराभ्यां
पित्तासृजो वेगमुदीर्णमाशु ॥ १४ ॥

तालीशचूर्णयुक्तः पेयः क्षौद्रेण वासकस्वरसः।
कफवातपित्ततमकश्वासस्वरभेदरक्तपित्तहरः ॥१५॥
आटरूषकमृद्वीकापथ्याक्वाथः सशर्करः।
क्षौद्राढ्यः कसनश्वासरक्तपित्तनिबर्हणः ॥ १६ ॥

अडूसेके पत्तोंका स्वरस निकालकर शहद और शक्करके साथ चाटना चाहिये। इससे कठिन रक्तपित्त शान्त हो जाता है। अथवा अडूसाके क्काथमें प्रियंगु (अभावमें कमलगट्टा या मेंहदीके बीज) पिंडोरामिट्टी, सफेद सुरमा अथवा रसौत और पठानी लोधका चूर्ण छोड़कर पिलाना चाहिये। तथा अडूसेका क्काथ, नीलोफर, मिट्टी, प्रियंगु, पठानीलोध, सफेदसुरमा अथवा रसौत कमलका केशर–इनका चूर्ण और शहद व शक्कर मिलाकर पीनेसे बढ़ा हुआ रक्तपित्त शान्त होता है। तालीशपत्रके चूर्णसे युक्त अडूसेका स्वरस शहदके साथ पीनेसे कफ वात, पित्त, तमक श्वास और रक्तपित्त नष्ट होता है। इसी प्रकार अडूसा, मुनक्का, और हर्रका क्काथ शहद और शक्कर मिलाकर पीनेसे कास, श्वास और रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ १२–१६ ॥

वासाप्राधान्यम्।

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च।
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ १७ ॥

वाँसाके रहते हुए और जीवनकी आशा रहते हुए रक्तपित्त, क्षय, तथा कासवालोंको दुःखी नहीं होना चाहिये १७

अन्ये योगाः।

समाक्षिकः फल्गुफलोद्भवो वा
पीतो रसः शोणितमाशु हन्ति।
सद्यस्त्वयङ्घ्रिजः क्काथस्तद्वत्समधुशर्करः ॥१८॥
अतसीकुसुमसमङ्गा वटावरोहत्वगम्भसा पीता।
प्रशमयति रक्तपित्तं यदि भुंक्ते मुद्गयूषेण ॥ १९ ॥

शहदके साथ अञ्जीरका रस अथवा शहद और शक्करके साथ नेवारीकी जड़का क्काथ रक्तको शीघ्र नष्ट करता है। इसी प्रकार अलसीके फूल, लज्जावन्तीके बीज, बरगदकी वौं और छालका चूर्ण जलके साथ उतारनेसे और मूंगकी दालके यूषके साथ पथ्य लेनेसे रक्तपित्त शान्त होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

क्षीरविधानम्।

कषाययोगैर्विविधैर्दीप्तेऽग्नौ निर्जिते कफे।
रक्तपित्तं न चेच्छाम्येत्तत्र वातोल्बणे पयः ॥ २० ॥
छागं पयोऽथवा गव्यं शृतं पञ्चगुणे जले।
अभ्यसेत्सासिताक्षौद्रं पञ्चमूलीशृतं पयः ॥ २१ ॥
द्राक्षया पर्णिनीभिर्वा बलया मधुकेन वा।
श्वदंष्ट्रया शतावर्या रक्तजित्साधितं पयः ॥ २२ ॥

अनेक काढ़े इत्यादि पिलाकर अग्निके दीप्त तथा कफके क्षीण हो जानेपर यदि रक्तपित्त शान्त न हुआ हो, तो वाताधिक्यमें बकरी अथवा गायका दूध पञ्चगुण जलमें पकाकर देना चाहिये। अथवा पञ्चमूल (लघु) से सिद्ध दूध, मिश्री और शहद मिलाकर पीना चाहिये। अथवा मुनक्का, शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, अथवा खरेटी, मौरेठी, गोखरू और शतावर इनमेंसे किसी एकसे सिद्ध दूध रक्तपित्तको शान्त करता है ॥ २०–२२ ॥

केचन लेहाः।

पक्वोदुम्बरकाश्मर्यपथ्याखर्जूरगोस्तनाः।
मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक् पृथक् ॥२३॥
मुस्ताशाखोटकत्वग्रसबिन्दुद्वितययुग्द्विगुणिताज्यः।
भूनिम्बकल्क ऊर्ध्वगपित्तास्रश्वासकासहानिकरः२४
खदिरस्य प्रियङ्गूनां कोविदारस्य शाल्मलेः।
पुष्पचूर्णं तु मधुना लीढ्वा चारोग्यमश्नुते ॥२५॥
अभया मधुसंयुक्ता पाचनी दीपनी मता।
श्लेष्माणं रक्तपित्तं च हन्ति शूलातिसारकम् ॥२६॥
वासकस्वरसे पथ्या सप्तधा परिभाविता।
कृष्णा वा मधुना लीढा रक्तपित्तं द्रुतं जयेत् ॥२७

इसी प्रकार पके गूलर, खम्भारके फल, हर्र, छुहारा, मुनक्का इनमेंसे किसी एकका कल्क शहदके साथ चाटनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है। चिरायताका कल्क, नागरमोथा और सिहोरेका दो बिन्दु रस और सबसे द्विगुना घृत मिलाकर चाटनेसे ऊर्ध्वग रक्तपित्त, श्वास, कास नष्ट होते हैं। कत्था प्रियंगु, कचनार, सेमर इनमेंसे किसी एकके फूलोंका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे आरोग्य प्राप्त होता है। इसी प्रकार बड़ी हर्रका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे पाचन तथा दीपन होता है और कफ, रक्तपित्त, शूल तथा अतिसार नष्ट होते हैं। इसी प्रकार अडूसेके स्वरसमें ७ बार भावित हर्र अथवा पिप्पली शहदके साथ, चाटनेसे रक्तपित्तको शीघ्र ही नष्ट करती है ॥ २३–२७ ॥

---

१ वासाके पत्तोंको महीन पीसकर कपड़ेमें रखकर निचोड़नेसे रस निकलता है। यह अनुभूत है। पर शिवदासजीने लिखा है कि वासेके पत्तोंका स्वेदन कर रस निकालना चाहिये। अन्यथा रस निकालना कठिन है। यह बात कुछ अंशोंमें ठीक भी है। रस कठिनतासे ही निकलता है, पर असम्भव नहीं है, परिश्रमसे निकलता है और वही विशेष लाभदायक होता है।

द्रवमानम् ।

भावनायां द्रवो देयः सम्यगार्द्रत्वकारकः ।

भावनामें इतना द्रव छोड़ना चाहिये, जिससे चूर्ण अच्छी तरह तर हो जाय ।

एलादिगुटिका ।

एलपत्रत्वचोऽर्धाक्षाः पिप्पल्यर्धपलं तथा ॥ २८ ॥
सितामधुकखर्जूरमृद्वीकानां पलं पलम् ।
संचूर्ण्य मधुना युक्ता गुटिकाः कारयेद्भिषक् ॥२९॥
अक्षमात्रां ततश्चैकां भयक्षेन्ना दिने दिने ।
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां छर्दिं मूर्च्छां मदं भ्रमम्॥३०॥
रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ।
शोथप्लीहाढयवातांश्च स्वरभेदं क्षतक्षयम् ॥ ३१ ॥
गुटिका तर्पणी वृष्या रक्तपित्तं च नाशयेत् ।

छोटी इलायचीके दाने, तेजपात, दालचीनी प्रत्येक ६ माशे, छोटी पीपल २ तोला, मिश्री, मौरेठी, खजूर अथवा छुहारा, मुनक्का प्रत्येक ४ तोला–सब चीजें महीन पीस हदमहमें मिलाकर गोली बना लेनी चाहिये । इसकी १ तोलेकी मात्रा प्रतिदिन लेना चाहिये । यह कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, वमन, मूर्छा, मद, भ्रम, रक्तपित्त, प्यास, पसलियोंका दर्द, अरुचि, सूजन, प्लीहा, ऊरुस्तम्भ, स्वरभेद तथा क्षतक्षयको नष्ट करती हैं और तर्पण तथा वाजीकर हैं ॥ २८–३१ ॥

पृथ्वीकायोगः ।

लोहगन्धिनि निःश्वासे उद्गारे रक्तगन्धिनि ॥ ३२ ॥
पृथ्वीकां शाणमात्रां तु खादेद् द्विगुणशर्कराम् ।

श्वास तथा डकारमें लोहकी गन्ध आनेपर बड़ी इलायचीका चूर्ण ३ माशे द्विगुण शक्कर मिलाकर फाकना चाहिये ॥ ३२ ॥–

मूर्ध्नि लेपः ।

नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम् ।
सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्ध्नि प्रलेपेन ॥ ३३ ॥

आमला महीन पीस घीमें भूनकर शिरमें लेप करनेसे नासासे बहते हुए रक्तको जलवेगको बान्धके समान रोकता है ॥ ३३ ॥

नस्यम् ।

घ्राणप्रवृत्ते जलमेव देयं
सशर्करं नासिकया पयो वा ।
द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद्वा
सशर्करं चेक्षुरसं हितं वा ॥ ३४ ॥
नस्यं दाडिमपुष्पोत्थो रसो दूर्वाभवोऽथवा ।
आम्रास्थिजः पलाण्डोर्वा नासिकास्रुतरक्तजित् ॥३५

नाकसे बहते हुए रक्तको रोकनेके लिये नासिकासे–शक्करके सहित जल, अथवा दूध, अथवा अंगूरका रस, अथवा शक्कर मिला दूध, व घी, अथवा ईखका रस, अथवा अनारके फूलोंका रस, अथवा दूर्वाका रस, अथवा आमकी गुठलीका रस, या प्याजका रस पीना चाहिये । अर्थात् नस्य लेना चाहिये ३४।३५

उत्तरबस्तिः ।

मेढ्रगेऽतिप्रवृत्ते तु बस्तिरुत्तरसंज्ञितः ।
शृतं क्षीरं पिबेद्वापि पञ्चमूल्या तृणाह्वया ॥ ३६ ॥

लिङ्गसे अधिक रक्त आनेपर उत्तरवस्ति देना चाहिये । अथवा तृणपञ्चमूल (कुश, काश, शरधानकी जड़ और ईखकी जड़) से सिद्ध दूध पीना चाहिये ॥ ३६ ॥

दूर्वाद्यं घृतम् ।

दूर्वा सोत्पलकिञ्जल्का मञ्जिष्ठा सैलवालुका ।
सिता शीतमुशीरं च मुस्तं चन्दनपद्मकौ ॥ ३७ ॥
विपचेत्कार्षिकैरेतैः सर्पिराजं सुखाग्निना ।
तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं दत्त्वा चैव चतुर्गुणम् ॥३८॥
तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते ।
कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ॥३९॥
चक्षुःस्राविणि रक्ते तु पूरयेत्तेन चक्षुषी ।
मेढ्रपायुप्रवृत्ते तु बस्तिकर्मसु योजयेत् ॥ ४० ॥
रोमकूपप्रवृत्ते तु तदभ्यंगे प्रयोजयेत् ॥ ४१ ॥

दूध, कमलकी केशर, मजीठ, एलवालुक, सफेद दूब, कपूर, खस, नागरमोथा, सफेद चन्दन, पद्माख–प्रत्येक एक एक तोला ले कल्क बना कल्कसे चतुर्गुण बकरीका घी और घीसे चतुर्गुण दूध व चतुर्गुण चावलका जल मिलाकर पकाना चाहिये । यह घृत जिसे रक्तका वमन होता हो, उसे पिलाना चाहिये । जिसके

---

१ भावनाविधिः–"दिवा दिवातपे शुष्कं रात्रौ रात्रौ च वासयेत् । शुष्कं चूर्णीकृतं द्रव्यं सप्ताहं भावनाविधिः ॥ द्रव्येण यावता द्रव्यमेकीभूयार्द्रतां व्रजेत् । तावत्प्रमाणं निर्दिष्टं भिषग्भिर्भावनाविधौ ॥ "

२ इससे सूखी चीजें कूट कपड़छानकर लेना चाहिये । गीली चीजें सिलपर महीन पीसकर मिलाना चाहिये ।

३ यहांपर श्रीशिवदासजीने 'पृथ्वीका' शब्दसे काला जीरा लिखा है। वह भी इस लिये कि टीकाकारोंने यहाँ व्याख्यान किया । आगे आप लिखते हैं कि यद्यपि काला जीरा उष्ण होता है, पर द्विगुण शक्कर मिलनेके कारण अथवा प्रभावसे रोगनाशक होता है । पर इलायचीका प्रयोग क्यों न किया जाय ? इसका कुछ हेतु आपने नहीं लिखा, अतः मैंने बड़ी इलायची ही लिखना उचित समझा ।

नाकसे आता हो, उसे नस्य देना चाहिये । जिसके कानोंसे आता हो, उसके कानोंमें छोड़ना चाहिये । यदि नेत्रसे खून आता हो, तो नेत्रोंमें भरना चाहिये । गुदा या लिङ्गसे यदि रक्त आता हो, तो वस्ति देना चाहिये और रोमकूपोंसे आता हो, तो इसकी मालिश करना चाहिये ॥ ३७–४१ ॥

शतावरीघृतम् ।

शतावरीदाडिमतिन्तिडीकं
काकोलिमेदे मधुकं विदारीम् ।
पिष्ट्वा च मूलं फलपूरकस्य
घृतं पचेत्क्षीरचतुर्गुणं ज्ञः ॥ ४२ ॥
कासज्वरानाहविबन्धशूलं
तद्रक्तपित्तं च घृतं निहन्यात् ॥ ४३ ॥

शतावर, अनारदाना, अमली, काकोली, * मेदा, मौरेठी, विदारीकन्द तथा बिजौरे निम्बूकी जड़का कल्क छोड़ चतुर्गुण दूध मिलाकर घृत पकाना चाहिये । यह घृत कास, ज्वर, पेटका दर्द, अफारा और रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

महाशतावरीघृतम् ।

शतावर्यास्तु मूलानां रसप्रस्थद्वयं मतम् ।
तत्समं च भवेत् क्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४४॥
जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा तथैव च ।
काकोली क्षीरकाकोली मृद्वीका मधुकं तथा ॥४५॥
मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी रक्तचन्दनम् ।
शर्करामधुसंयुक्तं सिद्धं विस्रावयेद्भिषक् ॥ ४६ ॥
रक्तपित्तविकारेषु वातरक्तगदेषु च ।
क्षीणशुक्रेषु दातव्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ४७ ॥
अंसदाहं शिरोदाहं ज्वरं पित्तसमुद्भवम् ।
योनिशूलं च दाहं च मूत्रकृच्छ्रं च पैत्तिकम् ॥४८॥
एतान्रोगान्निहन्त्याशु छिन्नाभ्राणीव मारुतः ।
शतावरीसर्पिरिदं बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ ४९ ॥

ताजी शतावरीकी जड़का रस २ प्रस्थ और दूध दो प्रस्थ और घी १ प्रस्थ तथा जीवक, ऋषभक, तथा मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुनक्का, मौरेठी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, विदारीकन्द, लालचन्दनका कल्क घृतसे चतुर्थांश छोड़कर घृत पकाना चाहिये । घृत सिद्ध हो जानेपर घृतसे चतुर्थांश शहद और मिश्री मिलाकर छान लेना चाहिये । पर मिश्रीका चूर्ण कुछ गरममें और शहद ठण्डा होनेपर छोड़ना चाहिये । यह घृत रक्तपित्त, वातरक्त तथा क्षीणशुक्रवालोंको लाभ करता है । कन्धों तथा शिरकी जलन, पित्तज्वर, योनि-शूल, दाह, पैत्तिक-मूत्र कृच्छ्रको यह घृत जैसे छोटे छोटे मेघोंके टुकड़ोंको वायु वैसे ही नष्ट करता है । तथा बल, वर्ण और अग्निको उत्तम बनाता है ॥ ४४–४९ ॥

* इसमें काकोलीके अभावमें असगन्ध और मेदाके अभावमें शतावर छोड़ना चाहिये । तिन्तिड़ीकके बीज छोटे लाल चिरौंजीके समान होते हैं । पसारी इन्हें त्रायमाणके नामसे देते हैं । कोई कोई इमली ही छोड़ते हैं । तथा सम्यक् पाकार्थ चतुर्गुण जल भी छोड़ना चाहिये ।

प्रक्षेपमानम् ।

स्नेहपादः स्मृतः कल्कः कल्कवन्मधुशर्करे ।
इति वाक्यबलात्स्नेहे प्रक्षेपः पादिको भवेत् ॥५०॥

"स्नेहसे चतुर्थांश कल्क और कल्कके समान ही शहद और शक्कर मिलित छोड़ना चाहिये" इस परिभाषासे प्रक्षेप स्नेहसे चतुर्थांश छोड़ना चाहिये ॥ ५० ॥

वासाघृतम् ।

वासां सशाखां सपलाशमूलां
कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्याः ।
प्रदाय कल्कं विपचेद् घृतं तत्
सक्षौद्रमाश्वेव निहन्ति रक्तम् ॥ ५१ ॥

अडूसेके पञ्चांगका क्वाथ और अडूसेके फूलोंका कल्क छोड़कर घृत पकाना चाहिये । यह घृत शीघ्र ही रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ ५१ ॥

पुष्पकल्कमानम् ।

शणस्य कोविदारस्य वृषस्य ककुभस्य च ।
कल्काढयत्वात्पुष्पकल्कं प्रस्थे पलचतुष्टयम् ॥५२ ॥

शण, कचनार, अडूसा तथा अर्जुनके फूलोंका कल्क अधिक होनेके कारण १ प्रस्थ (द्रवद्वैगुण्यात्–१सेर ९ छ० ३ तो०) में इनका कल्क ४ पल अर्थात् १६ तो० ही छोड़ना चाहिये ॥ ५२ ॥

कामदेवघृतम् ।

अश्वगन्धापलशतं तदर्धं गोक्षुरस्य च ।
शतावरी विदारी च शालिपर्णी बला तथा ॥५३॥
अश्वत्थस्य च शुङ्गानि पद्मबीजं पुनर्नवा ।
काश्मरीफलमेवं तु माषबीजं तथैव च ॥ ५४ ॥
पृथग्दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।
चतुर्भागावशेषे तु कषायमवतारयेत् ॥ ५५ ॥
मृद्वीका पद्मकं कुष्ठं पिप्पली रक्तचन्दनम् ।
बालकं नागपुष्पं च आत्मगुप्ताफलं तथा ॥ ५६ ॥
नीलोत्पलं शारिवे द्वे जीवनीयं विशेषतः ।

पृथक्कर्षसमं चैव शर्करायाः पलद्वयम् ॥ ५७ ॥
रसस्य पौण्ड्रकेक्षूणामाढकं तत्र दापयेत् ।
चतुर्गुणेन पयसा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५८ ॥
रक्तपित्तं क्षतक्षीणं कामलां वातशोणितम् ।
हलीमकं तथा शोथं वर्णभेदं स्वरक्षयम् ॥ ५९ ॥
अरोचकं मूत्रकृच्छ्रं पार्श्वशूलं च नाशयेत् ।
एतद्राज्ञां प्रयोक्तव्यं बह्वन्तःपुरचारिणाम् ॥६० ॥
स्त्रीणां चैवानपत्यानां दुर्बलानां च देहिनाम् ।
क्लीबानामल्पशुक्राणां जीर्णानां यक्ष्मिणां तथा ॥६१
श्रेष्ठं बलकरं हृद्यं वृष्यं पेयं रसायनम् ।
ओजस्तेजस्करं चैव आयुःप्राणविवर्धनम् ॥ ६२ ॥
संवर्धयति शुक्रं च पुरुषं दुर्बलेन्द्रियम् ।
सर्वरोगविनिर्मुक्तं तोयसिक्तो यथा द्रुमः ॥ ६३ ॥
कामदेव इति ख्यातः सर्वरोगेषु शस्यते ।

असगन्ध ५ सेर, गोखरू २॥ सेर, शतावरी, विदारीकन्द, शालिपर्णी, खरेटी, पीपलकी कोंपल, कमलगट्टाकी मींगी, पुनर्नवा, खम्भारके फल तथा उड़द प्रत्येक ४० तोला सब दुरकुचाकर २ मन २२ सेर ३२ तोला जलमें पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये। इस क्वाथमें १ प्रस्थ (१ सेर ९ छ० ३ तो०) घी तथा मुनक्का, पद्माख, कूठ, छोटी पीपल, लालचन्दन, सुगन्धवाला, नागकेशर, कौंचके बीज, नीलोफर, सफेद शारिवा तथा काली सारिवा और जीवनीय[1] गणकी औषधियां प्रत्येक एक एक तोलेका कल्क, शक्कर ८ तोला, पौंढाका रस ६ सेर ३२ तोला तथा दूध ६ सेर ३२ तोला तथा इतना ही जल मिलाकर सिद्ध करना चाहिये। यह घृत रक्तपित्त, क्षतक्षीण, कामला, वातरक्त, हलीमक, शोथ, स्वरभेद, वर्णभेद, अरोचक, मूत्रकृच्छ्र, तथा पसुलियोंके शूलको नष्ट करता है। यह जिनके बहुत स्त्रियां हैं ऐसे राजाओंके लिये तथा जिनके सन्तान नहीं होती, ऐसी स्त्रियोंके लिये, दुर्बल मनुष्योंके लिये, नपुंसक तथा अल्पवीर्यवालोंके लिये, वृद्धोंके तथा यक्ष्मावालोंके लिये विशेष लाभदायक है। बलको बढ़ाता, हृदयको बल देता है, वाजीकर है, ओज, तेज, आयु तथा वीर्यको बढ़ाता है। दुर्बल पुरुषोंको इस प्रकार रोगरहित तथा बलवान् बनाता है जैसे जलसे सींचा गया वृक्ष। यह "कामदेव घृत" सब रोगोंमें लाभ करता है॥ ५३-६३ ॥-

---

[1] जीवनीयगणः—"जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा काकोली क्षीरकाकोली मुद्गमाषपर्ण्यौ जीवन्ती मधुकमिति दशेमानि जीवनीयानि भवन्ति"। यह प्रयोग परम वाजीकर है, अत एव इसका "कामदेव घृत" नाम है। और अन्य ग्रन्थोंमें इसे वाजीकरणाधिकारमें लिखा है।

सप्तप्रस्थं घृतम् ।

शतावरीपयोद्राक्षाविदारीक्ष्वामलैः रसैः ॥ ६४ ॥
सर्पिषा सह संयुक्तैः सप्तप्रस्थं पचेद् घृतम् ।
शर्करापादसंयुक्तं रक्तपित्तहरं पिबेत् ॥ ६५ ॥
उरःक्षते पित्तशूले योनिवातेऽप्यसृग्दरे ।
बल्यमूर्जस्करं वृष्यं क्षुधाहृद्रोगनाशनम् ॥ ६६ ॥

शतावरीका रस, दूध, अङ्गूरका रस, विदारीकन्दका रस, ईखका रस, आमलेका रस, प्रत्येक एक एक प्रस्थ, घी एक प्रस्थ, मिश्री १ कुड़व मिलाकर पकाना चाहिये। यह रक्तपित, उरःक्षत, पित्तशूल, योनिरोग रक्तप्रदरको नष्ट कर बल, ओज, वीर्यको बढ़ाता और क्षुधा तथा हृद्रोगको शान्त करता है॥ ६४-६६ ॥

कूष्माण्डकरसायनम् ।

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ।
पचेत्तप्ते घृतप्रस्थे शनैस्ताम्रमये दृढे ॥ ६७ ॥
यदा मधुनिभः पाकस्तदा खण्डशतं न्यसेत् ।
पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले जीरकस्य च ॥ ६८॥
त्वगेलापत्रमरिचधान्यकानां पलार्धकम् ।
न्यस्येच्चूर्णीकृतं तत्र दर्व्या संघट्टयेन्मुहुः ॥ ६९ ॥
तत्पक्वं स्थापयेद्भाण्डे दत्त्वा क्षौद्रं घृतार्धकम् ।
तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥ ७० ॥
कासश्वासतमश्छर्दितृष्णाज्वरनिपीडितः ।
वृष्यं पुनर्नवकरं बलवर्णप्रसाधनम् ॥ ७१ ॥
उरःसन्धानकरणं बृंहणं स्वरबोधनम् ।
अश्विभ्यां निर्मितं सिद्धं कूष्माण्डकरसायनम्॥७२॥

पेठा (छिलका तथा बीज निकाला हुआ) मन्द आंचमें उबालकर रस निचोड़कर अलग रखना चाहिये। फिर पेठाको महीन पीसकर ५ सेर में ६४ तोला घी डालकर मन्द आंचमें खूब सेंकना चाहिये। जब पक जाय और सुगन्ध उठने लगे, तब वही पेठेका जल और ५ सेर मिश्री मिलाकर पकाना चाहिये। जब सिद्ध होनेपर आ जाय, तब छोटी पीपल ८ तोला, सोंठ ८ तोला, सफेद जीरा ८ तोला, दालचीनी, तेजपात, इलायची, काली मिर्च, धनियां प्रत्येक २ तोलाका महीन पिसा हुआ चूर्ण छोड़ना चाहिये और खूब कलछीसे मिलाकर उतार लेना चाहिये। ठण्डा हो जानेपर शहद ३२ तोला मिलाकर रख लेना चाहिये। इसे अग्नि और बलके अनुसार सेवन करना चाहिये। यह रक्तपित्त, क्षतक्षय, कास, श्वास, नेत्रोंके सामने अन्धकारका आ जाना, वमन, प्यास, ज्वरको नष्ट करता है। वाजीकरण, शरीरको नवीन बनाता, बल और वर्ण

उत्तम करता, शरीरको बढ़ाता, स्वरको उत्तम बनाता तथा उरःक्षतको जोड़ता है। यह "कूष्माण्डकरसायन" भगवान अश्विनीकुमारने निर्माण किया है॥ ६७–७२॥

कूष्माण्डकरसायने द्रवमानम्।

खण्डामलकमानेन रसःकूष्माण्डकद्रवात्।
पात्रे पाकाय दातव्यं यावान्वा तद्रसो भवेत्॥७३
अत्रापि मुद्रया पाको निस्त्वचं निष्कुलीकृतम्।

खण्डामलके अनुसार कूष्माण्डका रस एक आढ़क छोड़ना चाहिये। अथवा रस जितना निकले उतना ही छोड़ना चाहिये। निष्कुलीकृत माने छीले हुए और पाक जब मुद्रा बनने लग जाय, तब समझना चाहिये॥ ७३॥–

वासाकूष्माण्डखण्डः।

पञ्चाशच पलं स्विन्नं कूष्माण्डात्प्रस्थमाज्यतः॥७४॥
प्राह्यं पलशतं खण्डं वासाकाथाढके पचेत्।
मुस्ता धात्री शुभा भार्ङ्गी त्रिसुगन्धैश्च कार्षिकैः॥७५॥
एलेयविश्वधन्याकमरिचैश्च पलांशिकैः।
पिप्पलीकुडवं चैव मधुमानीं प्रदापयेत्॥ ७६॥
कासं श्वासं क्षयं हिक्कां रक्तपित्तं हलीमकम्।
हृद्रोगमम्लपित्तं च पीनसं च व्यपोहति॥ ७७॥

पेठा (छिला हुआ तथा बीज निकाला हुआ) उबालना चाहिये, फिर इसको निचोड़कर रस अलग रखना चाहिये, फिर पेठेको महीन पीसकर घीमें भूनना चाहिये, ५० पल (२॥ सेर) पेठेमें घी १ प्रस्थ छोड़ना चाहिये। भुन जानेपर मिश्री ५ सेर, पेठेका रस और वासा क्वाथ १ आढ़क मिलाकर पकाना चाहिये। सिद्ध होनेपर नागरमोथा, आमला, वंशलोचन, भारङ्गी, दालचीनी, तेजपात, इलायची–प्रत्येक एक तोला एलवालुक, सोंठ, धनियां, काली मिर्च प्रत्येक ४ तोला तथा पीपल १६ तो० का महीन चूर्ण छोड़ मिलाकर उतार लेना चाहिये। फिर ठण्डा होनेपर शहद ३२ तोला छोड़ना चाहिये। यह अवलेह—कास, श्वास, क्षय, हिक्का, रक्तपित्त, हलीमक, हृद्रोग, अम्लपित्त, और पीनसको नष्ट करता है॥ ७४–७७॥

वासाखण्डः।

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले।
तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक्॥ ७८॥
चूर्णानामभयानां च खण्डाच्छुद्धात्तथा शतम्।
द्वे पल पिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीते च माक्षिकात्॥७९
कुडवं पलमात्रं तु चातुर्जातं सुचूर्णितम्।
क्षिप्त्वा विलोडितं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी।
कासश्वासपरीतश्च यक्ष्मणा च प्रपीडितः॥ ८०॥

अडूसेका पञ्चांग ५ सेर ४० सेर जलमें पकाना चाहिये, १० सेर शेष रहनेपर उतार छानकर बड़ी हर्रका चूर्ण ३ सेर १६ तोला, मिश्री ५ सेर, पीपलका चूर्ण ८ तोला मिलाकर पकाना चाहिये। पाक हो जानेपर उतार ठण्डाकर शहद ३२ तोला, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर–प्रत्येकका चूर्ण ४ तोला छोड़ मिलाकर रक्तपित्त, क्षतक्षय, कास, श्वास तथा यक्ष्मासे पीड़ित रोगीको यह "वासाखण्ड" खाना चाहिये॥ ७८–८०॥

खण्डकाद्यो लौहः।

शतावरीच्छिन्नरुहावृषमुण्डतिकाबलाः।
तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वचस्तथा॥८१॥
भार्ङ्गी पुष्करमूलं च पृथक् पञ्च पलानि च।
जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टमांशावशेषितम्॥ ८२॥
दिव्यौषधहतस्यापि माक्षिकेण हतस्य वा।
पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहं सुचूर्णितम्॥ ८३॥
खण्डतुल्यं घृतं देयं पलषोडशिकं बुधैः।
पचेत्ताम्रमये पात्रे गुडपाको यथा मतः॥ ८४॥
प्रस्थार्धं मधुनो देयं शुभाश्मजतुकं त्वचम्।
शृङ्गी विडङ्गं कृष्णा च शुण्ठ्यजाजी पलं पलम्॥८५
त्रिफला धान्यकं पत्रं द्व्यक्षं मरिचकेशरम्।
चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्॥८६॥
यथाकालं प्रयुञ्जीत बिडालपदकं ततः।
गव्यक्षीरानुपानं च सेव्यं मांसरसः पयः॥ ८७॥
गुरुवृष्यान्नपानानि स्निग्धं मांसादि बृंहणम्।
रक्तपित्तं क्षयं कासं पक्तिशूलं विशेषतः॥ ८८॥

---

१ योगरत्नाकरमें इसी प्रयोगको कुछ बढ़ा दिया है। अर्थात् इसमें "क्षौद्रं घृतार्धकम्" से समास हो जाता है। पर उन्होंने आगे लिखा है "क्षौद्रार्धिकां सितां केचित्केचिद् द्राक्षां सितार्धिकाम्। द्राक्षार्धानि लवङ्गानि कर्षं कर्पूरकं क्षिपेत्। तथा कूष्माण्ड उबालकर निचोड़नेपर जितना स्वरस निकलता है, उसीसे पाक करनेका व्यवहार है।

१ यहां वासा आर्द्र ही लेना चाहिये और "शुष्कद्रव्येष्विदं मानं द्विगुणं तद् द्रवार्द्रयोः।" इस सिद्धान्तसे द्विगुण नहीं करना चाहिये क्योंकि "गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च शतावरी। अश्वगन्धा सहचरः शतपुष्पा प्रसारणी॥ प्रयोक्तव्याः सदैवार्द्रा द्विगुणा नैव कारयेत्"॥ इसी प्रकार अष्टगुण जलको भी द्विगुण नहीं करना चाहिये। "मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचिन्मतम्।" तथा मधु कुडव होनेपर भी द्विगुण लिया जाता है। "सर्पिः खण्डजलक्षौद्रतैलक्षीरासवादिषु। अष्टौ पलानि कुडवो नारिकेले च शस्यते॥"

वातरक्तं प्रमेहं च शीतपित्तं वमिं क्लमम् ।
श्वयथुं पाण्डुरोगं च कुष्ठं प्लीहोदरं तथा ॥ ८९ ॥
आनाहं रक्तसंस्रावं चाम्लपित्तं निहन्ति च ।
चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं माङ्गल्यं प्रीतिवर्धनम् ॥ ९० ॥
आरोग्यपुत्रदं श्रेष्ठं कामाग्निबलवर्धनम् ।
श्रीकरं लाघवकरं खण्डकाद्यं प्रकीर्तितम् ॥ ९१ ॥

शतावरी, गुर्च, अडूसा, मुण्डी, खरेटी, मुसली, कत्था, त्रिफला, भारंगी, पोहकरमूल प्रत्येक ५ पल (२० तोला) एक द्रोण जलमें पकाना चाहिये । अष्टमांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये । फिर इसमें मनःशिला अथवा स्वर्ण माक्षिकके योगसे बनाया कान्तलोहभस्म ४८ तोला, घी ६४ तोला, मिश्री ६४ तोला छोड़कर पकाना चाहिये । अवलेह सिद्ध हो जानेपर वंशलोचन, शिलाजतु, दालचीनी, काकड़ासिंही, वायविड़ंग, छोटी पीपल, सोंठ, जीरा, प्रत्येक ४ तोला, त्रिफला, धनियां, तेजपात, काली मिर्च, नागकेशर प्रत्येक २ तोला चूर्ण छोड़ ठंढा हो जानेपर शहद ३२ तोला छोड़ मिलाकर चिकने वर्तनमें रख लेना चाहिये । इसका १ तोला प्रतिदिन सेवन करना चाहिये । अनुपान—गायका दूध, पथ्य—दूध, मांसरस, भारी तथा वाजीकर अन्नपान तथा बृंहण मांसादि सेवन करना चाहिये । यह " खण्डकाद्यावलेह " रक्तपित्त, क्षय, कास, परिणामशूल, वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमन, ग्लानि, सूजन, पांडुरोग, कुष्ट, प्लीहा, आनाह, रक्तस्राव तथा, अम्लपित्तको नष्ट करता, नेत्रबल शरीरवृद्धि, वीर्य, मङ्गल तथा प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला, आरोग्य, पुत्र, काम, अग्नि तथा बलको बढ़ानेवाला, शरीरकी शोभा तथा लाघव करनेवाला है ॥ ८१-९१ ॥

अत्र पथ्यापथ्यम् ।

छागं पारावतं मांसं तित्तिरिः क्रकराः शशाः ।
कुरङ्गाः कृष्णसाराश्च तेषां मांसानि योजयेत् ॥ ९२ ॥
नारिकेलपयःपानं सुनिषण्णकवास्तुकम् ।
शुष्कमूलकजीराख्यं पटोलं बृहतीफलम् ॥ ९३ ॥
फलं वार्ताकु पकाम्रं खर्जूरं स्वादु दाडिमम् ।
ककारपूर्वकं यच्च मांसं चानूपसम्भवम् ॥ ९४ ॥
वर्जनीयं विशेषेण खण्डकाद्यं प्रकुर्वता ।
लोहान्तरवदत्रापि पुटनादिक्रियेष्यते ॥ ९५ ॥

बकरी, कबूतर, तीतर, केंकड़ा, खरगोश, काला मृग, तथा मृग इनका मांस, नरियलका जल, चौपतिया, बथुवा, सूखी मूली, जीरा, परवल, बड़ी कटेली, बैंगन, पके आम, छुहारा, मीठा अनार खाना चाहिये । जिन वस्तुओंके नामके आदिमें ककार है ऐसी चीजें तथा अनूपमांस ' खण्डकाद्य ' सेवन करनेवालोंको त्याग देना चाहिये । दूसरे प्रयोगोंके समान इसमें भी लौहभस्म ही छोड़ना चाहिये ९२-९५

परिशिष्टम् ।

यच्च पित्तज्वरे प्रोक्तं बाहिरन्तश्च भेषजम् ।
रक्तपित्ते हितं तच्च क्षीणक्षतहितं च यत् ॥ ९६ ॥

जो पित्तज्वरके लिये बाहरी तथा भीतरी चिकित्सा कही गई है, वह तथा क्षतक्षीणकी जो चिकित्सा है, वह रक्तपित्तमें लाभदायक होती है ॥ ९६ ॥

इति रक्तपित्ताधिकारः समाप्तः ।

अथ राजयक्ष्माधिकारः ।

राजयक्ष्मणि पथ्यम् ।

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभाः ।
मद्यानि जाङ्गलाः पक्षिमृगाः शस्ता विशुष्यताम् ॥ १ ॥
शुष्यतां क्षीणमांसानां कल्पितानि विधानवित् ।
दद्यात्क्रव्यादमांसानि बृंहणानि विशेषतः ॥ २ ॥

शालि तथा साठीके चावल, गेहूं, यव, मूंग, शराब, जांगल प्राणियोंका मांस हितकर है । जिनका मांस क्षीण हो गया है, उन्हें मांस खानेवाले प्राणियोंका मांस खिलाना अधिक पौष्टिक होता है ॥ १ ॥ २ ॥

शोधनम् ।

दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेचनम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नानां स्नेहनं यन्न कर्षणम् ॥ ३ ॥

जिनके दोष अधिक बढ़े हैं, उन्हें स्नेहन स्वेदन कराकर स्निग्ध पदार्थोंसे वमन अथवा विरेचन कराना चाहिये । पर शोधन ऐसा हो, जिससे कृशता न बढ़े ॥ ३ ॥

शुद्धकोष्ठस्य युञ्जीत विधिं बृंहणदीपनम् ।
कोष्ठ शुद्ध हो जानेपर बृंहण तथा दीपन प्रयोग करना चाहिये ।

---

१ कुछ आचार्य इस प्रयोगमें गन्धक, अभ्रक और रसको भी मिलाते हैं और इसीके अनुकूल प्रमाण देते हैं । " न रसेन विना लौहं गन्धकं चाभ्रकं विना । तथा चपलेन विना लौहं यः करोति पुमानिह ॥ उदरे तस्य किट्टानि जायन्ते नात्र संशयः । " पर यह व्यवहार सिद्ध नहीं है । उपरोक्त प्रमाण केवल चतुःसमलौहके लिये है । अतएव वहां 'इह' शब्द भी पढ़ा है । यह शिवदासजीका मत है ॥

राजयक्ष्मणि मलरक्षणप्रयोजनम् ।

शुक्रायत्तं बलं पुंसां मलायत्तं हि जीवितम् ॥ ४ ॥
तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ।

मनुष्योंका बल वीर्यके अधीन और जीवन मलके अधीन रहता है। अतः मल और वीर्यकी यत्नसे रक्षा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

षडङ्गयूषः ।

सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम् ॥ ५ ॥
दाडिमामलकोपेतं सिद्धमाजरसं पिबेत् ।
तेन षड् विनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः ॥ ६ ॥
रसे द्रव्याम्बुपेयावत्सूपशास्त्रवशादिह ।
पलानि द्वादश प्रस्थे घनेऽथ तनुके तु षट् ॥ ७ ॥
मांसस्य वटकं कुर्यात्पलमच्छतरे रसे ।

छोटी पीपल, सोंठ, यव, कुलथी, अनारदाना, आमला—इनका जल बना बकरीका मांस छोड़ घीके साथ पकाकर यूष छानकर पिलाना चाहिये। इससे पीनस, स्वरभेद आदि नष्ट होते हैं। रस बनानेके लिये जिस भांति पेया आदिमें जल और औषधियां (अर्थात् १ कर्ष औषधि १ प्रस्थ जल) छोड़ी जाती हैं, उसी प्रकार छोड़ना चाहिये। यदि रस गाढ़ा बनाना हो, तो १ प्रस्थ जलमें १२ पल मांस और पतलेमें ६ पल मांस और बहुत पतला बनानेमें १ पल ही मांस छोड़ना चाहिये। (इसमें सोंठ व पीपल इतना छोड़े, जिससे कटुता आ जाय, आमला व अनारदाना इतना छोड़े, जिससे खट्टा हो जाय, यव और कुलथी यूषद्रव हैं, अतः इन्हें अधिक छोड़े) ॥ ५-७ ॥-

धान्यकादिक्वाथः ।

धन्याकपिप्पलीविश्वदशमूलीजलं पिबेत् ॥ ८ ॥
पार्श्वशूलज्वरश्वासपीनसादिनिवृत्तये ।

धनियां, छोटी पीपल, सोंठ, तथा दशमूलका क्वाथ-पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास तथा पीनसादिकी निवृत्तिके लिये पिलाना चाहिये ॥ ८ ॥-

अश्वगन्धादिक्वाथः ।

अश्वगन्धामृताभीरुदशमूलीबलावृषाः ।
पुष्करातिविषा घ्नन्ति क्षयं क्षीररसाशिनः ॥ ९ ॥

असगन्ध, गुर्च, शतावरी, दशमूल, खरेटी, अडूसा, पोहकरमूल तथा अतीसका क्वाथ–पीने तथा दूध या मांसरस सेवन करनेसे क्षय नष्ट होता है ॥ ९ ॥

दशमूलादिक्वाथः ।

दशमूलबलारास्नापुष्करसुरदारुनागरैः कथितम् ।
पेयं पार्श्वांसशिरोरुक्क्षयकासादिशान्तये सलिलम् ॥

दशमूल, खरेटी, रास्ना, पोहकरमूल, देवदारु, व सोंठका क्वाथ–पसली तथा कन्धों व शिरकी पीड़ा व क्षयज कासादिकी शांतिके लिये पीना चाहिये ॥ १० ॥

ककुभत्वगाद्युत्कारिका ।

ककुभत्वङ्नागबलावानरिबीजानि चूर्णितं पयसि ।
पक्वं घृतमधुयुक्तं ससितं यक्ष्मादिकासहरम् ॥११॥

अर्जुनकी छाल, खरेटी तथा कौंचके बीजोंका चूर्ण दूधमें पकाकर घी शहद व मिश्री मिलाकर खानेसे यक्ष्मा और कासादि नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

मांसचूर्णम् ।

पारावतकपिच्छागकुरङ्गाणां पृथक् पृथक् ।
मांसचूर्णमजाक्षीरं पीतं यक्ष्महरं परम् ॥ १२ ॥

कबूतर, बन्दर, बकरा, मृग–इनमेंसे किसी एकके मांसका चूर्ण खाकर बकरीका दूध पीनेसे यक्ष्मा नष्ट होता है ॥ १२ ॥

नागबलावलेहः ।

घृतकुसुमसारलीढं क्षयं क्षयं नयति गजबलामूलम् ।
दुग्धेन केवलेन तु वायसजङ्घा निपीतैव ॥ १३ ॥

नागबलाकी जड़का चूर्ण, घी और शहदके साथ चाटनेसे अथवा काकजंघाका चूर्ण केवल दूधके साथ पीनेसे क्षय नष्ट होता है ॥ १३ ॥

लेहद्वयम् ।

कृष्णाद्राक्षासितालेहः क्षयहा क्षौद्रतैलवान् ।
मधुसर्पिर्युतो वाश्वगन्धाकृष्णासितोद्भवः ॥ १४ ॥

छोटी पीपल, मुनक्का व मिश्रीको तैल व शहदके साथ चाटनेसे तथा असगन्ध, छोटी पीपल, व मिश्रीका चूर्ण घी व शहदके साथ चाटनेसे क्षय नष्ट होता है ॥ १४ ॥

नवनीतप्रयोगः ।

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहन् क्षयी ।
क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमाक्षिके ॥१५॥

मक्खनको शहद व शक्करके साथ चाटनेसे अथवा विषम भाग घी व शहद चाटनेसे क्षय नष्ट होता और पुष्टि होती है ॥ १५ ॥

सितोपलादिचूर्णम् ।

सितोपलातुगाक्षीरीपिप्पलीबहुलात्वचः ।
अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा ॥ १६ ॥
चूर्णितं प्राशयेदेतच्छ्वासकासक्षयापहम् ।
सुप्तजिह्वारोचकिनमल्पाग्निं पार्श्वशूलिनम् ॥ १७ ॥
हस्तपादांसदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्ध्वगे ॥ १८ ॥

दालचीनी, १ भाग, छोटी इलायचीके दाने २ भाग, छोटी पीपल ४ भाग, वंशलोचन ८ भाग, मिश्री १६ भाग सबका चूर्ण कपड़छानकर घी व शहदके साथ चाटनेसे श्वास, कास, क्षय, जिह्वाकी सुप्तता, अरोचक, मन्दाग्नि, पसलियोंका दर्द, हाथ, पैर और कन्धोंकी जलन तथा ऊर्ध्वग रक्तपित्त नष्ट होते हैं ॥ १६-१८ ॥

लवङ्गाद्यं चूर्णम् ।

लवङ्गकक्कोलमुशीरचन्दनं
नतं सनीलोत्पलजीरकं समम् ।
त्रुटिः सकृष्णागुरुभृङ्गकेशरं
कणा सविश्वा नलदं सहाम्बुदम् ॥ १९ ॥
अहीन्द्रजातीफलवंशलोचना-
सिताष्टभागं समसूक्ष्मचूर्णितम् ।
सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं
बलप्रदं वृष्यतमं त्रिदोषनुत् ॥ २० ॥
उरोविबन्धं तमकं गलग्रहं
सकासहिक्कारुचियक्ष्मपीनसम् ।
ग्रहण्यतीसारभगन्दरार्बुदं
प्रमेहगुल्मांश्च निहन्ति सज्वरान् ॥ २१ ॥

लवङ्ग, कंकोल, खश, सफेदचन्दन, तगर, नीलोफर, सफेद जीरा, छोटी इलायची, छोटी पीपल, अगर, भांगरा, नागकेशर, छोटी पीपल, सोंठ, जटामांसी, नागरमोथा, शारिवा, जायफल, वंशलोचन--प्रत्येक समान भाग, मिश्री ८ भाग मिलाकर चूर्ण बना लेना चाहिये । यह चूर्ण रोचक, तर्पक, अग्निदीपक, बलदायक, वाजीकर और त्रिदोषनाशक है । छातीकी जकड़ाहट, नेत्रोंके सामने अन्धेरा छा जाना, गलेकी जकड़ाहट, खांसी, हिक्का, अरुचि, राजयक्ष्मा, पीनस, ग्रहणीरोग, अतीसार, भगन्दर, प्रमेह, गुल्म, और ज्वर इससे नष्ट होते हैं ॥ १९-२१ ॥

तालीशाद्यं चूर्णं मोदकश्च ।

तालीसपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा ।
यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चार्धभागिके ॥ २२ ॥
पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया शितशर्करा ।
श्वासकासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ २३ ॥
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहशोषज्वरापहम् ।
छर्द्यतीसारशूलघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ २४ ॥
कल्पयेद् गुटिकां चैतच्चूर्णं पक्त्वा सितोपलाम् ।
गुटिका ह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतराः स्मृताः ।
पैत्तिके ग्राहयन्त्येके शुभया वंशलोचनम् ॥ २५ ॥

तालीशपत्र १ भाग, काली मिर्च २ भाग, सोंठ ३ भाग, छोटी पीपल ४ भाग, वंशलोचन ५ भाग, दालचीनी तथा छोटी इलायचीके दाने प्रत्येक आधा आधा भाग, मिश्री ३२ भाग मिलाकर चूर्ण बना लेना चाहिये । यह चूर्ण-श्वास, कास, अरुचिको नष्टकर अग्निको दीप्त करता तथा हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीरोग, प्लीहा, राजयक्ष्मा, ज्वर, वमन, अतीसार और शूलको नष्ट करता तथा मूढ वायुका अनुलोमन करता है । इसी चूर्णको पकाकर गोली बना लेनेसे गोलियां हलकी होती हैं, क्योंकि इनमें अग्निका संयोग होता है । कुछ लोगोंका मत है कि शुभासे वंशलोचन पैत्तिक रोगोंके लिये लेना चाहिये ॥ २२-२५ ॥

शृंग्यादिचूर्णम् ।

शृङ्ग्यर्जुनाश्वगन्धानागबलापुष्करामयाच्छिन्नरुहाः ।
तालीशादिसमेता लेह्या मधुसर्पिर्भ्यां यक्ष्महराः २६

काकड़ासिंही, अर्जुनकी छाल, असगन्ध, नागबला, पोहकरमूल, कूठ, गुर्च-सब समान भाग, सबके समान तालीशादिचूर्ण मिलाकर घी, शहदके साथ चाटनेसे राजयक्ष्मा नष्ट होता है ॥ २६ ॥

मधुताप्यादिलौहम् ।

मधुताप्यविडङ्गाश्मजतुलोहघृताभयाः ।
घ्नन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्यमाना हिताशिना ॥२७॥

शहद, स्वर्णमाक्षिक भस्म, वायविडङ्ग, शिलाजतु, लोहभस्म, घृत, बड़ी हर्रका छिलका-सब साथ मिलाकर चाटनेसे तथा भोजन पथ्यकारक करनेसे राजयक्ष्मा नष्ट होता है ॥ २७ ॥

---

१ यहां सिताष्टभागसे एकभागकी अपेक्षा ही अष्टगुण समझना चाहिये । समस्त चूर्णसे अष्टगुण नहीं । क्योंकि, अन्यत्र शार्ङ्गधरादिमें समस्त चूर्णका आधा भाग मिश्री लिखी है और वह प्रायः अष्टभागके समान ही है । यही शिवदासजीका भी मत है ।

१ पर वास्तवमें वंशलोचन ही लिया जाता है । दूसरे भी-" तालीशं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशलोचना इत्यादि " ऐसे ही पाठान्तर हैं ॥ २ यहां " तालीशादिसमेताः " शब्दसे तालीशादि चूर्णोक्त द्रव्यमात्र लिये जाते हैं, वहांका भागक्रम आवश्यक नहीं है । जैसा कि चैतसघृतमें ' कल्याणकस्य चाङ्गेन ' यह लिखनेपर भी कल्याणघृतोक्त कल्क मात्र लिया जाता है । अतः यहां शृंगादिके समान ही तालीशादि प्रत्येक द्रव्य छोड़ना चाहिये ।

विन्ध्यवासियोगः ।

व्योषं शतावरी त्रीणि फलानि द्वे बले तथा ।
सर्वामयहरो योगः सोऽयं लोहरजोऽन्वितः ॥२८
एष वक्षःक्षतं हन्ति कण्ठजांश्च गदांस्तथा ।
राजयक्ष्माणमत्युग्रं बाहुस्तम्भमथार्दितम् ॥ २९ ॥

सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, शतावरी, त्रिफला, खरेटी, कंघी-प्रत्येक एक भाग, तथा लोह[1] भस्म सबके समान मिला सेवन करनेसे समस्त रोग नष्ट होते हैं । यह उरःक्षत, कण्ठजरोग, कासादि, बाहुस्तम्भ, अर्दित तथा राजयक्ष्माको नष्ट करता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

रसेन्द्रगुटिका ।

कर्षः शुद्धरसेन्द्रस्य स्वरसेन जयार्द्रयोः ।
शिलायां खल्वयेत्तावद्यावत्पिण्डं घनं ततः ॥३०॥
जलकणाकाकमाचीरसाभ्यां भावयेत्पुनः ।
सौगन्धिकपलं भृङ्गस्वरसेन विभावितम् ॥ ३१ ॥
चूर्णितं रससंयुक्तमजाक्षीरपलद्वये ।
खल्वितं घनपिण्डं तु गुटीं स्विन्नकलायवत् ॥३२॥
कृत्वादौ शिवमभ्यर्च्य द्विजातीन्परितोष्य च ।
जीर्णान्नो भक्षयेदेकां क्षीरमांसरसाशनः ॥३३ ॥
सर्वरूपं क्षयं कासं रक्तपित्तमरोचकम् ।
अपि वैद्यशतैस्त्यक्तमम्लपित्तं नियच्छति ॥ ३४ ॥

१ तोला शुद्ध पारद खरलमें अरणी व अदरखके स्वरससे उस समय तक घोटना कि घनता आजाय अर्थात् गोला बन जाय । फिर जलपिप्पली, मकोयके रससे भावना देनी चाहिये । फिर इसीमें भांगरेके रससे भावित गन्धक ४ तोला छोड़ना चाहिये और बकरीका दूध ८ तोला मिला घोटकर गाढ़ा हो जाने पर मटरके बराबर गोली बना लेनी चाहिये । फिर शंकरजीका पूजन तथा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट कर अन्न पाक हो जाने पर १ गोली खानी चाहिये । दूध या मांस रसका पथ्य लेना चाहिये । यह समस्त प्रकारके क्षय, कास, रक्तपित्त, अरोचक इनको तथा सैकड़ों वैद्योंसे त्यक्त अम्लपित्तको नष्ट करता है ॥ ३०-३४ ॥

एलादिमन्थः ।

एलाजमोदामलकाभयाक्ष-
गायत्रिनिम्बाशनशालसारान् ।
विडंगभल्लातकचित्रकांश्च
कटुत्रिकाम्भोदसुराष्ट्रिकाश्च ॥ ३५ ॥
पक्त्वा जले तेन पचेत्तु सर्पि-
स्तस्मिन्सुसिद्धे त्ववतारिते च ।
त्रिंशत्पलान्यत्र सितोपलाया
दद्यात्तुगाक्षीरिपलानि षट् च ॥ ३६ ॥
प्रस्थे घृतस्य द्विगुणं च दद्यात्
क्षौद्रं ततो मन्थहतं निदध्यात्
पलं पलं प्रातरतो लिहेच्च
पश्चात्पिबेत्क्षीरमतन्द्रितश्च ॥ ३७ ॥
एतद्धि मेध्यं परमं पवित्रं
चक्षुष्यमायुष्यतमं तथैव ।
यक्ष्माणमाशु व्यपहन्ति शूलं
पांड्वामयं चापि भगन्दरं च ।
न चात्र किंचित्परिवर्जनीयं
रसायनं चैतदुपास्यमाहुः ॥ ३८ ॥

इलायची, अजवायन, आमला, बड़ी हर्रे, बहेड़ा, कत्था, नीमकी छाल, विजैसार, शाल, वायविडंग, भिलावां, चीतकी जड़, त्रिकटु, नागरमोथा, सुराष्ट्रिका (सोरठी मिट्टी इसके अभावमें भुनी फिटकरी) जलमें पका क्वाथ बनाकर इसी क्वाथसे घृत पाक करे । इस १ प्रस्थ घृतमें ३० पल मिश्री, ६ पल वंशलोचन और घृतसे द्विगुण शहद मिला मथकर रखना चाहिये । इससे १ पलकी मात्रा प्रातःकाल चाटना चाहिये । ऊपरसे दूध पीना चाहिये । यह मेधाको बढ़ानेवाला, पवित्र, नेत्रोंके लिये हितकर, आयु बढ़ानेवाला, यक्ष्मा, शूल, पाण्डुरोग, तथा भगन्दरको नष्ट करता है । इसमें कुछ परहेज भी करनेकी आवश्यकता नहीं । यह रसायन है ॥ ३५-३८ ॥

सर्पिर्गुडः ।

बला विदारी ह्रस्वा च पञ्चमूली पुनर्नवा ।
पञ्चानां क्षीरिवृक्षाणां शुंगा मुष्टयंशिकाः पृथक् ॥
एषां कषाये द्विक्षीरे[1] विदार्याजरसांशिके
जीवनीयैः पचेत्कल्कैरक्षमात्रैर्घृताढकम् ॥ ४० ॥
सितापलानि पूते च शीते द्वात्रिंशदावपेत् ।
गोधूमपिप्पलीवांशीचूर्णं शृङ्गाटकस्य च ॥ ४१ ॥

१-यहां लोह अधिक गुणकारक होनेसे सबके समान ही छोड़ना चाहिये । तथा यहां घृत मधु नहीं लिखा है, पर लेहप्रकरणमें कहा है । अतः लेह ही बनाकर प्रयोग करना चाहिये । ऐसा ही शिवदासजीका भी मत है ।

१ यहां पर ' द्विक्षीरे ' का अर्थ " द्विप्रकारकं क्षीरं यत्रेति तथा । क्षीरद्वयं चात्र प्राधान्यादाजं गव्यं च ग्राह्यम् " ऐसा किया है । अर्थात् १ भाग गायका दूध, तथा १ भाग बकरीका दूध छोड़ना चाहिये ।

समाक्षिकं कौडविकं तत्सर्वं खजमूर्च्छितम् ।
स्त्यानं सर्पिर्गुडान्कृत्वा भूर्जपत्रेण वेष्टयेत् ॥ ४२ ॥
ताञ्जग्ध्वा पलिकान्क्षीरे मद्यं चानुपिबेत्तथा ।
शोषे कासे क्षतक्षीणे श्रमस्त्रीभारकर्षिते ॥ ४३ ॥
रक्तनिष्ठीवने तापे पीनसे चोरसि क्षते ।
शस्ताः पार्श्वशिरःशूले भेदे च स्वरवर्णयोः ॥४४॥
क्वाथ्ये त्रयोदशपले द्रव्याल्पत्वभयाजलम् ।
अष्टगुणं क्वाथसमौ विदार्याजरसौ पृथक् ॥ ४५ ॥
केचिद्यथोक्तक्वाथ्ये तु क्वाथं घृतसमं जगुः ।

खरेटी, विदारीकन्द, लघुपञ्चमूल, पुनर्नवा, पांचों क्षीरिवृक्षों (कपीतन, वट, गूलर, पीपल, प्लक्ष) के कोमल पत्ते प्रत्येक ४ चार तोला इनका क्वाथ तथा घीसे द्विगुण दूध और विदारीकन्दका रस तथा बकरेके मांसका रस घीके समान मिलाकर तथा जीवनीयगणकी ओषधियोंका कल्क प्रत्येकका १ तोला मिलाकर एक आढ़क घृत पकाना चाहिये। घृत सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर मिश्री ३२ पल तथा गेहूँका आटा, छोटी पीपल, वंशलोचन, सिंघाड़का चूर्ण तथा शहद प्रत्येक एक कुडव अर्थात् १६ तोला छोड़कर मिलाना चाहिये। लड्डू बनानेके योग्य हो जानेपर एक एक पलके लड्डू बनाकर ऊपरसे भोजपत्र लपेट देना चाहिये। इनको खाकर दूध या मद्य पीना चाहिये। यह राजयक्ष्मा, कास, क्षतक्षीण, थके तथा स्त्रीगमन व बोझा ढोनेसे कृश, खून थूकनेवालों तथा दाह व पीनससे पीड़ित व उरःक्षतसे युक्त पुरुषोंके लिये विशेष हितकर है। पसलियों तथा शिरका दर्द, स्वरभेद, वर्णविकृति भी इससे नष्ट होती है। क्वाथ्य द्रव्य घृतसे कम है, अतः अष्टगुण जल छोड़ना और चतुर्थांश शेष रखना तथा क्वाथके समान विदारीकन्दका रस और बकरेके मांसका रस छोड़ना चाहिये। कुछका मत है कि क्वाथ्य द्रव्य कम होनेपर भी क्वाथ घीके समान ही बनाना चाहिये ॥ ३९-४५ ॥

च्यवनप्राशः ।

बिल्वाग्निमन्थश्योनाककाश्मर्यः पाटली बला ।
पर्ण्यश्चतस्रः पिप्पल्यः श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ ४६ ॥
शृङ्गीतामलकीद्राक्षाजीवन्तीपुष्करागुरु ।
अभया सामृता ऋद्धिर्जीवकर्षभकौ शटी ॥ ४७ ॥
मुस्तं पुनर्नवा मेदा सूक्ष्मैलोत्पलचन्दने ।
विदारी वृषमूलानि काकोली काकनासिका ॥४८॥

एषां पलोन्मितान्भागान् शतान्यामलकस्य च ।
पञ्च दद्यात्तदैकध्यं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४९ ॥
ज्ञात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ तं रसम् ।
तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः ॥ ५० ॥
पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्त्वा चार्धतुलां भिषक् ।
मत्स्यण्डिकायाः पूताया लेहवत्साधु साधयेत् ॥५१
षट्पलं मधुनश्चात्र सिद्धशीते प्रदापयेत् ।
चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पल्या द्विपले तथा ॥५२॥
पलमेकं निदध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरात् ।
इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः ॥ ५३ ॥

बेलका गूदा, अरणी, सोनापाठा, खम्भार, पाढ़ल, खरेटी, मुंगवन, मषवन, छोटी पीपल, सारिवन, पिठिवन, गोखुरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, काकड़ाशिंगी, भुई आंवला, मुनक्का, जीवन्ती, पोहकरमूल, अगर, बड़ी हर्रका छिल्का, गुर्च, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कपूरकचरी या कपूर, नागरमोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलायची, नीलोफर, लाल चन्दन, विदारीकन्द, अडूसेकी छाल, काकोली, काकनासा प्रत्येक द्रव्य आठ आठ तो० और ५०० ताजे पके हुए आंवलोंको छोड़कर एक द्रोण जल अर्थात् (५१ सेर १६ तो० जल) में पकाना चाहिये। आमला पक्र जानेपर उतार ठण्डाकर क्वाथ छानकर अलग रख लेना चाहिये। आंवले निकालकर उनकी गुठली निकाल कपड़ेसे रगड़कर छना हुआ गूदा लेना चाहिये । और जो नसें निकलती हैं, उन्हें अलग कर देना चाहिये । फिर इस गूदेको काले तिलका तैल ४८ तोला और घी ४८ तोला छोड़कर सेकना चाहिये। जब कुछ सुर्खी आ जावे और सुगन्ध उठने लगे तब, मिश्री ५ सेर और काढ़ा छोड़कर पकाना चाहिये। अवलेह सिद्ध हो जानेपर उतार ठण्ढा कर शहद ४८ तोला, वंशलोचन ३२ तोला, छोटी पीपल १६ तोला, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर प्रत्येक ८ तोला चूर्ण किया हुआ मिलाना चाहिये। यह "च्यवनप्राश" तैयार हुआ। यह परम रसायन है ॥ ४६-५३ ॥

च्यवनप्राशस्य गुणाः ।

कासश्वासहरश्चैष विशेषेणोपदिश्यते ।
क्षीणक्षतानां वृद्धानां बालानां चाङ्गवर्धनः ॥५४॥
स्वरक्षयमुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम् ।
पिपासां मूत्रशुक्रस्थान्दोषांश्चैवापकर्षति ॥ ५५ ॥
अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत योपरुन्ध्यान्न भोजनम् ।
अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा ॥ ५६ ॥
मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वं
वपुःप्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम् ।

(१) ऋद्धि जीवक, ऋषभक, मेदा तथा काकोलीके अभावमें क्रमशः प्रतिनिधि द्रव्य (वाराहीकन्द, विदारीकन्द, विदारीकन्द, शतावर असगन्ध) छोड़ना चाहिये।

स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्निवृद्धिं
वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥ ५७ ॥
रसायनस्यास्य नरः प्रयोगा-
ल्लभेत जीर्णोऽपि कुटीप्रवेशात् ।
जराकृतं रूपमपास्य सर्वं
बिभर्ति रूपं नवयौवनस्य ॥ ५८ ॥
सितामत्स्यण्डिकालाभे धात्र्याश्च मृदुभर्जनम् ।
चतुर्भागजले प्रायो द्रव्यं गतरसं भवेत् ॥ ५९ ॥

उपर्युक्त मात्रासे सेवित हुआ यह कास तथा श्वासको नष्ट करनेवाला, क्षीणक्षत, वृद्ध तथा बालकोंके शरीरको पुष्ट करनेवाला, स्वरभेद, उरःक्षत, हृद्रोग, वातरक्त, पिपासा तथा मूत्र और वीर्यके दोषोंको नष्ट करता है । इसकी मात्रा उतनी ही सेवन करनी चाहिये, जो भोजनको कम न करे । इसके प्रयोगसे वृद्ध च्यवन फिर जवान हुए थे । इस रसायनके सेवनसे मेधा, स्मृति, कान्ति, नीरोगता, शरीरवृद्धि, इन्द्रियशक्ति, स्त्रीगमनशक्ति, अग्निवृद्धि, वर्णकी उत्तमता तथा वायुकी अनुलोमता होती है । इसको " कुटी प्रावेशिक " विधिसे सेवन करनेसे वृद्ध पुरुष भी वृद्धताके लक्षणोंको छोड़कर नवयौवनके रूपको धारण करता है । मत्स्याण्डिकाके अभावमें मिश्री छोड़ना तथा आवलोंको मन्द आंचसे मृदु भर्जन करना चाहिये । चतुर्थांश क्वाथ रहनेपर प्रायः द्रव्य गतरस हो जाता है । (यह प्रयोग चरकसंहिताका है । अतः उन्हींके मानके अनुसार सब चीजोंका मान लिखा है) ॥ ५४-५९ ॥

जीवन्त्याद्यं घृतम् ।

जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च ।
शटीं पुष्करमूलं च व्याघ्रीं गोक्षुरकं बलाम् ॥६०॥
नीलोत्पलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम् ।
पिप्पलीं च समं पिष्ट्वा घृतं वैद्यो विपाचयेत् ॥६१॥
एतद्व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समुत्थितम् ।
रूपमेकादशविधं सर्पिरग्र्यं व्यपोहति ॥ ६२ ॥

जीवन्ती, मौरेठी, मुनक्का, इन्द्रयव, कचूर, पोहकरमूल, छोटी कटेरी, गोखरू, खरेटी, नीलोफर, भूमिआंवला, त्रायमाण, यवासा, छोटी पीपल-सब समान भाग ले पीस जल मिलाकर कल्क बनाना चाहिये । कल्क द्रव्यसे चतुर्गुण घी और घीसे चतुर्गुण जल मिलाकर घी पकाना चाहिये । यह घी राजयक्ष्माके समग्र लक्षणोंको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ६०-६२ ॥

पिप्पलीघृतम् ।

पिप्पलीगुडसंसिद्धं छागक्षीरयुतं घृतम् ।
एतदग्निविवृद्ध्यर्थं सेव्यञ्च क्षयकासिभिः ॥ ६३ ॥

छोटी पीपल व गुड़का कल्क दोनोंसे चतुर्गुण घी और घीसे चतुर्गुण बकरीका दूध तथा दूधके समान जल मिलाकर पकाना चाहिये । यह क्षय तथा कासवालोंको अग्निवृद्धिके लिये सेवन करना चाहिये ॥ ६३ ॥

पाराशरं घृतम् ।

यष्टीबलागुडूच्यल्पपञ्चमूलीतुलां पचेत् ।
शूर्पेऽपामष्टभागस्थे तत्र पात्रे[1] पचेद् घृतम् ॥ ६४ ॥
धात्रीविदारीक्षुरसे त्रिपात्रे पयसोऽर्मणे[2] ।
सुपिष्टैर्जीवनीयैश्च पाराशरमिदं घृतम् ॥ ६५ ॥
ससैन्यं राजयक्ष्माणमुन्मूलयति शीलितम् ।

मौरेठी, खरेटी, गुर्च, लघु पञ्चमूल सब मिलाकर ५ सेर (अर्थात् प्रत्येक १० छ०) जल २ द्रोण (५१ सेर १८ तो०) जल छोड़कर पकाना चाहिये । अष्टमांश शेष रहनेपर उतार छानकर १ आढ़क घी, १ आढ़क आंवलोंका रस, १ आढ़क विदारीकन्द रस, १ आढ़क ईखका रस, दूध १ द्रोण और घृतसे चतुर्थांश जीवनीय गणकी औषधियोंका कल्क मिलाकर पकाना चाहिये । यह पराशर महर्षिका बनाया घृत सेवन करनेसे ससैन्य राजयक्ष्माको नष्ट करता है ॥६४॥६५॥-

छागलाद्यं घृतम् ।

छागमांसतुलां दत्त्वा साधयेन्नल्वणेऽम्भसि ।
पादशेषेण तेनैव घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६६ ॥
ऋद्धिवृद्धी च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा ।
काकोलीक्षीरकाकोलीकल्कैः पलमितैः पृथक् ॥६७
सम्यक् सिद्धेऽवतार्याथ शीते तस्मिन्प्रदापयेत् ।
शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनः कुडवं तथा ॥ ६८ ॥
पलं पलं पिबेत्प्रातर्यक्ष्माणं हन्ति दुर्जयम् ।
क्षतक्षयं च कासं च पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ६९ ॥
स्वरक्षयमुरोरोगं श्वासं हन्यात्सुदारुणम् ।

बकरेका मांस ५ सेर जल २५ सेर ४८ तोले छोड़कर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर १ प्रस्थ घी तथा ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, (शतावर, विदारीकन्द, असगन्ध, वाराहीकन्द ये उनके अभावमें छोड़ने चाहियें) प्रत्येक ४ तोलाका कल्क छोड़कर घी पकाना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर उतार छान ठण्डाकर मिश्री ३२ तोला, शहद १६ तोला मिलाकर रखना चाहिये । इससे प्रतिदिन ४ तोलाकी मात्रा सेवन करना चाहिये । यह राजयक्ष्मा, क्षतक्षय, कास, पार्श्वशूल, अरोचक, स्वरभेद, उरःक्षत तथा कठिन श्वासको नष्ट करता है ॥ ६६-६९ ॥-

[1] पात्रम्=आढकम् । [2] नल्वणो=द्रोणः ।

छागघृतम् ।

तोयद्रोणद्वितये मांसं छागस्य पलशतं पक्त्वा ।
जलमष्टांशं सुकृतं तस्मिन्विपचेद् घृतप्रस्थम् ॥७०॥
कल्केन जीवनीयानां कुडवेन तु मांससर्पिरिदम् ।
पित्तानिलं निहन्यात्तज्जानपि रसकयोजितं पीतम् ७१
कासश्वासावुग्रौ यक्ष्माणं पार्श्वहृद्रुजं घोराम् ।
अध्वव्यवायशोषे शमयति चैवापरं किञ्चित् ॥७२॥

बकरेका मांस ५ सेर जल २ द्रोण छोड़कर पकाना चाहिये । अष्टमांश शेष रहनेपर उतार, छान, १ प्रस्थ घी मिला तथा जीवनीय गणकी ओषधियों (जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मौरेठी, मेदा, महामेदा) का मिलित कल्क १ कुड़व छोड़कर घृत पकाना चाहिये । यह घृत मांसरसके साथ पीनेसे वातपित्त-जन्य रोग, कास, श्वास, यक्ष्मा, पसलियों तथा-हृदयकी पीड़ा तथा अध्वशोष और व्यवायशोषको नष्ट करता है ॥ ७०-७२ ॥

अजापञ्चकं घृतम् ।

छागशकृद्रसमूत्र-क्षीरैर्दध्ना च साधितं सर्पिः ।
सक्षारं यक्ष्महरं कासश्वासोपशान्तये पेयम् ॥७३॥

बकरीकी लेंडियोंका रस तथा उसीका मूत्र, दूध और दही प्रत्येक घीके समान मिलाकर घी सिद्ध करना चाहिये । यह घी यवाखार मिलाकर चाटनेसे यक्ष्मा तथा-कास, श्वासको शान्त करनेमें श्रेष्ठ होता है । यहां घी भी बकरीका ही छोड़ना चाहिये ॥ ७३ ॥

बलागर्भं घृतम् ।

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये
प्रस्थद्वये मांसरसस्य चैके ।
कल्कं बलायाः सुनियोज्य गर्भे
सिद्धं पयः प्रस्थयुतं घृतं च ॥ ७४ ॥
सर्वाभिघातोत्थितयक्ष्मशूल-
क्षतक्षयोत्कासहरं प्रदिष्टम् ॥ ७५ ॥

दशमूलका क्वाथ २ प्रस्थ, मांसरस १ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ, खरेटी १ कुड़वका कल्क सब एकमें मिलाकर पकाना चाहिये । घृतमात्र रहनेपर उतार छानकर सेवन करना चाहिये । यह समस्त प्रकारके चोटके रोग, राजयक्ष्मा, शूल, क्षतक्षय और कासको नष्ट करता है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

नागबलाघृतम् ।

पादशेषे जलद्रोणे पचेन्नागबलातुलाम् ।
पलार्धिकैश्चातिबलाबलायष्टिपुनर्नवैः ।
प्रपौण्डरीककाश्मर्यपियालकपिकच्छुभिः ॥ ७७ ॥
अश्वगन्धासिताभीरुमेदायुग्मत्रिकण्टकैः ।
मृणालबिसशालूकशृङ्गाटककशेरुकैः ॥ ७८ ॥
एतन्नागबलासर्पी रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ।
हन्ति दाहं भ्रमं तृष्णां बलपुष्टिकरं परम् ॥ ७९ ॥
बल्यमोजस्यमायुष्यं वलीपलितनाशनम् ।
उपयुञ्जीत षण्मासान्वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ८० ॥

नागबलाका पञ्चांग ५ सेर, १ द्रोण जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश रहनेपर उतार छान क्वाथके बराबर घी और इतना ही दूध तथा घीसे द्विगुण जल मिलाकर पकाना चाहिये । तथा पकाते समय कंघी, खरेटी, मौरेठी, पुनर्नवा, पुण्डरिया, खम्भार, चिरौंजी, कौंचके बीज, असगन्ध, सफेद दूर्वा, शतावरी, मेदा, महामेदा, गोखुरू, कमलकी डण्ठी, तन्तु तथा कन्द, सिंघाड़ा और कशेरु-प्रत्येक २ दो तोला ले कल्क बनाकर छोड़ना चाहिये । यह "नागबलाघृत"-रक्तपित्त, उरःक्षत, दाह, भ्रम तथा प्यासको नष्ट करताहै और बल व पुष्टिको बढ़ाता है । ओज तथा आयुको बढ़ाता और बदनकी झुर्रियों तथा बालोंकी सफेदीको नष्ट करता है । इसका ६ मासतक प्रयोग करनेसे वृद्ध भी जवानोंके समान बलवान् होता है ॥ ७६-८० ॥

निर्गुण्डीघृतम् ।

समूलफलपत्राया निर्गुण्ड्याः स्वरसैर्घृतम् ।
सिद्धं पीत्वा क्षयक्षीणो निर्व्याधिर्भाति देववत् ८१

सम्भालूके पञ्चाङ्गसे सिद्ध घृत सेवन करनेसे मनुष्य क्षय रोगसे मुक्त होकर देवताओंके समान शोभायमान होता है ॥ ८१ ॥

बलाद्यं घृतम् ।

बलाश्वदंष्ट्राबृहतीकलशीधावनीस्थिराः ।
निम्बं पर्पटकं मुस्तं त्रायमाणां दुरालभाम् ॥ ८२॥
कृत्वा कषायं पेष्यार्थे दद्यात्तामलकीं शटीम् ।
द्राक्षां पुष्करमूलं च मेदामामलकानि च ॥ ८३ ॥
घृतं पयश्च तत्सिद्धं सर्पिर्ज्वरहरं परम् ।
क्षयकासप्रशमनं शिरःपार्श्वरुजापहम् ॥ ८४ ॥
चरकोदितवासाद्यघृतानन्तरमुक्तितः ।
वदन्तीह घृतात्क्वाथं पयश्च द्विगुणं पृथक् ॥ ८५ ॥

खरेटी, गोखुरू, बड़ी कटेरी, शालिपर्णी, छोटी कटेरी, पृष्ठपर्णी, नीमकी छाल, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाण, यवासा इनका काढ़ा और भूमिआंवला, कचूर, मुनक्का, पोहकर

मूल, मेदा, आँवला इनका कल्क और दूध मिलाकर घी पकाना चाहिये । यह घृत ज्वरको नष्ट करता, क्षय, कास, शिर व पसलियोंकी पीड़ाको शान्त करता है । इसको चरकमें वासाद्य घृतके अनन्तर लिखा है, अतः उसीके अनुसार घृतसे दूना क्वाथ तथा दूना ही दूध छोड़ना चाहिये ॥ ८२–८५ ॥

चन्दनाद्यं तैलम् ।

चन्दनाम्बु नखं वाप्यं यष्टीशैलेयपद्मकम् ।
मञ्जिष्ठा सरलं दारु शट्येला पूतिकेशरम् ॥ ८६ ॥
पत्रं तैलं मुरामांसी कक्कोलं वनितारम्बुदम् ।
हरिद्रे शारिवे तिक्ता लवङ्गागुरुकुङ्कुमम् ॥ ८७ ॥
त्वग्रेणु नलिका चैभिस्तैलं मस्तु चतुर्गुणम् ।
लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत् ॥ ८८ ॥
अपस्मारज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मीविनाशनम् ।
आयुःपुष्टिकरं चैव वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ८९ ॥

लालचन्दन, सुगन्धवाला, नख, कूठ, मौरेठी, शिलारस, पद्माख, मजीठ, सरल, देवदारु, कचूर, इलायची, खट्टाशी (अभावे लताकस्तूरी), नागकेशर, तेजपात, छरीला, मरोड़फली, जटामांसी, कंकोल, प्रियङ्गु, नागरमोथा, हलदी, दारुहल्दी, शारिवा, काली शारिवा, कुटकी, लवङ्ग, अगर, केशर, दालचीनी, सम्भालूके बीज, नलिका इन सबका कल्क, कल्कसे चतुर्गुण तैल तथा तैलसे चतुर्गुण दहीका तोड़ तथा तैलके बराबर लाखका रस मिलाकर पकाना चाहिये । यह सिद्ध तैल ग्रहघ्न, बलवर्णकारक, अपस्मार, ज्वर, उन्माद, महर्षिशाप तथा कुरूपताको नष्ट करता, आयु और पुष्टिको करता तथा वाजीकर है ॥ ८६–८९ ॥

छागसेवोत्कृष्टता ।

छागं मांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सशर्करम् ।
छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ ९० ॥

बकरीका मांस, बकरीका दूध, बकरीका घी, शक्करके साथ तथा बकरियोंके बीचमें रहना तथा बकरियोंके मध्यमें सोना यक्ष्माको नष्ट करता है ॥ ९० ॥

उरःक्षतचिकित्सा ।

उरो मत्वा क्षतं लाक्षां पयसा मधुसंयुताम् ।
सद्य एव पिबेज्जीर्णे पयसाद्यात्सशर्करम् ॥ ९१ ॥
इक्ष्वालिकाबिसग्रन्थिपद्मकेशरचन्दनैः ।
शृतं पयो मधुयुतं सन्धानार्थं पिबेत्क्षती ॥ ९२ ॥
बलाश्वगन्धाश्रीपर्णीबहुपुत्रीपुनर्नवाः
पयसा नित्यमभ्यस्ताः क्षपयन्ति क्षतक्षयम् ॥ ९३॥

उरःक्षत जानकर तत्काल ही लाखको शहदमें मिलाकर चाटना चाहिये, ऊपरसे दूध पीना चाहिये । तथा पच जानेपर दूध शक्करके साथ ही पथ्य लेना चाहिये । तथा उरःक्षतको जोड़नेके लिये काशकी जड़, कमलके तन्तु, गांठ, कमलके फूलका केशर तथा लाल चन्दनसे सिद्ध दूध, शहद मिलाकर पीना चाहिये । इसी प्रकार खरेटी, असगन्ध, शालपर्णी अथवा गम्भारीफल, शतावरी, व पुनर्नवाको प्रतिदिन दूधके साथ सेवन करनेसे उरःक्षत नष्ट होता है । (श्वेत सुरमाको कूट कपड़छानकर लाखके रसकी २१ भावना देकर रखे । इसकी १ माशेकी मात्रा दिनमें ४ बार मक्खन व शहद मिलाकर सेवन करनेसे अवश्य लाभ होता है । यह कितने ही बार अनुभव किया गया है । इसी प्रकार यक्ष्माके रोगीको अभ्रक भस्म १ रत्ती, विद्रुम भस्म १ रत्ती मिलाकर लिसोड़ेके शर्बतके साथ चटाते रहनेसे रोगीको सुख मिलता है अर्थात् उपद्रव नहीं बढ़ते । लिसोड़ाका शर्बत इस भांति बनाना चाहिये । ४ छ. लसोढ़ा सूखे हुए साफ लेकर दुरकुचाकर रातमें दो सेर जलमें मिट्टीके पात्रमें भिगोदेना चाहिये । सवेरे कुछ गरम कर छान लेना चाहिये । लुगदी फेंक देना चाहिये । इसमें १ सेर मिश्री मिलाकर पतली चाशनी बना लेनी चाहिये। यही "शर्बत लिसोड़ा" है । इसे हकीम लोग "लउकसपिस्ता" के नामसे व्यवहार करते हैं । यह जुखाम, सूखी खांसी, रक्तपित्त आदिमें अकेले ही बड़ा लाभ करता है । इसकी मात्रा दिनभरमें २ तोलासे ४ तोलेतक कई बारमें देना चाहिये ॥ ९१–९३ ॥

---

१ लाक्षारस बनानेके सम्बन्धमें कई मत हैं । भैषज्यरत्नावलीकारका मत है कि–" लाक्षायाः षड्गुणं तोयं दत्त्वैकविंशतिवारकम् । परिस्राव्य जलं ग्राह्यं किं वा क्वाथ्यं यथोदितम् ॥ " अर्थात् लाखको छः गुने जलमें घोलकर २१ वार छान लेनेसे लाक्षारस तैयार होता है । अथवा क्वाथकी विधि– " आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसम्भवे । वारिण्यष्टगुणे क्वाथ्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ " इस सिद्धान्तसे अष्टगुण जलमें पकाकर चतुर्थांश शेष रखना चाहिये। योगरत्नाकरकारने दूसरी ही पद्धति बतायी है । उनका मत है कि " दशांशं लोध्रमादाय तद्दशांशां च सर्जिकाम् । किञ्चिच्च बदरीपत्रं वारि षोडशधा स्मृतम् ॥ वस्त्रपूतो रसो ग्राह्यो लाक्षायाः पादशेषितः । " अर्थात् लाखसे दशांश लोध्र, लोध्रसे दशांश सज्जी और कुछ बेरकी पत्ती मिला सोलह गुने जलमें पकाकर चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर काममें लाना चाहिये । पर शिवदासजीने लिखा है–"लाक्षारसो लाक्षाक्वाथः, लाक्षायाः षोडशपलम्, पाकार्थजलं षोडशशरावम् । शेषं प्रस्थैकम् " अर्थात् लाख ६४ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, शेष ६४ तोला रखना चाहिये । यह पद्धति सरलताके विचारसे ही उन्होंने लिखी है और रस भी निकल आवेगा । अतः यही विधि काममें लानी चाहिये ॥

बलाद्यं घृतम् ।

घृतं बलानागबलार्जुनाम्बु-
सिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् ।
हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्त-
कासाऽनिलासृक् शमयत्युदीर्णम् ॥ ९४ ॥

खरेटी, गङ्गेरन और अर्जुनकी छालका क्वाथ तथा मौरेठीका कल्क छोड़कर सिद्ध किया घृत-घृतहृद्रोग, शूल, उरःक्षत, रक्तपित्त, कास और वातरक्तको नष्ट करता है ॥ ९४ ॥

इति राजयक्ष्माविकारः समाप्तः ।

अथ कासरोगाधिकारः ।

वातजन्यकासे सामान्यतः पथ्याद्युपायाः ।

वास्तूको वायसीशाकं मूलकं सुनिषण्णकम् ।
स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ १ ॥
दध्यारनालाम्लफलं प्रसन्नापानमेव च ।
शस्यते वातकासेषु स्वाद्वम्ललवणानि च ॥ २ ॥
ग्राम्यानूपौदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान् ।
रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्धितान् ॥ ३ ॥

वथुवा मकोय, मूली, चौपतिया, तैल आदि स्नेह, दूध, ईखके रस और गुड़से बनाये गये भोजन, दही, काञ्जी, खट्टेफल, शरावका पान, मीठे, खट्टे और नमकीन पदार्थ सेवनसे वातज कास शान्त होता है । ग्राम्य, आनूप और औदक प्राणियोंके मांसरस तथा उड़द व कैंवाचके यूषसे शालि, साठिके चावलोंका भात, यव, गेहूंसे बनाये पदार्थ सेवन करने चाहियें ॥ १-३ ॥

पञ्चमूलीक्वाथः ।

पञ्चमूलीकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ।
रसान्नमश्नतो नित्यं वातकासमुदस्यति ॥ ४ ॥

लघुपञ्चमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण छोड़कर पीने तथा नित्य मांसरसके साथ भात खानेसे वातज कास नष्ट होता है॥४॥

शृंग्यादिलेहः ।

शृङ्गीशटीकणाभार्ङ्गीगुडवारिदयासकैः ।
सतैलैर्वातकासघ्नो लेहोऽयमपराजितः ॥ ५ ॥

काकड़ाशिंगी, कचूर, छोटी पीपल, भारङ्गी, गुड़, नागरमोथा, यवासा तथा तैल-इनका लेह बनाकर चाटनेसे वातज कास नष्ट होता है ॥ ५ ॥

विश्वादिलेहः ।

चूर्णिता विश्वदुस्पर्शशृङ्गीद्राक्षाशटीसिताः ।
लीढास्तैलेन वातोत्थं कासं घ्नन्तीह दारुणम् ॥ ६ ॥

सोंठ, यवासा, काकड़ाशिंगी, मुनक्का, कचूर, मिश्री इनको तैलके साथ चाटनेसे वातज कास नष्ट होता है ॥ ६ ॥

भार्ङ्ग्यादिलेहः ।

भार्ङ्गीद्राक्षाशटीशृङ्गीपिप्पलीविश्वभेषजैः ।
गुडतैलयुतो लेहो हितो मारुतकासिनाम् ॥ ७ ॥

भारङ्गी, मुनक्का, कचूर, काकड़ाशिंगी, पीपल, सोंठ इनका चूर्ण गुड़ तैल मिलाकर चाटनेसे वातज कास नष्ट होता है ॥ ७ ॥

पित्तजकासचिकित्सा ।

पित्तकासे तनुकफे त्रिवृतां मधुरैर्युताम् ।
दद्याद्घनकफे तिक्तैर्विरेकार्थं युतां भिषक् ॥ ८ ॥

पित्तज कासमें यदि कफ पतला आता हो, तो मधुर औषधियोंके साथ और यदि कफ गाढ़ा हो, तो तिक्त औषधियोंके साथ निसोथका चूर्ण विरेचनके लिये देना चाहिये ॥ ८ ॥

पथ्यम् ।

मधुरैर्जाङ्गलरसैः श्यामाकयवकोद्रवाः ।
मुद्गादियूषैः शाकैश्च तिक्तकैर्मात्रया हिताः ॥ ९ ॥

मीठे पदार्थ, जांगलप्राणियोंके मांसरस, मूंग आदिके यूष और तिक्तशाकोंके साथ सांवा, कोदो तथा यवके पदार्थ खिलाने चाहियें ॥ ९ ॥

बलादिक्वाथः ।

बलाद्विबृहतीवासाद्राक्षाभिः क्वथितं जलम् ।
पित्तकासापहं पेयं शर्करामधुयोजितम् ॥ १० ॥

खरेटी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, अडूसा, मुनक्का-इनका क्वाथ शक्कर व शहद मिलाकर पीनेसे पित्तजकासको नष्ट करता है ॥ १० ॥

शरादिक्षीरम् ।

शरादिपञ्चमूलस्य पिप्पलीद्राक्षयोस्तथा ।
कषायेण शृतं क्षीरं पिबेत्समधुशर्करम् ॥ ११ ॥

शरादि पञ्चमूल (शर, दर्भ, काश, इक्षु तथा शालिकी मूल) छोटी पीपल मुनक्का-इनके क्वाथसे सिद्ध किया दूध शहद व शक्कर मिलाकर पीना चाहिये ॥ ११ ॥

विशिष्टरसादिविधानम् ।

काकोलीबृहतीमेदायुग्मैः सवृषनागरैः
पित्तकासे रसक्षीरयूषांश्चाप्युपकल्पयेत् ॥ १२ ॥

काकोली, वड़ी कटेरी, मेदा, महामेदा, अड़ूसा व सोंठके क्काथसे रस, क्षीर, यूष बनाकर पित्तजकासमें सेवन करना चाहिये ॥ १२ ॥

द्राक्षादिलेहः ।

द्राक्षामलकखर्जूरं पिप्पलीमरिचान्वितम् ।
पित्तकासापहं ह्येतल्लिह्यान्माक्षिकसर्पिषा ॥ १३ ॥

मुनक्का, आमला, छुहारा, पिण्डखजूर अथवा छोटी पीपल, काली मिर्च–इनकी चटनी बना घी व शहद मिलाकर पित्तजकासके नाशार्थ चाटनी चाहिये ॥ १३ ॥

खर्जूरादिलेहः ।

खर्जूरपिप्पलीद्राक्षासितालाजाः समांशिकाः ।
मधुसर्पिर्युतो लेहः पित्तकासहरः परः ॥ १४ ॥

खजूर अथवा छुहारा, छोटी पीपल, मुनक्का, मिश्री, धानकी लाई–समान भाग लेकर घी व शहद मिलाकर चाटनेसे पित्तजकास शान्त होता है ॥ १४ ॥

शठ्यादिरसः ।

शटीह्रीबेरबृहतीशर्कराविश्वभेषजम् ।
पिष्ट्वा रसं पिबेत्पूतं सघृतं पित्तकासनुत् ॥ १५ ॥
मधुना पद्मबीजानां चूर्णं पैत्तिककासनुत् ।

कचूर, सुगन्धवाला, वड़ी कटेरी, शक्कर, सोंठ–इनको जलमें महीन पीस रस निकालकर घीके साथ पीनेसे पित्तजकास नष्ट होता है। शहदके साथ कमलके बीजोंका चूर्ण चाटनेसे भी पैत्तिक कास नष्ट होता है ॥ १५ ॥–

कफकासचिकित्सा ।

बलिनं वमनेनादौ शोधितं कफकासिनम् ॥ १६ ॥
यवान्नैः कटुरूक्षोष्णैः कफघ्नैश्चाप्युपाचरेत् ।
पिप्पलीक्षारकैर्यूषैः कौलत्थैर्मूलकस्य च ॥ १७ ॥
लघून्यन्नानि भुञ्जीत रसैर्वा कटुकान्वितैः ।

बलवान् कफकासवालेको प्रथम वमन कराकर कटु, रूक्ष, उष्ण, कफनाशक यवादि अन्न सेवन कराना चाहिये । तथा कुलथी अथवा मूलीके यूषमें पीपल व क्षार मिलाकर अथवा कटुद्रव्य मिलाये गये मांसरसके साथ हल्के अन्नका भोजन कराना चाहिये* ॥ १६ ॥ १७ ॥–

पौष्करादिक्काथः ।

पौष्करं कट्फलं भार्ङ्गीविश्वपिप्पलिसाधितम् ।
पिबेत्क्काथं कफोद्रेके कासे श्वासे च हृद्ग्रहे ॥ १८ ॥

पोहकरमूल, कायफल, भारङ्गी, सोंठ व छोटी पीपलका क्काथ कफकी अधिकतासे उत्पन्न कास, श्वास तथा हृदयके दर्द व जकड़ाहटको नष्ट करता है ॥ १८ ॥

शृङ्गवेरस्वरसः ।

स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम् ।
पाययेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ १९॥

अदरखका स्वरस शहद मिलाकर चाटनेसे श्वास, कास, प्रतिश्याय तथा कफ नष्ट होते हैं ॥

नवाङ्गयूषः ।

मुद्गामलाभ्यां यवदाडिमाभ्यां
कर्कन्धुना मूलकशुण्ठकेन ।
शटीकणाभ्यां च कुलत्थकेन
यूषो नवाङ्गः कफरोगहन्ता ॥ २० ॥

मूंग, आंवला, यव, अनार, बेर, मूलीके टुकड़े, कचूर, छोटी पीपल तथा कुलथीका यूष कफरोगको नष्ट करता है । इसे 'नवाङ्गयूष' कहते हैं ॥ २० ॥

दशमूलक्काथः ।

पार्श्वशूले ज्वरे श्वासे कासे श्लेष्मसमुद्भवे ।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ॥ २१ ॥

दशमूलका काढ़ा पीपलका चूर्ण छोड़कर पीनेसे पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास, कास आदि कफजन्य रोग नष्ट होते हैं ॥ २१ ॥

कट्फलादिक्काथः ।

कट्फलं कत्तृणं भार्ङ्गी मुस्तं धान्यं वचाभया ।
शृङ्गी पर्पटकं शुंठी सुराह्वा च जले शृतम् ॥२२॥
मधुहिङ्गुयुतं पेयं कासे वातकफात्मके ।
कण्ठरोगे क्षये शूले श्वासहिक्काज्वरेषु च ॥ २३ ॥

---

१ यद्यपि यहां इस योगमें पित्तजकासके लिये लिखा है, तथापि कफसहित पित्तज कासमें इसे देना उचित है । पर केवल पित्तजमें मरिचके स्थानमें शर्करा छोड़नी चाहिये । यदाह क्षीरपाणिः–"पिप्पल्यामलको द्राक्षा खर्जूरं शर्करा मधु । लेहोऽयं सघृतो लीढः पित्तक्षयजकासजित् " ॥

* पञ्चकोलसाधितं क्षीरम्—" पञ्चकोलैः शृतं क्षीरं कफघ्नं लघु शस्यते। श्वासकासज्वरहरं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥" –अर्थात् पञ्चकोलसे सिद्ध दूध कफनाशक, हल्का और श्वास, कास, ज्वरको नष्ट करनेमें तथा बल, वर्ण व अग्नि बढ़ानेमें श्रेष्ठ है ।

कायफल, रोहिशघास, भारङ्गी, नागरमोथा, धनियां, वच, बड़ी हर्रका छिल्का, काकड़ाशिंगी, पित्तपापडा, सोंठ, तुलसी सबका क्वाथ बनाकर शहद व भूनीहींग मिलाकर पीनेसे वातकफात्मक कास, कण्ठरोग, क्षय, शूल, श्वास, हिक्का तथा ज्वर नष्ट होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अन्येयोगाः ।

कण्टकारीकृतः क्वाथः सकृष्णः सर्वकासहा ।
विभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृत्परिवेष्टितम् ॥ २४ ॥
स्विन्नमग्नौ हरेत्कासं ध्रुवमास्यविधारितम् ।
वासकस्वरसः पेयो मधुयुक्तो हिताशिना ॥ २५ ॥
पित्तश्लेष्मकृते कासे रक्तपित्ते विशेषतः ।
पिप्पली मधुकं द्राक्षा लाक्षा शृङ्गी शतावरी ॥२६
द्विगुणा च तुगाक्षीरी सिता सर्वैश्चतुर्गुणा ।
तं लिह्यान्मधुसर्पिर्भ्यां क्षतकासनिवृत्तये ॥ २७ ॥
पिप्पली पद्मकं लाक्षा सपक्वं बृहतीफलम् ।
घृतक्षौद्रयुतो लेहः कासश्वासनिबर्हणः ॥ २८ ॥

भटकटैयाका क्वाथ छोटी पीपलके चूर्णके साथ पीनेसे समस्त कास नष्ट होते हैं । बहेड़ेके ऊपर घी चुपड़कर गायका गोवर ऊपरसे लपेटकर अग्निमें पकाना चाहिये, पक जानेपर निकाल टुकड़े कर मुखमें रखना चाहिये । इससे कास अवश्य नष्ट होता है । अडूसेका स्वरस शहद मिलाकर पीने तथा पथ्य भोजन करनेसे पित्तकफजन्य कास तथा रक्तपित्त नष्ट होता है । छोटी पीपल, मौरेठी मुनक्का, लाख, काकड़ाशिंगी, शतावर समभाग, वंशलोचन २ भाग, मिश्री सबसे चतुर्गुण मिला चूर्ण बनाकर घी, शहदके साथ चाटनेसे क्षतकास नष्ट होता है । छोटी पीपल, पद्माख, लाख, बड़ी कटेरीके फल सबका महीन चूर्ण कर घी, शहद मिलाकर चाटनेसे कास, श्वास नष्ट होता है ॥ २४–२८ ॥

हरीतक्यादिगुटिका ।

हरीतकीनागरमुस्तचूर्णं
गुडेन तुल्यं गुटिका विधेया ।
निवारयत्यास्यविधारितेयं
श्वासं प्रवृद्धं प्रबलं च कासम् ॥ २९ ॥

बड़ी हर्रका छिल्का, सोंठ तथा नागरमोथाका चूर्ण गुड़के साथ मिला गोली बनाकर मुखमें रखनेसे श्वास तथा कास नष्ट होता है ॥ २९ ॥

मरिचादिगुटिका ।

कर्षः कर्षार्धमथो पलं पलद्वयं तथार्धकर्षश्च ।
मरिचस्य पिप्पलीनां दाडिमगुडयावशूकानाम् ॥३०
सर्वौषधैरसाध्या ये कासाः सर्ववैद्यसंत्यक्ताः ।
अपि पूयं छर्दयतां तेषामिदं महौषधं पथ्यम् ॥ ३१

काली मिर्च १ तोला, छोटी पीपल ६ माशे, अनारका छिल्का ४ तोला, गुड़ ८ तोला, यवाखार ६ माशे मिला गोली बनाकर सेवन करनेसे अधिक कफ युक्त असाध्य कास भी नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

समशर्करचूर्णम् ।

लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां
भागान्प्रकल्प्याक्षसमानमीषाम् ।
पलार्धमेकं मरिचस्य दद्यात्
पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥ ३२ ॥
सितासमं चूर्णमिदं प्रसह्य
रोगानिमानाशु बलान्निहन्यात् ।
कासज्वरारोचकमेहगुल्म-
श्वासाग्निमान्द्यग्रहणीप्रदोषान् ॥ ३३ ॥

लवङ्ग, जायफल, छोटी पीपल प्रत्येक १ तोला, काली मिर्च २ तोला, सोंठ १६ तोला, सबके बराबर मिश्री मिला चूर्ण बनाकर सेवन करनेसे कास, ज्वर, अरोचक, प्रमेह, गुल्म, श्वास, अग्निमांद्य, ग्रहणीरोग नष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

हरितक्यादिमोदकः ।

हरीतकी कणा शुण्ठी मरिचं गुडसंयुतम् ।
कासघ्नो मोदकः प्रोक्तस्तृष्णारोचकनाशनः ॥३४॥

बड़ी हर्रका छिल्का, छोटी पीपल, सोंठ, तथा मिर्चका चूर्ण गुड़ मिलाकर सेवन करनेसे तृष्णा, अरोचक तथा कास नष्ट होते हैं ॥ ३४ ॥

व्योषांतिका गुटिका ।

तालीशवह्निदीप्यकचविकाशुंठ्यम्लवेतसव्योषैः ।
तुल्यैस्त्रिसुगंधियुतैर्गुडेन गुटिका प्रकर्तव्या ॥ ३५ ॥
कासश्वासारोचकपीनसहृत्कण्ठवाङ्निरोधेषु ।
ग्रहणीगुदोद्भवेषु गुटिका व्योषान्तिका नाम ॥ ३६
त्रिसुगन्धमत्र संस्कारत्वाच्चतुर्माषिकं ग्राह्यम् ।

तालीसपत्र, चीता, अजवाइन, चव्य, सोंठ, अम्लवेत, सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची–सब समान भाग ले, सबसे द्विगुण गुड़ मिलाकर गोली बनानी चाहिये । यह–कास, श्वास, अरोचक, पीनस, हृदय, कण्ठ तथा वाणीकी रुकावट (स्वरभेद), ग्रहणी तथा अर्शको नष्ट

करती है । त्रिसुगन्ध संस्कार होनेसे प्रत्येक ४ माशा लेना चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥–

मनःशिलादिधूमः ।

मनःशिलालमधुकमांसीमुस्तेङ्गुदैः पिबेत् ।
धूमं त्र्यहं च तस्यानु सगुडं च पयः पिबेत् ॥३७॥
एष कासान्पृथग्द्वन्द्वसर्वदोषसमुद्भवान् ।
शतैरपि प्रयोगाणां साधयेदप्रसाधितान् ॥ ३८ ॥

मनशिल, हरताल, मौरेठी, जटामांसी, नागरमोथा, तथा इंगुदीकी वत्ती बनाकर धूम पीना चाहिये, ऊपरसे गुड़का शर्वत पीना चाहिये । यह अनेकों प्रयोगोंसे न सिद्ध होनेवाले हजारों कासोंको नष्ट करता है ॥ ३७-३८ ॥

अपरो धूमः ।

मनःशिलालिप्तदलं बदर्या घर्मशोषितम् ।
सक्षीरं धूमपानात्तु महाकासनिबर्हणम् ॥ ३९ ॥

बेरकी पत्तीपर मनशिलका लेप कर धूपमें सुखा कर धूम पान करनेसे महाकास नष्ट होता है । मनशिलको दूधमें पीसकर लेप करना चाहिये ॥ ३९ ॥

अन्यो धूमः ।

अर्कच्छल्लीशिले तुल्ये ततोऽर्धेन कटुत्रिकम् ।
चूर्णितं वह्निनिक्षिप्तं पिबेद् धूमं तु योगवित् ॥४०॥
भक्षयेदथ ताम्बूलं पिबेद् दुग्धमथाम्बु वा ।
कासाः पञ्चविधा यान्ति शान्तिमाशु न संशयः ४१

आंककी छाल और मनशिल समान भाग ले दोनोंसे आधा-मिलित त्रिकटु चूर्ण मिला कर अग्निमें जलाकर धूम पान करनेके वाद ऊपरसे पान खाने या दूध या जल पीनेसे शीघ्र ही पांचों कास नष्ट होते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

वार्ताकीधूमः ।

मरिचशिलार्कक्षीरैर्वार्ताकीं त्वचमाशु भावितां शुष्काम्।
कृत्वा विधिना धूमं पिबतः कासाः शमं यान्ति ॥४२॥

मिर्च, मनःशिला और वैंगनकी छालको आकके दूधमें भावना देकर वत्ती बना सुखाकर धूम्रपान करनेसे समस्त कास शान्त होते हैं ॥ ४२ ॥

दशमूलघृतम् ।

दशमूलीकषायेण भार्ङ्गीकल्कं पचेद् घृतम् ।
दक्षतित्तिरिनिर्यूहे तत्परं वातकासनुत् ॥ ४३ ॥

दशमूलके काढ़े और मुर्गा व तीतरके मांसरसमें भारंगीका कल्क छोड़कर सिद्ध किया घृत वातकासको नष्ट करता है ॥ ४३ ॥

अपरं दशमूलघृतम् ।

दशमूलाढके प्रस्थं घृतस्याक्षसमैः पचेत् ।
पुष्कराह्वशटीबिल्वसुरसव्योषहिङ्गुभिः ॥ ४४ ॥
पेयानुपानं तद्देयं कासे वातकफाधिके ।
श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च ॥ ४५ ॥

दशमूलका क्वाथ एक आढ़क, पोहकरमूल, कचूर, बेलका गूदा और तुलसी तथा त्रिकटु व हींग प्रत्येक एक कर्ष मिला कल्क बनाकर एक प्रस्थ घी मिलाकर पकाना चाहिये । इसे पेयाके अनुपानके साथ देनेसे वातकफात्मक कास तथा श्वास नष्ट होते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

दशमूलषट्पलकं घृतम् ।

दशमूलीचतुःप्रस्थे रसे प्रस्थोन्मितं हविः ।
सक्षारैः पञ्चकोलैस्तु कल्कितं साधु साधितम् ॥४६
कासहृत्पार्श्वशूलघ्नं हिक्काश्वासनिबर्हणम् ।
कल्कं षट्पलमेवात्र ग्राहयन्ति भिषग्वराः ॥ ४७ ॥

दशमूलका क्वाथ ४ प्रस्थ, घी १ प्रस्थ, यवाखार व पञ्चकोल प्रत्येक एक पल कल्क बना छोड़कर घी पकाना चाहिये । यह घी–कास, हृदय व पसलियोंका शूल, हिक्का, श्वास नष्ट करता है । इसमें प्रत्येक कल्क द्रव्यका कल्क १ एक पल अर्थात् मिलकर ६ पल ही कल्क वैद्य छोड़ते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

कण्टकारीद्वयम् ।

कण्टकारीगुडूचीभ्यां पृथक् त्रिंशत्पलाद्रसे ।
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातकासनुद्वह्निदीपनः ॥ ४८ ॥
घृतं रास्नाबलाव्योषश्वदंष्ट्राकल्कपाचितम् ।
कण्टकारीरसे पीतं पञ्चकासनिषूदनम् ॥ ४९ ॥

कण्टकारी तथा गुर्च प्रत्येकका १२० तोला क्वाथ (या रस) घी १ प्रस्थ मिलाकर सिद्ध करनेसे वातकासको नष्ट तथा अग्निको दीप्त करनेवाला होता है । इसी प्रकार चतुर्गुण कण्टकारीके रसमें १ भाग घृत और घृतसे चतुर्थांश रासन, खरेटी, त्रिकटु, गोखरूका कल्क मिलाकर सिद्ध किया घृत–पांचों प्रकारके कासोंको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

---

१ यहांपर "त्रिसुगन्ध" के सम्बन्धमें शिवदासजीने लिखा है–' सर्वचूर्णापेक्षया चतुर्थांशेन मिलितं त्रिसुगन्धिचूर्णम् । ' अर्थात् समस्त चूर्णकी अपेक्षा चतुर्थांश मिलित त्रिसुगन्धि (दालचीनी, तेजपात, इलायची) का चूर्ण लेना चाहिये ।

बृहत्कण्टकारीघृतम् ।

सपत्रमूलशाखायाः कण्टकार्या रसाढके ।
घृतप्रस्थं बलाव्योपविडङ्गशटिचित्रकैः ॥ ५० ॥
सौवर्चलयवक्षारबिल्वामलकपुष्करैः
वृश्चीरबृहतीपथ्यायमानीदाडिमर्धिभिः ॥ ५१ ॥
द्राक्षापुनर्नवाचव्यधन्वयासाम्लवेतसैः ।
शृङ्गीतामलकीभार्ङ्गीरास्नागोक्षुरकैः पचेत् ॥ ५२॥
कल्कैस्तु सर्वकासेषु हिक्काश्वासे च शस्यते ।
कण्टकारीघृतं सिद्धं कफव्याधिविनाशनम् ॥ ५३॥

घी और खरेटी, त्रिकटु, विडंग, कचूर, चीतकी जड़ काला-नमक, यवाखार, बेलका गूदा, आंवला, पोहकर मूल, पुनर्नवा, बड़ी कटेरी, हर्र, अजवायन, अनारदाना, ऋद्धि, मुनक्का, पुनर्नवा, चव्य, यवासा, अम्लवेत, काकड़ाशिंगी, भूम्यामलकी, भारंगी, रासन, गोखरूका मिलित कल्क घीसे चतुर्थांश छोड़कर पकाना चाहिये । इससे कफरोग, कास, श्वास हिक्का आदि नष्ट होते हैं ॥ ५०–५३ ॥

रास्नाद्यं घृतम् ।

द्रोणेऽपां साधयेद्रास्नां दशमूलीं शतावरीम् ।
पलिकां मानिकांशांस्त्रीन्कुलत्थान्बदरान्यवान् ॥५४
तुलार्धं चाजमांसस्य तदशेषेण तेन च ।
घृताढकं समक्षीरं जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ ५५ ॥
सिद्धं तद्दशभिः कल्कैर्नस्यपानानुवासनैः ।
समीक्ष्य वातरोगेषु यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ ५६ ॥
पञ्चकासान् क्षयं श्वासं पार्श्वशूलमरोचकम् ।
सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च सप्लीहोर्ध्वानिलं जयेत् ॥ ५७
जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ शूर्पपर्णिके ।
जीवन्ती मधुकं चैव दशको जीवको गणः ॥५८॥

रासना, दशमूलकी औषधियां, शतावर प्रत्येक एक पल, कुलथी, बेर व यव प्रत्येक ३२ तोला, बकरीका मांस २॥ सेर एक द्रोण जल मिला पका छानकर क्वाथमें एक आढ़क घी एक आढ़क दूध और २ आढ़क जल तथा जीवनीय गण (जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, मेदा महामेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती मधुक) इनका कल्क प्रत्येक ४ तोला छोड़कर घी पकाना चाहिये । यह घी–नस्य, पान, अनुवासन वस्तिद्वारा जहां जैसा उचित हो, वातरोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । यह पांच प्रकारके कास, क्षय, पार्श्व-शूल, अरोचक, सर्वांग, एकांग रोग, प्लीहा, तथा ऊर्ध्ववातको नष्ट करता है । जीवनीयगण कोष्ठमें लिखा समझिये ॥ ५४–५८ ॥

अगस्त्यहरितकी ।

दशमूलीं स्वयंगुप्तां शंखपुष्पीं शटीं बलाम् ।
हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ ५९ ॥
भार्ङ्गीपुष्करमूलं च द्विपलांशं यवाढकम् ।
हरीतकीशतं चैकं जलपञ्चाढके पचेत् ॥ ६० ॥
यवैः स्विन्नैः कषायं तं पूतं तच्चाभयाशतम् ।
पचेद् गुडतुलां दत्त्वा कुडवं च पृथग्घृतात् ॥६१ ॥
तैलात्सपिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीते च माक्षिकात् ।
लिह्याद् द्वे चाभये नित्यमतः खादेद्रसायनात् ॥६२॥
तद्वलीपलितं हन्यान्मेधायुर्बलवर्धनम् ।
पञ्चकासान्क्षयं श्वासं हिक्काः सविषमज्वरान् ॥६३
हन्यात्तथा ग्रहण्यर्शोहृद्रोगारुचिपीनसान् ।
अगस्त्यविहितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् ॥ ६४ ॥

दशमूल, कौंचके बीज, शंखपुष्पी, कचूर, खरेटी, गजपीपल, लटजीरा, पिपरामूल, चीतकी जड़, भारंगी, पोहकरमूल प्रत्येक ८ तोला, यव एक आढ़क, बड़ी हर्र १००, जल ५ आढ़क मिलाकर पकाना चाहिये । यव पक जानेपर काढ़ा उतारकर छान लेना चाहिये और हर्र अलग निकाल लेना चाहिये । फिर काढ़ा व हर्र व गुड़ ५ सेर तथा घी व तैल प्रत्येक ३२ तोला, छोटी पीपलका चूर्ण १६ तोला छोड़कर पकाना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर ठण्डाकर ३२ तोला शहद मिलाना चाहिये । फिर प्रतिदिन २ हर्र इसकी खाकर ऊपरसे २ तोला अवलेह चाटना चाहिये । यह रसायन है । बालोंकी सफेदी तथा झुर्रियोंको नष्ट करता, मेधा, आयु व बलको बढ़ाता है । पांचों कास, क्षय, श्वास, हिक्का, विषमज्वर, ग्रहणी, अर्श, हृद्रोग, अरुचि, व पीनसको नष्ट करता है । महर्षि अगस्त्यका बताया यह श्रेष्ठ रसायन है ॥ ५९–६४ ॥

भृगुहरीतकी ।

समूलपुष्पच्छदकण्टकार्या-
स्तुलां जलद्रोणपरिप्लुतां च ।
हरीतकीनां च शतं निदध्या-
द्यथात्र पक्त्वा चरणावशेषे ॥ ६५ ॥

---

१ यहांपर यवोंका स्वेदन चतुर्थांश रह जानेपर हो जाता है। यद्यपि कुछ आचार्योंने अष्टमांश शेष लिखा है, पर वह सुश्रुतसे विरुद्ध पड़ता है । अतएव शिवदासजीको अभीष्ट नहीं है । तथा घृत, तैल व शहद यहां द्विगुण ही लिये जाते हैं । यद्यपि घृतके समान शहद यहां पड़ता है, पर द्रव्यान्तरसे संयुक्त होनेके कारण विरुद्ध नहीं होता ।

गुडस्य दत्त्वा शतमेतदग्नौ
विपकमुत्तार्य ततः सुशीते ।
कटुत्रिकं च द्विपलप्रमाणं
पलानि षट् पुष्परसस्य तत्र ॥ ६६ ॥
क्षिपेच्चतुर्जातपलं यथाग्नि
प्रयुज्यमानो विधिनावलेहः ।
वातात्मकं पित्तकफोद्भवं च
द्विदोषकासानपि तांस्त्रिदोषान् ॥ ६७ ॥
क्षयोद्भवं च क्षतजं च हन्यात्
सपीनसश्वासमुरःक्षतं च ।
यक्ष्माणमेकादशरूपमुग्रं
भृगूपदिष्टं हि रसायनं स्यात् ॥ ६८ ॥

कटेरीका पञ्चांग ५ सेर, जल एक द्रोण तथा बड़ी हर्र १०० मिलाकर पकाना चाहिये । चतुर्थांश बाकी रहनेपर उतार छान हर्रें अलग निकाल क्वाथमें मिला उसीमें गुड़ ५ सेर मिलाकर पकाना चाहिये । अवलेह बन जानेपर उतार ठण्डाकर त्रिकटु प्रत्येक ८ तोला, शहद २४ तोला, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर प्रत्येक ४ तोला, मिलाकर रखना चाहिये । अग्निके अनुसार इसका प्रयोग करनेसे समस्त कास, पीनस, श्वास, उरःक्षत तथा उग्र यक्ष्मा भी नष्ट होता है ॥ ६५–६८ ॥

इति कासरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ हिक्काश्वासाधिकारः ।

हिक्काश्वासयोश्चिकित्साक्रमः ।

हिक्काश्वासातुरे पूर्वं तैलाक्ते स्वेद इष्यते ।
स्निग्धैर्लवणयोगैश्च मृदु वातानुलोमनम् ॥ १ ॥
ऊर्ध्वाधःशोधनं शक्ते दुर्बले शमनं मतम् ।

हिक्का तथा श्वाससे पीड़ित रोगीको प्रथम तैलसे मालिश कर स्वेदन करना चाहिये । तथा स्निग्ध व लवणयुक्त पदार्थोंसे वायुका अनुलोमन करनेवाले वमन व विरेचन बलवान्को तथा निर्बलको शमनकारक उपाय करने चाहियें ॥ १ ॥

केचन लेहाः ।

कोलमज्जाञ्जनं लाजातिक्ताकाञ्चनगैरिकम् ॥ २ ॥
कृष्णा धात्री सिता शुण्ठी कासीसं दधि नाम च ।
पाटल्याः सफलं पुष्पं कृष्णा खर्जूरमुस्तकम् ॥ ३ ॥
षडेते पादिका लेहा हिक्काघ्ना मधुसंयुताः ।

(१) बेरकी गुठली, काला सुरमा व खील । (२) कुटकी, सुनहला गेरू । (३) छोटी पीपल, आंवला, मिश्री, व सोंठ । (४) कसीस व कैथा । (५) पाढ़लके फल व फूल । (६) पीपल, छुहारा नागरमोथा । ये छः लेह श्लोकके एक एक पादमें कहे गये शहदके साथ चाटनेसे हिक्काको नष्ट करते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥–

नस्यानि ।

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पली शर्करान्विता ॥ ४ ॥
नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं नावनत्रयम् ।
स्तन्येन मक्षिकाविष्ठा नस्यं वालक्तकाम्बुना ॥ ५ ॥
योज्यं हिक्काभिभूताय स्तन्यं वा चन्दनान्वितम् ।

शहदके साथ मौरेठीका चूर्ण अथवा शक्करके साथ छोटी पीपलका चूर्ण अथवा सोंठ गुड़के साथ अथवा मक्षिकाविष्ठा, स्त्रीदुग्ध व लाक्षा रसके साथ अथवा स्त्रीदुग्ध, चन्दन मिलाकर सूंघनेसे हिक्का नष्ट होती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

केचन योगाः ।

मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुङ्गरसं पिबेत् ॥ ६ ॥
हिक्कार्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम् ।
कृष्णामलकशुण्ठीनां चूर्णं मधुसितायुतम् ॥ ७ ॥
मुहुर्मुहुः प्रयोक्तव्यं हिक्काश्वासनिवारणम् ।
हिक्काश्वासी पिबेद्भार्ङ्गीं सविश्वामुष्णवारिणा ।
नागरं वा सिता भार्ङ्गी सौवर्चलसमन्वितम् ॥ ८ ॥

मधु व काला नमक मिला बिजौरे निम्बूका रस पीनेसे अथवा सोंठसे सिद्ध दूध पीनेसे अथवा छोटी पीपल, आंवला, सोंठका चूर्ण शहदके साथ वारवार चाटनेसे अथवा सोंठके साथ भार्ङ्गीका चूर्ण गरम जलके साथ पीनेसे अथवा सोंठ, मिश्री, भारङ्गी, व काला नमक मिलाकर गरम जलसे उतारनेसे हिक्का, श्वास नष्ट होते हैं ॥ ६–८ ॥

शृंग्यादिचूर्णम् ।

शृङ्गीकटुत्रिकफलत्रयकण्टकारी-
भार्ङ्गी सपुष्करजटा लवणानि पञ्च ।
चूर्णं पिबेदशिशिरेण जलेन हिक्का-
श्वासोर्ध्ववातकसनारुचिपीनसेषु ॥ ९ ॥

---

१ यह प्रयोग ग्रन्थांतरमें कुछ पाठभेदसे मिलता है । वहां "त्रिकटु" त्रिपल लिखा है । 'कटुत्रिकं च त्रिपलप्रमाणम् ।' पर शिवदासजीने प्रत्येक २ पल ही लिखा है । इस प्रकार ६ पल कटुत्रिक होता है ।

काकड़ाशिंगी, त्रिफला, त्रिकटु, भटकटैया, भारङ्गी, पोहकरमूल, पांचो लवण समान भाग ले चूर्ण बनाकर गरम जलके साथ पीनेसे हिक्का, श्वास, डकार, कास और अरुचि व पीनस नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

कल्कद्वयम् ।

अभयानागरकल्कं पौष्करयवशूकमरिचकल्कं वा ।
तोयेनोष्णेन पिबेच्छ्वासी हिक्की च तच्छान्त्यै ॥ १० ॥

बड़ी हर्र व सोंठका कल्क अथवा पोहकरमूल, यवाखार व काली मिर्चका कल्क गरम जलके साथ पीनेसे हिक्का तथा श्वास नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

अमृतादिक्वाथः ।

अमृतानागरफञ्जीव्याघ्रीपर्णासससाधितः क्वाथः ।
पीतः सकणाचूर्णः कासश्वासौ जयत्याशु ॥ ११ ॥

गुर्च, सोंठ, भारंगी, छोटी कटेरी तथा तुलसीका क्वाथ, छोटी पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे कास, श्वास शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

दशमूलक्वाथः ।

दशमूलीकषायस्तु पुष्करेण विचूर्णितः ।
श्वासकासप्रशमनः पार्श्वहृच्छूलनाशनः ॥ १२ ॥

दशमूलका क्वाथ, पोहकरमूलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे श्वास, कास, पसली तथा हृदयका शूल नष्ट होते हैं ॥ १२ ॥

कुलत्थादिक्वाथः ।

कुलत्थनागरव्याघ्रीवासाभिः क्वथितं जलम् ।
पीतं पुष्करसंयुक्तं हिक्काश्वासनिबर्हणम् ॥ १३ ॥

कुलथी, सोंठ, छोटी कटेरी तथा अडूसासे बनाया गया क्वाथ पोहकरमूल चूर्ण मिलाकर पीनेसे हिक्का, श्वास नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

गुडप्रयोगः ।

गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत् ।
त्रिसप्ताहप्रयोगेण श्वासं निर्मूलतो जयेत् ॥ १४ ॥

गुड़, कडुआ तैल मिलाकर चाटनेसे २१ दिनमें श्वास निर्मूल हो जाता है । दोनों समान भाग मिलाकर चार तोलातक चाट सकते हैं ॥ १४ ॥

अपरं शृंग्यादिचूर्णम् ।

शृङ्गीमहौषधकणाघनपुष्कराणां
चूर्णं शटीमरिचशर्करया समेतम् ।
क्वाथेन पीतममृतावृषपञ्चमूल्याः
श्वासं त्र्यहेण शमयेदतिदोषमुग्रम् ॥ १५ ॥

काकड़ाशिंगी, सोंठ, छोटी पीपल, नागरमोथा, पोहकरमूल, कचूर, काली मिर्च, तथा शक्कर सब समान भाग ले चूर्ण अडूसा तथा लघु पञ्चमूलके क्वाथके साथ पीनेसे ३ दिनमें उग्र श्वासको नष्ट करता है ॥ १५ ॥

हरिद्रादिलेहः ।

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शटीम् ।
जह्यात्तैलेन विलिहञ्छ्वासान्प्राणहरानपि ॥ १६ ॥

हल्दी, काली मिर्च, मुनक्का, गुड़, रास्ना, पीपल, कचूर—इनका चूर्ण तैलके साथ चाटनेसे प्राणहर श्वास भी नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

मयूरपिच्छभूतिः ।

हिक्कां हरति प्रबलां प्रबलं श्वासं च नाशयत्याशु ।
शिखिपिच्छभूतिपिप्पलिचूर्णं मधुमिश्रितं लीढम् ॥ १७ ॥

मयूर पिच्छ भस्म और पीपल चूर्ण मिलाकर शहदके साथ चाटनेसे हिक्का तथा श्वास नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

विभीतकचूर्णम् ।

कर्षं कलिफलचूर्णं लीढं चात्यन्तमिश्रितं मधुना ।
अचिराद्धरति श्वासं प्रबलामुद्धांसिकां चैव ॥ १८ ॥

बहेड़ेका चूर्ण १ तोला शहदमें मिलाकर चाटनेसे प्रबल श्वास तथा हिक्का नष्ट होती है ॥ १८ ॥

हिंस्राद्यं घृतम् ।

हिंस्राविडङ्गपूतीकत्रिफलाव्योषचित्रकैः ।
द्विक्षीरं सर्पिषः प्रस्थं चतुर्गुणजलान्वितम् ॥ १९ ॥
कोलमात्रैः पचेत्तद्धि कासश्वासं व्यपोहति ।
अर्शांस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा ॥ २० ॥

जटामांसी अथवा हैंस, तथा वायविडंग, पूतिकरञ्ज (कञ्जी), त्रिफला, त्रिकटु तथा चीतकी जड़का कल्क, ६४ तोला घी तथा घीसे द्विगुण दूध और चतुर्गुण जल मिला सिद्ध कर सेवन करनेसे कास, श्वास, अर्श अरोचक, गुल्म, दस्तोंका पतला आना तथा क्षय नष्ट होते हैं । कल्ककी प्रत्येक औषधि ६ माशे छोड़नी चाहिये ॥ १९ ॥ २० ॥

तेजोवत्याद्यं घृतम् ।

तेजोवत्यभया कुष्ठं पिप्पली कटुरोहिणी ।
भूतीकं पौष्करं मूलं पलाशं चित्रकं शटी ॥ २१ ॥
सौवर्चलं तामलकी सैन्धवं बिल्वपेशिका ।
तालीसपत्रं जीवन्ती वचा तैरक्षसंमितैः ॥ २२ ॥
हिङ्गुपादैर्घृतप्रस्थं पचेत्तोयचतुर्गुणे ।

एतद्यथाबलं पीत्वा हिक्काश्वासौ जयेन्नरः ॥२३॥
शोथानिलार्शोग्रहणीहृत्पार्श्वरुज एव च।

चव्य, बड़ी हर्रेका छिल्का, कूठ, छोटी पीपल, कुटकी, अजवाइन, पोहकरमूल, ढाकके बीज, चीतकी जड़, कचूर, कालानमक, भुंइआंवला, सेंवानमक, वेलका गूदा, तालीशपत्र, जीवन्ती, वचा प्रत्येक १ एक तोला, हींग ३ माशेका कल्क घी ६४ तोला और जल चतुर्गुण मिलाकर, पकाना चाहिये। इस घृतके बलानुसार सेवनसे हिक्का तथा श्वास, शोथ, वातार्श, ग्रहणी, हृदय तथा पार्श्वशूल नष्ट होता है॥ २१-२३॥-

भार्ङ्गीगुडः।

शतं संगृह्य भार्ङ्ग्यास्तु दशमूल्यास्तथापरम् ॥२४॥
शतं हरीतकीनां च पचेत्तोये चतुर्गुणे।
पादावशेषे तस्मिंस्तु रसे वस्त्रपरिप्लुते ॥ २५ ॥
आलोडय च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयां ततः।
पुनः पचेत्तु मृद्वग्नौ यावल्लेहत्वमागतम् ॥ २६ ॥
सुशीते मधुनश्चात्र षट्पलानि प्रदापयेत्।
त्रिकटु त्रिसुगन्धं च पलिकानि पृथक् पृथक्॥२७॥
कर्षद्वयं यवक्षारं संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः।
भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्धपलं लिहेत् ॥ २८ ॥
श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा।
स्वरवर्णप्रदो ह्येष जठराग्नेश्च दीपनः ॥ २९ ॥
पलोल्लेखागते माने न द्वैगुण्यमिहेष्यते।
हरितकीशतस्यात्र प्रस्थत्वादाढकं जलम् ॥ ३० ॥

भारङ्गी ५ सेर, दशमूल मिलित ५ सेर, हर्र १०० सबसे चतुर्गुण जल मिलाकर पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान, हर्रे निकाल क्वाथमें मिला उसीमें ५ सेर गुड़ मिलाकर पकाना चाहिये। लेह सिद्ध हो जानेपर ठण्डाकर शहद २४ तोला, त्रिकटु, त्रिसुगन्ध (दालचीनी, तेजपात, इलायची) प्रत्येक पृथक् पृथक् ४ तोले तथा यवाखार २ तोले मिलाना चाहिये। फिर इससे १ हर्र खाकर ऊपरसे २ तोला चटनी चाटनी चाहिये। यह कास तथा श्वासको नष्ट करता, अग्नि दीप्त करता तथा स्वर व वर्णको उत्तम बनाता है। यहां पलसे परिमाण लिखा है, अतः चतुर्गुणको ही छोड़ना चाहिये, चतुर्गुणको द्विगुण कर अष्टगुण नहीं डालना चाहिये। हरीतकी १०० होनेसे १ प्रस्थ होगी, उनका भी चतुर्गुण एक आढ़क ही जल छोड़ना चाहिये॥ २४-३०॥

कुलत्थगुडः।

कुलत्थं दशमूलं च तथैव द्विजयष्टिका।
शतं शतं च संगृह्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३१ ॥
पादावशेषे तस्मिंस्तु गुडस्यार्धतुलां क्षिपेत्।
शीतीभूते च पक्के च मधुनोऽष्टौ पलानि च ॥३२॥
षट् पलानि तुगाक्षीर्याः पिप्पल्याश्च पलद्वयम्।
त्रिसुगन्धिकयुक्तं तत्खादेदग्निबलं प्रति ॥ ३३ ॥
श्वासं कासं ज्वरं हिक्कां नाशयेत्तमकं तथा।
प्रतिशतं द्रोणनियमाज्ज्ञेयं द्रोणत्रयं त्विह ॥ ३४ ॥

कुलथी, दशमूल, भारङ्गी प्रत्येक ५ सेर, जल ३ द्रोण (अर्थात् ३८ सेर ३२ तोला) मिलाकर पकाना, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान गुड़ २॥ सेर मिलाकर अवलेह बनाना चाहिये। सिद्ध हो जानेपर शहद ३२ तोला, वंशलोचन २४ तोला, छोटी पीपल ८ तोला, दालचीनी, तेजपात, इलायची ८ तोला प्रत्येक मिलाकर अग्निबलानुसार खाना चाहिये। यह—श्वास, कास, ज्वर, हिक्का तथा निर्बलताको नष्ट करता है। प्रतितुलापर १ द्रोणके सिद्धान्तसे जल ३ द्रोण ही पड़ेगा॥ ३१-३४॥

इति हिक्काश्वासाधिकारः समाप्तः।

अथ स्वरभेदाधिकारः।

स्वरभेदे चिकित्साक्रमः।

वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समाक्षिकम्।
कफे सक्षारकटुकं क्षौद्रं कवल इष्यते ॥ १ ॥
गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाश्रितः।
तेन निष्कृष्यते श्लेष्मा स्वरश्चास्य प्रसीदति ॥ २ ॥
भाद्ये कोष्णं जलं पेयं जग्ध्वा घृतगुडौदनम्।
क्षीरान्नपानं पित्तोत्थे पिबेत्सर्पिरतन्द्रितः ॥ ३ ॥
पिप्पलीं पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम्।
पिबेन्मूत्रेण मतिमान्कफजे स्वरसंक्षये ॥ ४ ॥
स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते।
क्षयजे सर्वजे चापि प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ ५ ॥

वातजन्य स्वरभेदमें लवणके सहित तैल, पित्तजन्य स्वरभेदमें शहदके सहित घी और कफजन्यमें क्षार और कटुपदार्थोंके साथ शहदका कवल धारण करना चाहिये। इससे गला, तालु, जिह्वा तथा दन्तमूलोंमें जमा हुआ कफ निकलता है और स्वर उत्तम होता है। इसी प्रकार वातजन्यमें घी, गुड़ मिलाकर भात खाना चाहिये, ऊपरसे गरम जल पीना चाहिये। पित्तजन्यमें दूधके साथ भोजन तथा दूध और घी पीना चाहिये। कफजन्यमें छोटी पीपल, पिपरामूल, काली मिर्च, सोंठका चूर्ण

गोमूत्र मिलाकर पीना चाहिये । मेदोजन्य स्वरभेदमें कफके समान ही चिकित्सा करनी चाहिये । तथा क्षयज व सन्निपातज स्वरभेदमें प्रत्याख्यान ("असाध्य है, अच्छा हो, या न हो," ऐसा कह) कर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १–५ ॥

चव्यादिचूर्णम् ।

चव्याम्लवेतसकटुत्रिकतिन्तिडीक-
तालीसजीरकतुगादहनैः समांशैः ।
चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं
वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ ६ ॥

चव्य, अम्लवेत, सोंठ, मिर्च, पीपल, तिन्तिड़ीक, तालीशपत्र, सफेद जीरा, वंशलोचन, चीतकी जड़, दालचीनी, तेजपात, इलायची–समान भाग, सबके समान गुड़ मिलाकर सेवन करनेसे स्वरभेद, पीनस तथा कफजन्य अरुचि, नष्ट होती है ॥ ६ ॥

केचन योगाः ।

तैलाक्तं स्वरभेदे वा खदिरं धारयेन्मुखे ।
पथ्यां पिप्पलियुक्तां वा संयुक्तां नागरेण वा ॥७ ॥
अजमोदां निशां धात्रीं क्षारं वह्निं विचूर्ण्य च ।
मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा स्वरभेदं व्यपोहति ॥ ८ ॥
कलितरुफलसिन्धुकणाचूर्णं तक्रेण लीढमपहरति ।
स्वरभेदं गोपयसा पीतं वामलकचूर्णं च ॥ ९ ॥
बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम् ।
स्वरोपघाते कासे च लेहमेतं प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

कत्थेके चूर्णको तिलतैलमें डुबाकर अथवा हर्र छोटी पीपलके साथ अथवा सोंठके साथ मुखमें रखना चाहिये । अजवाइन, हल्दी, आंवला, यवाखार, व चीतकी जड़का चूर्ण बनाकर घी व शहदके साथ चाटनेसे स्वरभेद नष्ट होता है । इसी प्रकारसे बहेड़ेके फलका छिल्का सेंधानमक छोटी पीपलका चूर्ण मट्ठेके साथ चाटनेसे अथवा आंवलेका चूर्ण गोदुग्धके साथ सेवन करनेसे स्वरभेद नष्ट होता है । अथवा बेरकी पत्तीकी चटनी घीमें भून सेंधानमक मिलाकर स्वरभेद तथा कासमें चाटना चाहिये ॥ ७–१० ॥

उच्चैर्व्याहरणज-स्वरभेदचिकित्सा ।

शर्करामधुमिश्राणि शृतानि मधुरैः सह ।
पिबेत्पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहतः स्वरः ॥ ११ ॥

मधुर गणकी औषधियोंसे सिद्ध दूधमें शक्कर व शहद मिलाकर पीना चाहिये ॥ ११ ॥

कण्टकारीघृतम् ।

व्याघ्रीस्वरसविपक्वं रास्नावाट्यालगोक्षुरव्योषैः ।
सर्पिः स्वरोपघातं हन्यात्कासं च पञ्चविधम् ॥१२

छोटी कटेरीका स्वरस तथा रासन, खरेटी, गोखरू और मिर्च, पीपलके कल्कसे सिद्ध घृत–कास तथा स्वरभेदको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

स्वरसाभावे ग्राह्यद्रव्यम् ।

शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसम्भवे ।
वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ १३॥

स्वरसके अभावमें सूखा द्रव्य अठगुणे जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर छानकर काममें लाना चाहिये ॥ १३ ॥

भृंगराजघृतम् ।

भृङ्गराजामृतावल्लीवासकदशमूलकासमर्दरसैः ।
सर्पिः सपिप्पलीकं सिद्धं स्वरभेदकासजिन्मधुना ॥

भांगरा, गुर्च, अडूसा, दशमूल और कासमर्दका स्वरस तथा छोटी पीपलके कल्कसे सिद्ध घृत शहदके साथ चाटनेसे स्वरभेद तथा कासको नष्ट करता है ॥ १४ ॥

इति स्वरभेदाधिकारः समाप्तः ।

अथारोचकाधिकारः ।

अरोचके चिकित्सोपायाः ।

वान्तिं समीरणे पित्ते विरेकं वमनं कफे ।
कुर्याद् धृद्यानुकूलानि हर्षणानि मनोघ्नजे ॥ १ ॥
वान्तौ वचाद्भिरनिले त्रिषिवत्पिबेत्तु
स्नेहोष्णतोयमदिरान्यतमेन चूर्णम् ।
कृष्णाविडङ्गयवभस्महरेणुभार्ङ्गी-
रास्नैलहिङ्गुलवणोत्तमनागराणाम् ॥ २ ॥
पैत्ते गुडाम्बुमधुरैर्वमनं प्रशस्तं
लेहः ससैन्धवसितामधुसर्पिरिष्टः ।
निम्बाम्बु छर्दितवतः कफजे तु पानं
राजद्रुमाम्बु मधुना सह दीप्यकाढ्यम् ॥३॥
चूर्णं यदुक्तमथवानिलजे तदेव
सर्वैश्च सर्वकृतमेवमुपक्रमेच्च ॥ ४ ॥

वातारोचकमें वमन, पित्तमें विरेचन तथा कफमें वमन और मनके विकार, तथा घृणा आदिसे उत्पन्न अरोचकमें हृदयके लिये हितकर अनुकूल प्रसन्नताकारक पदार्थोंका सेवन करना चाहिये ।

वातारोचकमें वचाके क्वाथसे वमन कर विधिपूर्वक स्नेह गरम जल अथवा शरावमेंसे किसी एकके साथ छोटी पीपल, वायविडंग, यवाखार, सम्भालूके बीज, भारङ्गी, रासन, इलायची, भुनी हींग, सेंधानमक तथा सोंठका चूर्ण पीना चाहिये । पित्तारोचकमें गुड़का शर्वत व मीठी चीजोंसे वमनकर सेंधानमक, मिश्री, शहद और घी मिलाकर चाटना चाहिये । कफारोचकमें नीमके क्वाथसे वमन कर अमलतासका क्वाथ अजवाइनका चूर्ण व शहद डालकर पीना चाहिये । अथवा वातारोचकमें जो चूर्ण लिखा है, वही खाना चाहिये । और सन्निपातजको सभी प्रयोगोंके सम्मिश्रणसे शान्त करना चाहिये ॥ १-४ ॥

कवलग्रहाः ।

कुष्ठसौवर्चलाजाजी शर्करामरिचं विडम् ।
धात्र्येलापद्मकोशीरपिप्पलीचन्दनोत्पलम् ॥ ५ ॥
लोध्रं तेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सयवाग्रजम् ।
आर्द्रदाडिमनिर्यासश्चाजाजीशर्करायुतः ॥ ६ ॥
सतैलमाक्षिकाश्चैते चत्वारः कवलग्रहाः ।
चतुरोऽरोचकान्हन्युर्वाताद्येकजसर्वजान् ॥ ७ ॥
त्वङ्मुस्तमेला धान्यानि मुस्तमामलकानि च ।
त्वक्च दार्वी यमान्यश्च पिप्पल्यस्तेजोवत्यपि ॥८॥
यमानी तिन्तिडीकं च पञ्चैते मुखशोधनाः ।
श्लोकपादैरभिहिताः सर्वारोचकनाशनाः ॥ ९ ॥

(१) कूठ, काला नमक, सफेद जीरा, शक्कर, मिर्च, विड़लवण (२) आंवला, इलायची, पद्माख, खश, छोटी पीपल, सफेद चन्दन, नीलोफर (३) लोध, चव्य, हर्र, त्रिकटु, यवक्षार (४) ताजे अनारका रस, जीरा व शक्करके साथ इस प्रकार यह चार प्रयोग क्रमशः वात, पित्त, कफ तथा सन्निपातज अरोचकमें तैल व शहदके साथ कवलके रूपमें प्रयुक्त करना चाहिये । दालचीनी, नागरमोथा, छोटी इलायची, धनियां, नागरमोथा, आंवला, दालचीनी, दारुहलदी, अजवाइन, छोटी पीपल, व चव्य, अजवाइन, तिन्तिड़ीक इन पांच प्रयोगमेंसे सिद्ध किसी एक औषधका कवल धारण करनेसे समस्त अरोचक नष्ट होजाते हैं ॥ ५-९ ॥

अम्लिकादिकवलः ।

अम्लिका गुडतोयं च त्वगेलामरिचान्वितम् ।
अभक्तच्छन्दरोगेषु शस्तं कवलधारणम् ॥ १० ॥

अम्ली, गुड़, जल, दालचीनी, इलायची, मिर्च मिलाकर कवल धारण करनेसे अरोचक नष्ट होता है ॥ १० ॥

कारव्यादिकवलः ।

कारव्याजाजीमरिचं द्राक्षावृक्षाम्लदाडिमम् ।
सौवर्चलं गुडं क्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम् ॥ ११ ॥

काला जीरा, सफेद जीरा, मिर्च, मुनक्का, अम्लवेत, अनारदाना, काला नमक, गुड़, शहद—इनका कवल धारण करना हितकर है ॥ ११ ॥

त्र्यूषणादिकवलः ।

त्रीण्यूषणानि त्रिफला रजनीद्वयं च
चूर्णीकृतानि यवशूकविमिश्रितानि ।
क्षौद्रान्वितानि वितरेन्मुखधारणार्थ-
मन्यानि तिक्तकटुकानि च भेषजानि॥१२॥

त्रिकटु, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, यवाखारका चूर्ण बना शहद मिलाकर मुखमें धारण करनेसे तथा अन्य तिक्त कटु पदार्थ मुखमें धारण करनेसे अरोचक नष्ट होता है ॥ १२ ॥

दाडिमरसः ।

विट्चूर्णमधुसंयुक्तो रसो दाडिमसम्भवः ।
असाध्यामपि संहन्यादरुचिं वक्त्रधारितः ॥ १३ ॥

विड़लवणका चूर्ण व शहद अनारके रसमें मिलाकर कवल धारण करनेसे असाध्य अरुचिको भी नष्ट करता है ॥ १३ ॥

यमानीषाडवम्[1] ।

यमानी तिन्तडीकं च नागरं चाम्लवेतसम् ।
दाडिमं वदरं चाम्लं कार्षिकाण्युपकल्पयेत् ॥१४॥
धान्यसौवर्चलाजाजी वराङ्गं चार्धकार्षिकम् ।
पिप्पलीनां शतं चैकं द्वे शते मरिचस्य च ॥ १५ ॥
शर्करायाश्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत् ।
जिह्वाविशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्तरोचनम् ॥ १६ ॥
हृत्पीडापार्श्वशूलघ्नं विबन्धानाहनाशनम् ।
कासश्वासहरं ग्राहि ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ १७ ॥

अजवाइन, तिन्तिड़ीक, सोंठ, अम्लवेत, अनारदाना, खट्टे वर प्रत्येक एक तोला, धनियां, काला नमक, सफेद जीरा, दालचीनी प्रत्येक ६ माशे, छोटी पीपल १०० गिनतीमें, काली मिर्च २००, मिश्री १६ तोला—सबका चूर्ण बना लेना चाहिये । यह "यमानीषाडव" चूर्ण जिह्वाको शुद्ध करता, हृद्य तथा भोजनमें रुचि करता, हृदयका दर्द, पसलीका दर्द, मलकी रुकावट, अफारा, कास, श्वास तथा ग्रहणी और अर्शको नष्ट करता है ॥ १४-१७ ॥

---

[1] "षाडव इति मधुरान्नयोगस्य संज्ञा । यमान्युपलक्षितः षाडवः यमानीषाडवः । इति शिवदासः ।" तिन्तिडीक इम्लीका भी पर्यायवाचक है, अतः इम्ली भी वैद्यलोग छाड़ते हैं । पर मेरे विचारसे तिन्तिडीक एक स्वतन्त्र खट्टा द्रव्य होता है, इसके बीज लाल लाल चिरौंजीके दानेसे कुछ छोटे होते हैं, उन्हें ही छोड़ना चाहिये ।

कलहंसकः ।

अष्टादश शिग्रुफलान्यथैं दश मरिचानि
विंशतिश्च पिप्पल्याः । आर्द्रकपलं
गुडपलं प्रस्थत्रयमारनालस्य ॥ १८ ॥
एतद्विडलवणयुतं खजाहतं सुरभि गन्धाढ्यम् ।
व्यञ्जनसहस्रघाति ज्ञेयं कलहंसकं नाम ॥ १९ ॥

अठारह सहिंजनके बीज, १० काली मिर्चे, २० छोटी पीपल, अदरख ४ तोला, गुड़ ४ तोला, काञ्जी ३ प्रस्थ सब एकमें मिला तथा लवणसे नमकीन हो इतना विड़लवण मिला मथनीसे मथकर रखना चाहिये । यह सुगन्धित, भोजनमें रुचि करनेवाला तथा पाचक "कलहंस" नामक पना है ॥१८॥१९॥

इत्यरोचकाधिकारः समाप्तः ।

अथ छर्द्यधिकारः ।

लंघनप्राशस्त्यम् ।

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वा-
श्छर्द्यो मता लंघनमेव तस्मात् ।
प्राक्कारयेन्मारुतजां विमुच्य
संशोधनं वा कफपित्तहारि ॥ १ ॥

समस्त छर्दियां आमाशयमें दोष बढ़ जानेसे ही होती हैं, अतः वातजको छोड़कर सबमें प्रथम लंघन ही कराना चाहिये । अथवा कफ, पित्तनाशक संशोधन अर्थात्, वमन विरेचन कराना चाहिये ॥ १ ॥

वातच्छर्दिचिकित्सा ।

हन्यात्क्षीरोदकं पीतं छर्दिं पवनसम्भवाम् ।
ससैन्धवं पिबेत्सर्पिर्वातच्छर्दिनिवारणम् ॥ २ ॥
मुद्गामलकयूषं वा ससर्पिष्कं ससैन्धवम् ।
यवागूं मधुमिश्रां वा पञ्चमूलीकृतां पिबेत् ॥ ३ ॥

दूध व जल मिलाकर पीना अथवा सेंधानमकके साथ घी पीना अथवा मूंग व आंवलेका यूष, घी, सेंधानमक मिलाकर अथवा पञ्चमूलसे सिद्ध की हुई यवागू शहद मिलाकर पीनेसे वातच्छर्दि नष्ट होती है ॥ २ ॥ ३ ॥

पित्तच्छर्दिचिकित्सा ।

पित्तात्मिकायां त्वनुलोमनार्थं
द्राक्षाविदारीक्षुरसैस्त्रिवृत्स्यात् ।
कफाशयस्थं त्वतिमात्रवृद्धं
पित्तं जयेत्स्वादुभिरूर्ध्वमेव ॥ ४ ॥

शुद्धस्य काले मधुशर्कराभ्यां
लाजैश्च मन्थं यदि वापि पेयाम् ।
प्रदापयेन्मुद्गरसेन वापि
शाल्योदनं जाङ्गलजै रसैर्वा ॥ ५ ॥

चन्दनेनाक्षमात्रेण संयोज्यामलकीरसम् ।
पिबेन्माक्षिकसंयुक्तं छर्दिस्तेन निवर्तते ॥ ६ ॥
चन्दनं च मृणालं च बालकं नागरं वृषम् ।
सतण्डुलोदकक्षौद्रं पीतः कल्को वमिं जयेत् ॥ ७ ॥
कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः ।
छर्द्यतीसारतृड्दाहज्वरघ्नः संप्रकाशितः ॥ ८ ॥
हरीतकीनां चूर्णं तु लिह्यान्माक्षिकसंयुतम् ।
अधोभागीकृते दोषे छर्दिः क्षिप्रं निवर्तते ॥ ९ ॥
गुडूचीत्रिफलारिष्टपटोलैः क्वथितं पिबेत् ।
क्षौद्रयुक्तं निहन्त्याशु छर्दिं पित्ताम्लसम्भवाम् ॥
क्वाथः पर्पटजः पीतः सक्षौद्रश्छर्दिनाशनः ॥ १० ॥

पित्तच्छर्दिमें मुनक्का, विदारीकन्द और ईखके रसके साथ निसोथका चूर्ण अनुलोमन (विरेचन) के लिये देना चाहिये । अथवा कफाशयस्थ अधिक बढ़े पित्तको मधुर द्रव्यों द्वारा वमन कराकर ही निकाल देना चाहिये । शुद्ध हो जानेपर भोजनके समय शहद व शक्करके साथ धानकी लाईकी पेया अथवा मन्थ अथवा मूंगके यूषके साथ या जांगल प्राणियोंके मांस रसके साथ शालि चावलोंका भात खिलाना चाहिये । चन्दनका चूर्ण १ तोला, आंवलाका रस ४ तोला, शहद १ तोला मिलाकर पीनेसे वमन बन्द हो जाता है । इसी प्रकार सफेद चन्दनका कल्क, कमलकी डण्डी, सुगन्धवाला, सोंठ, अडूसा इनका कल्क चावलोंके धोवन व शहदके साथ पीनेसे पित्तज वमन शान्त होता है । इसी प्रकार भुनी मूंगका काढ़ा खील, शहद व शक्कर मिलाकर पीनेसे वमन, अतीसार, तृषा, दाह व ज्वरको शान्त करता है । अथवा हर्रका चूर्ण शहद मिलाकर चाटनेसे विरेचनसे दोष शुद्ध हो जाते हैं और वमन शान्त होती है । अथवा गुर्च, त्रिफला, नीमके पत्ते, परवलके पत्तेका क्वाथ बना शहद मिलाकर पीनेसे पित्तज छर्दि शीघ्र ही शान्त होती है । पित्तपापड़ाका क्वाथ शहदके साथ पीनेसे वमन शान्त होती है ॥ ४-१० ॥

---

१ यहांपर 'क्षीरोदकम्' के स्थानमें पाठान्तर 'क्षीरघृतम्' ऐसा सुश्रुत टीकाकार डल्हणने किया है। और उसका अर्थ "क्षीरादुद्भूतं घृतम्" किया है । पर वाग्भटने "पीतं तुल्याम्बु वा पयः" कहा है, अतः वही यहां लिखा गया है ॥

कफच्छर्दिचिकित्सा ।

कफात्मिकायां वमनं प्रशस्तं
सपिप्पलीसर्षपनिम्बतोयैः ।
पिण्डीतकैः सैन्धवसंप्रयुक्तै-
श्छर्द्यां कफामाशयशोधनार्थम् ॥ ११ ॥
विडङ्गत्रिफलाविश्वचूर्णं मधुयुतं जयेत् ।
विडङ्गप्लवशुण्ठीनामथवा श्लेष्मजां वमिम् १२ ॥
सजाम्बवं वा बदरस्य चूर्णं
मुस्तायुतां कर्कटकस्य शृङ्गीम् ।
दुरालभां वा मधुसंप्रयुक्तां
लिह्यात्कफच्छर्दिविनिग्रहार्थम् ॥ १३ ॥

कफात्मक वमनमें कफ और आमकी शुद्धिके लिये छोटी पीपल, सरसों, नीमका क्वाथ, मैनफल व सेंधानमकका चूर्ण मिला पीकर वमन करना चाहिये । वायविडंग, त्रिफला व सोंठका चूर्ण अथवा वायविडंग, नागरमोथा व सोंठका चूर्ण शहद मिलाकर चाटनेसे कफज छर्दि शान्त होती हैं । जामुनकी गुठली और बेरकी गुठलीका चूर्ण अथवा नागरमोथा व काकड़ाशिंगीका चूर्ण अथवा जवासाका चूर्ण शहद मिलाकर चाटनेसे कफज छर्दि शान्त होती है ॥ ११-१३ ॥

सन्निपातजच्छर्दिचिकित्सा ।

तर्पणं वा मधुयुतं तिसृणामपि भेषजम् ।
कृतं गुडूच्या विधिवत्कषायं हिमसंज्ञितम् ॥१४ ॥
तिसृष्वपि भवेत्पथ्यं माक्षिकेण समायुतम् ।

शहद युक्त तर्पण (लाईके सत्तुओंका) त्रिदोषज छर्दिको हितकर है । इसी प्रकार गुर्चका शीत कषाय बना शहद मिलाकर पीनेसे त्रिदोषज छर्दि शान्त होती है ॥ १४ ॥

शीतकषायविधानम् ।

द्रव्यादापोथितात्तोये प्रतप्ते निशि संस्थितात् १५ ॥
कषायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः ।
षड्भिःपलैश्चतुर्भिर्वा सलिलाच्छीतफाण्टयोः १६ ॥
आप्लुतं भेषजपलं रसाख्यायां पलद्वयम् ।

द्रव्यको कुचल कर गरम जलमें रातमें भिगोना चाहिये, प्रातः मलकर छाननेसे जो काढ़ा निकले वही "शीतकषाय" है । द्रव्य एक पल शीतकषाय या फाण्ट बनानेके लिये ६ पल या ४ पल जलमें भिगोना चाहिये और यदि रस बनाना हो तो उतने ही जलमें २ पल औषध छोड़ना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥

श्रीफलादिशीतकषायाः ।

श्रीफलस्य गुडूच्या वा कषायो मधुसंयुतः ।
पेयश्छर्दित्रये शीतो मूर्वा वा तण्डुलाम्बुना ॥१७ ॥
जम्ब्वाम्रपल्लवगवेधुकधान्यसेव्य-
ह्रीबेरवारि मधुना पिबतोऽल्पमल्पम् ।
छर्दिः प्रयाति शमनं त्रिसुगन्धियुक्ता
लीढा निहन्ति मधुनाथ दुरालभा वा ॥ १८ ॥
जातो रसः कपित्थस्य पिप्पलीमरिचान्वितः ।
क्षौद्रेण युक्तः शमयेल्लेहोऽयं छर्दिमुल्बणाम् ॥१९॥
पिष्ट्वा धात्रीफलं द्राक्षां शर्करां च पलोन्मिताम् ।
दत्त्वा मधुपलं चात्र कुडवं सलिलस्य च ।
वाससा गालितं पीतं हन्ति छर्दिं त्रिदोषजाम् २०॥

बेल अथवा गुर्चका शीतकषाय शहदके साथ अथवा मूर्वाका चूर्ण चावलके जलके साथ पीनेसे त्रिदोषज छर्दि शान्त होती है । जामुन, आमके पत्ते, पसहीके चावल, खश, तथा सुगन्धवालाका क्वाथ शहद मिलाकर थोड़ा थोड़ा पीनेसे अथवा दालचीनी, तेजपात, इलायची व जवासाका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे त्रिदोषज छर्दि शान्त होती है । कैथेका रस छोटी पीपल व काली मिर्चका चूर्ण तथा शहद मिलाकर चाटनेसे बढ़ी हुई छर्दि शान्त होती है । आंवला, मुनक्का व शक्कर तीनों मिलाकर ४ तोला, शहद ४ तोला व जल १६ तोला मिला छानकर पीनेसे त्रिदोषज छर्दि शान्त होती है ॥ १७-२० ॥

एलादिचूर्णम् ।

एलालवङ्गगजकेशरकोलमज्जा-
लाजाप्रियङ्गुघनचन्दनपिप्पलीनाम् ।
चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा
छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्तजां च ॥ २१ ॥

छोटी इलायची, लवङ्ग, नागकेशर, बेरकी गुठलीकी गूदी, खील, प्रियंगु (इसके अभावमें कमल गट्टेकी मींगी), नागरमोथा, सफेद चन्दन, छोटी पीपलका चूर्ण शहद व मिश्री मिलाकर चाटनेसे त्रिदोषज छर्दि शान्त होती है ॥ २१ ॥

कोलमज्जादिलेहः ।

कोलामलकमज्जानौ माक्षिकाविट्सितामधु ।
सकृष्णातण्डुलो लेहश्छर्दिमाशु नियच्छति ॥ २२॥

बेर व आंवलेकी गुठलीकी गूदी, मोम, मिश्री, शहद तथा छोटी पीपलका बनाया गया अवलेह छर्दिको शान्त करता है ॥ २२ ॥

पेयं जलम् ।

अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्ध्वा निर्वापितं जले ।
तज्जलं पानमात्रेण छर्दिं जयति दुस्तराम् ॥ २३ ॥

पीपलकी सूखी छालको जलाकर जलमें बुझा देना चाहिये । यह जल पीने मात्रसे छर्दि नष्ट होती है ॥ २३ ॥

रक्तच्छर्दिचिकित्सा ।

यष्ट्याह्वं चन्दनोपेतं सम्यक् क्षीरप्रपेषितम् ।
तेनैवालोड्य पातव्यं रुधिरच्छर्दिनाशनम् ॥ २४ ॥

मौरेठी तथा सफेद चन्दनको दूधमें पीस तथा दूधमें ही मिलाकर पीनेसे रक्तच्छर्दि शान्त होती है ॥ २४ ॥

त्रयो लेहाः ।

लाजाकपित्थमधुमागधिकोषणानां
क्षौद्राभयात्रिकटुधान्यकजीरकाणाम् ।
पथ्यामृतामरिचमाक्षिकपिप्पलीनां
लेहास्त्रयः सकलवम्यरुचिप्रशान्त्यै ॥ २५ ॥

(१) खील, कैथा, शहद, छोटी पीपल, काली मिर्च,(२) अथवा शहद, बड़ी हर्र, त्रिकटु, धनियां, जीरा (३) अथवा छोटी हर्र, गुर्च, काली मिर्च, शहद, छोटी पीपल, यह तीनों अवलेह-समस्त वमन-तथा अरुचिको शान्त करते हैं ॥ २५॥

पद्मकाद्यं घृतम् ।

पद्मकामृतनिम्बानां धान्यचन्दनयोः पचेत् ।
कल्के क्वाथे च हविषः प्रस्थं छर्दिनिवारणम् ।
तृष्णारुचिप्रशमनं दाहज्वरहरं परम् ॥ २६ ॥

पद्माख, गुर्च, नीमकी छाल, धनियां, लालचन्दनके कल्क और क्वाथमें सिद्ध किया घृत-छर्दि, तृष्णा, अरुचि, दाह तथा ज्वरको शान्त करता है ॥ २६ ॥

इति छर्द्यधिकारः समाप्तः ।

अथ तृष्णाधिकारः ।

वातजतृष्णाचिकित्सा ।

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते ।
रसाश्च बृंहणाः शीता गूडूच्या रस एव च ॥ १ ॥
पञ्चाङ्गकाः पञ्चगणा य उक्ता-
स्तेष्वम्बु सिद्धं प्रथमे गणे वा ।
पिबेत्सुखोष्णं मनुजोऽल्पमात्रं
तृष्णोपरोधं न कदापि कुर्यात् ।

वातजन्य तृष्णामें गुड़के साथ दही तथा बृंहण शीतलरस तथा गुर्चका रस लाभदायक होता है । पञ्चगण[1] (लघु-महत्-तृण-कण्टकि-वल्ली-भेदात्) के पञ्चाङ्गका जल अथवा प्रथम गण (लघुपञ्चमूल) में सिद्ध किया जल कुछ गरम पीना चाहिये । प्यास कभी न रोकना चाहिये ॥ १ ॥-

पित्तजतृष्णाचिकित्सा ।

पित्तोत्थितं पित्तहरैर्विपक्वं
निहन्ति तोयं पय एवं चापि ॥ २ ॥
काश्मर्यशर्करायुक्तं चन्दनोशीरपद्मकम् ।
द्राक्षामधुकसंयुक्तं पित्ततर्षे जलं पिबेत् ॥ ३ ॥
पित्तजायां तु तृष्णायां पक्वोदुम्बरजो रसः ।
तत्क्वाथो वा हिमस्तद्वच्छारिवादिगणाम्बु वा ॥४॥
स्याज्जीवनीयसिद्धं क्षीरघृतं वातपित्तजे तर्षे
तद्वद् द्राक्षाचन्दनखर्जूरोशीरमधुयुतं तोयम् ॥५ ॥
सशारिवादौ तृणपञ्चमूले
तथोत्पलादौ मधुरे गणे वा ।
कुर्यात्कषायांस्तु तथैव युक्तान्
मधूकपुष्पादिषु चापरेषु ॥ ६ ॥

पित्तज तृष्णाको पित्तहर ओषधियोंसे सिद्ध दूध अथवा जल नष्ट करता है । खम्भार, मिश्री, चन्दन, खश, पद्माख; मुनक्का, मौरेठीसे सिद्ध जल पीना चाहिये । पके गूलरका रस अथवा उसीका हिम कषाय अथवा शारिवादिगणका कषाय पित्तज तृष्णाको नष्ट करता है । जीवनीय गणसे सिद्ध दूध तथा घृत वातपित्तज-तृष्णाको शान्त करता है । तथा मुनक्का चन्दन, छुहारा, खश और शहदका शर्बत तथा शारिवादिगण अथवा तृणपञ्चमूल, उत्पलादि गण और मधुरगण तथा महुआ आदिमेंसे किसी एकका कषाय बनाकर पित्तज तृष्णासे पीड़ित पुरुषको पिलाना चाहिये ॥ २-६ ॥

कफजतृष्णाचिकित्सा ।

बिल्वाढकीधातकिपञ्चकोल-
दर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति ।
हितं भवेच्छर्दनमेव चात्र
तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ ७ ॥
सजीरकाण्यार्द्रकशृङ्गवेर-
सौवर्चलान्यर्धजलाप्लुतानि ।
मद्यानि हृद्यानि च गन्धवन्ति
पीतानि सद्यः शमयन्ति तृष्णाम् ॥ ८ ॥

---

[1] "पञ्चगणसे" लघुपञ्चमूल, बृहत्पञ्चमूल, अर्थात् दशमूलके २ गण हुए तथा तीसरा तृणपञ्चमूल, " कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति गणो वरः । तृणपञ्चमूलमाख्यातम् ।" "गुडूची-मेषशृंगी-शारिवा-विदारी-हरिद्रासु. वल्लीपञ्चमूलमिति संज्ञा ।" " करमर्दः श्वदंष्ट्रा च हिंसा झिण्टी शतावरी इति कण्टकि-पञ्चमूलम् । "

बेलका गूदा, अरहरकी पत्ती, व धायके फूल, पञ्चकोल, तथा कुशसे सिद्ध जल कफज तृष्णाको दूर करता है । तथा नीमके क्वाथसे वमन करना इसमें विशेष हित करता है । मद्यमें आधा जल और जीरा, अदरख, सोंठ व काला नमक मिलाकर पीनेसे तृष्णा शीघ्र ही शान्त होती है ॥ ७ ॥ ८ ॥

क्षतक्षयजाचिकित्सा ।

क्षतोत्थितां रुग्विनिवारणेन
जयेद्रसानामसृजश्च पानैः।
क्षयोत्थितां क्षीरजलं निहन्या-
न्मांसोदकं वाथ मधूदकं वा ॥ ९ ॥

क्षतोत्थित तृष्णामें पीड़ा शान्तकर मांसरस रक्त पिलाना चाहिये । क्षयोत्थित तृष्णाको दूध और जल अथवा मांसरस तथा शहदका शर्बत शान्त करता है ॥ ९ ॥

सर्वजतृष्णाचिकित्सा ।

गुर्वन्नजामुल्लिखनैर्जयेत्तु क्षयादृते सर्वकृतां च तृष्णाम्॥
लाजोदकं मधुयुतं शीतं गुडाविमार्दितम् ।
काश्मर्यशर्करायुक्तं पिबेत्तृष्णार्दितो नरः ॥ १० ॥

गुर्वन्नजन्य तृष्णामें वमन कराना चाहिये । तथा क्षयजको छोड़कर समस्त तृष्णाओंको वमन शान्त करता है । खीलसे सिद्ध जलको ठंढाकर गुड़, खम्भार व शक्कर मिला कर पीनेसे समस्त तृष्णाएँ शान्त होती हैं ॥ १० ॥

सामान्याचिकित्सा ।

अतिरूक्षदुर्बलानां तर्षं शमयेन्नृणामिहाशु पयः ।
छागो वा घृतभृष्टः शीतो मधुरो रसो हृद्यः॥ ११॥
आम्रजम्बूकषायं वा पिबेन्माक्षिकसंयुतम् ।
छर्दिं सर्वां प्रणुदति तृष्णां चैवापकर्षति ॥ १२ ॥
वटशुङ्गसितालोध्रदाडिमं मधुकं मधु ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन छर्दितृष्णानिवारणम् ॥ १३ ॥
गोस्तनेक्षुरसक्षीरयष्टीमधुमधूत्पलैः ।
नियतं नस्यतः पानैस्तृष्णा शाम्यति दारुणा॥१४॥

अतिरूक्ष तथा दुर्बल पुरुषोंकी तृष्णाको दूध अथवा बकरेका मांसरस घीमें भून ठंढा कर मधुर द्रव्य मिलाकर पीनेसे शान्त करता है । इसी प्रकार आम और जामुनकी पत्तीका काढ़ा शहद मिलाकर पीनेसे समस्त छर्दि तथा तृष्णाएँ नष्ट होती हैं । बरगदके कोमल पत्ते, मिश्री, लोध, अनारदाना, मौरेठी, शहद—सब मिला चावलके जलके साथ पीनेसे छर्दि तथा तृष्णा नष्ट होती है । तथा मुनक्का, ईखका रस, दूध, मौरेठी, शहद और नीलोफरको मिलाकर नाकके द्वारा पीनेसे कठिन तृष्णा शान्त होती है ॥ ११-१४ ॥

गण्डूषस्तालुशोषे ।

क्षीरेक्षुरसमाध्वीकैः क्षौद्रशीधुगुडोदकैः ।
वृक्षाम्लाम्लैश्च गण्डूषस्तालुशोषनिवारणः ॥ १५ ॥

दूध, ईखका रस, माध्वीक (महुका आसव) शहद, शीधु (मधुर द्रव्योंका आसव) शर्बत अम्लवेत, काञ्जी इनमेंसे किसी एकसे गंडूष धारण करना—तालु शोषको नष्ट करता है ॥ १५ ॥

अन्ये योगाः ।

तालुशोषे पिबेत्सर्पिर्घृतमण्डमथापि वा ।
मूर्च्छाच्छर्दितृषादाहस्त्रीमद्यभृशकर्शिताः ॥ १६ ॥
पिबेयुः शीतलं तोयं रक्तपित्ते मदात्यये ।
धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ १७ ॥
तदेवालवणं पीतं मुखशोषहरं परम् ।
वैशद्यं जनयत्यास्ये संदधाति मुखव्रणान् ॥ १८ ॥
दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम् ।

तालुशोषमें घृत अथवा घृतमण्ड पीना चाहिये । मूर्छा, छर्दि, तृषा, दाह, स्त्रीगमन व मद्य पीनेसे कृश पुरुषोंको तथा रक्तपित्त व मदात्ययमें ठण्डा ही जल पीना चाहिये । काञ्जी मुखकी विरसता, मल तथा दुर्गन्धिको नष्ट करती तथा विना नमक पीनेसे मुखशोषको शान्त करती है । इसी प्रकार मधुका गण्डूष मुखको साफ करता, मुखके घावोंको भरता तथा दाह व तृष्णाको शान्त करता है॥१६॥१८

मुखालेपः ।

कोलदाडिमवृक्षाम्लचुक्रीकाचुक्रिकारसः ॥ १९ ॥
पञ्चाम्लको मुखालेपः सद्यस्तृष्णां नियच्छति ।

बेर, अनार, वृक्षाम्ल, चूका और इमलीके रसका मुखके भीतर लेप करनेसे तत्काल तृष्णा शान्त होती है ॥ १९ ॥—

वारिणा वमनम् ।

वारि शीतं मधुयुतमाकण्ठाद्वा पिपासितम् ॥ २० ॥
पाययेद्वामयेच्चापि तेन तृष्णा प्रशाम्यति ।

ठण्ढा जल शहद मिला कण्ठ पर्यन्त पिलाकर वमन करानेसे तृष्णा शान्त होती है ॥ २० ॥—

वटशुङ्गादिगुटी ।

वटशुङ्गामयक्षौद्रलाजनीलोत्पलैर्दृढा ॥ २१ ॥
गुटिका वदनन्यस्ता क्षिप्रं तृष्णां नियच्छति ।

बरगदकी कोंपल, कूठ, शहद, खील तथा नीलोफरकी दृढ़ गोली बनाकर मुखमें रखनेसे तत्काल तृष्णा शान्त होती है २१॥—

चिरोत्थतृष्णाचिकित्सा ।

ओदनं रक्तशालीनां शीतं माक्षिकसंयुतम् ।
भोजयेत्तेन शाम्येत्तु छर्दिस्तृष्णा चिरोत्थिता ॥२२

लाल चावलोंका भात ठण्डा कर शहद मिलाकर भोजन करनेसे चिरोत्थ तृष्णा शान्त होती है ॥ २२ ॥

जलदानावश्यकता ।

पूर्वामयातुरः सन्दीनस्तृष्णार्दितो जलं याचन् ।
न लभेत चेदाश्वेव मरणमाप्नोति दीर्घरोगं वा॥२३
तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति ।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न कचिद्वारि वार्यते ॥२४॥

पहिले किसी रोगसे पीड़ित हुआ और उसीमें तृष्णा बढ़ गयी और जल मांगता, है, ऐसी अवस्थामें जल न मिलनेसे शीघ्रही मर जाता है । अथवा कोई बड़ा रोग हो जाता है । प्यास अधिक लगने पर मूर्छा होती है । मूर्छासे प्राणत्याग कर देता है।अतः किसी अवस्थामें जलका निषेध नहीं है ॥२३॥२४॥

इति तृष्णाधिकारः समाप्तः ॥

अथ मूर्च्छाधिकारः ।

सामान्यचिकित्सा ।

सेकावगाहौ मणयः सहाराः
शीताः प्रदेहा व्यजनानिलश्च ।
शीतानि पानानि च गन्धवन्ति
सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥ १ ॥
सिद्धानि वर्गे मधुरे पयांसि
सदाडिमा जाङ्गलजा रसाश्च ।
तथा यवा लोहितशालयश्च
मूर्च्छासु शस्ताश्च सतीनमुद्गाः ॥ २ ॥

शीतल द्रवद्रव्योंसे सिञ्चन तथा अवगाह (जलादिमें बैठना) शीतल मणि तथा हार तथा शीतल लेप व पंखे-की वायु तथा गन्धयुक्त शीतल पानक समस्त मूर्छाओंमें हितकर हैं । तथा मधुरवर्गमें सिद्ध दूध तथा जांगल प्राणि-योंका मांसरस तथा लाल चावल, यव व मटर, मूंगका पथ्य हितकर है ॥ १ ॥ २ ॥

यथादोषं चिकित्साक्रमः ।

यथादोषं कषायाणि ज्वरघ्नानि प्रयोजयेत् ।
रक्तजायां तु मूर्च्छायां हितः शीतक्रियाविधिः॥३॥
मद्यजायां वमेन्मद्यं निद्रां सेवेद्यथासुखम् ।
विषजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

दोषज मूर्छामें यथादोष ज्वरनाशक काढ़े तथा रक्तजन्य मूर्छामें शीत क्रियाएँ हितकर है । मद्यजन्य मूर्छामें मद्यका वमन कर सुखपूर्वक सोना चाहिये । विषजन्य मूर्छामें विषनाशक औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥ ४॥

कोलादिचूर्णम् ।

कोलमज्जोषणोशीरकेशरं शीतवारिणा ।
पीतं मूर्च्छां जयेल्लीढं तृष्णां वा मधुसंयुतम् ॥ ५ ॥

बेरकी गुठली, काली मिर्च, खश तथा नागकेशरका चूर्ण ठंडे जलके साथ पीनेसे अथवा शहद मिलाकर चाटनेसे छर्दि व तृष्णा शान्त होती है ॥ ५ ॥

महौषधादिक्वाथः ।

महौषधामृताक्षुद्रापौष्करग्रन्थिकोद्भवम् ।
पिबेत्कणायुतं क्वाथं मूर्च्छायेषु मदेषु च ॥ ६ ॥

सोंठ, गुर्च, छोटी, करेटी, पोहकरमूल तथा पिपरामूलका क्वाथ पिप्पलीका चूर्ण मिलाकर पीनेसे मूर्छा व मद शान्त होता है ॥ ६ ॥

भ्रमचिकित्सा ।

शतावरीबलामूलद्राक्षासिद्धं पयः पिबेत् ।
ससितं भ्रमनाशाय बीजं वाट्यालकस्य वा॥ ७ ॥
पिबेद् दुरालभाक्वाथं सघृतं भ्रमशान्तये ।
त्रिफलायाः प्रयोगो वा प्रयोगः पयसोऽपि वा ।
रसायनानां कौम्भस्य सर्पिषो वा प्रशस्यते ॥ ८ ॥

शतावरी, खरेटीकी जड़ तथा मुनक्कासे सिद्ध दूध मिश्रीके साथ पीनेसे चक्कर आना बन्द होता है । इसी प्रकार खरेटीके बीजोंका चूर्ण मिश्री दूधके साथ भ्रमको नष्ट करता है । अथवा यवासाका क्वाथ घी मिलाकर अथवा त्रिफलाका प्रयोग अथवा दूधका प्रयोग अथवा रसायन औषधियोंका प्रयोग अथवा "कौम्भ" संज्ञक (१० वर्ष या १०० वर्ष पुराने) घृतका प्रयोग हितकर है ॥ ७ ॥ ८ ॥

त्रिफलाप्रयोगः ।

मधुना हन्त्युपयुक्ता त्रिफला रात्रौ गुडार्द्रकं प्रातः ।
सप्ताहात्पथ्यभुजो मदमूर्च्छाकासकामलोन्मादान्९

शहदके साथ त्रिफला रातमें तथा गुड़ अदरख प्रातः-काल सेवन करनेसे पथ्य भोजन करनेवालेके सात दिनमें

---

१ " स्थितं वर्षशतं श्रेष्ठं कौम्भं सर्पिस्तदुच्यते । " इति तत्त्वचन्द्रिका ।

मद, मूर्छा, कास, कामला, तथा उन्मादरोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

संन्यासचिकित्सा।

अञ्जनान्यवपीडाश्च धूमः प्रधमनानि च।
सूचीभिस्तोदनं शस्तं दाहः पीडा नखान्तरे ॥१०॥
लुञ्चनं केशरोम्णां च दन्तैर्दशनमेव च।
आत्मगुप्तावघर्षश्च हितास्तस्यावबोधने ॥ ११ ॥

तीक्ष्ण अञ्जन, तीक्ष्ण द्रव तथा शुष्क नस्य, धूमपान, सुई कोचना, जलाना, नाखूनोंके बीचमें सुई आदि चुभाना, बाल व रोमोंका उखाड़ना, दांतोंसे काटना, कौंचका घिसना बेहोशीको दूर करता है ॥ १० ॥ ११ ॥

इति मूर्छाधिकारः समाप्तः।

मदात्ययाधिकारः।

खर्जूरादिमन्थः।

मन्थः खर्जूरमृद्वीकावृक्षाम्लाम्लीकदाडिमैः।
परूषकैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत् ॥ १ ॥

छुहारा, मुनक्का, बिजौरा, नीम्बू या अम्लवेत या कोकम, इमली, अनार, फालसा व आंवला मिलाकर बनाया गया मन्थ-मद्यविकारको नष्ट करता है ॥ १ ॥

मन्थविधिः।

जले चतुष्पले शीते क्षुण्णद्रव्यपलं क्षिपेत्।
मृत्पात्रे मर्दयेत्सम्यक्तस्माच्च द्विपलं पिबेत् ॥ २ ॥

१६ तोला ठण्डे जलमें ४ तोला कुटी औषधि छोड़, मल, छानकर ८ तोला पीना चाहिये ॥ २ ॥

तर्पणम्।

सतीनमुद्गमिश्रान्वा दाडिमामलकान्वितान्।
द्राक्षामलकखर्जूरपरूषकरसेन वा ॥ ३ ॥
कल्पयेत्तर्पणान्यूषान् रसांश्च विविधात्मकान्।

मटर, मूंग, आंवला, अनार मिलाकर मुनक्का, आंवला, छुहारा, फालसाके रससे तर्पण, यूष तथा अनेक प्रकारके मांस-रस बनाना चाहिये ॥ ३ ॥

सर्वमदात्ययचिकित्सा।

मद्यं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् ॥ ४ ॥
जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम्।
मुद्गयूषः सितायुक्तः स्वादुर्वा पैशितो रसः ॥ ५ ॥
पित्तपानात्यये योज्यः सर्वतश्च क्रिया हिमाः।
पानात्यये कफोद्भूते लंघनं च यथाबलम् ॥ ६ ॥
सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सितम् ॥ ७ ॥
आभिः क्रियाभिर्मिश्राभिः शांतिं याति मदात्ययः।

वातजन्यमें मद्य कुछ जल तथा काला नमक व त्रिकटु-चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। पित्तजन्य मदात्ययमें मूंगका यूष मिश्री मिलाकर अथवा मांसरस मीठा मिलाकर पीना चाहिये। तथा समस्त शीतल चिकित्सा करनी चाहिये। कफात्मक मदात्ययमें बलानुसार लंघन तथा दीपनीय औषधियोंसे युक्त मद्य पीना चाहिये। तथा सर्वजमें यह सभी चिकित्सा करनी चाहिये। इन क्रियाओंसे मदात्यय शान्त हो जाता है ॥ ४–७ ॥

दुग्धप्रयोगः।

न चेन्मद्यक्रमं मुक्त्वा क्षीरमस्य प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥
लंघनाद्यैः कफे क्षीणे जातदौर्बल्यलाघवे।
ओजस्तुल्यगुणं क्षीरं विपरीतं च मद्यतः ॥ ९ ॥
क्षीरप्रयोगं मद्यं वा क्रमेणाल्पाल्पमाचरेत्।

यदि पूर्वोक्त चिकित्सासे मदात्यय शान्त न हो, तो मद्यका क्रम छोड़कर दूधका प्रयोग करना चाहिये। लंघनादिसे कफके क्षीण हो जानेपर तथा दुर्बलता व लघुता बढ़ जाने पर दूध ही पीना चाहिये। दूध ओजके समान तथा मद्यसे विपरीत है। अतः क्षीर या मद्यका प्रयोग क्रमशः थोड़ा थोड़ा करना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

पुनर्नवाद्यं घृतम्।

पयः पुनर्नवाक्वाथयष्टीकल्कप्रसाधितम्।
घृतं पुष्टिकरं पानान्मद्यपानहतौजसः ॥ १० ॥

पुनर्नवा क्वाथ, दूध, तथा मौरेठीके कल्कसे सिद्ध घृत पुष्टिकारक तथा मद्यपानसे क्षीण ओजवालेको हितकर है ॥ १० ॥

अष्टाङ्गलवणम्।

सौवर्चलमजाज्यश्च वृक्षाम्लं साम्लवेतसम्।
त्वगेलामरिचार्धांशं शर्कराभागयोजितम् ॥ ११ ॥
हितं लवणमष्टाङ्गमग्निसन्दीपनं परम्।
मदात्यये कफप्राये दद्यात्स्रोतोविशोधनम् ॥ १२ ॥

काला नमक, (१) जीरा, (२) बिजौरा (३) निम्बू, (४) अम्लवेत प्रत्येक एक भाग, (५) दालचीनी, (६) इलायची, (७) काली मिर्च, प्रत्येक आधा भाग, शक्कर १ भाग, मिलाकर बनाया गया चूर्ण कफज मदात्ययको नष्ट, अग्नि दीप्त तथा स्रोतोंको शुद्ध करता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

चव्यादिचूर्णम् ।

चव्यं सौवर्चलं हिंगु पूरकं विश्वदीप्यकम् ।
चूर्णं मद्येन दातव्यं पानात्ययरुजापहम् ॥ १३ ॥

चव्य, काला नमक, भूनी हींग, बिजौरा निम्बू, सोंठ, अजवाइनका चूर्ण मद्यके साथ पीनेसे मदात्ययको नष्ट करता है ॥ १३ ॥

मद्यपानविधिः ।

जलाप्लुतश्चन्दनरूषिताङ्गः
स्रग्वी सभक्तां पिशितोपदंशाम् ।
पिबन् सुरां नैव लभेत रोगान्
मनोमतिघ्नं च मदं न याति ॥ १४ ॥

शीतजलमें स्नान कर चन्दन लगा, माला पहिन भोजनके साथ मांस खाते हुए शराब पीनेसे कोई रोग उन्माद मदात्ययादि नहीं होते ॥ १४ ॥

पानविभ्रमचिकित्सा ।

द्राक्षाकपित्थफलदाडिमपानकं यत् ।
तत्पानविभ्रमहरं मधुशर्कराढ्यम् ।

मुनक्का, कैथा तथा अनारके रसका पना, शहद, शक्कर मिलाकर पीनेसे पानविभ्रम नष्ट होता है ।

पथ्याघृतम् ।

पथ्याक्वाथेन संसिद्धं घृतं धात्रीरसेन वा ।
सर्पिः कल्याणकं वापि मदमूर्च्छाहरं पिबेत् ॥ १५॥

छोटी हर्रके काढ़े अथवा आंवलेके काढ़ेके साथ सिद्ध घृत अथवा "कल्याणक" घृत मद मूर्च्छाको नष्ट करता है ॥ १५ ॥

पूगमदचिकित्सा ।

सच्छर्दिमूर्च्छातीसारं मदं पूगफलोद्भवम् ।
सद्यः प्रशमयेत्पीतमातृप्तेर्वारि शीतलम् ॥ १६ ॥
वन्यकरीषघ्राणाज्जलपानाल्लवणभक्षणाद्वापि ।
शाम्यति पूगफलमदश्चूर्णरुजा शर्कराकवलात् १७
शंखचूर्णरजोघ्राणं स्वल्पं मदमपोहति ।

सुपारीके नशेको जिसमें वमन, मूर्च्छा तथा अतीसारतक होता हो तृप्तिपर्यन्त ठण्डा जल पीनेसे नष्ट करता है, वनकण्डेको सूंघनेसे, जल पीनेसे तथा नमक खानेसे सुपारीका नशा तथा शक्कर का कवल धारण करनेसे चूनेके खानेसे उत्पन्न पीड़ा नष्ट होती है । शंखका चूर्ण सूंघनेसे भी इसका नशा उतरता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

कोद्रवधुस्तूरमदचिकित्सा ।

कूष्माण्डकरसः सगुडः शमयति मदनकोद्रवजम् ।
धौस्तुरं च दुग्धं सशर्करं पानयोगेन ॥ १८ ॥

मदकारक कोदवके नशेको गुड़के साथ पेठेका रस तथा धतूरेके नशेको शक्करके साथ दूध पीनेसे नष्ट करता है ॥ १८ ॥

इति मदात्ययाधिकारः समाप्तः ।

अथ दाहाधिकारः ।

दाहे सामान्यक्रमः ।

शतधौतघृताभ्यक्तं दिह्याद्वा यवसक्तुभिः ।
कोलामलकयुक्तैर्वा धान्याम्लैरपि बुद्धिमान् ॥ १ ॥
छादयेत्तस्य सर्वाङ्गमारनालार्द्रवाससा ॥
लामज्जेनाथ शुक्तेन चन्दनेनानुलेपयेत् ॥ २ ॥
चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालवृन्तोपवीजितः ।
सुप्याद्दाहार्दितोऽम्भोजकदलीदलसंस्तरे ॥ ३ ॥
परिषेकावगाहेषु व्यजनानां च सेवने ।
शस्यते शिशिरं तोयं तृष्णादाहोपशान्तये ॥ ४ ॥
क्षीरैः क्षीरिकषायैश्च सुशीतैश्चन्दनान्वितैः ।
अन्तर्दाहं प्रशमयेदेतैश्चान्यैश्च शीतलैः ॥ ५ ॥

१०० बार धोये हुए घृतसे मालिश कर यवसत्तुओंसे अथवा बेर और आंवले मिली काञ्जीके साथ लेप करना चाहिये । समस्त शरीर काञ्जीसे तर कपड़ेसे ढक देना चाहिये । अथवा खश, चन्दन और सिरकासे लेप करना चाहिये । चारपाईपर कमल व केलाके पत्ते बिछाकर सुलाना चाहिये । तथा चन्दनके जलसे तर ताड़के पंखेसे इस प्रकार हवा करना कि रोगीका शरीर जलबिन्दुओंसे तर हो जाय । प्यास और जलनकी शान्तिके लिये परिषेक, अवगाह तथा पंखाके तर करनेमें ठण्ढा जल हितकर होता है । शीतल दूध, क्षीरि वृक्षोंके क्वाथ ठण्ढे किये, चन्दन मिले हुए तथा अन्य शीतल पदार्थोंको पिला तथा सेकादि कर अन्तर्दाह शान्त करना चाहिये ॥ १–५ ॥

कुशाद्यं घृतं तैलं च ।

कुशादिशालपर्णीभिर्जीवकाद्येन साधितम् ।
तैलं घृतं वा दाहघ्नं वातपित्तविनाशनम् ॥ ६ ॥

कुशादिपञ्चमूल, शालपर्णी तथा जीवकादिगणकी ओष-

१ यहां "शालपर्णी" शब्दसे वृन्दके सिद्धान्तसे सुश्रुतोक्त विदारिगन्धादि गण लेना चाहिये। दूसरे आचार्योंने लघुपञ्चमूल

धियोंसे सिद्ध तैल व घृत दाह तथा वातपित्तको नष्ट करता है ॥ ६ ॥

फलिन्यादिप्रलेपः ।

फलिनी लोध्रसेव्याम्बु हेमपत्रं कुटन्नटम् ।
कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ ७ ॥

प्रियंगु (इसके अभावमें मेंहदी अथवा कमलगट्टागिरीके वर्तो) लोध, खश, सुगन्धवाला, नागकेशर, तेजपात, मोथा, इनके चूर्णको पीले चन्दनके रसमें पीसकर लेप करना चाहिये ॥ ७ ॥

ह्रीबेराद्यवगाहः ।

ह्रीबेरपद्मकोशीरचन्दनक्षोदवारिणा ।
सम्पूर्णमवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥ ८ ॥

सुगन्धवाला, पद्माख, खश, चन्दनके चूर्णसे युक्त जलसे भरे टबमें बैठना चाहिये ॥ ८ ॥

इति दाहाधिकारः समाप्तः ।

अथोन्मादाधिकारः ।

सामान्यत उन्मादचिकित्सोपायाः ।

उन्मादे वातिके पूर्वं स्नेहपानं विरेचनम् ।
पित्तजे कफजे वान्तिः परो बस्त्यादिकः क्रमः ॥१॥
यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारचिकित्सिते ।
उन्मादे तच्च कर्तव्यं सामान्याद्दोषदूष्ययोः ॥ २ ॥

वातोन्मादमें पहिले स्नेहपान, पित्तोन्मादमें पहिले विरेचन तथा कफोन्मादमें प्रथम वमन कराना चाहिये । तदनन्तर वस्त्यादि क्रमका सेवन करना चाहिये । जो जो चिकित्सा अपस्मारमें कहेंगे, वह उन्मादमें भी करनी चाहिये । क्योंकि दोनोंमें दोष तथा धातु समान ही दूषित होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

स्वरसप्रयोगाः ।

ब्राह्मीकूष्माण्डीफलषड्ग्रन्थाशङ्खपुष्पिकास्वरसाः ।
उन्मादहृतो दृष्टाः पृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः ॥ ३ ॥

ब्राह्मी, कूष्माण्ड, वच तथा शंखपुष्पीमेंसे किसी एकका स्वरस कूठका चूर्ण व शहद मिला चाटनेसे उन्माद नष्ट होता है ॥ ३ ॥

दशमूलक्काथः ।

दशमूलाम्बु सघृतं युक्तं मांसरसेन वा ।
ससिद्धार्थकचूर्णं वा पुराणं वैककं घृतम् ॥ ४ ॥

दशमूलका क्वाथ घी अथवा मांसरसके साथ अथवा सफेद सरसोंके चूर्णके साथ अथवा केवल पुराना घी सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

पुराणघृतलक्षणम् ।

उग्रगन्धं पुराणं स्याद्दशवर्षस्थितं घृतम् ।
लाक्षारससनिभं शीतं प्रपुराणमतः परम् ॥ ५ ॥

दश वर्षका पुराना घी लाक्षारसके समान लाल तथा उग्र गन्धयुक्त होता है, इससे अधिक दिनका "प्रपुराण" कहा जाता है ॥ ५ ॥

पायसः ।

श्वेतोन्मत्तोत्तरदिङ्मूलसिद्धस्तु पायसः ।
गुडाज्यसंयुतो हन्ति सर्वोन्मादांस्तु दोषजान् ॥६॥

सफेद धतूरेकी उत्तर दिशाको गयी जड़से सिद्ध दूधमें गुड़, घी तथा चावल मिलाकर बनायी गयी खीर समस्त दोषज उन्मादोंको शान्त करती है ॥ ६ ॥

उन्मादनाशकनस्यादि ।

उन्मादे समधुः पेयः शुद्धो वा तालशाखजः ।
रसो नस्येऽभ्यञ्जने च सार्षपं तैलमिष्यते ॥ ७ ॥
अपक्वचटकी क्षीरपीतोन्मादविनाशिनी ।
बद्धं सार्षपतैलाक्तमुत्तानं चातपे न्यसेत् ॥ ८ ॥

उन्मादमें शहदके साथ ताड़ी पीना चाहिये । अथवा केवल ताड़ी पीना चाहिये । नस्य और मालिशमें सरसोंके तैलका प्रयोग करना चाहिये । कच्ची गुञ्जा पीसकर दूधके साथ पिलानी चाहिये । तथा शरीरमें तैल लगवा बान्धकर उताना धूपमें सुलाना चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥

सिद्धार्थकाद्यगदः ।

सिद्धार्थको हिङ्गु वचा करञ्जो देवदारु च ।
मञ्जिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभीत्वक् कटुत्रिकम् ॥९॥

माना है । पर निश्चलका मत है कि यहां आदि शब्द नहीं है, अतः केवल शालपर्णी ही लेना चाहिये । शिवदासजीने इस मतको अन्तमें लिखकर छोड़ दिया है, अतः प्रतीत होता है उन्हें भी यही मत अभीष्ट था । यहांपर यद्यपि विभिन्न टीकाकारोंने कल्क और क्वाथ दोनों छोड़ना लिखा है, उसमें "कुशादिशालिपर्णीभिः क्वाथः जीवकाद्येन कल्कः" अथवा "कल्कक्वाथावनिर्देशे गणात्तस्मात्समावपेत्" इस वचनसे सभीसे कल्क क्वाथ लेना लिखा है । पर मेरे विचारसे चक्रपाणि लिखित पूर्व परिभाषा "यत्राधिकरणे नोक्तिर्गणे स्यात्स्नेहसंविधौ । तत्रैव कल्कनिर्यूहा-विष्येते स्नेहवेदिना ॥ एतद्वाक्यबलेनैव कल्कसाध्यपरं घृतम्" के सिद्धान्तसे केवल कल्क छोड़कर पाक करना चाहिये ।

समांशानि प्रियङ्गुश्च शिरीषो रजनीद्वयम् ।
वस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमञ्जनम् ॥ १० ॥
नस्यमालेपनं चैव स्नानमुद्वर्तनं तथा ।
अपस्मारविषोन्मादकृत्यालक्ष्मीज्वरापहः ॥ ११ ॥
भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शस्यते ।
सर्पिरेतेन सिद्धं वा सगोमूत्रं तदर्थकृत् ॥ १२ ॥

सफेद सरसों, भुनी हींग, वच, कञ्जा, देवदारु, मजीठ, त्रिफला, सफेद विष्णुक्रान्ता, मालकांगनी, दाल्चीनी, त्रिकटु, प्रियङ्गु, सिरसाकी छाल, हल्दी तथा दारुहल्दी चूर्ण कर बकरेके मूत्रमें पीस गोली बना लेनी चाहिये । इसका प्रयोग अञ्जन कर, पिलाकर, नस्य देकर,. आलेप कर, उद्वर्तन कर तथा स्नानके जलमें मिलाकर करना चाहिये । यह–अपस्मार, उन्माद, विष, शाप, कुरूपता, ज्वर तथा भूतबाधाको नष्ट करता है । राजद्वारमें मान होता है । इन्हीं ओषधियोंके कल्क तथा गोमूत्रमें सिद्ध घृत भी यही गुण करता है ॥९–१२॥

त्र्यूषणाद्यवर्तिः ।

त्र्यूषणं हिङ्गु लवणं वचा कटुकरोहिणी ।
शिरीषनक्तमालानां बीजं श्वेताश्च सर्षपाः ॥ १३ ॥
गोमूत्रपिष्टैरेतैर्वा वर्तिर्नेत्राञ्जने हिता ।
चातुर्थिकमपस्मारमुन्मादं च नियच्छति ॥ १४ ॥

त्रिकटु, हींग, नमक, वच, कुटकी, सिरसाकी छाल, कञ्जाके बीज, सफेद सरसों–इनको गोमूत्रमें पीस बत्ती बनाकर आंखमें लगानेसे चातुर्थिक ज्वर, अपस्मार तथा उन्माद रोग नष्ट होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

सामान्यप्रयोगाः ।

शुद्धस्याचारविभ्रंशे तीक्ष्णं नावनमञ्जनम् ।
ताडनं च मनोबुद्धिस्मृतिसंवेदनं हितम् ॥ १५ ॥
तर्जनं त्रासनं दानं सान्त्वनं हर्षणं भयम् ।
विस्मयो विस्मृतेर्हेतोर्नयन्ति प्रकृतिं मनः ॥ १६ ॥
कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवान् ।
परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् ॥ १७ ॥
इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते ।
तस्य तत्सदृशप्राप्त्या शान्त्याश्वासैश्च ताञ्जयेत् १८॥
प्रदेहोत्सादनाभ्यङ्गधूमाः पानं च सर्पिषः ।
प्रयोक्तव्यं मनोबुद्धिस्मृतिसंज्ञाप्रबोधनम् ॥ १९ ॥
कल्याणकं महद्वापि दद्याद्वा चैतसं घृतम् ।
तैलं नारायणं चापि महानारायणं तथा ॥ २० ॥

जिस मनुष्यको (वमन विरेचन द्वारा) शुद्ध होनेपर भी अपने आचार आदिका ज्ञान न रहे, उसे तीक्ष्ण नस्य, अञ्जन तथा शासन द्वारा मन, बुद्धि व स्मरणशक्तिको शुद्ध करना चाहिये । डाटना, दुःख देना, दान, शान्ति देना, प्रसन्न करना, डराना, आश्चर्यकी बातें कहना, यह उपाय स्मरणशक्तिको उत्पन्न कर मनको शुद्ध करते हैं । काम, क्रोध, शोक, भय, हर्ष, ईर्षा, लोभसे उत्पन्न उन्मादोंको परस्पर विरुद्ध इन्हीं (यथा कामोन्मादीको क्रोधोत्पन्न कराकर) से शान्त करना चाहिये । इसी प्रकार जिसको इष्ट द्रव्य आदिके नाशसे उन्माद हुआ है, उसे उसीके सदृश प्राप्ति, शांति तथा आश्वासनसे जीतना चाहिये । लेप, उबटन, मालिश, धूम तथा घृतपान कराना चाहिये । इनसे मन, बुद्धि, स्मरणशक्ति तथा ज्ञान प्रबुद्ध होता है । कल्याणघृत, महाकल्याणघृत, चैतसघृत, नारायणतैल तथा महानारायणतैलका प्रयोग करना चाहिये ॥ १५–२० ॥

कल्याणकं घृतं क्षीरकल्याणकं च ।

विशालात्रिफलाकौन्तीदेवदार्वेलवालुकम् ।
स्थिरानतं रजन्यौ द्वे शारिवे द्वे प्रियङ्गुकाः ॥२१॥
नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठादन्तीदाडिमकेशरम् ।
तालीशपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम् ॥ २२ ॥
विडङ्गं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चन्दनपद्मकौ ।
अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैरक्षसमन्वितैः ॥ २३ ॥
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानले क्षये ॥ २४ ॥
वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ।
वम्यर्शोमूत्रकृच्छ्रे च विसर्पोपहतेषु च ॥ २५ ॥
कण्डूपाण्ड्वामयोन्मादे विषमेहगरेषु च ।
भूतोपहतचित्तानां गद्गदानामरेतसाम् ॥ २६ ॥
शस्तं स्त्रीणां च वन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् ।
अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ २७ ॥
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ।
द्विजलं सचतुःक्षीरं क्षीरकल्याणकं त्विदम् ॥ २८॥

इन्द्रायणकी जड़, त्रिफला, सम्भालूके बीज, देवदारु, एलवालुक, शालिपर्णी, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, सारिवा, काली सारिवा, प्रियङ्गु, नीलोफर, छोटी इलायची, मजीठ, दन्ती, अनारदाना, नागकेशर, तालीशपत्र, बड़ी कटेरी, मालती फूल, वायविडंग, पिठिवन, कूठ, चन्दन, पद्माख प्रत्येक १ तोलाका कल्क, घी १ प्रस्थ, जल ४ प्रस्थ मिलाकर सिद्ध करना चाहिये। यह घृत अपस्मार, ज्वर, कास, शोष, मन्दाग्नि, क्षय, वातरक्त, प्रतिश्याय, तृतीयक चातुर्थिकज्वर, वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, खुजली, पाण्डुरोग, उन्माद, विष, प्रमेह, गरविष, भूतोन्माद तथा स्वरभेदको नष्ट करता है । यह वन्ध्या स्त्रियोंको लाभ करता है । वल, आयु तथा बल देता है । कुरूपता,

पापरोग, राक्षसदोष तथा ग्रहदोष नष्ट होते हैं । यह "कल्याणक" घृत सन्तान उत्पन्न करनेमें तथा वाजीकरणमें उत्तम है । द्विगुण जल तथा चतुर्गुण दूध मिलाकर सिद्ध करनेसे यही घृत "क्षीरकल्याणक" कहा जाता है ॥ २१-२८ ॥

महाकल्याणकं घृतम् ।

एभ्य एव स्थिरादीनि जले पक्त्वैकविंशतिम् ।
रसे तस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरचतुर्गुणम् ॥ २९ ॥
वीराद्विमाषकाकोलीस्वयंगुप्तर्षभर्द्धिभिः ।
मेदया च समैः कल्कैस्तत्स्यात्कल्याणकं महत् ॥
बृंहणीयं विशेषेण सान्निपातहरं परम् ॥ ३० ॥

पूर्वोक्त विशाला आदि २८ औषधियोंसे पहिलेकी ७ अलग कर शालपर्णी आदि २१ औषधियोंका क्वाथ, घृतसे चतुर्गुण तथा चतुर्गुण एकवार ब्याई गायका दूध और घृतसे चतुर्थांश शतावर, दोनों उड़द, काकोली, कौंच, ऋषभक, ऋद्धि, मेदाका कल्क छोड़कर घी पकाना चाहिये । यह "महाकल्याणक" घृत विशेषकर बृंहणीय तथा सन्निपातको नष्ट करता है ॥२९॥३०॥

चैतसं घृतम् ।

पञ्चमूल्यावकाश्मर्यौ रास्नैरण्डत्रिवृद्बला ।
मूर्वा शतावरी चेति क्वाथ्यैर्द्विपलिकैरिमैः ॥ ३१ ॥
कल्याणकस्य चाङ्गेन तद् घृतं चैतसं स्मृतम् ।
सर्वचेतोविकाराणां शमनं परमं मतम् ॥ ३२ ॥
घृतप्रस्थोऽत्र पक्तव्यः क्वाथो द्रोणाम्भसा घृतात् ।
चतुर्गुणोऽत्र सम्पाद्यः कल्कः कल्याणके रितः ।

काश्मरीको छोड़कर शेष दोनों पञ्चमूल, रासन, एरण्डकी छाल, निसोथ, खरेटी, मूर्वा, शतावरी प्रत्येक ८ तोला १ द्रोण जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर १ प्रस्थ घी तथा कल्याणक घृतमें कही ओषधियोंका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये । यह घृत समस्त मनोविकारजन्य रोगोंको शान्त करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ३१-३३ ॥

महापैशाचिकं घृतम् ।

जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा ।
त्रायमाणा जया वीरा चोरकः कटुरोहिणी ॥३४॥
वयस्था शूकरी छत्रा सातिच्छत्रा पलङ्कषा ।
महापुरुषदन्ता च वयस्था नाकुलीद्वयम् ॥ ३५ ॥
कटुम्भरा वृश्चिकाली स्थिरा चैव च तैर्घृतम् ।
सिद्धं चातुर्थकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ३६ ॥
महापैशाचिकं नाम घृतमेतद्यथामृतम् ।
मेधाबुद्धिस्मृतिकरं बालानां चाङ्गवर्धनम् ॥ ३७ ॥

जटामांसी, छोटी हर्र, जटामांसी, नील, कौंचके बीज, वच, त्रायमाण, अरणी, शतावरी, भटेउर, कुटकी, गुर्च, वाराहीकन्द, सौंफ, सोवाके बीज, गुग्गुलु अथवा लाक्षा, शतावरी, ब्राह्मी, रास्ना, गन्धरास्ना, मालकांगनी, बिछुआ तथा शालपर्णीका कल्क और कल्कसे चतुर्गुण घी और घीसे चतुर्गुण जल मिलाकर सिद्ध किया यह घृत चातुर्थिक ज्वर, उन्माद, ग्रहदोष, व अपस्मारको नष्ट करता तथा मेधा, बुद्धि और बालकोंके शरीरको बढ़ाता है ॥ ३४-३७ ॥

हिंग्वाद्यं घृतम् ।

हिंगुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ।
चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ ३८ ॥

हींग, काला नमक, त्रिकटु प्रत्येक ८ तोला, घी ६ सेर ३२ तोला, गोमूत्र २५ सेर ४८ तो० मिला सिद्ध कर सेवन करनेसे उन्माद रोग नष्ट होता है ॥ ३८ ॥

लशुनाद्यं घृतम् ।

लशुनस्याविनष्टस्य तुलार्धं निस्तुषीकृतम् ।
तदर्धं दशमूल्यास्तु द्व्याढकेऽपां विपाचयेत् ॥३९॥
पादशेषे घृतप्रस्थं लशुनस्य रसं तथा ।
कोलमूलकवृक्षाम्लमातुलुङ्गार्द्रकै रसैः ॥ ४० ॥
दाडिमाम्बुसुरामस्तुकाञ्जिकाम्लैस्तदर्धिकैः ।
साधयेत्त्रिफलादारुलवणव्योषदीप्यकैः ॥ ४१ ॥
यमानीचव्यहिंग्वम्लवेतसैश्च पलार्धिकैः ।
सिद्धमेतत्पिबेच्छूलगुल्मार्शोजठरापहम् ॥ ४२ ॥
ब्रध्नपाण्ड्वामयप्लीहयोनिदोषक्रिमिज्वरान् ।
वातश्लेष्मामयांश्चान्यानुन्मादांश्चापकर्षति ॥ ४३ ॥

लहसुन छिला हुआ २॥ सेर, दशमूल १। सेर, जल २ आढक (यहां "द्विगुणं तद् द्रवार्द्रयोः" से १२सेर६४ तोला) में मिलाकर पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर क्वाथमें १ प्रस्थ घृत, लशुनका रस १ प्रस्थ, बेर, मूली, बिजौरा निम्बू, कोकम, अदरखका, रस, अनारका रस, शराब, दहीका तोड़, काञ्जी प्रत्येक ६४ तोला, त्रिफला, देवदारु, लवण, त्रिकटु, अजवाइन, अजमोद, चव्य, हींग, अम्लवेत, प्रत्येक २ तोलाका कल्क मिलाकर सिद्ध किया गया घृत पीनेसे, शूल, गुल्म, अर्श, उदररोग, वद, पाण्डुरोग, प्लीहा, योनिदोष, क्रिमिरोग, ज्वर, वातकफके अन्य रोग तथा उन्मादको नष्ट करता है ॥ ३९-४३ ॥

आगन्तुकोन्मादचिकित्सा ।

सर्पिःपानादिरागन्तोर्मन्त्रादिश्चेष्यते विधिः ।
पूजाबल्युपहारेष्टिहोममन्त्राञ्जनादिभिः ॥ ४४ ॥

जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधिः शुचिर्भिषक् ।

आगन्तुकोन्मादमें घृतपान, मन्त्रजप, पूजा, बलि, उपहार, यज्ञ, होम, अञ्जन पवित्रतासे करना चाहिये ॥ ४४ ॥

अञ्जनम् ।

कृष्णामरिचसिन्धूत्थमधुगोपित्तनिर्मितम् ॥ ४५ ॥
अञ्जनं सर्वभूतोत्थमहोन्मादविनाशनम् ।
दार्वीमधुभ्यां पुष्यर्क्षे कृतं च गुडिकाञ्जनम् ॥४६॥
मरिचं वातपे मासं सपित्तं स्थितमञ्जनम् ।
वैकृतं पश्यतः कार्यं भूतदोषहतस्मृतेः ॥ ४७ ॥

छोटी पीपल, काली मिर्च, सेंधानमक, शहद, गोरोचनसे बनाया अञ्जन समस्त भूतोन्मादोंको नष्ट करता है। इसी प्रकार दारुहल्दी व शहदसे बनायी गोलीको आञ्जनेसे भी उन्माद नष्ट होता है। काली मिर्च व गोरोचनको महीने भर धूपमें रखकर भूतदोषसे उन्मत्तकी आंखोंमें लगाना चाहिये ॥ ४५-४७ ॥

धूपाः ।

निम्बपत्रवचाहिंगुसर्पनिर्मोकसर्षपैः ।
डाकिन्यादिहरो धूपो भूतोन्मादविनाशनः ॥४८॥
कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतकै-
स्त्वग्मांसीवृषदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्मोककैः ।
गोशृङ्गद्विपदन्तहिंगुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः
स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नः स्मृतः॥४९

नीमकी पत्ती, बच, हींग, सांपकी केंचुल तथा सरसोंसे बनाया धूप डाकिनी तथा भूतादिजन्य उन्मादको नष्ट करता है। इसीप्रकार कपासकी गुठली, मयूरका पंख, बड़ी कटेरी, शिवनिर्माल्य, मैनफल, दालचीनी, बंशलोचन, बिलाड़की विष्ठा, धानकी भूसी, बच, केश, सांपकी केंचुल, गौका सींग, हाथीके दांत, हींग, कालीमिर्च—इन सब औषधियोंसे बनाया गया धूप, स्कन्दोन्माद, पिशाच, राक्षस, सुरावेश तथा ज्वरको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

नस्यम् ।

ब्रह्मराक्षसजिन्नस्यं पक्वेन्द्रीफलमूत्रजम् ।
साज्यं भूतहरं नस्यं श्वेताख्यैटाम्बुनिर्मितम् ॥ ५० ॥

पके इन्द्रायणके फल तथा गोमूत्रका नस्य अथवा सफेद विष्णुकान्ता और चावलका जल मिलाकर बनाया गया नस्य घीके साथ लेनेसे भूतदोष नष्ट होता है ॥ ५० ॥

तीक्ष्णौषधनिषेधः ।

देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य च बुद्धिमान् ।
वर्जयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरमेव च ॥ ५१ ॥

देव, ऋषि, पितृ, तथा गन्धर्वादि ग्रहोंसे तथा (ब्रह्मराक्षससे) उन्मत्तको तीक्ष्ण अञ्जनादि क्रूर चिकित्सा न करनी चाहिये ॥ ५१ ॥

विगतोन्मादलक्षणम् ।

प्रसादश्चेन्द्रियार्थानां बुद्ध्यात्ममनसां तथा ।
धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलक्षणम् ॥ ५२ ॥

उन्माद शान्त हो जानेपर इन्द्रियां अपने विषयको ठीक ग्रहण करने लग जाती हैं। बुद्धि, आत्मा व मन प्रसन्न होते हैं और शरीरस्थ धातु अपने रूपमें हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

इत्युन्मादाधिकारः समाप्तः ।

अथापस्माराधिकारः ।

वातकादिक्रमेण सामान्यतश्चिकित्सा ।

वातिकं बस्तिभिः प्रायः पैत्तं प्रायो विरेचनैः ।
श्लैष्मिकं वमनप्रायैरपस्मारमुपाचरेत् ॥ १ ॥
सर्वतः सुविशुद्धस्य सम्यगाश्वासितस्य च ।
अपस्मारविमोक्षार्थं योगान्संशमनाञ्छृणु ॥ २ ॥

वातिक अपस्मारको वस्तिसे, पित्तजको विरेचनसे तथा कफजको प्रायः वमन कराकर चिकित्सा करनी चाहिये । शुद्ध हो जानेपर संसर्जन क्रमके अनन्तर शान्त करनेवाले योगोंका सेवन करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

अञ्जनानि ।

मनोह्वा तार्क्ष्यजं चैव शकृत्पारावतस्य च ।
अञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादं च विशेषतः ॥ ३ ॥
यष्टीहिंगुवचावक्रशिरीषलशुनामयैः ।
साजामूत्रैरपस्मारे सोन्मादे नावनाञ्जने ॥ ४ ॥
पुष्योद्धृतं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमञ्जनम् ।
तदेव सर्पिषा युक्तं धूपनं परमं स्मृतम् ॥ ५ ॥

मनशिल, रसौत, कबूतरकी विष्ठा तीनोंका अञ्जन अपस्मार तथा उन्मादको नष्ट करता है । तथा मौरेठी, हींग, बच, तगर, सिरसाकी छाल, लहसुन, कूठ इसको बकरेके मूत्रमें पीसकर अञ्जन तथा नस्य देना चाहिये । इसी प्रकार पुष्य नक्षत्रमें निकाला गया कुत्तेका पित्त अपस्मारको अञ्जनसे नष्ट करता है । वही घीमें मिलाकर धूप देना चाहिये ॥ ३-५ ॥

धूपोत्सादनलेपाः ।

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः ।
तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद्भिषक् ॥ ६ ॥

कायस्थाञ्शारदान्मुद्गान्मुस्तोशीरयवांस्तथा ।
सव्योषान्वस्तमूत्रेण पिष्ट्वा वर्तिं प्रकल्पयेत् ॥ ७ ॥
अपस्मारे तथोन्मादे सर्पदष्टे गरार्दिते ।
विषपीते जलमृते चैताः स्युरमृतोपमाः ॥ ८ ॥
अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिचोरकैः ।
उत्सादनं मूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवावसेचनम् ॥ ९ ॥
जतुकाशकृतस्तद्वद्दग्धैर्वा बस्तरोमभिः ।
अपस्मारहरो लेपो मूत्रसिद्धार्थशिग्रुभिः ॥ १० ॥

नेवला, उल्लू, बिल्ली, गृध्र, कीट, सर्प, तथा काककी चोंच, पंख और मलसे धूप देना चाहिये । सम्भालू, शरदऋतुकी मूंग, नागरमोथा, खश, यव तथा त्रिकटुको बकरेके मूत्रमें पीस बत्ती बनाकर अञ्जन तथा धूपसे ये अपस्मार, उन्माद, सर्पके काटे हुएको तथा विष पिये हुए, कृत्रिम विष खाये हुए तथा जलसे मरे हुएको अमृततुल्य गुण देते हैं । इनका अञ्जन लगाना चाहिये तथा धूप देनी चाहिये । तथा तुलसी, कूठ, छोटी हर्र, जटामांसी, भटेउर, इनको गोमूत्रमें पीसकर उबटन लगाना चाहिये तथा गोमूत्रसे ही स्नान कराना चाहिये। लाख व काश तथा जलाये हुए बकरेके रोवां अथवा गोमूत्र, सरसों व सहिंजनकी छालसे लेप करना चाहिये ॥ ६-१० ॥

वचाचूर्णम् ।

यः खादेत्क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारजः ।
अपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद् ध्रुवम् ॥११॥

जो शहदके साथ वचका चूर्ण चाटता तथा दूध भातका पथ्य लेता है, उसका पुराना महाघोर अपस्मार भी नष्ट होता है ॥ ११ ॥

अन्ये योगाः ।

उद्बन्धितनरग्रीवापाशं दग्ध्वा कृता मसी ।
शीताम्बुना समं पीता हन्त्यपस्मारमुद्धतम् ॥१२॥
प्रयोज्यं तैललशुनं पयसा वा शतावरी ।
ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्वापस्मारभेषजम् ॥ १३ ॥
निर्दह्य निर्द्रवां कृत्वा छागिकामरनालिकाम् ।
तामम्लसाधितां खादन्नपस्मारमुदस्यति ॥ १४ ॥
हृत्कम्पोऽक्षिरुजा यस्य स्वेदो हस्तादिशीतता ।
दशमूलीजलं तस्य कल्याणाज्यं च योजयेत् ॥१५॥

जिस रस्सीसे मनुष्य फांसीपर लटकाया गया हो, उस रस्सीको जलाकर ठंढे जलके साथ पीनेसे उद्धत अपस्मार नष्ट होता है । तैलके साथ लहसुन तथा दूधके साथ शतावरी अथवा शहदके साथ ब्राह्मीरस समस्त अपस्मारोंको नष्ट करता है । मेढ़ासिंही व अमरवेलका रस निकाल जलाकर काञ्जीमें पकाकर खानेसे अपस्मार नष्ट होता है । जिसके हृत्कम्प, अक्षिरुजा, पसीना तथा हाथ पैरोंमें ठण्ढक हो, उसे दशमूलक्वाथ तथा कल्याणघृत पिलाना चाहिये ॥ १२-१५ ॥

स्वल्पपञ्चगव्यं घृतम् ।

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम् ।
सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ १६ ॥

घीके बराबर गायके गोबरका रस, दही, दूध व मूत्र मिलाकर सिद्ध करना चाहिये । यह घृत चातुर्थिक ज्वर, उन्माद, ग्रह तथा अपस्मारको नष्ट करता है ॥ १६ ॥

बृहत्पञ्चगव्यं घृतम् ।

द्वे पञ्चमूले त्रिफला रजन्यौ कुटजत्वचम् ।
सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनीं कटुरोहिणीम् ॥ १७ ॥
शम्याकं फल्गुमूलं च पौष्करं सदुरालभम् ।
द्विपलानि जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते ॥ १८ ॥
भार्ङ्गीं पाठां त्रिकटुकं त्रिवृतां निचुलानि च ।
श्रेयसीमाढकीं मूर्वां दन्तीं भूनिम्बचित्रकौ ॥१९॥
द्वे शारिवे रौहिषं च भूतिकं मदयन्तिकाम् ।
क्षिपेत्पिष्ट्वाक्षमात्राणि तैः प्रस्थं सर्पिषः पचेत्॥२०॥
गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैश्च तत्समैः ।
पञ्चगव्यमिति ख्यातं महत्तदमृतोपमम् ॥ २१ ॥
अपस्मारे ज्वरे कासे श्वयथावुदरेषु च ।
गुल्मार्शःपाण्डुरोगेषु कामलायां हलीमके ॥ २२ ॥
अलक्ष्मीग्रहरक्षोघ्नं चातुर्थिकविनाशनम् ।

दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुड़ेकी छाल, सातवन, लटजीरा, नील, कुटकी, अमलतासका गूदा, अञ्जीरकी जड़, पोहकरमूल, यवासा प्रत्येक ८ तोला, एक द्रोण जलमें मिलाकर पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर क्वाथमें घी १ प्रस्थ, भारङ्गी, पाढ, त्रिकटु, निसोथ, जलवेतस अथवा समुद्रफल, गजपीपल, अरहर, मूर्वा दन्ती, चिरायता, चीतकी जड़, सारिवा, काली सारिवा, रोहिष घास, अजवायन तथा नेवारी प्रत्येक १ तोला पीस कल्क कर छोड़ना चाहिये । तथा गायके गोबरका रस, खट्टा दही, दूध, गोमूत्र घीके समान छोड़कर पकाना चाहिये । यह "बृहत्पञ्चगव्य घृत" अपस्मार, ज्वर, कास, सूजन, उदररोग, गुल्म, अर्श, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, कुरूपता, ग्रहदोष, राक्षसदोष, तथा चातुर्थिक ज्वरको नष्ट करता है ॥ १७-२२॥

महाचैतसं घृतम् ।

शणत्रिवृत्तथैरण्डो दशमूली शतावरी ॥ २३ ॥

रास्ना मागधिका शिग्रुः काथ्यं द्विपलिकं भवेत् ।
विदारी मधुकं मेदे द्वे काकोल्यौ सिता तथा ॥२४
एभिः खर्जूरमृद्वीकाभीरुयुञ्जातगोक्षुरैः ।
चैतसस्य घृतस्याङ्गैः पक्तव्यं सर्पिरुत्तमम् ॥२५ ॥
महाचैतससंज्ञं तु सर्वापस्मारनाशनम् ।
गरोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतुर्थकान् ॥ २६ ॥
पापालक्ष्म्यौ जयेदेतत्सर्वग्रहनिवारणम् ।
कासश्वासहरं चैव शुक्रार्तवविशोधनम् ॥ २७ ॥
घृतमानं काथविधिरिह चैतसवन्मतम् ।
कल्कश्चैतसकल्कोक्तद्रव्यैः सार्धं च पादिकः ॥२८॥
नित्यं युञ्जातकाप्राप्तौ तालमस्तकमिष्यते ।

सन, निसोथ, एरण्डकी छाल, दशमूल, शतावर, रासन, छोटी पीपल, सहिंजन यह प्रत्येक ८ तोला ले १ द्रोण जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश रहनेपर उतार छानकर विदारीकन्द, मौरेठी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मिश्री, छुहारा, मुनक्का, शतावर, गोखरू, युञ्जात, तथा कल्याणकघृतका कल्क घृतसे चतुर्थांश मिलाकर घृत पकाना चाहिये । यह " महाचैतसघृत " समस्त अपस्मार, कृत्रिम विष, उन्माद, जुखाम, तृतीयक चातुर्थिक ज्वर, पाप, कुरूपता, ग्रहदोष, कास, तथा श्वासको नष्ट करता और रजवीर्यको शुद्ध करता है । घीका मान तथा क्वाथ चैतसके समान समझना चाहिये । कल्क कुल मिलाकर घृतसे चतुर्थांश ही हो । युञ्जातकके अभावमें ताड़का मस्तक लेना चाहिये ॥ २३–२८ ॥

कूष्माण्डकघृतम् ।

कूष्माण्डकरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत् ॥ २९ ॥
यष्ट्याह्वकल्कं तत्पानमपस्मारविनाशनम् ।

घीसे चतुर्थांश मौरेठीका कल्क तथा अठारह गुणा कुम्हड़ेका रस मिलाकर सिद्ध किया गया घृत अपस्मारको नष्ट करता है ॥ २९ ॥

ब्राह्मीघृतम् ।

ब्राह्मीरसे वचाकुष्ठशङ्खपुष्पीभिरेव च ॥ ३० ॥
पुराणं मेध्यमुन्मादग्रहापस्मारनुद् घृतम् ।

ब्राह्मीके रसमें पुराना घी, वच, कूठ, व शंखपुष्पीका कल्क छोड़कर पकानेसे उन्माद ग्रहदोष, अपस्मारको नष्ट करता तथा मेधाको बढ़ाता है ॥ ३० ॥–

पलंकषाद्यं तैलम् ।

पलंकषावचापथ्यावृश्चिकाल्यर्कसर्षपैः ॥ ३१ ॥
जटिलापूतनाकेशीलाङ्गलीहिङ्गुचोरकैः ।
लशुनातिविषाचित्राकुष्ठैर्विड्भिश्च पक्षिणाम् ॥३२॥
मांसाशिनां यथालाभं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे ।
सिद्धमभ्यञ्जने तैलमपस्मारविनाशनम् ॥ ३३ ॥

गुग्गुल, वच, हर्र, बिछुआ, आक, सरसों, जटामांसी, कारियारी, जटामांसी, छोटी हर्र, हींग, मटेउर, लहसुन, अतीस, दन्ती, कूठ तथा मांस खानेवाले पक्षियोंकी विष्ठाका कल्क तथा चतुर्गुण गोमूत्र मिलाकर सिद्ध किया गया घृत मालिश करनेसे अपस्मारको नष्ट करता है ॥ ३१–३३ ॥

अभ्यङ्गः ।

अभ्यङ्गः सार्षपं तैलं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे ।
सिद्धं स्याद्गोशकृन्मूत्रैः पानोत्सादनमेव च ॥३४॥

चतुर्गुण बकरेके मूत्रमें मिलाकर सिद्ध किया गया सरसोंका तैल मालिश करने तथा गायके गोबरके रसका गोमूत्रके साथ पीना तथा उबटन लगाना हितकर है ॥ ३४ ॥

इत्यपस्माराधिकारः समाप्तः ।

अथ वातव्याध्यधिकारः ।

तत्र सामान्यतश्चिकित्सा ।

स्वाद्वम्ललवणैः स्निग्धैराहारैर्वातरोगिणः ।
अभ्यङ्गस्नेहबस्त्याद्यैः सर्वानेवोपपादयेत् ॥ १ ॥

समस्त वातरोगियोंको मीठे खट्टे नमकीन तथा स्नेहयुक्त भोजन तथा मालिश व स्नेहयुक्त वस्ति आदि देना हितकर है ॥ १ ॥

भिन्नभिन्नस्थानस्थवातचिकित्सा ।

विशेषतस्तु कोष्ठस्थे वाते क्षारं पिबेन्नरः ।
आमाशयस्थे शुद्धस्य यथा दोषहरी क्रिया ॥ २ ॥
आमाशयगते वाते छर्दिताय यथाक्रमम् ।
देयः षड्धरणो योगः सप्तरात्रं सुखाम्बुना ॥ ३ ॥

यदि वायु कोष्ठगत हो, तो क्षार पिलाना चाहिये । यदि आमाशयमें हो, तो शोधन कर वात नाशक क्रिया करनी चाहिये अर्थात् आमाशयगत वायुमें प्रथम स्नेहन स्वेदन कराकर वमन कराना चाहिये । फिर षड्धरण योग ७ दिनतक गरम जलसे देना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

षड्धरणयोगः ।

चित्रकेन्द्रयवाः पाठाकटुकातिविषाभयाः ।
महाव्याधिप्रशमनो योगः षड्धरणः स्मृतः ॥ ४ ॥

पलदशमांशो धरणं योगोऽयं सौश्रुतस्ततस्तस्य।
माषेण पंचगुञ्जकमानेन प्रत्यहं देयः॥ ५॥

चीतकी जड़, इन्द्रयव, पाढ़, कुटकी, अतीस, बड़ी हर्रका छिल्का यह वातव्याधिको नष्ट करनेवाला "पड्धरण" योग कहा जाता है। यह योग सुश्रुतका है, अतः उन्हींके मान (५ रत्तीके माशा) से पलके दशमांश (३२ रत्ती) एक खुराक बनाना चाहिये॥ ४॥ ५॥

पक्वाशयगतवातचिकित्सा।

पक्वाशयगते वाते हितं स्नेहविरेचनम्।
वस्तयः शोधनीयाश्च प्राशाश्च लवणोत्तराः॥ ६॥

पक्वाशयगत वातमें स्नेहयुक्त विरेचन, शोधनीय वस्ति तथा नमकीन चटनी हितकर है॥ ६॥

स्नेहलवणम्।

स्नुहीलवणवार्ताकुस्नेहांश्छन्ने घटे दहेत्।
गोमयैः स्नेहलवणं तत्परं वातनाशनम्॥ ७॥

थूहर, बैंगन, नमक, तिलतैल समान भाग ले एक भण्डियामें बन्दकर बनकण्डोंकी आंचमें पकाना चाहिये। यह वात नष्ट करनेमें उत्तम "स्नेहलवण" है॥ ७॥

विभिन्नस्थानस्थवातचिकित्सा।

कार्यो वस्तिगते चापि विधिर्वस्तिविशोधनः।
त्वङ्मांसासृक्शिराप्राप्ते कुर्याच्चासृग्विमोक्षणम्॥ ८
स्नेहोपनाहाग्निकर्मबन्धनोन्मर्दनानि च।
स्नायुसन्ध्यस्थिसम्प्राप्ते कुर्याद्वाते विचक्षणः॥ ९॥
स्वेदाभ्यङ्गावगाहांश्च हृद्यं चान्नं त्वगाश्रिते।
शीताः प्रदेहा रक्तस्थे विरेको रक्तमोक्षणम्॥ १०॥
विरेको मांसमेदःस्थे निरूहाः शमनानि च।
बाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरस्थिमज्जगतं जयेत्॥ ११॥
हर्षोऽन्नपानं शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम्।
विबद्धमार्गं शुक्रं तु दृष्ट्वा दद्याद्विरेचनम्॥ १२॥

वस्तिगत वायुमें वस्तिशोधक विधि और त्वचा, मांसरक्त तथा शिराओंमें प्राप्त वायुमें रक्तमोक्षण करना चाहिये। तथा यदि वायु स्नायु सन्धि व अस्थिमें प्राप्त हो, तो स्नेहन, उपनाहन, अग्निकर्म, बन्धन, व मर्दन करने चाहियें। त्वग्गत-वायुमें स्वेद, अभ्यग, अवगाह तथा हृदयके लिये हितकर अन्न सेवन करना चाहिये। रक्तगत वायुमें शीतल लेप विरेचन तथा रक्तमोक्षण हितकर है। तथा मांसमेदः स्थित वायुमें निरूहणवस्ति तथा शमनप्रयोग और अस्थि व मज्जागत वायुमें बाह्य व अभ्यन्तर स्नेहका प्रयोग करना चाहिये। शुक्रगत-वायुमें प्रसन्नता तथा बलशुक्रकारक अन्न पान हितकर हैं, पर यदि शुक्रका मार्ग मन्द हो तो शुक्र विरेचन औषध देना चाहिये॥ ८-१२॥

शुष्कगर्भचिकित्सा।

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानां चापि शुष्यताम्।
सितामधुककाश्मर्यैर्हितमुत्थापने पयः॥ १३॥

गर्भके सूखने तथा बालकोंके शोष रोगमें मिश्री, मौरेठी तथा खम्भारके चूर्णके साथ दूध पीना हितकर है॥ १३॥

शिरोगतवातचिकित्सा।

शिरोगतेऽनिले वातशिरोरोगहरी क्रिया।

शिरोगत वायुमें वातशिरोरोगनाशक चिकित्सा करनी चाहिये।

हनुस्तम्भचिकित्सा।

व्यादितास्ये हनुं स्विन्नामङ्गुष्ठाभ्यां प्रपीड्य च१४
प्रदेशिनीभ्यां चोन्नम्य चिबुकोन्नामनं हितम्।

जिसका मुख खुला ही रह गया हो, उसकी ठोढ़ीको स्वेदित कर अंगूठोंसे दबाकर उसी समय दोनों तर्जनियोंसे ठोढ़ीको ऊपरकी ओर उठावे॥ १४॥–

अर्दितचिकित्सा।

अर्दिते नवनीतेन खादेन्माषेण्डरीं नरः॥ १५॥
क्षीरमांसरसैर्भुक्त्वा दशमूलीरसं पिबेत्।
स्नेहाभ्यङ्गशिरोवस्तिपाननस्यपरायणः॥ १६॥
अर्दितं स जयेत्सर्पिः पिबेदौत्तरभक्तिकम्।

अर्दितरोगमें मक्खनके साथ उड़दके बड़े खाने चाहियें, तथा दूध व मांसरसके साथ भोजन कर दशमूलका क्वाथ पीना चाहिये। तथा जो मनुष्य स्नेहाभ्यङ्ग शिरोवस्ति, स्नेहपान तथा स्नेहयुक्त नस्य लेता है तथा घीके साथ भोजन करता है, उसका अर्दितरोग नष्ट होता है॥ १५॥ १६॥–

मन्यास्तम्भचिकित्सा।

पञ्चमूलीकृतः क्वाथो दशमूलीकृतोऽथवा॥ १७॥
रूक्षःस्वेदस्तथा नस्यं मन्यास्तम्भे प्रशस्यते।

पञ्चमूलका काढ़ा अथवा दशमूलका काढ़ा तथा रूक्ष स्वेद व रूक्ष नस्य मन्यास्तम्भको दूर करता है॥ १७॥

जिह्वास्तम्भचिकित्सा।

वाताद्वाग्धमनीदुष्टौ स्नेहगण्डूषधारणम्॥ १८॥

वायुसे वाग्वाहिनी शिराओंके दूषित होनेपर स्नेहका गण्डूषधारण करना चाहिये॥ १८॥

कल्याणको लेहः ।

सहरिद्रा वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ।
अजाजी चाजमोदा च यष्टीमधुकसैन्धवम् ॥१९॥
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
तच्चूर्णं सर्पिषालोड्य प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ २० ॥
एकविंशतिरात्रेण भवेच्छ्रुतिधरो नरः ।
मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिःस्वनः ॥ २१ ॥
जडगद्गदमूकत्वं लेहः कल्याणको जयेत् ।

हरिद्रा, वच, कूठ, छोटी पीपल, सोंठ, जीरा, अजवाइन, मौरेठी, सेंधानमक सबका महीन चूर्णकर घीके साथ प्रतिदिन चाटना चाहिये । इक्कीस रात्रितक इसके प्रयोग करनेसे मनुष्य श्रुतिधर (एकवार सुनकर सदा याद रखनेवाला), मेघ तथा दुंदुभीके समान गरजनेवाला तथा मत्त कोकिलके समान स्वरवाला होता है । जड़ता, गद्गदकण्ठ तथा मूकताको यह "कल्याणक" लेह नष्ट करता है ॥ १९–२१ ॥

त्रिकस्कन्धादिगतवायुचिकित्सा ।

रूक्षं त्रिकस्कन्धगतं वायुं मन्यागतं तथा ।
वमनं हन्ति नस्यं च कुशलेन प्रयोजितम् ॥ २२ ॥

त्रिक, स्कन्ध तथा मन्यागतवायुको कुशल पुरुषद्वारा प्रयुक्त रूक्ष वमन तथा नस्य शान्त करता है ॥ २२ ॥

माषबलादिक्वाथनस्यम् ।

माषबलाशूकशिम्बीकत्तृणरास्नाश्वगन्धोरुबूकाणाम् ।
क्वाथो नस्यनिपीतो रामठलवणान्वितः कोष्णः॥२३
अपहरति पक्षवातं मन्यास्तंभं सकर्णनादरुजम् ।
दुर्जयमर्दितवातं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ २४ ॥

उड़द, खरेटी, कौंचके बीज, रोहिष घास, रासन, असगन्ध तथा एरण्डकी छालका क्काथ, भूनी हींग व नमक मिलाकर कुछ गरम गरम नासिका द्वारा पीनेसे (नस्यलेनेसे) अवश्यमेव पक्षाघात, मन्यास्तम्भ, कानका दर्द तथा सनसनाहट व कठिन अर्दितरोग ७ दिनमे नष्ट होजाता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

विश्वाचीचिकित्सा ।

दशमूलीबलामाषक्वाथं तैलाज्यमिश्रितम् ।
सायं भुक्त्वा पिबेन्नक्तं विश्वाच्यामपबाहुके ॥२५॥
रसं बलायास्त्वथ पारिभद्रा-
स्तथात्मगुप्तास्वरसं पिबेद्वा ।
नस्यं तु यो मांसरसेन दद्या-
न्मासादसौ वज्रसमानबाहुः ॥ २६ ॥

(१) दशमूल, खरेटी, उड़दका क्काथ, तैल व घी मिलाकर सायंकाल भोजन करनेके अनन्तर पीनेसे विश्वाची तथा अपबाहुक रोग नष्ट होता है । तथा (२) खरेटीका रस व (३) नीमका रस (४) अथवा कौंचका रस जो पीता है तथा (५) मांसरससे नस्य लेता है, उसके विश्वाची व अपबाहुक रोग नष्ट होते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

पक्षाघातचिकित्सा ।

माषात्मगुप्तैरण्डवाट्यालकशृतं पिबेत् ।
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातनिवारणम् ॥ २७ ॥
बाहुशोषे पिबेत्सर्पिर्भुक्त्वा कल्याणकं महत् ।
हृदि प्रकुपिते वाते चांशुमत्याः पयो हितम्॥२८॥

उड़द, कौंचके बीज, एरण्डकी छाल तथा खरेटीका काथ भुनी हींग व सेंधानमक मिलाकर पीनेसे पक्षाघातरोग नष्ट होता है । बाहुशोषमें भोजनके अनन्तर महाकल्याणकघृतका सेवन करना चाहिये । तथा हृदयमें वायुके कुपित होनेपर (अपतन्त्रकवातमें) शालिपर्णीसे सिद्ध किया दूध पीना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥

हरीतक्यादिचूर्णम् ।

हरीतकी वचा रास्ना सैन्धवं चाम्लवेतसम् ।
घृतमात्रासमायुक्तमपतन्त्रकनाशनम् ॥ २९ ॥

बड़ी हर्रका छिल्का, वच, रासन, सेंधा नमक तथा अम्लवेतका चूर्ण घीमें मिलाकर चाटनेसे अपतन्त्रक रोग नष्ट होता है ॥ २९ ॥

स्वल्परसोनपिण्डः ।

पलमर्धं पलं चैव रसोनस्य सुकुट्टितम् ।
हिंगुजीरकसिन्धूत्थैः सौवर्चलकटुत्रयैः ॥ ३० ॥
चूर्णितैर्माषकोन्मानैरवचूर्ण्य विलोडितम् ।
यथाग्नि भक्षितं प्रातः रुबूकाथानुपानतः ॥ ३१ ॥
दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम् ।
वातरोगं निहन्त्याशु अर्दितं सापतन्त्रकम् ॥ ३२ ॥
एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे ।
ऊरुस्तम्भे च गृध्रस्यां क्रिमिकोष्ठे विशेषतः ॥३३॥
कटीपृष्ठामयं हन्यादुदरं च विशेषतः ।

साफ कुटा हुआ लहसुन ६ तोला, भुनी हींग, जीरा, सेंधानमक, काला नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल प्रत्येक १ माशे चूर्णकर अपनी अग्नि तथा बलके अनुसार सेवन करने तथा ऊपरसे एरण्डकी छालका क्काथ पीनेसे १ मासमें वातरोग, अर्दित, अपतन्त्रक, पक्षाघात, सर्वाङ्गग्रह, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी, क्रिमिकोष्ठ, कमर, पीठके रोग तथा उदर रोगोंको नष्ट करता है ॥ ३०–३३ ॥

विविधा योगाः।

हन्ति प्राग्भोजनात्पीतं दध्यम्लं सवचोषणम् ॥३४॥
अपतानकमन्योऽपि वातव्याधिक्रमो हितः।
वातघ्नैर्दशमूल्या च नरं कुब्जमुपाचरेत् ॥ ३५ ॥
स्नेहैर्मांसरसैर्वापि प्रवृद्धं तं विवर्जयेत्।
पिप्पल्यादिरजस्तूनीप्रतितून्योः सुखाम्बुना ॥ ३६॥
पिबेद्वा स्नेहलवणं सघृतं क्षारहिंगु वा।
आध्माने लंघनं पाणितापश्च फलवर्तयः ॥ ३७ ॥
दीपनं पाचनं चैव बस्तिश्चाप्यत्र शोधनः।
प्रत्याध्माने तु वमनं लंघनं दीपनं तथा ॥ ३८ ॥
प्रत्यष्ठीलाष्ठीलिकयोरन्तर्विद्रधिगुल्मवत्।

वच व कालीमिर्चके चूर्णके साथ खट्टा दही भोजनके पहिले पीनेसे अपतन्त्रक नष्ट होता है तथा दूसरा भी वातव्याधिक्रम सेवन करना चाहिये। कुब्ज पुरुषको वातनाशक स्नेह व मांसरस तथा दशमूलका सेवन कराकर अच्छा करना चाहिये। तथा पुराने व बढे हुए कुब्जत्वकी चिकित्सा न करनी चाहिये। तूनी तथा प्रतितूनीमें कुछ गरम जलके साथ पिप्पल्यादिगणका चूर्ण पीना चाहिये। अथवा स्नेहलवण अथवा घीके साथ भुनी हींग व लवण खाना चाहिये। पेटमें अफारा होनेपर लंघन कराना, हाथ गरम कर पेटपर फिराना तथा फलवर्ति (जिससे दस्त साफ हो) धारण कराना चाहिये। दीपन, पाचन औषधियोंका तथा शोधनबास्तिका भी प्रयोग करना चाहिये। प्रत्याध्मानमें वमन, लंघन तथा दीपन औषध सेवन करना चाहिये। प्रत्यष्ठीला तथा अष्ठीलिकामें अन्तर्विद्रधि व गुल्मके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३४–३८ ॥–

गृध्रसीचिकित्सा।

दशमूलीबलारास्नागुडूचीविश्वभेषजम् ॥ ३९ ॥
पिबेदेरण्डतैलेन गृध्रसीखञ्जपंगुषु।
शेफालिकादलैः क्वाथो मृद्वग्निपरिसाधितः ॥ ४०॥
दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रं समुद्धरेत्।
पञ्चमूलकषायं तु रुबूतैलं त्रिवृद्घृतम्।
त्रिवृतैवाथवा युक्तं गृध्रसीगुल्मशूलनुत् ॥ ४१ ॥
तैलं घृतं वार्द्रकमातुलुङ्गयो रसं सचुक्रं सगुडं पिबेद्वा।
कट्यूरुपृष्ठत्रिकगुल्मशूलगृध्रस्युदावर्तहरः प्रदिष्टः ४२
तैलमेरण्डजं वापि गोमूत्रेण पिबेन्नरः।
मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ ४३ ॥
गोमूत्रैरण्डतैलाभ्यां कृष्णा पीता सुचूर्णिता।
दीर्घकालोत्थितां हन्ति गृध्रसीं कफवातजाम् ॥४४॥
अश्नाति यो नरो नित्यमेरण्डतैलसाधितम्।
वार्ताकं गृध्रसीखिन्नः पूर्वामाप्नोत्यसौ गतिम् ॥ ४५
पिष्ट्वैरण्डफलं क्षीरे सविश्वं वा फलं रुबोः।
पायसो भक्षितः सिद्धो गृध्रसीकटिशूलनुत् ॥४६ ॥

दशमूल, खरेटी, रासन, गुर्च, सोंठका चूर्ण एरण्डतैलके साथ गृध्रसी, खञ्ज तथा पंगुतामें पीना चाहिये। अथवा सम्भालूकी पत्तीका क्वाथ मन्द आंचपर पकाकर पीना चाहिये। इससे शीघ्रही गृध्रसीरोग नष्ट होता है। अथवा पञ्चमूलका क्वाथ, एरण्डतैलके साथ अथवा निसोथ व घीके साथ अथवा केवल निसोथके साथ पीना चाहिये। इससे गृध्रसी, गुल्म, व शूल नष्ट होता है। इसी प्रकार तैल अथवा घी अदरख व बिजौरे निम्बूके रस तथा चूकाके साथ अथवा गुड़के साथ पीनेसे कमर, ऊरू, पीठ, त्रिक तथा गुल्मका शूल, गृध्रसी व उदावर्त रोग नष्ट होते हैं। अथवा एरण्ड़का तैल गोमूत्रके साथ एक मासतक पीनेसे गृध्रसी तथा ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होता है। छोटी पीपलका चूर्ण, गोमूत्र व एरण्डतैलके साथ पीनेसे कफवातज पुरानी गृध्रसी नष्ट होती है। जो मनुष्य एरण्डतैलमें भूने बैंगन प्रतिदेन खाता है। उसका गृध्रसी रोग नष्ट होता तथा पूर्वके समान शरीर होता है। एरण्ड़के केवल बीज अथवा सोंठ सहित पीस दूधमें मिलाकर खीर बना खानेसे गृध्रसी तथा कमरका दर्द नष्ट होता है ॥ ३९–४६ ॥

रास्नागुग्गुलुः।

रास्नायास्तु पलं चैकं कर्षान्पञ्च च गुग्गुलोः।
सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा गृध्रसीहराम् ॥४७॥

रासन ४ तोला, गुग्गुलु २० तोला दोनों एकमें मिला घीके साथ गोली बनाकर खानेसे गृध्रसी रोग नष्ट होता है ॥ ४७ ॥

गृध्रस्या विशेषचिकित्सा।

गृध्रस्यार्तं नरं सम्यक्पाचनाद्यैर्विशोधितम्।
ज्ञात्वा नरं प्रदीप्ताग्निं वस्तिभिः समुपाचरेत् ॥४८॥
नादौ वस्तिविधिं कुर्याद्यावदूर्ध्वं न शुध्यति।
स्नेहो निरर्थकस्तस्य भस्मन्येवाहुतिर्यथा ॥ ४९ ॥
गृध्रास्यार्तस्य जंघायाः स्नेहस्वेदे कृते भृशम्।
पद्भ्यां निर्मर्दितायाश्च सूक्ष्ममार्गेण गृध्रसीम् ॥५०॥
अवतार्याङ्गुलौ सम्यक्कनिष्ठायां शनैः शनैः।
ज्ञात्वा समुन्नतं ग्रंथिं कण्डरायां व्यवस्थितम् ॥५१॥
तं शस्त्रेण विदार्याशु प्रवालाङ्कुरसन्निभम्।
समुद्धृत्याग्निना दग्ध्वा लिम्पेद्यष्ट्याह्वचन्दनैः ॥५२
विध्येच्छिरामिंद्रवस्तेरधस्ताच्चतुरङ्गुले।
यदि नोपशमं गच्छेद्दहेत्पादकनिष्ठिकाम् ॥ ५३ ॥

कोलादिप्रदेहः ।

कोलं कुलत्थं सुरदारुरास्ना-
माषा उमातिलफलानि कुष्टम् ।
वचाशताह्वे यवचूर्णमम्ल-
मुष्णानि वातामयिनां प्रदेहः ॥ ८० ॥
आनूपवेशवारोष्णप्रदेहो वातनाशनः ।

बेर, कुलथी, देवदारु, रासन, उड़द, अलसी तथा तिल आदि तैलद्रव्य, कूठ, वच, सौंफ, सोवा, यवचूर्ण, कांजी सबको गरम कर वातरोगवालोंके लेप करना चाहिये । अथवा आनूपमांसके वेशवारका गरम गरम लेप करना चाहिये ॥ ८० ॥

वेशवारः ।

निरस्थि पिशितं पिष्टं स्विन्नं गुडघृतान्वितम् ॥८१॥
कृष्णामरिचसंयुक्तं वेशवार इति स्मृतम् ।

हड्डी रहित मांसको पीस पकाकर गुड़, घी, मिर्च, व पीपल मिलानेसे "वेशवार" बनता है ॥ ८१ ॥–

शाल्वणभेदः ।

काकोल्यादिः स वातघ्नः सर्वाम्लद्रव्यसंयुतः॥८२॥
सानूपमांसः सुस्विन्नः सर्वस्नेहसमन्वितः ।
सुखोष्णः स्पष्टलवणः शाल्वणः परिकीर्तितः ॥८३॥
तेनोपनाहं कुर्वीत सर्वदा वातरोगिणाम् ।
वातघ्नो भद्रदार्वादिः काकोल्यादिस्तु सौश्रुतः ८४
मांसेनात्रौषधं तुल्यं यावताम्लेन चाम्लता ।
पट्वी स्यात्स्वेदनार्थं च काञ्जिकाद्यम्लमिष्यते॥८५
चतुःस्नेहोऽत्र तावान्स्यात्सुस्विन्नत्वं यतो भवेत् ।
समस्तं वर्गमर्धं वा यथालाभमथापि वा ॥ ८६ ॥
प्रयुञ्जीतेति वचनं सर्वत्र गणकर्मणि ।

काकोल्यादिगण, वातघ्न भद्रदार्वादिगण तथा अम्लद्रव्य, काञ्जी, आनूपमांस चारों स्नेहोंमें सेंक कुछ नमक मिलाकर गरम गरम उपनाहन (पुल्टिस) करना चाहिये । इसमें वातघ्न गण देवदार्वादिगण, काकोल्यादिगण, सुश्रुतोक्त इनके चूर्णके समान मांस तथा जितनेसे खट्टा हो जावे, उतना काञ्जी आदि खट्टा द्रव्य छोड़ना चाहिये । तथा इसको बांधकर ऊपरसे पट्टी बांधनी चाहिये । स्नेह चारों मिलाकर इतने ही छोड़ने चाहियें जिससे अच्छी तरह पक जावे । इसमें समस्त अथवा आधे अथवा यथालाभ द्रव्य मिलाने चाहियें । यही नियम सब गणोंमें समझना चाहिये ॥ ८२–८६ ॥–

१ काकोल्यादिगण, तथा वातघ्न भद्रदार्वादिगण यहां सुश्रुतोक्त लेना चाहिये । उनके पाठ इस प्रकार हैं । " काकोल्यौ मधुकामेदे जीवकर्षभकौ सहे । ऋद्धिर्वृद्धिस्तुगाक्षीरी पुण्डरीकं सपद्मकम् ॥ जीवन्ती साम्रता शृङ्गी मृद्वीका चेति कुत्रचित् । काकोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशनः ॥ " इति काकोल्यादिः । " भद्रदारु निशे भार्ङ्गी वरुणो मेषशृङ्गिका । जटाक्षिण्टी चार्तगलो वरा गोक्षुरतण्डुलाः ॥ अर्को श्वदंष्ट्रा गणिका धत्तूरश्चाश्मभेदकः । बरी स्थिरा पाटला श्वर्षपोभूर्तृकुको यवः ॥ भद्रदार्वादिरित्येष गणो वातविकारनुत् ॥ "

अश्वगन्धाघृतम् ।

अश्वगन्धाकषाये च कल्के क्षीरचतुर्गुणम् ॥ ८७ ॥
घृतं पक्वं तु वातघ्नं वृष्यं मांसविवर्धनम् ।

असगन्धके काढ़े तथा कल्कमें चतुर्गुण दूधके साथ सिद्ध हुआ घृत वातनाशक, वाजीकर तथा मांसवर्द्धक होता है॥८७॥–

दशमूलघृतम् ।

दशमूलस्य निर्यूहे जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ ८८ ॥
क्षीरेण च घृतं पक्वं तर्पणं पवनार्तिनुत् ।

२ प्रस्थ घी, २ प्रस्थ दूध, ६ प्रस्थ दशमूलका क्वाथ तथा जीवनीय गणकी औषधियां प्रत्येक ४ तोला छोडकर सिद्ध किया घृत तृप्तिकारक तथा वातनाशक होता है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

आजघृतम् ।

आजं चर्मविनिर्मुक्तं त्यक्तशृङ्गखुरादिकम् ।
पञ्चमूलीद्वयं चैव जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ९० ॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
जीवनीयैः सयष्ट्याह्वैः क्षीरं चैव शतावरीम् ॥ ९१
छागलाद्यमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ।
अर्दिते कर्णशूले च बाधिर्ये मूकमिन्मिने ॥ ९२ ॥
जडगद्गदपंगूनां खञ्जे गृध्रसिकुब्जयोः ।
अपतानेऽपतन्त्रे च सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ ९३ ॥
द्रोणे द्रव्यतुलाश्रुत्या स्याच्छागदशमूलयोः ।
पृथक् तुलार्धं यष्ट्याह्वद्वयं देयं द्विधोक्तितः ॥ ९४॥

चर्म, सींग, तथा खुर आदिसे रहित बकरेका मांस २॥ सेर तथा दशमूल मिलित २॥ सेर २५ सेर ४८ तो० जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश रहनेपर उतार छानकर १ प्रस्थ घी तथा जीवनीय गणकी औषधियां व मौरेठी व शतावरका कल्क तथा घीके बराबर दूध मिलाकर पकाना चाहिये । यह " छागलादि घृत " समस्त वातरोग यथा–अर्दित, कर्णशूल, बाधिर्य, मूकता, मिन्मिनापन, जड़ता, गद्गदवाणी तथा पंगुता, खञ्ज, गृध्रसी, कुब्जता, अपतानक व अपतन्त्रकको नष्ट करता है । १ द्रोण जलमें १ तुला क्वाथ्य छोड़ना चाहिये, अतएव मांस व दशमूल दोनों आधा तुला पृथक् पृथक मिलानेसे १ तुला

हुआ । मौरेठी दोनों छोड़ना चाहिये । क्योंकि दो मौरेठीकी जातियां हैं ॥ ९०-९४ ॥

एलादितैलम् ।

एलामुरासरलशैलजदारुकौन्ती-
चण्डाशटीनलदचम्पकहेमपुष्पम् ।
स्थौणेयगन्धरसपूतिदलामृणाल-
श्रीवासकुन्दुरुनखाम्बुवराङ्गकुष्ठम् ॥ ९५ ॥
कालीयकं जलदकर्कटचन्दनश्री-
जात्याः फलं सविकसं सहकुंकुमं च ।
स्पृक्कातुरुष्कलघु लाभतया विनीय
तैलं बलाकथनदुग्धयुतं च दध्ना ॥ ९६ ॥
साधं पचेत्तु हितमेतदुदाहरन्ति
वातामयेषु बलवर्णवपुःप्रकारि ॥

छोटी इलायची, मुरामांसी, सरल (देवदारुविशेष) भूरिछरीला, देवदारु, सम्भालूके बीज, चोरक, कचूर, जटामांसी, चम्पा, नागकेशर, थुनेर बोल, खट्टाशी, तेजपात, कमलकी डण्डी, गन्धाविरोजा, तार्पीन, नख, सुगन्धवाला, दालचीनी, कूठ, तगर, नागरमोथा, काकड़ाशिंगी, सफेद चन्दन, जायफल, मजीठ, केशर, चतुर्गुण खरेटीका क्वाथ तथा उतना दूध व उतना ही दही मिलाकर पकाना चाहिये । यह तैल वातरोगोंको नष्ट करता तथा बल, वर्ण व शरीरको उत्तम बनाता है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥-.

बलाशैरीयकतैले ।

बलानिष्क्वाथकल्काभ्यां तैलं पक्कं पयोऽन्वितम् ।
सर्ववातविकारघ्नमेवं शैरीयपाचितम् ॥ ९७ ॥

बलाके क्वाथ व कल्क अथवा कटसैलाके क्वाथ व कल्कसे सिद्ध तैल समस्त वातरोगोंको नष्ट करता है । इसमें तैलके समान दूध भी छोड़ना चाहिये ॥ ९७ ॥

महाबलातैलम् ।

बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च ।
यवकोलकुलत्थानां क्वाथस्य पयसस्तथा ॥ ९८ ॥
अष्टावष्टौ शुभा भागास्तैलादेकस्तदेकतः ।
पचेदावाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम् ॥ ९९ ॥
तथागुरुं सर्जरसं सरलं देवदारु च ।
माञ्जिष्ठां चन्दनं कुष्ठमेलां कालानुशारिवाम् ॥१००
मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं शारिवां वचाम् ।
शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ १०१ ॥
तत्साधु सिद्धं सौवर्णे राजते मृण्मयेऽपि वा ।
प्रक्षिप्य कलशे सम्यक्सुनिगुप्तं निधापयेत् ॥१०२॥
बलतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ।
यथाबलमितो मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ॥ १०३॥
या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ।
क्षीणवाते मर्महतेऽभिहते मथितेऽथवा ॥ १०४ ॥
भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैवोपयोजयेत् ।
सर्वानाक्षेपकादींश्च वातव्याधीन्व्यपोहति ॥१०५॥
हिक्काकासमधीमन्थं गुल्मश्वासं सुदुस्तरम् ।
षण्मासानुपयुज्यैतदन्त्रवृद्धिमपोहति ॥ १०६ ॥
प्रत्यग्रधातुः पुरुषो भवेच्च स्थिरयौवनः ।
एतद्धि राज्ञा कर्तव्यं राजमात्राश्च ये नराः ॥१०७॥
सुखिनः सुकुमाराश्च बलिनश्चापि ये नराः ।

खरेटीकी जड़का क्वाथ, दशमूलका क्वाथ, यव, बेर, कुलथीका क्वाथ तथा दूध प्रत्येक ८ भाग, तिलतैल १ भाग तथा जीवकादि मधुर गणकी औषधियाँ व सेंधानमक, अगर, राल, सरल, देवदारु, मजीठ, चन्दन, कूठ, इलायची, काली शारिवा, जटामांसी, छरीला, तेजपात, तगर, शारिवा, वच, शतावरी, असगन्ध, सौंफ, पुनर्नवाकी जड़ सबका कल्क, तैलसे चतुर्थांश मिलाकर सिद्ध किया तैल सोने, चांदी अथवा मिट्टीके वर्तनमें रखकर समयपर प्रयोग करना चाहिये । यह वातरोगोंको नष्ट करनेवाला "बलातैल" है । इसकी मात्रा बलके अनुसार सूतिका स्त्रीको देना चाहिये । जो स्त्री गर्भकी इच्छा करती है अथवा जो पुरुष क्षीण हो गया है तथा क्षीणतासे बढ़े हुए वायु तथा मर्माभिघात अथवा कहीं आभिघात या मथित हो, टूट गया हो अथवा थकावट हो इनमें इसका प्रयोग करना चाहिये । आक्षेपकादि समस्त वातरोगोंको नष्ट करता तथा हिक्का, कास, अधिमन्थ, गुल्म, श्वासको नष्ट करता है । इसके ६ मासतक प्रयोग करनेसे अन्त्रवृद्धि नष्ट होती है, नवीन धातु बनते हैं, यौवन स्थिर होता है । यह राजाओं, धनिकों, सुखी पुरुषों, सुकुमार तथा बलवानोंके लिये बनाना चाहिये ॥ ९८-१०७ ॥

नारायणतैलम् ।

बिल्वाग्निमन्थश्योनाकपाटलापारिभद्रकाः ।
प्रसारण्यश्वगन्धा च बृहती कण्टकारिका ॥१०८॥
बला चातिबला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा ।
एषां दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत्॥१०९॥

१-इसके आगे नवीन पुस्तकोंमें विष्णुतैल नामक एक तैल लिखा है । पर प्राचीन प्रतियोंमें न होनेके कारण उसे यहां न लिखकर प्रकरणके अन्तमें लिखा है ॥

पादशेषं परिस्राव्य तैलपात्रं प्रदापयेत् ।
शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वचा ॥ ११० ॥
चन्दनं तगरं कुष्ठमेला पर्णीचतुष्टयम् ।
रास्ना तुरगगन्धा च सैन्धवं सपुनर्नवम् ॥१११॥
एषां द्विपलिकान्भागान्पेषयित्वा विनिक्षिपेत् ।
शतावरीरसं चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ॥ ११२ ॥
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
पाने वस्तौ तथाभ्यङ्गे भोज्ये चैव प्रशस्यते ॥११३॥
अश्वो वा वातसम्भग्नो गजो वा यदि वा नरः ।
पङ्गुलः पीठसर्पी च तैलेनानेन सिध्यति ॥११४॥
अधोभागे च ये वाताः शिरोमध्यगताश्च ये ।
दन्तशूले हनुस्तम्भे मन्यास्तम्भे गलग्रहे ॥ ११५ ॥
यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विह्वला ।
क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा ज्वरक्षीणाश्च ये नराः ११६॥
बधिरा लल्लजिह्वाश्च मन्दमेधस एव च ।
अल्पप्रजा च या नारी या च गर्भं न विन्दति ११७
वातार्तौ वृषणौ येषामन्त्रवृद्धिश्च दारुणा ।
एतत्तैलवरं तेषां नाम्ना नारायणं स्मृतम् ॥ ११८ ॥
तगरं नतमत्र स्यादभावे शीतली जटा ।

बेलकी छाल या गूदा, अरणी, सोनापाठा, पाढ़ल, नीम या फरहद, गन्धप्रसारणी, असगन्ध, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, खरेटी, कंघी, गोखुरू, पुनर्नवा प्रत्येक आधा सेर १०२ सेर ३२ तोला जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश रहनेपर उतार छानकर ६ सेर ३२ तो० तिलतैल तथा सौंफ, देवदारु, जटामांसी, छरीला, वच, चन्दन, तगर, कूठ, इलायची, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृष्ठिपर्णी, रासन, असगन्ध, सेंधानमक, पुनर्नवा प्रत्येक ८ तोलाका कल्क तथा शतावरीका रस ६ सेर ३२ तोला और गाय अथवा बकरीका दूध २५ सेर ४८ तोला मिलाकर पकाना चाहिये । यह तेल पीने वस्ति देने तथा मालिश व भोजनके साथ देनेके लिये हितकर है । वातसे पीड़ित घोड़ा, हाथी अथवा मनुष्य इससे सभी सुखी होते हैं । इससे पंगु तथा लकड़ियों पैरोंके सहारे घसीटकर चलनेवाला भी अच्छा होता है । जो वातरोग अधोभागमें तथा जो शिरमें होते हैं, वे नष्ट होते हैं । दन्तशूल, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, गलग्रह इससे अच्छे होते हैं । जिसका एक अंग सूख रहा है अथवा जिसकी गति ठीक नहीं है जिसकी इन्द्रियां शिथिल, वीर्य नष्ट तथा जो ज्वरसे क्षीण हैं, जो बहिरे, जिह्वाशक्ति रहित, तथा मन्दबुद्धिवाले हैं, जिनके संतान कम होती अथवा होती ही नहीं, जिनके अण्डकोष वायुसे पीड़ित कठिन अन्त्रवृद्धि है, उनके लिये यह उत्तम "नारायण" तैल लिखा है । तगर न मिलनेपर शीतली जटा (शीतकुंभी नामक जलजवृक्ष) छोड़नी चाहिये ॥ १०८-११८ ॥-

महानारायणतैलम् ।

शतावरी चांशुमती पृश्निपर्णी शटी वरा ।
एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः पूतिकस्य च ॥११९॥
गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च ।
एषां दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥१२०॥
पादावशेषे पूते च गर्भं चैनं समावपेत् ।
पुनर्नवा वचा दारु शताह्वा चन्दनागरू ॥ १२१ ॥
शैलेयं तगरं कुष्ठमेला मांसी स्थिरा बला ।
अश्वाह्वा सैन्धवं रास्ना पलार्धानि च पेषयेत् ॥१२२॥
गव्याजपयसोः प्रस्थौ द्वौ द्वावत्र प्रदापयेत् ।
शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १२३ ॥
अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् ।
अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां नृणां तथा ॥१२४॥
तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्ववातनिवारणम् ।
आयुष्मांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत् १२५
गर्भमश्वतरी विन्देत्किं पुनर्मानुषी तथा ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च तथैवार्धावभेदकम् ॥ १२६ ॥
अपचीं गण्डमालां च वातरक्तं हनुग्रहम् ।
कामलां पाण्डुरोगं च ह्यश्मरीं चापि नाशयेत् १२७
तैलमेतद्भगवता विष्णुना परिकीर्तितम् ।
नारायणमिति ख्यातं वातान्तकरणं परम् ॥१२८॥

शतावर, शालपर्णी, पिठिवन, कचूर, त्रिफला, एरण्डकी जड़की छाल, छोटी बड़ी कटेरीकी जड़, पूतिकरञ्जकी जड़, नागबलाकी जड़, पियावासाकी जड़ प्रत्येक ४० तोला जल २५ सेर ४८ तोला छोड़कर पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर काथमें पुनर्नवा, वच, देवदारु, सौंफ, चन्दन, अगर, छरीला, तगर, कूठ, इलायची, जटामांसी, शालपर्णी, खरेटी, असगन्ध, सेंधानमक, रासन प्रत्येक २ तोलाका कल्क तथा गायका दूध २ प्रस्थ तथा बकरीका दूध २ प्रस्थ तथा बकरीका दूध २ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ तथा तिलतैल १ प्रस्थ छोड़कर पकाना चाहिये । यह तैल वातपीड़ित घोड़ों, हाथियों तथा मनुष्योंको लाभ पहुंचाता है । इसके पीनेसे आयु बढ़ती तथा शरीर दृढ़ होता है । खच्चरी भी गर्भ धारण करती है फिर स्त्रीके लिये तो क्या कहना । हृदयका दर्द, पार्श्वशूल, अर्धावभेद, अपची, गण्डमाला, वातरक्त, हनुग्रह, कामला,

---

१ "शीतली, शीतकुम्भी च शुक्लपुष्पा जलोद्भवा ।" इति रत्नमालायाम् ।

पाण्डुरोग तथा अश्मरीको नष्ट करता है । यह तैल साक्षात् भगवान् विष्णुका बनाया हुआ समस्त वातरोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ११९-१२८ ॥

अश्वगन्धातैलम् ।

शतं पक्त्वाश्वगन्धाया जलद्रोणेऽशशेषितम् ।
विस्राव्य विपचेत्तैलं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्॥१२९॥
कल्कैर्मृणालशालूकबिसकिञ्जल्कमालती ।-
पुष्पैर्ह्रीबेरमधुकशारिवापद्मकेशरैः ॥ १३० ॥
मेदापुनर्नवाद्राक्षामञ्जिष्ठाबृहतीद्वयैः ।
एलैलवालुत्रिफलामुस्तचन्दनपद्मकैः ॥ १३१ ॥
पक्वं रक्ताश्रयं वातं रक्तपित्तमसृग्दरम् ।
हन्यात्पुष्टिबलं कुर्यात्कृशानां मांसवर्धनम् ॥१३२॥
रेतोयोनिविकारघ्नं घ्राणशोषापकर्षणम् ।
षण्ढानपि वृषान्कुर्यात्पानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥१३३॥

असगन्ध ५ सेर जल १ द्रोणमें पकाना तथा चतुर्थांश रहनेपर उतार छान १ प्रस्थ तिलतैल, ४ प्रस्थ दूध तथा कमलकी डण्डी, कमलकी जड़, कमलके तन्तु तथा कमलका केशर, मालतीके फूल, सुगन्धवाला, मौरेठी, शारिवा, कमलके फूल, नागकेशर, मेदा, पुनर्नवा, मुनक्का, मजीठ, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, छोटी बड़ी इलायची, एलवालुक, त्रिफला, नागरमोथा, चन्दन, पद्माख, प्रत्येकका मिला हुआ कल्क तैलसे चतुर्थांश छोड़कर पकाना चाहिये । यह तैल रक्ताश्रित वात, रक्तपित्त, रक्तप्रदरको नष्ट करता, पुष्टि तथा बल बढ़ाता और कृश पुरुषोंके मांसको बढ़ाता, रज व वीर्यके दोषोंको नष्ट करता, नाकका सूखना नष्ट करता तथा नपुंसकोंको भी पीने, मालिश तथा अनुवासन वस्तिसे पुरुषत्व प्रदान करता है॥१२९-१३३॥

मूलकाद्यं तैलम् ।

मूलकस्वरसं तैलं क्षीरदध्यम्लकाञ्जिकम् ।
तुल्यं विपाचयेत्कल्कैर्बलाचित्रकसैन्धवैः ॥ १३४॥
पिप्पल्यतिविषारास्नाचविकागुरुचित्रकैः ।
भल्लातकवचाकुष्ठश्वदंष्ट्राविश्वभेषजैः ॥ १३५ ॥
पुष्कराह्वशटीबिल्वशताह्वनतदारुभिः ।
तत्सिद्धं पीतमत्युग्रान्हन्ति वातात्मकान्गदान् १३६

मूलीका स्वरस, तिलतैल, खट्टा दही, काञ्जी प्रत्येक समान भाग तथा खरेटी, चीतकी जड़, सेंधानमक, छोटी पीपल, अतीस, रासन, चव्य, अगर, चीतकी जड़, भिलावां, वच, कूठ, गोखुरू, सोंठ, पोहकरमूल, कचूर, बेलका गूदा, सौंफ, तगर, देवदारुका मिलित कल्क तैलसे चतुर्थांश छोड़कर पकाना चाहिये । यह तैल पीनेसे उग्रवातात्मक रोगोंको नष्ट करता है ॥ १३४-१३६ ॥

रसोनतैलम् ।

रसोनकल्कस्वरसेन पक्वं
तैलं पिबेद्यस्त्वनिलामयार्तः ।
तस्याशु नश्यन्ति हि वातरोगा
ग्रन्था विशाला इव दुर्गृहीताः ॥ १३७ ॥

जो वातव्याधिसे पीड़ित पुरुष लहसनके कल्क व स्वरससे पकाया हुआ तैल पीता है, उसके वातरोग इस प्रकार शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं जैसे दुष्टके हाथमें पड़े हुए अथवा ज्ञानपूर्वक न पढ़े गये विशाल ग्रन्थ ॥ १३७ ॥

केतक्याद्यं तैलम् ।

केतकिनागबलातिबलानां
यद्बहुलेन रसेन[1] विपक्वम् ।
तैलमनल्पतुषोदकसिद्धं
मारुतमस्थिगतं विनिहन्ति ॥ १३८ ॥
अनल्पवचनात्तत्र तुल्यं क्वाथतुषोदके ।
अकल्कोऽपि भवेत्स्नेहो यः साध्यः केवले द्रवे १३९

केवड़ा, गङ्गेरन व कंघीके क्वाथ तथा काञ्जीमें सिद्ध किया गया तैल अस्थिगत वायुको शान्त करता है । इसमें प्रत्येक द्रव्यका क्वाथ तथा तुषोदक (काञ्जी) तैलके बराबर छोड़ना चाहिये । कल्कके विना भी स्नेह सिद्ध होता है, जो केवल द्रवमें सिद्ध किया जाता है ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

सैन्धवाद्यं तैलम् ।

द्वे पले सैन्धवात्पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकचित्रकात् ।
द्वे द्वे भल्लातकास्थिनी विंशतिर्द्वे तथाढके ॥ १४० ॥
आरनालात्पचेत्प्रस्थं तैलमेतैरपत्यदम् ।
गृध्रस्यूरुग्रहार्शोऽर्तिसर्ववातविकारनुत् ॥ १४१ ॥

सेंधानमक २ पल, सोंठ ५ पल, पिपरामूल २ पल, चीतकी जड़ २ पल, भिलावांकी गुठली २० गिनी हुई, काञ्जी २ आढक तथा तैल १ प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये । यह तैल सन्तानदायक तथा गृध्रसी, ऊरुग्रह, अर्श और वातरोगोंको नष्ट करता है ॥ १४० ॥ १४१ ॥

---

१ इसमें कल्क अधिक है, अतः " द्विगुणं तद् द्रवार्द्रयोः " इस परिभाषाको लगाकर द्विगुण तैल अर्थात् ११८ तोला और द्विगुण काञ्जी अर्थात् १२ सेर ६४ तोला छोड़ना चाहिये ।

माससैन्धवतैलम् ।

तैलं सङ्कुचितेऽभ्यंगो माषसैन्धवसाधितम् ।
बाहौ शीर्षगते नस्यं पानं चोत्तरभाक्तिकम् ॥
क्वाथेऽत्र माषनिष्पाद्यः सैन्धवं कल्कमेव च १४२

उड़दका क्वाथ तथा सेंधानमकका कल्क छोड़कर सिद्ध किया तैल संकुचित अंगोंमें मालिश करनेके लिये तथा बाहु वा शिरोगत वायुमें नस्य तथा भोजनके साथ पिलाना हितकर होता है ॥ १४२ ॥

माषादितैलम् ।

माषात्मगुप्तातिविषोरुबूक-
रास्नाशताह्वालवणैः सुपिष्टैः ।
चतुर्गुणे माषबलाकषाये
तैलं कृतं हन्ति च पक्षवातम् ॥ १४३ ॥

उड़द तथा खरेटीका क्वाथ तथा उड़द, कौंच, अतीस, एरण्ड, रासन, सौंफ सेंधानमकका कल्क छोड़कर सिद्ध किया गया तैल पक्षाघातको नष्ट करता है ॥ १४३ ॥

द्वितीयं माषतैलम् ।

माषप्रस्थं समावाप्य पचेत्सम्यग्जलाढके ।
पादशेषे रसे तस्मिन्क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ १४४ ॥
प्रस्थं च तिलतैलस्य कल्कं दत्त्वाक्षसम्मितम् ।
जीवनीयानि यान्यष्टौ शतपुष्पां ससैन्धवाम् १४५
रास्नात्मगुप्तामधुकं बलाव्योषं त्रिकण्टकम् ।
पक्षघातेऽर्दिते वाते कर्णशूले सुदारुणे ॥ १४६ ॥
मन्दश्रुतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे ।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे विश्वाच्यामवबाहुके ॥१४७॥
शस्तं कलायखञ्जे च पानाभ्यञ्जनबस्तिभिः ।
माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ १४८ ॥

१ प्रस्थ उड़द १ आढ़क जलमें पकाना, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान लेना चाहिये, फिर इसमें ४ प्रस्थ दूध, तैल १ प्रस्थ तथा जीवनीय गणकी औषधियां तथा सौंफ, सेंधानमक, रासन, कौंचके बीज, मौरेठी, खरेटी, त्रिकटु, गोखरू प्रत्येक १ तोलाका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये। यह तैल पक्षाघात, अर्दित, कर्णशूल, कम सुनाई पड़ना या न सुनाई पड़ना, त्रिदोषज तिमिररोग, हस्त तथा शिरके कम्प, विश्वाची, अवबाहुक तथा कलायखञ्जको पीने, मालिश तथा पिचकारी लगानेसे नष्ट करता है। तथा जत्रुके ऊपर के समस्त रोगोंको नष्ट करता है ॥ १४४-१४८ ॥

तृतीयं माषतैलम् ।

माषातसीयवकुरण्टककण्टकारी-
गोकण्टटुण्टुकजटाकपिकच्छुतोयैः ।
कार्पासकास्थिशणबीजकुलत्थकोल-
क्वाथेन बस्तपिशितस्य रसेन चापि ॥१४९॥
शुण्ठ्या समागधिकया शतपुष्पया च
सैरण्डमूलसपुनर्नवया सरण्या ।
रास्नाबलामृतलताकटुकैर्विपक्वं
माषाख्यमेतदवबाहुहरं च तैलम् ॥ १५० ॥
अर्धाङ्गशोषमपतानकमाढ्यवात-
माक्षेपकं सभुजकम्पशिरःप्रकम्पम् ।
नस्येन बस्तिविधिना परिषेचनेन
हन्यात्कटीजघनजानुरुजश्च सर्वाः ॥१५१॥

उड़द, अलसी, यव, पियावांसा, भटकटैया, गोखरू, सोनापाठेकी जड़की छाल तथा कौंचके बीज व बिनौले, सनके बीज, कुलथी व बेरका क्वाथ तथा बकरेके मांस रस तथा सोंठ, छोटी पीपल, सौंफ, एरण्डकी जड़, पुनर्नवा, गन्धप्रसारणी, रासन, खरेटी, गुर्च, कुटकीका कल्क छोड़कर पकाये गये तैलको अभ्यङ्ग, नस्य, बस्तिकर्म तथा परिषेचनके द्वारा प्रयोग करनेसे अवबाहुक, अर्धाङ्गशोष, अपतानक, ऊरुस्तम्भ, आक्षेपक, भुजा, तथा शिरके कम्पनको दूर करता है। तथा कमर, जंघा व घुटनोंकी पीड़ाको नष्ट करता है ॥ १४९-१५१ ॥

चतुर्थं माषतैलम् ।

माषक्वाथे बलाक्वाथे रास्नाया दशमूलजे ।
यवकोलकुलत्थानां छागमांसभवे पृथक् ॥ १५२ ॥
प्रस्थे तैलस्य च प्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
रास्नात्मगुप्तासिन्धूत्थशताह्वैरण्डमुस्तकैः ॥ १५० ॥
जीवनीयैर्बलाव्योषैः पचेदक्षसमैर्भिषक् ।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाहुशोषेऽवबाहुके ॥ १५० ॥
बाधिर्ये कर्णशूले च कर्णनादे च दारुणे ।
विश्वाच्यामर्दिते कुब्जे गृध्रस्यामपतानके ॥ १५५॥
बस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावने च प्रयोजयेत् ।
माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ १५६ ॥
क्वाथप्रस्थाः षडेवात्र विभक्त्यन्तेन कीर्तिताः ।

उड़दका क्वाथ ६४ तोला, खरेटीका क्वाथ ६४ तोला, रासनका क्वाथ ६४ तोला, दशमूलका क्वाथ ६४ तो० यव, बेर व कुलथीका क्वाथ ६४ तोला तथा बकरेके मांसका क्वाथ

६४ तोला, तैल, ६४ तोला, दूध ३ सेर १६ तोला तथा रासन, कौंचके बीज, सेंधानमक सौंफ, एरण्डकी छाल, नागरमोथा, जीवनीयगणकी औषधियां खरेटी, तथा त्रिकटु प्रत्येक १ तोलाका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये । यह तैल बस्ति, अभ्यङ्ग, नस्य तथा पानसे हस्त व शिरके कम्प, बाहुशोष, अवबाहुक, बाधिर्य कर्णशूल, कर्णनाद, विश्वाची, अर्दित, कुब्ज, गृध्रसी, अपतानक तथा शिरके रोगोंको नष्ट करता है । द्रव द्रव्य अर्थात् क्वाथ तैल द्विगुण मात्रामें छोड़ना चाहिये ॥ १५२-१५६ ॥

पञ्चमं माषतैलम् ।

माषस्यार्धाढकं दत्त्वा तुलार्धं दशमूलतः ॥ १५७ ॥
पलानि छागमांसस्य त्रिंशद् द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।
पूतशीते कषाये च चतुर्थांशावतारिते ॥ १५८ ॥

प्रस्थं च तिलतैलस्य पयो दद्याच्चतुर्गुणम् ।
आत्मगुप्तोरुबूकश्च शताह्वा लवणत्रयम् ॥ १५९॥

जीवनीयानि मञ्जिष्ठा चव्यचित्रककट्फलम् ।
सव्योषं पिप्पलीमूलं रास्नामधुकसैन्धवम् ॥ १६०॥

देवदार्वमृता कुष्ठं वाजिगन्धा वचा शटी ।
एतैरक्षसमैः कल्कैः साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ १६१ ॥

पक्षाघातार्दिते वाते बाधिर्ये हनुसंग्रहे ।
कर्णनादे शिरःशूले तिमिरे च त्रिदोषजे ॥ १६२ ॥

पाणिपादशिरोग्रीवाभ्रमणे मन्दचङ्क्रमे ।
कलायखञ्जे पाङ्गुल्ये गृध्रस्यामवबाहुके ॥१६३ ॥
पाने बस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे ।
तैलमेतत्प्रशंसन्ति सर्ववातरुजापहम् ॥ १६४ ॥

उड़द १॥ सेर ८ तोला, दशमूल २॥ सेर, बकरेका मांस १॥ सेर, सब २५ सेर ४८ तोला जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहने पर उतार छान १ प्रस्थ तिल तैल, दूध ६ सेर ३२ तोला, कौंचके बीज, एरण्डकी छाल, सौंफ, तीनों नमक, जीवनीयगणकी औषधियां, मजीठ, चव्य, चीतकी जड़, कैफरा, त्रिकटु, पिपरामूल, रासन, मौरेठी, सेंधानमक, देवदारु, गुर्च, कूठ, असगन्ध, वच, कचूर, प्रत्येक १ तोलाका कल्क छोड़कर मन्द आंचपर पकाना चाहिये । इस तैलको पिलाने, बस्ति देने, मालिश नस्य, कान तथा नेत्रोंमें डालनेके लिये प्रयोग करना चाहिये । यह पक्षाघात, अर्दित, बाधिर्य, ठोढ़ीकी जकड़ाहट, कर्णनाद, शिरःशूल, तिमिर, हाथ, पैर, शिर, गर्दनके घूमने तथा पैरोंकी शक्ति कम हो जाने, कलायखञ्ज, पांगुल्य, गृध्रसी, और अवबाहुक-को ही क्या समस्त वातरोगोंको नष्ट करता है * ॥ ॥ १५७-१६४ ॥

षष्ठं महामाषतैलम् ।

द्विपञ्चमूलीं निष्काथ्य तैलात्षोडशभिर्गुणैः ।
माषाढकं साधयित्वा तन्निर्यूहं चतुर्गुणम् ॥ १६५॥
ग्राहयित्वा तु विपचेत्तैलप्रस्थं पयः समम् ।
कल्कार्थं च समावाप्य भिषग्द्रव्याणि बुद्धिमान् १६६
अश्वगन्धां शटीं दारु बलां रास्नां प्रसारणीम् ।
कुष्ठं परूषकं भार्ङ्गीं द्वे विदार्यौ पुनर्नवाम् ॥१६७॥
मातुलुङ्गफलाजाज्यौ रामठं शतपुष्पिकाम् ।
शतावरीं गोक्षुरकं पिप्पलीमूलचित्रकम् ॥ १६८ ॥
जीवनीयगणं सर्वं संहृत्यैव ससैन्धवम् ।
तत्साधु सिद्धं विज्ञाय माषतैलमिदं महत् ॥१६९॥
बस्त्यभ्यञ्जने पाननावनेषु प्रयोजयेत् ।
पक्षाघाते हनुस्तम्भे अर्दिते सापतन्त्रके ॥ १७० ॥
अवबाहुकविश्वाच्योः खञ्जपङ्गुलयोरपि ।
हनुमन्याग्रहे चैवमधिमन्थे च वातिके ॥ १७१ ॥
शुक्रक्षये कर्णनादे कर्णशूले च दारुणे ।
कलायखञ्जशमने भैषज्यमिदमादिशेत्॥ १७२ ॥
दशमूलाढकं द्रोणे निष्काथ्य पादिको भवेत् ।
काथश्चतुर्गुणस्तैलान्माषक्वाथेऽप्ययं विधिः ॥१७३॥

दशमूल ३ सेर १६ तो०, जल २५ सेर ४८ तोले में पकाकर क्वाथ ६ सेर ३२ तो०, उड़द ४ प्रस्थका क्वाथ ६ सेर ३२ तोला, तैल १२८ तोला, दूध १२८ तोला, असगन्ध, कचूर, देवदारु, खरेटी, रासन, गन्धप्रसारणी, कूठ, फालसा, भार्ङ्गी, विदारीकन्द, क्षीरविदारी, पुनर्नवा, बिजौरे निम्बूका फल, सफेद जीरा, भुनी हींग, सौंफ, शतावरी, गोखुरू, पिपरामूल, चीतकी जड़, जीवनीयगण, सेंधानमक सब समानभाग का कल्क छोड़कर तैल पकाना चाहिये । यह "महामाषतैल"-बस्ति, मालिश, पान तथा नस्यके लिये प्रयुक्त करना चाहिये । यह पक्षाघात, हनुस्तम्भ, अर्दित, अपतन्त्रक, अवबाहुक, विश्वाची,

---

* इसी तैलके अनन्तर त्रिशतीप्रसारिणी तैल दूसरी प्रतियोंमें लिखा है, पर माष तैलोंके मध्यमें प्रसारिणीतैल लिखना उचित नहीं समझा गया, किन्तु आगे त्रिशती-प्रसारिणी तैल दूसरा लिखेंगे । उसमें और इसमें पाठभेदके सिवाय कोई दूसरा अन्तर नहीं है । हां, इसमें गुण अधिक लिख दिये गये हैं उतने उसमें नहीं लिखे । पर तैल एक ही होनेसे गुणोंमें अन्तर नहीं हो सकता, अतः वहींपर इसका भी पाठ देखिये ॥

खञ्जता, पाङ्गुल्य, हनुग्रह, मन्याग्रह, वातिक अधिमन्थ, शुक्रक्षय, कर्णनाद, कर्णशूल तथा कलायखञ्जको शान्त करता है। ऊपर जो " षोडशभिर्गुणैः " है उसका अर्थ यह है कि तैलसे १६ गुण जल छोड़कर क्वाथ बनाना चाहिये ॥ १६५–१७३ ॥

मज्जस्नेहः ।

ग्राम्यानूपौदकानां तु भिन्नास्थीनि पचेज्जले ।
तं स्नेहं दशमूलस्य कषायेण पुनः पचेत् ॥ १७४ ॥
जीवकर्षभकास्फोताविदारीकपिकच्छुभिः ।
वातघ्नैर्जीवनीयैश्च कल्कैर्द्विक्षीरभागिकम् ॥१७५॥
तत्सिद्धं नावनाभ्यङ्गात्तथा पानानुवासनात् ।
शिरःपार्श्वास्थिकोष्ठस्थं प्रणुदत्याशु मारुतम्॥१७६॥
ये स्युः प्रक्षीणमज्जानः क्षीणशुक्रौजसश्च ये ।
बलपुष्टिकरं तेषामेतत्स्यादमृतोपमम् ॥ १७७ ॥

ग्राम्य, आनूप तथा औदक प्राणियोंकी हड्डियोंको चूर्ण कर जलमें पकाना चाहिये, जितना इसका स्नेह निकले उससे चतुर्गुण दशमूलक्वाथ तथा द्विगुण दूध तथा जीवक, ऋषभक, आस्फोता (विष्णुकान्ता या हापरमाली) विदारीकन्द, कौंचके बीज, वातघ्न (देवदार्वादि) तथा जीवनीयगणकी ओषधियोंका कल्क स्नेहसे चतुर्थांश छोड़कर पकाना चाहिये। यह स्नेह नस्य, अनुवासन, वस्ति, मालिश तथा पीनेसे शिर, पसली, हड्डी तथा कोष्ठगत वायुको नष्ट करता है, जिनके मज्जा, ओज तथा शुक्र क्षीण हो गये हैं, उनके लिये यह स्नेह अमृततुल्य बल तथा पुष्टि करनेवाला है ॥ १७४–१७७ ॥

महास्नेहः ।

प्रस्थःस्यात्त्रिफलायास्तु कुलत्थकुडवद्वयम् ।
कृष्णगन्धात्वगाढक्योः पृथक्पञ्चपलं भवेत्॥१७८॥
रास्नाचित्रकयोर्द्वे द्वे दशमूलं पलोन्मितम् ।
जलद्रोणे पचेत्पादशेषं प्रस्थोन्मितं पृथक् ॥ १७९॥
सुरारनालदध्यम्लसौवीरकतुषोदकम् ।
कोलदाडिमवृक्षाम्लरसं तैलं घृतं वसाम् ॥ १८० ॥
मज्जानं च पयश्चैव जीवनीयपलानि षट् ।
कल्कं दत्त्वा महास्नेहं सम्यगेनं विपाचयेत् ॥१८१
शिरामज्जास्थिगे वाते सर्वाङ्गैकाङ्गरोगिषु ।
वेपनाक्षेपशूलेषु तमभ्यङ्गे प्रदापयेत् ॥ १८२ ॥

त्रिफला ६४ तोला, कुलथी ३२ तोला, सहिंजनेकी छाल २० तोला, अरहर २० तोला, रासन ८ तोला, चीतकी जड़ ८ तोला, दशमूल प्रत्येक द्रव्य ४ तोला, जल १२ सेर ६४ तोला छोड़कर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकाथ अलग रखना चाहिये। उसी क्वाथमें शराब ६४ तोला, काञ्जी ६४ तोला, दहीका तोड़ ६४ तोला, सौवीरक तुषोदक, बेर, अनार तथा बिजौरे निम्बूका रस प्रत्येक द्रव ६४ तोला, तैल, घी, चर्बी, मज्जा तथा दूध प्रत्येक ६४ तोला तथा जीवनीयगणकी ओषधियां मिलित २४ तोलाका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये। यह महास्नेह मालिशके लिये शिरा, मज्जा तथा अस्थिगत वात, सर्वाङ्गरोग, एकाङ्गरोग, कम्प, आक्षेप तथा शूलमें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १७८–१८२ ॥

कुब्जप्रसारणीतैलम् ।

प्रसारणीशतं क्षुण्णं पचेत्तोयार्मणे शुभे ।
पादशिष्टे समं तैलं दधि दद्यात्सकाञ्जिकम् ॥ १८३
द्विगुणं च पयो दत्त्वा कल्कान्द्विपलिकांस्तथा ।
चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं वचाम् ॥१८४॥
शतपुष्पां देवदारु रास्नां वारणपिप्पलीम् ।
प्रसारण्याश्च मूलानि मांसीं भल्लातकानि च॥१८५॥
पचेन्मृद्वग्निना तैलं वातश्लेष्मामयापहम्(?) ।
अशीतिं नरनारीस्थान्वातरोगानपोहति ॥ १८६ ॥
कुब्जं स्तिमितपंगुत्वं गृध्रसीं खुडकार्दितम् ।
हनुपृष्ठशिरोग्रीवास्तम्भं वापि नियच्छति ॥ १८७॥

गन्धप्रसारणी ५ सेर जल १ द्रोणमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान क्वाथके समान तैल तथा उतना ही दही और उतना ही काञ्जी और तैलसे दूना दूध तथा चीतकी जड़, पिपरामूल, मौरेठी, सेंधानमक, वच, सौंफ, देवदारु, रासन, गजपीपल, गन्धप्रसारणीकी जड़, जटामांसी, भिलावां प्रत्येक ८ तोलाका कल्क छोड़कर मन्दाग्निसे पकाना चाहिये। यह तैल वातकफके रोगोंको जीतता तथा अस्सी प्रकारके पुरुष तथा स्त्रियोंके वातरोगों तथा कुब्जता, जकड़ाहट, पंगुता, गृध्रसी, वातकंटक, हनु, पृष्ठ, शिर व गर्दनकी जकड़ाहट इत्यादिको नष्ट करता है ॥ १८३–१८७ ॥

त्रिशतीप्रसारणीतैलम् ।

प्रसारण्यास्तुलामश्वगन्धाया दशमूलतः ।
तुलां तुलां पृथग्वारि द्रोणे पादांशशेषिते ॥१८८ ॥

---

१ सौवीर तथा तुषोदककी निर्माणविधि–" सौवीरस्तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषैः कृतः । गौधूमैरपि सौवीरमाचार्याः केचिदूचिरे " अर्थात् कच्चे या पक्व भूसीरहित यवोंको अष्टगुण जल पूरित घड़ेमें बन्द कर १५ दिनतक रख छानकर काममें लाना चाहिये। कुछ लोग गेहुओंसे भी सौवीरक बनाना कहते हैं। " तुषाम्बु संधितं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः । तुषोदकं तुषजलं तदेव परिकीर्तितम् ॥ " अथवा–"भृष्टान्माषतुषान्सिद्धान्यवांस्तु चूर्णसंयुतान् । आप्लुतानम्भसा तद्वज्जातं तच्च तुषोदकम् । तुषोदकं यवैरामैः सतुषैः शकलीकृतैः ॥"

तैलाढकं चतुःक्षीरं दधितुल्यं द्विकाञ्जिकम् ।
द्विपलैर्ग्रन्थिकक्षारप्रसारण्यक्षसैन्धवैः ॥ १८९ ॥
समञ्जिष्ठाग्निग्यष्ट्याह्वैः पलिकैर्जीवनीयकैः ।
शुण्ठ्याः पञ्च पलं दत्त्वा त्रिंशद्भल्लातकानि च १८९
पचेद्वस्त्यादिना वातं हन्ति सन्धिशिरास्थितम् ।
पुंस्त्वोत्साहस्मृतिप्रज्ञाबलवर्णाग्निवृद्धये ॥ १९१ ॥
प्रसारणीयं त्रिशती अक्षं सौवर्चलं त्विह ।

गंधप्रसारणी ५ सेर, असगंध ५ सेर, दशमूल ५ सेर प्रत्येक अलग अलग २५ सेर ४८ तोला जलमें मिला चतुर्थांश शेष क्काथ बनाना चाहिये, फिर क्काथमें तैल ६ सेर ३२ तोला, दूध २५ सेर ४८ तोला, दही ६ सेर ३२ तोला, काञ्जी १२ सेर ४८ तोला तथा पीपरामूल, यवाखार, गन्धप्रसारणी, सौवर्चलनमक, सेंधानमक, मजीठ, चीतकी जड़, मौरेठी प्रत्येक ८ तोला तथा जीवनीयगणकी प्रत्येक औषधियां ४ तोला, सोंठ २० तोला, भिलावां ३० गिनतीके छोड़कर पकाना चाहिये। यह तैल वस्ति आदिद्वारा सन्धि तथा शिराओंमें स्थित वायुको नष्ट करता है। पुरुषत्व, उत्साह, स्मृति, बुद्धि, बल, वर्ण तथा अग्निकी वृद्धि करता है। यह "त्रिशतीप्रसारणी" तैल है। इसमें "अक्ष" शब्दका अर्थ सौवर्चल नमक है ॥ १८८–१९१ ॥

सप्तशतीकं प्रसारणीतैलम् ।

समूलपत्रामुत्पाट्य शरत्काले प्रसारणीम् ॥१९२॥
शतं ग्राह्यं सहचराच्छतावर्याः शतं तथा ।
बलात्मगुप्ताश्वगन्धाकेतकीनां शतं शतम् ॥१९३ ॥
पचेच्चतुर्गुणे तोये द्रवैस्तैलाढकं भिषक् ।
मस्तु मांसरसं चुक्रं पयश्चाढकमाढकम् ॥१९४॥
दध्याढकसमायुक्तं पाचयेन्मृदुनाग्निना ।
द्रव्याणां च प्रदातव्या मात्रा चार्धपलांशिका ॥१९॥
तगरं मदनं कुष्ठं केशरं मुस्तकं त्वचम् ।
रास्ना सैन्धवपिप्पल्यौ मांसी मञ्जिष्ठयष्टिका १९६
तथा मेदा महामेदा जीवकर्षभकौ पुनः ।
शतपुष्पा व्याघ्रनखं शुण्ठी देवाह्वमेव च ॥१९७॥
काकोली क्षीरकाकोली वचा भल्लातकं तथा ।
पेषयित्वा समानेतान्साधनीया प्रसारणी ॥१९८॥
नातिपक्कं न हीनं च सिद्धं पूतं निधापयेत् ।
यत्र यत्र प्रदातव्या तन्मे निगदतः शृणु ॥१९९॥
कुब्जानामथ पङ्गूनां वामनानां तथैव च ।
यस्य शुष्यति चैकाङ्गं ये च भग्नास्थिसन्धयः॥२००
वातशोणितदुष्टानां वातोपहतचेतसाम् ।
स्त्रीपु प्रक्षीणशुक्राणां वाजीकरणमुत्तमम् ॥ २०१ ॥
वस्तौ पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रदापयेत् ।
प्रयुक्तं शमयत्याशु वातजान्विविधान्गदान् २०२॥

शरदृतुमें मूल पत्ते सहित उखाड़ी गयी प्रसारणी ५ सेर, पियावांसा (कटसैला) ५ सेर, शतावरी ५ सेर, खरेटी, कौंच, असगन्ध तथा केवड़ा प्रत्येकका पञ्चाङ्ग ५ सेर सबसे चतुर्गुण जल मिलाकर क्काथ बनाना चाहिये । चतुर्थांश रहनेपर उतार छानकर तैल ८ सेर ३२ तोला, दहीका तोड़ मांसरस, चूका तथा दूध प्रत्येक एक आढ़क तथा दही एक आढ़क मिला मृदु आंचसे पकाना चाहिये । तथा तगर, मैनफल, कूठ, नागकेशर, नागरमोथा, दालचीनी, रासन, सेंधानमक, छोटी पीपल, जटामांसी, मजीठ, मौरेठी, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, सौंफ, नख, सोंठ, देवदारु, काकोली, क्षीरकाकोली, वच, भिलावां प्रत्येक २ तोलाका कल्क छोड़कर मन्द आंचसे यह "प्रसारणीतैल" सिद्ध करना चाहिये । यह न जलने पावे न मृदु रहे अर्थात् मध्यपाक करना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर

---

१ यही तैल दूसरी प्रतियोंमें इस प्रकार पाठभेदसे लिखा है—" समूलपत्रशाखां च जातसारां प्रसारणीम् । कुट्टयित्वा पलशतं दशमूलशतं तथा ॥ अश्वगन्धापलशतं कटाहे समधिक्षिपेत् । वारिद्रोणे पृथक्पक्त्वा पादशेषावतारितम् ॥ कषायाः सममात्रास्तु तैलपात्रं प्रदापयेत् । दध्नस्तथाढकं दत्त्वा द्विगुणं चैव काञ्जिकम् ॥ चतुर्गुणेन पयसा जीवनीयैः पलोन्मितैः । शृङ्गवेरपलान्पञ्च त्रिंशद्भल्लातकानि च ॥ द्वे पले पिप्पलीमूलाच्चित्रकस्य पलद्वयम् । यवक्षारपले द्वे च मधुकस्य पलद्वयम् ॥ प्रसारणी पले द्वे च सैन्धवस्य पलद्वयम् । सौवर्चललवणे द्वे च मञ्जिष्ठायाः पलद्वयम् ॥ सर्वाण्येतानि संस्कृत्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । एतदभ्यञ्जनं श्रेष्ठं वस्तिकर्मनिरूहणे ॥ पाने नस्ये च दातव्यं न क्वचित्प्रतिहन्यते । अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव सर्वानेतान्व्यपोहति । गृध्रसीमस्थिभंगं च मन्दाग्नित्वमरोचकम् । अपस्मारमथोन्मादं विभ्रमं मन्दगामिताम् । त्वग्गताश्चैव ये वाताः शिरासन्धिगताश्च ये ॥ जानुसन्धिगताश्चैव पादपृष्ठगतास्तथा । अश्वो वाताच्च संभग्नो गजो वा यदि वा नरः॥प्रसारयति यस्माद्धि तस्मादेषा प्रसारणी।इन्द्रियाणां प्रजननी वृद्धानां च रसायनी ॥ एतेनान्धकवृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत् । प्रसारणीतैलमिदं बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ अपनयति वलीपलितमुत्पाटयति पक्षाघातम् । वातस्तम्भं सर्वाङ्गगतं वायुगुल्मं च नाशयति ॥ एतदुपसेवमानः प्रसन्नवर्णेन्द्रियो भवति ॥ "

इसकी निर्माणपद्धति उपरोक्त तैलसे भिन्न नहीं अर्थात् यह और वह तैल एक ही है । अतः उसीके अनुसार इसका भी अर्थ समझना । पर इसमें गुण अधिक लिखे गये हैं । उन्हें समझ लेना चाहिये ॥

उतार छानकर रखना चाहिये । इसे कुबड़े, पङ्गु तथा वामनोंको देना चाहिये, जिनका एकांग सूखता है, जिनकी अस्थियाँ तथा जोड़ टूट गये हैं, वातरक्त, वातोन्माद तथा क्षीणशुक्रवालोंको अत्यन्त हितकर है, वस्ति, पान मालिश, तथा नस्यमें इसका प्रयोग करना चाहिये । प्रयोग करनेसे यह वातज अनेक रोगोंको नष्ट करता है । (इन प्रसारणी तैलोंको यद्यपि एक ही बड़े पात्रमें पकाना लिखा है और उत्तम भी यही है, पर इतने बड़े पात्रोंका यदि प्रबंध न हो सके तो एक एक द्रवके साथ कई बारमें मंद आंचसे पका लेना चाहिये ॥ १९२–२०२ ॥

एकादशशतिकं प्रसारणीतैलम् ।

शाखामूलदलैः प्रसारणितुलाश्तिस्रः कुरण्टात्तुले
छिन्नायाश्च तुले तुले रुबुकतो रास्नाशिरीषात्तुलाम्
देवाह्वाच्च सकेतकाद् घटशते निष्क्वाथ्य कुम्भांशिके।
तोये तैलघटं तुषाम्बुकलशौ दत्त्वाढकं मस्तुनः२०३
शुक्ताच्छागरसादथेक्षुरसतः क्षीराच्च दत्त्वाढकं
स्पृक्काकर्कटजीवकाद्यर्षिकसाकाकोलिकाकच्छुरैः ।
सूक्ष्मैलाघनसारकुन्दसरलाकाश्मीरमांसीनखैः
कालीयोत्पलपद्मकाह्वयनिशाकक्कोलकग्रन्थिकैः२०४
चाम्पेयाभयचोचपूगकटुकाजातीफलाभीरुभि
श्रीवासामरदारुचन्दनवचाशैलेयसिन्धूद्भवैः
तैलाम्भोदकटम्भरात्रिनलिकावृश्चीरकच्चोरकैः
कस्तूरीदशमूलकेतकनतध्यामाश्वगन्धाम्बुभिः॥२०५
कौन्तीतार्क्ष्यजशङ्खकीफललघुश्यामाशताह्वामयै-
र्भल्लातत्रिफलाब्जकेशरमहाश्यामालवङ्गान्वितैः ।
सव्योषैस्त्रिफलैर्महीयसि पचेन्मन्देन पात्रेऽग्निना
पानाभ्यञ्जनवस्तिनस्यविधिना तन्मारुतं नाशयेत्॥
सर्वाङ्गार्धगतं तथावयवगं सन्ध्यस्थिमज्जान्वितं
श्लेष्मोत्थानथ पैत्तिकांश्च शमयेन्नानाविधानामयान्।
धातून्बृंहयति स्थिरं च कुरुते पुंसां नवं यौवनं
वृद्धस्यापि बलं करोति सुमहद्वन्ध्यासु गर्भप्रदम्२०७
पीत्वा तैलमिदं जरत्यपि सुतं सूतेऽमुना भूरुहाः
सिक्ताः शोषमुपागताश्च फलिनः स्निग्धा भवन्ति स्थिराः
भग्नाङ्गाः सुदृढा भवन्ति मनुजा गावो हयाः कुञ्जराः॥

गन्धप्रसारणीका पञ्चांग १५ सेर (३ तुला) पियावांसा १० सेर, गुर्च १० सेर, एरण्डका पञ्चांग १० सेर रासन व सिरसाकी छाल मिलाकर ५ सेर, देवदारु व केवड़ा मिलाकर ५ सेर, सब मिलाकर १०० द्रोण (आजकलकी तौलसे ६४ मन) जलमें मिलाकर पकाना चाहिये । क्वाथ पकते पकते जब १ द्रोण (२५ सेर ४८ तोला) रह जावे, तब उतार छानकर इसी क्वाथमें तैल १ द्रोण अर्थात् २५ सेर ४८ तोला, सतुष धान्यकी काञ्जी २ द्रोण दहीका तोड़ ६ सेर ३२ तोला, सिरका, बकरेका मांसरस, ईखका रस, दूध प्रत्येक ६ सेर ३२ तोला, मालतीके फूल, काकड़ाशिंगी, जीवकादिगणकी औषधियां, मजीठ, काकोली कौंचके बीज, छोटी इलायची, कपूर, कुन्दके फूल, सरल, कूठ या पोहकरमूल, जटामांसी, नख, तगर, नीलोफर, पद्माख, हल्दी, कंकोल, पिपरामूल, चम्पावती, खश, कलमी तज, सुपारी, लताकस्तूरी जायफल, शतावरी, गन्धविरोजा, देवदारु, चन्दन, वच, छरीला, सेंधानमक, शिलारस, नागरमोथा, प्रसारणीकी जड़, नाड़ी, पुनर्नवा, कचूर, कस्तूरी, दशमूल, केवड़ाके फूल, तगर, रोहिषघास, असगन्ध, सुगन्धवाला, सम्भालूके बीज, रसौंत, शाल, जायफल, अगर, निसोथ, सौंफ कूठ, भिलावां, त्रिफला, कमलका केशर, विधारा, लवङ्ग, त्रिकटु, त्रिफला, सबका कल्क मिलित तैलसे चतुर्थांश छोड़कर बड़े कड़ाहमें मन्द आंचसे पकाना चाहिये । यह तैल पान, अभ्यङ्ग, वस्ति तथा नस्यविधिसे वायुको नष्ट करता, सर्वाङ्गगत, अर्धाङ्गगत तथा सन्धि, अस्थि, मज्जागत वायु तथा कफ व पित्तके रोग नष्ट करता, धातुओंको बढ़ाता, नवीन यौवनको स्थायी करता, वृद्धको भी बलवान् बनाता, वन्ध्याको भी गर्भवती बनाता है । वृद्धा भी इस तैलको पीकर बालक उत्पन्न करे । इससे सींचनेसे सूखे वृक्ष भी फलयुक्त हो सकते हैं, भग्नांग मनुष्य, बैल, घोड़ा, हाथी इससे दृढांग और स्थिर होते हैं ॥ २०३–२०८ ॥

अष्टादशशतिकं प्रसारणीतैलम् ।

समूलदलशाखायाः प्रसारण्याः शतत्रयम् ।
शतमेकं शतावर्या अश्वगन्धाशतं तथा ॥ २०९ ॥
केतकीनां शतं चैकं दशमूलाच्छतं शतम् ।
शतं वाट्यालकस्यापि शतं सहचरस्य च॥ २१० ॥
जलद्रोणशतं दत्त्वा शतभागावशेषितम् ।
ततस्तेन कषायेण कषायद्विगुणेन च ॥ २११ ॥
सुव्यक्तेनारनालेन दधिमण्डाढकेन च ।
क्षीरशुक्तेक्षुनिर्यासच्छागमांसरसाढकैः ॥ २१२ ॥
तैलाद् द्रोणं समायुक्तं दृढे पात्रे निधापयेत् ।
द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्याम्यतः परम् ॥
भल्लातकं नतं शुण्ठी पिप्पली चित्रकं शटी ।
वचा स्पृक्का प्रसारण्याः पिप्पल्या मूलमेव च॥२१४
देवदारु शताह्वा च सूक्ष्मैला त्वक्च बालकम् ।
कुंकुमं मदमञ्जिष्ठा तुरुष्कं नखिकागुरु ॥ २१५ ॥
कर्पूरकुन्दुरुनिशालवङ्गध्यामचन्दनम् ।
कक्कोलं नलिका मुस्तं कालीयोत्पलपत्रकम् ॥२१६
शटीहरेणुशैलेयश्रीवासं च सकेतकम् ।
त्रिफला कच्छुराभीरुः सरला पद्मकेशरम् ॥२१७॥

प्रियंगूशीरनलदं जीवकाद्यं पुनर्नवा ।
दशमूल्यश्वगन्धे च नागपुष्पं रसाञ्जनम् ॥२१८॥
कटुकाजातिपूगानां फलानि शल्लकीरसम् ।
भागांस्त्रिपलिकान्दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ २१९
विस्तीर्णे सुदृढे पात्रे पाक्यैषा तु प्रसारणी ।
प्रयोगः षड्विधश्चात्र रोगार्तानां विधीयते ॥२२०॥
अभ्यङ्गात्त्वग्गतं हन्ति पानात्कोष्ठगतं तथा ।
भोजनात्सूक्ष्मनाडीस्थान्नस्यादूर्ध्वगतांस्तथा ॥२२१॥
पक्वाशयगते बस्तिर्निरूहः सार्वकायिके ।
एतद्धि वडवाश्वानां किशोराणां यथामृतम् ॥२२२॥
एतदेव मनुष्याणां कुञ्जराणां गवामपि ।
अनेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महाद्रुमाः ॥ २२३ ॥
सिक्ताः पुनः प्ररोहन्ति भवन्ति फलशाखिनः ।
वृद्धोऽप्यनेन तैलेन पुनश्च तरुणायते ॥ २२४ ॥
न प्रसूते च या नारी सापि पीत्वा प्रसूयते ।
अप्रजः पुरुषो यस्तु सोऽपि पीत्वा लभेत्सुतम् २२५
अशीतिं वातजान्रोगान्पैत्तिकाञ्श्लैष्मिकानपि ।
सन्निपातसमुत्थांश्च नाशयेत्क्षिप्रमेव तु ॥ २२६ ॥
एतेनान्धकवृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत् ।
कृत्वा विष्णोर्बलिं चापि तैलमेतत्प्रयोजयेत् ॥२२७
क्वाथे तुलार्धं रास्नायाः किलिमस्य च दीयते ।
भल्लातकासहत्वे तु तत्स्थाने रक्तचन्दनम् ॥२२८॥
त्वक्पत्रं पत्रमधुरीकुष्ठचम्पकगैरिकाः ।
ग्रन्थिकोषी मरुवकमधिकत्वेन दीयते ॥ २२९ ॥
कर्पूरमददानं च शुक्तैर्गन्धोदकक्रिया ।
द्रव्यशुद्धिः पाकविधिर्भाविप्रसारणीसमः ॥२३०॥

गन्धप्रसारणीका पञ्चांग १५ सेर, शतावरी ५ सेर, असगंध ५ सेर, केवड़ाका पञ्चांग ५ सेर, दशमूलकी प्रत्येक ओषधि ५ सेर, खरेटीका पञ्चांग ५ सेर, पियाबाँसा ५ सेर, सब दुरकुचाकर ६४ मन जलमें पकाना चाहिये । २५ सेर ४८ तोला बाकी रहनेपर उतार छानकर क्वाथ अलग करना चाहिये । फिर इसी क्वाथमें क्वाथसे दूनी काञ्जी तथा १ आढ़क दहीका तोड़, दूध १ आढ़क (अर्थात् ६ सेर ३२ तोला०) तथा सिरका, ईखका रस तथा बकरेका मांस रस प्रत्येक १ आढ़क, तैल १ द्रोण अर्थात् २५ सेर ४८ तो० तथा भिलावाँ, तगर, सोंठ, छोटी पीपल, चीतकी जड़, कचूर, वच, मालतीके फूल, गंधप्रसारणी, पिपरामूल, देवदारु, सौंफ, छोटी इलायची, कल्मी तज, सुगंधवाला, केशर, कस्तूरी, मजीठ, शिलारस, नख, अगर, कपूर, कुंदरुगोंद, हल्दी, लवंग रोहिषघास, लालचन्दन, कंकोल, नाड़ी, नागरमोथा, तगर, नालीफर, तेजपात, कचूर, सम्भालूके बीज, छरीला, गन्धाविरोजा, केवड़ाके फूल, त्रिफला, कौंचके बीज, शतावरी, सरल, कमलका केशर, प्रियंगु, खश, जटामांसी, जीवकादिगणकी ओषधियां, पुनर्नवा, दशमूल, असगन्ध, नागकेशर, रसौत, लताकस्तूरी, जायफल, सुपारी, राल प्रत्येक द्रव्य १२ तोले ले कल्क बना मिलाकर एक बड़े विशाल पात्रमें मन्द आंच से पकाना चाहिये । इसका प्रयोग ६ प्रकारसे होता है। (१) मालिश करनेसे त्वचाके रोगोंको तथा (२) पीनेसे कोष्ठगत वातको (३) भोजनके साथ सूक्ष्म नाड़ियोंमें प्रविष्ट वायुको, (४) नस्यसे ऊर्ध्वजत्रुगतवातको, (५) पक्वाशयगत वायुको अनुवासन वस्ति तथा (६) समस्त देहगत वायुको निरूहण वस्ति द्वारा नष्ट करता है। यह घोड़ी, घोड़े, हाथी, गाय तथा मनुष्य सभीके लिये अमृततुल्य गुणदायक है। इस तैलके सींचनेसे सूखे हुए वृक्ष फिर हरे होते तथा अंकुर और फल तथा शाखाओंसे युक्त होते हैं। इस तैलसे वृद्ध भी बलवान् होता तथा जिस स्त्रीके सन्तान नहीं होती उसके सन्तान होती है । शुक्रदोषसे जिसे सन्तान नहीं होती उसे भी यह सन्तान देता है । हर प्रकारके वात, पित्त, कफ तथा सन्निपातसे होनेवाले रोग इससे नष्ट होते हैं। इससे अन्धक और वृष्णिके वंशमें बहुत बालक उत्पन्न हुए। विष्णु भगवान्का पूजन कर इस तैलका प्रयोग करना चाहिये । इस क्वाथमें रासन २॥ सेर और देवदारु २॥ सेर और छोड़ना चाहिये । यदि भिलावां सहन न हो (किसीको भिलावां विशेष विकार करता है अतः ऐसे रोगीके लिये यदि बनाना हो) तो भिलावांके स्थानमें लाल चन्दन छोड़ना चाहिये। तथा दालचीनी, तेजपात, सोवाकी पत्ती, कूठ, चम्पा, गेरू, ग्रन्थिपर्ण, जावित्री और मरुवक भी छोड़ना चाहिये । कपूर और कस्तूरी सिरकेके साथ मिलाकर छोड़ना चाहिये । द्रव्योंकी शुद्धि तथा पाककी विधि आगे लिखे प्रसारणी तैलकी भांति करना चाहिये । (तैल पाकमें गन्ध द्रव्य जब तैल परिपक्व होनेके समीप पहुँच जाय तभी छोड़ना उत्तम होगा । क्योंकि पहिले छोड़नेसे गन्ध उड़ जायगा) ॥ २०९–२३० ॥

महाराजप्रसारणीतैलम् ।

शतत्रयं प्रसारण्या द्वे च पीतसहाचरात् ।
अश्वगन्धैरण्डबला वरी रास्ना पुनर्नवा ॥ २३१ ॥
केतकी दशमूलं च पृथक्त्वक्पारिभद्रतः ।
प्रत्येकमेषां तु तुला तुलार्धं किलिमात्तथा ॥२३२॥
तुलार्धं स्याच्छिरीषाच्च लाक्षायाः पञ्चविंशतिः ।
पलानि लोध्राच्च तथा सर्वमेकत्र साधयेत् ॥२३३॥
जलपञ्चाढकशते सपादे तत्र शेषयेत् ।
द्रोणद्वयं काञ्जिकं च षड्विंशत्याढकोन्मितम् २३४
क्षीरदध्नोः पृथक्प्रस्थान्दश मस्त्वाढकं तथा ।

इक्षुरसाढकी चैव छागमांसतुलात्रयम् ॥ २३५ ॥
जलपञ्चचत्वारिंशत्प्रस्थान्पक्वे तु शेषयेत् ।
सप्तदशरसप्रस्थान्मञ्जिष्ठाक्वाथ एव च ॥ २३६ ॥
कुडवोनाढकोन्मानो द्रवैरेतैस्तु साधयेत् ।
सुशुद्धतिलतैलस्य द्रोणं प्रस्थेन संयुतम् ॥ २३७ ॥
काञ्जिकं मानतो द्रोणं शुक्तेनात्र विधीयते ।
आद्य एभिर्द्रवैः पाकः कल्को भल्लातकं कणा॥२३८
नागरं मरिचं चैव प्रत्येकं षट्पलोन्मितम् ।
भल्लातकासहत्वे तु रक्तचन्दनमुच्यते ॥ २३९ ॥
पथ्याक्षधात्री सरलं शताह्वा कर्कटी वचा ।
चोरपुष्पी शटी मुस्तद्वयं पद्मं च सोत्पलम् ॥२४०॥
पीप्पलीमूलमञ्जिष्ठा साश्वगन्धा पुनर्नवा ।
दशमूलं समुदितं चक्रमर्दो रसाञ्जनम् ॥ २४१ ॥
गन्धतृणं हरिद्रा च जीवनीयो गणस्तथा ।
एषां त्रिपालिकैर्भागैराद्यः पाको विधीयते ॥२४१॥
देवपुष्पी चोलपत्रं शल्लकीरसशैलजे ।
प्रियङ्गूशीरमधुरीमांसीदारुबलाचलम् ॥ २४३ ॥
श्रीवासो नलिका खोटिः सूक्ष्मैला कुन्दुरुर्मुरा ।
नखीत्रयं च त्वक्पत्री[1]पमरा पूतिचम्पकम् ॥२४४॥
मदनं रेणुका स्पृक्का मरुवं च पलत्रयम् ।
प्रत्येकं गन्धतोयेन द्वितीयः पाक इष्यते ॥ २४५ ॥
गन्धोदकं तु त्वक्पत्रीपत्रकोशीरमुस्तकम् ।
प्रत्येकं सबलामूलं पलानि पञ्चविंशतिः ॥ २४६ ॥
कुष्ठार्धभागोऽत्र जलप्रस्थास्तु पञ्चविंशतिः ।
अर्धावशिष्टाः कर्त्तव्याः पाके गन्धाम्बुकर्मणि॥२४७
गन्धाम्बुचन्दनाम्बुभ्यां तृतीयः पाक इष्यते ।
कल्कोऽत्र केशरं कुष्ठं त्वक्कालीयककुंकुमम् ॥२४८
भद्रश्रियं ग्रन्थिपर्णं लताकस्तूरिका तथा ।
लवङ्गागुरुकक्कोलजातीकोषफलानि च ॥ २४९ ॥
एला लवङ्गं छल्ली च प्रत्येकं त्रिपलोन्मितम् ।
कस्तूरी षट्पला चन्द्रात् पलं सार्धं च गृह्यते॥२५०
वेधार्थं च पुनश्चन्द्रमदौ देयौ तथोन्मितौ ।
महाप्रसारणी सेयं राजभोग्या प्रकीर्तिता ॥२५१॥
गुणान्प्रसारणीनां तु वहत्येषा चलोत्तमान् ।

(१) गन्धप्रसारणीका पञ्चांग १५ सेर, पीले फूलका पियावांसा १० सेर, असगन्ध, एरण्ड, खरेटी, शतावरी, रासन, पुनर्नवा, केवड़ा, दशमूलकी प्रत्येक औषधि, नीमकी छाल, प्रत्येक द्रव्य ५ सेर, देवदारु २॥ सेर, सिरसाकी छाल २॥ सेर, लाख, १। सेर, तथा लोध १। सेर तथा जल ५२५ आढ़क अर्थात् ४२ मन मिलाकर पकाना चाहिये, २ द्रोण अर्थात् २५ सेर ४८ तोला शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये । फिर इसमें काञ्जी २६ आढ़क अर्थात् १ मन ३ सेर १६ तोला छोड़ना चाहिये (यद्यपि यहां काञ्जी २६ आढ़क लिखी है, तथापि आगे " काञ्जिकं मानतो द्रोणम् " इस श्लोकसे पूर्वका खण्डन कर १ द्रोण ही लिखा है) अतःकाञ्जी १ द्रोण (१२ सेर ६४ तोला), दूध ८ सेर, दही ८ सेर, दहीका तोड़ १ आढ़क (३ सेर १६ तोला), ईखका रस ६ सेर ३२ तोला, बकरेका मांस १५ सेर जल ३६ सेरमें पकाकर शेष १७ प्रस्थ अर्थात् १३ सेर ४८ तोला छानकर सिद्ध किया रस, मजीठका काढ़ा ३ सेर तथा तिलतैल १३ सेर ४८ तोला तथा मिलावां छोटी पीपल, सोंठ, कालीमिर्च प्रत्येक २४ तोला, भल्लातक यदि वर्दाश्त न हो तो उसके स्थानमें लाल चन्दन छोड़ना चाहिये । तथा हर्र, बहेड़ा, आंवला, सरल, सौंफ, काकड़ाशिंगी, वच, चोरपुष्पी (चोरहुली), कचूर, मोथा, नागरमोथा, कमल, नीलोफर, पिपरामूल, मजीठ, असगन्ध, पुनर्नवा मिलित दशमूल, चकौड़ा, रसौंत, रोहिषघास, हल्दी तथा जीवनीयगणकी औषधियां प्रत्येक १२ तोला छोड़कर पकाना चाहिये । यह पहिला पाक हुआ । पाक तैयार हो जानेपर उतार छानकर फिर कड़ाहीमें चढ़ाना चाहिये)। (२) फिर लवङ्ग, चोल, तेजपात, शाल्का रस, छारछीला, प्रियङ्गु, खश, सौंफ, जटामांसी, देवदारु, खरेटी, सुनहली चम्पा, गंधाविरोजा, नाड़ीशाक, कुन्दरू खोटी, छोटी इलायची, मुरा, तीन प्रकारका नख, काला जीरा, पमरा (देवदारुभेद) खट्टाशी, चम्पा, मैनफल, सम्भालूके बीज, मालतीके फूल, मरुवा प्रत्येक १२ तोला तथा गंधोदक मिलाकर द्वितीय पाक करना चाहिये । **गन्धोदकविधिः**—तेजपात, दालचीनी, खश, मोथा, खरेटीकी जड़ प्रत्येक ५। सेर कूठ १० छ० जल २० सेर मिलाकर पकाना चाहिये, आधा रह जानेपर उतार छान लेना चाहिये । यही गंधोदक छोड़ना चाहिये । इस प्रकार द्वितीय पाक करना चाहिये । फिर (३) गंधोदक तथा चंदनका जल छोड़ तथा नागकेशर, कूठ, दालचीनी, तगर, केशर, चंदन, भटेउर, लताकस्तूरी, लवंग, अगर, कंकोल, जाविन्नी, जायफल, इलायची, लवंग, छल्लीका फूल लवंगके पेड़की छाल प्रत्येक १२ तोला, कस्तूरी २४ तो०, कपूर ६ तोला छोड़कर तृतीय पाक करना चाहिये। इसमें चन्दनोदकका विशेष वर्णन नहीं है, अतः चंदनका क्वाथ ही तैलसे समान भाग छोड़ना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर विशेष सुगंधित बनानेके लिये कस्तूरी तथा कपूर उतना ही फिर छोड़ना चाहिये। यह "महाराजप्रसारणी" तैल महाराजाओंके ही लिये बनाया जा सकता है । यह पूर्वोक्त प्रसारणी तैलोंके समग्र गुणोंको विशेषताके साथ करता है ॥ २३१-२५१ ॥—

---

[1] लवङ्गछल्लीति पाठान्तरम् ।

शुक्तविधिः ।

अत्र शुक्तविधिर्मण्डः प्रस्थः पञ्चाढकोन्मितम् २५२
काञ्जिकं कुडवं दध्नो गुडप्रस्थोऽम्लमूलकात् ।
पलान्यष्टौ शोधितार्द्रात्पलषोडशकं तथा ॥ २५३ ॥
कणाजीरकसिन्धूत्थहारिद्रामरिचं पृथक् ।
द्विपलं भाविते भाण्डे घृतेनाष्टदिनस्थितम् ॥२५४॥
सिद्धं भवति तच्छुक्तं यदा विस्राव्य गृह्यते ।
तदा देयं चतुर्जातं पृथक्कर्षत्रयोन्मितम् ॥ २५५ ॥

मांड़ ६४ तोला, काञ्जी १६ सेर, दही १६ तोला, गुड़ ६४ तोला, खट्टी मूली ३२ तोला, अदरख छिली हुई ६४ तोला, छोटी पीपल, जीरा, सेंधानमक, हल्दी, कालीमिर्च प्रत्येक ८ तोला सब एकमें मिलाकर घीसे भावित वर्तनमें ८ दिनतक रखना चाहिये, फिर इसे छानकर इसमें दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर प्रत्येक ३ तोले छोड़ने चाहियें। यह "शुक्त" हुआ। यही काञ्जीके स्थानमें महाराजप्रसारणीतैलमें छोड़ना चाहिये। इस तैलमें द्रवद्वैगुण्यकी परिभाषाके अनुसार समस्त द्रव-द्रव्य (क्वाथ व तैलादि) द्विगुण छोड़ना चाहिये ॥२५२–२५५॥

गन्धानां क्षालनम् ।

पञ्चपल्लवतोयेन गन्धानां क्षालनं तथा ।
शोधनं चापि संस्कारो विशेषश्चात्र वक्ष्यते॥२५६॥

गन्धद्रव्योंका क्षालन, शोधन तथा संस्कार पञ्चपल्लवसे सिद्ध जलसे करना चाहिये। विशेष आगे लिखेंगे ॥ २५६ ॥

पञ्चपल्लवम् ।

आम्रजम्बूकपित्थानां बीजपूरकबिल्वयोः ।
गन्धकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्चपल्लवम् ॥ २५७ ॥

आम, जामुन, कैथा, बिजौरा तथा बेलके पत्ते गन्धादि कर्ममें "पञ्चपल्लव" नामसे लेना चाहिये ॥ २५७ ॥

नखशुद्धिः ।

चण्डीगोमयतोयेन यदि वा तिन्तिडीजलैः ।
नखं संक्वाथयेदेभिरलाभे मृण्मयेन तु ॥ २५८ ॥
पुनरुद्धृत्य प्रक्षाल्य भर्जयित्वा निषेचयेत् ।
गुडपथ्याम्बुना ह्येवं शुध्यते नात्र संशयः ॥२५९॥

भैंसके गोबरके रस अथवा इमलीके क्वाथ अथवा मिट्टी मिले पानीसे नख पकाना चाहिये। फिर निकालकर धोना चाहिये। फिर तपाकर गुड़ मिले छोटी हर्रके काढ़ेमें बुझाना चाहिये ॥ २५८ ॥ २५९ ॥

वचाहरिद्रादिशोधनम् ।

गोमूत्रे चालम्बुपके पक्त्वा पञ्चदलोदके ।
पुनः सुरभितोयेन वाष्पस्वेदेन स्वेदयेत् ॥ २६० ॥
गन्धोग्रा शुध्यते ह्येवं रजनी च विशेषतः ।
मुस्तकं तु मनाक् क्षुण्णं काञ्जिके त्रिदिनोषितम् ॥
पञ्चपल्लवपानीयस्विन्नमातपशोषितम् ।
गुडाम्बुना सिच्यमानं भर्जयेच्चूर्णयेत्ततः ॥२६२ ॥
आजशोभाञ्जनजलैर्भावयेच्चेति शुध्यति ।
काञ्जिके क्वथितं शैलं भृष्टपथ्यागुडाम्बुना॥२६३॥
सिञ्चेदेवं पुनः पुष्पैर्विविधैरधिवासयेत् ।

गोमूत्र, मुण्डीके क्वाथ तथा पञ्चपल्लवके जलमें पकाकर फिर गन्धोदक द्वारा वाष्पस्वेदसे स्वेदन करना चाहिये, इस प्रकार "वच" और "हल्दी" शुद्ध होती है। मोथाको दुरकुचाकर काञ्जीमें ३ दिन रखना चाहिये, फिर पञ्चपल्लवके जलमें दोलायन्त्रसे स्वेदित कर धूपमें सुखाना चाहिये। फिर गुड़का शर्वत छोड़कर पकाना चाहिये। शर्वत जल जानेपर उतार महीन चूर्णकर वकरेके मूत्र तथा सहिंजनके क्वाथमें भावना देनी चाहिये। इस प्रकार "मोथा" शुद्ध होता है। शिलारसको काञ्जीमें पकाना चाहिये, फिर भुनी छोटी हर्र व गुड़के जलमें मिलाना चाहिये। फिर अनेक सुगन्धित पुष्पोंसे अधिवासित करना चाहिये ॥ २६०–२६३ ॥

पूतिशोधनम् ।

यथालाभमपामार्गस्नुह्यादिक्षारलेपितम् ॥ २६४ ॥
वाष्पस्वेदेन संस्वेद्य पूतिं निर्लोमतां नयेत् ।
दोलापक्वं पचेत्पश्चात्पञ्चपल्लववारिणि ॥ २६५ ॥
खलः साधुमिवोत्पीड्य ततो निःस्नेहतां नयेत् ।
आजशोभाञ्जनजलैर्भावयेच्च पुनः पुनः ॥ २६६ ॥
शिग्रुमूले च केतक्याः पुष्पपत्रपुटे च तम् ।
पचेदेवं विशुद्धः सन्मृगनाभिसमो भवेत् ॥२६७॥

खट्टाशी (गन्धमार्जाराण्ड) को अपामार्गादि जितने क्षार मिल सकें उनसे लेप कर पञ्चपल्लवके जलमें (दोलायन्त्रसे) स्वेदन करना चाहिये। फिर लोम साफ कर देना चाहिये। फिर पञ्चपल्लवके क्वाथमें पका निचोड़कर निःस्नेह करना चाहिये। फिर अजमूत्र तथा सहिंजनके क्वाथमें ७ भावनायें देनी चाहियें। फिर सहिंजनके क्वाथमें केवड़ेके पुष्प वा पत्रोंके सम्पुटमें रखकर पकाना चाहिये। इस प्रकार "खट्टाशी" शुद्ध होकर कस्तूरीके समान होती है ॥ २६४–२६७ ॥

तुरुष्कादिशोधनम् ।

तुरुष्कं मधुना भाव्यं काश्मीरं चापि सर्पिषा ।
रुधिरेणायसं प्राज्ञैर्गोमूत्रैर्ग्रन्थिपर्णकम् ॥ २६८ ॥
मधूदकेन मधुरीं पत्रकं तण्डुलाम्बुना।

तुरुष्ककी शहदसे भावना, केशरकी घीसे भावना, केशरके जलसे अगरकी भावना, गोमूत्रसे भटेउरकी भावना, शहदके

जलसे सौंफकी, चावलके जलसे तेजपातकी भावना देनी चाहिये ॥ २६८ ॥-

कस्तूरीपरिक्षा ।

ईषत्क्षारानुगन्धा तु दग्धा याति न भस्मताम् २६९
पीता केतकगन्धा च लघुस्निग्धा मृगोत्तमा ।

जिसका केवड़ेके समान गंध तथा कुछ क्षार अनुगन्ध हो और जलानेसे भस्म न हो, रगड़नेसे पीली, हल्की तथा चिकनी हो, वह कस्तूरी उत्तम होती है ॥ २६९ ॥

कर्पूरश्रेष्ठता ।

पक्वात्कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम् ॥ २७० ॥
तत्रापि स्याद्यदक्षुद्रं स्फटिकाभं तदुत्तमम् ।
पक्वं च सदलं स्निग्धं हरितद्युति चोत्तमम् ॥२७१॥
भङ्गे मनागपि न चेन्निपतन्ति ततः कणाः ।

पकाये कपूरकी अपेक्षा विना पका अच्छा होता है । कच्चा कपूर भी जो चूरा न हो तथा स्फटिकके समान साफ हो, वह अच्छा होता है । पकाया हुआ भी दलके सहित, चिकना, हरितवर्णयुक्त और टूटनेसे यदि कुछ भी कण अलग न हो, वह उत्तम होता है ॥ २७०-२७२ ॥-

कुष्ठादिश्रेष्ठता ।

मृगशृङ्गोपमं कुष्ठं चन्दनं रक्तपीतकम् ॥ २७२ ॥
काकतुण्डाकृतिः स्निग्धो गुरुश्चैवोत्तमोऽगुरुः ।
स्निग्धाल्पकेशरं त्वस्रं शालिजो वृत्तमांसलः॥२७३॥
मुरा पीता वरा प्रोक्ता मांसी पिङ्गजटाकृतिः ।
रेणुका मुद्गसंस्थाना शस्तमानूपजं घनम् ॥ २७४ ॥
जातीफलं सशब्दं च स्निग्धं गुरु च शस्यते ।
एला सूक्ष्मफला श्रेष्ठा प्रियङ्गु श्यामपाण्डुरा २७५
नखमश्वखुरं हस्तिकर्णं चैवात्र शस्यते ।
एतेषामपरेषां च नवता प्रवलो गुणः ॥ २७६ ॥

कूठ, मृगके सींगके समान, लाल, पीला चन्दन, कौआकी चोंचकी आकृतिवाला तथा भारी अगर उत्तम होता है । चिकना तथा पतली केशरवाला केशर, पूति गोल तथा मोटी, मुरा पीली तथा मांसी पिलाई लिये हुए उत्तम होती है । सम्भालूके बीज मूंगके वरावर तथा आनूपस्थलका नागरमोथा, जायफल शब्द करनेवाला भारी तथा चिकना, छोटे फलवाली इलायची, प्रियंगु आसमानी तथा सफेद पीली, नख अश्वखुर तथा हस्तिकर्णके सदृश, उत्तम होते हैं । यह तथा अनुक्त नवीन ओषधियां अधिक उत्तम होती हैं ॥ २७२-२७६ ॥

महासुगन्धितैलम् ।

जिङ्गीचोरकदेवदारुसरलं व्याघ्रीवचा चेलक-
त्वक्पत्रैः सह गन्धपत्रकशटीपथ्याक्षधात्रीघनैः ।
एतैः शोधितसंस्कृतैः पलयुगेत्याख्यातया संख्यया
तैलप्रस्थमवस्थितैः स्थिरमतिःकल्कैः पचेद्गान्धिकम्
मांसीमुरामदनचम्पकसुन्दरीत्वक्-
ग्रन्थ्यम्बुरुङ्मरुवकैर्द्विपलैः सपृक्कैः ।
श्रीवासकुन्दुरुनखीनलिकाभिपीणां
प्रत्येकतः पलमुपाप्य पुनः पचेत्तु ॥ २७८ ॥
एलालवङ्गचलचन्दनजातिपूति-
कक्कोलकागुरुलताघुसृणैः पलार्धैः ।
कस्तूरिकाक्षसहितामलदीप्रियुक्तैः
पक्वं तु मन्दशिखिनैव महासुगन्धम् ॥ २७९ ॥
पञ्चद्विकेन चार्धेन मदात्कर्पूरमिष्यते ।
कर्पूरमदयोरर्धं पत्रकल्कादिहेष्यते ॥ २८० ॥

(१) मजीठ, भटेड़ा, देवदारु, धूपसरल, छोटी कटेरी, दूधिया वच, सुपारीकी छाल, तेजपात, गन्धपत्र (यूकेलिप्टस), कचूर, हर्र, वहेड़ा, आंवला, नागरमोथा यह प्रत्येक पूर्वोक्त शोधनादिसे शुद्ध कर १६ तोला सब मिले हुए कल्क बनाकर १ प्रस्थ (१ सेर ४८ तो०) तैलमें चतुर्गुण पञ्चपल्लवोदक छोड़कर पकाना चाहिये । प्रथम पाक हो जानेपर (२) तैलसे चतुर्गुण गन्धोदक तथा मांसी, मुरा, देवना, चम्पा, प्रियंगु, दालचीनी, पिपरामूल, सुगन्धवाला, कूठ, मरुवा तथा मालतीके फूल सब मिलाकर ८ तोला, तार्पिन, गन्धाविरोजा, नखनखी, नाड़ी तथा सौंफ प्रत्येक ४ तोलाका कल्क छोड़कर फिर पकाना चाहिये । यह द्वितीय पाक हुआ । फिर (३) तैलसे चतुर्गुण गन्धोदक अथवा गन्ध द्रव्योंसे धूपित जल तथा इलायची, लौंग, सुनहली चम्पा, चन्दन, जावित्री, खट्टाशी, कंकोल, अगर, लताकस्तूरी, केशर, कस्तूरी, वहेड़ा, आंवला, अजवाइन प्रत्येक २ तोला, मिलाकर मन्द आंचसे पकाना चाहिये । इसमें कस्तूरीसे पञ्चमांश कपूर मिलाना चाहिये । कस्तूरी और कपूरसे आधा इसमें पत्र कल्क छोड़ना चाहिये ॥ २७७-२८० ॥

पत्रकल्कविधिः ।

पक्वपूतेऽप्युष्ण एव सम्यक्पेपणवर्तितम् ।
दीयते गन्धवृद्ध्यर्थं पत्रकल्कं तदुच्यते ॥ २८१ ॥

पक जानेपर छानकर गरममें ही पीसकर जो द्रव्य गन्धवृद्धिके लिये छोड़े जाते हैं वे "पत्रकल्क" कहे जाते हैं ॥२८१॥

लक्ष्मीविलासतैलम् ।

प्रागुक्तौ शुद्धिसंस्कारौ गन्धानामिह तैः पुनः ।
द्विगुणैर्लक्ष्मीविलासः स्यादयं तैलेषु सत्तमः॥२८२॥

पहिले गन्धद्रव्योंके जो शोधन तथा संस्कार बताये हैं, उनसे शुद्ध तथा मात्रामें जो पत्रकल्क महाराज प्रसारणीतैलमें लिखा है, उससे दूना महासुगन्ध तैलमें छोड़नेसे "लक्ष्मीविलास" तैल बनता है ॥ २८२ ॥

द्रवदानपरिभाषा।

पञ्चपल्लवाम्बुना चाद्यो द्वितीयो गन्धवारिणा।
तृतीयोऽपि च तेनैव पाको वा धूपिताम्बुना॥२८३

पहिला पाक पञ्चपल्लवोदकसे द्वितीय पाक गन्धोदकसे तथा तृतीय पाक भी गन्धोदक अथवा धूपित जलसे करना चाहिये ॥ २८३ ॥

अनयोर्गुणाः।

तैलयुग्ममिदं तूर्णं विकारान्वातसम्भवान्।
क्षपयेज्जनयेत्पुष्टिं कान्तिं मेधां धृतिं धियम् ॥२८४॥

यह दोनों तैल वातरोगोंको शीघ्र ही नष्ट करते तथा पुष्टि, कान्ति, मेधा, धैर्य व बुद्धि बढ़ाते हैं ॥ २८४ ॥

विष्णुतैलम्।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बला च बहुपुत्रिका।
एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः पूतिकस्य च ॥ २८५
गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च।
एषां तु पालिकैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २८६
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम्।
अस्य तैलस्य पक्वस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ २८७
अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां तथा नृणाम्।
तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्वव्याधिनिवारणम् ॥ २८८ ॥
आयुष्मांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत्।
गर्भमश्वतरी विन्द्यात्किम्पुनर्मानुषी तथा ॥ २८९ ॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च तथैवार्द्धावभेदकम्।
कामलापाण्डुरोगघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ २९० ॥
क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा जरया जर्जरीकृताः।
येषां चैव क्षयो व्याधिरन्त्रवृद्धिश्च दारुणा ॥२९१॥
आर्दितं गलगण्डं च वातशोणितमेव च।
स्त्रियो या न प्रसूयन्ते तासां चैव प्रयोजयेत्।
एतद्धन्यं वरं तैलं विष्णुना परिकीर्तितम् ॥ २९२ ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, खरैटी, शतावर, एरण्डकी जड़, छोटी कटेरी तथा बड़ी कटेरीकी जड़, पूतिकरञ्जकी जड़की छाल, कंघीकी जड़ तथा कटसरैयाकी जड़ प्रत्येक ४ तोले ले कल्क बना १ सेर ९ छटांक ३ तोला तिलतैल तथा ६ सेर ३२ तो० गाय अथवा बकरीका दूध तथा इतना ही जल मिलाकर सिद्ध करना चाहिये। इस तैलकी शक्ति वर्णन करते हैं। सुनो–वातसे पीड़ित घोड़े, हाथी तथा मनुष्योंको इस तैलका प्रयोग करना चाहिये। यह समस्त रोगोंको नष्ट कर देता है। आयुष्मान् तथा दृढ़ बनाता है। इससे खच्चरी (जिसके गर्भ रहता ही नहीं) के भी गर्भ रह सकता है। फिर स्त्रियोंके लिये क्या कहना? यह हृदयके दर्द, पसलियोंके दर्द तथा अर्धावभेदको नष्ट करता है। तथा कामला, पाण्डुरोग, शर्करा व अश्मरीको नष्ट करता है। जिनकी इन्द्रियां शिथिल हो गयी हैं, वीर्य नष्ट हो चुका है, वृद्धावस्थासे जर्जर हो रहे हैं, जिनके क्षय अथवा अन्त्रवृद्धि, अर्दित, गलगण्ड तथा वातरक्तरूपी कठिन रोग हैं तथा जिन स्त्रियोंके सन्तान नहीं होती, उनके लिये इसका प्रयोग करना चाहिये। यह धन्यवादाह श्रेष्ठ तैल विष्णु भगवान्ने कहा है ॥ २८५–२९२ ॥

इति वातव्याध्यधिकारः समाप्तः।

अथ वातरक्ताधिकारः।

बाह्यगम्भीरादिचिकित्सा।

बाह्यं लेपाभ्यङ्गसेकोपनाहैर्वातशोणितम्।
विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥ १ ॥
द्वयोर्मुञ्चेदसृक् शृङ्गसूच्यलाबुजलौकसा।
देशाद्देशं व्रजेत् स्राव्यं शिराभिः प्रच्छनेन वा।
अङ्गग्लानौ च न स्राव्यं रूक्षे वातोत्तरे च यत् ॥२॥

उत्तान वातरक्तको लेप, अभ्यङ्ग, सेक तथा उपनाहसे और गम्भीरको विरेचन, आस्थापन तथा स्नेहपनसे दूर करना चाहिये। दोनों प्रकारके वातरक्तमें शृंग, सूची, तोम्बी अथवा जोंक, द्वारा रक्त निकलवा देना चाहिये। जो एक स्थानमें फैल रहा हो उसे शिराव्यधद्वारा अथवा पछने लगा खून निकालकर लगा खून निकालकर शान्त करना चाहिये। पर यदि रोगी शिथिल अथवा वाताधिक्यसे रूक्ष हो, तो रक्त न निकालना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

अमृतादिक्वाथद्वयम्।

अमृतानागरधन्याककर्षत्रयेण पाचनं सिद्धम्।
जयति सरक्तं वातं सामं कुष्ठान्यशेषाणि ॥ ३ ॥
वत्सादन्युद्भवः क्वाथः पीतो गुग्गुलुसंयुतः।
समीरणसमायुक्तं शोणितं संप्रसाधयेत् ॥ ४ ॥

(१) गुर्च, सोंठ तथा धनियां प्रत्येक १ तोला ले क्वाथ बनाकर पीनेसे आमसहित वातरक्त तथा समस्त कुष्ठोंको नष्ट करता है। इसी प्रकार (२) केवल गुर्चका क्वाथ गुग्गुलुके साथ पीनेसे वातरक्तको अवश्य नष्ट करता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

वासादिक्वाथः ।

वासागुडूचीचतुरङ्गुलाना-
मेरण्डतैलेन पिबेत्कषायम् ।
क्रमेण सर्वाङ्गजमप्यशेषं
जयेदसृग्वातभवं विकारम् ॥ ५ ॥

अडूसा, गुर्च तथा अमलतासके गूदाका क्वाथ एरण्डतैल मिलाकर पीनेसे समस्त शरीरमें भी फैला हुआ वातरक्त नष्ट होता है ॥ ५ ॥

मुण्डितिकाचूर्णम् ।

लीढ्वा मुण्डितिकाचूर्णं मधुसर्पिःसमन्वितम् ।
छिन्नाक्वाथं पिबन्हन्ति वातरक्तं सुदुस्तरम् ॥ ६ ॥

मुण्डीके चूर्णको शहद और घीके साथ चाटकर ऊपरसे गुर्चका काढ़ा पीनेसे कठिन वातरक्त निसन्देह नष्ट होता है ॥ ६ ॥

पथ्याप्रयोगः ।

तिस्रोऽथवा पञ्च गुडेन पथ्या
जग्ध्वा पिबेच्छिन्नरुहाकषायम् ।
तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्ण-
माजानुसंभिन्नमपि ह्यवश्यम् ॥ ७ ॥

३ अथवा ५ छोटी हर्रोंका चूर्ण गुड़ मिला खाकर ऊपरसे गुर्चका क्वाथ पीनेसे जानुपर्य्यन्त भी फैला हुआ वातरक्त शान्त होता है ॥ ७ ॥

गुडूचीप्रयोगाः ।

घृतेन वातं सगुडा विबन्धं
पित्तं सिताढ्या मधुना कफं वा ।
वातासृगुग्रं रुबुतैलमिश्रा
शुण्ठ्यामवातं शमयेद् गुडूची ॥ ८ ॥

(१) गुडूची घीके साथ वायुको, (२) गुड़के साथ विबन्ध (मलावरोध) को, (३) मिश्रीके साथ पित्त, (४) शहदके साथ कफ, (५) एरण्डतैलके साथ वातरक्त तथा (६) सोंठके साथ आमवातको नष्ट करती है ॥ ८ ॥

गुडूच्याश्चत्वारो योगाः ।

गुडूच्याः स्वरसं कल्कं चूर्णं वा क्वाथमेव वा ।
प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात् ॥ ९ ॥

(१) गुर्चका स्वरस, (२) कल्क, (३) चूर्ण या (४) क्वाथ अधिक समयतक सेवन करनेसे वातरक्त नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

वातप्रधानचिकित्सा ।

दशमूलीशृतं क्षीरं सद्यः शूलनिवारणम् ।
परिषेकोऽनिलप्राये तद्वत्कोष्णेन सर्पिषा ॥ १० ॥

दशमूलसे सिद्ध दूध शीघ्र ही शूलको नष्ट करता है । इसी प्रकार वातप्रधानमें गुनगुने घीसे सेक करना चाहिये ॥ १० ॥

पित्तरक्ताधिक्ये पटोलादिक्वाथः ।

पटोलकटुकाभीरुत्रिफलामृतसाधितम् ।
क्वाथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं वातशोणितम् ॥ ११ ॥

परवलके पत्ते, कुटकी, शतावरी, त्रिफला तथा गुर्चसे सिद्ध किया गया क्वाथ पीनेसे दाहके सहित वातरक्तको नष्ट करता है ॥ ११ ॥

लेपसेकाः ।

गोधूमचूर्णाजपयो घृतं वा
सच्छागदुग्धो रुबुबीजकल्कः ।
लेपे विधेयं शतधौतसर्पिः
सेके पयश्चाविकमेव शस्तम् ॥ १२ ॥
लेपः पिष्टास्तिलास्तद्वद् भृष्टाः पयसि निर्वृताः ।

गेहूँका आटा, बकरीका दूध और घी अथवा बकरीके दूधके साथ एरण्डबीजका कल्क अथवा सौवार धोये हुए घीका लेप करना चाहिये । तथा बकरीके दूधका सेक करना चाहिये । इसी प्रकार तिल पीस भून दूधमें पकाकर लेप करना चाहिये ॥ १२ ॥

कफाधिक्यचिकित्सा ।

कटुकामृतयष्ट्याह्वशुण्ठीकल्कं समाक्षिकम् ॥ १३ ॥
गोमूत्रपीतं जयति सकफं वातशोणितम् ।
धात्रीहारिद्रामुस्तानां कषायो वा कफाधिके ॥ १४ ॥
कोकिलाक्षामृताक्वाथे पिबेत्कृष्णां कफाधिके ।
पथ्यभोजी त्रिसप्ताहान्मुच्यते वातशोणितात् ॥ १५ ॥
कफरक्तप्रशमनं कच्छूवीसर्पनाशनम् ।
वातरक्तप्रशमनं हृद्यं गुडघृतं स्मृतम् ।

कुटकी, गुच, मौरेठी तथा सोंठका कल्क शहदके साथ चाटकर ऊपरसे गोमूत्र पीनेसे सकफ वातरक्त नष्ट होता है । अथवा आँवला, हल्दी, व नागरमोथाका क्वाथ अथवा तालमखाना व गुर्चका क्वाथ पीपलका चूर्ण छोड़कर पीनेसे और पथ्यसे रहनेसे २१ दिनमें कफ-प्रधान वातरक्त नष्ट हो जाता है । इसी प्रकार गुड़ मिलाकर घी खानेसे कफज वातरक्त कच्छू तथा विसर्प शान्त होते तथा हृदय बलवान् होता है ॥ १३-१५ ॥

संसर्गसन्निपातजचिकित्सा ।

संसर्गेषु यथोद्रेकं मिश्रं वा प्रतिकारयेत् ॥ १६ ॥
सर्वेषु सगुडां पथ्यां गुडूचीकाथमेव वा ।
पिप्पलीवर्धमानं वा शीलयेत्सुसमाहितः ॥ १७ ॥

द्वन्द्वजमें जो दोष बढ़ा हुआ हो उसकी प्रधान चिकित्सा अथवा मिलित चिकित्सा करनी चाहिये । सन्निपातजमें गुड़के साथ हर्र अथवा गुर्चका काढ़ा अथवा वर्द्धमान पिप्पलीका प्रयोग करना चाहिये * ॥ १६ ॥ १७ ॥

नवकार्षिकः क्वाथः ।

त्रिफलानिम्बमञ्जिष्ठवचाकटुकरोहिणी ।
वत्सादनीदारुनिशाकषायो नवकार्षिकः ॥ १८ ॥
वातरक्तं तथा कुष्ठं पामानं रक्तमण्डलम् ।
कुष्ठं कापालिकाकुष्ठं पानादेवापकर्षति ॥ १९ ॥
पञ्चरक्तिकमाषेण कार्योऽयं नवकार्षिकः ।
किंत्वेवं साधिते काथे योग्यमात्रा प्रदीयते ॥२० ॥

त्रिफला, नीमकी छाल, मजीठ, वच, कुटकी, गुर्च, दारुहल्दी एक एक कर्ष परिमित इन नौ औषधियोंका बनाया नवकर्षका क्वाथ पीनेसे वातरक्त, कुष्ठ, पामा, लाल चकत्ते, कापालिक कुष्ठ नष्ट होते हैं। यह पांच रत्तिके माषासे नव कर्ष लेकर क्वाथ बनाना चाहिये और इस प्रकार सिद्ध क्वाथ भी उचित मात्रामें ही पीना चाहिये ॥ १८–२० ॥

गुडूचीघृतम् ।

गुडूचीकाथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम् ।
हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम् ॥२१॥

गुर्चका क्वाथ व कल्क तथा दूध मिलाकर सिद्ध किया गया घृत वातरक्त तथा कुष्ठको नष्ट करता है ॥ २१ ॥

* गुडूचीतैलम्–" गुडूचीकाथकल्काभ्यां पचेत्तैलं तिलस्य च । पयसा च समं पक्त्वा भिषङ्मन्देन वह्निना ॥ हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम् । त्वग्दोषं व्रणवीसर्पकण्डूदद्रुविनाशनम् ॥ " गुर्चका काथ तथा कल्क तथा समान भाग दूध मिलाकर तिल तैल मन्द आंचसे वैद्यको पका लेनी चाहिये । यह तैल वातरक्त, कुष्ठ, त्वग्दोष, व्रण, वीसर्प, कण्डू तथा दद्रूको नष्ट करता है ॥

१ इसे ग्रन्थान्तरमें "मञ्जिष्ठादि काथ"के नामसे लिखा है, इसमें बलाबलके अनुसार आधी छटांकसे १ छटांकतक क्वाथ्य द्रव्य छोड़कर क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये । इसके पीनेसे ४ या ५ तक दस्त प्रतिदिन आते हैं ।

शतावरीघृतम् ।

शतावरीकल्कगर्भं रसे तस्याश्चतुर्गुणे ।
क्षीरतुल्यं घृतं पक्वं वातशोणितनाशनम् ॥ २२ ॥

शतावरीका कल्क चतुर्थांश और रस चतुर्गुण तथा समान भाग दूध मिलाकर सिद्ध किया गया घृत वातरक्तको नष्ट करता है ॥ २२ ॥

अमृताद्यं घृतम् ।

अमृता मधुकं द्राक्षा त्रिफला नागरं बला ।
वासारग्वधवृश्चीरदेवदारुत्रिकण्टकम् ॥ २३ ॥
कटुका शवरी कृष्णा काश्मर्यस्य फलानि च ।
रास्नाक्षुरकगन्धर्ववृद्धदारघनोत्पलैः ।
कल्कैरेभिः समैः कृत्वा सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ॥२४
धात्रीरसं समं दत्त्वा वारि त्रिगुणसंयुतम् ।
सम्यक् सिद्धं तु विज्ञाय भोज्ये पाने च शस्यते२५
बहुदोषान्वितं वातं रक्तेन सह मूर्छितम् ।
उत्तानं चापि गम्भीरं त्रिकजङ्घोरुजानुजम् ॥२६॥
क्रोष्टुशीर्षे महाशूले चामवाते सुदारुणे ।
वातरोगोपसृष्टस्य वेदनां चातिदुस्तराम् ॥ २७ ॥
मूत्रकृच्छ्रमुदावर्तं प्रमेहं विषमज्वरम् ।
एतान्सर्वान्निहन्त्याशु वातपित्तकफोत्थितान् ॥२८॥
सर्वकालोपयोगेन वर्णायुर्बलवर्धनम् ।
अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं घृतमेतदनुत्तमम् ॥ २९ ॥

गुर्च, मौरेठी, मुनक्का, त्रिफला, सोंठ, खरेटी, अडूसाके फूल, अमलतासका गूदा, पुनर्नवा, देवदारु, गोखरू कुटकी, हल्दी, छोटी पीपल, खम्भारके फल, रासन, तालमखाना, एरण्डकी छाल, विधारा, नागरमोथा, नीलोफर सब समान भाग ले कल्क कर छोड़ना चाहिये, तथा आंवलेका रस १ प्रस्थ तथा घी १ प्रस्थ और जल ३ प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये, ठीक सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर पीना चाहिये। तथा भोजनके साथ प्रयोग करना चाहिये । बहुदोषयुक्त, उत्तान तथा गहरा तथा त्रिक, जंघा, ऊरु, जानुतक फैला हुआ वातरक्त इससे नष्ट होता है। तथा क्रोष्टुकशीर्ष, आमवात, वातव्याधिकी पीड़ा, मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त, प्रमेह, विषमज्वर आदि वात, पित्त, कफके समस्त रोगोंको शीघ्र ही नष्ट करता है । हर समय प्रयोग करते रहनेसे वर्ण, आयु तथा बलकी वृद्धि होती है । भगवान्, अश्विनीकुमारने यह घृत बनाया है ॥ २३–२९ ॥

दशपाकबलातैलम् ।

बलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरचतुर्गुणम् ।
दशपाकं भवेदेतद्वातासृग्वातपित्तजित् ॥ ३० ॥

धन्यं पुंसवनं चैव नराणां शुक्रवर्धनम्।
रेतोयोनिविकारघ्नमेतद्वातविकारनुत्॥ ३१॥

खरेटीका क्वाथ तथा कल्क और घीसे चतुर्गुण दूध मिलाकर तैल पकाना चाहिये, एक बार पक जानेपर फिर उतार छानकर इसी क्रमसे क्वाथ, कल्क व दूध मिलाकर पकाना चाहिये, इस प्रकार दश वार पकाना चाहिये। इसमें क्वाथ प्रतिवार घीसे चतुर्गुण ही छोड़ना चाहिये। यह तैल वातरक्त तथा वातपित्तको नष्ट करता, वीर्य व, पुरुषत्वको बढ़ाता, वात रोग तथा शुक्र और रजके दोषोंको नष्ट करता है॥ ३०॥ ३१॥

गुडूच्यादितैलम्।

गुडूचीक्वाथदुग्धाभ्यां तैलं लाक्षारसेन वा।
सिद्धं मधुककाश्मर्यरसैर्वा वातरक्तनुत्॥ ३२॥

गुर्चके काढ़े और दूधके साथ अथवा लाखके रसके साथ अथवा मौरेठी व खम्भारके रसके साथ सिद्ध तैल वातरक्तको नष्ट करता है॥ ३२॥

खुड्डाकपद्मकतैलम्।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीक्वाथसाधितम्।
स्यात्पिष्टैः सर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिचन्दनैः।
खुड्डाकपद्मकमिदं तैलं वातास्रदोषनुत्॥ ३३॥

पद्माख, खश, मौरेठी व हल्दीका क्वाथ तथा राल, मजीठ, क्षीरकाकोली, काकोली, व चन्दनसे सिद्ध किया गया तैल "खुड्डाक-पद्मक" तैल कहा जाता है और वात रक्तको नष्ट करता है॥ ३३॥

नागबलातैलम्।

शुद्धां पचेन्नागबलातुलां तु
विस्राव्य तैलाढकमत्र दद्यात्।
अजापयस्तुल्यविमिश्रितं तु
नतस्य यष्टीमधुकस्य कल्कम्॥ ३३॥
पृथक्पचेत्पञ्चपलं विपक्वं
तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णम्।
बस्तिप्रदानादिह सप्तरात्रात्
पीतं दशाहात्प्रकरोत्यरोगम्॥ ३५॥
तुलाद्रव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रव्यतुला मता।

साफ नागबलाका पञ्चाङ्ग ५ सेर, २५ सेर ४८ तोला जलमें पकाना चाहिये। चतुर्थांश रहनेपर उतार छानकर १ आढ़क अर्थात् ६ सेर ३२ तोला तैल तथा इतना ही बकरीका दूध तथा तगर व मौरेठी प्रत्येक २० तोलाका कल्क मिलाकर पकाना चाहिये। यह बढ़े हुए वातरक्तको शांत करता, वस्तिसे ७ दिन तथा पीनेसे १० दिनमें आरोग्यकर है। तुला अर्थात् ४०० तोलेभर द्रव्यमें एक द्रोण जल इसी प्रकार १ द्रोण जलमें १ तुला द्रव्य छोड़ना चाहिये॥ ३४-३५॥-

पिण्डतैलत्रयम्।

समधूच्छिष्टमञ्जिष्ठं ससर्जरसशारिवम्।
पिंडतैलं तदभ्यङ्गाद्वातरक्तरुजापहम्॥ ३६॥
शारिवासर्जमञ्जिष्ठायष्टीसिक्थैः पयोऽन्वितैः।
तैलं पक्वं विमञ्जिष्ठैः रुबोर्वा वातरक्तनुत्॥ ३७॥

(१)मोम, मजीठ, राल और शारिवाका कल्क तथा जल मिलाकर सिद्ध किया गया तैल वातरक्तको नष्ट करता है। इसी प्रकार(२) शारिवा, राल, मजीठ, मौरेठी व मोमका कल्क व दूध मिलाकर पकाया गया तैल अथवा (३) मजीठके विना और सब चीजें मिलाकर पकाया गया एरण्डतैल लगानेसे वातरक्त नष्ट होता है। यह "पिंडतैल" है॥ ३६॥ ३७॥

कैशोरगुग्गुलुः।

वरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम्।
प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलां च यथोक्तपरिमाणाम्॥ ३८
द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नेन।
विपचेदप्रमत्तो दर्व्या संघट्टयन्मुहुर्यावत्॥ ३९॥
अर्धक्षयितं तोयं जातं ज्वलनस्य सम्पर्कात्।
अवतार्य वस्त्रपूतं पुनरपि संसाधयेदयःपात्रे॥४०॥
सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य हिमोपलप्रख्ये।
त्रिफलाचूर्णार्धपलं त्रिकटोश्चूर्णं षडक्षपरिमाणम्॥ ४१
क्रिमिरिपुचूर्णार्धपलं कर्षकर्षं त्रिवृद्दन्त्योः।
पलमेकं च गुडूच्याः सर्पिषश्च पलाष्टकं क्षिपेदमलम्।
उपयुज्य चानुपानं यूषं क्षीरं सुगन्धि सलिलं च।
इच्छाहारविहारी भेषजमुपयुज्य सर्वकालमिदम्॥ ४३
तनुरोधि वातशोणितमेकजमथ द्वन्द्वजं चिरोत्थं च।
जयति स्रुतं परिशुष्कं स्फुटितं चाजानुजं चापि॥ ४४
व्रणकासकुष्ठगुल्मश्वयथूदरपांडुमेहांश्च।
मन्दाग्निं च विबन्धं प्रमेहपिडकांश्च नाशयत्याशु॥ ४५
सततं निषेव्यमाणः कालवशाद्धन्ति सर्वगदान्।
अभिभूय जरादोषं करोति कैशोरकं रूपम्॥४६॥
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थो जलं तत्र षडाढकम्।
गुडवद् गुग्गुलोः पाकः सुगन्धिस्तु विशेषतः॥४७॥

उत्तम भैंसके नेत्र तथा उदरके समान नीला तथा कुछ हरापन व लालिमा युक्त गुग्गुलु १ प्रस्थ, आंवला, हर्र, बहेड़ा प्रत्येक१ प्रस्थ, गुर्च २ प्रस्थ, जल ६ आढ़क मिलाकर कलछीसे चलाते हुए पकाना चाहिये। जब आधा जल जल

जाय, तब उतार छानकर फिर लोहेके वर्तनमें पकाना चाहिये । गाढ़ा हो जानेपर उतारना चाहिये । फिर ठण्ढा तथा कड़ा हो जानेपर कूट कूटकर त्रिफलाका चूर्ण प्रत्येक २ तोला, त्रिकटुका चूर्ण प्रत्येक २ तोला, वायविडंगका चूर्ण २ तोला, निसोथ व दन्ती प्रत्येकका चूर्ण १ तोला व गुर्च ४ तोला मिलाना चाहिये, फिर घी ३२ तोला मिलाकर १ माशेकी मात्रासे गोली बनानी चाहिये । इसको खाकर ऊपरसे यूष दूध या सुगन्धित (दालचीनी आदिसे सिद्ध) जल पीना चाहिये । इस ओषधिका सेवन करते हुए इच्छानुकूल आहार विहार करनेपर भी समस्त शरीरमें फैला हुआ, एकज तथा द्वन्द्वज, बहता हुआ तथा सूखा, अधिक समयका भी वातरक्त नष्ट होता है । तथा व्रण, कास, कुष्ठ, गुल्म, सूजन, उदररोग, मन्दाग्नि, विवन्ध व प्रमेहपिड़का नष्ट होती हैं । सदा सेवन करनेसे कुछ समयमें सभी रोगोंको नष्ट करता है । वृद्धता मिटती तथा जवानी आ जाती है । ऊपर लिखे अनुसार त्रिफला प्रत्येक एक प्रस्थ तथा जल ६ आढ़क छोड़ना चाहिये तथा गुड़के समान ही गुंगुलुका पाक करना चाहिये, पर गुग्गुलुकी जब सुगंधि उठने लगे, तब उतारना चाहिये ॥ ३८–४७ ॥

अमृताद्यो गुग्गुलुः ।

प्रस्थमेकं गुडूच्यास्तु अर्धप्रस्थं च गुग्गुलोः ।
प्रत्येकं त्रिफलायाश्च तत्प्रमाणं विनिर्दिशेत् ॥ ४८ ॥
सर्वमेकत्र संक्षुद्य साधयेत्त्वर्मणेऽम्भसि ।
पादशेषं परिस्राव्य पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ ४९ ॥
तावत्पचेत्कषायं तु यावत्सान्द्रत्वमागतम् ।
दन्तीव्योषविडङ्गानि गुडूचीत्रिफलात्वचः ॥ ५० ॥
ततश्चार्धपलं पूतं गृह्णीयाच्च प्रति प्रति ।
कर्षं तु त्रिवृतायाश्च सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ५१ ॥
तस्मिन्सुसिद्धे विज्ञाय कवोष्णे प्रक्षिपेद् बुधः ।
ततश्चाग्निबलं ज्ञात्वा तस्य मात्रां प्रदापयेत् ॥५२॥
वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् ।
दुष्टव्रणप्रमेहांश्च सामवातं भगन्दरम् ॥ ५३ ॥
नाड्याढ्यवातश्वयथून्सर्वानेतान्व्यपोहति ।
आश्विभ्यां निर्मितः पूर्वममृताद्यो हि गुग्गुलुः ॥
अर्धप्रस्थं त्रिफलायाः प्रत्येकमिह गृह्यते ॥ ५४ ॥

गुर्च ६४ तोला, गुग्गुलु ३२ तोला, त्रिफला प्रत्येक ३२ तो० सबको कूटकर १ द्रोण (२५ सेर ४८ तो०) जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर फिर पकाना चाहिये, पाक हो जाने पर दन्ती, त्रिकटु, वायविड़ङ्ग, गुर्च, त्रिफला प्रत्येकका कुटा हुआ चूर्ण २ तोला निसोथका चूर्ण १ तोला मिलाकर गोली बना रखनी चाहिये । इसकी मात्रा अग्निबलके अनुसार देनी चाहिये । वातरक्त, कुष्ठ, अर्श, अग्निमांद्य, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाड़ीव्रण, आढ्यवात (ऊरुस्तम्भ) तथा सूजनको नष्ट करता है । इसे भगवान् अश्विनीकुमारने बनाया था ॥ ४८–५४ ॥

अमृताख्यो गुग्गुलुः ।

अमृतायाश्च द्विप्रस्थं प्रस्थमेकं च गुग्गुलोः ।
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च ॥ ५५ ॥
सर्वमेतच्च संक्षुद्य क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि ।
पुनः पचेत्पादशेषं यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥ ५६ ॥
दन्तीचित्रकमूलानां कणाविश्वफलात्रिकम् ।
गुडूचीत्वग्विडङ्गानां प्रत्येकार्धपलोन्मितम् ॥ ५७ ॥
त्रिवृताकर्षमेकं तु सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
सिद्धे चोष्णे क्षिपेत्तत्र त्वमृता गुग्गुलोःपरम्॥५८॥
यथावह्निबलं खादेदम्लपित्ती विशेषतः ।
वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् ॥५९॥
दुष्टव्रणप्रमेहांश्च सामवातं भगन्दरम् ।
नाड्याढ्यवातश्वयथून्हन्यात्सर्वामयानयम् ॥ ६० ॥
अश्विभ्यां निर्मितो ह्येषोऽमृताख्यो गुग्गुलुः पुरा ।

गुर्च २ प्रस्थ, गुग्गुलु १ प्रस्थ, त्रिफला प्रत्येक १ प्रस्थ, पुनर्नवा १ प्रस्थ सबको दुरकूचाकर १ द्रोण जलमें मंद अग्निसे पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर फिर पकाना चाहिये, पाक सिद्ध हो जानेपर, दन्ती, चीतकी जड़, छोटी पीपल, सोंठ त्रिफला, गुर्च दालचीनी, वायविड़ंग प्रत्येक २ तोला, निसोथ १ तोला सबको चूर्ण कर गरम गुग्गुलुमें ही मिला देना चाहिये । यह "अमृतागुग्गुलु" अग्निबलादिके अनुसार सेवन करनेसे अम्लपित्त, वातरक्त, कुष्ठ, अर्श, अग्निमांद्य, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर नाड़ीव्रण, ऊरुस्तम्भ, सूजन आदि समस्त रोगोंको नष्ट करता है । सर्व प्रथम भगवान् अश्विनीकुमारने इसे बनाया था ॥ ५५–६० ॥–

योगसारामृतः ।

शतावरी नागवला वृद्धदारकमुसटा ।
पुनर्नवामृता कृष्णा वाजिगन्धा त्रिकण्टकम्॥६१॥
पृथग्दशपलान्येषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
तदर्धशर्करायुक्तं चूर्णं संमर्दयेद् बुधः ॥ ६२ ॥
स्थापयेत्सुदृढे भाण्डे मध्वर्धाढकसंयुतम् ।
घृतप्रस्थे समालोड्य त्रिसुगन्धिपलेन तु ॥ ६३ ॥

---

१ गुग्गुलुका पाक कड़ा ही करना चाहिये, अन्यथा फोफन्दी (सफेदी) लग जानेसे शीघ्र ही सड़ जाता है ।

तं खादेदिष्टचेष्टान्नो यथावह्निवलं नरः।
वातरक्तं क्षयं कुष्ठं कार्श्यं पित्तास्रसम्भवम् ॥ ६४॥
वातपित्तकफोत्थांश्च रोगानन्यांश्च तद्विधान्।
हत्वा करोति पुरुषं वलीपलितवर्जितम् ॥ ६५॥
योगसारामृतो नाम लक्ष्मीकान्तिविवर्धनः।
दिवास्वप्नाग्निसन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा।
कट्वूष्णगुर्वभिष्यन्दिलवणाम्लानि वर्जयेत् ॥ ६६॥

शतावरी, नागवला, विधारा, भुईआंवला पुनर्नवा, गुर्च, छोटी पीपल, असगन्ध, गोखुरू, प्रत्येक ८ छ० कूट छानकर जितना चूर्ण तयार हो, उससे आधी शक्कर तथा शहद १॥ सेर ८ तोला, घी ६४ तो० और दालचीनी, तेजपात, इलायची प्रत्येकका चूर्ण ४ तोला मिलाकर रखना चाहिये। इसको अग्निवलादिके अनुसार सेवन करने तथा यथेष्ट आहार विहार करनेसे वातरक्त, क्षय, कुष्ठ, कार्श्य, पित्तरक्त वात-पित्त-कफजन्य अन्य रोग नष्ट होते हैं और शरीर वलीपलित रहित होता है। यह "योगसारामृत" शोभा व कान्ति वढ़ानेवाला है। इस औषधके सेवन कालमें दिनमें सोना, अग्नि तापना, व्यायाम, मैथुन तथा कटु, उष्ण, गुरु, अभिष्यन्दि, नमकीन और खट्टे पदार्थोंको त्यागना चाहिये ॥ ६१-६६॥

वृहद् गुडूचीतैलम्।

तुलां पचेज्जलद्रोणे गुडूच्याः पादशेषितम्।
क्षीरद्रोणं च ताभ्यां तु पचेत्तैलाढकं शनैः ॥ ६७॥
कल्कैर्मधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयगणैस्तथा।
कुष्ठैलागुरुमृद्वीका मांसी व्याघ्रनखं नखी ॥६८॥
हरेणु सारिवा व्योषं शताह्वा भृङ्गशारिवे।
त्वक्पत्रे वचविक्रान्ता स्थिरा चामलकी तथा ॥६९
नतं केशरह्रीवेरपद्मकोत्पलचन्दनैः।
सिद्धं कर्षसमैर्भागैः पानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥ ७०॥
परं वातास्रजान्हन्ति सर्वजानन्तरास्थितान्।
धन्यं पुंसवनं स्त्रीणां गर्भदं वातपित्तनुत् ॥ ७१॥
स्वेदकण्डूरुजापामाशिरःकम्पार्दितामयान्।
हन्याद् व्रणकृतान्दोषान्गुडूचीतैलमुत्तमम् ॥ ७२॥

गुर्च ५ सेर जल २५ से० ४८ तो० मिलाकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये। फिर उसी क्वाथमें दूध २५ सेर ४८ तो०, तिलतैल ६ सेर ३२ तो० तथा मौरेठी, मजीठ, जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, मेदा, महामेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवंती, मौरेठी) कूठ, इलायची, अगर, मुनक्का, जटामांसी, व्याघ्रनख, नखी, सम्भालूके बीज, ऋद्धि, त्रिकटु, सौंफ, भांगरा, सारिवा, दालचीनी, तेजपात, वच, वराहकान्ता, शाल-पर्णी, आंवला, तगर, नागकेशर, सुगन्धवाला, पद्माख, नीलोफर, तथा चन्दन प्रत्येक एक तोलेका कल्क वना छोड़कर तैलपाक करना चाहिये। यह तैल पीने, मालिश तथा अनुवासन वस्तिद्वारा प्रयोग करनेसे वातरक्तज तथा सन्निपातज अन्तरस्थ रोगोंको नष्ट करता है। यह सन्तान उत्पन्न करता, स्त्रियोंको गर्भधारण करता तथा वातपित्तज रोगोंको नष्ट करता, तथा स्वेद, खुजली, पीड़ा, पामा, शिरःकम्प, अर्दित तथा व्रणदोषोंको नष्ट करता है, यह उत्तम "गुडूचीतैल" है ॥ ६७-७२॥

इति वातरक्ताधिकारः समाप्तः।

अथोरुस्तम्भाधिकारः।

सामान्यतश्चिकित्साविचारः।

श्लेष्मणः क्षपणं यत्स्यान्न च मारुतकोपनम्।
तत्सर्वं सर्वदा कार्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥ १॥
तस्य न स्नेहनं कार्यं न वस्तिर्न च रेचनम्।
सर्वो रूक्षः क्रमः कार्यस्तत्रादौ कफनाशनः ॥ २॥
पश्चाद्वातविनाशाय कृत्स्नः कार्यः क्रियाक्रमः।

जो कफको शान्त करे और वायुको न वढ़ावे, ऐसी चिकित्सा सदा ऊरुस्तम्भकी करनी चाहिये। इसमें स्नेहन, वस्ति और विरेचन न करना चाहिये। प्रथम कफको शान्त करनेके लिये समस्त रूक्ष चिकित्सा करनी चाहिये। फिर वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १॥ २॥-

केचन योगाः।

शिलाजतुं गुग्गुलुं वा पिप्पलीमथ नागरम् ॥ ३॥
ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा।
भल्लातकामृताशुण्ठीदारुपथ्यापुनर्नवाः ॥ ४॥
पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिवर्हणाः।
पिप्पलीपिप्पलीमूलभल्लातकाथ एव वा ॥ ५॥
कल्को वा समधुर्देय ऊरुस्तम्भविनाशनः।
त्रिफलाचव्यकटुकं ग्रन्थिकं मधुना लिहेत् ॥ ६॥
ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत्।
लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् ॥ ७॥
सुखाम्बुना पिबेद्वापि चूर्णं षड्धरणं नरः।
पिप्पलीवर्धमानं वा माक्षिकेण गुडेन वा ॥ ८॥
ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गण्डीरारिष्टमेव वा।
चव्याभयाग्निदारूणां समधुः स्यादूरुग्रहे ॥ ९॥

शिलाजतु, गुग्गुलु, छोटी पीपल अथवा सोंठ, गोमूत्रके साथ अथवा दशमूलके काढ़ेके साथ पीना चाहिये । इसी प्रकार मिलावां, गुर्च, सोंठ, देवदारु, हर्र, तथा पुनर्नवाका चूर्ण दशमूलके क्वाथके साथ पीनेसे ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है । अथवा छोटी पीपल, पिपरामूल व मिलावेंका क्वाथ अथवा कल्क शहदके साथ चाटना चाहिये । अथवा त्रिफला, चव्य, कुटकी, तथा पिपरामूलका चूर्ण शहदसे चाटना चाहिये । अथवा (इन्हींके साथ सिद्ध) गुग्गुलु गोमूत्रके साथ पीना चाहिये । अथवा त्रिफला व कुटकीका चूर्ण शहदके साथ चाटना चाहिये । अथवा कुछ गरम जलके साथ षड्धरण (वातव्याधिमें कहा) योगका सेवन अथवा वर्धमान पिप्पलीका शहद अथवा गुड़के साथ, अथवा गण्डीरारिष्ट अथवा चव्य, बड़ी हर्रका छिल्का, चीतकी जड़ और देवदारुका कल्क शहदके साथ सेवन करना चाहिये ॥ ३-९ ॥

लेपद्वयम् ।

कल्कं दिह्याच्च मूत्राढ्यैः करञ्जफलसर्षपैः ।
क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासंयुतं भिषक् ॥ १० ॥
गाढमुत्सादनं कुर्यादूरुस्तम्भे सलेपनम् ।

(१) कञ्जा और सरसोंका गोमूत्रके साथ कल्क कर लेप करना चाहिये अथवा (२) शहद, सरसों, वल्मीककी मिट्टीका उबटन लगाना तथा इसीका लेप करना चाहिये ॥ १० ॥-

विहारव्यवस्था ।

कफक्षयार्थं व्यायामेष्वेनं शक्येषु योजयेत् ॥११॥
स्थलान्याक्रामयेत्कल्यं प्रतिस्रोतो नदीस्तरेत् ।

कफके क्षीण करनेके लिये जितना हो सके, व्यायाम कराना चाहिये । प्रातःकालः कुदाना तथा बहाव जिस तरफका हो उससे उल्टा नदियोंमें तैराना चाहिये ॥ ११ ॥-

अष्टकट्वरतैलम् ।

पलाभ्यां पिप्पलीमूलनागरादष्टकट्वरः ॥ १२ ॥
तैलप्रस्थः समो दध्ना गृध्रस्यूरुग्रहापहः ।
अष्टकट्वरतैलेऽत्र तैलं सार्षपमिष्यते ॥ १३ ॥

छोटी पीपल, सोंठ प्रत्येक एक पल, सरसों का तैल १ प्रस्थ, दही १ प्रस्थ तथा मट्ठा (मक्खनसहित मथा) ८ प्रस्थ मिलाकर पकाया गया तैल मालिश करनेसे गृध्रसी और ऊरुस्तम्भको नष्ट करता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

कुष्ठादितैलम् ।

कुष्ठश्रीवेष्टकोदीच्यं सरलं दारु केशरम् ।
अजगन्धाश्वगन्धा च तैलं तैः सार्षपं पचेत् ॥१४॥
सक्षौद्रं मात्रया तस्मादूरुस्तम्भार्दितः पिबेत् ।
सैन्धवाद्यं हितं तैलं वर्षाभ्वमृतगुग्गुलुः ॥ १५ ॥

कूठ, गन्धाविरोजा, सुगन्धवाला, सरल धूप, देवदारु, नागकेशर, अजवाइन सरसोंके तैलसे चतुर्थांश तथा तैलसे चतुर्गुण जल मिलाकर पकाना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर मात्राके अनुसार शहद मिलाकर इसे पीना चाहिये । सैन्धवादि तैल अथवा पुनर्नवायुक्त अमृता गुग्गुलुका सेवन करना हितकर है ॥ १४-१५ ॥

इत्यूरुस्तम्भाधिकारः समाप्तः ।

अथामवाताधिकारः ।

सामान्यतश्चिकित्सा ।

लङ्घनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च ।
विरेचनं स्नेहपानं बस्तयश्चामसारुते ॥ १ ॥
सैन्धवाद्येनानुवास्यः क्षारबस्तिः प्रशस्यते ।
आमवाते पञ्चकोलसिद्धं पानान्नमिष्यते ॥ २ ॥
रूक्षः स्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकैस्तथा ।

लंघन, स्वेदन, तिक्त, कटु, अग्निदीपक, विरेचन, स्नेहपान और बस्ति आमवातमें हितकर होती है । सैन्धवादि तैलसे अनुवासन, क्षारबस्ति तथा पञ्चकोलसे सिद्ध अन्नपान तथा बालूकी पोटलीसे रूक्ष (गरम करके वेदनायुक्त अङ्गोंमें) स्वेदन करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

शट्यादिपाचनम् ।

शटी शुण्ठ्यभया चोग्रा देवाह्वातिविषामृता ॥ ३ ॥
कषायमामवातस्य पाचनं रूक्षभोजनम् ।

कचूर, सोंठ, बड़ी हर्रका छिल्का, दूधिया वच, देवदारु, अतीस तथा गुर्च इनका क्वाथ आमवातका पाचन करता है तथा इस रोगमें रूखा ही भोजन करना चाहिये ॥ ३ ॥-

शट्यादिकल्कः ।

शटीविश्वौषधीकल्कं वर्षाभूक्वाथसंयुतम् ॥ ४ ॥
सप्तरात्रं पिबेज्जन्तुरामवातविपाचनम् ।

कचूर तथा सोंठका कल्क, पुनर्नवाके क्वाथके साथ ७ दिन-तक आमवातके पाचनके लिये पीना चाहिये ॥ ४ ॥

रास्नादशमूलक्वाथः ।

दशमूलामृतैरण्डरास्नानागरदारुभिः ॥ ५ ॥
क्वाथो रुबूकतैलेन सामं हन्त्यनिलं गुरुम् ।

दशमूल, गुर्च, एरण्डकी छाल, रासन, सोंठ तथा देवदारुका क्वाथ एरण्डतैलके साथ पीनेसे कठिन आमवात नष्ट होता है ॥ ५ ॥-

एरण्डतैलप्रयोगः ।

दशमूलीकषायेण पिबेद्वा नागराम्भसा ।
कुक्षिवस्तिकटीशूले तैलमेरण्डसम्भवम् ॥ ६ ॥

दशमूलके क्वाथ अथवा सोंठके क्वाथके साथ एरण्डतैल पीनेसे पेट मूत्राशय तथा कमरका दर्द शान्त होता है ॥ ६ ॥

रास्नापञ्चकम् ।

रास्नां गुडूचीमेरण्डं देवदारु महौषधम् ।
पिबेत्सर्वाङ्गगे वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ ७ ॥

रासन, गुर्च, एरण्डकी छाल, देवदारु, तथा सोंठका क्वाथ सर्वाङ्गवात, सन्ध्यस्थि तथा मज्जागत वात तथा आमवात पीना चाहिये ॥ ७ ॥

रास्नासप्तकम् ।

रास्नामृतारग्वधदेवदारु-
त्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम् ।
क्वाथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं
जङ्घोरुपृष्ठत्रिकपार्श्वशूली ॥ ८ ॥

रासन, गुर्च, अमलतासका गूदा, देवदारु, गोखरू, एरण्डकी छाल तथा पुनर्नवाका काढ़ा, सोंठका चूर्ण मिलाकर जंघा, ऊरु, पृष्ठ, कमर व पसलियोंके शूलमें पीना चाहिये ॥ ८ ॥

विविधा योगाः।

शुण्ठीगोक्षुरकक्वाथः प्रातः प्रातर्निषेवितः ।
सामवाते कटीशूले पाचनो रुक्प्रणाशनः ॥ ९ ॥
आमवाते कणायुक्तं दशमूलरसं पिबेत् ।
खादेद्वाप्यभयाविश्वं गुडूचीं नागरेण वा ॥ १० ॥
एरण्डतैलयुक्तां हरीतकीं भक्षयेन्नरो विधिवत् ।
आमानिलार्तियुक्तो गृध्रसीवृद्ध्यर्दितो नित्यम्॥११॥
कर्षं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत्सदा ।
आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम् ॥ १२ ॥
पञ्चकोलकचूर्णं च पिबेदुष्णेन वारिणा ।
मन्दाग्निशूलगुल्मामकफारोचकनाशनम् ॥ १३ ॥

सोंठ व गोखरूका काढ़ा प्रातःकाल सेवन करनेसे आमका पाचन व पीड़ाका नाश करता है । कटिशूलमें इसे विशेषतया पीना चाहिये । अथवा छोटी पीपलके चूर्णके साथ दशमूलका क्वाथ अथवा बड़ी हर्रका छिल्का व सोंठ, अथवा गुर्च, व सोंठ अथवा एरण्ड तैलके साथ हर्रके छिल्केके चूर्णको आमवात, गृध्रसी वृद्धि तथा अर्दितसे पीड़ित पुरुष नित्य खावे । सोंठका चूर्ण १ तोला काञ्जीके साथ सदा पीनेसे आमवात तथा कफवात नष्ट होता है । इसी प्रकार पञ्चकोलका चूर्ण गरम जलके साथ पीनेसे मन्दाग्नि शूल, गुल्म, आम, कफ, तथा अरुचि नष्ट होती है ॥ ९–१३ ॥

अमृतादिचूर्णम् ।

अमृतानागरगोक्षुरमुण्डतिकावरुणकैः कृतं चूर्णम् ।
मस्त्वारनालपीतमामानिलनाशनं ख्यातम् ॥ १४ ॥

गुर्च, सोंठ, गोखरू, मुण्डी, तथा वरुणकी छालका चूर्ण दहीके तोड़ अथवा काञ्जीके साथ पीनेसे आमवात नष्ट होता है ॥ १४ ॥

वैश्वानरचूर्णम् ।

मणिमन्थस्य भागौ द्वौ यमान्यास्तद्वदेव तु ।
भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम् ॥१५॥
दश द्वौ च हरीतक्याः श्लक्ष्णचूर्णीकृताः शुभाः ।
मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ १६ ॥
पीतं जयत्यामवातं गुल्मं हृद्वस्तिजान् गदान् ।
प्लीहानं हन्ति शूलादीनानाहं गुदजानि च ॥१७॥
विबन्धं जाठरान् रोगांस्तथा वै हस्तपादजान् ।
वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ १८ ॥

सेंधानमक २ भाग, अजवाइन २ भाग, अजमोद ३ भाग, सोंठ ५ भाग, बड़ी हर्रका छिल्का १२ भाग सबका महीन चूर्ण कर दहीके तोड़, काञ्जी, मट्ठा, घी, अथवा गरम जलके साथ पीनेसे आमवात, गुल्म, हृदय तथा वस्तिके रोग, प्लीहा, शूल, अफारा, बवासीर, मलकी बद्धता, उदर तथा हाथ, पैरोंके रोग नष्ट होते हैं । इसका नाम "वैश्वानर" चूर्ण, है । यह वायुका अनुलोमन करता है ॥ १५–१८ ॥

अलम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषां गोक्षुरकं गुडूचीं वृद्धदारकम् ।
पिप्पलीं त्रिवृतां मुस्तं वरुणं सपुनर्नवम् ॥ १९ ॥
त्रिफलां नागरं चैव सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
मस्त्वारनालतक्रेण पयोमांसरसेन वा ॥
आमवातं निहन्त्याशु श्वयथुं सन्धिसंस्थितम् ॥२०॥

गोरखमुण्डी, गोखरू, गुर्च, विधारा, छोटी पीपल, निसोथ, नागरमोथा, वरुणकी छाल, पुनर्नवा, त्रिफला, सोंठ इनका महीन चूर्णकर दहीके तोड़, काञ्जी, मट्ठा, दूध अथवा मांस-

रसके साथ सेवन करनेसे यह "अलम्बुंषादिचूर्ण" आमवात तथा सन्धिगत सूजनको नष्ट करता है ॥ १९ ॥ २० ॥

शतपुष्पादिचूर्णम् ।

शतपुष्पा विडङ्गञ्च सैन्धवं मरिचं समम् ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमग्निसन्दीपनं परम् ॥ २१ ॥

सौंफ, वायविड़ङ्ग, सेंधानमक, काली मिर्च समान भाग ले चूर्ण कर गरम जलके साथ पीनेसे जठराग्नि दीप्त होती है ॥ २१ ॥

भागोत्तरचूर्णम् ।

हिंगु चव्यं विडं शुण्ठी कृष्णाजाजी सपौष्करम् ।
भागोत्तरमिदं चूर्णं पीतं वातामजिद्भवेत् ॥ २२ ॥

भुनी हींग, चव्य, विड़नमक, सोंठ, कालाजीरा, तथा पोहकरमूल उत्तरोत्तर भागवृद्ध (अर्थात् हींग १ भाग, चव्य २ भाग, विड़नमक ३ भाग आदि) लेकर चूर्ण करना चाहिये । यह आमवातको नष्ट करता है ॥ २२ ॥

योगराजगुग्गुलुः ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं यमानीं कारवीं तथा ।
विडङ्गान्यजमोदाञ्च जीरकं सुरदारु च ॥ २३ ॥
चव्यैलासैन्धवं कुष्ठं रास्नागोक्षुरधान्यकम् ।
त्रिफलामुस्तकं व्योषं त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ २४ ॥
तालीसपत्रं पत्रं च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं तु गुग्गुलुम् ॥२५
संमर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ।
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहारवानपि ॥ २६ ॥
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ।
आमवाताढ्यवातादीन्क्रिमिदुष्टव्रणानपि ॥ २८ ॥
प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ।
अग्निं च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा ।
वातरोगाञ्जयत्येष सन्धिमज्जगतानपि ॥ २८ ॥

चीतकी, जड़, पिपरामूल, अजवाइन, काला जीरा, वायविडंग, अजमोद, सफेद जीरा, देवदारु, चव्य, छोटी इलायची, सेंधानमक, कूठ, रासन, गोखुरू धनियां त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकटु, दालचीनी, खश, यवक्षार, तालीशपत्र, तथा तेजपात सबका महीन चूर्ण करना चाहिये । जितना यह हो उतना ही गुग्गुलु छोड़ मिलाकर घीसे गोली बना लेनी चाहिये । इसकी मात्रा सेवन करते हुए यथेष्ट आहार विहार करना चाहिये । यह "योगराजनामक" योग अमृतके तुल्य गुण करता है । यह आमवात, ऊरुस्तम्भ, क्रिमिरोग, दुष्ट व्रण, प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह, अर्शको नष्ट करता, अग्निको दीप्त, तेज, तथा बलकी वृद्धि तथा सन्धि व मज्जागत वातरोगोंको भी नष्ट करता है ॥ २३–२८ ॥

सिंहनादगुग्गुलुः ।

पलत्रयं कषायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम् ।
सौगन्धिकपलं चैकं कौशिकस्य पलं तथा ॥ २९ ॥
कुडवं चित्रतैलस्य सर्वमादाय यत्नतः ।
पाचयेत्पाकविद्वैद्यः पात्रे लौहमये दृढे ॥ ३० ॥
हन्ति वातं तथा पित्तं श्लेष्माणं खञ्जपंगुताम् ।
श्वासं सुदुर्जयं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ ३१ ॥
कुष्ठानि वातरक्तं च गुल्मशूलोदराणि च ।
आमवातं जयेदेतदपि वैद्यविवर्जितम् ॥ ३२ ॥
एतदभ्यासयोगेन जरापलितनाशनम् ।
सर्पिस्तैलरसोपेतमश्नीयाच्छालिषष्टिकम् ॥ ३३ ॥
सिंहनाद इति ख्यातो रोगवारणदर्पहा ।
वह्निवृद्धिकरः पुंसां भाषितो दण्डपाणिना ॥३४॥

त्रिफलाका काथ १२ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, गुग्गुलु ४ तोला, एरण्डतैल १६ तोला सबको लोहेकी कढ़ाईमें पकाना चाहिये । यह गुग्गुलु वातपित्तकफके रोग, तथा खञ्ज, पंगुता, कठिन श्वास, पांचों प्रकारके कास, कुष्ठ, वातरक्त, गुल्म, शूल, उदररोग, तथा आमवातको नष्ट करता है । तथा सदैव सेवन करनेसे रसायन होता, वृद्धावस्था व बालोंकी सफेदीको दूर करता है । इसमें घी, तैल, मांसरस युक्त शालि या साठीके चावलोंका पथ्य देना चाहिये । यह "सिंहनादनामक" गुग्गुलु रोगरूपी हाथीके दर्पको चूर्ण करता तथा अग्निवृद्धि करता है । इसे दण्डपाणिने प्रकाशित किया है * ॥ २९–३४ ॥

---

१ कुछ पुस्तकोंमें इसके गुणोंमें इतना और बढ़ाया गया है "प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् । अग्निं च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा ॥ वातरोगाञ्जयत्येष सन्धिमज्जागतानपि ॥"

* बृहत्सिंहनादगुग्गुलुः । यहांपर एक बृहत्सिंहनादगुग्गुलुका भी पाठ मिलता है । वह इस प्रकार है—"पिण्डितां गुग्गुलोर्मानीं कटुतैलपलाष्टके । प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थौ सार्द्धद्रोणे जले पचेत् ॥ पादशेषे च पूतं च पुनरग्नावधिश्रयेत् । त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडंगामरदारु च ॥ गुडूच्यग्नित्रिवृद्दन्तीचवीशूरणमानकम् । पारदं गन्धकं चैव प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥ सहस्रं कानकफलं सिद्धं संचूर्ण्य निक्षिपेत् । ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम् ॥" गुग्गुलु ३२ तोला, कडुआ तैल ३२ तोलामें

भागोत्तरमलम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषागोक्षुरकत्रिफलानागरामृताः ।
यथोत्तरं भागवृद्धया श्यामाचूर्णं च तत्समम् ॥३५॥
पिबेन्मस्तुसुरातक्रकाञ्जिकोष्णोदकेन वा ।
पीतं जयत्यामवातं सशोथं वातशोणितम् ॥
त्रिकजानूरुसन्धिस्थं ज्वरारोचकनाशनम् ॥ ३६ ॥

गोरखमुण्डी १ भाग, गोखरू २ भाग, त्रिफला मिलित ३ भाग, सोंठ ४ भाग, गुर्च ५ भाग, निसोथ १५ भाग सबका महीन चूर्ण कर दहीके तोड़, शराब, मट्ठा, काञ्जी या गरमजलके साथ पीना चाहिये । यह आमवात, सूजन, वातरक्त, कमर, घुटने तथा जंघाओंके शूल, शोथ व ज्वर तथा अरुचिको नष्ट करता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

त्रिफलापथ्यादिचूर्णम् ।

पथ्याक्षधात्रीत्रिफला भागवृद्धावयं क्रमः ।
पथ्याविश्वयमानीभिस्तुल्याभिश्चूर्णितं पिबेत् ॥३७॥
तक्रेणोष्णोदकेनाथ अथवा काञ्जिकेन च ।
आमवातं निहन्त्याशु शोथं मन्दाग्नितामपि ॥३८॥

हर्र १ भाग, बहेड़ेका छिल्का २ भाग, आंवला ३ भाग, सबका महीन चूर्ण कर अथवा हर्र, अजवाइन व सोंठ समान भाग ले चूर्ण कर मट्ठा, गरम जल अथवा काञ्जीके साथ सेवन करनेसे आमवात, शोथ तथा मन्दाग्निको नष्ट करता है * ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अजमोदाद्यवटकः ।

अजमोदामरिचपिप्पलीविडङ्गसुरदारुचित्रकशताह्वाः ।
सैन्धवपिप्पलिमूलं भागा नवकस्य पलिकाः स्युः ॥३९॥
शुण्ठी दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदारस्य ।
पथ्यापञ्चपलानि सर्वाण्येकत्र कार्यंच्चूर्णम् ॥ ४० ॥
समगुडवटकं भजतश्चूर्णं वाप्युष्णवारिणा पिबतः ।
नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुकष्टास्तु ॥ ४१ ॥
विश्वाचीप्रतितूनीतूनीहृद्रोगाश्च गृध्रसी चोग्रा ।
कटिवस्तिगुदस्फुटनं स्फुटनं चैवास्थिजङ्घयोस्तीव्रम् ४२
श्वयथुस्तथाङ्गसन्धिषु ये चान्येऽप्यामवातसम्भूताः ।
सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्यांशुविध्वस्तम् ॥ ४३ ॥

अजमोद, काली मिर्च, छोटी पीपल, वायविडङ्ग, देवदारु, चीतकी जड़, सौंफ, सेंधानमक, पिपरामूल, प्रत्येक एक एक पल, सोंठ १० पल, विधारा १० पल, तथा हरड़ ५ पल सबका एकमें चूर्ण करना चाहिये । फिर समान गुड़ मिला गोली बना अथवा चूर्ण ही गरम जलके साथ खानेसे आमवातके समस्त रोग, तूनी, प्रतितूनी, विश्वाची, हृद्रोग, गृध्रसी कमर, वस्ति व गुदाकी पीड़ा तथा हड्डियों व पिंडलियोंकी पीड़ा,

---

मिलाकर आंवला १२८ तोला, हर्र १२८ तोला, बहेड़ा, १२८ तोला सब एकमें मिलाकर जल ३८ सेर ३२ तो० मिलाकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर फिर अग्निमें पकाना चाहिये । जब गाढ़ा हो जावे, तब त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, वायविड़ंग, देवदारु, गुर्च, चीतकी जड़, निसोथ, दन्तीकी छाल, चव्य, शूरण मानकन्द प्रत्येक २ तोलाका चूर्ण और पारा २ तो०, गन्धक २ तो० की कज्जली बनाकर छोड़ना चाहिये । तथा तैयार हो जानेपर १००० शुद्ध जमालगोटेके बीज मिला देने चाहियें । इसकी मात्रा २ माषा खाकर ऊपरसे गरम जल पीना चाहिये । इससे विरेचन होगा । इसकी मात्रा वर्तमान समयमें ४ रत्तीसे १ माषाकी होगी ॥

* **बृहत्सैन्धवतैलम्** । यहां "सैन्धवाद्यतैल" कुछ पुस्तकोंमें और मिलता है । उसका पाठ यह है–" सैन्धवं त्रिफला रास्ना पिप्पली गजपिप्पली । सर्जिका मरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौवर्चलं विडम् ॥ यमान्यौ पुष्कराजाजी मधुकं शतपुष्पिका । पलार्द्धिकैः पचेदेतैः प्रस्थमेरण्डतैलतः ॥ प्रस्थाम्बु शतपुष्पायाः प्रत्येकं मस्तुकाञ्जिके । दद्याद् द्विगुणिते पानवस्त्यभ्यङ्गप्रयोजितम् ॥ आमवातहरं श्रेष्ठं सर्ववातघ्नमिदम् । कटीजानूरुसन्धिस्थे पार्श्वहृद्वंक्षणाश्रये ॥ शस्तं वातान्त्रवृद्धौ च सैन्धवाद्यमिदं महत् ॥ " सेंधानमक, त्रिफला, रासन, छोटी पीपल, गजपीपल, सज्जीखार, काली मिर्च, कूठ, सोंठ, कालानमक, विड़नमक, अजवाइन, अजमोद, पोहकरमूल, जीरा, मोरेठी, सौंफ प्रत्येक २ तो० का कल्क तथा मूर्छित एरण्डतैल १ सेर ९ छ० ३ तो०, सौंफका क्काथ १ सेर ९ छ० ३ तो०, दहीका तोड़ ३ सेर १६ तो०, काञ्जी ३ सेर १६ तो० मिलाकर तैल पाक कर लेना चाहिये । यह तैल पीने अथवा वस्ति या मालिशद्वारा प्रयोग करनेसे आमवातको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है । तथा समस्त वातरोगोंको नष्ट करता, अग्नि दीप्त करता तथा कमर, जानु, ऊरु, सन्धियों तथा पार्श्व, हृदय और वंक्षणाश्रित वायुको नष्ट करता तथा वातवृद्धि व अन्त्रवृद्धिको शान्त करता है ।

एरण्डकतैलमूर्छाविधिः " विकसा मुस्तकं धान्यं त्रिफला वैजयन्तिका । नाकुली वनखर्जूरं वटशुङ्गा निशायुगम् ॥ नलिका भेषजं देयं केतकी च समं समम् ॥ प्रस्थे देयं शाणमितं मूर्छने दधिकाञ्जिकम् ॥ " १ प्रस्थ द्रवद्वैगुण्यात् २ प्रस्थ एरण्डतैलमें मजीठ, मोथा, धनियां, त्रिफला, अरणी, रासन, खजूर, बरगदके अंकुर, हल्दी, दारुहल्दी, नाड़ी, सोंठ, केवड़ाके फूल प्रत्येक ३ माशे छोड़कर दही व काञ्जी प्रत्येक १ प्रस्थ तथा जल ४ प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये ॥

शरीरकी सन्धियोंका शोथ तथा अन्य समस्त आम था वातसे उत्पन्न होनेवाले रोग सूर्यकी किरणोंसे नष्ट हुए अन्धकारके समान अदृश्य हो जाते हैं ॥ ३९-४३ ॥

नागरघृतम् ।

नागरक्वाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
चतुर्गुणेन तेनाथ केवलेनोदकेन वा ॥ ४४ ॥
वातश्लेष्मप्रशमनमग्निसंदीपनं परम् ।
नागरं घृतमित्युक्तं कट्यामशूलनाशनम् ॥ ४५ ॥

चतुर्गुण सोंठका क्वाथ तथा चतुर्थांश उसीका कल्क अथवा केवल कल्क और चतुर्गुण जल मिलाकर घी १ प्रस्थ पकाना चाहिये । यह घी वात, कफको शान्त, अग्निको दीप्त तथा कमर आदिमें होनेवाले शूलको नष्ट करता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अमृताघृतम् ।

अमृतायाः कषायेण कल्केन च महौषधात् ।
मृद्वग्निना घृतप्रस्थं वातरक्तहरं परम् ॥ ४६ ॥
आमवाताढ्यवातादीन् क्रिमिदुष्टव्रणानपि ।
अर्शांसि गुल्मशूलं च नाशयत्याशु योजितम् ॥४७

गुर्चके काढ़े और सोंठके कल्कको छोड़कर मन्द आंचसे पकाया गया १ प्रस्थ घी वातरक्त, आमवात, ऊरुस्तम्भ, क्रिमिरोग, दुष्टव्रण, अर्श तथा गुल्म, व शूलको नष्ट करता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

हिंग्वादिघृतम् ।

हिङ्गु त्रिकटुकं चव्यं माणिमन्थं तथैव च ।
कल्कान्कृत्वा च पलिकान्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥४८
आरनालाढकं दत्त्वा तत्सर्पिर्जठरापहम् ।
शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटीग्रहम् ।
नाशयेद्ग्रहणीदोषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ ४९ ॥

हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, चव्य, सेंधानमक, प्रत्येक ४ तोलाका कल्क, घी १ प्रस्थ (१ सेर ९ छ० ३ तोला) तथा काञ्जी ६ सेर ३२ तोला मिलाकर पकाया गया घृत सेवन करनेसे उदररोग, शूल, विबन्ध, अफारा, आमवात, कमरका दर्द तथा ग्रहणीरोग नष्ट होते हैं और अग्नि दीप्त होता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

शुण्ठीघृतानि ।

पुष्ट्यर्थं पयसा साध्यं दध्ना विण्मूत्रसंग्रहे ।
दीपनार्थं मतिमता मस्तुना च प्रकीर्तितम् ॥५० ॥
सर्पिर्नागरकल्केन सौवीरकचतुर्गुणम् ।
सिद्धमग्निकरं श्रेष्ठमामवातहरं परम् ॥ ५१ ॥

(१)पुष्टिके लिये दूधके साथ (२) मल मूत्रकी रुकावटके लिये दहीके साथ तथा (३) अग्निदीपनके लिये दहीके तोड़के साथ सोंठका कल्क छोड़कर घी सिद्ध करना चाहिये । इसी प्रकार (४) सोंठका कल्क और चतुर्गुण सौवीरक (काञ्जीभेद) मिलाकर पकाया गया घृत अग्निको दीप्त करता तथा आमवातको नष्ट करता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

रसोनपिण्डः ।

रसोनस्य पलशतं तिलस्य कुडवं तथा ।
हिंगु त्रिकटुकं क्षारौ पञ्चैव लवणानि च ॥ ५२ ॥
शतपुष्पा तथा कुष्ठं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।
अजमोदा यमानी च धान्यकं चापि बुद्धिमान् ॥५३
प्रत्येकं तु पलं चैषां सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
घृतभाण्डे दृढे चैतत्स्थापयेद्दिनषोडश ॥५४ ॥
प्रक्षिप्य तैलमानीं च प्रस्थार्धं काञ्जिकस्य च ॥
खादेत्कर्षप्रमाणं तु तोयं मद्यं पिबेदनु ॥ ५५ ॥
आमवाते तथा वाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रिते ।
अपस्मारेऽनले मन्दे कासे श्वासे गरेषु च ।
सोन्मादवातभग्ने च शूले जन्तुषु शस्यते ॥ ५६ ॥

शुद्ध लहसुन ५ सेर, तिल १६ तोला, भुनी हींग, सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल, यवाखार, सज्जीखार, पांच नमक, सौंफ, कूठ, पिपरामूल, चीतकी जड़, अजमोदा अजवाइन तथा धनियां प्रत्येक ४ तोला सबका महीन चूर्ण कर मजबूत घीके बर्तनमें १६ दिनतक तिलतैल ६४ तोला, काञ्जी ४ तोला मिलाकर रखना चाहिये । फिर १ तोलाकी मात्रासे खाना चाहिये, ऊपरसे जल या मद्य पीना चाहिये । यह आमवात सर्वाङ्ग तथा एकांग-गत वात, अपस्मार, मन्दाग्नि, कास, श्वास कृत्रिमविष, उन्माद, वातभग्न, शूल, तथा क्रिमियोंको नष्ट करता है ॥ ५२-५६ ॥

प्रसारणीरसोनपिण्डः ।

प्रसारण्याढकक्वाथे प्रस्थो गुडरसोनतः ।
पक्वः पञ्चोषणरजः पादः स्यादामवातहा ॥ ५७ ॥

गन्धप्रसारणीका क्वाथ १ आढ़क, गुड़ व लहसुन मिलाकर ६४ तोला तथा पञ्चकोलका चूर्ण १६ तोला मिलाकर पकाया गया लेह आमवातको नष्ट करता है ॥ ५७ ॥

रसोनसुराः ।

वल्कलायाः[1] सुरायास्तु सुपक्वायाः शतं घटे ।
ततोऽर्धेन रसोनं तु संशुद्धं कुट्टितं क्षिपेत् ॥ ५८ ॥

"१ बहुलायाः" इति वा पाठः ।

पिप्पली पिप्पलीमूलमजाजी कुष्टचित्रकम् ।
नागरं मरिचं चव्यं चूर्णितं चाक्षसम्मितम् ॥५९॥
सप्ताहात्परतः पेया वातरोगामनाशिनी ।
क्रिमिकुष्टक्षयानाहगुल्माशःप्लीहमेहनुत् ॥
अग्निसन्दीपनी चैव पाण्डुरोगविनाशिनी ॥ ६० ॥

एक घड़ेमें ५ सेर वल्कली नामक शराब २॥ सेर लहसुन कुटा हुआ तथा छोटी पीपल, पिपरामूल, सफेद जीरा, कूठ, चीतकी जड़, सोंठ, मिर्च व चव्य प्रत्येक एक एक तोला छोड़कर ७ दिन रखनेके अनन्तर पीना चाहिये । यह वातरोग, आमवात, क्रिमि, कुष्ट, क्षय, अफारा, गुल्म, अर्श, प्लीहा तथा प्रमेहको नष्ट करती, अग्निको दीप्त करती तथा पांडुरोगको विनष्ट करती है ॥ ५८-६० ॥

शिण्डाकी ।

सिद्धार्थकखलीप्रस्थं सुधौतं निस्तुषं जले ।
मण्डप्रस्थं विनिक्षिप्य स्थापयेद्दिवसत्रयम् ॥ ६१ ॥
धान्यराशौ ततो दद्यात्सञ्चूर्ण्य पलिकानि च ।
अलम्बुषा गोक्षुरकं शतपुष्पीपुनर्नवे ॥ ६२ ॥
प्रसारणी वरणत्वक् शुण्ठी मदनमेव च ।
सम्यक्पाकं तु विज्ञाय सिद्धा तण्डुलमिश्रिता ६३॥
भृष्टा सर्षपतैलेन हिंगुसैन्धवसंयुता ।
भक्षिता लवणोपेता जयेदामं महारुजम् ॥ ६४ ॥
एकजं द्वन्द्वजं साध्यं सान्निपातिकमेव च ।
कट्यूरुवातमानाहजानुजं त्रिकमागतम् ।
उदावर्तहरी पेया बलवर्णाग्निकारिणी ॥६५॥

सफेद सरसोंकी खली ६४ तोला पानीमें धो भुसी अलग कर पानीसहित खलीमें मण्ड १२८ तोला छोड़कर ३ दिनतक धान्यराशिमें रखना चाहिये । फिर निकालकर मुण्डी, गोखरू, सौंफ, पुनर्नवा, प्रसारणी, वरुणाकी छाल, सोंठ, तथा मैनफल, प्रत्येकका ४ तोला चूर्ण मिलाना चाहिये । फिर पके भातके साथ सरसोंका तैल, हींग, सेंधानमक मिलाकर खानेसे आमवात, एकज, द्वन्द्वज तथा सान्निपातज रोग, कमरका दर्द, जंघाओंका दर्द, अफारा, घुटनोंका दर्द, त्रिकशूल तथा उदावर्त रोग नष्ट होता और बल व वर्ण उत्तम होता है ॥ ६१-६५ ॥

सिध्मला ।

त्वगादिहीनाः संशुष्काः मत्स्यग्राः सकुलादयः ।
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं तेषां शीते पलशतत्रयम् ॥ ६६ ॥
शतेन कटुतैलस्य व्योषरामठधान्यकैः ।
क्रिमिघ्नदीप्यकनिशाचविकाग्रन्थिकार्द्रकैः ।
जीरकद्वयवृश्चीरसुरसार्जकशिग्रुकैः ॥ ६७ ॥
दशमूलात्मगुप्ताभ्यां मार्कवैर्लवणैस्त्रिभिः ।
चूर्णितैः पलिकैः सार्धमारनालपरिप्लुतैः ॥ ६८ ॥
विन्यसेत्स्नेहपात्रे च धान्यराशौ पुनर्न्यसेत् ।
सप्तरात्रात्समुद्धृत्य पानभक्षणभोजनैः ॥ ६९ ॥
सिध्मलेयं प्रयोक्तव्या सामे वाते विशेषतः ।
भग्नरुग्णाभ्युपहताः कम्पिनः पीठसर्पिणः ॥ ७० ॥
गृध्रसीमग्निसादं च शूलगुल्मोदराणि च ।
वलीपलितखालित्यं हत्वा स्युरमलेन्द्रियाः ॥ ७१ ॥

शीत कालमें त्वगादि रहित नवीन सूखी मछली १२०० तोला चूर्ण की हुई, कडुआ तैल ४०० तोला, सोंठ, मिर्च, पीपल, धनियां, भुनी हींग, वायविड़ंग, अजवाइन, हल्दी, चव्य, पिपरामूल, अदरख, सफेद जीरा, स्याह जीरा, पुनर्नवा, तुलसी, देवना, सहिंजन, दशमूल, कौंचके बीज, भांगरा तथा तीनों नमक प्रत्येक ४ तोला मिला काञ्जीसे भर देना फिर स्नेह पात्रमें भरकर अन्नके ढेरके अन्दर सात दिनतक रखना चाहिये । फिर निकाल भोजन तथा भक्षण आदिसे अथवा कवल इसका प्रयोग करना चाहिये । यह "सिध्मला"-आमवातमें विशेष लाभ करती है । तथा टूटे हुए, दर्दयुक्त, चोटवालोंको कम्पनेवालों, पीठेपर चलनेवालोंको तथा गृध्रसी, अग्निमान्द्य, शूल, गुल्म और उदररोगवालोंको लाभ करती है । इसके सेवनसे पुरुष झुर्रियां, बालोंकी सफेदी और इन्द्रलुप्त आदिसे रहित होकर शुद्धेन्द्रिय होते हैं ॥ ६६-७१ ॥

आमवाते वर्ज्यानि ।

दधिमत्स्यगुडक्षीरपोतकीमाषपिष्टकम् ।
वर्जयेदामवातार्तो गुर्वभिष्यन्दकारि च ॥ ७२ ॥

दही, मछली, गुड़, दूध, पोय, उड़दकी पिट्ठी तथा भारी और अभिष्यन्दी पदार्थ आमवातवालेको त्याग देना चाहिये ॥ ७२ ॥

इत्यामवाताधिकारः समाप्तः ।

अथ शूलाधिकारः ।

शूले वमनलंघनाद्युपायाः ।

वमनं लंघनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः ।
क्षारचूर्णानि गुडिकाः शस्यन्ते शूलशान्तये ॥ १ ॥
पुंसः शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ।
पायसैः कृशरैः पिष्टैः स्निग्धैर्वापि सितोत्करैः ॥२॥

वमन, लंघन, स्वेदन, पाचन, फलवर्ति, क्षार, चूर्ण तथा क्षारादि युक्त गोलियां शूलको शान्त करती हैं । विशेषतः शूलवालेको स्वेदन ही सुखदायक होता है । वह खीर, खिचड़ी, स्निग्ध पिट्ठी अथवा मिश्रीयुक्त हलवेसे करना चाहिये ॥१॥२॥

वातशूलचिकित्सा ।

वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं
स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः ।
ससैन्धवो व्योषयुतः सलावः
सहिंगुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ॥ ३ ॥

कुलथी व वटेरका मांस दोनों मिलाकर (१ पल) चार तोला, जल ६४ तोला मिलाकर पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार मलकर कपड़ेसे छान ले । फिर इस यूषको हींग, व घीमें तैल, सेंधानमक, त्रिकटु, काला नमक, अनारका रस डालकर पीनेसे वातजन्य शूल शान्त होता है । "यूषविधि" यही शिवदासजीने लिखी है ॥ ३ ॥

बलादिक्काथः ।

बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः ।
सहिंगुलवणं पीतं सद्यो वातरुजापहम् ॥ ४ ॥

खरेटी, पुनर्नवाकी जड़, एरण्डकी छाल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी तथा गोखुरूका काथ, भुनी हींग व सौवर्चल नमक मिलाकर पीना चाहिये । इससे तत्काल ही वातजशूल शान्त होता है ॥ ४ ॥

हिंग्वादिचूर्णम् ।

शूली विबन्धकोष्ठोऽद्भिरुष्णाभिश्चूर्णिताः पिबेत् ।
हिंगुप्रतिविषाव्योषवचासौवर्चलाभयाः ॥ ५ ॥

भुनी हींग, अतीस, त्रिकटु, वच, काला नमक, बड़ी हर्रका छिल्का चूर्ण कर गरम जलके साथ पीनेसे शूल तथा विबन्ध नष्ट होता है ॥ ५ ॥

तुम्बुर्वादिचूर्णम् ।

तुम्बुरूण्यभया हिंगु पौष्करं लवणत्रयम् ।
पिबेद्यवाम्बुना वातशूलगुल्मापतन्त्रकी ॥ ६ ॥

तुम्बरू, बड़ी हर्रका छिल्का, भुनी हींग, पोहकरमूल, सेंधानमक, कालानमक तथा समुद्र नमकका चूर्ण, यवक्षार जल अथवा यवके क्काथके साथ पीना चाहिये ॥ ६ ॥

श्यामादिकल्कः ।

श्यामा[1] विडं शिग्रुफलानि पथ्या
विडङ्गकम्पिल्लकमश्वमूत्री ।
कल्कं समं मद्ययुतं च पीत्वा
शूलं निहन्यादनिलात्मकं तु ॥ ७ ॥

विधारा, विड़लवण, सहिंजनके बीज, हर्र, कबीला, तथा शल्की (साखोभेद) सब समान भाग ले कल्क कर शराबके साथ पीनेसे वातात्मक शूल नष्ट होता है ॥ ७ ॥

यमान्यादिचूर्णम् ।

यमानीहिंगुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः ।
सुरामण्डेन पातव्या वातशूलनिषूदनाः ॥ ८ ॥

अजवाइन, भुनी हींग, सेंधानमक, यवक्षार, काला नमक तथा बड़ी हर्रका छिल्का सब समान भाग ले चूर्ण कर शराबके स्वच्छभागके साथ पीनेसे वातजशूल नष्ट होता है ॥ ८ ॥

विविधा योगाः ।

विश्वमेरण्डजं मूलं क्काथयित्वा जलं पिबेत् ।
हिङ्गुसौवर्चलोपेतं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ९ ॥
हिङ्गुपुष्करमूलाभ्यां हिङ्गुसौवर्चलेन वा ।
विश्वैरण्डयवक्काथः सद्यः शूलनिवारणः ।
तद्वद्रुबुयवक्काथो हिङ्गुसौवर्चलान्वितः ॥ १० ॥

सोंठ, व एरण्डकी जड़की छालका क्काथ बनाकर भुनी हींग व कालानमक मिलाकर पीनेसे तत्काल शूल शान्त होता है । इसी प्रकार सोंठ, एरंडकी छाल व यवका क्काथ, भुनी हींग व पोहकरमूलके चूर्णके साथ अथवा भुनी हींग व काले नमकके साथ पीनेसे शूल नष्ट होता है । इसी प्रकार एरण्डकी छाल व यवका क्काथ, भुनी हींग व काले नमकके साथ पीनेसे शूल नष्ट होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

द्वितीयं हिग्वादिचूर्णम् ।

हिङ्ग्वम्लकृष्णालवणं यमानी-
क्षाराभयासैन्धवतुल्यभागम् ।
चूर्णं पिबेद्वारुणमण्डमिश्रं
शूले प्रवृद्धेऽनिलजे शिवाय ॥ ११ ॥

भुनी हींग, अम्लवेत, छोटी पीपल, सेंधानमक अजवाइन, यवक्षार, बड़ी हर्र तथा कालानमक समान भाग ले चूर्ण कर ताड़ीके स्वच्छ भागके साथ पीनेसे वातजन्य शूलकी शांति होती है* ॥ ११ ॥

---

[1] श्यामाऽत्र वृद्धदारकः इति शिवदासः ॥ ७ ॥

* नारिकेलखण्डः । " सुपक्वनारिकेलस्य शस्यं पलचतुष्टयम् । पिष्ट्वा घृतपले भृष्ट्वा क्षिपेत्खण्डचतुष्पलम् ॥ नारिकेलस्य च प्रस्थे किञ्चिच्छस्यवतो जले । धान्याकं पिप्पलीं मुस्तं द्विजीरं वंशलोचनम् ॥ शाणमानं चतुर्जातं चूर्णं शीते क्षिपेद् बुधः ।–

सौवर्चलादिगुटिका ।

सौवर्चलाम्लिकाजाजीमरिचैर्द्विगुणोत्तरैः ।
मातुलुङ्गरसैः पिष्ट्वा गुडिकानिलशूलनुत् ॥ १२ ॥

काला नमक १ भाग, इमली २ भाग, जीरा सफेद ४ भाग, काली मिर्च ८ भाग ले चूर्णकर बिजौरे निंबूके रसमें गोली बना लेनी चाहिये। यह वातशूलको नष्ट करती है ॥ १२ ॥

हिंग्वादिगुटिका ।

हिङ्ग्वम्लवेतसव्योषयमानीलवणत्रिकैः ।
बीजपूररसोपेतैर्गुडिका वातशूलनुत् ॥ १३ ॥

भुनी हींग, अम्लवेत, सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल, अजवाइन, तीनों नमक, समान भाग ले चूर्ण कर बिजौरे निम्बूके रसमें गोली बनाकर सेवन करनेसे वातशूल नष्ट होता है ॥ १३ ॥

बीजपूरकमूलयोगः ।

बीजपूरकमूलं च घृतेन सह पाययेत् ।
जयेद्वातभवं शूलं कर्षमेकं प्रमाणतः ॥ १४ ॥

१ तोला बिजौरे निम्बूकी जड़का चूर्ण अथवा कल्क घीके साथ पिलानेसे वातशूल नष्ट होता है ॥ १४ ॥

स्वेदनप्रयोगाः ।

बिल्वमूलतिलैरण्डं पिष्ट्वा चाम्लतुषाम्भसा ।
गुडिकां भ्रामयेदुष्णां वातशूलविनाशिनीम् ॥१५॥

तिलैश्च गुडिकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि ।
गुडिका शमयत्येषा शूलं चैवातिदुःसहम् ॥ १६ ॥
नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनः काञ्जिकान्वितः ।
जीवन्तीमूलकल्को वा सतैलः पार्श्वशूलनुत् ॥१७॥

बेलकी छाल, तिल तथा एरण्डकी छालको काञ्जीके साथ पीस गरम कर गुनगुनी गुनगुनी गोली पेटपर फिरानेसे शूल नष्ट होता है। इसी प्रकार काले तिलको पीस गोली बना गरम कर पेटपर फिरानेसे वातजन्य शूल नष्ट होता है। इसी प्रकार मैनफलका चूर्ण काञ्जीमें मिला गरम कर नाभीपर लेप करनेसे अथवा जीवन्तीकी जड़का कल्क तैल मिलाकर लेप करनेसे पसलियोंका दर्द नष्ट होता है ॥ १५-१७ ॥

पित्तशूलचिकित्सा ।

गुडः शालिर्यवाः क्षीरं सर्पिष्पानं विरेचनम् ।
जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥१८॥
पैत्ते तु शूले वमनं पयोभी-
रसैस्तथेक्षोः सपटोलनिम्बैः ।
शीतावगाहाः पुलिनाः सवाताः
कांस्यादिपात्राणि जलप्लुतानि ॥ १९ ॥
विरेचनं पित्तहरं च शस्तं
रसाश्च शस्ताः शशलावकानाम् ।
सन्तर्पणं लाजमधूपपन्नं
योगाः सुशीता मधुसंप्रयुक्ताः ॥ २० ॥
छर्द्यां ज्वरे पित्तभवेऽपि शूले
घोरे विदाहे त्वतितर्पिते च ।
यवस्य पेयां मधुना विमिश्रां
पिबेत्सुशीतां मनुजः सुखार्थी ॥ २१ ॥
धात्र्या रसं विदार्या वा त्रायन्ती गोस्तनाम्बु वा ।
पिबेत्सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिषूदनम् ॥ २२ ॥
शतावरीरसं क्षौद्रयुतं प्रातः पिबेन्नरः ।
दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहम् ॥ २३ ॥

गुड, शालिके चावल, यव, दूध, घीपान, विरेचन तथा जांगल प्राणियोंके मांस पित्तशूलवालोंको सेवन करना चाहिये। पैत्तिक शूलमें परवलकी पत्ती व नीमकी पत्तीका कल्क दूधमें अथवा ईखके रसमें मिला पीकर वमन करना चाहिये। इसी प्रकार शीतल जलादिमें बैठाना, नदीका तट, शुद्ध वायु तथा जलभरे कांस्यादि पात्र पेटपर फिराना, पित्तनाशक विरेचन, खरगोश अथवा बटेरका मांसरस, खील व शहदका सन्तर्पण अथवा शहदयुक्त शीतल पदार्थ सेवन करना हितकर है। पित्तजन्य छर्दि, ज्वर, शूल, दाह तथा तृष्णामें यवकी पेया ठण्डी कर शहद मिला पीनेसे शांति मिलती है। इसी प्रकार आंवलेका

—हन्त्यम्लपित्तमरुचिं रक्तपित्तं क्षयं वमिम् ॥ शूलं च पित्तशूलं च पृष्ठशूलं रसायनम् । विशेषाद्बलकृद् वृष्यं पुष्टिमोजस्करं स्मृतम् ॥" अच्छे पके हुए ताजे नारिकेल (नारियल) की गिरी १६ तोला प्रथम खूब महीन कतर या घिया कससे कसकर ४ तोला गायके घीमें भूनना चाहिये। जब सुर्खी आ जावे तथा सुगन्ध उठने लगे, तब उसमें मिश्री १६ तोला तथा नारियलका जल १ सेर, ९ छ० ३ तो० डालकर पकाना चाहिये। गाढ़ा हो जानेपर उतार लेना चाहिये तथा ठण्डा हो जानेपर धनियां, छोटी पीपल, नागरमोथा, दोनों जीरा, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, इलायची तथा नागकेशर प्रत्येक ३ माशेका चूर्ण मिला देना चाहिये। यह अम्लपित्त, अरुचि, रक्तपित्त, क्षय, वमन, शूल, पृष्ठशूल तथा पित्तशूलको नष्ट करता तथा रसायन है। (इसकी मात्रा ३ माशेसे १ तोले तक गुनगुने दूधके साथ देनी चाहिये।) यह कुछ प्रतियोंमें मिलता है, कुछमें नहीं। इसे योगरत्नाकरमें पाठभेदसे अम्लपित्ताधिकारमें लिखा है। यह बहुत स्वादिष्ठ तथा गुणकारी है। इसका कितने ही बार अनुभव किया गया है।

रस, विदारीकन्दका रस त्रायमाणका रस अथवा अङ्गूरका रस शक्कर मिलाकर पीनेसे शीघ्र ही पित्तज शूल नष्ट होता है । इसी प्रकार शतावरीका रस, शहद मिलाकर प्रातःकाल पीनेसे दाह, शूल तथा समस्त पित्तज रोग शांत होते हैं ॥ १८-२३ ॥

बृहत्यादिक्काथः ।

बृहत्यौ गोक्षुरैरण्डकुशकाशेक्षुबालिकाः ।
पीताः पित्तभवं शूलं सद्यो हन्युः सुदारुणम् ॥ २४ ॥

छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखुरू, एरण्डकी छाल, कुश, काश, तथा ईखकी जड़का क्काथ पित्तज शूलको तत्काल शांत करता है ॥ २४ ॥

शतावर्यादि जलम् ।

शतावरीसयष्ट्याह्ववाट्यालकुशगोक्षुरैः ।
शृतशीतं पिबेत्तोयं सगुडक्षौद्रशर्करम् ॥ २५ ॥
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं सद्यो दाहज्वरापहम् ।

शतावरी, मौरेठी, खरेंटी, कुश, तथा गोखुरूका जल ठण्ढा कर गुड़, शहद व शक्कर मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त, दाह, शूल तथा दाहयुक्त ज्वर शांत होता है ॥ २५ ॥-

त्रिफलादिक्काथः ।

त्रिफलानिम्बयष्ट्याह्वकटुकारग्वधैः शृतम् ॥ २६ ॥
पाययेन्मधुसंमिश्रं दाहशूलोपशान्तये ।

त्रिफला, नीमकी छाल, मौरेठी, कुटकी, तथा अमलतासके गूदेका क्काथ ठंढा कर शहद मिला पीनेसे दाहयुक्त शूल शान्त होता है ॥ २६ ॥-

एरण्डतैलयोगाः ।

तैलमेरण्डजं वापि मधुकक्काथसंयुतम् ॥ २७ ॥
शूलं पित्तोद्भवं हन्याद् गुल्मं पैत्तिकमेव च ।

अथवा एरण्डका तैल मौरेठीके क्काथके साथ पीनेसे पित्त शूल तथा पित्तज गुल्म शान्त होता है ॥ २७ ॥-

अपरस्त्रिफलादिक्काथः ।

त्रिफलारग्वधक्काथं सक्षौद्रं शर्करान्वितम् ॥ २८ ॥
पाययेद्रक्तपित्तघ्नं दाहशूलनिवारणम् ।

त्रिफला तथा अमलतासका क्काथ शहद व शक्कर मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त तथा दाहयुक्त शूल नष्ट होता है ॥ २८ ॥-

धात्रीचूर्णम् ।

प्रलिह्यात्पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् ॥ २९ ॥

आंवलेका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे पित्तशूल नष्ट होता है * ॥ २९ ॥

कफजशूलचिकित्सा ।

श्लेष्माधिके छर्दनलङ्घनानि
शिरोविरेकं मधुशीधुपानम् ।
मधूनि गोधूमयवानरिष्टान्
सेवेत रूक्षान्कटुकांश्च सर्वान् ॥ ३० ॥

कफाधिक शूलमें वमन, लंघन, शिरोविरेचन (नस्य) शहदके शीधु (मद्यविशेष) का पान, शहद, गेहूँ, यव, अरिष्ट तथा रूखे और कड़ुए समस्त पदार्थ हितकर हैं ॥ ३० ॥

पञ्चकोलयवागूः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
यवागूर्दीपनीया स्याच्छूलघ्नी तोयसाधिता ॥ ३१ ॥

पिप्पली, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ इन ओषधियोंके क्काथमें सिद्ध यवागू अग्निको दीप्त करती तथा कफजन्य शूलको नष्ट करती है ॥ ३१ ॥

---

* अपरो नारिकेलखंडः । "नारिकेलपलान्यष्टौ शर्करामस्थसंयुतम् । तज्जलं पात्रमेकं तु सर्पिष्पञ्चपलानि च ॥ शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं प्रस्थार्द्धं क्षीरमेव च । सर्वमेकीकृतं पात्रे शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ तुगात्रिकटुकं मुस्तं चतुर्जातं सधान्यकम् । द्वे कणे कर्षयुग्मं च जीरकं च पृथक्पृथक् ॥ श्लक्ष्णचूर्णं विनिक्षिप्य स्थापयेद्राजने मृदः । खादेत्प्रतिदिनं शाणं यथेष्टाहारवानपि ॥ सर्वदोषभवं शूलमामवातं विनाशयेत् । परिणामभवं शूलमम्लपित्तं विनाशयेत् ॥ बलपुष्टिकरं चैव वाजीकरणमुत्तमम् । रक्तपित्तहरं श्रेष्ठं छर्दिहृद्रोगनाशनम् ॥ अग्निसन्दीपनकरं सर्वरोगनिवर्हणम् ॥" कच्ची गरी ३२ तोला, घी २० तोलामें प्रथम भून लेना चाहिये । फिर उसीमें शक्कर ६४ तोला और नारियलका जल ६ से० ३२ तोला, सोंठ १६ तोला, दूध ६४ तोला सब एकमें मिलाकर धीरे धीरे मन्द आंचसे पकाना चाहिये । पाक तैयार हो जानेपर उतार कर वंशलोचन, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, धनियां, छोटी पीपल, गजपीपल, जीरा इनमेंसे प्रत्येक ओषधिका यथा-विधि निर्मित २ तोला चूर्ण छोड़कर मिट्टीके वर्तनमें रखना चाहिये । इससे प्रतिदिन ३ माश खाना चाहिये तथा यथेच्छ आहार करना चाहिये । यह समस्त दोषज शूल, आमवात, परिणाम शूल व अम्लपित्तको नष्ट करता है । यह रक्तपित्त, छर्दि व हृद्रोगको नष्ट, अग्निको दीप्त तथा समस्त रोगोंको दूर करता है । यह प्रयोग भी कुछ पुस्तकोंमें है, कुछमें नहीं। अतः टिप्पणीरूपमें लिखा गया है ॥

पञ्चकोलचूर्णम् ।

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम् ।
सुखोष्णेनाम्बुना पीतं कफशूलविनाशनम् ॥ ३२ ॥

तीनों नमक, पञ्चकोल, तथा भुनी हींग सब समान भाग ले चूर्ण कर गरम जलके साथ पीनेसे कफजन्य शूल नष्ट होता है ॥ ३२ ॥

बिल्वमूलादिचूर्णम् ।

बिल्वमूलमथैरण्डं चित्रकं विश्वभेषजम् ।
हिंगुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ३३ ॥

बेलकी जड़की छाल, एरण्डकी छाल, चीतकी जड़, सोंठ तथा भुनी हींग व सेंधानमकका चूर्ण गरम जलके साथ पीनेसे तत्काल शूल नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

मुस्तादिचूर्णम् ।

मुस्तं वचां तिक्तकरोहिणीं च
तथाभयां निर्दहनीं च तुल्याम् ।
पिबेत्तु गोमूत्रयुतां कफोत्थ-
शूले तथामस्य च पाचनार्थम् ॥ ३४ ॥

नागरमोथा, दूधिया वच, कुटकी, बड़ी हरका छिल्का, तथा मूर्वा, समान भाग ले चूर्ण कर गोमूत्रके साथ पीनेसे कफज शूलका नाश तथा आमका पाचन होता है ॥ ३४ ॥

वचादिचूर्णम् ।

वचाब्दाग्न्यभयातिक्ताचूर्णं गोमूत्रसंयुतम् ।
सक्षारं वा पिबेत्क्वाथं बिल्वादेः कफशूलवान् ॥३५॥

मीठा वच, नागरमोथा, चीतकी जड़, बड़ी हर्रका छिल्का, तथा कुटकीका चूर्ण गोमूत्रके साथ अथवा बिल्वादि गणकी औषधियोंका क्वाथ यवाखार मिलाकर पीनेसे कफजन्य शूल नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

योगद्वयम् ।

मातुलुङ्गरसो वापि शिग्रुक्वाथस्तथापरः ।
सक्षारो मधुना पीतः पार्श्वहृद्बस्तिशूलनुत् ॥ ३६ ॥

(१) बिजौरे निम्बूका रस (२) अथवा सहिंजनकाक्वाथ यवाखार व शहद मिलाकर पीनेसे पसली, हृदय तथा वस्तिके शूलको नष्ट करते हैं ॥ ३६ ॥

आमशूलचिकित्सा ।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी ।
सेव्यमामहरं सर्वं यदग्निबलवर्धनम् ॥ ३७ ॥

आमशूलमें कफशूल नाशक तथा अग्निदीपक व आमपाचक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३७ ॥

हिंग्वादिचूर्णम् ।

सहिङ्गुतुम्बुरुव्योषयमानीचित्रकाभयाः ।
सक्षारलवणाश्चूर्णं पिबेत्प्रातः सुखाम्बुना ॥ ३८ ॥
विण्मूत्रानिलशूलघ्नं पाचनं वह्निदीपनम् ।

भुनी हींग, तुम्बुरु, त्रिकटु, अजवायन, चीतकी जड़, बड़ी हर्रका छिल्का, यवाखार, व सेंधानमक सब समान भाग ले चूर्ण कर गुनगुने गुनगुने जलके साथ पीनेसे विष्ठा, मूत्र तथा वायुकी रुकावट तथा शूल नष्ट होता है और आमका पाचन तथा अग्नि दीप्त होती है * ॥ ३८ ॥

---

* धात्रीलौहम्–" षट्पलं शुद्धमण्डूरं यवस्य कुडवं तथा । पाकाय नीरप्रस्थार्धे चतुर्भागावशेषितम् ॥ शतमूलीरसस्याष्टावामलक्या रसस्तथा । तथा दधिपयोभूमिकूष्माण्डस्य चतुष्पलम् ॥ चतुष्पलं शर्कराया घृतस्य च चतुष्पलम् । प्रक्षेपं जीरकं धान्यं त्रिजातं करि–पिप्पलीम् ॥ मुस्तं हरीतकीं चैव अभ्रं लौहं कटुत्रयम् । रेणुकं त्रिफलां चैव तालीशं नागकेशरम् ॥ प्रत्येकं कार्षिकं चूर्णं पेषयित्वा विनिक्षिपेत् । भोजनादौ तथा मध्ये चान्ते चैव समाहितः । तोलेकं भक्षयेन्नित्यमनुपानं पयोऽथवा । शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् । परिणामसमुत्थांश्च अन्नद्रवसमुद्भवान् ॥ द्वन्द्वजान्पक्तिशूलांश्च अम्लपित्तं सुदारुणम् । सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलौहमिदं स्मृतम् ॥ " शुद्ध मण्डूर २४ तो०, यव १६ तोला को ६४ तो० जलमें पकाकर १६ तो० शेष छना हुआ क्वाथ, शतावरका रस ३२ तोला, आंवलेका रस ३२ तो० तथा दही १६ तो० दूध १६ तो० तथा विदारीकन्दका रस १६ तो०, शक्कर १६ तो० तथा घी १६ तो० सबको मिलाकर पकाना चाहिये । पाक तैयार हो जानेपर जीरा, धनियां, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, गजपीपल, नागरमोथा, हर्र, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, त्रिकटु, सम्भालूके बीज, त्रिफला तथा तालीशपत्र प्रत्येक १ तो० का चूर्ण छोड़ना चाहिये । इसको भोजनके पहिले, मध्यमें तथा अन्तमें १ तो० की मात्रासे सेवन करना चाहिये । अनुपान दूध अथवा जल । यह " धात्रीलौह " साध्य तथा असाध्य वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक तथा सान्निपातिक, अन्नद्रव, परिणामजन्य शूल तथा कठिन अम्लपित्तको नष्ट करता है । यह समस्त शूलको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है । वर्तमान समयमें इसकी मात्रा ४ रत्तीसे २ माशेतक है । यह प्रयोग भी किसी किसीमें है, किसीमें नहीं । अतः टिप्पणीरूपमें लिखा गया है ॥

चित्रकादिक्वाथः ।

चित्रकं ग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीधान्यं जलैः शृतम् ॥३९॥
शूलानाहविबन्धेषु सहिंगु विडदाडिमम् ।

चीतकी जड़, पिपरामूल, एरण्डकी छाल, सोंठ तथा धनियांका क्वाथ बना भुनी हींग, विड़नमक तथा अनारका रस मिलाकर पीनेसे शूल, अफारा तथा कब्जियत दूर होती है॥३९॥-

दीप्यकादिचूर्णम् ।

दीप्यकं सैन्धवं पथ्या नागरं च चतुःसमम् ॥
भृशं शूलं जयत्याशु मन्दस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ ४० ॥

अजवायन, सेंधानमक, हर्र तथा सोंठ चारों समान भाग ले चूर्ण कर सेवन करनेसे शूलका नाश तथा अग्निकी दीप्ति होती है ॥ ४० ॥

पित्तानिलात्मजशूलचिकित्सा ।

समाक्षिकं बृहत्यादिं पिबेत्पित्तानिलात्मके ।
व्यामिश्रं वा विधिं कुर्याच्छूले पित्तानिलात्मके॥४१

पित्तानिलात्मक शूलमें बृहत्यादि ओषधियोंका क्वाथ शहद मिलाकर पीना चाहिये तथा वातपित्तकी अलग अलग कही हुई चिकित्सा अंशांश कल्पना कर मिश्रित करनी चाहिये ॥ ४१ ॥

कफपित्तजशूलचिकित्सा ।

पित्तजे कफजे चापि या क्रिया कथिता पृथक् ।
एकीकृत्य प्रयुञ्जीत तां क्रियां कफपित्तजे ॥ ४२ ॥

पित्तज तथा कफजमें जो अलग अलग चिकित्सा कही गयी है, उसे कफपित्तज शूलमें मिलाकर करना चाहिये ॥ ४२ ॥

पटोलादिक्वाथः ।

पटोलत्रिफलारिष्टाक्वाथं मधुयुतं पिबेत् ।
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहशूलोपशान्तये ॥ ४३ ॥

परवलकी पत्ती, आंवला, हर्र, बहेड़ा तथा नीमकी छालका क्वाथ शहद मिलाकर पीनेसे पित्तकफज्वर, छर्दि, दाह और शूल शान्त होते हैं ॥ ४३ ॥

वातश्लेष्मजचिकित्सा ।

रसोनं मधुसंमिश्रं पिबेत्प्रातः प्रकाङ्क्षितः ।
वातश्लेष्मभवं शूलं विहन्तुं वह्निदीप्तये ॥ ४४ ॥

लहसुनका कल्क प्रातःकाल शहद मिलाकर चाटनेसे वातकफजशूल नष्ट हो जाता है तथा अग्नि दीप्त होती है ॥ ४४ ॥

विश्वादिक्वाथः ।

विश्वोरुबूकदशमूलयवाम्भसा तु
द्विक्षारहिङ्गुलवणत्रयपुष्कराणाम् ।
चूर्णं पिबेद्धृदयपार्श्वकटीग्रहाम-
पक्वाशयांसभृशरुग्ज्वरगुल्मशूली ॥ ४५ ॥
क्वाथेन चूर्णपानं यत्तत्र क्वाथप्रधानता ।
प्रवर्तते न तेनात्र चूर्णापेक्षी चतुर्द्रवः ॥ ४६

सोंठ, एरण्डकी छाल, दशमूल और यवका क्वाथ बना यवाखार, सज्जीखार, भुनी हींग, तीनों नमक, तथा पोहकरमूलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे हृदय, पसलियों व कमरका दर्द, आमाशय व पक्काशयकी पीड़ा, ज्वर, गुल्म व शूल नष्ट होते हैं । जहांपर क्वाथसे चूर्णपान लिखा है, वहां क्वाथकी प्रधानता है । अतः चूर्णकी अपेक्षा चतुर्गुण द्रव छोड़ना यहां नहीं लगता ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

रुचकादिचूर्णम् ।

चूर्णं समं रुचकहिङ्गुमहौषधानां
शुण्ठ्यम्बुना कफसमीरणसम्भवासु ।
हृत्पार्श्वपृष्ठजठरार्तिविषूचिकासु
पेयं तथा यवरसेन तु विड्विबन्धे ॥ ४७ ॥
समं शुण्ठ्यम्बुनेत्येवं योजना क्रियते बुधैः ।
तेनाल्पमानमेवात्र हिङ्गु संपरिदीयते ॥ ४८ ॥

काला नमक, भुनी हींग तथा सोंठका चूर्ण सोंठके क्वाथके साथ पीनेसे कफवातजन्य हृदय, पसलियों, पीठ व उदरकी पीड़ा तथा विषूचिका नष्ट होते हैं । मलकी रुकावटमें इसी चूर्णको यवके क्वाथके साथ पीना चाहिये । इस पद्यमें 'समं' का सम्बन्ध 'शुण्ठ्यम्बुना' से है, और वह सहार्थक है तुल्यार्थक नहीं, अतः हींग भी समान डालना उचित नहीं । हींग उतनी ही छोड़नी चाहिये, जितनीसे मिचलाई न हो ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

हिंग्वादिचूर्णम् ।

हिङ्गु सौवर्चलं पथ्याविडसैन्धवतुम्बुरु ।
पौष्करं च पिबेच्चूर्णं दशमूलयवाम्भसा ॥ ४९ ॥
पार्श्वहृत्कटिपृष्ठांसशूले तन्त्रापतानके ।
शोथे श्लेष्मामसेके च कर्णरोगे च शस्यते ॥ ५० ॥

भुनी हींग, तथा काला नमक, हर्र, विड़लवण, सेंधा नमक, तुम्बुरु तथा पोहकरमूल सब समान भाग ले चूर्ण कर दशमूल व यवके क्वाथके साथ सेवन करनेसे पसलियों, हृदय, कमर,

---

१ "द्रवशुक्त्या स लेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः" इस सिद्धान्तके अनुसार चूर्णसे चतुर्गुण ही क्वाथ मिलाना चाहिये था, पर इस (क्वाथेन चूर्णपानम्) परिभाषासे क्वाथकी प्रधानता सिद्ध हो जानेपर क्वाथकी मात्रा २ पल ही लेनी चाहिये ।

पीठ और स्कन्धका शूल, अपतन्त्रक, अपतानक, शोथ, कफ व आमका गिरना तथा कर्णरोग शान्त होते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥

एरण्डादिक्वाथः ।

एरंडबिल्वबृहतीद्वयमातुलुङ्ग-
पाषाणभित्त्रिकटुमूलकृतः कषायः ।
सक्षारहिङ्गुलवणो रुबुतैलमिश्रः
श्रोण्यंसमेढ्रहृदयस्तनरुक्षु पेयः ॥ ५१ ॥

एरण्डकी छाल, बेलका गूदा, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, बिजौराकी छाल, पाषाणभेद, त्रिकटु और पिपरामूलका क्वाथ, यवाखार, भुनी हींग, कालानमक तथा एरण्डका तैल मिलाकर कमर, कन्धे, लिङ्ग, हृदय और स्तनोंकी पीड़ामें पीना चाहिये ॥ ५१ ॥

हिंग्वादिचूर्णमपरम् ।

हिङ्गु त्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारोऽथ सैन्धवम् ।
मातुलुङ्गरसोपेतं प्लीहशूलापहं रजः ॥ ५२ ॥

भुनी हींग, त्रिकटु, कूट, यवाखार तथा सेंधानमकका चूर्ण बिजौरे निम्बूके रसके साथ पीनेसे प्लीहाका शूल नष्ट होता है ॥ ५२ ॥

मृगशृङ्गभस्म ।

दग्धमनिर्गतधूमं मृगशृङ्गं गोघृतेन सह पीतम् ।
हृदयनितम्बजशूलं हरति शिखी दारुनिवहमिव ५३

सम्पुटमें बन्द कर गजपुटमें भस्म किया हुआ मृगशृङ्ग गायके घीके साथ चाटनेसे हृदय तथा कमरके शूलको अग्नि लकड़ियोंके ढेरके समान नष्ट करता है ॥ ५३ ॥

विडङ्गचूर्णम् ।

क्रिमिरिपुचूर्णं लीढं स्वरसेन वङ्गसेनस्य ।
क्षपयत्यचिरान्नियतं लेहोऽजीर्णोद्भवं शूलम् ॥५४॥

वायविडंगका चूर्ण अगस्त्यके स्वरसके साथ चाटनेसे शीघ्र ही अजीर्णजन्य शूल नष्ट होता है ॥ ५४ ॥

सन्निपातजशूलचिकित्सा ।

विदार्यादिरसः ।

विदारीदाडिमरसः सव्योपलवणान्वितः ।
क्षौद्रयुक्तो जयत्याशु शूलं दोषत्रयोद्भवम् ॥ ५५ ॥

विदारीकन्द और अनारका रस, सोंठ, मिर्च, पीपल व सेंधानमकका चूर्ण व शहद मिलाकर पीनेसे सन्निपातजन्य शूल शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ ५५ ॥

एरण्डद्वादशकक्वाथः ।

एरण्डफलमूलानि बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।
पर्णिन्यः सहदेवी च सिंहपुच्छीक्षुवालिका ॥५६॥
तुल्यैरेतैः शृतं तोयं यवक्षारयुतं पिबेत् ।
पृथग्दोषभवं शूलं हन्यात्सर्वभवं तथा ॥ ५७ ॥

एरण्डके बीज तथा जड़की छाल, दोनों कटेरी, गोखरू, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, सहदेवी, पिठवन तथा ईखकी जड़ सब समान भाग ले क्वाथ बना यवाखार मिलाकर पीनेसे दोषोंसे अलग अलग उत्पन्न शूल तथा सन्निपातज शूल नष्ट होता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

गोमूत्रमण्डूरम् ।

गोमूत्रसिद्धं मण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् ।
विलिहन्मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥५८॥

गोमूत्रमें बुझाया गया मण्डूर, त्रिफलाका चूर्ण मिलाकर शहद व घीके साथ चाटनेसे सन्निपातज शूल नष्ट होता है ॥ ५८ ॥

शंखचूर्णम् ।

शङ्खचूर्णं सलवणं सहिंगु व्योषसंयुतम् ।
उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥५९॥

शंखचूर्ण (भस्म) काला नमक, भुनी हींग व त्रिकटु चूर्ण मिलाकर गरम जलके साथ पीनेसे त्रिदोषज शूल नष्ट होता है ॥ ५९ ॥

लौहप्रयोगः ।

तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् ।
प्रयोज्यं मधुसर्पिर्भ्यां सर्वशूलनिवारणम् ॥ ६० ॥

तीक्ष्ण लोह भस्म व त्रिफलाका चूर्ण मिलाकर शहद व घीके साथ चाटनेसे समस्त शूल नष्ट होते हैं ॥ ६० ॥

मूत्राभयायोगः ।

मूत्रान्तःपाचितां शुद्धां लौहचूर्णसमन्विताम् ।
सगुडामभयामद्यात्सर्वशूलप्रशान्तये ॥ ६१ ॥

गोमूत्रमें पकायी हुई हर्रोका चूर्ण, लौहभस्म तथा गुड़ मिलाकर खानेसे समस्त शूल शान्त होते हैं ॥ ६१ ॥

दाधिकं घृतम् ।

पिप्पलं नागरं बिल्वं कारवी चव्यचित्रकम् ।
हिंगुदाडिमवृक्षाम्लवचाक्षाराम्लवेतसम् ॥ ६२ ॥
वर्षाभूकृष्णलवणमजाजी बीजपूरकम् ।
दधि त्रिगुणितं सर्पिस्तत्सिद्धं दाधिकं स्मृतम्॥६३॥
गुल्मार्शःप्लीहहृत्पार्श्वशूलयोनिरुजापहम् ।
दोषसंशमनं श्रेष्ठं दाधिकं परमं स्मृतम् ॥ ६४ ॥

छोटी पीपल, सोंठ, बेलका गूदा, कलौंजी, चव्य, चीतकी जड़, हींग, अनारदाना, विजौरा, निम्बू, वच, यवाखार, अम्लवेत, पुनर्नवा, काला नमक, सफेद जीरा, तथा इम्ली सब समान भाग ले कल्क बना कल्कसे चौगुना घी और घीसे तिगुना दही तथा घीके समान भाग जल मिलाकर सिद्ध किया गया घृत सेवन करनेसे गुल्म, अर्श, प्लीहा, हृद्रोग, पार्श्वशूल, योनिशूलको नष्ट करता तथा त्रिदोषको शान्त करता है। यह "दाधिकघृत" (दध्ना संस्कृत) है ॥ ६२-६४ ॥

शूलहरधूपः ।

कम्बलावृतगात्रस्य प्राणायामं प्रकुर्वतः ।
कटुतैलाक्तसक्तूनां धूपः शूलहरः परः ॥६५॥

कम्बल ओढ़कर प्राणायाम करते हुए कडुए तैलमें साने सत्तूका धूप शूलको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ६५ ॥

अपथ्यम् ।

व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटु वैदलम् ।
वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥ ६६ ॥

कसरत, मैथुन, मद्य, नमक, कटु द्रव्य, दाल, वेगावरोध, शोक तथा क्रोध शूलवान्को त्याग देना चाहिये ॥ ६६ ॥

इति शूलाधिकारः समाप्तः ।

अथ परिणामशूलाधिकारः ।

सामान्यचिकित्सा ।

वमनं तिक्तमधुरैर्विरेकश्चापि शस्यते ।
बस्तयश्च हिताः शूले परिणामसमुद्भवे ॥ १ ॥

तिक्त तथा मीठे द्रव्योंसे वमन तथा विरेचन कराना प्रशस्त है । और वस्तिकर्म कराना परिणामशूलमें हितकर है ॥ १ ॥

विडङ्गादिगुटिका ।

विडङ्गतण्डुलव्योषं त्रिवृद्दन्तीसचित्रकम् ।
सर्वाण्येतानि संस्कृत्य सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥२॥
गुडेन मोदकं कृत्वा भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ।
उष्णोदकानुपानं तु दद्यादग्निविवर्धनम् ।
जयेत्त्रिदोषजं शूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ ३ ॥

वायविडंग, सोंठ, मिर्च, पीपल, निसोथ, दन्ती, तथा चीतेकी जड़ सब साफ कर चूर्ण करना चाहिये । फिर चूर्णसे दूना गुड़ मिला गोली बनाकर प्रातःकाल गरम जलके साथ खानेसे त्रिदोषजन्य परिणामशूल नष्ट होता है तथा अग्नि दीप्त होती है ॥ २ ॥ ३॥

नागरादिलेहः ।

नागरतिलगुडकल्कं पयसा संसाध्य यः पुमानद्यात् ।
उग्रं परिणतिशूलं तस्यापैति त्रिसप्तरात्रेण ॥ ४ ॥

सोंठ, तिल व गुड़का कल्क दूधके साथ पकाकर जो खाता है, उसका परिणामशूल इक्कीस दिनके प्रयोगसे अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

शम्बूकभस्म ।

शम्बूकजं भस्म पीतं जलेनोष्णेन तत्क्षणात् ।
पक्तिजं विनिहन्त्येतच्छूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ ५॥

शंख या घोंघाकी भस्म गरम जलके साथ पीनेसे परिणामशूलको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे विष्णु भगवान् राक्षसोंका नाश करते हैं ॥ ५ ॥

बिभीतकादिचूर्णम् ।

अक्षधात्र्यभयाकृष्णाचूर्णं मधुयुतं लिहेत् ।
दध्ना तु तूनसारेण सतीनयवसक्तुकान् ॥ ६ ॥
भक्षयन्मुच्यते शूलान्नरोऽनुपरिवर्तनात् ।

बहेड़ा, आंवला, बड़ी हर्रका छिल्का तथा छोटी पीपलके चूर्णको शहदके साथ मिलाकर चाटना चाहिये । तथा मक्खन निकाले दहीके साथ, मटर व यवके सत्तुओंके खानेसे परिणामशूल नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

तिलादिगुटिका ।

तिलनागरपथ्यानां भागं शम्बूकभस्मनाम् ॥ ७ ॥
द्विभागं गुडसंयुक्तं गुडीं कृत्वाक्षभागिकाम् ।
शीताम्बुपानां पूर्वाह्णे भक्षयेत्क्षीरभोजनः ॥ ८ ॥
सायाह्ने रसकं पीत्वा नरो मुच्येत दुर्जयात् ।
परिणामसमुत्थाच्च शूलाच्चिरभवादपि ॥ ९ ॥

तिल, सोंठ, तथा हर्र प्रत्येक एक भाग, शम्बूकभस्म २भाग सबसे द्विगुण गुड़ मिलाकर १ तो० की गोली बना ठण्डे जलके साथ सवेरे खाना चाहिये तथा दूधका पथ्य लेना चाहिये। सायङ्काल मांसरस पीना चाहिये । इससे मनुष्य कठिन पुराने परिणामशूलसे मुक्त हो जाता है ॥ ७-९ ॥

शम्बूकादिवटी ।

शम्बूकं त्र्यूषणं चैव पञ्चैव लवणानि च ।
समांशां गुडिकां कृत्वा कलम्बूरसकेन वा ॥ १०॥
प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तु यथाबलम् ।
शूलाद्विमुच्यते जन्तुः सहसा परिणामजात् ॥११॥

शम्बूकभस्म, त्रिकटु तथा पांचों नमक, समान भाग लेकर करेमुवा (नाड़ी) के रसमें गोली बनाकर प्रातःकाल या

भोजनके समय बलानुसार सेवन करना चाहिये। इससे परिणामशूल नष्ट होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

शक्तुप्रयोगः ।

यः पिबति सप्तरात्रं शक्तूनेकान्कलाययूषेण ।
स जयति परिणामरुजं चिरजामपि किमुत नूतनजाम् १२

जो सात दिनतक मटरके यूषके साथ केवल सत्तूका सेवन करता है, उसका नवीन क्या पुराना भी परिणामशूल नष्ट होता है ॥ १२ ॥

लौहप्रयोगः ।

लोहचूर्णं वरायुक्तं विलीढं मधुसर्पिषा ।
परिणामशूलं शमयेत्तन्मलं वा प्रयोजितम् ॥ १३ ॥
कृष्णाभयालोहचूर्णं गुडेन सह भक्षयेत् ।
पक्तिशूलं निहन्त्येजठराण्यग्निमन्दताम् ॥ १४ ॥
आमवातविकारांश्च स्थौल्यं चैवापकर्षति ।
पथ्यालोहरजःशुण्ठीचूर्णं माक्षिकसर्पिषा ॥ १५ ॥
परिणामरुजं हन्ति वातपित्तकफात्मिकाम् ।

लौहभस्म और त्रिफलाको शहद व घीमें मिला चाटनेसे तथा इसी प्रकार मण्डूर सेवन करनेसे परिणामशूल नष्ट होता है। अथवा छोटी पीपल, बड़ी हर्रका छिल्का, लौहभस्म तथा गुड़ मिलाकर सेवन करनेसे परिणामशूल, उदररोग तथा अग्निमान्द्य और आमवात नष्ट होता है और स्थूलता मिटती है। अथवा लौहभस्म, हर्रे व सोंठका चूर्ण शहद और घीमें मिलाकर चाटनेसे त्रिदोषज परिणामशूल नष्ट होता है ॥ १३–१५ ॥

सामुद्राद्यं चूर्णम् ।

सामुद्रं सैन्धवं क्षारो रुचकं रौमकं बिडम् ।
दन्ती लोहरजःकिट्टं त्रिवृच्छूरणकं समम् ॥ १६ ॥
दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम् ।
तद्यथाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ १७ ॥
जीर्णे जीर्णे तु भुञ्जीत मांसादि घृतसाधितम् ।
नाभिशूलं यकृच्छूलं गुल्मप्लीहकृतं च यत् ॥१८॥
विद्रध्यष्ठीलिकां हन्ति कफवातोद्भवां तथा ।
शूलानामपि सर्वेषामौषधं नास्ति तत्परम् ॥ १९ ॥
परिणामसमुत्थस्य विशेषेणान्तकृन्मतम् ।

सामुद्र नमक, सेंधा नमक, काला नमक, रूमा नमक,(शांभरनमक,) खारी नमक, विड नमक, दन्ती, लोहभस्म, मण्डूर, निसोथ, तथा जिमीकन्द सब समान भाग ले चूर्ण कर दही, गोमूत्र, दूध प्रत्येक चूर्णसे चतुर्गुण छोड़कर मन्द अग्निसे पकाना चाहिये। सिद्ध हो जानेपर अग्निबलके अनुसार गरम जलके साथ पीना चाहिये। औषधि हजम हो जानेपर घीके साथ पकाये मांसका सेवन करना चाहिये। नाभिशूल, यकृच्छूल, गुल्म, प्लीहाका शूल, विद्रधि तथा कफ, वातज अष्ठीलिका, और समस्तशूलोंको नष्ट करनेके लिये इससे बढ़कर कोई प्रयोग नहीं है। पर परिणामशूलको यह विशेष नष्ट करता है ॥ १६–१९ ॥

नारिकेलामृतम् ।

नारिकेलं सतोयं च लवणेन प्रपूरितम् ॥ २० ॥
विपक्वमग्निना सम्यक्परिणामजशूलनुत् ।
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् २१॥

जल भरे हुए नारियलके गोलेमें नमक भरकर अग्निसे अच्छी तरह पका लेना चाहिये। यह परिणामजशूलको तथा वातज, पित्तज, कफज व सन्निपातजन्य परिणामशूलको नष्ट करता है ॥ २० ॥ २१ ॥

सप्तामृतं लौहम् ।

मधुकं त्रिफलाचूर्णमयोरजःसमं लिहन् ।
मधुसर्पिर्युतं सम्यग्गव्यं क्षीरं पिबेदनु ॥ २२ ॥
छर्दिं सतिमिरां शूलमम्लपित्तं ज्वरं क्लमम् ।
आनाहं मूत्रसङ्गं च शोथं चैव निहन्ति सः ॥२३॥

मौरेठी, त्रिफलाका चूर्ण और लौहभस्म प्रत्येक समान भाग लेकर घी और शहदमें मिलाकर चाट ऊपरसे गायका दूध पीना चाहिये। यह वमन, नेत्रोंकी निर्बलता अन्धकार, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, ग्लानि, अफारा, मूत्रकी रुकावट तथा सूजनको नष्ट करता है २२ ॥ २३ ॥

गुडपिप्पलीघृतम् ।

सपिप्पलीगुडं सर्पिः पचेत्क्षीरचतुर्गुणे ।
विनिहन्त्यम्लपित्तं च शूलं च परिणामजम् ॥२४॥

छोटी पीपल, व गुड़का कल्क तथा चतुर्गुण दूध मिलाकर पकाया गया घी अम्लपित्त व परिणामशूलको नष्ट करता है ॥ २४ ॥

पिप्पलीघृतम् ।

काथेन कल्केन च पिप्पलीनां
सिद्धं घृतं माक्षिकसंप्रयुक्तम् ।
क्षीरानुपस्यैव निहन्त्यवश्यं
शूलं प्रवृद्धं परिणामसंज्ञम् ॥ २५ ॥

---

१ लौहभस्मकी मात्रा १ रत्तीसे २ रत्तीतक तथा चूर्ण ३ मासेतक मिलाना चाहिये। अथवा प्रत्येक चूर्णके समान लौहभस्म अथवा समस्त चूर्णके समान लौहभस्म मिलाकर सेवन करना चाहिये। इसकी मात्रा ४ रत्तीसे १ मासेतक लेनी चाहिये ॥

छोटी पीपलके क्वाथ व कल्कसे सिद्ध किये घृतमें शहद मिला कर चाटनेसे तथा दूध भातका पथ्य सेवन करनेसे अवश्य ही परिणामशूल नष्ट हो जाता है ॥ २५ ॥

कोलादिमण्डूरम् ।

कोलाग्रन्थिकशृङ्गवेरचपलाक्षारैः समं चूर्णितं
मण्डूरं सुरभीजलेऽष्टगुणिते पक्त्वाथ सान्द्रीकृतम् ।
तं खादेदशनादिमध्यविरतौ प्रायेण दुग्धान्नभुग्
जेतुं वातकफामयान्परिणतौ शूलं च शूलानि च २६॥

चव्य, पिपरामूल, सोंठ, पीपल, तथा यवाखार प्रत्येक समान भाग, सबके समान मण्डूरका चूर्ण अठगुने गायके मूत्रमें पका गाढ़ा कर लेना चाहिये । इसे भोजनके पहिले, मध्य तथा अन्तमें खाना चाहिये और दूध भातका पथ्य लेना चाहिये । इससे वात व कफके रोग, परिणामशूल तथा अन्य-शूल नष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

भीमवटकमण्डूरम् ।

कोलाग्रन्थिकसहितैर्विश्वौषधमागधीयवक्षारैः ।
प्रस्थमयोरजसामपि पलिकांशैश्चूर्णितैर्मिश्रैः ॥२७॥
अष्टगुणमूत्रयुक्तं क्रमपाकात्पिण्डतां नयेत्सर्वम् ।
कोलप्रमाणा गुडिकास्तिस्रो भोज्यादिमध्यविरतौ२८
रससर्पिर्यूषपयोमांसैरश्नन्रो निवारयति ।
अन्नविवर्तनशूलं गुल्मं प्लीहाग्निसादांश्च ॥ २९ ॥

चव्य, ४ तोला, पिपरामूल, सोंठ, छोटी पीपल तथा यवाखार प्रत्येक ४ तोला तथा लौहभस्म ६४ तोला सबसे अठगुना गोमूत्र मिला क्रमशः मन्द मध्य तीक्ष्ण आंचसे पकाकर गोली बनानेके योग्य हो जानेपर ६ माशेके बराबर गोली बनानी चाहिये । इसे भोजनके पहिले मध्यमें तथा अन्तमें एक एक गोली खानी चाहिये और मांसरस, घी, यूष तथा मांसके साथ भोजन करना चाहिये । इससे परिणामशूल, गुल्म, तथा प्लीहा व अग्निमांद्य नष्ट होते है ॥ २७–२९ ॥

क्षीरमण्डूरम् ।

लोहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्रार्धाढके पचेत् ।
क्षीरप्रस्थेन तत्सिद्धं पक्तिशूलहरं नृणाम् ॥ ३० ॥

लौहकिट्ट (मण्डूर) ३२ तोला, गोमूत्र आधा आढ़क तथा दूध एक प्रस्थ मिलाकर पकाया गया मनुष्योंके परिणामशूलको नष्ट करता है ॥ ३० ॥

चविकादिमण्डूरम् ।

लोहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ।
चविकानागरक्षारपिप्पलीमूलपिप्पलीः ॥ ३१ ॥
संचूर्ण्य निक्षिपेत्तस्मिन्पलांशाः सान्द्रतां गते ।
गुडिकाः कल्पयेत्तेन पक्तिशूलनिवारिणीः ॥ ३२ ॥

लौहकिट्ट ३२ तोला, गोमूत्र ६४ पल, छोटी पीपल, चव्य, सोंठ, यवाखार, पिपरामूल, प्रत्येक ४ तोला छोड़कर पकाना चाहिये । गाढ़ा हो जानेपर गोली बनानी चाहिये । यह परिणाम-शूलको नष्ट करती है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

गुडमण्डूरप्रयोगः ।

मण्डूरं शोधितं भूतिं लोहजां वा गुडेन तु ।
भक्षयेन्मुच्यते शूलात्परिणामसमुद्भवात् ॥ ३३ ॥

शुद्ध किया मण्डूर अथवा लौहभस्मको गुड़के साथ खानेसे परिणामशूल नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

शतावरीमण्डूरम् ।

संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलाष्टकम् ।
शतावरीरसस्याष्टौ दध्नस्तु पयसस्तथा ॥ ३४ ॥
पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिषः ।
विपचेत्सर्वमेकध्यं यावत्पिण्डत्वमागतम् ॥ ३५ ॥
सिद्धं तु भक्षयेन्मध्ये भोजनस्याग्रतोऽपि वा ।
वातात्मकं पित्तभवं शूलं च परिणामजम् ॥ ३६ ॥
निहन्त्येव हि योगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः ।

शुद्ध तथा चूर्ण किया मण्डूर ३२ तोला, शतावरीका रस ३२ तोला, दही ३२ तोला, दूध ३२ तोला तथा गायका घी १६ तोला, सबको एकमें मिलाकर पकाना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर भोजनके पहले अथवा मध्यमें खाना चाहिये । वातज तथा पित्तज परिणामशूलको यह " शतावरी मण्डूर " नष्ट करता है ॥ ३४–३६ ॥

तारामण्डूरगुडः ।

विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्यूषणानि च ॥ ३७
नवभागानि चैतानि लोहकिट्टसमानि च ।
गोमूत्रं द्विगुणं दत्त्वा मूत्रार्धिकगुडान्वितम् ॥३८॥
शनैर्मृद्वग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिण्डतां गतम् ।
स्निग्धे भाण्डे विनिक्षिप्य भक्षयेत्कोलमात्रया॥३९॥
प्राङ्मध्यादिक्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितः ।
योगोऽयं शमयत्याशु पक्तिशूलं सुदारुणम् ॥४०॥
कामलां पाण्डुरोगं च शोथं मन्दाग्नितामपि ।
अर्शांसि ग्रहणीदोषं क्रिमिगुल्मोदराणि च ॥ ४१ ॥
नाशयेदम्लपित्तं च स्थौल्यं चैवापकर्षति ।
वर्जयेच्छुष्कशाकानि विदाह्यम्लकटूनि च ॥ ४२ ॥
पक्तिशूलान्तको ह्येष गुडो मण्डूरसंज्ञकः ।
शूलार्तानां कृपाहेतोस्तारया परिकीर्तितः ॥ ४३ ॥

वायविडङ्ग, चीतकी जड़, चव्य, त्रिफला व त्रिकटु प्रत्येक एक भाग, सबके बराबर मण्डूर, सबसे द्विगुण गोमूत्र तथा गोमूत्रसे आधा गुड़ मिलाकर धीरे धीरे मन्दाग्निसे पकाकर गाढ़ा हो जानेपर चिकने वर्तनमें रखना चाहिये । ६ माशेकी मात्रासे भोजनके पहिले, मध्य तथा अन्तमें इसका प्रयोग करना चाहिये । यह कठिनसे कठिन परिणामशूल, कामला, पाण्डुरोग, शोथ, मन्दाग्नि, अर्श, ग्रहणी, क्रिमिरोग, गुल्म, उदर तथा अम्लपित्तको नष्ट करता है । तथा शरीरकी स्थूलताको कम करता है । इसमें सूखे शाक, जलन करनेवाले, खट्टे व कडुए पदार्थोंका सेवन न करना चाहिये । यह " परिणामशूलान्तक मण्डूर गुड़ " शूलार्तोंके ऊपर दया कर ताराने बताया था ॥ ३७-४३ ॥

राममण्डूरम् ।

वशिरं श्वेतवाटयालं मधुपर्णी मयूरकम् ।
तण्डुलीयं च कर्षांशं दत्त्वाधश्चोर्ध्वमेव च ॥ ४४ ॥
पाक्यं सुजीर्णं मण्डूरं गोमूत्रेण दिनद्वयम् ।
अन्तर्बाष्पमदग्धं च तथा स्थाप्यं दिनत्रयम् ॥४५॥
विचूर्ण्य द्विगुणेनैव गुडेन सुविमर्दितम् ।
भोजनस्यादिमध्यान्ते भक्ष्यं कर्षत्रिभागतः ॥ ४६ ॥
तक्रानुपानं वर्ज्यं च वार्क्षमम्लकमत्र तु ।
अम्लपित्ते च शूले च हितमेतद्यथामृतम् ॥ ४७ ॥

चव्य, सफेद खरेटी, मौरेठी, अपामार्ग तथा चौराई प्रत्येक समान भाग ले कल्क कर आधा नीचे आधा ऊपर मध्यमें कल्कके बराकर मण्डूर और सबसे चतुर्गुण गोमूत्र छोड़ बन्द कर दो दिन-तक मन्द आंचसे पकाना चाहिये । फिर ३ दिन ऐसे ही रखकर चूर्ण बनाना चाहिये । फिर द्विगुण गुड़ मिला विमर्दन कर रखना चाहिये । इसकी १ तोलाकी ३ खुराक बनाकर भोजनके आदि, मध्य व अन्तमें मट्ठेसे पीना चाहिये । इसमें वृक्षोंसे उत्पन्न खटाई नहीं खानी चाहिये । यह अम्लपित्त तथा शूलमें अमृतके तुल्य गुणदायक है * ॥ ४४-४७ ॥

रसमण्डूरम् ।

कुडवं पथ्याचूर्णं द्विपलं गन्धाश्म लोहकिट्टं च ।
शुद्धरसस्यार्धपलं भृङ्गस्य रसं च केशराजस्य ॥४८॥
प्रस्थोन्मितं च दत्त्वा लौहे पात्रेऽथ दण्डसंघृष्टम् ।
शुष्कं घृतमधुयुक्तं मृदितं स्थाप्यं च भाण्डके स्निग्धे
उपयुक्तमेतदचिरान्निहन्ति कफपित्तजान् रोगान् ।
शूलं तथाम्लपित्तं ग्रहणीमपि कामलामुग्राम् ॥५०॥

हर्रे १६ तोला, शुद्ध गन्धक तथा मण्डूर प्रत्येक ८ तोला, शुद्ध पारद २ तोला, भांगरेका रस तथा काले भांगरेका रस प्रत्येक १ प्रस्थ मिलाकर लोहेके खरलमें दण्डसे घोटना चाहिये । सूख जानेपर घी और शहद मिलाकर चिकने वर्तनमें रखना चाहिये । इसका प्रयोग करनेसे शीघ्र ही कफपित्तजन्यरोग, शूल, अम्लपित्त, ग्रहणी और भयंकर कामलारोग नष्ट होते हैं ॥ ४८-५० ॥

त्रिफलालौहम् ।

अक्षामलकशिवानां स्वरसैः पक्वं सुलोहजं चूर्णम् ।
सगुडं यदुपभुंक्ते मुञ्चति सद्यस्त्रिदोषजं शूलम् ५१

बहेड़ा, आंवला तथा हर्रके स्वरस या क्वाथके साथ पकाया गया लौह भस्म गुड़के साथ खानेसे त्रिदोषज शूल नष्ट होता है ॥ ५१ ॥

लोहावलेहः ।

लोहस्य रजसो भागस्त्रिफलायास्तथा त्रयः ।
गुडस्याष्टौ तथा भागा गुडान्मूत्रं चतुर्गुणम् ॥५२॥
एतत्सर्वं च विपचेद् गुडपाकविधानवित् ।
लिहेच्च तद्यथाशक्ति क्षये शूले च पाकजे ॥ ५३ ॥

लोहभस्म १ भाग, त्रिफला ३ भाग, गुड़ ८ भाग, गोमूत्र ३२ भाग सबको मिला पाक करना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर यथाशक्ति चाटना चाहिये । इससे क्षय तथा परिणामशूल नष्ट होता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

धात्रीलौहम् ।

धात्रीचूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लोहचूर्णस्य ।
यष्टीमधुकरजश्च द्विपलं दद्यात्पटे घृष्टम् ॥ ५४ ॥

---

* बृहच्छतावरीमण्डूरम्-" शतावरीरसप्रस्थे प्रस्थे च सुरभीजले । अजायाः पयसः प्रस्थे प्रस्थे धात्रीरसस्य च ॥ लौहकिट्टपलान्यष्टौ शर्करायाश्च षोडश । दत्त्वाज्यकुडवं चैव पचेन्मृद्वग्निना शनैः ॥ सिद्धशीते घटे नीते चूर्णानीमानि दापयेत् । विडङ्गत्रिफलाव्योषयमानीगजपिप्पलीः ॥ द्विजीरकघनानां च श्लक्ष्णान्यक्षसमानि च । खादेदग्निबलापेक्षी भोजनादौ विचक्षणः ॥ निहन्ति पक्तिशूलं च अम्लपित्तं सुदारुणम् । रक्तपित्तं च शूले च पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ " शतावरीका रस १ सेर ९ छ० ३ तोला, गोमूत्र १ सेर ९ छ० ३ तोला, बकरीका दूध १ सेर ९ छ० ३ तोला, आंवलेका रस १ सेर ९ छ० ३ तोला, लोहकिट (मण्डूर) ३२ तोला, शक्कर ६४ तोला, तथा घी ३२ तो० सब एकमें मिलाकर मन्द आंचसे पकाना चाहिये । तैयार हो जानेपर उतार ठण्डा कर वायविडंग, त्रिफला, त्रिकटु, अजवाइन, गजपीपल, दोनों जीरा, तथा नागरमोथा प्रत्येक एक तोलाका चूर्ण छोड़कर अग्निबलके अनुसार भोजनके आदिमें इसे खाना चाहिये । यह कठिन परिणामशूल, अम्लपित्त, रक्तपित्त, शूल, पाण्डुरोग और हलीमकको नष्ट करता है । सामान्य मात्रा ४ रत्तीसे १ माशेतक ।

अमृताकाथेनैतच्चूर्णं भाव्यं च सप्ताहम् ।
चण्डातपेषु शुष्कं भूयः पिष्ट्वा नवे घटे स्थाप्यम् ५५
घृतमधुना सह युक्तं भुक्त्यादौ मध्यतस्तथान्ते च ।
त्रीनपि वारान्खादेत्पथ्यं दोषानुबन्धेन ॥ ५६ ॥
भक्तस्यादौ नाशयति व्याधीन्पित्तानिलोद्भवान्सद्यः ।
मध्येऽन्नविष्टम्भं जयति नृणां संविदह्यते नान्नम् ५७
पानान्नकृतान् रोगान्भुक्त्यन्ते शीलितं जयति ।
एवं जीर्यति चान्ने निहन्ति शूलं नृणां सुकष्टमपि ५८
हरति सहसा युक्तो योगश्चायं जरत्पित्तम् ।
चक्षुष्यः पलितघ्नः कफपित्तसमुद्भवाञ्जयेद्रोगान् ।
प्रसादयत्यपि रक्तं पाण्डुत्वं कामलां जयति ॥५९॥

आंवलेका चूर्ण ३२ तोला, लौहभस्म १६ तोला, तथा मौरेठीका चूर्ण ८ तोला सबको एकमें मिलाकर गुर्चके क्वाथकी सात दिनतक भावना देनी चाहिये । फिर कड़ी धूपमें सुखाय घोटकर नये घटमें रखना चाहिये । फिर घी और शहदके साथ भोजनके आदि, मध्य तथा अन्तमें इस रीतिसे प्रतिदिन तीन वार बलानुसार खाना चाहिये । पथ्य दोषोंके अनुसार लेना चाहिये । भोजनके पहिले खानेसे पित्त, वातजन्य रोगोंको शीघ्र ही नष्ट करता है । मध्यमें अन्नके विबन्धको नष्ट कर पचाता है । भोजनके अन्तमें सेवन करनेसे अन्नपानके दोषोंको नष्ट करता है । ऐसेही परिणामशूल तथा अन्नद्रव नामक शूलको भी नष्ट करता है । नेत्रोंको लाभ पहुँचाता, बालोंको काला करता, कफ, तथा पित्तज रोगोंको शान्त करता और रक्तको शुद्ध करता तथा पाण्डुरोग और कामलाको नष्ट करता है ॥ ५४–५९ ॥

लौहामृतम् ।

तनूनि लोहपत्राणि तिलोत्सेधसमानि च ।
कशिकामूलकल्केन संलिप्य सार्षपेण वा ॥ ६० ॥
विशोष्य सूर्यकिरणैः पुनरेवावलेपयेत् ।
त्रिफलाया जले ध्मातं वापयेच्च पुनः पुनः ॥ ६१॥
ततः संचूर्णितं कृत्वा कर्पटेन तु छानयेत् ।
भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यां यथाग्न्येतत्प्रयोगतः ॥ ६२ ॥
माषकं त्रिगुणं वाथ चतुर्गुणमथापि वा ।
छागस्य पयसः कुर्यादनुपानमभावतः ॥ ६३ ॥
गवां शृतेन दुग्धेन चतुः षष्टिगुणेन च ।
पक्तिशूलं निहन्त्येतन्मासेनैकेन निश्चितम् ॥ ६४ ॥
लौहामृतमिदं श्रेष्ठं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
ककारपूर्वकं यच्च यच्चाम्लं परिकीर्तितम् ॥ ६५ ॥
सेव्यं तन्न भवेदत्र मांसं चानूपसम्भवम् ।

तिलके समान पतले लोहेके पत्रोंको कशिका (एक प्रकार चामर घास नामसे प्रसिद्ध) की जड़के कल्कसे अथवा सरसोंके कल्कसे लिप्त कर फिर धूपमें लेप सुख जानेपर दूसरी बार सरसोंके कल्कसे लेप कर सुखाना चाहिये । फिर तपा तपा कर त्रिफलाके क्वाथमें बुझाना चाहिये । फिर चूर्ण कर कपड़ेसे छान लेना चाहिये । फिर इसे अग्निके अनुसार शहद व घीके साथ खाना चाहिये । १ माशा, ३ माशा अथवा ४ माशा तक, ऊपरसे लौहसे ६४ गुना बकरीका दूध अथवा गायका दूध गरम कर गुनगुना पीना चाहिये । यह एक महीनेमें परिणामशूलको नष्ट करता है । इसे ब्रह्माने सर्व प्रथम बनाया था। इसके सेवनमें ककारादि नामवाले द्रव्य तथा अम्ल पदार्थ व जलप्राय प्रदेशके प्राणियोंके मांसको न खाना चाहिये ॥६०–६५॥

खण्डामलकी ।

स्विन्नपीडितकूष्माण्डात्तुलार्धं भृष्टमाज्यतः ॥ ६६ ॥
प्रस्थार्धे खण्डतुल्यं तु पचेदामलकीरसात् ।
प्रस्थे सुस्विन्नकूष्माण्डरसप्रस्थे विघट्टयन् ॥ ६७ ॥
दर्व्या पाकं गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् ।
द्वे द्वे पले कणाजाजीशुण्ठीनां मरिचस्य च ॥६८॥
पलं तालीसधन्याकचातुर्जातकमुस्तकम् ।
कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्धं माक्षिकस्य च ॥ ६९ ॥
पक्तिशूलं निहन्त्येतद्दोषत्रयभवं च यत् ।
छर्द्यम्लपित्तमूर्च्छाश्च श्वासकासावरोचकम् ॥७० ।
हृच्छूलं रक्तपित्तं च पृष्ठशूलं च नाशयेत् ।
रसायनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलकसंज्ञितम् ॥ ७१ ॥

उबालकर निचोया गया कूष्माण्ड २॥ सेर, घी ६४ तो० छोड़कर भूनना चाहिये । फिर इसमें २॥ सेर मिश्री १२८ तो० आंवलेका रस, तथा १२८ तो० उबाले हुए कूष्माण्डका स्वरस मिलाकर पकाना चाहिये । पाक सिद्ध हो जानेपर छोटी पीपल, जीरा तथा सोंठ, प्रत्येक ८ तोला, काली मिर्च ४ तोला, तालीशपत्र, धनियां, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, व नागरमोथा प्रत्येक १ तोला तथा ठण्डा होने पर शहद ६४ तोला मिलाकर रखना चाहिये । यह त्रिदोषजन्य परिणामशूल, वमन, अम्लपित्त, मूर्छा, श्वास, कास, अरुचि, हृदयके दर्द, रक्तपित्त तथा पीठके शूलको नष्ट करता है । यह "खंडामलक" श्रेष्ठ रसायन है ॥ ६६–७१ ॥

नारिकेलखण्डः ।

कुडवमितमिह स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं
पलपरिमितसर्पिःपाचितं खण्डतुल्यम् ।
निजपयसि तदेतत्प्रस्थमात्रे विपक्वं
गुडवदथ सुशीते शाणभागान्क्षिपेच्च ॥७२॥
धन्याकपिप्पलिपयोदतुगाद्विजीराव्-
शाणं त्रिजातमिभकेशरवह्निचूर्ण्यं ।

हन्त्यम्लपित्तमरुचिं क्षयमस्रपित्तं
शूलं वमिं सकलपौरुषकारि हारि ॥ ७३ ॥

अच्छी तरह पिसा हुआ कच्चा नारियलका गूदा १६ तो० ४ तोला घीमें भूनना चाहिये, सुगन्ध उठने लगनेपर बराबर मिश्री तथा नारियलका जल १२८ तो० मिलाकर पकाना चाहिये। अवलेह तैयार हो जानेपर उतार ठंढा कर धनियां, छोटी पीपल, नागरमोथा, वंशलोचन, सफेद जीरा तथा स्याह जीरा प्रत्येक ३ माशे तथा दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर प्रत्येक ६ रत्तीका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे अम्लपित्त, अरुचि, क्षय, रक्तपित्त, शूल, वमन नष्ट होते हैं तथा पुरुषत्व बढ़ता है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

कलायचूर्णादिगुटी ।

कलायचूर्णभागौ द्वौ लोहचूर्णस्य चापरः ।
कारवेल्लपलाशानां रसेनैव विमर्दितः ॥ ७४ ॥
कर्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेद् गुटिकां नरः ।
मण्डानुपानात्सा हन्ति जरत्पित्तं सुदारुणम् ॥७५॥

मटरका चूर्ण २ भाग, लौहभस्म १ भाग वर्तमान समयके लिये १ माशाकी वटी पर्य्याप्त होगी। भाग दोनोंको करेलेके पत्तेके रससे घोटकर १ तोलेकी गोली बना लेनी चाहिये। यह मण्डके अनुपानके साथ सेवन करनेसे जरत्पित्तको शान्त करती है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

त्रिफलायोगौ ।

लिह्याद्वा त्रैफलं चूर्णमयश्चूर्णसमन्वितम् ।
यष्टीचूर्णेन वा युक्तं लिह्यात्क्षौद्रेण तद्वदे ॥ ७६ ॥

(१) अथवा त्रिफलाका चूर्ण लौह भस्मके साथ अथवा (२) मौरेठीके चूर्णके साथ शहद मिलाकर चाटनेसे जरत्पित्त शान्त होता है ॥ ७६ ॥

अन्नद्रवशूलचिकित्सा ।

पित्तान्तं वमनं कृत्वा कफान्तं च विरेचनम् ।
अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्ते यदीरितम् ॥७७॥
आमपक्वाशये शुद्धे गच्छेदन्नद्रवः शमम् ।

पित्तान्त वमन व कफान्त विरेचन करनेके अनन्तर जरत्पित्तकी जो चिकित्सा बतायी गयी, वह अन्नद्रव शूलमें भी करनी चाहिये। आमाशय व पक्वाशय शुद्ध हो जाने पर अन्नद्रवशूल शान्त हो जाता है ॥ ७७ ॥—

विविधा योगाः ।

माषेण्डरी सतुषिका स्विन्ना सर्पिर्युता हिता ॥७८॥
गोधूममण्डकं तत्र सर्पिषा गुडसंयुतम् ।
ससितं शीतदुग्धेन मृदितं वा हितं मतम् ॥७९॥
शालितण्डुलमण्डं वा कवोष्णं सिक्थवर्जितम् ।
वाट्यं क्षीरेण संसिद्धं घृतपूरं सशर्करम् ॥ ८० ॥
शर्करां भक्षयित्वा वा क्षीरमुत्क्वथितं पिबेत् ।
पटोलपत्रयूषेण खादेच्चणकसक्तुकान् ॥ ८१ ॥

बिना छिलका निकाली उड़दकी पिट्ठीके बड़े घीमें पकाकर खाना चाहिये। अथवा गेहूंका मण्ड घी व गुड़ मिलाकर खाना चाहिये। अथवा मिश्री व ठण्ढा दूध मिलाकर खाना चाहिये। अथवा शाली चावलोंका मण्ड कुछ गरम गरम सीथ रहित अथवा यवका मण्ड दूध, घी व शक्कर मिलाकर पीना चाहिये। अथवा शक्कर खाकर ऊपरसे गरम दूध पीना चाहिये। अथवा परवलके पत्तेके यूषके साथ चनाके सत्तुओंको खाना चाहिये ७८-८१

पथ्यविचारः ।

अन्नद्रवे जरत्पित्ते वह्निर्मन्दो भवेद्यतः ।
तस्मादत्रान्नपानानि मात्राहीनानि कल्पयेत् ॥८२॥

अन्नद्रव तथा जरत्पित्तमें अग्नि मन्द हो जाती है। अतः इसमें अन्नपान आदि सब पदार्थोंको अल्पमात्रामें ही देना उचित है ॥ ८२ ॥

इति परिणामशूलाधिकारः समाप्तः ।

अथोदावर्ताधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

त्रिवृत्सुधापत्रतिलादिशाक-
ग्राम्यौदकानूपरसैर्यवान्नम् ।
अन्यैश्च सृष्टानिलमूत्रविड्भि-
रद्यात्प्रसन्नागुडसीधुपायी ॥ १ ॥

निसोथ, सेहुण्डके पत्ते, व तिल आदिके शाक तथा ग्राम्य, आनूप जलमें रहनेवाले प्राणियोंके मांसरस तथा मल मूत्र व वायुको शुद्ध करनेवाले दूसरे पदार्थोंके साथ यवका दलिया तथा रोटी आदि खाना चाहिये और शराबका स्वच्छ भाग अथवा गुड़से बनाया गया सीधु पीना चाहिये ॥ १ ॥

कारणभेदेन चिकित्साभेदः ।

आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्विन्नस्य शस्यते ।
पुरीषजे तु कर्तव्यो विधिरानाहिकश्च यः ॥ २ ॥
क्षारवैतरणी वस्ती युञ्ज्यात्तत्र चिकित्सकः ।

वातजन्य उदावर्तमें स्नेहन स्वेदनके अनन्तर आस्थापन वस्ति देना चाहिये। मलावरोधसे उत्पन्न उदावर्तमें आनाह नाशकी चिकित्सा करनी चाहिये। तथा क्षार बस्ति और वैतरणबस्ति (आस्थापनका भेद) देना चाहिये ॥ २ ॥

श्यामादिगणः ।

श्यामा दन्ती द्रवन्तीत्वङ्महाश्यामा स्नुही त्रिवृत् ॥ ३ ॥
सप्तला शंखिनी श्वेता राजवृक्षः सतिल्वकः ।
कम्पिल्लकं करञ्जश्च हेमक्षीरीत्ययं गणः ॥ ४ ॥
सर्पिस्तैलरजःक्वाथकल्केष्वन्यतमेषु च ।
उदावर्तोदरानाहविषगुल्मविनाशनः ॥ ५ ॥

काला निसोथ, दन्ती, द्रवन्ती (दन्तीभेद) की छाल, विधारा, थूहर, सफेद निसोथ, सप्तला (सेहुण्डका भेद) कालादाना, सफेद विष्णुकान्ता, अमलतासका गूदा, पठानीलोध, कवीला, कञ्जा तथा हेमक्षीरी (इसे सत्यानाशी तथा भड़भांड़ भी कहते हैं) इन औषधियोंके साथ घृत अथवा तैलका पाक करके अथवा इन औषधियोंका चूर्ण, क्वाथ अथवा कल्क आदि किसी प्रकार सेवन करनेसे उदावर्त, उदररोग, अनाह, विष और गुल्म नष्ट होता है ॥ ३-५ ॥

त्रिवृतादिगुटिका ।

त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुष्पञ्चभागिकाः ।
गुडिका गुडतुल्यास्ता विड्विबन्धगदापहाः ॥ ६ ॥

निसोथ २ भाग, छोटी पीपल ४ भाग, बड़ी हर्रका छिल्का ५ भाग कूट छान सबके बराबर गुड़ मिलाकर गोली बना लेनी चाहिये । यह मलकी रुकावटको नष्ट करती है ॥ ६ ॥

हरितक्यादिचूर्णम् ।

हरीतकीयवक्षारपील्लूनि त्रिवृता तथा ।
घृतैश्चूर्णमिदं पेयमुदावर्तविनाशनम् ॥ ७ ॥

बड़ी हर्रका छिल्का, यवाखार, पीलु तथा निसोथ समान भाग ले चूर्ण बनाकर घीके साथ खानेसे उदावर्त नष्ट होता है ॥ ७ ॥

हिंग्वादिचूर्णम् ।

हिंगुकुष्ठवचासर्जि विडं चेति द्विरुत्तरम् ।
पीतं मद्येन तच्चूर्णमुदावर्तहरं परम् ॥ ८ ॥

भुनी हींग १ भाग, कूठ २ भाग, वच ४ भाग, सज्जीखार ८ भाग तथा विडनमक १६ भाग ले चूर्ण बनाकर शराबके साथ पीनेसे उदावर्तरोग निःसन्देह नष्ट होता है ॥ ८ ॥

नाराचचूर्णम् ।

खण्डपलं त्रिवृता सममुपकुल्याकर्षचूर्णितं श्लक्ष्णम् ।
प्राग्भोजने च समधु विडालपदकं लिहेत्प्राज्ञः ॥९॥
एतद्गाढपुरीषे पित्ते कफे च विनियोज्यम् ।
सुस्वादुर्नृपयोग्योऽयं योगो नाराचको नाम्ना ॥१०॥

मिश्री ४ तोला, निसोथ ४ तोला, छोटी पीपल १ तोला इन ओषधियोंका महीन चूर्ण कर भोजनके पहिले १ तोलाकी मात्रा शहदके साथ चाटनी चाहिये । इसका कड़े दस्तोंके आनेमें तथा पित्त और कफजन्य उदावर्तमें प्रयोग करना चाहिये । यह मीठा योग राजाओंके योग्य है । इसे "नाराचचूर्ण" कहते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

लशुनप्रयोगः ।

रसोनं मद्यसंमिश्रं पिबेत्प्रातः प्रकाङ्क्षितः ।
गुल्मोदावर्तशूलघ्नं दीपनं बलवर्धनम् ॥ ११ ॥

प्रातःकाल भूख लगनेपर शुद्ध लहसुनको मद्यके साथ मिलाकर पीवे । यह गुल्म, उदावर्त व शूलको नष्ट करता, अग्नि दीप्त करता तथा बलको बढ़ाता है ॥ ११ ॥

फलवर्तयः ।

हिङ्गुमाक्षिकसिन्धूत्थैः पक्त्वा वर्तिं सुनिर्मिताम् ।
घृताभ्यक्तां गुदे दद्यादुदावर्तविनाशिनीम् ॥ १२ ॥
मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः ।
गुडक्षारसमायुक्ताः फलवर्तिः प्रशस्यते ॥ १३ ॥
आगारधूमसिन्धूत्थतैलयुक्ताम्लमूलकम् ।
क्षुण्णं निर्गुण्डिपत्रं वा स्विन्ने पायौ क्षिपेद् बुधः १४

हींग, शहद व सेंधानमकको पकाकर बनायी गयी बत्ती घी चुपरकर गुदामें रखनेसे उदावर्त नष्ट होता है । इसी प्रकार मैनफल, छोटी पीपल, कूठ, दूधिया वच व सफेद-सर्सों महीन पीस गुड़ और क्षार मिलाकर बनायी गयी बत्ती भी उत्तम है । अथवा गृहधूम, सेंधानमक तथा तैलके साथ उठायी गयी खट्टी मूलीकी बत्ती अथवा केवल सम्भालूकी पत्तीके कल्कको बत्ती गुदाका स्वेदन कर गुदामें रखनी चाहिये ॥ १२-१४ ॥

मूत्रजोदावर्तचिकित्सा ।

सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत् ।
एलां वाप्यथ मद्येन क्षीरं वारि पिबेच्च सः ॥ १५ ॥
दुःस्पर्शास्वरसं वापि कषायं ककुभस्य च ।
एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम् ॥ १६ ॥
पञ्चमूलीशृतं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा ।
सर्वथैवोपयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिम् ॥ १७ ॥

मूत्रकी रुकावटसे उत्पन्न उदावर्तमें काला नमक छोड़कर शराब पीना चाहिये । अथवा छोटी इलायचीका चूर्ण शराबके साथ अथवा जल व दूध एकमें मिलाकर पीना चाहिये । अथवा यवासाका स्वरस अथवा अर्जुनकी छालका क्वाथ अथवा ककड़ीके बीज पानीमें पीस लवण मिलाकर पीना चाहिये । अथवा पञ्चमूलसे सिद्ध दूध अथवा मुनक्केका रस पीना चाहिये । तथा मूत्रकृच्छ्र व अश्मरीनाशक विधिका सर्वथा सेवन करना चाहिये ॥१५-१७॥

जृम्भजाद्युदावर्तचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदैरुदावर्तं जृम्भजं समुपाचरेत् ।
अश्रुमोक्षोऽश्रुजे कार्यः स्वप्नो मद्यं प्रियाः कथाः ॥१८॥
क्षवजे क्षवपत्रेण घ्राणस्थेनानयेत्क्षवम् ।
तथोर्ध्वजत्रुगोऽभ्यङ्गः स्वेदो धूमः सनावनः ॥१९॥

हितं वातघ्नमद्यं च घृतं चौत्तरभक्तिकम् ।
उद्गारजे क्रमोपेतं स्नैहिकं धूममाचरेत् ॥ २० ॥
छर्द्यावातं यथादोषं नस्यस्नेहादिभिर्जयेत् ।
भुक्त्वा प्रच्छर्दनं धूमो लंघनं रक्तमोक्षणम् ॥ २१॥
रूक्षान्नपाने व्यायामो विरेकश्चात्र शस्यते ।

जम्भाईके अवरोधसे उत्पन्न उदावर्तमें स्नेहन व स्वेदन करना चाहिये । आंसुओंके अवरोधसे उत्पन्नमें आंसुओंका लाना, सोना, मद्य पीना तथा प्रिय कथायें सुनना हितकर है । छिंकाके रोकनेसे उत्पन्नमें नकछिकनीके पत्तोंको पीस नाकमें रखकर छींक लाना चाहिये । तथा जत्रुके ऊपर अभ्यङ्ग, स्वेदन तथा धूमपान व नस्य तथा वातघ्न मद्य व घृतके साथ भोजन करना हितकर है । उद्गारजन्यमें विधिपूर्वक स्नेहयुक्त धूमपान करना चाहिये । वमनके रोकनेसे उत्पन्न उदावर्तमें दोषोंके अनुसार नस्य, स्नेहन आदि करना, भोजन कर वमन करना, धूमपान, लंघन, रक्तमोक्षण, रूक्ष अन्नपान, व्यायाम तथा विरेचन देना हितकर होता है ॥ १८–२१ ॥

शुक्रजोदावर्तचिकित्सा ।

वस्तिशुद्धिकरावापं चतुर्गुणजलं पयः ॥ २२ ॥
आवारिनाशात्क्वथितं पीतवन्तं प्रकामतः ।
रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥ २३ ॥
अत्राभ्यङ्गावगाहाश्च मदिराश्चरणायुधाः ।
शालिः पयो निरूहाश्च शस्तं मैथुनमेव च ॥ २४॥

वस्ति शुद्ध करनेवाले पदार्थोंका कल्क तथा चतुर्गुण जल छोड़कर पकाये गये दूधको पिलाकर सुन्दरी स्त्रियोंका सहवास करावे तथा अभ्यङ्ग (विशेषतः वस्ति व लिङ्गमें) जलमें बैठाना, शराब, मुर्गेका मांसरस, शालिके चावल, दूध, निरूहण वस्ति और मैथुन करना विशेष हितकर है ॥ २२–२४ ॥

क्षुद्विघातादिजचिकित्सा ।

क्षुद्विघाते हितं स्निग्धमुष्णमल्पं च भोजनम् ।
तृष्णाघाते पिबेन्मन्थं यवागूं वापि शीतलाम्॥२५॥
रसेनाद्यात्सुविश्रान्तः श्रमश्वासातुरो नरः ।
निद्राघाते पिबेत्क्षीरं स्वप्नः संवाहनानि च॥२६॥

भूखके रोकनेसे उत्पन्नमें चिकना, गरम व थोड़ा भोजन करना हितकर है । प्यासके रोकनेसे उत्पन्नमें मन्थ अथवा शीतल यवागू पीना चाहिये । श्रमज श्वाससे पीड़ित (थके हुए) पुरुषको विश्राम कराकर मांसरसके साथ भोजन कराना चाहिये । निद्राघातजमें दूध पीना, सोना तथा देह दबवाना हितकर है ॥ २५ ॥ २६ ॥

इत्युदावर्ताधिकारः समाप्तः ।

अथानाहाधिकारः ।
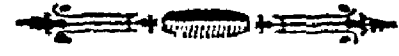
चिकित्साक्रमः ।

उदावर्तक्रियानाहे सामे लंघनपाचनम् ॥ १ ॥

आनाहमें उदावर्तकी चिकित्सा तथा आमसहितमें लंघन व पाचन करना चाहिये ॥ १ ॥

द्विरुत्तरं चूर्णम् ।

द्विरुत्तरा हिङ्गुवचा सकुष्ठा
सुवर्चिका चेति विडङ्गचूर्णम् ।
सुखाम्बुनानाहविपूचिकार्ति-
हृद्रोगगुल्मोर्ध्वसमीरणघ्नम् ॥ २ ॥

भूनी हींग १ भाग, दूधिया वच २ भाग, कूठ ४ भाग, सज्जीखार ८ भाग, वायविडङ्ग १६ भाग, सबको महीन चूर्ण कर गुनगुने जलके साथ पीनेसे अफारा, हैजा, हृद्रोग, गुल्म तथा डकारोंका अधिक आना शान्त होता है ॥ २ ॥

वचादिचूर्णम् ।

वचाभयाचित्रकयावशूकान्
सपिप्पलीकातिविषान्सकुष्ठान् ।
उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान्
पीत्वा जयेदाशु हितौदनाशी ॥ ३ ॥

दूधिया वच, बड़ी हर्रका छिल्का, चीतकी जड़, यवाखार, छोटी पीपल, अतीस तथा कूठ सबको महीन चूर्ण कर गुनगुने जलके साथ पीनेसे आनाह तथा वायुकी रुकावट शीघ्र ही नष्ट होती है । इसमें हितकारक पदार्थोंके साथ भात खाना चाहिये ॥ ३ ॥

त्रिवृतादिगुटिका ।

त्रिवृद्धरीतकीश्यामाः स्नुहीक्षीरेण भावयेत् ।
वटिका मूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठाश्चानाहभेदिकाः ॥ ४ ॥

निसोथ, बड़ी हर्रका छिल्का तथा काली निसोथ सबको महीन पीस थूहरके दूधकी भावना दे गोली बना गोमूत्रके साथ पीनेसे अफारा नष्ट होता है ॥ ४ ॥

क्षारलवणम् ।

फलं च मूलं च विरेचनोक्तं
हिङ्ग्वर्कमूलं दशमूलमग्र्यम् ।
स्नुक्चित्रकौ चैव पुनर्नवा च
तुल्यानि सर्वैर्लवणानि पञ्च ॥ ५ ॥

स्नेहैः समूत्रैः सह जर्जराणि
शरावसन्धौ विपचेत्सुलिप्ते ।
पक्वं सुपिष्टं लवणं तदन्नैः
पानैस्तथानाहरुजाघ्नमग्र्यम् ॥ ६ ॥

विरेचनाधिकारोक्त फल तथा मूल, हींग, आककी जड़, दशमूल, थूहर, चीतकी जड़ तथा पुनर्नवा सब समान भाग, सबके समान पांचों नमक ले चूर्ण कर स्नेह तथा गोमूत्रमें मिला शरावसम्पुटमें बन्द कर फूक देना चाहिये । इस तरह पकाये लवणको पीसकर अन्न तथा पीनेकी चीजोंके साथ प्रयोग करनेसे अफारा अवश्य दूर होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

राठादिवर्तिः ।

राठधूमविडव्योषगुडमूत्रैर्विपाचिता ।
गुदेऽङ्गुष्ठसमा वर्तिर्विधेयानाहशूलनुत् ॥ ७ ॥

मैनफल, घरका धुआं, विड़लवण, त्रिकटु, गुड़ तथा गोमूत्र सबको एकमें मिला पकाकर बनायी गयी अंगूठेके समान मोटी बत्तीको[1] गुदामें रखनेसे अफारा व शूल नष्ट होता है ॥ ७ ॥

त्रिकटुकादिवर्तिः ।

वर्तिस्त्रिकटुकसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः ।
मधुनि गुडे वा पक्त्वा पायावङ्गुष्ठमानतो वेश्या[2]८
वर्तिरियं दृष्टफला गुदे शनैः प्रणिहिता घृताभ्यक्ता ।
आनाहोदावर्तशमनी जठरगुल्मनिवारिणी ॥ ९ ॥

त्रिकटु, सेंधानमक, सरसों, घरका धुआं, कूठ, मैनफलका चूर्ण कर शहद अथवा गुड़में मिलाकर पकाकर अंगूठेके बराबर मोटी बत्ती घी चुपरकर गुदामें रखनी चाहिये । इसका फल देखा गया है । यह अफारा, उदावर्त, उदर व गुल्मको नष्ट करती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

शुष्कमूलकाद्यं घृतम् ।

मूलकं शुष्कमार्द्रं च वर्षाभूः पञ्चमूलकम् ।
आरेवतफलं चापि पिष्ट्वा तेन पचेद् घृतम् ।
तत्पीयमानं शमयेदुदावर्तमसंशयम् ॥ १० ॥

सूखी और गीली मूली, पुनर्नवाकी जड़, लघु पञ्चमूल तथा अमलतासका गूदा सब समान भाग ले कल्क करना चाहिये । कल्कसे चौगुना घी और घीसे चौगुना जल मिला पका-कर सेवन किया गया घृत निःसन्देह उदावर्तको शान्त करता है ॥ १० ॥

स्थिराद्यं घृतम् ।

स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः
सम्पाकपूतीककरञ्जयोश्च ।
सिद्धः कषाये द्विपलांशिकानां
प्रस्थो घृतात्स्यात्प्रतिरुद्धवाते ॥ ११ ॥

शालपर्णी आदि पञ्चमूल, पुनर्नवा, अमलतासका गूदा, कञ्जा तथा दुर्गन्धितकञ्जा प्रत्येक ८ तोला ले काढ़ा बनाकर घी १२८ तोला मिलाकर पकाना चाहिये । यह घी 'वायुकी रुकावटको नष्ट करता है ॥ ११ ॥

इत्यानाहाधिकारः समाप्तः ।

अथ गुल्माधिकारः ।

चिकित्साक्रमः ।

लघ्वन्नं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् ।
बृंहणं यद्भवेत्सर्वं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ १ ॥
स्निग्धस्य भिषजा स्वेदः कर्तव्यो गुल्मशान्तये ।
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्बणम् ॥२॥
भित्त्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति ।
कुम्भीपिण्डेष्टकास्वेदान्कारयेत्कुशलो भिषक् ॥३॥
उपनाहाश्च कर्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः।
स्थानेऽवसेको रक्तस्य बाहुमध्ये शिराव्यधः॥४॥
स्वेदोऽनुलोमनं चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम् ।
पेया वातहरैः सिद्धाः कौलत्था धन्वजा रसाः॥५॥
खडाः सपञ्चमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः ।

जो पदार्थ हलके, अग्निदीपक, स्निग्ध, वायुके अनुलोमन करने वाले तथा बृंहण होते हैं, वे समस्त गुल्मवालोंको हितकर हैं । गुल्मकी शान्तिके लिये स्नेहन कर स्वेदन करना चाहिये । स्नेहन करनेके अनन्तर किया गया स्वेदन छिद्रोंको मुलायम करता, बढ़े वायुको शान्त करता तथा बन्धे हुए मलकी गाठोंको फोड़कर गुल्मको नष्ट करता है । इसलिये वैद्य जैसा उचित

---

१ जितने गुड़ तथा गोमूत्रसे पकाकर बत्ती बन सके, उतना गुड़ व गोमूत्र छोड़ना चाहिये । यह शिवदास-जीका मत है । कुछ आचार्योंका मत है, कि समस्त चूर्णके समान गुड़, सबसे चतुर्गुण गोमूत्र छोड़कर बत्ती बनानी चाहिये ।

२ यहांपर त्रिकटुकादि मिलाकर १ कर्ष, गुड़ १ कर्ष तथा मधु ४ कर्ष मिलाकर बत्ती बनानी कुछ आचार्योंको अभीष्ट है । पर इस प्रकार बत्ती बननेमें ही सन्देह है । अतः जितनेसे बन सके, उतना परिमाण छोड़ना चाहिये ।

समझे कुम्भीस्वेद, पिण्डस्वेद, इष्टिकास्वेद तथा सुखोष्ण शाल्वणादि उपनाह करें । रक्तज गुल्ममें बाहुमें शिराव्यध कर रक्तको निकाल देना चाहिये । तथा स्वेदन व वायुका अनुलोमन सभी गुल्मोंमें हितकर है । तथा वातनाशक पदार्थोंसे सिद्ध पेया, कुलथीका यूष तथा जांगल प्राणियोंका मांसरस तथा पञ्चमूल मिलकर बनाये गये खड़ गुल्मवालोंको पथ्यके साथ देने चाहियें ॥ १-५ ॥

वातगुल्मचिकित्सा ।

मातुलुङ्गरसो हिङ्गु दाडिमं विडसैन्धवम् ॥ ६ ॥
सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ।
नागराधपलं पिष्टं द्वे पले लुञ्चितस्य च ॥ ७ ॥
तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन पाययेत् ।
वातगुल्ममुदावर्तं योनिशूलं च नाशयेत् ॥ ८ ॥

बिजौरे निम्बूका रस, भुनी हींग, अनारका रस, विडनमक, सेंधानमक और शराबका अच्छी भाग मिलाकर पीनेसे वातगुल्म नष्ट होता है । इसी प्रकार सोंठ २ तोला, बिजौरे निम्बूका रस ८ तोला, काला तिल ४ तोला, गुड़ ४ तोला मिलाकर गरम दूधके साथ पिलाना चाहिये । यह वातगुल्म, उदावर्त और योनिशूलको नष्ट करता है ॥ ६-८ ॥

एरण्डतैलप्रयोगः ।

पिबेदेरण्डतैलं वा वारुणीमण्डमिश्रितम् ।
तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी पिबेन्नरः ॥ ९ ॥

अथवा एरण्डका तैल ताड़ीके साथ अथवा दूधके साथ पीनेसे वातगुल्म नष्ट होता है ॥ ९ ॥

लशुनक्षीरम् ।

साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुष्पलम् ।
क्षीरोदकेऽष्टगुणिते क्षीरशेषं च पाययेत् ॥ १० ॥
वातगुल्ममुदावर्तं गृध्रसीं विषमज्वरम् ।
हृद्रोगं विद्रधिं शोषं शमयत्याशु तत्पयः ॥ ११ ॥
एवं तु साधिते क्षीरे स्तोकमप्यत्र दीयते ।
सर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकिजोऽपि वा ॥१२॥
तैलेन पीतः शमयेद् गुल्मं पवनसम्भवम् ।

१ वातनाशक क्वाथादिसे पूर्ण घड़ेकी भापसे स्वेदन करना "कुम्भीस्वेदन," उबाले हुए उड़द आदिकी पिण्डी बान्धकर स्वेदन करना "पिण्डस्वेद" और ईंटें गरम कर वातनाशक क्वाथसे सिञ्चन करना "इष्टिकास्वेद" कहा जाता है । स्वेदका विस्तार चरक सूत्रस्थान १४ अध्यायमें देखिये ।

शुद्ध सुखाया गया लहसुन १६ तोला अठगुने दूध और पानीमें मिलाकर पकाना चाहिये, दूधमात्र शेष रहनेपर पीना चाहिये । इससे वातगुल्म, उदावर्त, गृध्रसी, विषमज्वर, हृद्रोग, विद्रधि तथा राजयक्ष्मा शीघ्र ही शान्त होता है । तथा इसी प्रकार सिद्ध दूधमें सज्जीखार, कूठ तथा केवड़ेकी क्षार थोड़ा छोड़ एरण्डतैल मिलाकर पीनेसे वातज गुल्म शान्त होता है ॥ १०-१२ ॥-

उत्पत्तिभेदेन चिकित्साभेदः ।

वातगुल्मे कफे वृद्धे वान्तिश्चूर्णादिरिष्यते ॥ १३ ॥
पैत्ते तु रेचनं स्निग्धं रक्ते रक्तस्य मोक्षणम् ।
स्निग्धोष्णेनोदिते गुल्मे पैत्तिके स्रंसनं हितम्॥१४॥
रूक्षोष्णेन तु सम्भूते सर्पिःप्रशमनं परम् ।
काकोल्यादिमहातिक्तवासाद्यैः पित्तगुल्मिनम् १५॥
स्नेहितं स्रंसयेत्पश्चाद्योजयेद्बस्तिकर्मणा ।
स्निग्धोष्णजे पित्तगुल्मे कम्पिल्लं मधुना लिहेत् १६
रेचनार्थी रसं वापि द्राक्षायाः सगुडं पिबेत् ।

वातज गुल्ममें कफ बढ़ जानेपर चूर्णादि देना तथा वमन कराना हितकर है (यद्यपि गुल्ममें वमनका निषेध है, पर अवस्थाविशेषमें उसका भी अपवाद हो जाता है) । पित्तज गुल्ममें स्नेहयुक्त रेचन और रक्तजमें रक्तमोक्षण हितकर है । गरम और चिकने पदार्थोंसे उत्पन्न पित्तज गुल्ममें विरेचन देना चाहिये । तथा रूखे और गरम पदार्थोंसे उत्पन्न गुल्ममें घृतपान परम लाभ दायक होता है । पित्तगुल्मवालेको काकोल्यादि, महातिक्त अथवा वासादि घृतसे स्नेहन कर विरेचन देना चाहिये, फिर बस्ति देना चाहिये । चिकने और गरम पदार्थोंसे उत्पन्न पित्तगुल्ममें शहदके साथ कबीला विरेचनार्थ देना चाहिये, अथवा अंगूरका रस गुड़ मिलाकर पीना चाहिये ॥ १३-१६ ॥-

विदह्यमानगुल्मचिकित्सा ।

दाहशूलाऽनिलक्षोभस्वप्ननाशारुचिज्वरैः ॥ १७ ॥
विदह्यमानं जानीयाद् गुल्मं तमुपनाहयेत् ।
पक्वे तु व्रणवत्कार्यं व्यधशोधनरोपणम् ॥ १८ ॥
स्वयमूर्ध्वमधो वापि स चेद्दोषः प्रपद्यते ।
द्वादशाहमुपेक्षेत रक्षन्नन्यानुपद्रवान् ॥ १९ ॥
परं तु शोधनं सर्पिः शुभं समधुतिक्तकम् ।

यदि गुल्ममें जलन, शूल, वायुका इधर उधर घूमना, निद्रानाश, अरुचि और ज्वर हो, तो गुल्मको पकता हुआ

१ लशुनसे चतुर्गुण दूध और चतुर्गुण ही जल मिलाकर पाक करना चाहिये ।

समझना चाहिये, अतः उसमें पुल्टिस बांधकर पकाना चाहिये, पक जानेपर व्रणके समान चीरना, साफ करना और घाव भरना चाहिये । यदि पक जाने पर दोष अपने आप ऊपरसे या नीचेसे निकलने लग जायँ, तो और उपद्रवोंकी रक्षा करते हुए १२ दिन तक उपेक्षा करनी चाहिये । इसके अनन्तर तिक्तरस युक्त शोधन द्रव्योंके साथ सिद्ध घृत शहदके साथ शोधनके लिये प्रयत्न करे ॥ १७-१९ ॥-

रोहिण्यादियोगः ।

रोहिणी कटुका निम्बं मधुकं त्रिफलात्वचः ॥२०॥
कर्षांशास्त्रायमाणा च पटोलत्रिवृतापले ।
द्विपलं च मसूराणां साध्यमष्टगुणेऽम्भसि ॥ २१ ॥
घृताच्छेषं घृतसमं सर्पिषश्च चतुष्पलम् ।
पिबेत्संमूर्च्छितं तेन गुल्मः शाम्यति पैत्तिकः ॥२२॥
ज्वरस्तृष्णा च शूलं च भ्रममूर्च्छारतिस्तथा ।

कुटकी, नीमकी छाल, मौरेठी, त्रिफला, त्रायमाण प्रत्येक १ तोला, परवलकी पत्ती व निसोथ प्रत्येक ४ तोला, मसूर ८ तोला, सबको दुरकुचाकर ४२ पल अर्थात् १६८ तोला जलमें पकाना चाहिये, १६ तोला बाकी रहनेपर उतार छान १६ तोला घी मिलाकर पीना चाहिये* इससे पैत्तिकगुल्म, ज्वर, तृष्णा, शूल, भ्रम, मूर्छा तथा बेचैनी शान्त होती है ॥ २०-२२ ॥-

दीप्ताग्न्यादिषु स्नेहमात्रा ।

दीप्ताग्नयो महाकायाः स्नेहसात्म्याश्च ये नराः॥२३
गुल्मिनः सर्पदष्टाश्च विसर्पोपहताश्च ये ।
ज्येष्ठां मात्रां पिबेयुस्ते पलान्यष्टौ विशेषतः ॥ २४॥

दीप्ताग्नि, बड़े शरीरवाले, जिनको स्नेहका अधिक अभ्यास है वे, गुल्म व विसर्पवाले तथा सांपसे काटे हुए मनुष्य स्नेहकी बड़ी मात्रा अर्थात् ८ पल (३२ तोला) पीवें ॥ २३ ॥ २४ ॥

कफजगुल्मजचिकित्सा ।

लङ्घनोल्लेखने स्वेदे कृतेऽग्नौ संप्रधुक्षिते ।
घृतं सक्षारकटुकं पातव्यं कफगुल्मिनाम् ॥ २५ ॥

कफगुल्मरोगियोंको लंघन, वमन, स्वेदन करनेके अनन्तर अग्नि दीप्त हो जानेपर क्षार और कटुद्रव्य मिश्रित घृत पिलाना चाहिये ॥ २५ ॥

वमनयोग्यता ।

मन्दोऽग्निर्वेदना मन्दा गुरुस्तिमितकोष्ठता ।
सोत्क्लेशा चारुचिर्यस्य स गुल्मी वमनोपगः ॥२६॥

जिसकी अग्नि मन्द हो, पीड़ा भी मन्द हो, पेट भारी तथा जकड़ा हुआ तथा मिचलाई और अरुचि हो, उसे वमन कराना चाहिये ॥ २६ ॥

गुटिकादियोग्यता ।

मन्देऽग्नावनिले मूढे ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम् ।
गुडिकाश्चूर्णनिर्यूहाः प्रयोज्याः कफगुल्मिनाम्॥२७॥
क्षारोऽरिष्टगणश्चापि दाहशोषे विधीयते ।
पञ्चमूलीकृतं तोयं पुराणं वारुणीरसम् ॥ २८ ॥
कफगुल्मी पिबेत्काले जीर्णं माध्वीकमेव वा ।

अग्नि मन्द, वायुकी रुकावट और आशय स्निग्ध होनेपर गोली, चूर्ण और क्वाथ कफगुल्मवालोंको देना चाहिये । तथा जलन व शोष इत्यादिमें क्षार व अरिष्टका प्रयोग करना चाहिये । पञ्चमूलका क्वाथ अथवा पुरानी ताड़ी अथवा पुराना माध्वीक (शहदसे बनाया गया आसव) पीना चाहिये ॥ २७ ॥२८ ॥-

लेपस्वेदौ ।

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य वा ॥ २९ ॥
श्लेष्मगुल्ममयस्पात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ।

तिल, अण्डी, अलसी व सरसोंको पीस, लेप कर गरम किये हुए लोहेके पात्रसे स्वेदन करना चाहिये ॥ २९ ॥-

तक्रप्रयोगः ।

यमानीचूर्णितं तक्रं बिडेन लवणीकृतम् ॥ ३० ॥
पिबेत्सन्दीपनं वातमूत्रवर्चोऽनुलोमनम् ।

मट्ठेमें अजवायन तथा विड़नमकका चूर्ण डालकर पीनेसे अग्निदीप्ति तथा वायु, मूत्र और मलकी शुद्धता होती है॥३०॥-

द्वन्द्वजचिकित्सा ।

व्यामिश्रदोषे व्यामिश्रः सर्व एव क्रियाक्रमः ॥३१॥

मिले हुए दोषोंमें मिली हुई चिकित्सा करनी चाहिये ॥३१॥

सन्निपातजचिकित्सा ।

सन्निपातोद्भवे गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ।
यथोक्तेन सदा कुर्याद्भिषक् तत्र समाहितः ॥३२॥

सन्निपातज गुल्ममें त्रिदोषनाशक चिकित्सा यथोक्त विधिसे करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

वचादिचूर्णम् ।

वचाविडाभयाशुण्ठीहिंगुकुष्ठाग्निदीप्यकाः ।
द्वित्रिषट्चतुरेकाष्टसप्तपञ्चांशिकाः क्रमात् ।
चूर्णं मद्यादिभिः पीतं गुल्मानाहोदरापहम् ॥३३॥
शूलार्शःश्वासकासघ्नं ग्रहणीदीपनं परम् ।

* यद्यपि यह मात्रा बहुत अधिक है, पर व्याधिके प्रभावसे इसकी अधिकता दोषकारक नहीं, प्रत्युत लाभदायक होती है ।

वच २ भाग, विड़नमक ३ भाग, वड़ी हर्रका छिल्का ६ भाग, सोंठ ४ भाग, भुनी हींग १ भाग, कूठ ८ भाग, चीतेकी जड़ ७ भाग, तथा अजवायन ५ भाग सवका चूर्ण बना मद्य या गरम जल आदिसे पीनेसे गुल्म, आनाह, उदररोग, शूल, अर्श, श्वास, कासको नष्ट करता तथा ग्रहणीको वलवान् बनाता है ॥ ३३ ॥-

यमान्यादिचूर्णम् ।

यमानीहिंगुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः ।
सुरामण्डेन पातव्या गुल्मशूलनिवारणाः ॥ ३४ ॥

अजवायन, भुनी हींग, सेंधानमक, यवाखार, कालानमक तथा वड़ी हर्रके छिल्केके चूर्णको शरावके स्वच्छ भागके साथ पीनेसे गुल्म व शूल नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

हिंग्वाद्यं चूर्णं गुटिका वा ।

हिंगु त्रिकटुकं पाठां हपुषामभयां शटीम् ।
अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ॥ ३५ ॥
दाडिमं पौष्करं धान्यमजाजीं चित्रकं वचाम् ।
द्वौ क्षारौ लवणे द्वे च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥३६॥
चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमन्नपानेष्वनत्ययम् ।
प्राग्भक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा ॥ ३७ ॥
पार्श्वहृद्वस्तिशूलेषु गुल्मे वातकफात्मके ।
आनाहे मूत्रकृच्छ्रे च गुदयोनिरुजासु च ॥ ३८ ॥
ग्रहण्यर्शोविकारेषु प्लीह्नि पाण्ड्वामयेऽरुचौ ।
उरोविबन्धे हिक्कायां श्वासे कासे गलग्रहे ॥ ३९ ॥
भावितं मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा ।
बहुशो गुडिकाः कार्याःकार्मुकाःस्युस्ततोऽधिकम्४०

भुनी हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, पाढ़, हाऊवेर, वड़ी हर्रका छिल्का, कचूर, अजमोद, अजवाइन, तिन्तिड़ीक, अम्लवेत, अनारदाना, पोहकरमूल, धनियाँ, जीरा, चीतेकी जड़, वच, यवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, कालानमक तथा चव्य सवका चूर्ण कर अन्नपानमें प्रयोग करना चाहिये । इसमें किसी प्रकारके परहेजकी आवश्यकता नहीं अथवा भोजनके पहिले मद्यके साथ अथवा गरम जलके साथ पीना चाहिये । यह पसलियों, हृदय और वस्तिके शूल, गुल्म (वातकफात्मक), अफारा, मूत्रकृच्छ्र, गुद व योनिकी पीड़ा, ग्रहणी, अर्श, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि, छातीकी जकड़ाहट, हिक्का, श्वास, कास तथा गलेकी जकड़ाहटको दूर करता है । अथवा विजौरे निम्बूके रसमें अनेक भावना देकर इसकी (एक एक माशेकी मात्रासे) गोली बना लेनी चाहिये, यह विशेष गुण करती है ॥ ३५-४० ॥

पूतीकादिक्षारः ।

पूतीकपत्रगजचिर्भटिचव्यवह्नि-
व्योषं च संस्तरचितं लवणोपधानम् ।
दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमण्डयुतं प्रयोज्यं
गुल्मोदरश्वयथुपाण्डुगुदोद्भवेषु ॥ ४१ ॥

पूतिकरञ्जके पत्ते, इन्द्रायनकी जड़, चव्य, चीतकी जड़, त्रिकटु, तथा सेंधानमक सब समान भाग ले मिट्टीकी हंड़ियामें बन्द कर फूंक देना चाहिये । फिर महीन चूर्ण कर दहीके तोड़के साथ गुल्म, उदर, सूजन, पाण्डु व अर्श रोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ४१ ॥

हिंग्वादिप्रयोगः ।

हिंगुपुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकीम् ।
श्यामां विडं सैन्धवं च यवक्षारं महौषधम् ॥४२॥
यवक्वाथोदकेनैतद् घृतभृष्टं तु पाययेत् ।
तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥ ४३ ॥

हींग, पोहकरमूल, तुम्बुरू, वड़ी हर्रका छिल्का, निसोथ, विड़नमक, सेंधानमक, यवखार तथा सोंठ सब समान भाग ले घीमें भूनकर यवके काढ़के साथ पीना चाहिये । इससे गुल्मका भेदन होता तथा शूलादि अन्य सब उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

वचादिचूर्णम् ।

वचा हरीतकी हिंगु सैन्धवं साम्लवेतसम् ।
यवक्षारं यमानीं च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४४ ॥
एतद्धि गुल्मनिचयं सशूलं सपरिग्रहम् ।
भिनत्ति सप्तरात्रेण वह्नेर्दीप्तिं करोति च ॥ ४५ ॥

वच, हर्र, भुनी हींग, सेंधानमक, अम्लवेत, यवाखार, तथा अजवायनका चूर्ण कर गरम जलके साथ पीनेसे सात दिनमें शूल व जकड़ाहट युक्त गुल्म नष्ट होता और अग्नि दीप्त होती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

सुराप्रयोगः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचित्रकाजाजिसैन्धवैः ।
युक्ता पीता सुरा हन्ति गुल्ममाशु सुदुस्तरम् ४६ ॥
छोटी पीपल, पिपरामूल, चीतेकी जड़, सफेद जीरा तथा सेंधानमकका चूर्ण मिलाकर पी गयी शराब शूलको शीघ्र ही नष्ट करती है ॥४६ ॥

नादेय्यादिक्षारः ।

नादेयीकुटजार्कशिग्रुबृहतीस्नुग्बिल्वभल्लातक-
व्याघ्रीकिंशुकपारिभद्रकजटाऽपामार्गनीपाग्निकम् ।

वासामुष्ककपाटलाः सलवणा दग्ध्वा जले पाचितं
हिंग्वादिप्रतिवापमेतदुदितं गुल्मोदराष्ठीलिषु॥४७॥

अरणी, एरण्ड अथवा जामुनकी छाल, कुड़ेकी छाल, आक, सहिंजनेकी छाल, बड़ी कटेरी, थूहर, बेलकी छाल, भिलावांकी छाल, छोटी कटेरी, ढाक, नीमकी छाल, लटजीरा, कदम्ब, चीतेकी जड़, अडूसा, मोखा, पाढ़ल, इनमें नमक डालकर सबको जला भस्म कर ६ गुने जलमें मिला २१ बार छानकर क्षारविधिसे पकाना चाहिये। तैयार हो जानेपर भुनी हींग, यवाखार, काला नमक आदिका प्रतिवाप छोड़कर उतारना चाहिये। इसका गुल्म, उदर तथा पथरीमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ४७ ॥

हिंग्वादिभागोत्तरचूर्णम् ।

हिंगूग्रगन्धाबिडशुण्ठ्यजाजी-
हरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् ।
भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं
गुल्मोदराजीर्णविषूचिकासु ॥ ४८ ॥

भुनी हींग १ भाग, वच २ भाग, विड नमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हर्र ६ भाग, पोहकरमूल ७ भाग कूठ ८ भाग, सबका चूर्ण कर गुल्म, उदररोग, अजीर्ण और विषूचिकामें प्रयोग करना चाहिये ॥ ४८ ॥

त्रिफलादिचूर्णम् ।

त्रिफलाकाञ्चनक्षीरीसप्तलानीलिनीवचाः ।
त्रायन्तीहपुषातिक्तात्रिवृत्सैन्धवपिप्पलीः ॥ ४९ ॥
पिबेत्संचूर्ण्य मूत्रोष्णवारिमांसरसादिभिः ।
सर्वगुल्मोदरप्लीहकुष्ठार्शःशोथखेदितः ॥ ५० ॥

त्रिफला, स्वर्णक्षीरी, सातला, नील, वच, त्रायमाण, हाऊवेर, कुटकी, निसोथ, सेंधानमक तथा छोटी पीपल सबका चूर्ण कर गोमूत्र, गरम जल अथवा मांसरसके साथ सर्वगुल्म, उदररोग, प्लीहा, कुष्ठ और अर्श व शोथसे पीड़ित पुरुषको सेवन करना चाहिये ॥ ४९ ॥ ५० ॥

कांकायनगुटिका ।

शटीं पुष्करमूलं च दन्तीं चित्रकमाढकीम् ।
शृङ्गवेरं वचां चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ ५१ ॥
त्रिवृतायाः पलं चैव कुर्यात् त्रीणि च हिङ्गुनः ।
यवक्षारपले द्वे च द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ ५२ ॥
यमान्यजाजी मरिचं धान्यकं चेति कार्षिकम् ।
उपकुञ्च्यजमोदाभ्यां तथा चाष्टमिकामपि ॥५३॥
मातुलुङ्गरसेनैव गुटिकाः कारयेद्भिषक् ।
तासामेकां पिबेद् द्वे च तिस्रो वापि सुखाम्बुना५४
अम्लैश्च मद्यैर्यूषैश्च घृतेन पयसाऽथवा ।
एषा काङ्कायनेनोक्ता गुडिका गुल्मनाशिनी ॥५५॥
अर्शोहृद्रोगशमनी क्रिमीणां च विनाशिनी ।
गोमूत्रयुक्ता शमयेत् कफगुल्मं चिरोत्थितम् ॥५६॥
क्षीरेण पित्तगुल्मं च मद्यैरम्लैश्च वातिकम् ।
त्रिफलारसमूत्रैश्च नियच्छेत् सान्निपातिकम् ।
रक्तगुल्मे च नारीणामुष्ट्रीक्षीरेण पाययेत् ॥ ५७ ॥

कचूर, पोहकरमूल, दन्ती, चीतकी जड़, अरहर, सोंठ तथा वच प्रत्येक ४ तोला, निसोथ ४ तोला, भुनी हींग १२ तोला, यवाखार ८ तोला, अम्लवेत ८ तोला, अजवायन, जीरा, मिर्च धनियां प्रत्येक १ तोला, कलौंजी तथा अजमोद प्रत्येक २ तोला, सबका चूर्ण कर बिजौरे निम्बूके रससे गोली बना लेनी चाहिये। इनमेंसे १ या २ या ३ गोलियोंका गरम जल, कांजी, मद्य, यूष, घृत अथवा दूधके साथ सेवन करना चाहिये। यह कांकायनकी बतायी हुई गोली गुल्म अर्श तथा हृद्रोगको शान्त करती और कीड़ोंको नष्ट करती है। गोमूत्रके साथ पुराने कफज गुल्मको, दूधके साथ पित्तज गुल्मको, मद्य तथा कांजीके साथ वातज गुल्मको, त्रिफलाके क्वाथ व गोमूत्रके साथ सान्निपातिक गुल्मको तथा ऊंटनीके दूधके साथ स्त्रियोंके रक्तगुल्मको नष्ट करती है ॥ ५१-५७ ॥

हपुषाद्यं घृतम् ।

हपुषाव्योषपृथ्वीकाचव्याचित्रकसैन्धवैः ।
साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैर्विपचेद् घृतम् ॥५८॥
सकोलमूलकरसं सक्षीरं दधि दाडिमम् ।
तत्परं वातगुल्मघ्नं शूलानाहविबन्धनुत् ॥ ५९ ॥
योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासाऽरुचिज्वरम् ।
पार्श्वहृद्बस्तिशूलं च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ६० ॥

---

१ "नादेयी" भूमिजम्बू, अरणी, नारङ्गी, भूम्यामल, एरण्ड काश और जलवेतके लिये आता है तथा यह पानीयक्षार है, अतः उसकी विधि इस प्रकार शिवदासजीने लिखी है—नादेयी आदि जला, एक आढ़क या एक तोला भस्म ले चतुर्गुण या षड्गुण जलमें २१ वार छान पकाकर चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर फिर २१ वार छानकर रखना चाहिये। इसका १ कर्ष या २ कर्ष उसीके अनुसार चतुर्थांश हिंग्वादि प्रतीवाप छोड़ना चाहिये। और फिर उसे मांस, घी या दूधमेंसे किसी एकमें छोड़कर पीना चाहिये। कुछ आचार्योंका सिद्धान्त है कि रखनेसे क्षार जल अम्लतामें परिणत हो जायगा, अतः प्रतिदिन पीने योग्य पका लेना चाहिये ॥

हाऊबेर, त्रिकटु, बड़ी इलायची, चव्य, चीतकी, जड़, सेंधानमक, सफेद जीरा, पिपरामूल, अजवायन इनका कल्क और कल्कसे चतुर्गुण घृत तथा घृतके समान प्रत्येक वेर व मूलीका रस (क्वाथ) दूध, दही व अनारका रस छोड़कर पकाना चाहिये । यह वातगुल्म, शूल, आनाह तथा विबन्ध, योनिदोष, अर्श, ग्रहणीदोष, श्वास, कास,अरुचि ,ज्वर, पसलियों, हृदय और वस्तिके शूलको नष्ट करता है ॥ ५८–६० ॥

पञ्चपलकं घृतम् ।

पिप्पल्याः पिचुरध्यर्धो दाडिमाद् द्विपलं पलम् ।
धान्यात्पञ्च घृताच्छुण्ठयाः कर्षः क्षीरं चतुर्गुणम् ॥
सिद्धमेतैर्घृतं सद्यो वातगुल्मं चिकित्सति ।
योनिशूलं शिरःशूलमर्शांसि विषमज्वरान् ॥ ६२ ॥

छोटी पीपल १॥ तोला, अनारदानेका रस ८ तोला, धनियां ४ तोला, घी २० तोला, सोंठ १ तोला, दूध १ सेर छोड़कर पकाना चाहिये । यह घी वातगुल्म, योनिशूल, शिरःशूल अर्श और विषमज्वरको नष्ट करता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

त्र्यूषणाद्यं घृतम् ।

त्र्यूषणत्रिफलाधान्यविडङ्गचव्यचित्रकैः ।
कल्कीकृतैर्घृतं सिद्धं सक्षीरं वातगुल्मनुत् ॥ ६३ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, धनियां वायविडङ्ग, चव्य, चीतकी जड़ इनका कल्क तथा दूध मिलाकर सिद्ध किया गया घृत वातगुल्मको नष्ट करता है ॥ ६३ ॥

त्रायमाणाद्यं घृतम् ।

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणाचतुष्पलम् ।
पञ्चभागस्थितं पूतं कल्कैः संयोज्य कार्षिकैः॥६४॥
रोहिणीकटुकामुस्तत्रायमाणादुरालभैः ।
कल्कैस्तामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः ॥ ६५ ॥
रसस्यामलकीनां च क्षीरस्य च घृतस्य च ।
पलानि पृथगष्टाष्टौ दत्त्वा सम्यग्विपाचयेत् ॥६६॥
पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं विसर्पं पैत्तिकं ज्वरम् ।
हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद् घृतोत्तमम् ॥६७ ॥
पलोल्लेखागते माने न द्वैगुण्यमिहेष्यते ।
चत्वारिंशत्पलं तेन तोयं दशगुणं भवेत् ॥ ६८ ॥

त्रायमाण १६ तोला, जल २ सेर मिलाकर पकाना चाहिये । १ सेर बाकी रहनेपर उतार छानकर नीचे लिखी चीजोंका कल्क प्रत्येक एक तोला छोड़ना चाहिये । कल्कद्रव्य–कुटकी, मोथा, त्रायमाण, जवासा, भुंइआंवला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, चन्दन तथा नीलोफर और आंवलेका रस ३२ तोला, दूध ३२ तोला घी ३२ तोला, मिलाकर पकाना चाहिये, घृतमात्र शेष रहनेपर उतारना चाहिये । यह घृत पित्तगुल्म, रक्तगुल्म, विसर्प, पित्तज्वर, हृद्रोग, कामला तथा कुष्ठको नष्ट करता है । इस क्वाथमें पलके मानसे द्विगुण नहीं होता, अतएव ४० पल अर्थात् १६० तोला (२ सेर) जल छोड़ा जाता है ॥ ६४–६८ ॥

द्राक्षाद्यं घृतम् ।

द्राक्षामधूकखर्जूरं विदारीं सशतावरीम् ।
परूषकाणि त्रिफलां साधयेत्पलसंमिताम् ॥ ६९ ॥
जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च ।
घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्कपादिकम् ॥ ७० ॥
साधयेत्तु घृतं सिद्धं शर्कराक्षौद्रपादिकम् ।
योजयेत्पित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत् ॥ ७१ ॥
साहचर्यादिह पृथग्घृतादेः क्वाथतुल्यता ॥ ७२ ॥

मुनक्का, महुवा, छुहारा, विदारीकन्द, शतावरी, फालसा तथा त्रिफला प्रत्येक ४ तोला लेकर एक आढ़क जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर क्वाथके बराबर आंवलेका रस, उतना ही ईखका रस, उतना ही घी, उतना ही दूध और घृतसे चतुर्थांश हर्रका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर घीसे चतुर्थांश मिलित शहद व शक्कर छोड़ना चाहिये । यह पित्तगुल्म तथा समस्त पित्तरोगोंको नष्ट करता है । यहां अनुक्त मान होनेसे साहचर्यात् घृतादि क्वाथके समान ही छोड़ना चाहिये ॥ ६९–७२ ॥

धात्रीषट्पलकं घृतम् ।

धात्रीफलानां स्वरसे षडङ्गं पाचयेद् घृतम् ।
शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ७३ ॥

आंवलेके स्वरसमें पञ्चकोल व यवाखारका कल्क व घी मिलाकर सिद्ध करनेसे समस्त गुल्मोंको लाभ पहुंचाता है ॥ ७३ ॥

भार्ङ्गीषट्पलकं घृतम् ।

षड्भिः पलैर्मगधजाफलमूलचव्य-
विश्वौषधज्वलनयावजकल्कपकम् ।
प्रस्थं घृतस्य दशमूल्युरुबूकभार्ङ्गी-
क्वाथेऽप्यथो पयसि दध्नि च षट्पलाख्यम् ॥७४॥
गुल्मोदरारुचिभगन्दरवह्निसाद-
कासज्वरक्षयशिरोग्रहणीविकारान् ।
सद्यः शमं नयति ये च कफानिलोत्था
भार्ङ्ग्याख्यषट्पलमिदं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ७५ ॥

पञ्चकोल व यवाखार प्रत्येक एक पल (इस प्रकार ६ पल) का कल्क, घी १ प्रस्थ (१२८ तोला) और दशमूल, एरण्ड

और भारङ्गीका क्वाथ घीसे चतुर्गुण, दूध समान तथा दही चतुर्गुण मिलाकर, सिद्ध किया गया घृत गुल्म, उदर, अरुचि, भगन्दर, अग्निमांद्य, कास, ज्वर, क्षय, शिरोरोग, ग्रहणीरोग तथा कफ, व वातजन्यरोगोंको शान्त करता है । इसे "भार्ङ्गीषट्पल घृत" कहते हैं ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

क्षीरषट्पलकं घृतम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
पलिकैः सयवक्षारैः सर्पिष्प्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७६॥
क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् ।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ ७७ ॥

छोटी पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीतकी जड़, सोंठ तथा यवाखार प्रत्येक एक पल, घी २ प्रस्थ, दूध २ प्रस्थ, जल ६ प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये । यह घी कफात्मक गुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, कास और ज्वरको नष्ट करता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

भल्लातकघृतम् ।

भल्लातकानां द्विपलं पञ्चमूलं पलोन्मितम् ।
साध्यं विदारीगन्धाढ्यमापोथ्य सलिलाढके॥७८॥
पादावशेषे पूते च पिप्पलीं नागरं वचाम् ।
विडङ्गं सैन्धवं हिङ्गु यावशूकं विडं शटीम् ॥७९॥
चित्रकं मधुकं रास्नां पिष्ट्वा कर्षसमान्भिषक् ।
प्रस्थं च पयसो दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥८०॥
एतद्भल्लातकं नाम कफगुल्महरं परम् ।
प्लीहपाण्ड्वामयश्वासग्रहणीकासगुल्मनुत् ॥ ८१ ॥

भिलावां ८ तोला, लघुपञ्चमूल प्रत्येक ४ तोला सबको दुरकुचाकर एक आढक जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर छोटी पीपल, सोंठ, वच, वायविड़ंग, सेंधानमक, हींग, यवाखार, विड़नमक, कचूर, चीतकी जड़, मौरेठी, तथा रासन प्रत्येक एक तोला पीसकर छोड़ना चाहिये तथा घी १२८ तोला और दूध १२८ तोला छोड़कर पकाना चाहिये । यह "भल्लातक घृत" कफज गुल्म, प्लीहा, पाण्डुरोग, श्वास, ग्रहणी, कास और गुल्मको नष्ट करता है ॥ ७८-८१ ॥

रसोनाद्यं घृतम् ।

रसोनस्वरसे सर्पिः पञ्चमूलरसान्वितम् ।
सुरारनालदध्यम्लमूलकस्वरसैः सह ॥ ८२ ॥
व्योषदाडिमवृक्षाम्लयमानीचव्यसैन्धवैः ।
हिङ्ग्वम्लवेतसाजाजीदीप्यकैश्च पलान्वितैः ॥८३॥
सिद्धं गुल्मग्रहण्यर्शःश्वासोन्मादक्षयज्वरान् ।
कासाऽपस्मारमन्दाग्निप्लीहशूलानिलाञ्जयेत् ॥८४॥

लहसुनका स्वरस, पञ्चमूलका क्वाथ, शराब, काञ्जी, दहीका तोड़ तथा मूलीका स्वरस प्रत्येक घीके समान तथा घीसे चतुर्थांश त्रिकटु, अनारदाना, इमली, अजवायन, चव्य, सेंधानमक, हींग, अम्लवेत, जीरा तथा अजवायन प्रत्येक समान भागका कल्क छोड़कर सिद्ध किया घृत गुल्म, ग्रहणी, अर्श, श्वास, उन्माद, क्षय, ज्वर, कास, अपस्मार, मन्दाग्नि, प्लीहा, शूल और वायुको नष्ट करता है ॥ ८२-८४ ॥

दन्तीहरीतकी ।

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाभयाः ।
दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ॥८५
तेनाष्टभागशेषेण पचेद्दन्तीसमं गुडम् ।
ताश्चाभयास्त्रिवृच्चूर्णात्तैलाच्चापि चतुष्पलम् ॥८६॥
पलमेकं कणाशुण्ठ्योः सिद्धे लेहे च शीतले ।
क्षौद्रं तैलसमं दद्याच्चातुर्जातपलं तथा ॥ ८७ ॥
ततो लेहपलं लीढ्वा जग्ध्वा चैकां हरीतकीम् ।
सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः ॥ ८८ ॥
प्लीहश्वयथुगुल्मार्शोहृत्पाण्डुग्रहणीगदाः ।
शाम्यन्त्युत्क्लेशविषमज्वरकुष्ठान्यरोचकाः ८९ ॥

बड़ी हरड़ें २५, दन्ती १। सेर, चीतकी जड़ १। सेर, जल १ द्रोण (द्रवद्वैगुण्यात् २५ सेर ९ छ० ३ तो०) में पकाना चाहिये, अष्टमांश शेष रहनेपर उतार छानकर दन्तीके बराबर गुड़ तथा पहिलेकी हरें मिलाना चाहिये तथा निसोथ १६ तोला और तिलतैल १६ तोला, छोटी पीपल २ तोला, तथा सोंठ २ तोला छोड़कर पकाना चाहिये । अवलेह सिद्ध हो जानेपर उतार ठण्ढाकर तैलके समान शहद तथा दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, व नागकेशरका मिलित चूर्ण ४ तोला छोड़ना चाहिये । इसमेंसे ४ तोला, अवलेह चाटना और एक हर्र खाना चाहिये, इससे स्निग्ध पुरुष सुखपूर्वक १ प्रस्थ दोषोंको विरेचनसे निकालता है और प्लीहा, सूजन, गुल्म, अर्श, हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीरोग, मिचलाई, विषमज्वर, कुष्ठ और अरोचक रोग नष्ट होते हैं ॥ ८५-८९ ॥

वृश्चीराद्यरिष्टः ।

वृश्चीरमुरुबूकं च वर्षाह्वं बृहतीद्वयम् ।
चित्रकं च जलद्रोणे पचेत्पादावशेषितम् ॥ ९० ॥
मागधीचित्रकक्षौद्रलिप्तकुम्भे निधापयेत् ।
मधुनः प्रस्थमावाप्य पथ्याचूर्णार्धसंयुतम् ॥ ९१ ॥
वुषोषितं दशाहं च जीर्णभक्तः पिबेन्नरः ।
अरिष्टोऽयं जयेद् गुल्ममविपाकं सुदुस्तरम् ॥ ९२॥

पुनर्नवा, एरण्डकी छाल, सफेद पुनर्नवा, दोनों कटेरी, चीतकी जड़ सब मिला १ तुला, १ द्रोण जल (द्रवद्वैगुण्यात् २५। सेर

८ तो०) में पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर छोटी पीपल, चीतकी जड़ और शहदसे लिपे घड़ेमें रखना चाहिये तथा शहद १२८ तो० और हरड़ोंका चूर्ण ३२ तोला मिलाकर १० दिनतक भुसके अन्दर रखना चाहिये फिर निकाल छानकर अन्न हजम होनेके बाद पीना चाहिये । यह अरिष्ट गुल्म और मन्दाग्निको नष्ट करता है ॥ ९०-९२ ॥

रक्तगुल्मचिकित्सा ।

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालव्यतिक्रमे ।
स्निग्धस्विन्नशरीरायै दद्यात्स्निग्धं विरेचनम् ॥९३॥

रक्तगुल्मकी चिकित्सा गर्भकाल व्यतीत हो जानेपर ही करनी चाहिये । उस समय स्नेहन स्वेदन कर स्निग्ध विरेचन देना चाहिये ॥ ९३ ॥

शताह्वादिकल्कः ।

शताह्वाचिरबिल्वत्वग्दारुभार्ङ्गीकणोद्भवः ।
कल्कः पीतो हरेद् गुल्मं तिलक्वाथेन रक्तजम् ॥९४

सौंफ, कञ्जाकी छाल, देवदारु, भारंगी तथा छोटी पीपलका कल्क तिलके काढ़ेके साथ पीनेसे रक्तगुल्म नष्ट होता है ॥ ९४ ॥

तिलक्वाथः ।

तिलक्वाथो गुडव्योषहिंगुभार्ङ्गीयुतो भवेत् ।
पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टपुष्पे च योषिताम् ॥ ९५ ॥

तिलका क्वाथ, गुड़, त्रिकटु, भुनी हींग तथा भारंगीका चूर्ण मिलाकर रक्तगुल्म तथा मासिकधर्म न होनेपर देना चाहिये ॥ ९५ ॥

विविधा योगाः ।

सक्षारत्र्यूषणं मद्यं प्रपिबेदस्रगुल्मिनी ।
पलाशक्षारतोयेन सिद्धं सर्पिः पिबेच्च सा ॥ ९६ ॥
उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिरासृग्दरो हितः ।
न प्रभिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिविशोधनम् ॥ ९७ ॥
क्षारेण युक्तं पललं सुधाक्षीरेण वा पुनः ।
रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहरी क्रिया ॥ ९८ ॥

रक्तगुल्मिनी यवाखार व त्रिकटुके सहित मद्य पीवे । अथवा पलाशके क्षार जलसे सिद्ध घृत पीवे । अथवा गरम प्रयोगोंसे गुल्मको फोड़ना चाहिये, फिर रक्तप्रदरकी चिकित्सा करनी चाहिये । यदि इस प्रकार न फूटे तो योनिविशोधनके लिये क्षारयुक्त मांस (या तिल कल्क) अथवा थूहरके दूधके साहित मांसपिण्ड योनिमें धारण करे और रक्तके अधिक बहनेपर रक्तपित्तनाशक चिकित्सा करे ॥ ९६-९८ ॥

भल्लातकघृतम् ।

भल्लातकात्कल्ककषायपक्वं
सर्पिः पिबेच्छर्करया विमिश्रम् ।
तद्रक्तपित्तं विनिहन्ति पीतं
बलासगुल्मं मधुना समेतम् ॥ ९९ ॥

भिलावेंके कल्क और क्वाथसे पकाया गया घृत शक्करके साथ पीनेसे रक्तपित्त और शहदके साथ पीनेसे कफगुल्मको नष्ट करता है ॥ ९९ ॥

अपथ्यम् ।

वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्शुष्कशाकानि वैदलम् ।
न खादेचालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥१००॥

सूखा मांस, मूली, मछली, सूखे शाक, दाल, आलू और मीठे फल गुल्मवालेको नहीं खाने चाहियें ॥ १०० ॥

इति गुल्माधिकारः समाप्तः ।

अथ हृद्रोगाधिकारः ।

वातजहृद्रोगचिकित्सा ।

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत्स्निग्धमातुरम् ।
द्विपञ्चमूलीकाथेन सस्नेहलवणेन च ॥ १ ॥

वातहृद्रोगयुक्त पुरुषको स्निग्ध कर दशमूलके क्वाथमें स्नेह, नमक और वमनकारक द्रव्य मिलाकर वमन कराना चाहिये ॥ १ ॥

पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

पिप्पल्येलावचाहिङ्गुयवक्षारोऽथ सैन्धवम् ।
सौवर्चलमथो शुण्ठीमजमोदावचूर्णितम् ॥ २ ॥
फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः ।
पाययेच्छुद्धदेहं च स्नेहेनान्यतमेन वा ॥ ३ ॥

छोटी पीपल, बड़ी इलायची, वच, भुनी हींग, यवाखार, सेंधानमक, कालानमक, सोंठ, तथा अजवाइन सब समान भाग

---

१ कुछ पुस्तकोंमें "पलल" शब्दका ऐसा विवरण है कि-पलाशक्षारके साथ पलल (तिलचूर्ण) को मिला कर जलके साथ घोटकर वर्तिका बना ले । अथवा पलाश क्षार तथा तिलकल्कको थोहरके साथ घोटकर वर्तिका बना ले । (इस बर्तिकाको योनिमें रखनेसे योनि विशुद्ध हो जाती है) ॥

ले चूर्ण कर फलरस, काञ्जी, कुलत्थक्वाथ, दधि, मद्य, आसव आदिमेंसे किसी एकके साथ अथवा किसी स्नेहके साथ शुद्ध पुरुषको पिलाना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

नागरक्वाथः ।

नागरं वा पिबेदुष्णं कषायं चाग्निवर्धनम् ।
कासश्वासानिलहरं शूलहृद्रोगनाशनम् ॥ ४ ॥

अथवा सोंठका गरम गरम क्वाथ पीना चाहिये । इससे अग्नि बढ़ती है तथा कास, श्वास, वायु, शूल व हृद्रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

पित्तजहृद्रोगचिकित्सा ।

श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितागुडजलैर्वमेत् ।
पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत मधुरैः शृतम् ।
घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान्पित्तज्वरविनाशनान् ॥ ५ ॥

खम्भारके फल, मौरेठी, शहद, मिश्री, गुड़ और जल मिला पीकर वमन करना चाहिये । तथा मधुर औषधियोंसे सिद्ध; घृत तथा पित्तज्वरनाशक क्वाथका सेवन करना चाहिये * ॥ ५ ॥

अन्ये उपायाः ।

शीताः प्रदेहाः परिषेचनानि
तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे ।
द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैः स्या-
च्छुद्धे च पित्तापहमन्नपानम् ॥ ६ ॥
पिष्ट्वा पिबेद्वापि सिताजलेन ।
यष्ट्याह्वयं तिक्तकरोहिणीं च ॥ ७ ॥

पित्तज हृद्रोगमें शीतल लेप, शीतल सेक तथा विरेचन देना चाहिये । शुद्ध हो जानेपर मुनक्का, मिश्री, शहद, फाल्सा इत्यादिके साथ पित्तनाशक अन्नपानका सेवन करना चाहिये । अथवा मौरेठी और कुटकीका चूर्णकर मिश्रीके शर्वतके साथ पीना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

क्षीरप्रयोगः ।

अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये ।
सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा ॥ ८ ॥

अर्जुनकी छाल अथवा लघुपञ्चमूल अथवा बलामूल अथवा खरेटी और मौरेठीसे सिद्ध किया दूध मिश्री मिलाकर पीना चाहिये ॥ ८ ॥

ककुभचूर्णम् ।

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा
पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये ।
हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं
हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ ९ ॥

जो लोग अर्जुनकी छालका चूर्ण घी, दूध अथवा गुड़के शर्वतके साथ पीते हैं, वे हृद्रोग जीर्णज्वर व रक्तपित्तरहित होकर चिरजीवी होते हैं ॥ ९ ॥

कफजहृद्रोगचिकित्सा ।

वचानिम्बकषायाभ्यां वान्तं हृदि कफोत्थिते ।
वातहृद्रोगहृच्चूर्णं पिप्पल्यादि च योजयेत् ॥ १० ॥

कफज हृद्रोगमें वच व नीमके काढ़ेसे वमन कराकर वातरोगनाशक पिप्पल्यादि चूर्ण खिलाना चाहिये ॥ १० ॥

त्रिदोषजहृद्रोगचिकित्सा ।

त्रिदोषजे लङ्घनमादितः स्या-
दन्नं च सर्वेषु हितं विधेयम् ।
हीनाधिमध्यत्वमवेक्ष्य चैव
कार्यं त्रयाणामपि कर्म शस्तम् ॥ ११ ॥

त्रिदोषजमें पहिले लंघन कराना चाहिये । फिर त्रिदोषनाशक अन्नपान तथा दोषोंकी न्यूनाधिकता देखकर उचित चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

पुष्करमूलचूर्णम् ।

चूर्णं पुष्करजं लिह्यान्माक्षिकेण समायुतम् ।
हृच्छूलकासश्वासघ्नं क्षयहिक्कानिवारणम् ॥ १२ ॥

पोहरकरमूलका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे हृद्रोग, श्वास, कास, क्षय और हिक्का रोग नष्ट होते हैं ॥ १२ ॥

गोधूमपार्थप्रयोगः ।

तैलाज्यगुडविपक्वं
गौधूमं वापि पार्थजं चूर्णम् ।
पिबति पयोऽनु च स भवे-
ज्जितसकलहृदामयः पुरुषः ॥ १३ ॥

जो मनुष्य तैल, घी और गुड़ मिलाकर पकाया गेहूँके आटे और अर्जुनकी छालके चूर्णका हलवा खाता है और ऊपरसे दूध पीता है, उसके सकल हृद्रोग नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

---

* मधुर औषधियोंसे यहां काकोल्यादि गण लेना चाहिये । उसका पाठ सुश्रुतमें इस प्रकार है—काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकमुद्गपर्णीमेदामहामेदाछिन्नरुहाकर्कटशृंगीतुगाक्षीरीपद्मकप्रपौण्डरीकर्द्धिवृद्धिमृद्वीकाजीवन्त्यो मधुकं चेति।" काकोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशनः । जीवनो बृंहणो वृष्यः स्तन्यश्लेष्मकरः सदा ॥ "

गोधूमादिलप्सिका ।

गोधूमककुभचूर्णं छागपयोगव्यसर्पिषि विपक्वम् ।
मधुशर्करासमेतं शमयति हृद्रोगमुद्धतं पुंसाम् ॥ १४ ॥

गेहूंका आटा और अर्जुनकी छालका चूर्ण मिला बकरीके दूध व गायके घीमें पका शहद व शक्कर मिलाकर खानेसे उद्धत हृद्रोग शान्त होता है ॥ १४ ॥

नागबलादिचूर्णम् ।

मूलं नागबलायास्तु चूर्णं दुग्धेन पाययेत् ।
हृद्रोगश्वासकासघ्नं ककुभस्य च वल्कलम् ॥ १५ ॥
रसायनं परं बल्यं वातजिन्मासयोजितम् ।
संवत्सरप्रयोगेण जीवेद्वर्षशतं ध्रुवम् ॥ १६ ॥

गंगेरनकी जड़ और अर्जुनकी छालका चूर्ण दूधके साथ पीनेसे हृद्रोग, श्वास, कासको नष्ट करता तथा रसायन और बलकारक है । एक मास प्रयोग करनेसे वातको नष्ट करता है और १ वर्षतक निरन्तर प्रयोग करनेसे १०० वर्षतक मनुष्य जीता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

हिंग्वादिचूर्णम् ।

हिङ्गूग्रगन्धाविडविश्वकृष्णा-
कुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ।
पिबेच्च सौवर्चलपुष्कराढ्यं
यवाम्भसा शूलहृदामयेषु ॥ १७ ॥

भुनी हींग, वच, विडनमक, सोंठ, छोटी पीपल, कूठ, बड़ी हर्रका छिल्का, चीतेकी जड़, जवाखार, कालानमक तथा पोहकरमूलका चूर्ण बनाकर यवके काढ़ेके साथ पीनेसे शूल और हृद्रोग नष्ट होता है ॥ १७ ॥

दशमूलक्वाथः ।

दशमूलीकषायं तु लवणक्षारयोजितम् ।
कासं श्वासं च हृद्रोगं गुल्मं शूलं च नाशयेत् १८

दशमूलका काढ़ा नमक और जवाखार मिलाकर पिलानेसे कास, श्वास, हृद्रोग, गुल्म और शूल नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

पाठादिचूर्णम् ।

पाठां वचां यवक्षारमभयामम्लवेतसम् ।
दुरालभां चित्रकं च त्र्यूषणं च फलत्रिकम् ॥१९॥
शठीं पुष्करमूलं च तिन्तिडीकं सदाडिमम् ।
मातुलुङ्गस्य मूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥२०॥
सुखोदकेन मद्यैर्वा चूर्णान्येतानि पाययेत् ।
अर्शः शूलञ्च हृद्रोगं गुल्मं चाशु व्यपोहति ॥२१॥

पाढ़, वच, यवाखार, बड़ी हर्रका छिल्का, अम्लवेत, यवासा, चीतेकी जड़, त्रिकटु, त्रिफला, कचूर, पोहकर मूल, तिन्तिडीक, अनारदाना तथा बिजौरे निम्बूकी जड़ सबका महीन चूर्ण कर कुछ गरम जल अथवा मद्यके साथ पिलाना चाहिये । यह अर्श, शूल, हृद्रोग और गुल्मको शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ १९–२१ ॥

मृगशृङ्गभस्म ।

पुटदग्धमश्मपिष्टं हरिणविषाणं तु सर्पिषा पिबतः ।
हृत्पृष्ठशूलमुपशममुपयात्यचिरेण कष्टमपि ॥ २२ ॥

पुटमें पकाकर पीसा गया मृगशृङ्ग घीके साथ चाटनेसे कष्टसाध्य भी हृद्रोग तथा पृष्ठशूल शीघ्र ही शान्त होता है ॥ २२ ॥

क्रिमिहृद्रोगचिकित्सा ।

क्रिमिहृद्रोगिणं स्निग्धं भोजयेत्पिशितौदनम् ।
दध्ना च पललोपेतं त्र्यहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥ २३ ॥
सुगन्धिभिः सलवणैर्योगैः साजाजिशर्करैः ।
विडङ्गगाढं धान्याम्लं पाययेद्धितमुत्तमम् ॥ २४ ॥
क्रिमिजे च पिबेन्मूत्रं विडङ्गाभयसंयुतम् ।
हृदि स्थिताः पतन्त्येवमधस्तात्क्रिमयो नृणाम् ।
यवान्नं वितरेच्चास्मै सविडङ्गमतः परम् ॥ २५ ॥

क्रिमिज हृद्रोगवालेको स्नेहयुक्त मांस मिश्रित भातको दही व तिल कल्क मिला ३ दिन खिलाकर विरेचन देना चाहिये । तथा नमक, जीरा व शक्करके सहित वायविडङ्ग छोड़कर सुगन्ध युक्त काञ्जी पिलाना हितकर है । अथवा कूठ और वायविडङ्गका चूर्ण छोड़ गोमूत्र पीना चाहिये । इससे हृदयस्थित कीड़े दस्तद्वारा निकल जाते हैं । इसके अनन्तर यवका पथ्य वायविडङ्गका चूर्ण मिलाकर देना चाहिये ॥ २३–२५ ॥

बल्लभकं घृतम् ।

मुख्यं शतार्धं च हरीतकीनां
सौवर्चलस्यापि पलद्वयं च ।
पक्वं घृतं बल्लभकेति नाम्ना
हृच्छ्वासशूलोदरमारुतघ्नम् ॥ २६ ॥

उत्तम ५० हर्रे व काला नमक ८ तोलाका कल्क छोड़कर घृत पकाना चाहिये । यह "बल्लभ घृत" हृद्रोग, श्वास, शूल, उदररोग और वातरोगोंको नष्ट करता है ॥ २६ ॥

श्वदंष्ट्राद्यं घृतम् ।

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठाबलाकाश्मर्यकत्तृणम् ।
दर्भमूलं पृथक्पर्णी पलाशर्षभकौ स्थिरा ॥ २७ ॥

पलिकान्साधयेत्तेषां रसे क्षीरे चतुर्गुणे ।
कल्कैः स्वगुप्तर्षभकमेदाजीवन्तिजीरकैः ॥ २८ ॥
शतावर्यृद्धिमृद्वीकाशर्कराश्रावणीविषैः ।
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्रोगशूलनुत् ॥ २९ ॥
मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःश्वासकासक्षयापहः ।
धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वक्षीणानां बलमांसदः ॥ ३० ॥

गोखरू, खश, मञ्जीठ, खरेटी, खम्भार, रोहिष घास, कुशकी जड़, पृश्निपर्णी, ढाकके बीज, ऋषभक, शालपर्णी, प्रत्येक एक पल लेकर क्वाथ बनाना चाहिये । इस छने क्वाथमें १ प्रस्थ घी, ४ प्रस्थ दूध और केवाचके बीज, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीरा, शतावरी, ऋद्धि, मुनक्का, मिश्री, मुण्डी तथा अतीसका कल्क छोड़कर सिद्ध किया गया घृत वातपित्तज शूल, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, श्वास, कास, तथा धातुक्षयको नष्ट करता है और धनुष चढ़ाना, स्त्रीगमन, मद्यपान, बोझा ढोना और मार्गमें चलना इन कारणोंसे क्षीण पुरुषोंके बल व मांसको बढ़ाता है ॥ २७–३० ॥

बलार्जुनघृतद्वयम् ।

घृतं बलानागबलार्जुनाम्बु-
सिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् ।
हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्त-
कासानिलासृक् शमयत्युदीर्णम् ॥ ३१ ॥
पार्थस्य कल्कस्वरसेन सिद्धं
शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु ॥ ३२ ॥

(१) खरेटी, गंगेरन तथा अर्जुनके क्वाथ और मौरेठीके कल्कसे सिद्ध घृत हृद्रोग, शूल, व्रण, रक्तपित्त, कास व वातरक्तको शान्त करता है । इसी प्रकार (२) केवल अर्जुनके क्वाथ व कल्कसे सिद्ध घृत भी समस्त हृद्रोगोंमें हितकर है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

इति हृद्रोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः ।

वातजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्ति-
स्वेदोपनाहोत्तरबस्तिसेकान् ।
स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्
दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥१ ॥

मालिश, स्नेहवस्ति निरूहवस्ति, स्वेद, उपनाह, उत्तरवस्ति तथा सेकका सेवन करना चाहिये । शालिपर्णी आदि वातनाशक औषधियोंसे सिद्ध मांसरसादिको वातजमूत्रकृच्छ्रमें देना चाहिये ॥ १ ॥

अमृतादिक्वाथः ।

अमृतां नागरं धात्रीवाजिगन्धात्रिकण्टकान् ।
प्रपिबेद्वातरोगार्तः सशूली मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ २ ॥

गुर्च, सोंठ, आंवला, असगन्ध, तथा गोखरूका क्वाथ, वातरोगपीड़ित, शूलयुक्त, मूत्रकृच्छ्रवालेको पीना चाहिये॥२॥

पित्तजकृच्छ्रचिकित्सा ।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा
ग्रैष्मो विधिर्बस्तिपयोविकाराः ।
द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च
कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्याः ॥ ३ ॥

सिञ्चन, जलमें बैठना, ठंढे लेप, ग्रीष्मऋतुके योग्य विधान, वस्ति, दूधके बनाये पदार्थ, मुनक्का, विदारीकन्द और ईखके रस तथा घृतका पित्तज-मूत्रकृच्छ्रमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

तृणपञ्चमूलम् ।

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम् ।
पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं बस्तिविशोधनम् ।
एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रगं हन्ति शोणितम् ॥ ४ ॥

कुश, काश, शर, दाभ, ईख यह " तृणपञ्चमूल " पित्तज कृच्छ्रको नष्ट करता, वस्तिको शुद्ध करता तथा इन औषधियोंसे सिद्ध दूधको पीनेसे लिङ्गसे जानेवाला रक्त शान्त होता है ॥ ४ ॥

शतावर्यादिक्वाथः ।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्रा-
विदारिशालीक्षुकशेरुकाणाम् ।
क्वाथं सुशीतं मधुशर्करात्तं
पिबञ्जयेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रम् ॥ ५ ॥

शतावरी, काश, कुश, गोखरू, विदारीकन्द, धानकी जड़, ईख और कशेरूका क्वाथ ठण्ढाकर शहद और शक्कर डालकर पीनेसे पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है ॥ ५ ॥

हरीतक्यादिक्वाथः ।

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्वयवासकानाम् ।
क्वाथं पिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे ॥ ६ ॥

बड़ी हर्रका छिल्का, गोखरू, अमलतासका गूदा, पाषाणभेद तथा यवासा इन औषधियोंके यथाविधि साधित क्वाथको

ठण्ढाकर शहद मिला पीनेसे दाह और पीड़ासहित मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है ॥ ६ ॥

गुडामलकयोगः ।

गुडेनामलकं वृष्यं श्रमघ्नं तर्पणं परम् ।
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ७ ॥

गुड़के साथ आंवलेका चूर्ण सेवन करनेसे थकावटको दूर करता है, तर्पण तथा पित्तरक्त, दाह और शूल सहित मूत्रकृच्छ्रको दूर करता है ॥ ७ ॥

एर्वारुबीजादिचूर्णम् ।

एर्वारुबीजं मधुकं सदार्वीं पैत्ते पिबेत्तण्डुलधावनेन ।
दार्वीं तथैवामलकीरसेन समाक्षिकां पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ ८

ककड़ीके बीज, मौरेठी तथा दारुहल्दीका चूर्ण चावलके धोवनके साथ पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रमें पीना चाहिये । इसी प्रकार केवल दारुहल्दीका चूर्ण आंवलेके रस और शहदके साथ सेवन करनेसे पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है ॥ ८ ॥

कफजचिकित्सा ।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषणमन्नपानं
स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहाः ।
तक्रं सतिक्तौषधसिद्धतैला-
न्यभ्यङ्गपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ९ ॥
मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा ।
कफकृच्छ्रविनाशाय श्लक्ष्णं पिष्ट्वा त्रुटिं पिबेत् ॥ १०
तक्रेण युक्तं शितिमारकस्य
बीजं पिबेत्कृच्छ्रविनाशहेतोः ।
पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन
प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ११ ॥
श्वदंष्ट्राविश्वतोयं वा कफकृच्छ्रविनाशनम् ॥ १२ ॥

क्षार, उष्ण, तीक्ष्ण तथा कटु अन्नपान, स्वेद, यवका पथ्य, वमन, निरूहणवस्ति, मट्ठा तथा तिक्त औषधियोंसे सिद्ध तैल मालिश और पीनेके लिये कफज मूत्रकृच्छ्रमें प्रयोग करना चाहिये । इसी प्रकार गोमूत्र, शराब अथवा केलेके स्वरसके साथ छोटी इलायचीका चूर्ण पीना चाहिये । अथवा मट्ठेके साथ शितिमार (वङ्गदेशे शालिञ्च) के बीज मूत्रकृच्छ्रके नाशार्थ पीना चाहिये । अथवा चावलके धोवनके साथ मूंगेका चूर्ण या भस्म पीना चाहिये । तथा गोखरू और सोंठका क्वाथ कफज कृच्छ्रको नष्ट करता है ॥ ९-१२ ॥

त्रिदोषजचिकित्सा ।

सर्वं त्रिदोषप्रभवे तु वायोः
स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्यम् ।
त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं कफे स्यात्
पित्ते विरेकः पवने तु बस्तिः ॥ १३ ॥

त्रिदोषजकृच्छ्रमें वायुको स्थानपर लाते हुए सभी चिकित्सा करनी चाहिये, तथा यदि तीनोंमें कफ अधिक हो तो पहिले वमन, पित्तमें विरेचन तथा वायुमें वस्ति देना चाहिये ॥ १३ ॥

बृहत्यादिक्वाथः ।

बृहतीधावनीपाठायष्टीमधुकलिङ्गकाः ।
पाचनीयो बृहत्यादिः कृच्छ्रदोषत्रयापहः ॥ १४ ॥

बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, पाढ, मौरेठी तथा इन्द्रयव यह "बृहत्यादि गण" पाचन करता तथा त्रिदोपज मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करता है ॥ १४ ॥

उत्पत्तिभेदेन चिकित्साभेदः ।

तथाभिघातजे कुर्यात्सद्योव्रणचिकित्सितम् ।
मूत्रकृच्छ्रे सदा चास्य कार्या वातहरी क्रिया ॥ १५ ॥
स्वेदचूर्णक्रियाभ्यंगवस्तयः स्युः पुरीषजे
क्वाथं गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतं पिबेत् ।
मूत्रकृच्छ्रं शकृज्जं च पीतः शीघ्रं निवारयेत् ॥ १६ ॥
हिता क्रिया त्वश्मरिशर्करायां
या मूत्रकृच्छ्रे कफमारुतोत्थे ॥ १७ ॥
लेह्यं शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् ।
वृष्यैर्बृंहितधातोश्च विधेयाः प्रमदोत्तमाः ॥ १८ ॥

अभिघातज मूत्रकृच्छ्रमें सद्योव्रणचिकित्सा करनी चाहिये, तथा वातनाशक क्रिया इसमें सदैव करनी चाहिये । पुरीष (मल) ज मूत्रकृच्छ्रमें, सदा स्वेद, चूर्ण, मालिश तथा बस्ति देनी चाहिये । गोखरूके क्वाथमें जवाखार डालकर पीनेसे मलज मूत्रकृच्छ्र शीघ्र ही नष्ट होता है । अश्मरी तथा शर्करासे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें कफवातज कृच्छ्रकी चिकित्सा करनी चाहिये । शुक्रके विबन्धसे उत्पन्न कृच्छ्रमें शहदके साथ शिलाजतु चाटना चाहिये । तथा वाजीकरणके सेवनसे धातुओंके बढ़ जानेपर उत्तम स्त्रियोंके साथ मैथुन कराना चाहिये ॥ १५-१८ ॥

एलादिक्षीरम् ।

एलाहिंगुयुतं क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः ।
मूत्रदोषविशुद्ध्यर्थं शुक्रदोषहरं च तत् ॥ १९ ॥

मूत्रदोष तथा शुक्रदोष दूर करनेके लिये छोटी इलायची, भुनी हींग तथा घीसे युक्त दूधको पीना चाहिये ॥ १९ ॥

रक्तजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

यन्मूत्रकृच्छ्रे विहितं तु पैत्ते
तत्कारयेच्छोणितमूत्रकृच्छ्रे ॥ २० ॥

जो पित्तज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा बतायी गयी, वही रक्तजमें करनी चाहिये ॥ २० ॥

त्रिकण्टकादिक्काथः ।

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाश-
दुरालभापर्वतभेदपथ्याः ।
निघ्नन्ति पीता मधुनाश्मरीं च
सम्प्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ २१ ॥
कषायोऽतिबलामूलसाधितः सर्वकृच्छ्रजित् ।

गोखुरू, अमलतासका गूदा, दर्भ, काश, यवासा, पाषाणभेद, तथा हर्रके क्काथमें शहद मिलाकर पीनेसे अश्मरी तथा कठिन मूत्रकृच्छ्र भी शांत होता है। तथा कंघीकी जड़का क्वाथ भी समस्त मूत्रकृच्छ्रोंको नष्ट करता है ॥ २१ ॥-

एलादिचूर्णम् ।

एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां
चूर्णानि तण्डुलजलैर्लुलितानि पीत्वा ।
यद्वा गुडेन सहितान्यवलिह्य तानि
चासन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥२२॥

इलायची, पाषाणभेद, शिलाजतु तथा छोटी पीपलका चूर्ण चावलके धोवनके जलमें मिलाकर पीनेसे अथवा गुड़ मिलाकर चाटनेसे आसन्नमृत्युवाला भी मूत्रकृच्छ्ररोगी बच जाता है ॥२२॥

लौहयोगः ।

अयोरजः श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजितम् ।
मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशयः ॥ २३ ॥

लौहभस्म शहदके साथ चाटनेसे तीन खुराकमें ही मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है ॥ २३ ॥

यवक्षारयोगः ।

सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रनिवारणः ।
निदिग्धिकारसो वापि सक्षौद्रः कृच्छ्रनाशनः ॥२४

मिश्रीके बराबर जवाखार अथवा शहदके साथ छोटी कटेरीका रस समस्त मूत्रकृच्छ्रोंको शांत करता है ॥ २४ ॥

शतावर्य्यादिघृतं क्षीरं वा ।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्रा-
विदारिकेक्ष्वामलकेषु सिद्धम् ।
सर्पिः पयो वा सितया विमिश्रं
कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ॥ २५ ॥

शतावरी, काश, कुश, गोखुरू, विदारीकन्द, ईखकी जड़ और आंवलेसे सिद्ध घी अथवा दूध मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे पित्तजमूत्रकृच्छ्र शान्त होता है ॥ २५ ॥

त्रिकण्टकादिसर्पिः ।

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरु-
कर्कारुकेक्षुस्वरसेन सिद्धम् ।
सर्पिर्गुडार्धांशयुतं प्रपेयं
कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातहेतोः ॥ २६ ॥

गोखुरू, एरण्डकी छाल, कुशादि तृणपञ्चमूल, शतावरी, खरबूजाके बीज और ईख प्रत्येकके स्वरससे सिद्ध घीमें आधा गुड़ मिलाकर पीनेसे, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात तथा अश्मरीका नाश होता है ॥ २६ ॥

सुकुमारकुमारकं घृतम् ।

पुनर्नवामूलतुला दशमूलं शतावरी ।
बला तुरगगन्धा च तृणमूलं त्रिकण्टकम् ॥ २७ ॥
विदारीवंशनागाह्वागुडूच्यतिबला तथा ।
पृथग्दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २८ ॥
तेन पादावशेषेण घृतस्याधाढकं पचेत् ।
मधुकं शृङ्गवेरं च द्राक्षासैन्धवपिप्पलीः ॥ २९ ॥
पृथग्द्विपलिका दद्याद्यवान्याः कुडवं तथा ।
त्रिंशद् गुडपलान्यत्र तैलस्यैरण्डजस्य च ॥ ३० ॥
प्रस्थं दत्त्वा समालोड्य सम्यङ् मृद्वग्निना पचेत् ।
एतदीश्वरपुत्राणां प्राग्भोजनमनिन्दितम् ॥ ३१ ॥
राज्ञां राजसमानां च बहुस्त्रीपतयश्च ये ।
मूत्रकृच्छ्रे कटिस्तम्भे तथा गाढपुरीषिणाम् ॥३२॥
मेढ्रवङ्क्षणशूले च योनिशूले च शस्यते ।
यथोक्तानां च गुल्मानां वातशोणितकाश्च ये॥३३॥
वल्यं रसायनं शीतं सुकुमारकुमारकम् ।
पुनर्नवाशते द्रोणो देयोऽन्येषु तथापरः ॥ ३४ ॥

पुनर्नवा ५ सेर, दशमूल, शतावरी, खरेटी, अश्वगन्धा, तृणपञ्चमूल, गोखुरू, विदारीकन्द, बांसकी पत्ती, नागकेशर, गुर्च, कंघी प्रत्येक ८ छ. लेकर २ द्रोण जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर घी ३ सेर १६ तोला तथा मौरेठी, सोंठ, मुनक्का, सेंधानमक, तथा छोटी पीपल प्रत्येक ८ तोला, अजवायन १६ तोला, गुड़ १॥ सेर, एरण्डतैल ६४ तो० छोड़कर मन्द आंचसे पकाना चाहिये । इसका प्रयोग अमीरोंके लिये भोजनके पहिले करना चाहिये । इससे मूत्रकृच्छ्र, कमरका शूल, दस्तोंका कड़ा आना, लिङ्ग व वंक्षणसंधियोंका शूल, योनिशूल, गुल्म और वातरक्त नष्ट होता, बल बढ़ता तथा यह शीतवीर्य व रसायन है । इसे "सुकुमारकुमारक" कहते हैं । शतपल पुनर्नवामें जल १ द्रोण तथा इतर औषधियोंमें १ द्रोण अर्थात् "द्रवद्वैगुण्यात्" इसमें ४ द्रोण छोड़ना चाहिये ॥ २७-३४ ॥

इति मूत्रकृच्छ्राधिकारः समाप्तः ।

अथ मूत्राघाताधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

मूत्राघातान्यथादोषं मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत् ।
बस्तिमुत्तरबस्तिं च दद्यात्स्निग्धं विरेचनम् ॥ १ ॥

दोषानुसार मूत्रकृच्छ्रनाशक प्रयोगोंसे मूत्राघातकी चिकित्सा करनी चाहिये और वस्ति, उत्तरवस्ति तथा स्नेहयुक्त विरेचन देना चाहिये ॥ १ ॥

विविधा योगाः ।

कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम् ।
धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥ २ ॥
पाटल्या यावशूकाच्च पारिभद्रात्तिलादपि ।
क्षारोदकेन मदिरां त्वगेलोषणसंयुताम् ॥ ३ ॥
पिबेद् गुडोपदंशान्वा लिह्यादेतान्पृथक्पृथक् ।
त्रिफलाकल्कसंयुक्तं लवणं वापि पाययेत् ॥ ४ ॥
निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेद्वस्त्रान्तरस्रुतम् ।
जले कुङ्कुमकल्कं वा सक्षौद्रमुषितं निशि ॥ ५ ॥
सतैलं पाटलाभस्म क्षारवद्वा परिस्रुतम् ।
सुरां सौवर्चलवतीं मूत्राघाती पिबेन्नरः ॥ ६ ॥
दाडिमाम्बुयुतं मुख्यमेलाबीजं सनागरम् ।
पीत्वा सुरां सलवणां मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥ ७ ॥
पिबेच्छिलाजतु क्वाथे गणे वीरतरादिके ।
रसं दुरालभाया वा कषायं वासकस्य वा ॥ ८ ॥

ककड़ीके बीजोंका कल्क १ तोला, सेंधानमक और कांजी मिलाकर पीनेसे मूत्राघात नष्ट होता है । अथवा शराबमें पाढल, जव, नीम या तिलका क्षार, जल तथा दालचीनी, इलायची व काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये । अथवा उपरोक्त क्षार गुड़के साथ चाटना चाहिये । अथवा त्रिफलाके कल्कमें नमक मिलाकर पिलाना चाहिये । अथवा छोटी कटेरीका स्वरस कपड़ेसे छानकर पीना चाहिये । अथवा जलमें केशरका कल्क व शहद मिला रातभर रखकर सवेरे पीना चाहिये । अथवा पाटलाकी भस्म अथवा क्षार जल तैलके साथ पीना चाहिये । अथवा कालानमक मिलाकर शराब पीनी चाहिये । अथवा अनारका रस, इलायचीका चूर्ण, सोंठका चूर्ण, शराब व नमक मिलाकर पीना चाहिये । अथवा वीरतरादि गणके क्वाथमें शिलाजतु मिलाकर अथवा जवासाका रस अथवा अडूसेका क्वाथ पीना चाहिये ॥ २–८ ॥

त्रिकण्टकादिक्षीरम् ।

त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिः
सिद्धं पयो वा तृणपञ्चमूलैः ।
गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा
रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् ॥ ९ ॥

गोखुरू, एरण्डकी छाल तथा शतावरीसे सिद्ध दूध अथवा तृणपञ्चमूलसे सिद्ध दूधमें गुड़ मिलाकर अथवा दूधमें घी डालकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात आदि विकार दूर हो जाते हैं ॥ ९ ॥

नलादिक्वाथः ।

नलकुशकाशेक्षुशिफां
क्वथितां प्रातः सुशीतलां ससिताम् ।
पिबतः प्रयाति नियतं
मूत्रग्रह इत्युवाच कचः ॥ १० ॥

नरसल, कुश, काश, व ईख की जड़ोंका शीत कषाय बना प्रातःकाल मिश्री मिला पीनेसे मूत्राघात नष्ट होता है । यह कचने कहा है ॥ १० ॥

पाषाणभेदक्वाथः ।

गोधावत्या मूलं क्वथितं घृततैलगोरसैर्मिश्रम् ।
पीतं निरुद्धमचिराद्भिनत्ति मूत्रस्य संघातम् ॥ ११ ॥

पाषाणभेदकी जड़के क्वाथमें घी, तैल व गोरस (मट्ठा) मिलाकर पीनेसे शीघ्र ही मूत्राघात नष्ट होता है ॥ ११ ॥

उपायान्तरम् ।

जलेन खदिरीबीजं मूत्राघाताश्मरीहरम् ।
मूलं तु त्रिजटायाश्च तक्रपीतं तदर्थकृत् ॥ १२ ॥
मूत्रे विबद्धे कर्पूरचूर्णं लिङ्गे प्रवेशयेत् ।
शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना ॥ १३ ॥
पिबेत्सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवाते सशोणिते ।
शीतोऽवगाह आबस्तिमुष्णवातनिवारणः ॥ १४ ॥
कूष्माण्डकरसश्चापि पीतः सक्षारशर्करः ।

जलके साथ अशोकके बीजोंके चूर्णको अथवा मट्ठेके साथ बेलकी जड़के चूर्णको पीनेसे मूत्राघात तथा अश्मरी नष्ट होती है । यदि मूत्र न उतरता हो, तो कपूरका चूर्ण लिङ्गमें रखना चाहिये । तथा गरम कर ठंढे किये दूधके साथ पथ्य लेते हुए चन्दनका कल्क, चावलका जल व शक्कर मिलाकर पीनेसे रक्तयुक्त उष्णवात नष्ट होता है । इसीप्रकार वस्तिपर्य्यन्त अङ्ग डूबने लायक जलमें बैठनेसे उष्णवात नष्ट होता है । तथा कुम्हड़ेका रस क्षार व शक्कर मिलाकर पीना चाहिये ॥ १२–१४ ॥–

अतिव्यवायजमूत्राघाताचिकित्सा ।

स्त्रीणामतिप्रसंगेन शोणितं यस्य सिच्यते ॥ १५ ॥
मैथुनोपरमश्चास्य बृंहणीयो हितो विधिः ।
स्वगुप्ताफलमृद्वीकाकृष्णेक्षुरसितारजः ॥ १६ ॥
समांशमर्धभागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च ।
सर्वं सम्यग्विमथ्याक्षमात्रं लीढ्वा पयः पिबेत् १७
हन्ति शुक्राशयोत्थांश्च दोषान्वन्ध्यासुतप्रदम् ।

जिसको अधिक स्त्रीगमन करनेसे रक्त आता है, उसे मैथुन बन्द करना तथा बृंहण (बलवीर्यवर्धक) उपाय करना चाहिये । कौंचके बीज, मुनक्का, छोटी पीपल, तालमखानाके बीज तथा मिश्रीका चूर्ण प्रत्येक समान भाग, सबसे आधे प्रत्येक दूध, घी व शहद मिला मथकर १ तोलाकी मात्रासे चाटकर ऊपरसे दूध पीनेसे शुक्राशयके दोष नष्ट होते है तथा वंध्याओंके भी सन्तान उत्पन्न होती है ॥ १५-१७ ॥-

चित्रकाद्यं घृतम् ।

चित्रकं शारिवा चैव बला कालानुशारिवा ॥१८॥
द्राक्षा विशाला पिप्पल्यस्तथा चित्रफला भवेत् ।
तथैव मधुकं दद्याद्दद्यादामलकानि च ॥ १९ ॥
घृताढकं पचेदेभिः कल्कैरक्षसमन्वितैः ।
क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत् ॥ २० ॥
शीतं परिस्रुतं चैव शर्कराप्रस्थसंयुतम् ।
तुगाक्षीर्याश्च तत्सर्वं मतिमान्प्रतिमिश्रयेत् ॥ २१ ॥
ततो मितं पिबेत्काले यथादोषं यथाबलम् ।
वातरेताः पित्तरेताः श्लेष्मरेताश्च यो भवेत् ॥२२॥
रक्तरेता ग्रन्थिरेताः पिबेदिच्छन्नरोगताम् ।
जीवनीयं च वृष्यं च सर्पिरेतन्महागुणम् ॥ २३ ॥
प्रजाहितं च धन्यं च सर्वरोगापहं शिवम्
सर्पिरेतत्प्रयुञ्जाना स्त्री गर्भं लभतेऽचिरात् ॥२४॥
असृग्दोषाञ्जयेच्चैव योनिदोषांश्च संहतान् ।
मूत्रदोषेषु सर्वेषु कुर्यादेतच्चिकित्सितम् ॥ २५ ॥

चीतकी जड़, शारिवा, खरेटी, काली शारिवा, मुनक्का, इन्द्रायनकी जड़, छोटी पीपल, ककड़ीके बीज, मौरेठी तथा आंवला प्रत्येक एक एक तोलाभर ले कल्ककर २५६ तोलेभर घृत एक द्रोण दूध तथा एक द्रोण जल मिला पकावे, पाक सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर १ प्रस्थ मिश्री तथा एक प्रस्थ वंशलोचन मिलाना चाहिये । इसकी मात्रा युक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे वात, पित्त, कफसे दूषित शुक्र रक्त तथा गांठियोंसे युक्त शुक्र शुद्ध होता है । यह जीवनीय वाजीकर सन्तानको बढानेवाला तथा समस्त रोगोंको नष्ट करनेवाला है । इसके प्रयोगसे स्त्रीको गर्भ प्राप्त होता है तथा रक्तदोष, योनिदोष और मूत्रदोषोंमें इसका उपयोग करना चाहिये ॥ १८-२५ ॥

इति मूत्राघाताधिकारः समाप्तः ।

अथाश्मर्यधिकारः ।

वरुणादिक्वाथः ।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरसंयुताम् ।
यवक्षारगुडं दत्त्वा क्वाथयित्वा पिबेद्धिताम् ॥१॥
अश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ।

वरुणाकी उत्तम छाल, सोंठ व गोखुरूका क्वाथ बना गुड़ व जवाखार छोड़कर पीनेसे पुरानी वातज अश्मरी नष्ट होती है ॥ १ ॥-

वीरतरादिक्वाथः ।

वीरतरः सहचरो दर्भो वृक्षादनी नलः ॥ २ ॥
गुन्द्राकाशकुशाश्मभेदमोरटटुण्टुकाः ।
कुरुण्टिका च वशिरो वसुकः साग्निमन्थकः ॥३ ॥
इन्दीवरी श्वदंष्ट्रा च तथा कापोतवक्रकः[1] ।
वीरतरादिरित्येष गणो वातविकारनुत् ॥ ४ ॥
अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्राघातरुजापहः ।

शरकी जड़, पीले फूलका पियावासा, दाभ, बांदा, नरसल, गुर्च, काश, कुश, पाषाणभेद, ईखकी जड़, सोनापाठा, नीले फूलका पियावासा, गजपीपल, अगस्त्यकी छाल, अरणी, नीलोफर, गोखुरू, और काकमाची यह "वीरतरादिगण" वातरोग, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघातकी पीड़ाको नष्ट करता है ॥ २-४ ॥-

शुण्ठ्यादिक्वाथः ।

शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणशिग्रुवरुणगोक्षुरैः ॥ ५ ॥
अभयारग्वधफलैः क्वाथं कुर्याद्विचक्षणः ।
रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः ॥ ६ ॥

---

१ "कपोतवक्रक"से शिरीषसदृश स्वल्पपत्रक स्वल्पविटप शिवदासजी बतलाते है । वैद्यकशब्दसिन्धुमें वीरतरादिगणमें "काकमाची" ही लिखा है, अतः यही यहां लिखा गया है । पर वाग्भटमें इसी गणमें "अर्जुन" आया है यहां अर्जुनका नाम नहीं है । मेरे विचारसे अर्जुन भी कपोतवक्त्रका अर्थ हो सकता है। अथवा "कपोतवर्णिका" पाठ कर इलायची अर्थ करना चाहिये॥

अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं पाचनं दीपनं परम् ।
हन्यात्कोष्ठाश्रितं वातं कट्यूरुगुदमेढ्रगम् ॥ ७ ॥

सोंठ, अरणी, पापाणभेद, सहिंजनकी छाल, वरुणाकी छाल, गोखुरू, बड़ी हरोंका छिल्का तथा अमलतासका गूदा प्रत्येक समान भाग ले क्काथ कर भुनी हींग, जवाखार और नमक डालकर पीनेसे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता, पाचन और दीपन होता तथा कोष्ठाश्रित, कटि, ऊरु, गुदा व लिंगगत वायु नष्ट होते हैं ॥ ५–७ ॥

पाषाणभेदाद्यं घृतम् ।

पाषाणभेदो वसुको वशिरोऽश्मन्तकं तथा ।
शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती कण्टकारिका ॥ ८ ॥
कपोतवक्रार्तगलकाञ्चनोशीरगुल्मकाः ।
वृक्षादनी भल्लुकश्च वरुणः शाकजं फलम् ॥ ९ ॥
यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य फलानि च ।
ऊषकादिप्रतीवापमेषां क्वाथे शृतं घृतम् ॥ १० ॥
भिनत्ति वातसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ।
क्षारान्यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च ॥
भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्वातनाशने ॥ ११॥

पाषाणभेद, अगस्त्य, गजपीपल, काञ्चनार खट्टे पत्तोंवाला, शतावरी, गोखुरू, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, मकोय, नीली कटसरैया, लाल कचनारकी छाल, खश, नागकेशर, बांदा, सोनापाठा, वरुणाकी छाल, शाकवृक्ष (सहिंजन) के फल, यव, कुलथी, बेर, तथा निर्मलीके क्काथमें सिद्ध घृत ऊषकादि गणका प्रतिवाप छोड़कर सेवन करनेसे वातज अश्मरी शीघ्र ही नष्ट होती है। इसी वातनाशक वर्गमें क्षार, यवागू, पेया, क्काथ, क्षीर तथा भोजन बनाना चाहिये ॥ ८–११ ॥

ऊषकादिगणः ।

ऊषकं सैन्धवं हिङ्गु काशीसद्वयगुग्गुलु ।
शिलाजतु तुत्थकं च ऊषकादिरुदाहृतः ॥ १२ ॥
ऊषकादिः कफं हन्ति गणो मेदोविशोधनः ।
अश्मरीशर्करामूत्रशूलघ्नः कफगुल्मनुत् ॥ १३ ॥

रेहमिट्टी, सेंधानमक, हींग, दोनों कसीस, गुग्गुलु, शिलाजीत, तूतिया–यह "ऊषकादि गण" कहा जाता है। यह कफ, मेद, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र व कफज गुल्मको नष्ट करता है ॥ १२॥१३॥

कुशाद्यं घृतम् ।

कुशः काशः शरो गुल्म इत्कटो मोरटोऽश्मभित् ।
दर्भो विदारी वाराही शालिमूलं त्रिकण्टकः ॥१४॥
भल्लूकः पाटली पाठा पत्तूरोऽथ कुरुण्टिका ।
पुनर्नवे शिरीषश्च कथितास्तेषु साधितम् ॥ १५ ॥
घृतं शिलाह्वमधुकबीजैरिन्दीवरस्य च ।
त्रपुषैर्वारुकाणां वा बीजैश्चावापितं शृतम् ॥ १६ ॥
भिनत्ति पित्तसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ।
क्षारान्यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च ।
भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्पित्तनाशने ॥१७ ॥

कुश, काश, शर, ग्रन्थिपर्ण, रोहिष घास, ईखकी जड़, पाषाणभेद, दर्भ, विदारीकन्द, वाराही कंद, धानकी जड़, गोखुरू, सोनापाठा, पाढला, पाढ़ी, लाल चन्दन, कटसरैया, दोनों पुनर्नवा तथा सिरसाकी छाल समान भाग ले क्काथ बना क्काथसे चतुर्थांश घी मिला पका शिलाजीत, मौरेठी व नीलोफरके बीजका प्रतिवाप छोड़कर अथवा खीरेके बीज व खर्बूजेके बीजोंका प्रतीवाप छोड़कर सेवन करनेसे पित्तज अश्मरी शान्त होती है। तथा यह गण पित्तनाशक है, इसमें क्षार, यवागू, पेया, काढ़े, दूध अथवा भोजन भी बनाना चाहिये ॥१४–१७॥

कफजाश्मरीचिकित्सा ।

गणे वरुणकादौ च गुग्गुल्वेलाहरेणुभिः ।
कुष्ठमुस्ताह्वमरिचचित्रकैः ससुराह्वयैः ॥ १८ ॥
एतैः सिद्धमजासर्पिरूषकादिगणेन च ।
भिनत्ति कफसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ १९ ॥
क्षारान्यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च ।
भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन्कफनाशने ॥ २० ॥

वरुणादि गणके क्काथमें गुग्गुलु, इलायची, सम्भालूके बीज, कूठ, मोथा, मिर्च, चीतकी जड़, देवदारु तथा ऊषकादि गणका कल्क छोड़कर सिद्ध किया गया बकरीका घृत कफजन्य अश्मरीको शीघ्र ही नष्ट करता है। तथा इसी कफनाशक वर्गमें क्षार, यवागू, पेया, काढे और दूध तथा भोजन आदि बनाकर देना चाहिये ॥ १८–२० ॥

वरुणादिगणः ।

वरुणोऽर्तगलः शिग्रुतर्कारीमधुशिग्रुकाः ।
मेषशृङ्गीकरञ्जौ च बिम्ब्यग्निमन्थमोरटाः ॥ २१ ॥
शैरीयो वशिरो दर्भो वरी वसुकचित्रकौ ।
बिल्वं चैवाजशृङ्गी च बृहतीद्वयमेव च ॥२२॥
वरुणादिगणो ह्येष कफमेदोनिवारणः ।
विनिहन्ति शिरःशूलं गुल्माद्यन्तरविद्रधीन् ॥२३॥

वरुणाकी छाल, नीला कटसरैया, सहिंजन, अरणी, मीठा सहिंजन, मेढासिंगी, कञ्जा, कुन्दरु, अरणी, मोरट, पीला कटसरैया, गजपीपल, दर्भ, शतावरी, अगस्त्य, चीतकी जड़,

घेलका गूदा, मेढ़ाशींगी छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी यह "वरुणादि गण" कफ, मेद, शिरःशूल, गुल्म तथा अन्तर्विद्रधिको नष्ट करता है ॥ २१-२३ ॥

विविधा योगाः ।

वरुणत्वक्कषायं तु पीतं च गुडसंयुतम् ।
अश्मरीं पातयत्याशु बस्तिशूलनिवारणम् ॥ २४ ॥
यवक्षारं गुडोन्मिश्रं पिबेत्पुष्पफलोद्भवम् ।
रसं मूत्रविबन्धघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ २५ ॥
पिबेद्वरुणमूलत्वक्क्काथं तत्कल्कसंयुतम् ।
क्वाथश्च शिग्रुमूलोत्थः कदुष्णोऽश्मरिघातकः ॥ २६

वरुणाकी छालके क्वाथमे गुड़ मिलाकर पीनेसे अश्मरी गिरती तथा मूत्राशय, और शूल शान्त होता है । अथवा जवाखार व गुड़ मिलाकर कूष्माण्डका रस पीना चाहिये, इससे मूत्राघात, शर्करा व अश्मरी नष्ट होती है । अथवा वरुणाकी छालके क्वाथमें उसीका कल्क छोड़ कर पिलानेसे अथवा कुछ गरम गरम सहिंजनकी छालके क्वाथको पिलानेसे अश्मरी नष्ट होती है ॥ २४-२६ ॥

नागरादिक्काथः ।

नागरवारुणगोक्षुरपाषाणभेदकपोतवङ्कजः क्वाथः ।
गुडयावशूकमिश्रः पीतो हन्त्यश्मरीमुग्राम् ॥ २७ ॥

सोंठ, वरुणाकी छाल, गोखुरू, पाषाणभेद तथा मकोयके क्वाथमें गुड़ व जवाखार मिलाकर पीनेसे उग्र अश्मरी नष्ट होती है ॥ २७ ॥

वरुणादिक्काथः ।

वरुणत्वक्शिलाभेदशुण्ठीगोक्षुरकैः कृतः ।
कषायः क्षारसंयुक्तः शर्करां च भिनत्त्यपि ॥ २८॥

वरुणाकी छाल, पाषाणभेद, सोंठ तथा गोखुरू इनके क्वाथमें क्षार मिलाकर पीनेसे मूत्रशर्करा नष्ट होती है ॥ २८ ॥

श्वदंष्ट्रादिक्काथः ।

श्वदंष्ट्रैरण्डपत्राणि नागरं वरुणत्वचम् ।
एतत्क्वाथवरं प्रातः पिबेदश्मरिभेदनम् ॥ २९ ॥

गोखुरू, एरण्डके पत्ते, सोंठ तथा वरुणाकी छालके क्वाथको प्रातःकाल पीनेसे अश्मरीका भेदन होता है ॥ २९ ॥

श्वदंष्ट्रादिकल्कः ।

मूलं श्वदंष्ट्रेक्षुरकोरुबूकात्
क्षीरेण पिष्टं बृहतीद्वयाच्च ।
आलोड्य दध्ना मधुरेण पेयं
दिनानि सप्ताश्मरिभेदनार्थम् ॥ ३० ॥

गोखुरू, तालमखाना, एरण्ड तथा दोनों कटेरीकी जड़ दूधके साथ पीस मीठा दही मिलाकर पीनेसे ७ दिनमें अश्मरी कट जाती है ॥ ३० ॥

अन्ये योगाः ।

पक्केक्ष्वाकुरसः क्षारसितायुक्तोऽश्मरीहरः ॥ ३१ ॥
पाषाणरोगपीडां सौवर्चलयुक्ता सुरा जयति ।
तद्वन्मधुदुग्धयुक्ता त्रिरात्रं तिलनालभूतिश्च ॥३२ ॥

पकी कडुई तोम्बीके रसमें क्षार और मिश्रीको मिलाकर पीनेसे अश्मरी नष्ट होती है । इसी प्रकार काले नमकके साथ शराबको पीनेसे अथवा शहद व दूधके साथ तिलपिंडीकी भस्मको पीनेसे ३ रातमें पथरी नष्ट होती है ॥ ३१-३२ ॥

एलादिक्काथः ।

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः ।
क्वाथं पिबेदश्मजतुप्रगाढं सशर्करे साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ३३

इलायची, छोटी पीपल, मौरेठी, पाषाणभेद, सम्भालूके बीज, गोखुरू, अडूसा, एरण्डकी छाल इनके क्वाथमें शिलाजतुको मिलाकर शर्करा, अश्मरी व मूत्रकृच्छ्रमें पीना चाहिये ॥ ३३ ॥

त्रिकण्टकचूर्णम् ।

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ।
अविक्षीरेण सप्ताहं पिबेदश्मरिनाशनम् ।
शुक्राश्मर्यां तु सामान्यो विधिरश्मरिनाशनः ॥३४॥

गोखुरूके बीजोंके चूर्णको शहद व भेड़के दूधके साथ सात दिन पीनेसे अश्मरी नष्ट होती है । इसी प्रकार शुक्राश्मरीमें सामान्य अश्मरीनाशक विधिका सेवन करना चाहिये ॥ ३४ ॥

पाषाणभेदादिचूर्णम् ।

पाषाणभेदो वृषकः श्वदंष्ट्रा
पाठाभयाव्योषशटीनिकुम्भाः ।
हिंस्राखराश्वासितिमारकाणा-
मेर्वारुकाच्च त्रपुषाच्च बीजम् ॥ ३५ ॥
उपकुञ्चिकाहिङ्गुसवेतसाम्लं
स्याद् द्वे बृहत्यौ हपुषा वचा च ।
चूर्णं पिबेदश्मरिभेदि पक्वं
सर्पिश्च गोमूत्रचतुर्गुणं तैः ॥ ३६ ॥

पाषाणभेद, अडूसा, गोखुरू, पाढ़, बड़ी हर्रका छिल्का, त्रिकटु, कचूर, दन्तीकी छाल, जटामांसी, अजमोदा, शालिञ्चशाक, ककड़ीके बीज व खीराके बीज, कलौंजी, भुनी हींग, अम्लवेत, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, हाऊबेर तथा वच इनका

चूर्णकर अश्मरी नाशनार्थ सेवन करना चाहिये । तथा इनके कल्क व चतुर्गुण गोमूत्रमें सिद्ध घीका सेवन करनेसे अश्मरी नष्ट होती है ॥ ३५-३६ ॥

कुलत्थाद्यं घृतम् ।

कुलत्थसिन्धूत्थविडङ्गसारं
सशर्करं शीतलियावशूकम् ।
बीजानि कूष्माण्डकगोक्षुराभ्यां
घृतं पचेत्ना वरुणस्य तोये ॥ ३७ ॥
दुःसाध्यसर्वाश्मरिमूत्रकृच्छ्रं
मूत्राभिघातं च समूत्रबन्धनम् ।
एतानि सर्वाणि निहन्ति शीघ्रं
प्ररूढवृक्षानिव वज्रपातः ॥ ३८ ॥

कुलथी, सेंधानमक, वायविडङ्ग, शक्कर, शीतली (जलवृक्ष सफेदफूलयुक्त), जवाखार, कूष्माण्डबीज तथा गोखुरूके बीजका कल्क तथा वरुणाका क्वाथ छोड़कर घृत सिद्ध करना चाहिये । यह घृत दुःसाध्य समग्र अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र व मूत्राघातको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे बड़े वृक्षोंको बिजलीका गिरना ॥ ३७-३८ ॥

तृणपञ्चमूलघृतम् ।

शरादिपञ्चमूल्या वा कषायेण पचेद् घृतम् ।
प्रस्थं गोक्षुरकल्केन सिद्धमद्यात्सशर्करम् ।
अस्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं रेतोमार्गरुजापहम् ॥ ३९ ॥

तृणपञ्चमूलके क्वाथ व गोखरूके कल्कसे घृत सिद्ध कर शक्कर मिला सेवन करनेसे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और शुक्रमार्गकी पीड़ा नष्ट होती है ॥ ३९ ॥

वरुणाद्यं घृतम् ।

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषं परिस्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४० ॥
वरुणं कदलीं बिल्वं तृणजं पञ्चमूलकम् ।
अमृतां चाश्मजं देयं बीजं च त्रपुषोद्भवम् ॥ ४१ ॥
शतपर्वतिलक्षारं पलाशक्षारमेव च ।
यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकाणि समावपेत् ॥४२॥
अस्य मात्रां पिबेज्जन्तुर्देशकालाद्यपेक्षया ।
जीर्णे तस्मिन्पिबेत्पूर्वं गुडं जीर्णं तु मस्तुना ।
अश्मरीं शर्करां चैव मूत्रकृच्छ्रं च नाशयेत् ॥४३॥

वरुणाकी छाल ५ सेर १ द्रोण जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान १ प्रस्थ घृत तथा वरुणाकी छाल, केला, बेल, तृणपञ्चमूल, गुर्च, शिलाजतु, खीरेके बीज, ईख, तिलका क्षार, पलाशक्षार तथा जूहीकी जड़ प्रत्येक १ कर्षका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये । इसका मात्राके साथ सेवन करना चाहिये । तथा हजम हो जानेपर पुराना गुड़ दहीके तोड़के साथ पीना चाहिये । यह अश्मरी शर्करा व मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करता है ॥ ४०-४३ ॥

सैन्धववीरतरादितैलम् ।

अश्माविकारे यत्तैलं सैन्धवाद्यं प्रकीर्तितम् ।
तत्तैलं द्विगुणक्षीरं पचेद्वीरतरादिना ॥ ४४ ॥
क्वाथेन पूर्वकल्केन साधितं तु भिषग्वरैः ।
एतत् तैलवरं श्रेष्ठमश्मरीणां विनाशनम् ॥ ४५ ॥
मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे पिच्चिते मथिते तथा ।
भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैव प्रशस्यते ॥ ४६ ॥

अश्माविकारमें जो सेंधवादि तेल कहेंगे उस सिद्ध तैलसे द्विगुण दूध और द्विगुण वीरतरादिगणका क्वाथ तथा सैन्धवादि तैलका कल्क मिलाकर पुनः पकानेसे जो तैल बनेगा, वह अश्मरी मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र पिचित, माथित, भग्न तथा थके हुएको परम हितकारी होगा ॥ ४४-४६ ॥

वरुणाद्यं तैलम् ।

त्वक्पत्रमूलपुष्पस्य वरुणात्सत्रिकण्टकात् ।
कषायेण पचेत्तैलं वस्तिना स्थापनेन च ।
शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ४७ ॥

वरुणा व गोखरूके पञ्चाङ्गके क्वाथसे सिद्ध तैलका अनुवासन द्वारा प्रयोग करनेसे मूत्रशर्करा, अश्मरी, वस्तिशूल व मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं ॥ ४७ ॥

शस्त्रचिकित्सा ।

शल्यवित्तामशाम्यन्तीं प्रत्याख्याय समुद्धरेत् ।
पायुक्षिप्ताङ्गुलीभ्यां तु गुदमेढ्रान्तरे गताम् ॥४८॥
सेवन्याः सव्यपार्श्वे च यवमात्रं विमुच्य तु ।
व्रणं कृत्वाश्मरीमात्रं कर्षेत्तां शस्त्रकर्मवित् ॥४९ ॥
भिन्ने वस्तौ तु दुर्ज्ञानान्मृत्युः स्यादश्मरीं विना ।
निःशेषामश्मरीं कुर्याद्वस्तौ रक्तं च निर्हरेत् ॥५०॥
हृताश्मरीकमुष्णाम्भो गाहयेद्भोजयेच्च तम् ।
गुडं मूत्रविशुद्ध्यर्थं मध्वाज्याक्तव्रणं ततः ॥ ५१ ॥
दद्यात्साज्यां त्र्यहं पेयां साधितां मूत्रशोधिभिः ।
आदशाहं ततो दद्यात्पयसा मृदुभोजनम् ॥ ५२ ॥
स्वेदयेच्चमध्वाद्यं कषायैः क्षालयेद् व्रणम् ।
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठायष्टिलोध्रैश्च लेपयेत् ॥ ५३ ॥
एतैश्च सनिशैः सिद्धं घृतमभ्यञ्जने हितम् ।
अप्रशान्ते तु सप्ताहाद् व्रणे दाहोऽपि चेष्यते ॥
द्वेवान्त्राभ्यां तु या लग्ना तां विपाट्यापकर्षयेत् ॥५४॥

यदि उपरोक्त उपायोंसे अश्मरी शान्त न हो, तो शल्य-शास्त्रवेत्ता प्रत्याख्यान कर शस्त्र द्वारा उसे निकाले । गुदामें २ अंगुली छोड़कर अश्मरीको गुदा व लिङ्गके मध्यमें लावे । फिर सेवनीसे वाम और यवमात्र छोड़ अश्मरीके बराबर व्रण-कर अश्मरीको निकाल दे । ठीक ज्ञान न होनेके कारण यदि पथरी न हुई तो व्रण करनेसे वस्ति कट जायगी और रोगी मर जायगा, अतः अच्छी तरह निश्चय कर शस्त्रकर्म करना चाहिये। यदि अश्मरी निकाले ही तो समग्र निकाल ले । तथा जो रक्त जमा हो उसे भी साफ कर दे । (तथा अश्मरीनिकाल देनेपर गरम जलमें बैठावे) तथा मूत्रशुद्धिके लिये गुड़ खिलावे । फिर घावमें शहद व घी लगावे तथा मूत्रशोधक द्रव्योंसे सिद्ध पेया घी मिलाकर ३ दिनतक पिलावे, फिर दूधके साथ पथ्य हलका भात आदि १० दिनतक खिलावे तथा यव व शहदसे बनायी पोटलीसे स्वेदन करे तथा कषाय रस युक्त काढ़ोंसे व्रणको साफ कर तथा पुण्डरिया, मञ्जीठ, मौरेठी व लोध्रसे लेप करे तथा हल्दीके सहित इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध घृतकी मालिश करे । सात दिनतक ऐसा करनेसे यदि व्रण ठीक न हो तो उसे जला देना चाहिये । यदि भाग्य-वश पथरी नाभीमें अटक गयी हो, तो काटकर निकालना चाहिये ॥ ४८-५४ ॥

इत्यश्मर्यधिकारः समाप्तः ।

अथ प्रमेहाधिकारः । *

पथ्यम् ।

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकी ।
कुलत्थाश्च हिता भोज्ये पुराणा मेहिनां सदा ॥१ ॥
जाङ्गलं तिक्तशाकानि यवान्नं च तथा मधु ।

पुराने सावां कोदव, जङ्गली कोदव, गेहूं, चना, अर-हर और कुथली प्रमेहवालोंके लिये सदा पथ्य हैं । इसी प्रकार जांगल प्राणियोंका मांसरस, तिक्तशाक, यवके पदार्थ तथा मधु हितकर है ॥ १ ॥-

अष्टमेहापहा अष्टौ क्वाथाः ।

पारिजातजयानिम्बवह्निगायत्रीणां पृथक् ॥ २ ॥
पाठायाः सागुरोः पीताद्रयस्य शारदस्य च ।
जलेक्षुमद्यसिकताशनैर्लवणपिष्टकान् ।
सान्द्रमेहान्क्रमाद् घ्नन्ति ह्यष्टौ क्वाथाःसमाक्षिकाः।३

पारिजात, अरणी, नीम, चीतकी जड़, कत्था, अगुरु, और पाढ़का क्वाथ तथा हल्दी व दारुहल्दी (शरदृतुमें उत्पन्न) का क्वाथ इस प्रकार बताये गये ८ क्वाथ क्रमशः जलमेह, इक्षुमेह, मद्यमेह, सिकतामेह, शनैर्मेह, लवणमेह, पिष्टमेह और सान्द्रमेह-को नष्ट करते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

शुक्रमेहहरः क्वाथः ।

दूर्वाकशेरुपूतीककुम्भीपल्वलशैवलम् ।
जलेन क्वथितं पीतं शुक्रमेहहरं परम् ॥ ४ ॥

दूब, कशेरु, पूतिकरञ्ज, जलकुम्भी तथा सेवार इनका क्वाथ शुक्रमेहको नष्ट करता है ॥ ४ ॥

फेनमेहहरः क्वाथः ।

त्रिफलारग्वधद्राक्षाकषायो मधुसंयुतः ।
पीतो निहन्ति फेनाख्यं प्रमेहं नियतं नृणाम् ॥५॥

त्रिफला, अमलतासके गूदा तथा मुनक्केके क्वाथमें शहद डालकर पीनेसे फेनमेह नष्ट होता है ॥ ५ ॥

कषायचतुष्टयी ।

लोध्राभयाकट्फलमुस्तकानां
विडङ्गपाठार्जुनधन्वनानाम् ।
कदम्बशालार्जुनदीप्यकानां
विडङ्गदार्वीधवशल्लकीनाम् ॥ ६ ॥

---

* कुशावलेहः-" वीरणश्च कुशः काशः कृष्णेक्षुः खाग-डस्तथा । एतान्दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् । अष्टभागा-वशेषं तु कषायमवतारयेत् । अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णा-नीमानि दापयेत् ॥ मधुकं कर्कटीबीजं कर्कारु त्रपुषं तथा । शुभामलकपत्राणि एलात्वङ्नागकेशरम् । वरुणामृताप्रियंगूणां प्रत्येकं चाक्षसंमितम् । प्रमेहान्विंशतिं चैव मूत्राघातं तथा-श्मरीम् ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् । हन्त्यरोचकमेवोग्रं तुष्टिपुष्टिकरस्तथा ॥" खश, कुश, काश, काली, ईख, रामशर प्रत्येक द्रव्य ८ छ० जल २५ सेर ९ छ० ३ तोला मिलाकर पकाना चाहिये, अष्टमांश शेष रहनेपर काढ़ा उतारे, छानकर पुनः पाक करना चाहिये । गाढा हो जानेपर मौरेठी, ककड़ीके बीज, पेठेके बीज, खीराके बीज, वंशलोचन, आंवला, तेजपात, इलायची, दालचीनी, नागकेशर, वरुणाकी छाल, गुर्च, तथा प्रियंगु प्रत्येक १ तोलेका चूर्ण मिलाकर उतार लेना चाहिये । यद्यपि इसमें शक्करका वर्णन नहीं है । पर वैद्यलोग अवलेह पकाते समय ६४ तोला शक्कर भी डालते हैं । यह २० प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, तथा हर प्रकारके अरोचक, नष्ट करता है । इसकी मात्रा ६ माशेसे २ तोले तक है । (यह प्रयोग किसी पुस्तकमें है, किसीमें नहीं और इसके ऊपर शिवदासजीने टीका भी नहीं की, अतः टिप्पणी रूपमें लिखा गया है) ।

चत्वार एते मधुना कपायाः
कफप्रमेहेषु निषेवणीयाः ॥ ७ ॥

(१) पठानी लोध, बड़ी हर्रका छिल्का, कायफल नागरमोथका क्वाथ (२) अथवा वायविडंग, पाढ़, अर्जुन और धामिनका क्वाथ (३) अथवा कदम्ब, शाल अर्जुन और अजवाइनका क्वाथ (४) अथवा वायविडंग, दारुहल्दी, धव और शल्की (शालभेदः) का क्वाथ इनमेंसे किसी एकमें शहद मिलाकर कफप्रमेहवालोंको पीना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

षण्मेहनाशकाः षट् क्काथाः ।

अश्वत्थाच्चतुरंगुल्या न्यग्रोधादेः फलत्रिकात् ।
सजिङ्गिरक्तसाराच्च क्काथाः पञ्च समाक्षिकाः ॥८॥
नीलहारिद्रफेनाख्यक्षारमञ्जिष्ठकाह्वयान् ।
मेहान्हन्युः क्रमादेते सक्षौद्रो रक्तमेहनुत् ।
क्काथः खर्जूरकाश्मर्यतिन्दुकास्थ्यमृताकृतः ॥ ९ ॥

(१) पीपलकी छालका क्काथ, (२) अमलतासके गूदेका क्काथ (३) न्यग्रोधादि गणका क्काथ, (४) त्रिफलाका क्काथ, (५) मजीठ व लालचन्दनका क्काथ यह पांच क्वाथ शहदके साथ क्रमशः नील, हारिद्र, फेन, क्षार और मञ्जिष्ठमेहको नष्ट करते हैं। तथा (६) छुहारा, खम्भार, तेन्दूकी गुठली और गुर्चका क्वाथ शहदके साथ रक्त प्रमेहको नष्ट करता है ॥ ८-९ ॥

कषायचतुष्टयी ।

लोध्रार्जुनोशीरकुचन्दनाना-
मरिष्टसेव्यामलकाभयानाम् ।
धात्र्यर्जुनारिष्टकवत्सकानां
नीलोत्पलैलातिनिशार्जुनानाम् ॥ १० ॥
चत्वार एते विहिताः कषायाः
पित्तप्रमेहे मधुसंप्रयुक्ताः ॥ ११ ॥

(१) लोध, अर्जुन, खश, लालचन्दन (२) नीमकी छाल, खश, आंवला, बड़ी हर्रें (३) आंवला, अर्जुनकी छाल, नीमकी छाल, कुरैयाकी छाल (४) अथवा नीलोफर, इलायची, तिनिश और अर्जुनकी छाल इस प्रकार लिखे चार क्वाथोंमेंसे कोई भी शहद मिलाकर सेवन करनेसे पित्तप्रमेह नष्ट होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

वातजमेहचिकित्सा ।

छिन्नावह्निकषायेण पाठाकुटजरामठम् ।
तिक्तां कुष्ठं च संचूर्ण्य सर्पिर्मेहे पिबेन्नरः ॥ १२ ॥
कदरखदिरपूगक्कार्थं क्षौद्राह्वये पिबेत् ।
अग्निमन्थकषायं तु वसामेहे प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥
पाठाशिरीषदुस्पर्शमूर्वाकिंशुकतिन्दुकम् ।
कपित्थानां भिषक् क्काथं हस्तिमेहे प्रयोजयेत् ॥१४

गुर्च और चीतकी जड़के काढ़ेके साथ पाढ़, कुरैयाकी छाल, भुनी हींग, कुटकी और कूठके चूर्णका सेवन करनेसे सर्पिर्मेह नष्ट होता है । तथा दुर्गन्धित खैर, खैर और सुपारीका क्वाथ मधुमेहमें पीना चाहिये । तथा अरणीका क्वाथ वसामेहमें पीना चाहिये । तथा पाढ़ सिरसाकी छाल, यवासा, मूर्वा, ढाकके फूल और तेन्दू तथा कैथेका क्वाथ हस्तिमेहमें देना चाहिये ॥ १२-१४ ॥

कफपित्तमेहचिकित्सा ।

कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि
बिभीतरोहीतककौटजानि ।
कपित्थपुष्पाणि च चूर्णितानि
क्षौद्रेण लिह्यात्कफपित्तमेही ॥ १५ ॥

कबीला, सप्तपर्ण, शाल, बहेड़ा, रुहेड़ा, कुटज और कैथेके फूलका चूर्ण कर शहदके साथ कफपित्तज प्रमेहमें चाटना चाहिये ॥ १५ ॥

त्रिदोषजमेहचिकित्सा ।

सर्वमेहहरो धात्र्या रसः क्षौद्रनिशायुतः ।
कषायस्त्रिफलादारुमुस्तकैरथवा कृतः ॥ १६ ॥
फलत्रिकं दारुनिशां विशालां
मुस्तं च निःक्काथ्य निशांशकल्कम् ।
पिबेत्कषायं मधुसंप्रयुक्तं
सर्वेषु मेहेषु समुत्थितेषु ॥ १७ ॥

आंवलेका रस, शहद और हल्दीके चूर्णके साथ समस्त प्रमेहोंको नष्ट करता है। अथवा त्रिफला, देवदारु और नागरमोथाका क्काथ पीना चाहिये । अथवा त्रिफला, दारुहल्दी, इन्द्रायणकी जड़ तथा नागरमोथाका क्काथ हल्दीका कल्क और शहद मिलाकर समस्त प्रमेहोंमें सेवन करना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥

विविधाः क्काथाः ।

कटंकटेरीमधुकत्रिफलाचित्रकैः समैः ।
सिद्धः कषायः पातव्यः प्रमेहाणां विनाशनः ॥१८॥
त्रिफलादारुदार्व्यब्दक्काथः क्षौद्रेण मेहहा ।
कुटजाशनदार्व्यब्दफलत्रयभवोऽथवा ॥ १९ ॥

दारुहल्दी, मौरेठी, त्रिफला तथा चीतकी जड़का क्काथ समस्त प्रमेहोंको नष्ट करता है । तथा त्रिफला, देवदारु, दारुहल्दी व नागरमोथाका क्काथ शहदके साथ पीनेसे प्रमेहको नष्ट करता है । इसी प्रकार कुटज, विजैसार, दारुहल्दी, नागरमोथा और त्रिफलाका क्काथ समस्त प्रमेहोंको नष्ट करता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

चूर्णकल्काः ।

त्रिफलालोहशिलाजतुपथ्याचूर्णं च लीढमेकैकम् ।
मधुनामरास्वरस इव सर्वान्मेहान्निरस्यति ॥ २० ॥
शालमुष्ककपिल्लककल्कमक्षसमं पिबेत् ।
धात्रीरसेन सक्षौद्रं सर्वमेहहरं परम् ॥ २१ ॥

त्रिफला, लौह, शिलाजतु, तथा हर्र, इनमेंसे किसी एकका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे शहदके साथ गुर्चके स्वरसके समान समस्त प्रमेहोंको नष्ट करता है । तथा शाल, मोखा और कबीलाका कल्क १ तोला आंवलेका रस और शहद मिलाकर पीनेसे समस्त मेह नष्ट होते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

न्यग्रोधाद्यं चूर्णम् ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थस्योनाकारग्वधासनम् ।
आम्रजम्बूकपित्थं च प्रियालं ककुभं धवम् ॥२२॥
मधूको मधुकं लोध्रं वरुणं पारिभद्रकम् ।
पटोलं मेषशृङ्गी च दन्ती चित्रकमाढकी ॥ २३ ॥
करञ्जत्रिफलाशक्रभल्लातकफलानि च ।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥२३॥
न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ।
फलत्रयरसं चानु पिबेन्मूत्रं विशुध्यति ॥ २५ ॥
एतेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च ।
प्रशमं यान्ति योगेन पिडका न च जायते ।
न्यग्रोधाद्यमिदं त्वत्र चाम्रजम्ब्वस्थि गृह्यते ॥ २६॥

वट, गूलर, पीपल, सोनापाठा, अमलतास, विजैसार, आम, जामुन, कैथा, चिरौंजी, अर्जुन, धव, महुआ, मौरेठी, लोध, वरुणाकी छाल, नीमकी छाल, परवलकी पत्ती, मेषशृंगी, दन्ती, चीतकी जड़, अरहर, कञ्जा, त्रिफला, इन्द्रयव तथा भिलावां सब समान भाग ले चूर्ण कर शहदके साथ चाटना चाहिये, ऊपरसे त्रिफलाका क्वाथ पीना चाहिये । इससे मूत्र शुद्ध आता, बीसों प्रमेह, पिड़का, तथा मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं । इसे "न्यग्रोधादिचूर्ण" कहते हैं । इसमें आम व जामुनकी गुठली छोड़नी चाहिये ॥ २२-२६ ॥

त्रिकण्टकाद्याः स्नेहाः ।

त्रिकण्टकाश्मन्तकसोमवल्कै-
भल्लातकैः सातिविषैः सलोध्रैः ।
वचापटोलार्जुननिम्बमुस्तै-
र्हरिद्रया दीप्यकपद्मकैश्च ॥ २७ ॥
मञ्जिष्ठपाठागुरुचन्दनैश्च
सर्वैः समस्तैः कफवातजेषु ।
मेहेषु तैलं विपचेद् घृतं तु
पित्तेषु मिश्रं त्रिषु लक्षणेषु ॥ २८ ॥

गोखुरू, कचनार, कत्था, भिलावां, अतीस, लोध, वच, परवल, अर्जुन, नागरनीम, मोथा, हल्दी, अजवायन, पद्माख, मजीठ, पाढी, अगर तथा चन्दनसे सिद्ध किया तैल कफवातज प्रमेहमें तथा उन्हींसे सिद्ध घृत पित्तप्रमेहमें तथा दोनों मिलाकर त्रिदोषज प्रमेहमें पिलाना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥

कफपित्तमेहयोः सर्पिषी ।

कफमेहहरक्वाथसिद्धं सर्पिः कफे हितम् ।
पित्तमेहघ्ननिर्यूहसिद्धं पित्ते हितं घृतम् ॥ २९ ॥

कफमेह–नाशक क्वाथमें सिद्ध घृत कफमेहमें तथा पित्तमेह–नाशक क्वाथमें सिद्ध घृत पित्तमेहमें देना चाहिये ॥ २९ ॥

धान्वन्तरं घृतम् ।

दशमूलं करञ्जौ द्वौ देवदारु हरीतकी ।
वर्षाभूर्वरुणो दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् ॥ ३० ॥
सुधानीपकदम्बाश्च बिल्वभल्लातकानि च ।
शटी पुष्करमूलं च पिप्पलीमूलमेव च ॥ ३१ ॥
पृथग्दशपलान्भागांस्ततस्तोयार्मणे पचेत् ।
यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थं च दापयेत् ।
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३२ ॥
निचुलं त्रिफला भार्ङ्गी रोहिषं गजपिप्पली ।
शृङ्गवेरं विडङ्गानि वचा कम्पिल्लकं तथा ॥ ३१ ॥
गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेत्तु यथाबलम् ।
एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम् ॥ ३४ ॥
कुष्ठं गुल्मं प्रमेहांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ।
प्लीहोदरं तथार्शांसि विद्रधिं पिडकाश्च याः ।
अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतान्नियच्छति ॥ ३५ ॥
पृथक्तोयार्मणे तत्र पचेद् द्रव्याच्छतं शतम् ।
शतत्रयाधिके तोयमुत्सर्गक्रमतो भवेत् ॥ ३६ ॥

दशमूल, दोनों करञ्जा, देवदारु, हर्र, रक्त पुनर्नवा, वरुणाकी छाल, दन्ती, चीतकी जड़, श्वेत पुनर्नवा, सेहुंड, वेत, कदम्ब, बेल, भिलावां, कचूर, पोहकरमूल तथा पिपरामूल प्रत्येक १० पल, यव, वेर, कुलथी प्रत्येक १ प्रस्थ छोड़कर उचित मात्रामें जल मिलाकर क्वाथ बनाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान १ प्रस्थ घृत मिलाकर पकाना चाहिये । तथा घृतमें चतुर्थांश माजूफल, त्रिफला, भारंगी, रोहिष घास, गजपीपल, अदरख, वच व कबीलाका कल्क छोड़कर पकाना

चाहिये । इसका बलानुसार सेवन करना चाहिये । यह "धान्वन्तर घृत" कुष्ठ, गुल्म, प्रमेह, सूजन, वातरक्त, प्लीहोदर, अर्श, विद्रधि, प्रमेह, पिडिका, अपस्मार तथा उन्मादको नष्ट करता है । ओषधियां १ तुला होनेपर जल १ द्रोण छोड़ना चाहिये और २ तुला द्रव्यसे अधिक होनेपर जल स्वाभाविक नियमसे अर्थात् चतुर्गुण छोड़ा जाता है । क्वाथ्य द्रव्य प्रत्येक १० पल लेनेसे १२॥ सेर और १ प्रस्थके मानके ३ द्रव्य २ सेर ६ छ० २ तो० अर्थात् समग्र १५ सेर १४ छ० २ तोला क्वाथ्य द्रव्य हुआ। अतः जल तीन द्रोण तथा ३ सेर ९ छ० २ तो० छोड़ना चाहिये * ॥ ३०-३६ ॥

त्र्यूषणादिगुग्गुलुः ।

त्रिकटुत्रिफलाचूर्णतुल्ययुक्तं च गुग्गुलम् ।
गोक्षुरक्वाथसंयुक्तं गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ३७ ॥
देशकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिकीम् ।
न चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् ।
प्रमेहान्मूत्रदोषांश्च वालरोगोदरं जयेत् ॥ ३८ ॥

त्रिकटु, त्रिफलाका चूर्ण समान भाग, सबके समान शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर गोखरूके क्वाथसे गोली बना लेनी चाहिये । इसे देश, काल व बलके अनुसार सेवन करनेसे वायुका अनुलोमन होता है तथा प्रमेह, मूत्रदोष और बालरोग नष्ट होते हैं । इसमें कोई परिहार नहीं है । यथेष्ट आहार विहार करना चाहिये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

शिलाजतुप्रयोगः ।

शालसारादितोयेन भावितं यच्छिलाजतु ।
पिबेत्तेनैव संशुद्धदेहः पिष्टं यथाबलम् ॥ ३९ ॥
जांगलानां रसैः सार्धं तस्मिञ्जीर्णे च भोजनम् ॥
कुर्यादेवं तुलां यावदुपयुञ्जीत मानवः ॥४० ॥
मधुमेहं विहायासौ शर्करामश्मरीं तथा ।
वपुर्वर्णबलोपेतः शतं जीवत्यनामयः ॥ ४१ ॥

शालसारादि गणकी ओषधियोंसे शुद्ध शिलाजतु इन्हींके क्वाथके साथ पीसकर बलानुसार पीना चाहिये । तथा औषध हजम हो जानेपर जांगल प्राणियोंके मांसरसके साथ भोजन करना चाहिये । इस प्रकार १ तुला शिलाजतुका प्रयोग कर जानेसे मधुमेह, शर्करा, अश्मरी नष्ट होते और शरीर निरोग, वर्ण बलपूर्ण होकर १०० वर्षतक जीवन धारण करता है ॥ ३९-४१ ॥

विडंगादिलौहम् ।

विडंगात्रिफलामुस्तैः कणया नागरेण च ।
जीरकाभ्यां युतो हन्ति प्रमेहानतिदुस्तरान् ।
लौहो मूत्रविकारांश्च सर्वानेव न संशयः ॥ ४२ ॥

वायविडंग, त्रिफला, नागरमोथा, छोटी पीपल, सोंठ, सफेद जीरा और स्याह जीरासे युक्त लौहभस्म कठिन प्रमेह तथा मूत्रदोषोंको नष्ट करता है, इसमें संशय नहीं ॥ ४२॥

माक्षिकादियोगः ।

माक्षिकं धातुमप्येवं युञ्ज्यात्तस्याप्ययं गुणः ।
शालसारादिवर्गस्य क्वाथे तु घनतां गते ॥ ४३ ॥
दन्तीलोध्रशिवाकान्तलौहताम्ररजः क्षिपेत् ।
घनीभूतमदग्धं च प्राश्य मेहान्व्यपोहति ॥ ४४ ॥

स्वर्णमाक्षिक धातुका भी इसी प्रकार प्रयोग करना चाहिये, उसका भी यही गुण है । तथा शालसारादि वर्गके क्वाथको पुनः पका क्वाथ गाढ़ा हो जानेपर दन्ती, लोध, छोटी हर्र, कान्तलौहभस्म तथा ताम्रभस्मको छोड़ कर पकाना चाहिये । कड़ा हो जानेपर जलने न पावे, उसी दशामें उतारना चाहिये । इसको चाटनेसे प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

---

* **महादाडिमाद्यं घृतम्**–"दाडिमस्य फलप्रस्थं यवप्रस्थौ तथैव च । कुलत्थकुडवं चैव क्वाथयित्वा यथाविधि ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् । चतुःषष्टिपलं क्षीरं क्षीरतुल्यं वरीरसम् ॥ दत्त्वा मृद्वग्निना कल्कैरक्षमात्रायुतैः सह । द्राक्षाखर्जूरकाकोलीदन्तीदाडिमजीरकैः ॥ तथा मेदामहामेदात्रिफलादारुरेणुकैः । विशालारजनीदारुहरिद्राविकसामयैः ॥ क्रमिघ्नभूमिकूष्माण्डश्यामैलाभिर्भिषग्वरः । पाने भोज्ये प्रदातव्यं सर्वर्तुषु च मात्रया ॥ प्रमेहान्विंशतिं चैव मूत्राघातांस्तथाश्मरीम् । कृच्छ्रं सुदारुणं चैव हन्यादेतद्रसायनम् ॥ शूलमष्टविधं हन्ति ज्वरमष्टविधं तथा । कामलां पाण्डुरोगांश्च हलीमकमथारुचिम् ॥ श्लीपदं च विशेषेण घृतेनानेन नश्यति । इदमायुष्यमोजस्यं सर्वरोगहरं परम् ॥ दाडिमाद्यमिदं नाम अश्विभ्यां निर्मितं महत् ॥" अनारके दाने ६४ तोला यव १२८ तो०, कुलथी १६ तो० सबसे अष्टगुण जल मिलाकर पकाना चाहिये; चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार, छानकर सिद्ध क्वाथमें घी १ सेर ९ छ० ३ तो० तथा दूध ३ सेर १६ तो०, शतावरीका रस ३ सेर १६ तो० तथा मुनक्का, छुहारा, काकोली, दन्तीकी छाल, अनारदाना, जीरा, मेदा, महामेदा, त्रिफला, देवदारु, सम्भालूके बीज, इन्द्रायण, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, कूठ, वायविडंग, विदारीकन्द, कालीसारिवा, इलायची प्रत्येक १ तो० का कल्क छोड़कर पाक करना चाहिये । इसका अनुकूल मात्रामें प्रत्येक ऋतुमें पान व भोजनके साथ प्रयोग करना चाहिये । यह २० प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी तथा दारुण मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करता और रसायन है । तथा आठ प्रकारके शूल, आठों ज्वर, कामला, पाण्डुरोग, हलीमक, अरुचि और श्लीपदको नष्ट करता है । यह भगवान् अश्विनीकुमारद्वारा बनाया हुआ "महादाडिमादिघृत" आयुष्य, ओजस्य व सर्वरोगनाशक है । (यह कुछ प्रतियोंमें मिलता, कुछमें नहीं, अतः टिप्पणीमें लिखा गया है)

मेहनाशकविहाराः ।

व्यायामजातमखिलं भजन्मेहान्व्यपोहति ।
पादत्रच्छत्ररहितो भैक्षाशी मुनिवद्यतः ॥ ४५ ॥
योजनानां शतं गच्छेदधिकं वा निरन्तरम् ।
मेहाञ्जेतुं बलेनापि नीवारामलकाशनः ॥ ४६ ॥

अनेक प्रकारके व्यायामसे प्रमेह नष्ट होते हैं । तथा जूता और छाता विना अर्थात् नंगे पैर और नंगे शिर मुनियोंके समान जितेंद्रिय हो भिक्षा मांगकर भोजन करते हुए ४०० कोश या और अधिक निरन्तर पैदल चलना चाहिये । और पसईके चावल व आंवलेको खाना चाहिये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

प्रमेहपिडिकाचिकित्सा ।

शराविकाद्याः पिडकाः साधयेच्छोथवद्भिषक् ।
पक्वाश्चिकित्सेद्व्रणवत्तासां पाने प्रशस्यते ॥ ४७ ॥
क्वाथं वनस्पतेर्बास्तं मूत्रं च व्रणशोधनम् ।
एलादिकेन कुर्वीत तैलं च व्रणरोपणम् ॥ ४८ ॥
आरग्वधादिना कुर्यात्क्वाथमुद्वर्तनानि च ।
शालसारादिसेकं च भोज्यादिं च कणादिना ॥४९॥

शराविका आदि पिड़िकाओंकी शोथके समान चिकित्सा करनी चाहिये । फूटनेपर व्रणके समान पीनेके लिये वनस्पतियोंका क्वाथ तथा बकरेका मूत्र देना चाहिये । इससे व्रण शुद्ध होते है । एलादिगणसे व्रणरोपण तैल बनाना चाहिये । आरग्वधादिका क्वाथ देना चाहिये । शालसारादिवर्गसे उबटन तथा सेकादि करना चाहिये । और छोटी पीपल आदि मिलाकर भोजन बनाना चाहिये ॥ ४७–४९ ॥

वर्ज्यानि ।

सौवीरकं सुरां शुक्तं तैलं क्षीरं घृतं गुडम् ।
अम्लेक्षुरसपिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत् ॥ ५० ॥

काञ्जी, शराब, सिरका, तैल, दूध, घी, गुड़, खट्टी चीजें, ईखका रस, पिट्ठीके अन्न और आनूपमांस न खाने चाहिये ÷ ॥ ५० ॥

इति प्रमेहाधिकारः समाप्तः ।

१ वने वापि इति प्राचीनपुस्तकेषु पाठः ।

÷ प्रमेहमुक्तिलक्षणम्—" प्रमेहिणां यदामूत्रमनाविलमपिच्छिलम् । विशदं कटु तिक्तं च तदारोग्यं प्रचक्षते ॥" प्रमेहके रोगियोंका मूत्र जब साफ, लासारहित, फैलनेवाला, कटु व तिक्त आने लगे, तब समझना चाहिये कि अब प्रमेह नहीं रहा ॥

अथ स्थौल्याधिकारः ।

स्थौल्ये पथ्यानि ।

श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः ।
हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनः ॥ १ ॥
अस्वापं च व्यवायं च व्यायामं चिन्तनानि च ।
स्थौल्यमिच्छन्परित्यक्तुं क्रमेणातिप्रवर्धयेत् ॥ २ ॥

परिश्रम, चिन्ता, मैथुन, मार्गगमन, शहदका सेवन और जागरण करनेवाला तथा यव व सांवाका भोजन करनेवाला अवश्य अतिस्थूलतासे मुक्त होता है । अतः स्थौल्य दूर करनेकी इच्छा करनेवाला पुरुष क्रमशः जागरण, मैथुन, व्यायाम, चिन्ता अधिक बढ़ावे ॥ १ ॥ २ ॥

केचनोपायाः ।

प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् ।
उष्णमन्नस्य मण्डं वा पिबन्कृशतनुर्भवेत् ॥ ३ ॥
सचव्यजीरकव्योषहिङ्गुसौवर्चलानलाः ।
मस्तुना शक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः ॥ ४ ॥
विडङ्गनागरक्षारकाललोहरजो मधु ।
यवामलकचूर्णं तु प्रयोगः स्थौल्यनाशनः ॥ ५ ॥

प्रातःकाल शहदका शर्बत पीनेसे अथवा गरम गरम अन्नका मांड़ पीनेसे शरीर पतला होता है । इसी प्रकार चव्य, जीरा, त्रिकटु, हिंगु, कालानमक, और चीतकी जड़के चूर्ण तथा दहीके तोड़के साथ सत्तू पीनेसे मेदका नाश तथा अग्निकी वृद्धि होती है । इसी प्रकार वायविडंग, सोंठ, जवाखार, लौहभस्म, शहद और यव व आंवलेका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे स्थूलता नष्ट होती है * ॥ ३–५ ॥

व्योषादिसक्तुयोगः ।

व्योषं विडङ्गशिग्रूणि त्रिफलां कटुरोहिणीम् ।
बृहत्यौ द्वे हरिद्रे द्वे पाठामतिविषां स्थिराम् ॥ ६ ॥
हिंगु केवूकमूलानि यमानीधान्यचित्रकम् ।
सौवर्चलमजाजीं च हपुषां चेति चूर्णयेत् ॥ ७ ॥
चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाः स्युर्मानतः समाः ।
सक्तूनां षोडशगुणो भागः संतर्पणं पिबेत् ॥ ८ ॥
प्रयोगात्तस्य शाम्यन्ति रोगाः सन्तर्पणोत्थिताः ।
प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यर्शांसि कामला ॥ ९ ॥

* विडंगाद्यं लौहम्—" विडंगत्रिफलामुस्तैः कणया नागरेण च । बिल्वचन्दनह्रीबेरपाठोशीरं तथा बला ॥–

प्लीहपाण्ड्वामयः शोथो मूत्रकृच्छ्रमरोचकः ।
हृद्रोगो राजयक्ष्मा च कासश्वासौ गलग्रहः ॥१०॥
क्रिमयो ग्रहणीदोषाः श्वैत्र्यं स्थौल्यमतीव च ।
नराणां दीप्यते चाग्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ ११॥

त्रिकटु, वायविडंग, सहिंजनकी छाल, त्रिफला, कुटकी, दोनों कटेरी, हल्दी, दारुहल्दी, पाढ़, अतीस, शालिपर्णी, भुनी हींग, केबुकमूल, अजवायन, धनियां, चीतकी जड़, कालानमक, जीरा, हाऊबेर इनका चूर्ण करना चाहिये । पुनः चूर्ण १ भाग, तेल १ भाग, घृत १ भाग, शहद १ भाग, और सक्तू १६ भाग जल मिलाकर पीना चाहिये। इस प्रयोगसे सन्तर्पणजन्य रोग तथा प्रमेह, मूढ़वात, कुष्ठ, अर्श, कामला, प्लीहा, पाण्डुरोग, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृद्रोग, राजयक्ष्मा, कास, श्वास, गलेकी जकड़ाहट, क्रिमिरोग, ग्रहणीदोष, श्वित्र तथा अतिस्थूलताका नाश होता है, अग्नि दीप्त होती तथा बुद्धि और स्मरणशक्ति बढ़ती है॥९-११॥

प्रयोगद्वयम् ।

वदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिता ।
स्थौल्यनुत्स्यात्साग्निमन्थरसं वापि शिलाजतु ॥१२॥

(१) बेरकी पत्तीके कल्क और काञ्जी मिलाकर सिद्ध पेया अथवा (२) अरणीके रसके साथ शिलाजतु स्थौल्यको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

अमृतादिगुग्गुलुः ।

अमृतात्रुटिवेल्लवत्सकं
कैलिङ्गपथ्यामलकानि गुग्गुलुः ।
क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं
पिडकास्थौल्यभगन्दरं जयेत् ॥ १३ ॥

गुर्च १ भाग, छोटी इलायची २ भाग, वायविड़ङ्ग ३ भाग, कुरैयाकी छाल ४ भाग, इन्द्रयव ५ भाग, छोटी हर्र ६ भाग आंवला ७ भाग, तथा गुग्गुलु ८ भाग सबको शहदमें मिलाकर मात्रानुसार सेवन करनेसे पिड़का, स्थौल्य और भगन्दर नष्ट होता है ॥ १३ ॥

नवकगुग्गुलुः ।

व्योषाग्नित्रिफलामुस्तविडङ्गैर्गुग्गुलुं समम् ।
खादन्सर्वाञ्जयेद्व्याधीन्मेदःश्लेष्मामवातजान् १४॥

त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद (नागरमोथा, चीतकी जड़, वायविडंग) प्रत्येक समान भाग चूर्ण कर सबके समान गुग्गुलु मिलाकर सेवन करनेसे मेद, कफ और आमवातजन्य समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

लौहरसायनम् ।

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खदिरं वृषम् ।
त्रिवृतालम्बुषा स्नुक्च निर्गुण्डी चित्रकं तथा ॥१५॥
एषां दशपलान्भागांस्तोये पञ्चाढके पचेत् ।
पादशेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत् ॥ १६ ॥
पलद्वादशकं देयं तीक्ष्णं लौहं सुचूर्णितम् ।
पुराणसर्पिषः प्रस्थं शर्कराष्टपलोन्मितम् ॥ १७ ॥
पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते ।
प्रस्थार्धं माक्षिकं देयं शिलाजतु पलद्वयम् ॥१८॥
एलात्वक्च पलार्धं च विडङ्गानि पलद्वयम् ।
मरिचं चाञ्जनं कृष्णाद्विपलं त्रिफलान्वितम्॥१९॥
पलद्वयं तु कासीसं सूक्ष्मचूर्णीकृतं बुधैः ।
चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥२०
ततः संशुद्धदेहस्तु भक्षयेदक्षमात्रकम् ।
अनुपानं पिबेत्क्षीरं जाङ्गलानां रसं तथा ॥ २१ ॥
वातश्लेष्महरं श्रेष्ठं कुष्ठमेहोदरापहम् ।
कामलां पाण्डुरोगं च श्वयथुं सभगन्दरम् ॥२२॥
मूर्च्छामोहविषोन्मादगराणि विविधानि च ।
स्थूलानां कर्षणे श्रेष्ठं मेदुरे परमौषधम् ॥ २३ ॥
कर्षयेच्चातिमात्रेण कुक्षिं पातालसन्निभम् ।
बल्यं रसायनं मेध्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ २४ ॥
श्रीकरं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम् ।
नाश्नीयात्कदलीकन्दं काञ्जिकं करमर्दकम् ।
करीरं कारवेल्लं च षट् ककाराणि वर्जयेत् ॥२५॥

गुग्गुलु, मुसली, त्रिफला, कत्था, अडूसा, निसोथ, मुण्डी, सेहुण्ड, सम्भालू तथा चीतकी जड़ प्रत्येक १० पल (४० तोला) जल ५ आढ़क (द्रवद्वैगुण्यात् ३२ सेरमें पकाना

—एषां सर्वसमं लौहं जलेन वटिकां कुरु । घृतयोगेन कर्तव्या माषिका वटिका शुभा ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं लोहस्याष्टगुणं पयः । सर्वमेहहरं बल्यं कान्त्यायुर्बलवर्द्धनम् ॥ अग्निसन्दीपनकरं वाजीकरणमुत्तमम् । सोमरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ विडंगाद्यमिदं लौहं सर्वरोगनिषूदनम् ॥" वायविडंग, त्रिफला, नागरमोथा, छोटी पीपल, सोंठ, बेलकी छाल, चन्दन, सुगन्धवाला, पाढ़, खश, खरेटी सब समान भाग सबके समान लौहभस्म मिलाकर जलमें घोट घी मिलाकर गोली १ माशेकी बना लेनी चाहिये, इसके ऊपर अनुपान दूध लौहसे आठ गुण, लेना चाहिये । यह समस्त प्रमेहोंको नष्ट करता, बल, कान्ति, आयुर्बल बढ़ाता, अग्नि दीप्त करता तथा उत्तम वाजीकरण है । सोमरोगको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे अन्धकारको सूर्य । यह "विडंगादिलौह" सभी रोगोंको नष्ट करता है (यह प्रयोग भी कुछ पुस्तकोंमें ही मिलता है, अतः टिप्पणीरूपमें लिखा गया है)

१ कलिङ्गस्थाने कलीति पाठान्तरम् । कलिः=बिभीतकः ॥

चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानना चाहिये । फिर लौहभस्म ४८ तोला, पुराना घी १२८ तोला, मिश्री ३२ तोला तथा क्वाथ मिलाकर पकाना चाहिये । तैयार होनेपर उतार ठण्ढा कर शहद ६४ तोला, शिलाजित ८ तोला, छोटी इलायची, दालचीनी प्रत्येक २ तोला, वायविड़ङ्ग ८ तोला, काली मिर्च, रसौत तथा छोटी पीपल प्रत्येक ८ तोला, त्रिफला प्रत्येक ८ तोला तथा काशीस ८ तोला, सबका चूर्ण अवलेहमें मिला मथकर चिकने पात्रमें रखना चाहिये । फिर विरेचनादिसे शुद्ध पुरुषको १ तोला की मात्रासे सेवन करना चाहिये । अनुपान दूध अथवा जांगल प्राणियोंका मांसरस रक्खे । यह वातश्लेष्म, कुष्ठ, प्रमेह, उदर, कामला, पाण्डुरोग, सूजन, भगन्दर, मूर्छा, मोह, उन्माद, विष, कृत्रिमविषको नष्ट करता तथा मेदस्वी व स्थूल पुरुषको परम हितकर है । पेटको अतिमात्र कृश कर देता है । बल्य है, रसायन, मेध्य तथा वाजीकर है । शोभा बढ़ाता, सन्तान उत्पन्न करता तथा शरीरकी झुर्रियों व बालोंकी सफेदीको नष्ट करता है । इसका सेवन करते हुए केला, कोई भी कन्द, काञ्जी, करौंदा, करीर, करेला इनका त्याग करना चाहिये ॥ १५-२५ ॥

त्रिफलाद्यं तैलम् ।

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः ।
निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ २६ ॥
गुडूचीन्द्रसुराकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः ।
तैलमेभिः समं पक्वं सुरसादिरसाप्लुतम् ॥ २७ ॥
पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यबस्तिषु योजितम् ।
स्थूलतालस्यकण्ड्वादीञ्जयेत् कफकृतान्गदान् ॥२८॥

त्रिफला, अतीस, मूर्वा, निसोथ, चीतकी जड़, अडूसा, नीम, अमलतास, बच, सप्तपर्ण, हल्दी, दारुहल्दी, गुर्च, इन्द्रायण, छोटी पीपल, कूठ, सरसों तथा सोंठका कल्क और सुरसादि गणका रस मिलाकर पकाये गये तैलका पान, मालिश, गण्डूष, नस्य और बस्तिद्वारा प्रयोग करनेसे स्थूलता, आलस्य, कण्डू आदि कफजन्य रोग नष्ट होते हैं ॥ २६-२८ ॥

प्रघर्षप्रदेहाः ।

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसंस्वेदहरः प्रघर्षः ।
पत्राम्बुलोहोभयचन्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः२९
वासादलरसो लेपाच्छङ्खचूर्णेन संयुतः ।
बिल्वपत्ररसैर्वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः ॥ ३० ॥

सिरसाकी छाल, रोहिषघास, नागकेशर, तथा लोधका उबटन करनेसे त्वग्दोष व पसीनेकी दुर्गन्धि नष्ट होती है । तथा तेजपात, सुगन्धवाला, अगुरु, तथा लाल व सफेद चन्दनका जलके साथ लेप करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध नष्ट होती है । इसी प्रकार अडूसेके पत्तोंका रस शंखचूर्ण मिलाकर लेप करनेसे अथवा बेलके पत्तोंके रसके साथ लेप करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध नष्ट होती है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अङ्गरागः ।

हरीतकीलोध्रमरिष्टपत्रं
चूतत्वचो दाडिमवल्कलं च ।
एषोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां
जङ्घाकषायश्च नराधिपानाम् ॥ ३१ ॥

हर्र, लोध, नीमकी पत्ती, आमकी छाल, अनारका छिल्का और काकजंघाका कषाय मिलाकर लेप करनेसे स्त्रियोंके अङ्गोंको उत्तम बनाता है । तथा राजाओंको इसका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३१ ॥

दलादिलेपः ।

दलजललघुमलयभवविलेपनं हरति देहदौर्गन्ध्यम् ।
विमलारनालसहितं पीतमिवालम्बुषाचूर्णम् ॥३२॥
गोमूत्रपिष्टं विनिहन्ति कुष्ठं
वर्णोज्ज्वलं गोपयसा च युक्तम् ।
कक्षादिदौर्गन्ध्यहरं पयोभिः
शस्तं वशीकृद्रजनीद्वयेन ॥ ३३ ॥

तेजपात, सुगन्धवाला, अगर व चन्दन काञ्जीके साथ पीसकर लेप करनेसे तथा उसीके साथ मुण्डीका चूर्ण पीनेसे देह दौर्गन्ध्य नष्ट होता है । इसी प्रकार मुण्डीका चूर्ण गोमूत्रके साथ कुष्ठको नष्ट करता, गोदुग्धके साथ लेप करनेसे वर्णको उत्तम बनाता तथा हल्दी दारुहल्दी व दूधके साथ लेप करनेसे कक्षादि दौर्गन्ध्यको नष्ट करता तथा वशीकरण है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

चिञ्चाहरिद्रोद्वर्तनम् ।

चिञ्चापत्रस्वरसमुक्षितं कक्षादियोजितं जयति ।
दग्धहरिद्रोद्वर्तनमचिराद्देहस्य दौर्गन्ध्यम् ॥ ३४ ॥

इमलीकी पत्तीके स्वरसके साथ भुनी हल्दीका चूर्ण कक्षा आदिमें मलनेसे शीघ्र ही देह दौर्गन्ध्य नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

हस्तपादस्वेदाधिक्यचिकित्सा ।

हस्तपादस्रुतौ योऽयं गुग्गुलुं पञ्चतिक्तकम् ।
अथवा पञ्चतिक्ताख्यं घृतं खादेदतन्द्रितः ॥ ३५ ॥

हाथ व पैरोंसे अधिक पसीना आनेपर पञ्चतिक्तगुग्गुलु अथवा पञ्चतिक्तघृत खाना चाहिये ॥ ३५ ॥

इति स्थौल्याधिकारः समाप्तः ।

अथोदराधिकारः ।

सामान्यतश्चिकित्सा ।

उदरे दोषसम्पूर्णे कुक्षौ मन्दो यतोऽनलः ।
तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥ १ ॥
रक्तशालीन्यवान्मुद्गाञ्जाङ्गलांश्च मृगद्विजान् ।
पयोमूत्रासवारिष्टमधुशीधु तथा पिबेत् ॥ २ ॥

उदर रोगमें पेट दोषोंसे भर जाता है और अग्नि मन्द हो जाती है । अतः दीपनीय और लघु भोजन करना चाहिये । तथा लाल चावल, यव, मूंग, जांगल प्राणियोंके मांसरस, दूध, मूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु और शीधु (एक प्रकारका मद्य) का प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

वातोदरचिकित्सा ।

वातोदरं बलवतः पूर्वं स्नेहैरुपाचरेत् ।
स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात्स्नेहविरेचनम् ॥ ३ ॥
हृते दोषे परिम्लानं वेष्टयेद्वाससोदरम् ।
तथास्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाध्मापयेत्पुनः ॥ ४ ॥

बलवान् पुरुषके वातोदरकी पहिले स्नेहन कर चिकित्सा करनी चाहिये । स्नेहन व स्वेदनके अनन्तर स्निग्ध विरेचन देना चाहिये । दोषोंके निकल जानेपर जब पेट मुलायम हो जावे, तब कपड़ा कसकर बांध देना चाहिये । जिससे कि वायु स्थान पाकर पेटको फुला न दे ॥ ३ ॥ ४ ॥

सर्वोदराणां सामान्यचिकित्सा ।

दोषातिमात्रोपचयात्स्रोतोमार्गनिरोधनात् ।
सम्भवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत् ॥ ५ ॥
विरिक्ते च यथादोषहरैः पेया शृता हिता ।
वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम् ॥ ६ ॥
शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ।
यमानीसैन्धवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी ॥ ७ ॥

दोषोंके अधिक इकट्ठे होनेसे तथा स्रोतोंके मार्ग बन्द हो जानेसे उदर उत्पन्न होते हैं, अतः उदरवालोंको नित्य विरेचन देना चाहिये । विरेचनानन्तर जो दोष प्रधान हो, तन्नाशक द्रव्योंसे सिद्ध पेया देनी चाहिये । तथा वातोदरी छोटी पीपल व नमकयुक्त मट्ठा पीवे । पित्तोदरी शक्कर व मिर्च मिलाकर मीठा मट्ठा पीवे । तथा कफोदरी अजवायन, सेंधानमक, जीरा और त्रिकटु मिलाकर मट्ठा पीवे ॥ ५-७ ॥

तक्रविधानम् ।

पिबेन्मधुयुतं तक्रं व्यक्ताम्लं नातिपेलवम् ।
मधुतैलवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ॥ ८ ॥
युक्तं प्लीहोदरी जातं सव्योषं तु दकोदरी ।
बद्धोदरी तु हपुषादीप्यकाजाजिसैन्धवैः ॥ ९ ॥
पिबेच्छिद्रोदरी तक्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ।
त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तं तु निचयोदरी ॥ १० ॥
गौरवारोचकार्तानां समन्दाग्न्यतिसारिणाम् ।
तक्रं वातकफार्तानाममृतत्वाय कल्प्यते ॥ ११ ॥

"प्लीहोदरी" शहद मिलाकर खट्टा तथा गाढा मट्ठा पीवे अथवा शहद, तैल, वच, सोंठ, सौंफ, कूठ तथा सेंधानमक मिलाकर पीवे । "जलोदरी" त्रिकटु मिलाकर ताजा मट्ठा पीवे । "बद्धगुदोदरी" हाऊवेर,अजवायन,जीरा तथा सेंधानमक मिलाकर मट्ठा पीवे । "छिद्रोदरी" छोटी पीपल व शहद मिलाकर मट्ठा पीवे । "सन्निपातोदरी" त्रिकटु, क्षार और लवण मिलाकर मट्ठा पीवे । गौरव, अरोचक, मन्दाग्नि, अतिसार तथा वातकफसे पीड़ित पुरुषोंके लिये मट्ठा अमृततुल्य गुणदायक होता है ॥ ८-११ ॥

दुग्धप्रयोगः ।

वातोदरे पयोऽभ्यासो निरूहो दशमूलकः ।
सोदावर्ते वातहाम्लशृतैरण्डानुवासनः ॥ १२ ॥

वातोदरमें दूधका अभ्यास, दशमूलके क्वाथसे अनुवासन तथा उदावर्तयुक्त वातोदरमें वातनाशक खट्टे पदार्थोंसे सिद्ध एरण्डतैलका अनुवासन देना चाहिये ॥ १२ ॥

सामुद्राद्यं चूर्णम् ।

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानि
क्षारं यवानामजमोदकं च ।
सपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेरं
हिंगुर्विडं चेति समानि कुर्यात् ॥ १३ ॥
एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि
भुञ्जीत पूर्वं कवलं प्रशस्तम् ।
वातोदरं गुल्ममजीर्णभुक्तं
वायुप्रकोपं ग्रहणीं च दुष्टाम् ॥ १४ ॥
अर्शांसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं
भगन्दरं चेति निहन्ति सद्यः ॥ १५ ॥

समुद्रनमक, कालानमक, सेंधानमक, यवाखार, अजमोद, छोटी पीपल, चीतकी जड़, सोंठ, भुनी हींग तथा विड़नमक सब समान भाग लेकर चूर्ण बनाना चाहिये । इस चूर्णको घीके साथ भोजनके प्रथम कौरमें खाना चाहिये । यह वातोदर, गुल्म, अजीर्ण भोजन, वायुप्रकोप, ग्रहणीदोष, अर्श, पाण्डुरोग तथा भगन्दरको शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ १३-१५ ॥

पित्तोदरचिकित्सा ।

पित्तोदरे तु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत् ।
अनुवास्याबलं क्षीरबस्तिशुद्धं विरेचयेत् ॥ १६ ॥

पयसा सत्रिवृत्कल्केनोरुबूकशृतेन वा।
शातलात्रायमाणाभ्यां शृतेनारग्वधेन वा ॥ १७ ॥

पित्तोदरमें बलवान् पुरुषको पहिले ही विरेचन देना चाहिये। निर्बलका अनुवासन कर तथा क्षीरवस्ति देकर निसोथके कल्कके साथ दूधसे अथवा एरण्डके साथ औटे हुए दूधसे अथवा सातला (सेहुण्डभेद) व त्रायमाणासे सिद्ध दूधसे अथवा अमलतासेसे सिद्ध दूधसे विरेचन देना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥

कफोदरचिकित्सा।

कफादुदरिणं शुद्धं कटुक्षारान्नभोजितम्।
मूत्रारिष्टायस्कृतिभिर्योजयेच्च कफापहैः ॥ १८ ॥

कफोदरवालेको कटु, क्षार अन्न भोजन कराके शुद्ध कर गोमूत्र, अरिष्ट तथा लौहभस्म आदि कफनाशक प्रयोगोंसे युक्त करना चाहिये ॥ १८ ॥

सन्निपाताद्युदरचिकित्सा।

सन्निपातोदरे सर्वा यथोक्तां कारयेत्क्रियाम्।
प्लीहोदरे प्लीहहरं कर्मोदरहरं तथा ॥ १९ ॥
स्विन्नाय बद्धोदरिणे मूत्रं तीक्ष्णौषधान्वितम्।
सतैलं लवणं दद्यान्निरूहं सानुवासनम् ॥ २० ॥
परिस्रंसीनि चान्नानि तीक्ष्णं चैव विरेचनम्।
छिद्रोदरमृते स्वेदाच्छ्लेष्मोदरवदाचरेत् ॥ २१ ॥
जातं जातं जलं स्राव्यं शास्त्रोक्तं शस्त्रकर्म च।
जलोदरे विशेषेण द्रवसेवां विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

सन्निपातोदरमें सभी चिकित्सा करनी चाहिये। प्लीहोदरमें प्लीहानाशक तथा उदरनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। बद्धोदरमें स्वेदनकर तीक्ष्णौषधयुक्त मूत्र तथा तैल व लवणयुक्त अनुवासन व आस्थापन वस्ति देनी चाहिये। दस्त लानेवाले अन्न तथा तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये। छिद्रोदरमें स्वेदके सिवाय शेष सब कफोदरकी चिकित्सा करनी चाहिये। जलोदरमें उत्पन्न जलको निकालना चाहिये तथा शास्त्रोक्त शस्त्र कर्म करना चाहिये। इसमें जलीय द्रव्योंको न खाना चाहिये ॥ १९–२२ ॥

लेपः।

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः।
साश्वगन्धैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं शनैः ॥ २३ ॥

देवदारु, ढाकके बीज, आककी जड़, गजपीपल, सहिंजनकी छाल, असगन्ध इनको गोमूत्रमें पीसकर धीरे धीरे पेटपर लेप करना चाहिये ॥ २३ ॥

विविधा योगाः।

मूत्राण्यष्टावुदरिणां सेके पाने च योजयेत्।
स्नुहीपयोभावितानां पिप्पलीनां पयोऽशनः ॥ २४ ॥
सहस्रं च प्रयुञ्जीत शक्तितो जठरामयी।
शिलाजतूनां मूत्राणां गुग्गुलोस्त्रैफलस्य च ॥ २५ ॥
स्नुहीक्षीरप्रयोगश्च शमयत्युदरामयम्।
स्नुक्पयसा परिभाविततण्डुलचूर्णैर्विनिर्मितः पूपः ॥ २६ ॥
उदरमुदारं हिंस्याद्योगोऽयं सप्तरात्रेण।
पिप्पलीवर्धमानं वा कल्पदृष्टं प्रयोजयेत् ॥ २७ ॥
जठराणां विनाशाय नास्ति तेन समं भुवि।

उदरवालोंको सिञ्चन तथा पानके लिये आठों मूत्रोंका[1] प्रयोग करना चाहिये। तथा दूधका सेवन करते हुए सेहुण्डके दूधसे भावित १००० पिप्पलियोंका प्रयोग शक्तिके अनुसार करना चाहिये। अथवा शिलाजतु, मूत्र अथवा त्रिफला, गुग्गुलु, अथवा थूहरके दूधका प्रयोग उदररोगको शान्त करता है। इसी प्रकार थूहरके दूधसे भावित चावलके आटेकी पुड़ी ७ दिनमें बढे हुए उदररोगको नष्ट करती है। अथवा कल्पोक्त वर्द्धमान पिप्पलीका प्रयोग करना चाहिये। इससे बढ़कर उदररोगोंके नाशार्थ कोई प्रयोग नहीं है ॥ २४–२७ ॥

पटोलाद्यं चूर्णम्।

पटोलमूलं रजनीं विडङ्गं त्रिफलात्वचम् ॥ २८ ॥
कम्पिल्लकं नीलिनीं च त्रिवृतां चेति चूर्णयेत्।
षडाद्यान्कार्षिकानन्त्यांस्त्रींश्च द्वित्रिचतुर्गुणान् ॥ २९ ॥
कृत्वा चूर्णं ततो मुष्टिं गवां मूत्रेण ना पिबेत्।
विरिक्तो जाङ्गलरसैर्भुञ्जीत मृदुमोदनम् ॥ ३० ॥
मण्डं पेयां च पीत्वा च सव्योषं षडहः पयः।
शृतं पिबेत्तु तच्चूर्णं पिबेदेवं पुनः पुनः ॥ ३१ ॥
हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि।
कामलां पाण्डुरोगं च श्वयथुं चापकर्षति ॥ ३२ ॥

परवलकी जड़ १ तोला, हल्दी १ तोला, वायविडङ्ग १ तो०, आंवला १ तो०, हर्रे १ तो०, बहेड़ा १ तो०, कबीला २ तो०, नीलकी पत्तियां ३ तो०, निसोथ ४ तो०, सबका चूर्ण कर ४ तोलाकी मात्रा गोमूत्रमें मिलाकर पीना चाहिये, इससे विरेचन होगा। दस्त आजानेके अनन्तर जांगल प्राणियोंके मांसरससे हल्का भात खाना चाहिये। अथवा मांड, पेया, विलेपी अथवा त्रिकटुसे सिद्ध दूध ६ दिनतक पीना चाहिये। ७ वें दिन यही चूर्ण फिर गोमूत्रके साथ पीना चाहिये। इस तरह बारबार

[1] "सैरिभाजाविकरभागोखरद्विपवाजिनाम्।
मूत्राणीति भिषग्वर्यैर्मूत्राष्टकमुदाहृतम् ॥"

प्रयोग करनेसे यह चूर्ण जलोदरादि समस्त उदर तथा कामला, पाण्डुरोग और सूजनको नष्ट करता है ॥ २८-३२ ॥

नारायणचूर्णम् ।

यमानी हपुषा धान्यं त्रिफला सोपकुञ्चिका ।
कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा ॥ ३३ ॥
शताह्वा जीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी सचित्रकम् ।
द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ ३४॥
विडङ्गं च समांशानि दन्त्या भागत्रयं तथा ।
त्रिवृद्विशाले द्विगुणे शातला स्याच्चतुर्गुणा ॥ ३५ ॥
एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः ।
नैनं प्राप्याभिवर्धन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः ॥३६॥
तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना ।
आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ ३७ ॥
दधिमण्डेन विट्सङ्गे दाडिमाम्बुभिरर्शसि ।
परिकर्ते च वृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥ ३८ ॥
भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ।
हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुष्ठे मन्दानले ज्वरे ॥ ३९ ॥
दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे ।
यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ ४० ॥

अजवायन, हाऊबेर, धनियां, त्रिफला, कलौंजी, कालाजीरा, पिपरामूल, अजवाइन, कचूर, वच, सौंफ, जीरा, त्रिकटु, स्वर्णक्षीरी, चीतकी जड़, जवाखार,सज्जीखार, पोहकरमूल, कूठ,पाचों नमक तथा वायविडंग,प्रत्येक १ भाग, दन्ती ३ भाग, निसोथ और इन्द्रायण प्रत्येक २ भाग,शातला (सेहुण्डभेद) ४ भाग इनका चूर्ण करना चाहिये। यह चूर्ण रोगसमूहको नष्ट करता है। इसके सेवनसे रोग इसभांति नष्ट होते हैं जैसे विष्णु भगवान्से राक्षस। उदरवालोंको मट्ठेके साथ, गुल्मवालोंको बेरके क्वाथके साथ, वायुकी रुकावटमें शराबके साथ, वातरोगमें शराबके स्वच्छभागके साथ, मलकी रुकावटमें दहीके तोड़के साथ, अनारके रससे अर्शमें, परिकर्तन (गुदामें कैंचीसे काटना सा प्रतीत होने) में बिजौरेके रससे, तथा अजीर्णमें गरम जलसे पीना चाहिये। स्निग्धकोष्ठ पुरुषको विरेचनके लिये यथोचित अनुपानके साथ, भगन्दर, पाण्डुरोग, कास, श्वास, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणीदोष, कुष्ठ, मन्दाग्नि, ज्वर, दंष्ट्राविष, मूलविष, गरविष तथा कृत्रिमविषमें इसे पीना चाहिये ॥ ३३-४० ॥

दन्त्यादिकल्कः ।

दन्ती वचा गवाक्षी च शंखिनी तिल्वकं त्रिवृत् ।
गोमूत्रेण पिबेत् कल्कं जठरामयनाशनम् ॥ ४१ ॥

दन्ती, वच, इन्द्रायण, कालादाना, लोध तथा निसोथका कल्क कर गोमूत्रके साथ पीना चाहिये। इससे उदररोग नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

माहिषमूत्रयोगः ।

सक्षीरं माहिषं मूत्रं निराहारः पिबेन्नरः ।
शाम्यत्यनेन जठरं सप्ताहादिति निश्चयः ॥ ४२ ॥

निराहार रहकर गायके दूधको भैंसेके मूत्रके साथ पीनेसे ७ दिनमें उदररोग नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

गोमूत्रयोगः ।

गवाक्षीशङ्खिनीदन्तीनीलिनीकल्कसंयुतम् ।
सर्वोदरविनाशाय गोमूत्रं पातुमाचरेत् ॥ ४३ ॥

इन्द्रायण, कालादाना, दन्ती तथा नीलके कल्कके साथ गोमूत्र पीनेसे समस्त उदररोग नष्ट होते हैं ॥ ४३ ॥

अर्कलवणम् ।

अर्कपत्रं सलवणमन्तर्धूमं दहेत्ततः ।
मस्तुना तत्पिबेत्क्षारं गुल्मप्लीहोदरापहम् ॥ ४४॥

आकके पत्ते और नमक दोनोंको अन्तर्धूम पकाकर महीन पीस दहीके तोड़के साथ पीनेसे गुल्म और प्लीहा नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

शिग्रुक्वाथः ।

पीतः प्लीहोदरं हन्यात्पिप्पलीमरिचान्वितः ।
अम्लवेतससंयुक्तः शिग्रुक्वाथः ससैन्धवः ॥ ४५ ॥

सहिंजनका क्वाथ छोटी पीपल, काली मिर्च, अम्लवेत और सेंधानमकका चूर्ण मिलाकर पीनेसे प्लीहोदर नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

इन्द्रवारुणीमूलोत्पाटनम् ।

गृहीत्वा यस्य संज्ञां पाटयित्वेन्द्रवारुणीमूलम् ।
प्रक्षिप्यते सुदूरे शाम्येत प्लीहोदरं तस्य ॥ ४६ ॥

जिसका नाम लेकर इन्द्रायणकी जड़ उखाड़ दूर फेंक दी जाय, उसका प्लीहोदर शान्त हो जाता है ॥ ४६ ॥

रोहितयोगः ।

रोहीतकाभयाक्षोदभावितं मूत्रमम्बु वा ।
पीतं सर्वोदरप्लीहमेहार्शःक्रिमिगुल्मनुत् ॥ ४७ ॥

रुहेड़ेकी छाल व बड़ी हर्रका चूर्ण कर गोमूत्र अथवा जलके साथ पीनेसे समस्त उदर, प्लीहा, मेह, अर्श, क्रिमि और गुल्म नष्ट होते हैं ॥ ४७ ॥

देवद्रुमादिचूर्णम् ।

देवद्रुमं शिग्रु मयूरकं च
गोमूत्रपिष्टानथ साऽश्वगन्धान् ।

पीत्वाशु हन्यादुदरं प्रवृद्धं
क्रमीन्सशोथानुदरं च दूष्यम् ॥ ४८ ॥

देवदारु, सहिंजनकी छाल, लटजीरा, और असगन्धको गोमूत्रमें पीसकर पीनेसे उदर, क्रिमि, शोथ तथा सन्निपातोदर नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

दशमूलादिक्काथः ।

दशमूलदारुनागरछिन्नरुहापुनर्नवाभयाक्काथः ।
जयति जलोदरशोथश्लीपदगलगण्डवातरोगांश्च॥४९

दशमूल, देवदारु, सोंठ, गुर्च, पुनर्नवा और बड़ी हर्रोके छिल्केका क्काथ जलोदर, शोथ, श्लीपद, गलगण्ड और वातरोगोंको नष्ट करता है ॥ ४९ ॥

हरितक्यादिक्काथः ।

हरीतकीनागरदेवदारुपुनर्नवाछिन्नरुहाकषायः ।
सगुग्गुलुर्मूत्रयुतश्च पेयःशोथोदराणां प्रवरःप्रयोगः॥

बड़ी हर्रांके छिल्के, सोंठ, देवदारु, पुनर्नवा और गुर्चका क्काथ, गुग्गुलु और गोमूत्र मिलाकर पीनेसे शोथयुक्त उदरको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ५० ॥

एरण्डतैलादियोगत्रयी ।

एरण्डतैलं दशमूलमिश्रं
गोमूत्रयुक्तस्त्रिफलारसो वा ।
निहन्ति वातोदरशोथशूलं
क्काथः समूत्रो दशमूलजश्च ॥ ५१ ॥

(१) दशमूल क्काथके साथ एरण्डतैल, अथवा (२) गोमूत्रके साथ त्रिफलाका रस अथवा (३) गोमूत्रयुक्त दशमूलका क्काथ वातोदर, शोथ और शूलको नष्ट करता है ॥ ५१ ॥

पुनर्नवाष्टकः क्काथः ।

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठी-
तिक्ताभयादार्वमृताकषायः ।
सर्वाङ्गशोथोदरकासशूल-
श्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ५२ ॥

पुनर्नवा, नीमकी छाल, परवलकी पत्ती, सोंठ, कुटकी, बड़ी हर्रका छिल्का, देवदारु, तथा गुर्चका क्काथ, सर्वाङ्ग-शोथ, उदर, कास, शूल, श्वास और पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥ ५२ ॥

पुनर्नवागुग्गुलुयोगः ।

पुनर्नवां दार्वभयां गुडूचीं
पिबेत्समूत्रां महिषाक्षयुक्ताम् ।
त्वग्दोषशोथोदरपाण्डुरोग-
स्थौल्यप्रसेकोर्ध्वकफामयेषु ॥ ५३ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, बड़ी हर्रका छिल्का, तथा गुर्चका क्काथ या चूर्ण, गोमूत्र और गुग्गुलु मिलाकर पीनेसे त्वग्दोष, शोथ, उदर, पाण्डुरोग, स्थौल्य, मुखसे पानी आना तथा ऊर्ध्व भागके कफ-रोग नष्ट होते हैं ॥ ५३ ॥

गोमूत्रादियोगः ।

गोमूत्रयुक्तं महिषीपयो वा
क्षीरं गवां वा त्रिफलाविमिश्रम् ।
क्षीरान्नभुक्केवलमेव गव्यं
मूत्रं पिबेद्वा श्वयथूदरेषु ॥ ५४ ॥

गोमूत्रके साथ भैंसीका दूध अथवा गोदुग्धके साथ त्रिफलाका चूर्ण अथवा केवल गोमूत्र पीनेसे तथा दूधका ही पथ्य लेनेसे सूजन उदररोग नष्ट होता है ॥ ५४ ॥

पुनर्नवादिचूर्णम् ।

पुनर्नवा दार्वमृता पाठा बिल्वं श्वदंष्ट्रिका ।
बृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिप्पल्यश्चित्रकं वृषम् ॥५५॥
समभागानि संचूर्ण्य गवां मूत्रेण ना पिबेत् ।
बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रविसारिणम् ।
हन्ति शूलोदराण्यष्टौ व्रणांश्चैवोद्धतानपि ॥ ५६ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, गुर्च, पाढ़, बेलका गूदा, गोखरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी पीपल, चीतकी जड़, तथा अडूसा सब समान भाग चूर्ण कर गोमूत्रके साथ पीनेसे समस्त शरीरमें फैली हुई अनेक प्रकार-की सूजन शूलयुक्त आठों उदर तथा उद्धत व्रण नष्ट होते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

माणपायसम् ।

पुराणं माणकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृततण्डुलम् ।
साधितं क्षीरतोयाभ्यामभ्यसेत्पायसं ततः ॥ ५७ ॥
हन्ति वातोदरं शोथं ग्रहणीं पाण्डुतामपि ।
सिद्धो भिषग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः॥५८

पुराने मानकन्दको पीसकर कन्दसे द्विगुण चावल मिला दूध और जलके साथ खीर बनाकर खानेसे वातोदर, शोथ, ग्रहणी व पाण्डुरोग, नष्ट होते हैं । इस प्रयोगमें कोई आपत्ति नहीं होती, यह वैद्योंका अनुभूत है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

दशमूलषट्पलकं घृतम् ।

दशमूलतुलार्धरसे सक्षारैः पञ्चकोलकैः पलिकैः ।
सिद्धं घृतार्धपात्रं द्विमस्तुकमुदरगुल्मघ्नम् ॥ ५९ ॥

दशमूल २॥ सेरका क्काथ, पञ्चकोल प्रत्येक १ पल, जवाखार १ पल, गायका घी अर्द्धाढक तथा दहीका तोड़ १ आढक मिलाकर यथाविधि पाक हो जानेपर सेवन करनेसे उदर तथा गुल्मरोग नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

चित्रकघृतम् ।

चतुर्गुणे जले मूत्रे द्विगुणे चित्रकात्पले ।
कल्के सिद्धं घृतप्रस्थं सक्षारं जठरी पिबेत् ॥६०॥

घी १ प्रस्थ, गोमूत्र २ प्रस्थ, जल ४ प्रस्थ तथा चीतकी जड़ २ पल मिलाकर सिद्ध किये गये घृतमें जवाखार मिलाकर पीनेसे उदररोग नष्ट होता है ॥ ६० ॥

बिन्दुघृतम् ।

अर्कक्षीरपले द्वे च स्नुहीक्षीरपलानि षट् ।
पथ्याकाम्पिल्लकं श्यामासम्पाकं गिरिकर्णिका ॥६१॥
नीलिनी त्रिवृता दन्ती शंखिनी चित्रकं तथा ।
एतेषां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६२ ॥
अथास्य मलिने कोष्ठे बिन्दुमात्रं प्रदापयेत् ।
यावतोऽस्य पिबेद्विन्दूंस्तावद्वारान्विरिच्यते ॥६३॥
कुष्ठं गुल्ममुदावर्तं श्वयथुं सभगन्दरम् ।
शमयत्युदराण्यष्टौ वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।
एतद्विन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्तो विरिच्यते ॥ ६४ ॥

आकका दूध ८ तोला, थूहरका दूध २४ तोला, हर्र, कबीला, कालानिसोथ, अमलतासका गूदा, इन्द्रायण, नील, निसोथ, दन्ती, कालादाना, तथा चीतकी जड़ प्रत्येक १ पल, घृत १ प्रस्थ (द्रवद्वैगुण्य कर १२८ तोला) मिलाकर पकाना चाहिये । इसकी बिन्दुमात्रा मलिन कोष्ठवालोंको देनी चाहिये । जितने बिन्दु इसके पिये जाते हैं, उतने ही दस्त आते हैं । यह कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त, सूजन, भगन्दर, तथा उदररोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे वृक्षको इन्द्रवज्र । इस "बिन्दुघृत" की नाभिमें मालिश करनेसे भी दस्त आते हैं ॥ ६१-६४ ॥

स्नुहीक्षीरघृतद्वयम् ।

दधिमंडाढके सिद्धात्स्नुक्क्षीरपरिकल्कितात् ।
घृतप्रस्थात्पिबेन्मात्रां तद्वज्जठरशान्तये ॥ ६५ ॥
तथा सिद्धं घृतप्रस्थं पयस्यष्टगुणे पिबेत् ।
स्नुक्क्षीरपलकल्केन त्रिवृता षट्पलेन च ॥ ६६ ॥

(१) दहीका तोड़ ३ सेर १६ तोला, थूहरका दूध ४ तोला, गायका घी ६४ तोला मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत उदर शान्तिके लिये पीना चाहिये । इसी प्रकार (२) घी १ प्रस्थ, दूध ८ प्रस्थ, थूहरका दूध १ पल और निसोथका कल्क ६ पल मिलाकर सिद्ध किया गया घृत पीना चाहिये ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

नाराचघृतम् ।

स्नुक्क्षीरदन्तीत्रिफलाविडङ्ग-
सिंहीत्रिवृच्चित्रककल्कयुक्तम् ।
घृतं विपक्वं कुडवप्रमाणं
तोयेन तस्याक्षमथार्धकर्षम् ॥ ६७ ॥
पीत्वोष्णमम्भोऽनु पिबेद्विरिक्ते
पेयां सुखोष्णां वितरेद्विधिज्ञः ।
नाराचमेतज्जठरामयानां
युक्त्योपयुक्तं शमनं प्रदिष्टम् ॥ ६८ ॥

थूहरका दूध, दन्ती, त्रिफला, वायविडङ्ग, छोटी कटेरी, निसोथ तथा चीतकी जड़का कल्क और एक कुड़व घृत चतुर्गुण जलमें छोड़कर एक पाक करना चाहिये । इसका एक कर्ष अथवा अर्धकर्ष गरम जलके साथ पीना चाहिये । इससे विरेचन हो जानेपर कुछ गरम गरम पेया देनी चाहिये । इस "नाराचघृत" का युक्तिपूर्वक प्रयोग करनेसे उदररोग शान्त होते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

इत्युदराधिकारः समाप्तः ।

अथ प्लीहाधिकारः ।

यमान्यादिचूर्णम् ।

यमानिकाचित्रकयावशूक-
षड्ग्रन्थिदन्तीमगधोद्भवानाम् ।
प्लीहानमेतद्विनिहन्ति चूर्ण-
मुष्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥ १ ॥

अजवायन, चीतकी, जड़, जवाखार, बच, दन्ती, तथा छोटी पीपलके चूर्णको गरम जल, दहीके तोड़, शराब अथवा आसवके साथ सेवन करनेसे प्लीहा नष्ट होती है ॥ १ ॥

विविधा योगाः ।

पिप्पलीं किंशुकक्षारभावितां संप्रयोजयेत् ।
गुल्मप्लीहापहां वह्निदीपनीं च रसायनीम् ॥ २ ॥
विडङ्गाग्निसिन्धूत्थशक्रन्दग्ध्वा वचान्वितान् ।
पिबेत्क्षीरेण संचूर्ण्य गुल्मप्लीहोदरापहान् ॥ ३ ॥
तालपुष्पभवः क्षारः सगुडः प्लीहनाशनः ।
क्षारं वा बिडकृष्णाभ्यां पूतीकस्याम्लनिः स्रुतम् ॥४

प्लीहयकृत्प्रशान्त्यर्थं पिबेत्सातयथाबलम् ।
पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः ॥५॥
पयसा वा प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये ।

ढाकके क्षारमें भावित पिप्पलीका प्रयोग करना चाहिये। यह गुल्म और प्लीहाको नष्ट करती अग्निको दीप्त करती तथा रसायन है। इसी प्रकार वायविडङ्ग, घृत, चीतकी जड़, सेंधानमक, सत्तू और बचको अन्तर्धूम जला कर चूर्ण बना दूधके साथ पीनेसे गुल्म, प्लीहा तथा उदररोग शान्त होते हैं। इसी प्रकार तालपुष्पका क्षार गुड़के साथ प्लीहाको नष्ट करता है। अथवा बिडलवण, छोटी पीपल और काञ्जीका क्षार काञ्जीके साथ बलानुसार पीनेसे प्लीहा व यकृत् शान्त होते हैं। अथवा दूधके साथ समुद्रसीपके क्षारका प्रयोग करना चाहिये। अथवा दूधके साथ छोटी पीपलका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३–५ ॥–

भल्लातकमोदकः ।

भल्लातकाभयाजाजी गुडेन सह मोदकः ॥ ६ ॥
सप्तरात्रान्निहन्त्याशु प्लीहानमतिदारुणम् ।

भिलावां, बड़ी हर्रका छिल्का तथा जीराको गुड़में मिलाकर बनायी गयी गोलियां सात रात्रिमें प्लीहाको नष्ट करती हैं ॥ ६ ॥

प्रयोगद्वयम् ।

शोभांजनकनिर्यूहं सैन्धवाग्निकणान्वितम् ॥ ७ ॥
पलाशक्षारयुक्तं का यवक्षारं प्रयोजयेत् ।

(१) सहिंजनके क्वाथके साथ सेंधानमक, चीतकी जड़ व छोटी पीपलके चूर्णको मिलाकर पीना चाहिये । अथवा (२) ढाकके क्षारके साथ जवाखारका प्रयोग करनेसे प्लीहा दूर होती है ॥ ७ ॥–

यकृच्चिकित्सा ।

तिलान्सलवणांश्चैव घृतं षट्पलकं तथा ॥८॥
प्लीहोद्दिष्टां क्रियां सर्वां यकृतः संप्रयोजयेत् ।

काले तिल व नमक अथवा षट्पलघृत तथा प्लीहाकी समस्त चिकित्सा यकृतमें प्रयुक्त करनी चाहिये ॥ ८ ॥

विविधा योगाः ।

लशुनं पिप्पलीमूलमभयां चैव भक्षयेत् ।
पिबेद् गोमूत्रगण्डूषं प्लीहरोगविमुक्तये ॥ ९ ॥
प्लीहजिच्छरपुङ्खायाः कल्कस्तक्रेण सेवितः ।
शरपुङ्खैव संचर्व्य जङ्घादेयाभुजाथवा ॥ १० ॥
शार्ङ्गेष्टानिर्यूहः ससैन्धवस्तिन्तिडीकसंमिश्रः ।
प्लीहघ्नुपरमयोग्यः पक्वाम्ररसोऽथवा समधुः ॥११॥

लहसुन, पिपरामूल व बड़ी हर्रका प्रयोग करे । अथवा गोमूत्रको गण्डूषमात्रकी मात्रामें प्लीहारोगकी शान्तिके लिये पीवे । तथा शरपुंखाका कल्क मट्ठेके साथ पीनेसे प्लीहा नष्ट होती है । प्लीह नाशक पेयाका पथ्य लेते हुए शरपुंखाको चबानेसे अथवा काक जंघाके क्वाथमें सेंधानमक और तितिड़ीकको मिलाकर पीनेसे अथवा पके हुए आमके रसको शहद मिलाकर चाटनेसे प्लीहाकी शांति होती है ॥ ९–११ ॥

अत्र शिराव्यधविधिः ।

दध्ना भुक्तवतो वामबाहुमध्ये शिरां भिषक् ।
विध्येत्प्लीहविनाशाय यकृन्नाशाय दक्षिणे ॥१२॥
प्लीहानं मर्दयेद्गाढं दुष्टरक्तप्रवृत्तये ।

दहीके साथ भोजन कराकर वैद्यको प्लीहानाशार्थ वामबाहुमें तथा यकृत्शान्त्यर्थ दक्षिणबाहुमें शिराव्यध करना चाहिये तथा दूषितरक्तके निकालनेके लिये प्लीहाको जोरसे दबाना चाहिये ॥ १२ ॥–

परिकरो योगः ।

माणमार्गीमृतावासास्थिराचित्रकसैन्धवम् ॥ १३ ॥
नागरं तालखण्डं च प्रत्येकं तु त्रिकार्षिकम् ।
विडसौवर्चलक्षारपिप्पल्यश्चापि कार्षिकाः ॥ १४ ॥
एतच्चूर्णीकृतं सर्वं गोमूत्रस्याढके पचेत् ।
सान्द्रीभूते गुडीं कुर्याद्दत्त्वा त्रिपलमाक्षिकम् ॥१५॥
यकृत्प्लीहोदरहरो गुल्मार्शोग्रहणीहरः ।
योगः परिकरो नाम्नाचाग्निसन्दीपनः परः ॥१६ ॥

माणकन्द, अपामार्ग, गुर्च, अडूसा, शालिपर्णी, चीतकी जड़, सेंधानमक, सोंठ तथा ताड़की फली (जो आजकल नकली गजपीपलके नामसे बेचते हैं) प्रत्येक ३ तोला, विड्नमक, कालानमक, जवाखार व छोटी पीपल प्रत्येक १ कर्ष सबका चूर्ण कर गोमूत्र १ आढक (द्रवद्वैगुण्यात् ६ सेर ३२ तो०) में पकाना चाहिये । गाढा हो जानेपर शहद १२ तोला छोड़कर गोली बनानी चाहिये । यह यकृत्, प्लीहा, उदर, गुल्म, अर्श, ग्रहणीको नष्ट करता तथा अग्निको दीप्त करता है । इसे "परिकरयोग" कहते हैं ॥ १३–१६ ॥

रोहीतकचूर्णम् ।

रोहीतकाभयाक्षोदभावितं मूत्रमम्बु वा ।
पीतं सर्वोदरप्लीहमेहार्शःक्रिमिगुल्मनुत् ॥ १७ ॥

रोहीतककी छाल व बड़ी हर्रके छिल्कोंके चूर्णको गोमूत्र अथवा जलमें मिलाकर पीनेसे समस्त उदररोग, प्लीहा, प्रमेह अर्श, कृमि और गुल्मरोग नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

पिप्पली नागरं दन्ती समांशं द्विगुणाभयम् ।
चूर्णं पीतं विडार्धांशं प्लीहघ्नं ह्युष्णवारिणा ॥ १८॥

छोटी पीपल, सोंठ, तथा दन्ती प्रत्येक १ भाग, बड़ी हर्रका छिल्का २ भाग, विड़नमक आधा भाग सबका चूर्ण कर गरम जलके साथ पीनेसे प्लीहा नष्ट होती है ॥ १८ ॥

वर्द्धमानपिप्पलीयोगः ।

क्रमवृद्धया दशाहानि दशपिप्पलिकं दिनम् ।
वर्धयेत्पयसा सार्धं तथैवापनयेत्पुनः ॥ १९ ॥
जीर्णे जीर्णे च भुञ्जीत षष्टिकं क्षीरसर्पिषा ।
पिप्पलीनां प्रयोगोऽयं सहस्रस्य रसायनः ॥ १९ ॥
दशपिप्पलिकः श्रेष्ठो मध्यमः षट् प्रकीर्तितः ।
यस्त्रिपिप्पलिपर्यन्तः प्रयोगः सोऽवरः स्मृतः ॥२१॥
बृंहणं वृष्यमायुष्यं प्लीहोदरविनाशनम् ।
वयसः स्थापनं मेध्यं पिप्पलीनां रसायनम् ॥२२॥
पञ्चपिप्पलिकश्चापि दृश्यते वर्धमानकः ।
पिष्टास्ता बलिभिः पेयाः शृता मध्यबलैर्नरैः ।
शीतीकृता ह्रस्वबलैर्देहदोषामयान्प्रति ॥ २३ ॥

१० दिनतक क्रमशः प्रतिदिन १० पिप्पलियोंको बढ़ाते हुए दूधके साथ सेवन करना चाहिये और इसी प्रकार कम करना चाहिये, औषध पच जानेपर साठीके चावलोंका भात दूध व घीके साथ खाना चाहिये । इस प्रकार २० दिनमें १००० पिप्पलियां हो जाती हैं। यह "उत्तम" रसायन प्रयोग है। प्रतिदिन ६ पिप्पली बढ़ाना " मध्यम " और प्रतिदिन ३ पिप्पली बढ़ाना "निकृष्ट" कहा जाता है। यह 'वर्द्धमान पिप्पली' बृंहण, वृष्य आयुष्य, प्लीहा, उदरको नष्ट करनेवाली अवस्थाको स्थिर रखनेवाली तथा मेध्य है । पञ्चपिप्पलीका भी वर्द्धमान प्रयोग करते है । बलवान् पुरुषको पीसकर मध्यबलवालोंको क्वाथकर तथा अल्पबलवालोंको शीतकषाय बनाकर पीना चाहिये ॥ १९-२३ ॥

पिप्पलीचित्रकघृतम् ।

पिप्पलीचित्रकान्मूलं पिष्ट्वा सम्यग्विपाचयेत् ।
घृतं चतुर्गुणक्षीरं यकृत्प्लीहोदरापहम् ॥ २४ ॥

छोटी पीपल व चीतकी जड़के कल्कमें चतुर्गुण दूध मिलाकर सिद्ध किया घृत यकृत्, प्लीहा और उदररोगोंको नष्ट करता हैं * ॥ २४ ॥

पिप्पलीघृतम् ।

पिप्पलीकल्कसंयुक्तं घृतं क्षीरचतुर्गुणम् ।
पिबेत्प्लीहाग्निसादादियकृद्रोगहरं परम् ॥ २५ ॥

छोटी पीपलका कल्क तथा चतुर्गुण दूधके साथ सिद्ध घृतको प्लीहा, अग्निमांद्य, यकृत् आदिके नाशानार्थ पीना चाहिये ॥ २५ ॥

चित्रकघृतम् ।

चित्रकस्य तुलाक्वाथे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
आरनालं तद्द्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ २६ ॥
पञ्चकोलकतालीसक्षारैर्लवणसंयुतैः ।
द्विजीरकनिशायुग्ममरिचैः कल्कमावपेत् ॥ २७ ॥

---

* **लोकनाथरसः**—"शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्वे कुर्याच्च कज्जलीम् । सूततुल्यं जारिताभ्रं सम्मर्द्य कन्यकाम्बुना ॥ गोलं कुर्यात्ततो लौहं ताम्रं च द्विगुणीकृतम् । काकमाचीरसैः पिष्ट्वा गोलं ताभ्यां च वेष्टयेत् ॥ वराटिकाया भस्माथ रसतस्त्रिगुणं क्षिपेत् । ततश्च सम्पुटं कृत्वा मूषामध्ये प्रकल्पयेत् ॥ तन्मध्ये गालकं कृत्वा शरावेण पिधापयेत् । पुटेद्गजपुटे विद्वान्स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ शिवं सम्पूज्य यत्नेन द्विजांश्च परितोषयेत् । खादेद्रक्तिद्वयं चूर्णं मूत्रं चापि पिबेदनु ॥ मधुना पिप्पलीचूर्णं सगुडाम्वाहरीतकीम् । अजाजीं वा गुडेनैव भक्षयेदस्य मानतः ॥ यकृद्गुल्मोदरप्लीहश्वयथुज्वरनाशनम् । वह्निमान्द्यप्रशमनं सर्वान्व्याधीन्नियच्छति ॥" शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, दोनोंको घोटकर उत्तम कज्जली बनावे । फिर इस कज्जलीमें पारदके बराबर अभ्रक भस्म मिला घीकुमारके रससे घोटकर गोला बना लेवे । पुनः लौहभस्म तथा ताम्रभस्म प्रत्येक पारदसे दुनी लेकर मकोयके रसमें घोटकर पूर्वोक्त गोलेके ऊपर लेप करे । फिर पारदसे त्रिगुण कौड़ीकी भस्म लेकर शरावसम्पुटमें आधी भस्म नीचे, बीचमें गोला, आधीभस्म ऊपर रखकर दूसरे शरावसे बन्दकर कपड़ मिट्टीकर दे । फिर इसको गजपुटमें भस्म करे । स्वांगशीतल हो जानेपर निकाल ले । फिर घोटले । पुनः शंकरजीका पूजन कर तथा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट कर इसकी २ रत्तीकी मात्रा खावे, ऊपरसे गोमूत्र पीवे तथा इतना ही पीपलका चूर्ण शहदके साथ अथवा हरीतकी चूर्ण गुड़के शर्बतके साथ अथवा जीरा गुड़के साथ खाना चाहिये । यह यकृत्, गुल्म उदर, प्लीह, सूजन, ज्वर, अग्निमान्द्य आदि सर्व रोगोंको नष्ट करता है (यह रसप्रयोग कुछ पुस्तकोंमें ही मिलता ह, अतः क्षेपक प्रतीत होता है) ॥

प्लीहगुल्मोदराध्मानपाण्डुरोगारुचिज्वरान् ।
बस्तिहृत्पार्श्वकटयूरुशूलोदावर्तपीनसान् ॥ २८ ॥
हन्यात्पीतं तदर्शोघ्नं शोथघ्नं वह्निदीपनम् ।
बलवर्णकरं चापि भस्मकं च नियच्छति ॥ २९ ॥

चीतकी जड़ ५ सेरके क्वाथमें १२४ तोला घृत पकाना चाहिये तथा इसमें काञ्जी ३ सेर १३ छ० १ तो० दहीका तोड़ ६ सेर ३२ तोला तथा पञ्चकोल, तालीशपत्र, जवाखार, सेंधानमक, दोनों जीरे, हल्दी, दारुहल्दी, व काली मिर्चका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये । यह घृत प्लीहा, गुल्म, उदर, आध्मान, पाण्डुरोग, अरुचि ज्वर, बस्ति, हृदय, पसलियों, कमर और जघोंका शूल, उदावर्त, पीनस, अर्श और शोथको नष्ट करता, बल और वर्णको उत्तम बनाता तथा अग्निको इतना दीप्त करता है कि भस्मक हो जाता है ॥ २६-२९ ॥

रोहीतकघृतम् ।

रोहीतकत्वचः श्रेष्ठाः पलानां पञ्चविंशतिः ।
कोलद्विप्रस्थसंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत् ॥ ३० ॥
पलिकैः पञ्चकोलैश्च तत्सर्वैश्चापि तुल्यया ।
रोहितकत्वचा पिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३१ ॥
प्लीहाभिवृद्धिं शमयेदेतदाशु प्रयोजितम् ।
तथा गुल्मज्वरश्वासक्रिमिपाण्डुत्वकामलाः ॥ ३२॥

रुहेड़ेकी छाल ११ सेर तथा बेर १ सेर ९ छ० ३ तो० का काथ बनाना चाहिये । इस काथमें पञ्चकोल प्रत्येक १ पल, रुहेड़ेकी छाल ५ पलका कल्क मिलाकर घी १ (द्रवद्वैण्यात् १२८ तोला) मिलाकर सिद्ध करना चाहिये । यह घी प्लीहाको शीघ्र नष्ट करता तथा गुल्म, ज्वर, श्वास, क्रिमि, पाण्डु और कामलाको भी शान्त करता है ॥ ३०-३२ ॥

महारोहीतकं घृतम् ।

रोहीतकात्पलशतं क्षोदयेद्बदराढकम् ।
साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥ ३३ ॥
घृतप्रस्थं समावाप्य छागक्षीरचतुर्गुणम् ।
तस्मिन्दद्यादिमान्कल्कान्सर्वांस्तानक्षसम्मितान् ३४
व्योषं फलत्रिकं हिङ्गु यमानीं तुम्बुरुं बिडम् ।
अजाजीं कृष्णलवणं दाडिमं देवदारु च ॥ ३५ ॥
पुनर्नवां विशालां च यवक्षारं सपौष्करम् ।
विडङ्गं चित्रकं चैव हपुषां चविकां वचाम् ॥३६ ॥
एतैर्घृतं विपक्वं तु स्थापयेद्भाजने दृढे ।
पाययेत्त्रिपलां मात्रां व्याधिं बलमपेक्ष्य च ॥३७ ॥
रसेकेनाथ यूषेण पयसा वापि भोजयेत् ।
उपयुक्तं घृतञ्चैतद्व्याधीन्हन्यादिमान्बहून् ॥ ३८ ॥
यकृत्प्लीहोदरं चैव प्लीहशूलं यकृत्तथा ।
कुक्षिशूलं च हृच्छूलं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ४९ ॥
विबन्धशूलं शमयेत्पाण्डुरोगं सकामलम् ।
छर्द्यतीसारशमनं तन्द्राज्वरविनाशनम् ।
महारोहितकं नाम प्लीहघ्नं तु विशेषतः ॥ ४० ॥

रोहीतककी छाल ५ सेर, बेरकी ३ सेर १६ तोला सब २ द्रोण (द्रवद्वैगुण्यात् ४ द्रोण) जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर घृत १ प्रस्थ, बकरीका दूध ४ प्रस्थ तथा त्रिकटु, त्रिफला, हींग, अजवायन, तुम्बुरु, बिड़नमक, जीरा, कालानमक, अनारदाना, देवदारु, पुनर्नवा, इन्द्रायण, जवाखार, पोहकर मूल, वायविड़ङ्ग, चीतकी जड़, हाऊबेर, चव्य, बच प्रत्येक १ तोलाका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये । इसकी मात्रा व्याधि, बल आदिका निश्चयकर ३ पल तक देनी चाहिये । मांस रस, यूप अथवा दूधके साथ भोजन करना चाहिये । यह घृत अनेक रोगोंको नष्ट करता है । यथा यकृत्, प्लीहा, उदर, प्लीहशूल, यकृच्छूल पेटके दर्द, हृदयके दर्द, पसलियोंके दर्द, अरुचि, मलकी रुकावट, पाण्डुरोग, कामला, वमन, अतीसार, तथा तन्द्रायुक्त ज्वरको नष्ट करता है । विशेषकर प्लीहाको नष्ट करता है ॥ ३३-४० ॥

इति प्लीहाधिकारः समाप्तः ।

अथ शोथाधिकारः ।

वातशोथचिकित्सा ।

शुण्ठीपुनर्नवैरण्डपञ्चमूलशृतं जलम् ।
वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे ।
दशमूलं सर्वथा च शस्तं वाते विशेषतः ॥ १ ॥

सोंठ, पुनर्नवा, एरण्डकी छाल तथा पञ्चमूलसे सिद्ध जल वातजन्य शोथमें पीने तथा आहार बनानेके लिये हितकर है । तथा दशमूल सभी शोथोंमें हितकर है, वातमें विशेष हितकर है * ॥ १ ॥

पित्तजशोथचिकित्सा ।

क्षीराशनः पित्तकृतेऽथ शोथे
त्रिवृद्गुडूचीत्रिफलाकषायम् ।
पिबेद्गवां मूत्रविमिश्रितं वा
फलत्रिकाच्चूर्णमथाक्षमात्रम् ॥ २ ॥

---

* पृश्निपर्ण्यादिकषायः " पृश्निपर्णीघनोदीच्यशुण्ठीसिद्धं तु पैत्तिके । " पैत्तिकशोथमें पिठवन, मोथा, सुगन्धवाला तथा सोंठ इन औषधियोंसे सिद्ध काथका सेवन करना चाहिये । (यहांपर यह कषाय कई प्रतियोंमें पाया जाता है, कईमें नहीं । अतः टिप्पणीरूपमें लिखा गया है)

अभया दारु मधुकं तिक्ता दन्ती सपिप्पली ।
पटोलं चन्दनं दार्वी त्रायमाणेन्द्रवारुणी ॥ ३ ॥
एषां क्वाथः ससर्पिष्कः श्वयथुज्वरदाहहा ।
विसर्पतृष्णासन्तापसन्निपातविषापहा ।
शीतवीर्यैर्हिमजलैरभ्यङ्गादींश्च कारयेत् ॥ ४ ॥

पित्त प्रधान शोथमें दूध पीता हुआ निसोथ, गुर्च और त्रिफलाका क्वाथ पीवे। अथवा १ तोला त्रिफलाका चूर्ण गोमूत्रमें मिलाकर पीवे। इसी प्रकार बड़ी हर्रका छिल्का, देवदारु, मोरेठी, कुटकी, दन्ती, छोटी पीपल, परवलकी पत्ती, चन्दन, दारुहल्दी, त्रायमाण, व इन्द्रायणके क्वाथमें घी मिलाकर पीनेसे सूजन, ज्वर, दाह, विसर्प, तृष्णा, जलन, सन्निपात और विषदोष नष्ट होते हैं। तथा शीत वीर्य स्नेह तथा ठण्ढे जलसे मालिश सिञ्चन व अवगाहनादि कराना चाहिये ॥ २-४ ॥

कफजशोथचिकित्सा ।

पुनर्नवाविश्वत्रिवृद्गुडूची-
सम्पाकपथ्यामरदारुकल्कम् ।
शोथे कफोत्थे महिषाक्षयुक्तं
मूत्रे पिबेद्वा सलिलं तथैषाम् ॥ ५ ॥
कफे तु कृष्णासिकतापुराण-
पिण्याकशिग्रुत्वगुमाप्रलेपः ।
कुलत्थशुण्ठीजलमूत्रसेक-
श्चण्डागुरुभ्यामनुलेपनं च ॥ ६ ॥

कफजन्य शोथमें पुनर्नवा, सोंठ, निसोथ, गुर्च, अमलतासका गूदा, हर्र, तथा देवदारुका कल्क, गुग्गुलु व गोमूत्र मिलाकर पीवे। अथवा इन्हींका क्वाथ बनाकर पीवे। तथा छोटी पीपल, बालू, पुराना पीनाक (तिलकी खली) सहिंजनकी छाल और अलसीका लेप करना चाहिये। तथा कुलथी और सोंठका जल बना गोमूत्र मिलाकर सेक करना चाहिये। तथा अजमोद और अगरका लेप करना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

सन्निपातजशोथचिकित्सा ।

अजाजिपाठाघनपञ्चकोल-
व्याघ्रीरजन्यः सुखतोयपीताः ।
शोथं त्रिदोषं चिरजं प्रवृद्धं
निघ्नन्ति भूनिम्बमहौषधे च ॥ ७ ॥

जीरा, पाढ़, नागरमोथा, पञ्चकोल, छोटी कटेरी, तथा हल्दी सब समान भाग ले चूर्णकर गरम गरम जलके साथ पीनेसे त्रिदोषज बड़े पुराने शोथ नष्ट होते हैं। इसी प्रकार चिरायता और सोंठके चूर्णको गरम गरम जलके साथ पीनेसे पुराने शोथ नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

पुनर्नवाष्टकः क्वाथः ।

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठी
तिक्तामृतादार्व्यभयाकषायः ।
सर्वाङ्गशोथोदरकासशूल-
श्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ८ ॥

पुनर्नवा, नीमकी छाल, परवलकी पत्ती, सोंठ, कुटकी, गुर्च, देवदारु तथा बड़ी हर्रका छिल्का इनका क्वाथ सर्वाङ्गशोथ, उदर, कास, शूल और श्वासयुक्त पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥८॥

विविधा योगाः ।

आर्द्रकस्य रसः पीतः पुराणगुडमिश्रितः ।
अजाक्षीराशिनां शीघ्रं सर्वशोथहरो भवेत् ॥ ९ ॥
पुनर्नवादारुशुण्ठीक्वाथे मूत्रे च केवले ।
दशमूलरसे वापि गुग्गुलुः शोथनाशनः ॥ १० ॥
बिल्वपत्ररसं पूतं सोषणं श्वयथौ त्रिजे ।
विट्सङ्गे चैव दुर्नाम्नि विदध्यात् कामलास्वपि ॥ ११ ॥
गुडपिप्पलिशुण्ठीनां चूर्णं श्वयथुनाशनम् ।
आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं बस्तिशोधनम् ॥ १२ ॥
पुरो मूत्रेण सेव्येत पिप्पली वा पयोऽन्विता ।
गुडेन वाभया तुल्या विश्वं वा शोथरोगिणाम् ॥ १३ ॥

बकरीके दूधका सेवन करते हुए पुराना गुड़ मिलाकर अदरखका रस पीनेसे शीघ्र ही समस्त शोथ नष्ट होते हैं। इसी प्रकार पुनर्नवा, देवदारु और सोंठके क्वाथमें अथवा केवल गोमूत्रमें अथवा दशमूलके क्वाथमें गुग्गुलु मिलाकर पीनेसे शोथ नष्ट होता है। इसी प्रकार बेलके पत्तोंका रस छानकर कालीमिर्चके चूर्णके साथ पीनेसे सान्निपातज शोथ, मलकी रुकावट, अर्श तथा कामलारोग नष्ट होते हैं। इसी प्रकार गुड़, पिप्पली व सोंठका चूर्ण सूजन, आमाजीर्ण व शूलको नष्ट करता तथा बस्तिको शुद्ध करता है। अथवा गोमूत्रके साथ गुग्गुलु अथवा छोटी पीपल दूधके साथ अथवा गुड़के साथ बड़ी हर्रका छिल्का अथवा सोंठका प्रयोग शोथवालोंको करना चाहिये ॥ ९-१३ ॥

गुडयोगाः ।

गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा
गुडाभयं वा गुडपिप्पलीं वा ।
कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं
खादेन्नरः पक्षमथापि मासम् ॥ १४ ॥
शोथप्रतिश्यायगलास्यरोगान्
सश्वासकासारुचिपीनसांश्च ।

जीर्णज्वरार्शोग्रहणीविकारान्
हन्यात्तथान्यान्कफवातरोगान् ॥ १५ ॥

गुड़ अदरख, अथवा गुड़ सोंठ, अथवा गुड़ हर्र, अथवा गुड़ पिप्पली प्रतिदिन १ कर्ष (तोला) बढ़ाते हुए १ तोलासे १२ तोलातक खाना चाहिये। फिर ऐसे ही १ तोलाकी मात्रातक क्रमशः कम कर फिर बढ़ाना चाहिये, इस प्रकार एक पक्ष अथवा १ मासतक खाना चाहिये। यह शोथ, प्रतिश्याय, गले तथा मुखके रोग, श्वास, कास, अरुचि और पीनस, जीर्णज्वर, अर्श, ग्रहणी तथा अन्य कफवातज रोगोंको नष्ट करता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अन्ये योगाः।

स्थलपद्ममयं कल्कं पयसालोड्य पाययेत्।
प्लीहामयहरं चैव सर्वाङ्गैकाङ्गशोथजित् ॥ १६ ॥
दारुगुग्गुलुशुण्ठीनां कल्को मूत्रेण शोथजित्।
वर्षाभूशृङ्गवेराभ्यां कल्को वा सर्वशोथजित् ॥१७॥
सिंहास्यामृतभण्टाकीक्वाथं कृत्वा समाक्षिकम्।
पीत्वा शोथं जयेज्जन्तुः श्वासं कासं वमिं ज्वरम् ॥१८
भूनिम्बविश्वकल्कं जग्ध्वा पेयः पुनर्नवाक्वाथः।
अपहरति नियतमाशु शोथं सर्वाङ्गगं नृणाम् ॥१९॥
शोथनुत्कोकिलाक्षस्य भस्म मूत्रेण वाम्भसा।
क्षीरं शोथहरं दारुवर्षाभूनागरैः शृतम् ॥ २० ॥
पेयं वा चित्रकव्योषत्रिवृद्दारुप्रसाधितम्।

स्थलकमलके कल्कको दूधमें मिलाकर पीनेसे प्लीहा तथा सर्वाङ्गगत व एकाङ्गगत शोथ नष्ट होते हैं। (स्थल पद्म कई प्रकारके होते हैं। यथा—"एतानि स्थलपद्मानि सेवन्ती गुलदावदी। नैपाली च गुलाबश्च बकुलश्च कदम्बकः ॥ वैद्यकशब्द सिन्धुः) ऐसे ही देवदारु, गुग्गुलु व सोंठका कल्क गोमूत्रके साथ शोथको नष्ट करता है। अथवा पुनर्नवा और सोंठका कल्क समस्त शोथोंको नष्ट करता है। ऐसे ही वासा, गुर्च, बड़ी कटेरीका क्वाथ शहद मिलाकर पीनेसे शोथ, श्वास, कास तथा ज्वर नष्ट होते हैं। ऐसे ही चिरायता और सोंठका कल्क खाकर पुनर्नवाका क्वाथ पीनेसे निःसंदेह समस्त शरीरगत शोथ नष्ट होता है। इसी प्रकार तालमखानेकी भस्म गोमूत्र अथवा जलके साथ पीनेसे शोथ नष्ट होते हैं। अथवा देवदारु, पुनर्नवा और सोंठसे सिद्ध दूध अथवा चीतेकी जड़, त्रिकटु, निसोथ और देवदारु इनसे सिद्ध दूधको पीना चाहिये १६–२०

पुनर्नवादिरसादयः।

पुनर्नवामूलकपित्थदारु-
छिन्नोद्भवाचित्रकमूलसिद्धाः।
रसा यवाग्वश्च पयांसि यूषाः
शोथे प्रदेया दशमूलगर्भाः ॥ २१ ॥

पुनर्नवाकी जड़, कैथा, देवदारु, गुर्च, चीतेकी जड़ तथा दशमूलके जलसे सिद्ध मांसरस, यवागू, दूध तथा यूष शोथमें देने चाहियें ॥ २१ ॥

क्षारगुटिका।

क्षारद्वयं स्याल्लवणानि चत्वा-
र्ययोरजो व्योषफलात्रिके च।
सपिप्पलीमूलविडङ्गसारं
मुस्ताजमोदामरदारुबिल्वम् ॥ २२ ॥
कलिङ्गकश्चित्रकमूलपाठे
यष्ट्याह्वयं सातिविषं पलाशम्।
सहिंगु कर्षं त्वथ शुष्कचूर्णं
द्रोणं तथा मूलकशुण्ठकानाम् ॥ २३ ॥
स्याद्भस्मनस्तत्सलिलेन साध्य-
मालोड्य यावद्घनमप्यदग्धम्।
स्यान्नं ततः कोलसमां च मात्रां
कृत्वा सुशुष्कां विधिना प्रयुञ्ज्यात् ॥ २३॥
प्लीहोदरश्वित्रहलीमकार्शः-
पाण्ड्वामयारोचकशोथशोषान्।
विषूचिकागुल्मगराश्मरीश्च
सश्वासकासान्प्रणुदेत्सकुष्ठान् ॥ २५ ॥
सौवर्चलं सैन्धवं च विडमौद्भिदमेव च।
चतुर्लवणमत्र स्याज्जलमष्टगुणं भवेत् ॥ २६ ॥

जवाखार, सज्जीखार, सौवर्चल, सेंधा, विड़ तथा खारी नमक, लौह भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, पिपरामूल, बायविडंग, नागरमोथा, अजमोद, देवदारु, बेलका गूदा, इन्द्रयव, चीतकी जड़, पाढ़, मौरेठी, अतीस, ढाकके बीज तथा भुनी हींग प्रत्येक १ कर्षका चूर्ण तथा मूलीके टुकड़ोंकी भस्म १२ सेर ६४ तोला छः गुने जलमें मिला (७ वार छान) कर पकाना चाहिये। फिर गोली बनानेके योग्य गाढ़ा हो जानेपर ६ माशेकी मात्रासे गोली बना सुखाकर विधिपूर्वक सेवन करना चाहिये। इससे प्लीहा, उदर, श्वेतकुष्ठ, हलीमक, अर्श, पाण्डुरोग, अरोचक, शोथ, शोष, विषूचिका, गुल्म, गरविष, पथरी, श्वास, कास तथा कुष्ठ भी नष्ट होते हैं ॥ २२–२६ ॥

पुनर्नवाद्यं घृतम्।

पुनर्नवाचित्रकदेवदारु-
पञ्चोपणक्षारहरीतकीनाम्।
कल्केन पक्वं दशमूलतोये
घृतोत्तमं शोथनिपूदनं च ॥ २७ ॥

पुनर्नवा, चीतकी जड़, देवदारु, पञ्चकट्ठ, जवाखार और हर्रके कल्क और दशमूलके क्वाथसे सिद्ध घृत शोथको नष्ट करता है ॥ २७ ॥

पुनर्नवाशुण्ठीदशमूलघृते

पुनर्नवाक्वाथकल्कसिद्धं शोथहरं घृतम् ।
विश्वौषधस्य कल्केन दशमूलजले शृतम् ।
घृतं निहन्याच्छ्वयथुं ग्रहणीं पाण्डुतामयम् ॥२८॥

पुनर्नवाके क्वाथ व कल्कसे सिद्ध घृत शोथको नष्ट करता है । इसी प्रकार सोंठका कल्क और दशमूलका क्वाथ मिलाकर सिद्ध घृत सूजन, ग्रहणी तथा पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥ २८ ॥

चित्रकाद्यं घृतम् ।

सचित्रका धान्ययमानिपाठाः
सदीप्यकत्र्यूपणवेतसाम्लाः ।
बिल्वात्फलं दाडिमयावशूकं
सपिप्पलीमूलमथापि चव्यम् ॥ २९ ॥
पिष्ट्वाक्षमात्राणि जलाढकेन
पक्त्वा घृतप्रस्थमथोपयुञ्ज्यात् ।
अर्शांसि गुल्माञ्छ्वयथुं च कृच्छ्रं
निहन्ति वह्निं च करोति दीप्तम् ॥३०॥

चीतकी जड़, धनियां, अजवायन, पाढ़, अजमोद, त्रिकटु, अम्लवेत, बेलका गूदा, अनारदाना, यवाखार, पिपरामूल तथा चव्य, प्रत्येक १ तोलेका कल्क घी ६४ तोला तथा जल २ सेर १६ तो० मिलाकर पकाना चाहिये । यह घी अर्श, गुल्म, शोथ व मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करता तथा अग्निको दीप्त करता है ॥ २९-३० ॥

पञ्चकोलादिघृतम् ।

रसे विपाचयेत्सर्पिः पञ्चकोलकुलत्थयोः ।
पुनर्नवायाः कल्केन घृतं शोथविनाशनम् ॥ ३१ ॥

पञ्चकोल और कुलथीके क्वाथ तथा पुनर्नवाके कल्कसे सिद्ध घृत शोथको नष्ट करता है ॥ ३१ ॥

चित्रकघृतम् ।

क्षीरं घटे चित्रककल्कलिप्ते
दध्यागतं साधु विमथ्य तेन ।
तज्जं घृतं चित्रकमूलकल्कं
तक्रेण सिद्धं श्वयथुघ्नमग्र्यम् ॥ ३२ ॥
अर्शोऽतिसारानिलगुल्ममेहां-
स्त्वद्धन्ति संवर्धयतेऽनलं च ॥ ३३ ॥

चीतके कल्कसे लिप्त घड़ेमें दूध जमाकर दही हो जानेपर मथकर निकाला गया घृत और चीतकी जड़का कल्क तथा मट्ठा मिलाकर सिद्ध करना चाहिये । यह घृत सूजनको तथा अर्श, अतिसार, वातगुल्म और प्रमेहको नष्ट करता और अग्निदीप्त करता है ॥ ३२-३३ ॥

माणकघृतम् ।

माणकक्वाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषं च व्यपोहति ॥ ३४ ॥

माणकके क्वाथ व कल्कसे सिद्ध किया गया घृत समस्त शोथोंको नष्ट करता है ॥ ३४ ॥

स्थलपद्मघृतम् ।

स्थलपद्मपलान्यष्टौ त्र्यूषणस्य चतुःपलम् ।
घृतप्रस्थं पचेदेभिः क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
पञ्च कासान्हरेच्छीघ्रं शोथं चैव सुदुस्तरम् ॥३५॥

स्थलपद्म ३२ तोला, त्रिकटु मिलित ४ पल (१६ तोला) घी १ प्रस्थ (द्रवद्वैगुण्यकर १॥ से० ८ तो०) तथा घीसे चतुर्गुण दूध मिलाकर सिद्ध किये गये घृतका सेवन करनेसे पांचों कास तथा दुस्तर शोथ नष्ट होते हैं ॥ ३५ ॥

शैलेयाद्यं तैलं प्रदेहो वा ।

शैलेयकुष्ठागुरुदारुकौन्ती-
त्वक्पद्मकैलांबुपलाशमुस्तैः ।
प्रियंगुथौणेयकहेममांसी-
तालीसपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥ ३६ ॥
श्रीवेष्टकध्यामकपिप्पलीभिः
पृक्कानखैर्वापि यथोपलाभम् ।
वातान्वितेऽभ्यङ्गमुशन्ति तैलं
सिद्धं सुपिष्टैरपि च प्रदेहम् ॥ ३७ ॥

छरीला, कूट, अगर, देवदारु, सम्भालूके बीज, दालचीनी, पद्माख, इलायची, सुगन्धवाला, ढाकके फूल, मोथा, प्रियङ्गु, मालतीके फूल, नागकेशर, जटामांसी, तालीशपत्र, केवटी मोथा, तेजपात, धनियां, गन्धा विरोजा, रोहिष घास, छोटी पीपल, गठेउना तथा नख इनमेंसे जितने द्रव्य मिल सकें, उनसे सिद्ध तैलकी मालिश करनी चाहिये । तथा इन्हींको पीसकर लेप करना चाहिये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

शुष्कमूलाद्यं तैलम् ।

शुष्कमूलकवर्षाभूदारुरास्नामहौषधैः ।
पक्वमभ्यञ्जनात्तैलं सशूलं श्वयथुं जयेत् ॥ ३८ ॥

सूखी मूली, पुनर्नवा, देवदारु, रासन, तथा सोंठके कल्कसे सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे शूलयुक्त शोथ नष्ट होता है ॥३८॥

पुनर्नवावलेहः ।

पुनर्नवामृतादारुदशमूलरसाढके ।
आर्द्रकस्वरसप्रस्थे गुडस्य तु तुलां पचेत् ॥ ३९
तत्सिद्धं व्योपचव्यैलात्वक्पत्रैः कार्षिकैः पृथक् ।
चूर्णीकृतैः क्षिपेच्छीते मधुनः कुडवं लिहेत् ॥४०॥
लेहः पौनर्नवो नाम शोथशूलनिपूदनः ।
श्वासकासाऽरुचिहरो बलवर्णाग्निवर्धनः ॥ ४१ ॥

पुनर्नवा, गुर्च, देवदारु व दशमूलके एक आढक क्वाथ अदरखके १ प्रस्थरसमें गुड़ ५ सेर मिलाकर पकाना चाहिये । लेह तैयार होजानेपर त्रिकटु, चव्य, इलायची, दालचीनी और तेजपातका चूर्ण प्रत्येक १ तोला छोड़ना चाहिये । तथा उतारकर ठण्ढा हो जानेपर शहद १६ तोले छोड़ना चाहिये । यह "पुनर्नवावलेह" शोथ, शूल, श्वास, अरुचिको नष्ट करता तथा बल, वर्ण व अग्निको बढ़ाता है ॥ ३९-४१ ॥

दशमूलहरीतकी ।

दशमूलकषायस्य कंसे पथ्याशतं पचेत् ।
तुलां गुडाद् घने दद्याद्व्योपक्षारं चतुःपलम् ॥४२॥
त्रिसुगन्धं सुवर्णांशं प्रस्थार्धं मधुनो हिमे ।
दशमूलीहरीतक्यः शोथान्हन्युः सुदारुणान् ॥४३॥
ज्वरारोचकगुल्मार्शोमेहपाण्डूदरामयान् ।
प्रत्येकमेककर्षांशं त्रिसुगन्धमितो भवेत् ॥ ४४ ॥
कंसहरीतकी चैषा चरके पठ्यतेऽन्यथा ।
एतन्मानेन तुल्यत्वं तेन तत्रापि वर्ण्यते ॥ ४५ ॥

दशमूलके एक आढक क्वाथमें १०० हर्रं तथा गुड़ ५ सेर छोड़कर पकाना चाहिये । गाढ़ा हो जानेपर त्रिकटु तथा जवाखारका मिलित चूर्ण १६ तो० दालचीनी, तेजपात, इलायची प्रत्येक १ तो० छोड़ना चाहिये । तथा ठण्ढा हो जाने पर मधु ३२ तो० छोड़ना चाहिये । यह "दशमूल हरीतकी" कठिन शोथोंको नष्ट करती तथा ज्वर, अरोचक, गुल्म, अर्श, प्रमेह, पाण्डु और उदररोगोंको नष्ट करती है । इसीको चरकमें "कंस हरीतकी" के नामसे लिखा है । वहां भी ऐसा ही मान है । (इसमें १०० हर्रें प्रथम क्वाथ बनाते ही छोड़ देनी चाहियें, क्वाथ हो जानेपर हर्रोंको भी निकाल लेना चाहिये और इन्हीं हर्रोंको क्वाथके साथ पुनः पकाना चाहिये) ४२-४५

कंसहरीतकी ।

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये
कंसेऽभयानां च शतं गुडाच्च ।
लेहे सुसिद्धे च विनीय चूर्णं
व्योपत्रिसौगन्ध्यमुपस्थिते च ॥ ४६ ॥
प्रस्थार्धमात्रं मधुनः सुशीते
किंचिच्च चूर्णादपि यावशूकात् ।
एकाभयां प्राश्य ततश्च लेहा-
च्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम् ॥ ४७ ॥
कासज्वरारोचकमेहगुल्मान्
प्लीहत्रिदोषोद्भवपाण्डुरोगान् ।
कार्श्यामवातासृगम्लपित्तं
वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ ४८ ॥
अत्र व्याख्यान्तरं नोक्तं
व्याख्या पूर्वैव यच्छुभा ॥ ४९ ॥

यह तथा पूर्वोक्त दशमूल हरीतकी दोनों एक ही हैं, अतः विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं । इसकी एक हर्रं खाकर २ तो० अवलेह चाटना चाहिये । यह सूजन, कास, ज्वर, अरोचक, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, त्रिदोषज, पांडुरोग, दुर्बलता, आमवात, रक्तदोष, अम्लपित्त, वैवर्ण्य तथा मूत्रवायु और वीर्यदोषोंको नष्ट करता है ॥ ४६-४९ ॥

अरुष्करशोथचिकित्सा ।

लेपोऽरुष्करशोथं निहन्ति तिलदुग्धनवनीतैः ।
तत्तरुतलमृद्भिर्वा शालदलैर्वा तु न चिरेण ॥ ५० ॥

भिलावांकी सूजनको तिल, दूध तथा मक्खनका लेप अथवा भिलावेके वृक्षके नीचेकी मट्टीका लेप अथवा शालके पत्तोंका लेप नष्ट करता है ॥ ५० ॥

विषजशोथचिकित्सा ।

शोथे विषनिमित्ते तु विषोक्ता संमता क्रिया ॥५१॥
विषजशोथमें विषोक्त चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५१ ॥

शोथे वर्ज्यानि ।

ग्राम्यानूपं पिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं
गौडं पैष्टं दधि सकृशरं विज्जलं मद्यमम्लम् ।
शुष्कं मांसं समशनमथो गुर्वसात्म्यं विदाहि
स्वप्नं चाहि श्वयथुगदवान्वर्जयेन्मैथुनं च ॥ ५२ ॥

ग्राम्य तथा आनूप प्राणियोंके मांस, नमक, सूखे शाक, नवीन अन्न, गुड़ तथा पिट्ठिका मद्य, दही, खिचड़ी, विज्जल (दहीभेद) मद्य, खट्टे पदार्थ, सूखे मांस, गुरु, असात्म्य तथा विदाही पदार्थोंका सेवन, दिनमें सोना तथा मैथुन शोथवालेको त्याग देना चाहिये ॥ ५२ ॥

इति शोथाधिकारः समाप्तः ।

अथ वृद्ध्यधिकारः।

वातवृद्धिचिकित्सा।

गुग्गुलुं रुवुतैलं वा गोमूत्रेण पिबेन्नरः।
वातवृद्धिं निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १ ॥
सक्षीरं वा पिबेत्तैलं मासमेरण्डसम्भवम्।
पुनर्नवायास्तैलं वा तैलं नारायणं तथा ॥ २ ॥
पाने बस्तौ रुवोस्तैलं पेयं वा दशकाम्भसा।

मनुष्य गुग्गुलु अथवा एरण्डतैलको गोमूत्रके साथ पीवे, इससे पुरानी वातवृद्धि नष्ट होती है। अथवा दूधके साथ एक मासतक एरण्डतैल अथवा पुनर्नवातैल अथवा नारायण तैल पीवे। अथवा दशमूलके क्वाथके साथ एरण्डतैलको पीवे और बस्तिका प्रयोग करे ॥ १ ॥ २ ॥

पित्तरक्तवृद्धिचिकित्सा।

चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम् ॥ ३ ॥
क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्याद्दाहशोथरुजापहः।
पञ्चवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम् ॥ ४ ॥
सर्वं पित्तहरं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम्।

चन्दन, मौरेठी, खश, कमलके फूल तथा नीलोफरको दूधमें पीसकर लेप करनेसे दाह, शोथ और पीड़ा नष्ट होती है। अथवा पञ्चवल्कलके कल्कको घीके साथ लेप करना चाहिये। तथा रक्तजवृद्धिमें समस्त पित्तनाशक चिकित्सा तथा रक्तमोक्षण करना चाहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

श्लेष्ममेदोमूत्रजवृद्धिचिकित्सा।

श्लेष्मवृद्धिं तूष्णवीर्यैर्मूत्रपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ५ ॥
पीतदारुकषायं च पिबेन्मूत्रेण संयुतम्।
स्विन्नं मेदः समुत्थं तु लेपयेत्सुरसादिना ॥ ६ ॥
शिरोविरेकद्रव्यैर्वा सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः।
संस्वेद्य मूत्रप्रभवां वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥ ७ ॥

श्लेष्मवृद्धिमें पीसे हुए उष्णवीर्य पदार्थोंसे लेप करना चाहिये। तथा दारुहल्दीका क्वाथ गोमूत्र मिलाकर पीना चाहिये। मेदोज वृद्धिका स्वेदन कर सुरसादिगणकी ओषधियोंका लेप करना चाहिये। मूत्रजवृद्धिमें शिरोविरेचन द्रव्यों (कैफरा नकछिकनी आदि) को मूत्रमें पीस गरम गरम लेप कर कपड़ेसे बांध देना चाहिये ॥ ५-७ ॥

शिराव्यधदाहविधिः।

सीवन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद् व्रीहिमुखेन वै।
शङ्खोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा सीवनिमादहेत् ॥ ८ ॥
व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्तये।
अंगुष्ठमध्ये त्वक् छित्त्वा दहेदङ्गविपर्यये ॥ ९ ॥

अण्डकोषोंके नीचे सीवनीके बगलमें व्रीहिमुखशस्त्रसे शिराव्यध करना चाहिये। तथा शंखके ऊपर कर्णके समीप सीवनको छोड़कर दाह करना चाहिये। अन्त्रवृद्धि दूर करनेके लिये जिस जिस अण्डमें वृद्धि है, उसके दूसरी ओरके अँगूठेमें शिराव्यध करना चाहिये। अथवा चर्म काटकर दूसरी ही ओर जला देना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

रास्नादिकाथः।

रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलागोक्षुरसाधितः।
काथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याशु रुवुतैलेन मिश्रितः ॥ १० ॥

रासन, मौरेठी, गुर्च, एरण्डकी छाल, खरेटी तथा गोखरूसे सिद्ध क्वाथ एरण्डतैलके साथ अन्त्रवृद्धिको शीघ्रही नष्ट करता है ॥ १० ॥

बलाक्षीरम्।

तैलमेरण्डजं पीत्वा बलासिद्धपयोऽन्वितम्।
आध्मानशूलोपचितामन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥ ११ ॥

खरेटीके सिद्ध दूधके साथ एरण्डका तैल पीनेसे पेटकी गुडगुडाहट तथा शूलयुक्त अन्त्रवृद्धि नष्ट होती है ॥ ११ ॥

हरीतकीयोगौ।

हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैलां लवणान्विताम्।
प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातामयापहाम् ॥ १२ ॥
गोमूत्रसिद्धां रुवुतैलभृष्टां
हरीतकीं सैन्धवसंप्रयुक्ताम्।
खादेन्नरः कोष्णजलानुपानां
निहन्ति वृद्धिं चिरजां प्रवृद्धाम् ॥ १३ ॥

(१) हर्रको मूत्रमें पकाय एरण्ड तैल तथा नमक मिलाकर प्रतिदिन प्रातः सेवन करनेसे कफवातजवृद्धि नष्ट होती है। ऐसे ही (२) गोमूत्रमें पके एरण्डतैलमें भून सेंधानमक मिलाकर गरम जलके साथ खानेसे पुरानी बढ़ी हुई अण्डवृद्धि नष्ट होती है ॥ १२ ॥ १३ ॥

त्रिफलाकाथः।

त्रिफलाकाथगोमूत्रं पिबेत्प्रातरतन्द्रितः।
कफवातोद्भवं हन्ति श्वयथुं वृषणोत्थितम् ॥ १४ ॥

त्रिफलाकाथ व गोमूत्र प्रतिदिन प्रातःकाल पीनेसे कफवातज अण्डकोषोंका शोथ नष्ट होता है ॥ १४ ॥

सरलादिचूर्णम्।

सरलागुरुकुष्ठानि देवदारुमहौषधम्।
मूत्रारनालसंयुक्तं शोथघ्नं कफवातनुत् ॥ १५ ॥

सरलधूप, अगर, कूठ, देवदारु तथा सोंठका चूर्ण गोमूत्र और काञ्जी मिलाकर पीनेसे सूजनको नष्ट तथा कफवातको दूर करता है ॥ १५ ॥

पथ्यायोगः ।

भृष्टो रुबुकतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः ।
कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वृद्धिरोगहरः परः ॥ १६ ॥

छोटी हर्रका कल्क एरण्डतैलमें भून छोटी पीपल व सेंधानमक मिलाकर सेवन करनेसे वृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ १६ ॥

आदित्यपाकघृतम् ।

गव्यं घृतं सैन्धवसंप्रयुक्तं
शम्बूकभांडे निहितं प्रयत्नात् ।
सप्ताहमादित्यकरैर्विपक्वं
निहन्ति कुरंडमतिप्रवृद्धम् ॥ १७ ॥

गायका घी व सेंधानमक एकमें मिला घोंघों (क्षुद्र शंखों) में रखकर ७ दिनतक सूर्यके तापमें पकाकर मालिश करने तथा खानेसे अण्डवृद्धि नष्ट होती है ॥ १७ ॥

ऐन्द्रीचूर्णम् ।

ऐन्द्रीमूलभवं चूर्णं रुबुतैलेन मर्दितम् ।
त्र्यहाद्गोपयसा पीतं सर्ववृद्धिनिवारणम् ॥ १८ ॥

इन्द्रायणकी जड़के चूर्णको एरण्डतैलके साथ घोटकर ३ दिन गोदुग्धके साथ पीनेसे हर प्रकारका वृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ १८ ॥

रुद्रजटालेपः ।

रुद्रजटामूललिप्ता करटव्यङ्कचर्मणा ।
बद्धा वृद्धिः शमं याति चिरजापि न संशयः ॥१९॥

ईश्वरी (रुद्रजटा) की जड़को पीस लेप कर ऊपरसे वृक्षमूषिका (गिलहरी) के चमड़ेको बान्धनेसे पुरानी भी अण्डवृद्धि शांत हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ १९ ॥

अन्ये लेपाः ।

निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम् ।
लेपो वृद्ध्यामयं हन्ति बद्धमूलमपि दृढम् ॥ २० ॥
वचासर्षपकल्केन प्रलेपो वृद्धिनाशनः ।
लज्जागृध्रमलाभ्यां च लेपो वृद्धिहरः परः ॥ २१ ॥

काञ्जीके साथ पिसी हुई सफेद आककी जड़की छालका लेप पुरानी अण्डवृद्धिको नष्ट करता है । तथा वच व सरसोंके कल्कका लेप वृद्धिको नष्ट करता है । इसी प्रकार सफेद लज्जावंती व गृध्रके मलको लेप करनेसे अण्डवृद्धि नष्ट करती है ॥ २०-२१ ॥

बिल्वमूलादिचूर्णम् ।

मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेर्बृहत्योर्द्वयोः
श्यामापूतिकरञ्जशिग्रुकतरोर्विश्वौषधारुष्करम् ।
कृष्णाग्रन्थिकचव्यपञ्चलवणक्षाराजमोदान्वितं
पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितं चूर्णीकृतं ब्रध्ननुत् २२

बेल, कैथा, सोनापाठा, चीत, छोटी बड़ी कटेरी, निसोथ काला, पूतिकरञ्ज और सहिंजन प्रत्येककी जड़की छाल, सोंठ, भिलावां, छोटी पीपल, पिपरामूल, चव्य, पांचों नमक, क्षार और अजमोदका चूर्ण कर काञ्जी और गरम जलमें मिला पीनेसे ब्रध्नरोग (बद) नष्ट होता है ॥ २२ ॥

ब्रध्नरोगस्य विशिष्टचिकित्सा ।

अविक्षीरेण गोधूमकल्कं कुन्दुरुकस्य वा ।
प्रलेपनं सुखोष्णं स्याद् ब्रध्नशूलहरं परम् ॥ २३ ॥
मृतमात्रे तु वै काके विशस्ते संप्रवेशयेत् ।
ब्रध्नं मुहूर्तं मेधावी तत्क्षणादरुजं भवेत् ॥ २४ ॥
अजाजी हपुषा कुष्ठं गोधूमं बदराणि च ।
काञ्जिकेन समं पिष्ट्वा कुर्याद् ब्रध्नप्रलेपनम् ॥२५॥

भेड़के दूधके साथ गेहूँके कल्क अथवा गन्धाविरोजेके कल्कका कुछ गरम गरम लेप करनेसे बदरोग नष्ट होता है । तथा मरे हुए काकको चीरकर बदके ऊपर थोड़ी देर लगा देनेसे ही यह रोग नष्ट हो जाता है । अथवा जीरा, हाऊबेर, कूठ गेहूँ और बेरको काञ्जीके साथ पीसकर बदके ऊपर लेप करना चाहिये ॥ २३-२५ ॥

सैन्धवाद्यं तैलम् ।

सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वां निचुलं वचाम् ।
ह्रीबेरं मधुकं भार्ङ्गीं देवदारु सनागरम् ॥ २६ ॥
कट्फलं पौष्करं मेदां चविकां चित्रकं शठीम् ।
विडङ्गातिविषे श्यामां रेणुकां नलिनीं स्थिराम् २७॥
बिल्वाजमोदे कृष्णां च दन्तीरास्ने प्रपिष्य च ।
साध्यमेरण्डजं तैलं तैलं वा कफवातनुत् ॥ २८ ॥
ब्रध्नोदावर्तगुल्मार्शःप्लीहमेहाढ्यमारुतान् ।
आनाहमश्मरीं चैव हन्यात्तदनुवासनात् ।
घृतं सौरेश्वरं योज्यं ब्रध्नवृद्धिनिवृत्तये ॥ २९ ॥

सेंधानमक, मैनफल, कूठ, सौंफ, जलबेत, वच, सुगन्धवाला, मौरेठी, भार्ङ्गी, देवदारु, सोंठ, कायफल, पोहकरमूल, मेदा, चव्य, चीतकी जड़, कचूर, वायविडङ्ग, अतीस, निसोथ, सम्भालूके बीज, कमलिनी, शालिपर्णी, बेल, अजमोद, छोटी पीपल, दन्ती तथा रासनका कल्क छोड़कर सिद्ध किया गया एरण्डतैल अथवा तिल तैल कफ, वातरोग, बद,

उदावर्त, गुल्म, अर्श, प्लीहा, प्रमेह, ऊरुस्तम्भ, आनाह तथा पथरीको नष्ट करता है । इस तैलका अनुवासन करना चाहिये । तथा सैरेयक घृतको वद और वृद्धिरोगके नाशार्थ देना चाहिये ॥ २६-२९ ॥

शतपुष्पाद्यं घृतम् ।

शतपुष्पामृता दारु चन्दनं रजनीद्वयम् ।
जीरके द्वे वचानागात्रिफलागुग्गुलुत्वचः ॥ ३० ॥
मांसी कुष्टं पत्रकैलारास्नाशृंगीः सचित्रकाः ।
क्रिमिघ्नमश्वगन्धं च शैलेयं कटुरोहिणीम् ॥ ३१॥
सैन्धवं तगरं पिष्ट्वा कुटजातिविषे समे ।
एतैश्च कार्षिकैः कल्कैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३२ ॥
वृषमुण्डितिकैरण्डनिम्बपत्रभवं रसम् ।
कण्टकार्यास्तथा क्षीरं प्रस्थं प्रस्थं विनिक्षिपेत्॥३३॥
सिद्धमेतद् घृतं पीतमन्त्रवृद्धिमपोहति ।
वातवृद्धिं पित्तवृद्धिं मेदोवृद्धिं च दारुणाम् ॥ ३४ ॥
मूत्रवृद्धिं श्लीपदं च यकृत्प्लीहानमेव च ।
शतपुष्पाघृतं रोगान्हन्यादेव न संशयः ॥ ३५ ॥

सौंफ, गुर्च, देवदारु, चन्दन, हल्दी, दारुहल्दी, सफेद जीरा, स्याह जीरा, वच, नागकेशर, त्रिफला, गुग्गुलु, दालचीनी, जटामांसी, कूठ, तेजपात, इलायची, रासन, काकड़ाशिङ्गी, चीतकी जड़, वायविडङ्ग, असगन्ध, छरीला, कुटकी, सेंधानमक, तगर, कुड़ेकी छाल, तथा अतीस प्रत्येक एक तोलेका कल्क, घी १ सेर ९ छटाक ३ तोला तथा इतनी ही मात्रामें प्रत्येक अडूसेका स्वरस, मुण्डी, एरण्ड, नीमकी पत्ती तथा भटकटैयाका रस तथा दूध मिलाकर पकाना चाहिये । यह घृत पीनेसे वात वृद्धि, अन्त्रवृद्धि, पित्तवृद्धि, दारुणमेदोवृद्धि, मूत्रवृद्धि, श्लीपद, यकृत्, तथा प्लीहा निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं । इसे " शतपुष्पाघृत " कहते हैं ॥ ३०-३५ ॥

इति वृद्ध्यधिकारः समाप्तः ।

अथ गलगण्डाधिकारः ।

पथ्यम् ।

यवमुद्गपटोलानि कटु रूक्षं च भोजनम् ।
छर्दिं सरक्तमुक्तिं च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

यव, मूंग, परवल, कड़ुआ, रूक्ष भोजन, वमन, तथा रक्तमोक्षणका गलगण्डमें प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

लेपाः ।

तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपितः ।
हस्तिकर्णपलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥ २ ॥
सर्षपाञ्छिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान् ।
मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥ ३ ॥
गण्डानि ग्रन्थयश्चैव गलगण्डाः सुदारुणाः ।
प्रलेपात्तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति चाचिरात् ॥४॥

हस्तिकर्ण पलाशकी जड़को चावलके धोवनके साथ पीसकर लेप करनेसे गलगण्ड शान्त होता है । तथा सरसों, सहिंजनके बीज, सन, अलसी, यव, तथा मूलीके बीजोंको खट्टे मट्ठेके साथ पीसकर लेप करनेसे गण्ड, ग्रन्थि तथा कठिन गलगण्ड शान्त होते हैं ॥ २-४ ॥

नस्यम् ।

जीर्णकर्कारुकरसो विडसैन्धवसंयुतः ।
नस्येन हन्ति तरुणं गलगण्डं न संशयः ॥ ५ ॥

पकी कड़ुई तोम्बीका रस, विडनमक तथा सेंधानमक मिलाकर नस्य लेनेसे नवीन गलगण्ड शान्त होता है ॥ ५ ॥

जलकुम्भीभस्मयोगः ।

जलकुम्भीकजं भस्म पक्कं गोमूत्रगालितम् ।
पिबेत् कोद्रवभक्ताशी गलगण्डप्रशान्तये ॥ ६ ॥

जलकुम्भीकी भस्मको गोमूत्रमें मिला छानकर पीनेसे तथा कोदवके भातका पथ्य लेनेसे गलगण्ड शान्त होता है ॥ ६ ॥

उपनाहः ।

सूर्यावर्तरसोनाभ्यां गलगण्डोपनाहने ।
स्फोटास्रावैः शमं याति गलगण्डो न संशयः ॥७॥

सूर्यावर्त तथा लहसुनकी पुल्टिस बनाकर गलगण्डपर बान्धनेसे फफोला पड़कर फूटता और बहता है । इससे गलगण्ड शान्त होता है । इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥

उषितजलादियोगौ ।

तिक्तालाबुफले पक्के सप्ताहमुषितं जलम् ।
मद्यं वा गलगण्डघ्नं पानात्पथ्यानुसेविनः ॥ ८ ॥

कड़ुई तोम्बीके पके फलमें ७ दिन रक्खा गया जल अथवा मद्य पीने तथा पथ्यसे रहनेसे गलगण्ड शान्त होता है ॥ ८ ॥

अपरे योगाः ।

कटुफलचूर्णान्तर्गलचर्वो गलगण्डमपहरति ।
घृतमिश्रं पीतमिव श्वेतगिरिकर्णिकामूलम् ॥ ९ ॥

महिषीमूत्रविमिश्रं लोहमलं संस्थितं घटे मासम् ।
अन्तर्धूममविदग्धं लिह्यान्मधुनाथ गलगण्डे ॥ १० ॥

कैफरेका चूर्ण गलेके अन्दर घिसनेसे तथा घीमें मिलाकर सफेद विष्णुक्रान्ताका कल्क पीनेसे गलगण्ड नष्ट होता है। तथा मण्डूर चूर्ण भैंसीके मूत्रमें मिलाकर १ मासतक घड़ेमें रखकर फिर अन्तर्धूम पकाना चाहिये। पक जानेपर शहदके साथ चाटनेसे गलगण्ड शान्त होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

शस्त्रचिकित्सा ।

जिह्वायाः पार्श्वतोऽधस्ताच्छिरा द्वादश कीर्तिताः ।
तासां स्थूलशिरे द्वेऽधश्छिन्द्यात्ते च शनैः शनैः॥११
बडिशेनैव संगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान् ।
स्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन्दद्यात्सगुडमार्द्रकम् ॥ १२ ॥
भोजनं चानभिष्यन्दि यूपः कौलत्थ इष्यते ।
कर्णयुग्मबहिःसन्धिमध्याभ्यासे स्थितं च यत् ॥१३
उपर्युपरि तच्छिन्द्याद्गलगण्डे शिरात्रयम् ।

जिह्वाके नीचे बगलमें १२ शिरायें बताई गयी हैं। उनमेंसे नीचेकी २ शिराओंको बड़िशसे पकड़कर कुशपत्रसे धीरे धीरे काट देना चाहिये। रक्त वह जानेपर उस व्रणमें गुड़ व अदरखका रस लगाना चाहिये। पथ्य–अनभिष्यन्दि तथा कुलथीका यूष देना चाहिये। तथा दोनों कानोंकी बाहरी सन्धिके समीप जो ऊपर तीन शिराएँ हैं, उनका भी व्यधन करना चाहिये॥११-१३॥

नस्यं तैलम् ।

विडङ्गक्षारसिन्धूत्थरास्नाग्निव्योषदारुभिः ॥ १४ ॥
कटुतुम्बीफलरसैः कटुतैलं विपाचयेत् ।
चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं निवारयेत् ॥ १५ ॥

वायविडङ्ग, जवाखार, सेंधानमक, वच, रासन, चीतकी जड़, त्रिकटु व देवदारुके कल्क तथा कड़ई तोम्बीके रसमें सिद्ध कड़ुए तैलके नस्य देनेसे पुराना गलगण्ड नष्ट होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अमृतादितैलम् ।

तैलं पिबेच्चामृतवल्लिनिम्ब-
हंसाह्वयावृक्षकपिप्पलीभिः ।
सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु
हिताय नित्यं गलगण्डरोगी ॥ १६ ॥

गुर्च, नीमकी छाल, हंसपादी, कुटज, छोटी पीपल, दोनों खरेटी तथा देवदारुके कल्कसे सिद्ध तैल गलगण्डवालेको नित्य पीना चाहिये ॥ १६ ॥

वरुणमूलक्वाथः ।

माक्षिकाढ्योऽसकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः ।
गण्डमालां निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥१७॥

वरुणाकी जड़के क्वाथमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे पुरानी गण्डमाला नष्ट होती है ॥ १७ ॥

काञ्चनारकल्कः ।

पिष्टा ज्येष्ठाम्बुना पेयाः काञ्चनारत्वचः शुभाः ।
विश्वभेषजसंयुक्ता गण्डमालापहाः पराः ॥ १८ ॥

कचनारकी छालको पीस चावलका जल तथा सोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे गण्डमाला नष्ट होती है ॥ १८ ॥

आरग्वधशिफाप्रयोगः ।

आरग्वधशिफां क्षिप्रं पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
सम्यङ् नस्यप्रलेपाभ्यां गण्डमालां समुद्धरेत् ॥१९॥

अमलतासकी जड़को पीसकर चावलके जलके साथ नस्य लेने तथा प्रलेप करनेसे गण्डमाला नष्ट होती है ॥ १९ ॥

निर्गुण्डीनस्यम् ।

गण्डमालामयार्तानां नस्यकर्मणि योजयेत् ।
निर्गुण्ड्याश्च शिफां सम्यग्वारिणा परिपेषिताम् ॥२०

जलमें अच्छीतरह पीसी हुई सम्भालूकी जड़को नस्यके लिये गण्डमालावालोंको प्रयोग करना चाहिये ॥ २० ॥

विविधानि नस्यानि ।

कोषातकीनां स्वरसेन नस्यं
तुम्ब्यास्तु वा पिप्पलीसंयुतेन ।
तैलेन वारिष्टभवेन कुर्याद्
वचोपकुल्ये सह माक्षिकेण ॥ २१ ॥

छोटी पपिलके चूर्णके सहित कड़ुई तोरईके स्वरसका नस्य अथवा कड़ुई तोम्बीके स्वरसका नस्य अथवा नीमके तैलका नस्य अथवा दूधिया वच और छोटी पीपलके चूर्णका नस्य शहदके साथ करना चाहिये ॥ २१ ॥

विविधानि पानानि ।

ऐन्द्र्या वा गिरिकर्ण्या वा मूलं गोमूत्रयोगतः ।
गण्डमालां हरेत्पीतं चिरकालोत्थितामपि ॥ २२ ॥
अलम्बुषादलोद्भूतात्स्वरसाद् द्विपलं पिबेत् ।
अपच्या गण्डमालायाः कामलायाश्च नाशनः ॥२३॥

इन्द्रायण अथवा विष्णुक्रान्ताकी जड़को गोमूत्रके साथ पीसकर पीनेसे पुरानी गण्डमाला नष्ट होती है। इसी प्रकार मुण्डीका स्वरस २ पलकी मात्रासे सेवन करनेसे अपची गण्ड-माला व कामला नष्ट होती है ॥ २२ ॥ २३ ॥

लेपः ।

गलगण्डगण्डमालाकुरण्डांश्च विनाशयेत् ।
पिष्टं ज्येष्ठाम्बुना मूलं लेपाद् ब्राह्मणयष्टिजम् ॥२४॥

भारङ्गीकी जड़को पीसकर चावलके साथ लेप करनेसे गलगण्ड, गण्डमाला तथा अण्डवृद्धि नष्ट होती है ॥ २४ ॥

छुछुन्दरीतैलम् ।

अभ्यङ्गान्नाशयेन्नृणां गण्डमालां सुदारुणाम् ।
छुछुन्दर्या विपक्वं तु क्षणात्तैलवरं ध्रुवम् ॥ २५ ॥

छुछुन्दरसे पकाये तैलकी मालिशसे गण्डमाला एक क्षणमें नष्ट होती है ॥ २५ ॥

शाखोटत्वगादितैलद्वयम् ।

गलगण्डापहं तैलं सिद्धं शाखोटकत्वचा ।
बिम्बाश्वमारनिर्गुण्डीसाधितं चापि नावनम् ॥२६॥

(१) सिहोरेकी छालसे पकाया गया तैल अथवा (२) कुन्दुरू कनैर व सम्भालूसे सिद्ध तैलका नस्य लेनेसे गण्डमाला नष्ट होती है ॥ २६ ॥

निर्गुण्डीतैलम् ।

निर्गुण्डीस्वरसे चाथ लाङ्गलीमूलकल्कितम् ।
तैलं नस्यान्निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम् ॥२७॥

सम्भालूके स्वरसमें कलिहारीकी जड़का कल्क मिलाकर सिद्ध किये गये तैलके नस्यसे कठिन गण्डमाला नष्ट होती है२७॥

कार्पासपूपिकाः ।

वनकार्पासिकामूलं तण्डुलैः सह योजितम् ।
पक्त्वा तु पूपिकां खादेदपचीनाशनाय तु ॥ २८ ॥

जङ्गली कपासकी जड़ और चावलको पीसकर बनायी गयी पूड़ीको खानेसे अपची नष्ट होती है ॥ २८ ॥

लेपः ।

शोभाञ्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेषितम् ।
कोष्णं प्रलेपतो हन्यादपचीमतिदुस्तराम् ॥ २९ ॥
सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह ।
छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं प्रलेपनम् ॥ ३० ॥
अश्वत्थकाष्ठं निचुलं गवां दन्तं च दाहयेत् ।
वाराहमज्जसंयुक्तं भस्म हन्त्यपचीव्रणान् ॥ ३१ ॥

सहिंजन व देवदारुको काञ्जीके साथ पीस कुछ गरम कर लेप करनेसे कठिन अपची नष्ट होती है । तथा सरसों, नीमकी पत्ती व भिलावाँ सबको अन्तर्धूम पका बकरेके मूत्रमें पीस लेप करनेसे अपची नष्ट होती है । इसी प्रकार पीपलकी लकड़ी, जलवेत व गोदन्तको जलाकर भस्म करना चाहिये । इस भस्मको शूकरकी मज्जाके साथ लेप करनेसे अपची व्रण नष्ट होते हैं ॥ २९-३१ ॥

शस्त्रचिकित्सा ।

पार्ष्णिं प्रति द्वादश चांगुलानि
भित्त्वेन्द्रवस्तिं परिवर्ज्य सम्यक् ।
विदार्य मत्स्याण्डनिभानि वैद्यो
निकृष्य जालान्यनलं विदध्यात् ॥ ३२ ॥
मणिबन्धोपरिष्टाद्वा कुर्याद्रेखात्रयं भिषक् ।
अङ्गुल्यन्तरितं सम्यगपचीनां प्रशान्तये ॥ ३३ ॥
दण्डोत्पलाभवं मूलं बद्धं पुष्येऽपचीं जयेत् ।
अपामार्गस्य वा छिन्द्याज्जिह्वातलगते शिरे ॥ ३४ ॥

एँड़ीकी ओर १२ अंगुल नाप इन्द्रवस्तिको छोड़कर शस्त्रसे चीरकर मछलीके अण्डेके समान जालोंको दूरकर अग्नि लगा देनी चाहिये । अथवा मणिबन्धके ऊपर एक एक अंगुलके बीचसे ३ रेखायें करे । इससे अपची शान्त होती है । अथवा जिह्वातलगत २ शिराओंका व्यध करना चाहिये । अथवा पुष्य नक्षत्रमें पीले फूलकी सहदेवीकी जड़ अथवा अपामार्गकी जड़ अपचीको नष्ट करती है ॥ ३२-३४ ॥

व्योषादितैलम् ।

व्योषं विडङ्गं मधुकं सैन्धवं देवदारु च ।
तैलमेतैः शृतं नस्यात् कृच्छ्रामप्यपचीं जयेत् ॥३५॥

त्रिकटु, वायविड़ंग, मौरेठी, सेंधानमक, तथा देवदारुसे तैल सिद्ध करना चाहिये । इस तैलका नस्य देनेसे अपची नष्ट होती है ॥ ३५ ॥

चन्दनाद्यं तैलम् ।

चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी ।
एतैस्तैलं शृतं पीतं समूलामपचीं जयेत् ॥ ३६ ॥

चन्दन, बड़ी हर्रका छिल्का, लाख, बच तथा कुटकीके कल्कसे सिद्ध तैल नस्याभ्यंगादिसे समूल अपचीको नष्ट करता है ॥ ३६ ॥

गुञ्जाद्यं तैलम् ।

गुञ्जाहयारिश्यामाकसर्षपैर्मूत्रसाधितम् ।
तैलं तु दशधा पश्चात्कणालवणपञ्चकम् ॥ ३७ ॥
मरिचैश्चूर्णितैर्युक्तं सर्वावस्थागतां जयेत् ।
अभ्यङ्गादपचीमुग्रां वल्मीकार्शोऽर्बुदव्रणान् ॥३८॥

गुञ्जा, कनैर, काला निसोथ और सरसोंका कल्क तथा गोमूत्र छोड़कर १० बार सिद्ध तैलमें छोटी पीपल पांचों नमक और मिर्चका चूर्ण मिला मर्दन करनेसे हर प्रकारकी अपची, वल्मीक, अर्श, अर्बुद और व्रण नष्ट होते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

ग्रन्थिचिकित्सा ।

ग्रन्थिष्वामेषु कुर्वीत भिषक् शोथप्रतिक्रियाम् ।
पक्वानापाट्य संशोध्य रोपयेद् व्रणभेषजैः ॥ ३९ ॥

कच्ची गांठोंमें वैद्यको शोथकी चिकित्सा करनी चाहिये । पकी गांठोंको चीर साफ कर व्रणकी ओषधियोंसे रोपण करना चाहिये ॥ ३९ ॥

वातजग्रन्थिचिकित्सा ।

हिंस्रा सरोहिण्यमृता च भार्ङ्गी
श्यामाकबिल्वागुरुकृष्णगन्धाः ।
गोपित्तपिष्टाः सह तालपर्ण्या
ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ ४० ॥

जटामांसी, कुटकी, गुर्च, भारङ्गी, निसोथ, बिल्व, अगुरु, सहिंजन, तथा मुसलीको गोपित्तमें पीसकर वातज ग्रन्थिमें लेप करना चाहिये ॥ ४० ॥

पित्तजग्रन्थिचिकित्सा ।

जलायुकाः पित्तकृते हितास्तु
क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनं च ।
काकोलिवर्गस्य तु शीतलानि
पिबेत्कषायाणि सशर्कराणि ॥ ४१ ॥
द्राक्षारसेनेक्षुरसेन वापि
चूर्णं पिबेद्वापि हरीतकीनाम् ।
मधूकजम्ब्वर्जुनवेतसानां
त्वग्भिः प्रदेहानवतारयेच्च ॥ ४२ ॥

पित्तज ग्रन्थिमें जोंक लगाना, दूध तथा जलसे सिञ्चन, तथा काकोल्यादिवर्गके काढ़े ठण्डे कर शक्कर मिला पीना चाहिये । अथवा हर्रोंका चूर्ण मुनक्केके रससे अथवा ईखके रससे पीवे । तथा महुआ, जामुनकी छाल, अर्जुन, और बेतकी छालका लेप करे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

श्लेष्मग्रन्थिचिकित्सा ।

हृतेषु दोषेषु यथानुपूर्व्या
ग्रन्थौ भिषक् श्लेष्मसमुत्थिते तु ।
स्विन्ने च विम्लापनमेव कुर्या-
दङ्गुष्ठरेणवाश्मदीसुतैश्च ॥ ४३ ॥

कफज ग्रन्थिमें वमन द्वारा दोष निकाल स्वेदन कर अंगूठेमें मिट्टी लेकर रगड़ना चाहिये, अथवा पत्थरके टुकडेसे रगड़ना चाहिये ॥ ४३ ॥

लेपः ।

विकङ्कतारग्वधकाकणन्ती-
काकादनीतापसवृक्षमूलैः ।
आलेपयेदेनमलाबुभार्ङ्गी-
करञ्जकालामदनैश्च विद्वान् ॥ ४४ ॥
दन्ती चित्रकमूलत्वक् सुधार्कपयसी गुडः ।
भल्लातकास्थि कासीसं लेपो भिन्द्याच्छिलामपि ।
ग्रन्थ्यर्बुदादिजिल्लेपो मातृवाहककीटजः ॥ ४५ ॥
सर्जिकामूलकक्षारः शङ्खचूर्णसमन्वितः ।
प्रलेपो विहितस्तीक्ष्णो हन्ति ग्रन्थ्यर्बुदादिकान् ४६

कण्टाई, अमलतास, गुञ्जा, मकोय, हिंगोट, प्रत्येककी जड़ तथा कडुई तोम्बी, भारङ्गी, करञ्ज, निसोथ और मैनफलसे लेप करना चाहिये । अथवा दन्ती, चीतकी जड़की छाल, सेहुण्ड और आकका दूध, गुड़, भिलावांकी मज्जा और कसीसका लेप पत्थरको भी फोड़ देता है । इसी प्रकार मातृवाहककीट (बंगला पेदापोका) का लेप ग्रन्थि, अर्बुद आदिको नष्ट करता है । इसी प्रकार सज्जीखार, मूलीका खार तथा शंखचूर्ण इनको पीसकर लेप करनेसे ग्रन्थि और अर्बुद आदि नष्ट होते हैं ॥ ४४–४६ ॥

शस्त्रचिकित्सा ।

ग्रन्थीनमर्मप्रभवानपक्वा-
नुद्धृत्य वाग्निं विदधीत वैद्यः ।
क्षारेण वै तान्प्रतिसारयेत्तु
संलिख्य संलिख्य यथोपदेशम् ॥ ४७ ॥

जो ग्रन्थियां मर्म स्थानमें न हों, उन्हें निकालकर अग्निसे जला दे । अथवा खुरच खुरच कर क्षारका प्रतिसारण करे ॥ ४७ ॥

अर्बुदचिकित्सा ।

ग्रन्थ्यर्बुदानां न यतो विशेषः
प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः ।
ततश्चिकित्सेद्भिषगर्बुदानि
विधानविद् ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥ ४८ ॥

ग्रन्थि और अर्बुदमें स्थान, कारण, लक्षण, दोष और दूष्यमें कोई विशेषता नहीं है, इस लिये अर्बुदकी चिकित्सा ग्रन्थिके समान ही करनी चाहिये ॥ ४८ ॥

वातार्बुदचिकित्सा ।

वातार्बुदे चाप्युपनाहनानि
स्निग्धैश्च मांसैरथ वेसवारैः ।
स्वेदं विदध्यात्कुशलस्तु नाड्या
शृङ्गेण रक्तं बहुशो हरेच्च ॥ ४९ ॥

वातार्बुदमें चिकने मांस अथवा वेसवारकी पुल्टिस बाँधनी चाहिये । तथा नाड़ीस्वेद करना चाहिये और शृङ्गसे अनेक बार रक्त निकालना चाहिये ॥ ४९ ॥

पित्तार्बुदचिकित्सा ।

स्वेदोपनाहा मृदवस्तु पथ्याः
पित्तार्बुदे कायविरेचनानि ।
विघृष्य चोदुम्बरशाकगोजी-
पत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥ ५० ॥
श्लक्ष्णीकृतैः सर्जरसप्रियङ्गु-
पतङ्गलोध्रार्जुनयष्टिकाह्वैः ॥ ५१ ॥

पित्तज अर्बुदमें मृदु स्वेद तथा उपनाह करना चाहिये तथा विरेचन देना चाहिये । तथा कठूमर शाक और गोजिह्वा (गाउजुवां) की पत्तीसे घिस (खुरचकर) शहदमें महीन पिसी राल, प्रियङ्गु, पतंग, लोध, अर्जुन और मोरेठीका लेप करना चाहिये ॥ ५०-५१ ॥

कफजार्बुदचिकित्सा ।

लेपनं शङ्खचूर्णेन सह मूलकभस्मना ।
कफार्बुदापहं कुर्याद्ग्रन्थ्यादिषु विशेषतः ॥ ५२॥

कफज ग्रन्थिमें मूलीकी भस्म और शंखके चूर्णका लेप करना चाहिये ॥ ५२ ॥

विशेषचिकित्सा ।

निष्पावपिण्याककुलत्थकल्कै-
र्मांसप्रगाढैर्दधिमर्दितैश्च ।
लेपं विदध्यात्क्रिमयो यथात्र
मुञ्चन्त्यपत्यान्यथ मक्षिका वा ॥ ५३ ॥
अल्पावशिष्टं क्रिमिभिः प्रजग्धं
लिखेत्ततोऽग्निं विदधीत पश्चात् ।
यदल्पमूलं त्रपुताम्रसीसैः
संवेष्ट्य पत्रैरथवायसैर्वा ॥ ५४ ॥
क्षाराग्निशस्त्राण्यवचारयेच्च
मुहुर्मुहुः प्राणमवेक्ष्यमाणः ।
यदृच्छया चोपगतानि पाकं
पाकक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम्॥ ५५ ॥

सेमके बीज, पीना, कुलथीका कल्क तथा मांसको दहीमें मर्दितकर लेप करना चाहिये । जिससे इसमें कीड़े पड़ जायँ । या मक्खियाँ कीड़े उत्पन्न कर दें । फिर कीड़ोंसे बहुत अंश खा जानेपर अल्पावशिष्ट खुरच कर अग्निसे जला देना चाहिये । जो थोड़ी जड़ रह जाय, उसे रांगा, तामा, शीशा अथवा लोहेके पत्रोंसे लपेट क्षार अग्नि अथवा शस्त्रका प्रयोग रोगीके बलका ध्यान रखकर करे । यदि अपने आप पक जावे, तो पाकक्रमसे चिकित्सा करे ॥ ५३-५५ ॥

सशेषदोषाणि हि योऽर्बुदानि
करोति तस्याशु पुनर्भवन्ति ।
तस्मादशेषाणि समुद्धरेत्तु
हन्युः सशेषाणि यथा विषाग्नी ॥ ५६ ॥

जिसके अर्बुदके दोष कुछ शेष रह जाते हैं, उसके शीघ्र ही बढ जाते हैं, अतः अर्बुद समस्त निकाल देना चाहिये । क्योंकि अर्बुदके दोष यदि कुछ शेष रह जाते हैं, तो वे विष तथा अग्निके समान शीघ्र ही मार डालते हैं ॥ ५६ ॥

उपोदिकाप्रयोगः ।

उपोदिका रसाभ्यक्तास्तत्पत्रपरिवेष्टिताः ।
प्रणश्यन्त्यचिरान्नृणां पिडकार्बुदजातयः ॥ ५७ ॥
उपोदिका काञ्जिकतक्रपिष्टा
तयोपनाहो लवणेन मिश्रः ।
दृष्टोऽर्बुदानां प्रशमाय कैश्चिद्-
दिने दिने वा त्रिषु मर्मजानाम् ॥ ५८ ॥

पोयकी रसकी मालिश कर पोयके पत्ते ही बाँधनेसे शीघ्र ही मनुष्योंकी पिड़िका व अर्बुद नष्ट हो जाते हैं । अथवा पोयको काञ्जी और मट्ठेके साथ पीस नमक मिला गरम कर पुल्टिस बान्धनेसे ३ दिनमें मर्मस्थानमें भी उत्पन्न अर्बुद नष्ट हो जाते हैं ॥ ५७-५८ ॥

अन्ये लेपाः ।

लेपोऽर्बुदजिद्रम्भामोचकभस्मतुषशङ्खचूर्णकृतः ।
सरटरुधिरार्द्रगन्धकयवजविडङ्गनागरैर्वाथ ॥ ५९ ॥
स्नुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि च ।
शिरीषेणाथ लवणैः पिण्डारकफलेन वा ॥ ६० ॥
हरिद्रालोध्रपत्तङ्गगृहधूममनःशिलाः ।
मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः परः ।
एतामेव क्रियां कुर्यादशेषां शर्करार्बुदे ॥ ६१ ॥

केला और सेमरकी भस्म, धान्यकी भूसी और शंखके चूर्णका लेप अर्बुदको नष्ट करता है । अथवा गिरदानका रक्त, अदरख, गन्धक, यवाखार, वायविडङ्ग और सोंठका लेप अथवा सिरसेकी छालअथवा नमक अथवा काले मैनफलका लेप करना हितकर है । तथा सेहुण्ड और मजीठकी पुल्टिस बान्धना हितकर है । तथा हल्दी, लोध, लालचन्दन, गृहधूम और मैनशिलको शहदमें मिलाकर लेप करनेसे मेदोऽर्बुद शान्त होता है । तथा यही क्रिया शर्करार्बुदमें करनी चाहिये ॥ ५९-६१ ॥

इति गलगण्डाधिकारः समाप्तः ।

अथ श्लीपदाधिकारः ।

सामान्यचिकित्सा ।

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोक्षणैः ।
प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ १ ॥

लंघन, आलेपन, स्वेद, रेचन, रक्तमोक्षण तथा श्लेष्महर उष्ण उपायोंसे श्लीपदकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

लेपद्वयम् ।

धत्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ।
प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमतिदारुणम् ॥ २ ॥
निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम् ।
प्रलेपाच्छ्लीपदं हन्ति बद्धमूलमथो दृढम् ॥ ३ ॥

(१) धत्तूर, एरण्ड, सम्भालू, पुनर्नवा, सहिंजन और सरसोंका लेप करना पुराने कठिन श्लीपदका लाभ करता है । तथा (२) सफेद आककी जड़की छालको काञ्जीमें पीस कर लेप करनेसे बद्धमूल श्लीपद नष्ट होता है ॥ २ ॥ ३॥

प्रयोगान्तरम् ।

पिण्डारकतरुसम्भववन्दाकाशिफा
जयति सर्पिषा पीता ।
श्लीपदमुग्रं नियतं
बद्धा सूत्रेण जंघायाम् ॥ ४ ॥

काले मैनफलके ऊपरके वान्देकी जड़ घीके साथ पीने तथा डोरेसे जंघोंमें बांधनेसे नियमसे उग्र श्लीपद नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

अन्ये लेपाः ।

हितश्चालेपने नित्यं चित्रको देवदारु वा ।
सिद्धार्थशिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः ॥ ५ ॥

चीता अथवा देवदारु अथवा सहिंजन व सरसों गोमूत्रमें पीस गरम कर नित्य लेप करना हितकर है ॥ ५ ॥

शस्त्रचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदोपनाहांश्च श्लीपदेऽनिलजे भिषक् ।
कृत्वा गुल्फोपरि शिरां विध्येत्तु चतुरंगुले ॥ ६ ॥
गुल्फस्याधः शिरां विध्येच्छ्लीपदे पित्तसम्भवे ।
पित्तघ्नीं च क्रियां कुर्यात्पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥ ७ ॥

वातज श्लीपदमें स्नेहन स्वेदन तथा पुल्टिस बांधकर गुल्फके चार अंगुल ऊपर वैद्यको शिराव्यध करना चाहिये । तथा पित्तजश्लीपदमें गुल्फके नीचे शिराव्यध करना चाहिये । तथा पित्तार्बुदविसर्पके समान पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये६॥७

पित्तजश्लीपदे लेपः ।

मंजिष्ठां मधुकं रास्नां सहिंस्रां सपुनर्नवाम् ।
पिष्ट्वाऽऽरनालैर्लेपोऽयं पित्तश्लीपदशान्तये ॥ ८ ॥

मजीठ, मौरेठी, रासन, जटामांसी व पुनर्नवाको कांजीके साथ पीसकर लेप करनेसे पित्तज श्लीपद शान्त होता है ॥ ८ ॥

कफश्लीपदचिकित्सा ।

शिरां सुविदितां विध्येदंगुष्ठे श्लेष्मश्लीपदे ।
मधुयुक्तानि चाभीक्ष्णं कषायाणि पिबेन्नरः ॥ ९ ॥
पिबेत्सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये ॥
पूतीकरञ्जच्छदजं रसं वापि यथाबलम् ॥ १० ॥
अनेनैव विधानेन पुत्रजीवकजं रसम् ।
काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं मूत्रैर्वा वृद्धदारजम् ॥ ११ ॥
रजनीं गुडसंयुक्तां गोमूत्रेण पिबेन्नरः ।
वर्षोत्थं श्लीपदं हन्ति दद्रुकुष्ठं विशेषतः ॥ १२ ॥

कफज श्लीपदमें अँगूठेकी स्पष्ट शिराका व्यध करना चाहिये । तथा शहदके साथ कफनाशक क्वाथ सदैव पीना चाहिये । अथवा पूतिकरञ्जके पत्तोंका रस सरसोंका तैल मिलाकर पीना चाहिये । इसी प्रकार पुत्रजीवाका रस पीना चाहिये । अथवा काञ्जी या गोमूत्रके साथ विधारेका चूर्ण पीना चाहिये । तथा हल्दीका चूर्ण गुड़ मिला गोमूत्रके साथ पीनेसे एक वर्षका पुराना श्लीपद तथा दद्रु (दाद) नामका कुष्ठ दूर हो जाता है ॥ ९-१२ ॥

वातकफजश्लीपदचिकित्सा ।

गन्धर्वतैलभृष्टां हरीतकीं गोजलेन यः पिबति ।
श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण ॥ १३ ॥
धान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम् ।
दीपनं चामदोषघ्नमेतच्छ्लीपदनाशनम् ॥ १४ ॥
गोधावतीमूलयुक्तां खादेन्माषेण्डरीं नरः ।
जयेच्छ्लीपदकोपोत्थं ज्वरं सद्यो न संशयः ॥१५॥
श्लीपदघ्नो रसोऽभ्यासाद् गुडूच्यास्तैलसंयुतः ।

जो मनुष्य एरण्ड तैलमें भुनी हर्रको गोमूत्रके साथ खाता है, वह ७ दिनमें श्लीपद बन्धनसे मुक्त हो जाता है । तथा काञ्जी, तैलके साथ कफ वातको नष्ट करती, दीपन, आमदोषनाशक तथा श्लीपदनाशक है । वटपत्रीपाषाणभेदकी जड़के साथ उड़दके बड़े खानेसे श्लीपदकोपोत्थ ज्वर नष्ट होता है । गुर्चके रसका तैलके साथ सेवन करनेसे श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ १३-१५ ॥-

त्रिकट्वादिचूर्णम् ।

त्रिकटु त्रिफला चव्यं दार्वीवरुणगोक्षुरम् ॥ १६ ॥

अलम्बुषां गुडूचीं च समभागानि चूर्णयेत् ।
सर्वेषां चूर्णमाहृत्य वृद्धदारस्य तत्समम् ॥ १७ ॥
काञ्जिकेन च तत्पेयमक्षमात्रं प्रमाणतः ।
जीर्णे चापरिहारं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम् ॥१८॥
नाशयेच्छ्लीपदं स्थौल्यमामवातं सुदारुणम् ।
गुल्मकुष्ठानिलहरं वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥ १९ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, दारुहल्दी, वरुणाकी छाल, गोखरू, मुण्डी तथा गुर्च सब समान भाग सबके समान विधारेका चूर्ण बनाकर १ तोलेकी मात्रासे काञ्जीके साथ पीना चाहिये । औषध पच जानेपर यथेच्छ भोजनादि करना चाहिये । यह श्लीपद, स्थौल्य, आमवात, गुल्म, कुष्ठ वात तथा वातश्लेष्मज्वरको नष्ट करता है ॥ १६–१९ ॥

पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

पिप्पलीत्रिफलादारुनागरं सपुनर्नवम् ।
भार्गैर्द्विपलिकैरेषां तत्समं वृद्धदारकम् ॥ २० ॥
काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं कर्षमात्रं प्रमाणतः ।
जीर्णे चापरिहारं स्याद् भोजनं सार्वकामिकम् ॥२१॥
श्लीपदं वातरोगांश्च हन्यात्प्लीहानमेव च ।
अग्निं च कुरुते घोरं भस्मकं च नियच्छति ॥२२॥

छोटी पीपल, त्रिफला, देवदारु, सोंठ तथा पुनर्नवा प्रत्येक ८ तोला और सबके समान विधाराका चूर्ण कर १ कर्षकी मात्रासे काञ्जीके साथ पीना चाहिये । हजम हो जानेपर यथारुचि भोजन करना चाहिये । यह श्लीपद वातरोग तथा प्लीहाको नष्ट करता और अग्निको प्रदीप्त करता है ॥ २०–२२ ॥

कृष्णाद्यो मोदकः ।

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्धपलं पलम् ।
विंशतिश्च हरीतक्यो गुडस्य तु पलद्वयम् ।
मधुना मोदकं खादेच्छ्लीपदं हन्ति दुस्तरम् ॥२३॥

छोटी पीपल, चीतकी जड़, दन्ती क्रमशः १ तो० २ तो० और ४ तो० तथा २० हर्रे सबका महीन चूर्ण कर गुड़ ८ तोला और शहद मिला गोली बनानी चाहिये । ये गोलियां श्लीपदको नष्ट करती हैं ॥ २३ ॥

सौरेश्वरं घृतम् ।

सुरसां देवकाष्ठं च त्रिकटुत्रिफले तथा ।
लवणान्यथ सर्वाणि विडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥२४॥
चविका पिप्पलीमूलं गुग्गुलुर्हपुषा वचा ।
यवाग्रजं च पाठा च शट्येला वृद्धदारुकम् ॥२५॥
कल्कैश्च कार्षिकैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
दशमूलीकषायेण धान्ययूषद्रवेण च ॥ २६ ॥
दधिमण्डसमायुक्तं प्रस्थं प्रस्थं पृथक् पृथक् ।
पक्वं स्याद्युद्धृतं कल्कादिपिबेत्कर्षत्रयं हविः ॥२७॥
श्लीपदं कफवातोत्थं मांसरक्ताश्रितं च यत् ।
मेदःश्रितं च पित्तोत्थं हन्यादेव न संशयः ॥ २८॥
अपचीं गण्डमालां च अन्त्रवृद्धिं तथाऽर्बुदम् ।
नाशयेद् ग्रहणीदोषं श्वयथुं गुदजानि च ॥ २९ ॥
परमग्निकरं हृद्यं कोष्ठक्रिमिविनाशनम् ।
घृतं सौरेश्वरं नाम श्लीपदं हन्ति सेवितम् ।
जीवकेन कृतं ह्येतद्रोगानीकविनाशनम् ॥ ३० ॥

तुलसी, देवदारु, त्रिकटु, त्रिफला, समस्त नमक, वायविडङ्ग, चीतेकी जड़, चव्य, पिपरामूल, गुग्गुलु, हाऊबेर, वच, जवाखार, पाढ़, कचूर, इलायची, विधारा प्रत्येकका कल्क १ कर्ष, घी २ प्रस्थ, दशमूलका क्वाथ १ प्रस्थ, धान्ययूष काञ्जी १ प्रस्थ, दहीका तोड़ १ प्रस्थ तथा जल १ प्रस्थ छोड़कर घी पकाना चाहिये । इसमेंसे ३ तोलेकी मात्राका सेवन करना चाहिये । यह कफवातज मांसरक्ताश्रित, मेदःश्रित तथा पित्तजन्य श्लीपदको नष्ट करता है । इसमें सन्देह नहीं । इसके अतिरिक्त अपची, गण्डमाला, अन्त्रवृद्धि, अर्बुद, ग्रहणीदोष, सूजन तथा अर्शको नष्ट करता, अग्निको दीप्त करता, हृद्य, पेटके कीड़ोंको नष्ट करता, अधिक क्या कहा जाय, यह जीवकका बनाया हुआ घृत रोग समूहको नष्ट करता है ॥ २४–३० ॥

विडंगाद्यं तैलम् ।

विडङ्गमरिचार्केषु नागरे चित्रके तथा ।
भद्रदार्वेलकाख्येषु सर्वेषु लवणेषु च ।
तैलं पक्वं पिबेद्वापि श्लीपदानां निवृत्तये ॥ ३१ ॥

वायविडङ्ग, कालीमिर्च, अर्ककी छाल, सोंठ, चीतकी जड़, देवदारु, इलायची, तथा समस्त लवणोंके साथ पकाया गया तैल पीनेसे श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

इति श्लीपदाधिकारः समाप्तः ।

अथ विद्रध्यधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ ।
मृदुर्विरेको लघ्वन्नं स्वेदः पित्तोत्तरं विना ॥ १ ॥

समस्त विद्रधियोंमें जोंक लगाना, मृदु विरेचन, लघु अन्न तथा पित्तविद्रधिके सिवाय अन्यमें स्वेदन करना हितकर है ॥ १ ॥

वातविद्रधिचिकित्सा ।

वातघ्नमूलकल्कैस्तु वसातैलघृतप्लुतैः ।
सुखोष्णो बहलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ २ ॥
स्वेदोपनाहाः कर्तव्याः शिग्रुमूलसमन्विताः ।
यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ३ ॥
विलीयते क्षणेनैवमपक्वश्चैव विद्रधिः ।
पुनर्नवादारुविश्वदशमूलाभयाम्भसा ॥ ४ ॥
गुग्गुलुं रुबुतैलं वा पिबेन्मारुतविद्रधौ ।

वातनाशकमूल (दशमूल) के कल्कको चर्बी, घी, और तैल मिला कुछ गरम कर मोटा लेप करनेसे वातविद्रधि शान्त होती है । तथा सहिंजनकी जड़से स्वेदन व लेप करना चाहिये । तथा जव गेहूँ और मूंगको पीस पकाकर लेप करना चाहिये । इस प्रकार अपक्व विद्रधि क्षणभरमें ही शान्त हो जाती है । तथा पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, दशमूल और हर्रके क्काथके साथ गुग्गुलु अथवा एरण्डतैलका प्रयोग करनेसे वातजविद्रधि शान्त होती है ॥ २–४ ॥

पित्तविद्रधिचिकित्सा ।

पैत्तिकं शर्करालाजामधुकैः शारिवायुतैः ॥ ५ ॥
प्रदिह्यात्क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचन्दनैः ।
पिबेद्वा त्रिफलाक्काथं त्रिवृत्कल्काक्षसंयुतम् ॥ ६ ॥
पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपनम् ।
यष्ट्याह्वशारिवादूर्वानलमूलैः सचन्दनैः ॥ ७ ॥
क्षीरपिष्टैः प्रलेपस्तु पित्तविद्रधिशान्तये ।

पित्तजविद्रधिमें दूधके साथ शक्कर, खील, मौरेठी तथा शारिवा अथवा क्षीरविदारी, खश और चन्दनका लेप करना चाहिये । अथवा त्रिफलाका क्काथ निसोथका कल्क १ तोला मिलाकर पीना चाहिये । तथा घी मिलाकर पञ्चवल्कलके कल्कका लेप करना चाहिये । अथवा मौरेठी, शारिवा, दूब, नरसलकी मूल और चन्दनको दूधमें पीसकर लेप करनेसे पित्तज विद्रधि शान्त होती है ॥ ५–७ ॥–

श्लेष्मजविद्रधिचिकित्सा ।

इष्टकासिकतालोहगोशकृत्तुषपांशुभिः ॥ ८ ॥
मूत्रपिष्टैश्च सततं स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ।
दशमूलकषायेण सस्नेहेन रसेन वा ॥ ९ ॥
शोथं व्रणं वा कोष्णेन सशूलं परिषेचयेत् ।
त्रिफलाशिग्रुवरुणदशमूलाम्भसा पिबेत् ॥ १० ॥
गुग्गुलुं मूत्रयुक्तं वा विद्रधौ कफसम्भवे ।

कफजविद्रधिको ईंट, बालू, लोह, गायके गोबर, धानकी भूसी अथवा मिट्टीको गोमूत्रमें पीस गरम कर निरन्तर स्वेदन करना चाहिये । तथा दशमूलका क्वाथ अथवा, स्नेहसहित मांसरस कुछ गरम गरम सिञ्चन करनेसे शोथव्रण और शूल नष्ट होता है । अथवा त्रिफला, सहिंजनकी छाल, वरुणाकी छाल और दशमूलके क्काथके साथ अथवा गोमूत्रके साथ गुग्गुलुको पीनेसे कफज विद्रधि शान्त होती है ॥ ८–१० ॥–

रक्तागन्तुविद्रधिचिकित्सा ।

पित्तविद्रधिवत्सर्वा क्रियां निरवशेषतः ॥ ११ ॥
विद्रध्योः कुशलः कुर्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः ।

रक्तज तथा आगन्तुज विद्रधिमें पित्तविद्रधिके समान ही समग्र चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

अपक्वान्तर्विद्रधिचिकित्सा ।

शोभाञ्जनकनिर्यूहो हिंगुसैन्धवसंयुतः ॥ १२ ॥
अचिराद् विद्रधिं हन्ति प्रातःप्रातर्निषेवितः ।
शिग्रुमूलं जले धौतं दरपिष्टं प्रगालयेत् ॥ १३ ॥
तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ।
श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं वरुणकस्य च ॥ १४ ॥
जलेन कथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत् ।
वरुणादिगणक्काथमपक्वेऽभ्यन्तरोत्थिते ।
ऊपकादिप्रतीवापं पिबेत्संशमनाय वै ॥ १५ ॥
शमयति पाठामूलं क्षौद्रयुतं तण्डुलाम्भसा पीतम् ।
अन्तर्भूतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य ॥ १६ ॥

सहिंजनका क्काथ भुनी हींग व सेंधानमक मिलाकर प्रातःकाल सेवन करनेसे विद्रधि शीघ्र ही नष्ट होती है । इसी प्रकार सहिंजनकी छाल जलमें धो पीस छानकर स्वरस निकालना चाहिये । इस स्वरसको शहदके साथ पीनेसे अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है । तथा सफेद पुनर्नवाकी जड़ व वरुणाकी जड़का क्काथ बनाकर पीनेसे अपक्वविद्रधि शान्त होती है । वरुणादिगणके क्काथमें रेहमिट्टी आदि डालकर पीनेसे अपक्व अभ्यन्तर विद्रधि शान्त होती है । इसी प्रकार पाठाकी जड़ शहद और चावलके जलके साथ पीनेसे मनुष्यकी अन्तर्विद्रधि शीघ्र ही शान्त होती है ॥ १२–१६ ॥

पक्वविद्रधिचिकित्सा ।

अपक्वे त्वेतदुद्दिष्टं पक्वे तु व्रणवत्क्रिया ॥
स्रुतेऽप्यूर्ध्वमधश्चैव मैरेयाम्लसुरासवैः ।
पेयो वरुणकादिस्तु मधुशिग्रुरसोऽथवा ॥ १७ ॥

अपक्वविद्रधिकी चिकित्सा ऊपर लिखी है । पक्व विद्रधिमें व्रणके समान क्रिया करनी चाहिये । ऊर्ध्वमार्ग अथवा अधोमार्गसे बहनेपर मैरेय (मद्यविशेष) काञ्जी, शराब और आसवके

साथ वरुणादिगणके कल्कका रस अथवा सोंठे सहिंजनका रस पीना चाहिये ॥ १७ ॥

रोपणं तैलम् ।

प्रियङ्गुधातकीलोध्रं कट्फलं तिनिशत्वचम् ।
एतैस्तैलं विपक्तव्यं विद्रधौ रोपणं परम् ॥ १८ ॥

प्रियंगु, धायके फूल, लोध्र, कैफरा तथा तिनिशकी छालके कल्कसे सिद्ध तैल परम रोपण (घाव भरनेवाला) होता है ॥ १८ ॥

इति विद्रध्यधिकारः समाप्तः ।

अथ व्रणशोथाधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

आदौ विम्लापनं कुर्याद् द्वितीयमवसेचनम् ।
तृतीयमुपनाहं च चतुर्थी पाटनाक्रियाम् ॥ १ ॥
पञ्चमं शोधनं चैव षष्ठं रोपणमिष्यते ।
एते क्रमा व्रणस्योक्ताः सप्तमो वैकृतापहः ॥ २ ॥

व्रणशोथमें सबसे पहिले विम्लापन (अंगुली आदिसे घिसकर सूजन मिटाना) करना चाहिये । व्रण शोथकी दूसरी अवस्थामें अवसेचन (शिराव्यध कर रक्त निकलना), तीसरी अवस्थामें पुल्टिस बांधनी, चौथी अवस्थामें फाड़ना पांचवीं अवस्थामें शोधन, छठी अवस्थामें रोपण तथा सातवीं, अवस्थामें उपद्रवोंका नाश इस तरह व्रणशोथकी चिकित्साके क्रम हैं ॥ १-२ ॥

वातशोथे लेपः ।

मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च भद्रदारु महौषधम् ।
अहिंस्रा चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोथहा ॥ ३ ॥

बिजौरानिम्बू, अरणी, देवदारु, सोंठ, जटामांसी, और रासनका लेप वातशोथको नष्ट करता है ॥ ३ ॥

अपरो लेपः ।

कल्कः काञ्जिकसम्पिष्टः स्निग्धः शाखोटकत्वचः ।
सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः ॥ ४ ॥

सिहोरेकी छालको काञ्जीके साथ पीस मिलाकर लेप करनेसे नागोंको गरुड़के समान वातज शोथको नष्ट करता है ॥ ४ ॥

पित्तागन्तुजशोथलेपाः ।

दूर्वा च नलमूलं च मधुकं चन्दनं तथा ।
शीतलाश्च गणाः सर्वे प्रलेपः पित्तशोथहा ॥ ५ ॥
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः ।
ससर्पिष्कैः प्रलेपः स्याच्छोथनिर्वापणः स्मृतः ॥६॥
आगन्तौ शोणितोत्थे च एष एव क्रियाक्रमः ।

दूब, नरसलकी जड़, मौरेठी, चन्दन तथा समस्त शीतल पदार्थोंका लेप पित्तशोथको नष्ट करता है । इसी प्रकार बरगद, गूलर, पीपल, पकरिया तथा बेतकी छालको घीके साथ लेप करनेसे शोथकी दाह शान्त होती है । आगन्तुज तथा रक्तज शोथमें भी यही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

कफजशोथचिकित्सा ।

अजगन्धाऽश्वगन्धा च काला सरलया सह ॥ ७ ॥
एकैषिकाऽजशृङ्गी च प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ।

अजवाइन, असगन्ध, काला निसोथ, सफेद निसोथ, अगस्तिके फूल और काकड़ाशिंगीका लेप कफज शोथको नष्ट करता है ॥ ७ ॥-

कफवातजशोथचिकित्सा ।

पुनर्नवाशिग्रुदारुदशमूलमहौषधैः ॥ ८ ॥
कफवातकृते शोथे लेपः कोष्णो विधीयते ।

पुनर्नवा, सहिंजन, देवदारु, दशमूल तथा सोंठका कुछ गरम गरम लेप वातकफज शोथको नष्ट करता है ॥ ८ ॥-

लेपव्यवस्था ।

न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तं च पतितं तथा ॥ ९ ॥
न च पर्युषितं शुष्यमाणं नैवावधारयेत् ।
शुष्यमाणमुपेक्षेत न लेपं पीडनं प्रति ॥ १० ॥
न चापि मुखमालिम्पेत्तेन दोषः प्रसिच्यते ।

रात्रिमें लेप न लगाना चाहिये । एक बार लगाया लेप यदि गिर गया हो तथा बासी तथा रक्खे ही रक्खे सूखा हुआ न लगाना । सूखता हुआ लेप छुड़ा डालना चाहिये । तथा व्रणके मुखपर लेप न लगाना चाहिये, जिससे मवाद निकलता रहे ॥ ९ ॥ १० ॥-

विम्लापनम् ।

स्थिरान्मन्दरुजः शोथान्स्नेहैर्वातकफापहैः ॥ ११ ॥
अभ्यज्य स्वेदयित्वा च वेणुनाड्या ततः शनैः ।
विम्लापनार्थं मृद्नीयात्तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ॥१२॥

मन्द पीड़ायुक्त अधिक समयसे स्थिर शोथोंको वातकफनाशक स्नेहोंसे मालिश कर बांसकी नलीसे नाड़ीस्वेद करना चाहिये । फिर तल अथवा अंगूठेसे विलयनके लिये रगड़ना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥

रक्तावसेचनम् ।

रक्तावसेचनं कुर्यादादावेव विचक्षणः ।
शोथे महति संरब्धे वेदनावति च व्रणे ॥ १३ ॥

यो न याति शमं लेपस्वेदसेकापतर्पणैः ।
सोऽपि नाशं व्रजत्याशु शोथः शोणितमोक्षणात् १४
एकतश्च क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः ।
रक्तं हि व्यम्लतां याति तच्चेन्नास्ति न चास्ति रुक् ॥ १५

बड़ी जकड़ाहटयुक्त सूजन तथा पीड़ायुक्त व्रणमें पहले ही रक्तमोक्षण करना चाहिये । जो सूजन लेप, स्वेद, सेंक और लंघनसे शान्त नहीं होती, वह भी रक्तमोक्षणसे शीघ्र ही शान्त हो जाती है । व्रणशोथमें समस्त क्रिया एक ओर और रक्तमोक्षण एक ओर है, क्योंकि रक्त ही विगड़ जाता है, अतः विकृत रक्त निकल जानेपर पीड़ा भी नहीं रहती ॥ १३-१५ ॥

पाटनम् ।

स चेदेवमुपक्रान्तः शोथो न प्रशमं व्रजेत् ।
तस्योपनाहैः पक्वस्य पाटनं हितमुच्यते ॥ १६ ॥

इस प्रकारकी चिकित्सा करनेपर भी यदि शोथ शान्त न हो, तो पुल्टिससे पकाकर चीर देना चाहिये ॥ १६ ॥

उपनाहाः ।

तैलेन सर्पिषा वापि ताभ्यां वा सक्तुपिण्डिका ।
सुखोष्णः शोथपाकार्थमुपनाहः प्रशस्यते ॥ १७ ॥
सतिला सातसीबीजा दध्यम्ला सक्तुपिण्डिका ।
सकिण्वकुष्ठलवणा शस्ता स्यादुपनाहने ॥ १८ ॥

तैलके साथ अथवा घीके साथ अथवा दोनोंके साथ वनायी गयी सत्तूकी पिण्डीको गरम कर सूजन पकानेके लिये प्रयोग करना चाहिये । अथवा तिल, अलसी, दही, सत्तू, शरावकिट्ट, कूठ और नमककी पुल्टिस वनाकर वांधना चाहिये ॥१७॥१८॥

गोदन्तप्रयोगः ।

बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि ।
मर्मोपरि च जाते च पक्के शोथे च दारुणे ।
गवा दन्तं जले घृष्टं विन्दुमात्रं प्रलेपयेत् ॥ १९ ॥
अत्यन्तकाठिने चापि शोथे पाचनभेदनम् ।

वालक, वृद्ध, सुकुमार, क्षीण, डरपोक तथा स्त्रियोंके पके हुए कठिन व्रण पर तथा मर्मस्थानपर उत्पन्न हुए व्रणपर गायका दांत जलमें घिसकर १ विन्दु लगाना चाहिये । यह अत्यन्त कठिन शोथको भी पकाकर फोड़ देता है ॥ १९ ॥

सर्पनिर्मोकयोगः ।

कटुतैलान्वितैर्लेपात्सर्पनिर्मोकभस्मभिः ॥ २० ॥
चयः शाम्यति गण्डस्य प्रकोपः स्फुटति द्रुतम् ।

सांपकी केंचुलकी भस्मको कड़ुए तेलके साथ मिलाकर लेप करनेसे शोथके सञ्चित दोष शान्त हो जाते हैं । तथा प्रकुपित दोष फूट जाते हैं ॥ २० ॥

दारणप्रयोगाः ।

चिरविल्वाग्निकौ दन्ती चित्रको हयमारकः ॥२१॥
कपोतकंकगृध्राणां पुरीषाणि च दारणम् ।
क्षारद्रव्याणि वा यानि क्षारो वा दारणः परः ॥२२
द्रव्याणां पिच्छिलानां तु त्वङ्मूलानि प्रपीडनम् ।
यवगोधूममाषाणां चूर्णानि च समासतः ॥ २३ ॥

कञ्जा, चीतकी, जड़, दन्ती, अजमोद, कनैर तथा कवूतर, कंक और गृध्रकी विष्ठा मिला गरम कर वान्धनेसे व्रण फूट जाता है । अथवा क्षारद्रव्य अथवा केवल क्षारके प्रयोगसे व्रण फूट जाता है । इसीप्रकार लासेदार द्रव्योंके त्वचा और मूल तथा जव, गेहूँ और उड़दके चूर्णोंका लेपन व्रणको फोड़ देता है ॥ २१-२३ ॥

प्रक्षालनम् ।

ततः प्रक्षालनं क्वाथः पटोलीनिम्बपत्रजः ।
अविशुद्धे विशुद्धे च न्यग्रोधादित्वगुद्भवः ॥ २४ ॥
पञ्चमूलद्वयं वाते न्यग्रोधादिश्च पैत्तिके ।
आरग्वधादिको योज्यः कफजे सर्वकर्मसु ॥ २५ ॥

यदि व्रण शुद्ध न हुआ हो, तो परवल व नीमकी पत्तियोंके क्वाथसे और यदि शुद्ध हो गया, तो न्यग्रोधादि पञ्चवल्कलके क्वाथसे धोना चाहिये । तथा वातमें दशमूल, पित्तमें न्यग्रोधादि और कफ तथा सव कामोंके लिये आरग्वधादि गणका क्वाथ प्रयुक्त करना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

तिलादिलेपः ।

तिलकल्कः सलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृद् घृतम् ।
मधुकं निम्बपत्राणि लेपः स्याद्व्रणशोधनः ॥ २६ ॥

तिलका कल्क, नमक, हल्दी, दारुहल्दी, निसोथ, घी, मोरेठी तथा नीमकी पत्तीको पीसकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होता है ॥ २६ ॥

व्रणशोधनलेपः ।

निम्बपत्रं तिला दन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम् ।
दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनकेशरी ॥ २७ ॥
एकं वा शारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम् ।
पटोलं तिलयष्ट्याह्वत्रिवृद्दन्तीनिशाद्वयम् ॥ २८ ॥
निम्बपत्राणि चालेपः सपटुर्व्रणशोधनः ।

नीमकी पत्ती, तिल, दन्ती, निसोथ, सेंधानमक, और शहदका लेप दुष्ट व्रणको शान्त करता तथा शोधनमें श्रेष्ठ है । अथवा अकेले सारिवाकी जड़ समस्त व्रणोंको शुद्ध करती है । ऐसे ही परवलकी पत्ती, तिल, मोरेठी, निसोथ, दन्ती, हल्दी, दारुहल्दी और नीमकी पत्तीको पीस नमक मिलाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

शोधनरोपणयोगाः ।

त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधादिर्बला कुशाः ॥२९॥
निम्बकोलकपत्राणि कषायः शोधने हितः ।
अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम् ॥ ३० ॥
कल्कः संरोपणः कार्यस्तिलानां मधुकान्वितः ।
निम्बपत्रमधुभ्यां तु युक्तः संशोधनः स्मृतः ॥३१॥
पूर्वाभ्यां सर्पिषा वापि युक्तश्चाप्युपरोहणः ।
निम्बपत्रतिलैः कल्को मधुना क्षतशोधनः ।
रोपणः सर्पिषा युक्तो यवकल्केऽप्ययं विधिः॥३२॥
निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुता ।
वर्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्रोपयेद्व्रणम् ॥३३॥

त्रिफला, कत्था, दारुहल्दी, न्यग्रोधादि गणकी औषधियां, खरेटी तथा कुश, नीम व बेरीकी पत्तीका क्काथ व्रणको शोधन करता है। इससे मांसस्थ, दुर्गन्धितमांसयुक्त न भरनेवाले व्रण शुद्ध होते हैं। इसी प्रकार तिलका कल्क मौरेठीके चूर्णके साथ घावको भरता है। तथा नीमकी पत्ती व शहद उसीमें मिला देनेसे शोधन करता है। अथवा पूर्वकी ओषधियां तिल व मुलेठी घी मिलाकर लगानेसे घाव भरता है। इसी प्रकार नीमकी पत्ती और तिलका कल्क शहदके साथ घावको शुद्ध करता तथा घीके साथ घावको भरता है। तथा यवकल्कमें भी यही विधि है। इसी प्रकार नीमकी पत्ती, घी, शहद, दारुहल्दी और मौरेठीकी वत्ती अथवा तिलका कल्क घावको शुद्ध कर भरता है ॥ २९-३३ ॥

रोपणयोगाः ।

सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टव्रणं प्रलेपेन ।
मधुयुक्ता शरपुङ्खा सर्वव्रणरोपणी कथिता ॥ ३४ ॥
मानुषशिरः कपालं तदस्थि वा लेपयेत मूत्रेण ।
रोपणमिदं क्षतानां योगशतैरप्यसाध्यानाम् ॥३५॥

सप्तच्छदके दूधका लेप व्रणको शांत करता है। इसी प्रकार शहदके साथ शरपुंखा समस्त घावोंको भरती है। मनुष्यके शिरका खपड़ा अथवा दूसरी हड्डी गोमूत्रके साथ पीसकर लेप करनेसे अनेक योगोंसे असाध्य घाव शांत हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

सूक्ष्मास्यव्रणचिकित्सा ।

व्रणान्विशोधयेद्वर्त्या सूक्ष्मास्यान्मर्मसन्धिगान् ।
अभयात्रिवृतादन्तीलाङ्गलीमधुसैन्धवैः ॥ ३६ ॥
सुपर्वीपत्रपत्तूरकर्णमोटकुठेरकैः ।
पृथग्लेपे प्रलेपेन गम्भीरव्रणरोपणाः ॥ ३७ ॥
पञ्चवल्कलचूर्णैर्वा शुक्तिचूर्णसमन्वितैः ।
धातकीचूर्णलोध्रैर्वा तथा रोहन्ति वै व्रणाः ॥३८॥

सूक्ष्म मुखवाले मर्म और सन्धिगत व्रणोंके भीतर वत्ती रखकर उन्हें शुद्ध करना चाहिये। तथा बड़ी हर्रका छिल्का, निसोथ, दन्ती, करियारी, शहद, सेंधानमक, कालाजीराके पत्र, लाल चन्दन, वबई और मरुवा इनमेंसे किसी एकके लेप करनेसे गम्भीर व्रण शुद्ध होते हैं। अथवा शुक्तिचूर्णके साथ पञ्चवल्कल चूर्णसे अथवा धायके चूर्ण व लोधसे वे घाव भर जाते हैं ॥ ३६-३८ ॥

दाहादिचिकित्सा ।

सदाहा वेदनावन्तो व्रणा ये मारुतोत्तराः ।
तेषां तिलानुमांश्चैव भृष्टान्पयसि निर्वृतान् ॥ ३९ ॥
तेनैव पयसा पिष्ट्वा दद्यादालेपनं भिषक् ।
वाताभिभूतान्सास्रावान्धूपयेदुग्रवेदनान् ॥ ४० ॥

जो व्रण दाह और वेदनाके सहित तथा वातप्रधान हों, उनमें तिल और अलसीको भून दूधमें पका उसी दूधके साथ पीसकर लेप करना चाहिये। तथा वातप्रधान स्राव युक्त उग्र वेदनावाले व्रणोंको धुपाना चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥

यवादिधूपः ।

यवाज्यभूर्जमदनश्रीवेष्टकसुराह्वयैः ।
श्रीवासगुग्गुल्वगुरुशालनिर्यासधूपिताः ॥ ४१ ॥
कठिनत्वं व्रणा यान्ति नश्यन्त्युग्राश्च वेदनाः॥४२॥

यव, घी, भोजपत्र, मैनफल, गन्धा विरोजा, देवदारु, लोहवान, गुग्गुलु, अगर तथा रालकी धूप देनेसे व्रण कड़े हो जाते हैं और उग्र पीड़ा शान्त होती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

व्रणदाहघ्नो लेपः ।

तिलाः पयः सिता क्षौद्रं तैलं मधुकचन्दनम् ।
लेपनं शोथरुग्दाहरक्तं निर्वापयेद्व्रणात् ॥ ४३॥

तिल, दूध, मिश्री, शहद, तैल, मौरेठी, तथा चन्दनका लेप व्रणके शोथ, पीड़ा और दाह व लालिमाको शान्त करता है ॥ ४३ ॥

अग्निदग्धव्रणचिकित्सा ।

पित्तविद्रधिवीसर्पशमनं लेपनादिकम् ।
अग्निदग्धे व्रणे सम्यक्प्रयुञ्जीत चिकित्सकः॥
महाराष्ट्रीजटालेपो दग्धपिष्टावचूर्णितम् ।
जीर्णगेहतृणाच्चूर्णं दग्धव्रणहितं मतम् ॥ ४५ ॥

अग्निदग्धज-व्रणमें पित्तज विद्रधि और विसर्प शांत करनेवाले लेपादिका प्रयोग अच्छी तरहसे वैद्यको करना चाहिये। तथा जलपिप्पलीका लेप अथवा पुराने मकानोंके तृणको जला पीसकर लेप करना जले हुए व्रणोंके लिये हितकर है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

जीरकघृतम्।

जीरककल्कं पश्चात्सिक्थकसर्जरसमिश्रितं हरति।
घृतमभ्यङ्गात्पावकदग्धजदुःखं क्षणार्धेन ॥ ४६ ॥

जीराके कल्कसे सिद्ध घृतमें मोम व राल मिलाकर लगानेसे अग्निदग्धज दुःख क्षण भरमें शान्त हो जाता है ॥ ४६ ॥

विविधा योगाः।

अन्तर्दग्धकुठेरको दहनजं लेपान्निहन्ति व्रण-
मश्वत्थस्य विशुष्कवल्कलकृतं चूर्णं तथा गुण्डनात्।
अभ्यङ्गाद्विनिहन्ति तैलमखिलं गण्डूपदैः साधितं
पिष्ठा शाल्मलितूलकैर्जलगता लेपात्तथा वालुका४७

अन्तर्दग्ध सफेद तुलसीका लेप करनेसे अग्निसे जले व्रण शांत होते हैं। तथा पीपलकी सूखी छालके चूर्णको उर्रानेसे भी शान्ति होती है। तथा केचुवोंसे सिद्ध तैल अग्नि दग्धज समग्र पीड़ा शान्त करते हैं। तथा सेमरकी रुईके साथ वालूको जलमें पीसकर लेप करनेसे शान्ति होती है ॥ ४७ ॥

सद्योव्रणचिकित्सा।

सद्यः क्षतव्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत्।
यष्टीमधुककल्केन किञ्चिदुष्णेन सर्पिषा ॥ ४८ ॥
बुद्ध्वागन्तुव्रणं वैद्यो घृतं क्षौद्रसमन्वितम्।
शीतां क्रियां प्रयुञ्जीत पित्तरक्तोष्मनाशिनीम्॥४९॥
कान्तकामकमेकं सुश्लक्ष्णं गव्यसर्पिषा पिष्टम्।
शमयति लेपान्नियतं व्रणमागन्तूद्भवं न सन्देहः ५०
अपामार्गस्य संसिक्तं पत्रोत्थेन रसेन वा।
सद्योव्रणेषु रक्तं तु प्रवृत्तं परितिष्ठति ॥ ५१ ॥
कर्पूरपूरितं वद्धं सघृतं संप्ररोहति।
सद्यः शस्त्रक्षतं पुंसां व्यथापाकविवर्जितम् ॥५२॥
शरपुंखा काकजंघा प्रसूतमहिषीमलम्।
लज्जावती च सद्यस्कव्रणघ्नं पृथगेव तु ॥ ५३ ॥
शुनो जिह्वाकृतश्चूर्णः सद्यःक्षतविरोहणः।
चक्रतैलं क्षते विद्धे रोपणं परमं मतम् ॥ ५४ ॥

शूलयुक्त व्रण सद्योव्रण (तत्काल लगे घाव) में मौरेठीसे सिद्ध घीका कुछ गरम गरम सिंचन करना चाहिये। तथा वैद्य आगन्तुकव्रण जानकर उसमें प्रथम घी व शहदको लगावे। फिर पित्तरक्त और गर्मी नष्ट करनेवाली शीतल चिकित्सा करे। एक नागरमोथाकी जड़ गायके घीके साथ पीसकर लेप करनेसे आगन्तुक व्रण निःसन्देह नष्ट होता है। तात्कालिक घावके वहते हुए रक्तको लटजीरेके पत्तोंके रससे सिञ्चन कर रोकना चाहिये। तथा घीके साथ कपूर भरकर बान्ध देनेसे घाव भर जाता है। पुरुषोंके सद्योव्रण जिनमें पीड़ा नहीं होती या जो पके नहीं हैं, उनको शरपुंखा, काकजंघा, ब्याई भैंसीका गोवर तथा लज्जावंती ये सब अलग अलग तत्काल शान्त करते हैं। कुत्तेकी जिह्वाका चूर्ण सद्योव्रणको भरता है। तथा चक्रतैल (ताजा तैल) क्षत तथा विन्धेको भरनेवाला है ॥ ४८–५४ ॥

नष्टशल्यचिकित्सा।

यवक्षारं भक्षयित्वा पिण्डं दद्याद्व्रणोपरि।
शृगालकोलिमूलेन नष्टशल्यं विनिःसरेत् ॥ ५५ ॥
लाङ्गलीमूललेपाद्वा गवाक्षीमूलतस्तथा।

जवाखार खाकर घावके ऊपर छोटे वेरकी जड़का कल्क रखना चाहिये। इससे नष्ट शल्य निकल आता है। इसी प्रकार कलिहारीकी जड़के लेप तथा इन्द्रायणकी जड़के लेपसे भी नष्ट शल्य निकल आता है ॥ ५५ ॥–

विशेषचिकित्सा।

क्षतोष्मणो निग्रहार्थं तत्कालं विसृतस्य च ॥ ५६ ॥
कषायशीतमधुराः स्निग्धा लेपादयो हिताः।
आमाशयस्थे रुधिरे वमनं पथ्यमुच्यते ॥ ५७ ॥
पक्वाशयस्थे देयं च विरेचनमसंशयम्।
क्वाथो वंशत्वगेरण्डश्वदंष्ट्राश्मभिदा कृतः ॥ ५८ ॥
सहिंगुसैन्धवः पीतः कोष्ठस्थं स्रावयेदसृक्।
यवकोलकुलत्थानां निःस्नेहेन रसेन च ॥ ५९ ॥
भुंजीतान्नं यवागूं वा पिवेत्सैन्धवसंयुताम्।
अत्यर्थमस्रं स्रवति प्रायशो यत्र विक्षते ॥ ६० ॥
ततो रक्तक्षयाद्वायौ कुपितेऽतिरुजाकरे।
स्नेहपानं परीषेकं स्नेहलेपोपनाहनम् ॥ ६१ ॥
स्नेहवस्तिं च कुर्वीत वातघ्नौषधसाधिताम्।
इति साप्ताहिकः प्रोक्तः सद्योव्रणहितो विधिः॥६२॥
सप्ताहात्परतः कुर्याच्छारीरव्रणवत्क्रियाम्।

तत्काल लगे हुए घावकी गर्मी शान्त करनेके लिये तथा रक्तको रोकनेके लिये कषैले, ठण्ढ़े, मधुर, तथा चिकने लेपादिक हितकर हैं। आमाशयमें यदि रक्त भर गया हो, तो वमन कराना चाहिये। तथा पक्वाशयमें भरे रक्तको निकालने के लिये विरेचन देना चाहिये। वांसकी छाल, एरण्ड, गोखुरू व पाषाणभेदका क्वाथ हींग व सेंधानमक मिलाकर पीनेसे कोष्ठमें भरा हुआ रक्त वह जाता है। तथा यव, वेर व कुलथीके स्नेहरहित रससे भोजन करे। अथवा इन्हींकी यवागूमें सेंधानमक मिलाकर पीवे। तथा अधिक रक्त वह जानेपर वायु कुपित होकर जिस व्रणमें पीड़ा अधिक करे, उसमें स्नेहपान, स्नेहसिञ्चन तथा स्निग्ध पदार्थोंका लेप व उपनाहन करना चाहिये। तथा वातनाशक औषधियोंसे सिद्ध क्वाथ करके स्नेहवस्तिका प्रयोग करना चाहिये। यह सात

दिनतक सद्योव्रणमें करने योग्य चिकित्सा बतायी है । सप्ताहके अनन्तर शारीरव्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये॥५६-६२॥

व्रणक्रिमिचिकित्सा ।

करञ्जारिष्टनिर्गुंडीरसो हन्याद्व्रणक्रिमीन् ॥ ६३ ॥
कलायविदलीपत्रं कोषाम्रास्थि च पूरणात् ।
सुरसादिरसैः सेको लेपनं स्वरसेन वा ॥ ६४ ॥
निम्बसम्पाकजात्यर्कसप्तपर्णाश्ववारकाः ।
क्रिमिघ्ना मूत्रसंयुक्ताः सेकालेपनधावनैः ॥ ६५ ॥
प्रच्छाद्य मांसपेश्या वा क्रिमीनपहरेद्व्रणात् ।
लशुनेनाथवा दद्याल्लेपनं क्रिमिनाशनम् ॥ ६५ ॥

कञ्जा, नीम और सम्भालूके पत्तोंका रस घावके कीडोंको मारता है । इसी प्रकार मटरकी पत्ती तथा छोटे आमकी गुठलीका लेप अथवा तुलसी आदिके रसका सेक अथवा लेप क्रिमियोंको नष्ट करता है । इसी प्रकार नीमकी छाल, अमलतास, चमेली, आक, सातवन तथा कनैरको पीस गोमूत्रमें मिलाकर सिञ्चन, लेप तथा प्रक्षालन करनेसे क्रिमि नष्ट हो जाते हैं। अथवा घावके ऊपर मांसका टुकड़ा रखना चाहिये, उसमें जब क्रिमि चिपट जायँ, तब उसे घावके ऊपरसे हटा देना चाहिये । अथवा लहसुनका लेप करना चाहिये । इससे क्रिमि नष्ट हो जाते हैं ॥ ६३-६६ ॥

त्रिफलागुग्गुलुवटकः ।

ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो
व्रणा महान्तः सरुजः सशोथाः ।
प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन
पीतेन शान्तिं त्रिफलारसेन ॥ ६७ ॥

जो व्रण सड़े, पके, स्राव, गन्ध, पीड़ा तथा शोथयुक्त होते हैं, वे गुग्गुलु मिलाकर त्रिफलारसको पीनेसे शान्त हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

त्रिफलागुग्गुलुवटकः ।

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृतः ।
निर्यन्त्रणो विबन्धघ्नो व्रणशोधनरोपणः ॥ ६८ ॥
अमृतागुग्गुलुः शस्तो हितं तैलं च वज्रकम् ।

त्रिफला चूर्णके साथ गुग्गुलुकी बनायी हुई गोलियोंका सेवन करनेमें कोई पथ्यका यन्त्रण नहीं है । इससे विबन्ध नष्ट होता, घाव शुद्ध होकर भरता है । तथा इसमें अमृतागुग्गुलु व वज्रक तैल हितकर है ॥ ६८ ॥-

विडंगादिगुग्गुलुः ।

विडङ्गत्रिफलाव्योपचूर्णं गुग्गुलुना समम् ॥ ६९ ॥
सर्पिषा वटकीकृत्य खादेद्वा हितभोजनः ।
दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीव्रणापहः ॥ ७० ॥

वायविडंग, त्रिफला, तथा त्रिकटुका चूर्ण समान भाग गुग्गुलुके साथ घी मिला गोली बनाकर पथ्य भोजनके साथ खाते रहनेसे दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह, कुष्ठ और नाड़ीव्रण नष्ट होते हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अमृतागुग्गुलुः ।

अमृतापटोलमूलत्रिफलात्रिकटुक्रिमिघ्नानाम् ।
समभागानां चूर्णं सर्वसमो गुग्गुलोर्भागः ॥ ७१ ॥
प्रतिवासरमेकैकां गुडिकां खादेद् द्रंक्षणप्रमाणाम् ।
जेतुं व्रणान्वातरक्तगुल्मोदरश्वयथुपाण्डुरोगादीन् ७२

गुर्च, परवलकी जड़, त्रिफला, त्रिकटु, तथा वायविडंग प्रत्येक समान भाग चूर्ण कर सबके समान गुग्गुलु मिला प्रतिदिन १ तो० की मात्राका सेवन करनेसे व्रण, वातरक्त, गुल्म, उदर, सूजन तथा पांडु आदि रोग नष्ट होते हैं॥७१॥७२॥

जात्याद्यं घृतम् ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशाशारिवा-
मञ्जिष्ठाभयतुत्थसिक्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः ।
सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो
गम्भीराःसरुजो व्रणाःसगतिकाःशुष्यन्ति रोहन्ति च ७३

चमेली अथवा जावित्री, नीम तथा परवलकी पत्ती, कुटकी, दारुहल्दी, हल्दी, शारिवा, मजीठ, खश, तूतिया, मोम, मौरेठी, कञ्जाके बीज प्रत्येक समान भागका कल्क मिलाकर सिद्ध किया गया घृत सूक्ष्ममुखवाले, मर्मस्थानके, बहते हुए, गहरे, पीड़ायुक्त नासूर सूख जाते तथा भर जाते हैं॥७३॥

गौराद्यं घृतं तैलं च ।

गौरा हरिद्रा मञ्जिष्ठा मांसी मधुकमेव च ।
प्रपौण्डरीकं ह्रीवेरं भद्रमुस्तं सचन्दनम् ॥ ७४ ॥
जातीनिम्बपटोलं च करञ्जं कटुरोहिणी ।
मधूच्छिष्टं समधुकं महामेदा तथैव च ॥ ७५ ॥
पञ्चवल्कलतोयेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
एष गौरो महावीर्यः सर्वव्रणविशोधनः ॥ ७६ ॥
आगन्तुः सहजश्चैव सुचिरोत्थाश्च ये व्रणाः ।
विषमामपि नाडीं च शोधयेच्छीघ्रमेव च ॥ ७७ ॥
गौराद्यं जातिकाद्यं च तैलमेवं प्रसाध्यते ।
तैलं सूक्ष्मानने दुष्टे व्रणे गम्भीर एव च ॥ ७८ ॥

गोरोचन, हल्दी, मजीठ, जटामांसी, मौरेठी, पुण्डरिया, सुगन्धवाला, नागरमोथा, चन्दन, चमेली अथवा जावित्री,

नीमकी पत्ती, परवलकी पत्ती, कञ्जा, कुटकी, मोम, मौरेठी तथा महामेदाका कल्क व पञ्चवल्कलका क्काथ मिलाकर १ प्रस्थ घृत पकाना चाहिये। यह 'गौरादि घृत' महाशक्तिशाली, समस्त व्रणोंको शुद्ध करनेवाला, आगन्तुक, सहज (जन्मसे ही होनेवाले) पुराने घावोंको तथा नासूरको भी शुद्ध करता है। इसी प्रकार गौरादि और जात्यादि तैल भी सिद्ध किया जाता है। तैल सूक्ष्म मुखवाले, दुष्ट और गम्भीर व्रणको शान्त करता है ॥ ७४-७८ ॥

करंजाद्यं घृतम् ।

नक्तमालस्य पत्राणि तरुणानि फलानि च ।
सुमनायाश्च पत्राणि पटोलारिष्टयोस्तथा ॥ ७९ ॥
द्वे हरिद्रे मधूच्छिष्टं मधुकं तिक्तरोहिणी ।
मञ्जिष्ठाचन्दनोशीरमुत्पलं शारिवे त्रिवृत् ।
एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८० ॥
दुष्टव्रणप्रशमनं तथा नाडीविशोधनम् ।
सद्यश्छिन्नव्रणानां च करञ्जाद्यमिहेष्यते ॥ ८१ ॥

कञ्जके पत्ते, तथा कच्चे फल, चमेलीके पत्ते, परवल और नीमकी पत्ती, हल्दी, दारुहल्दी, मोम, मौरेठी, कुटकी, मजीठ, चन्दन, खश, नीलोफर, सारिवा, काली सारिवा तथा निसोथ, प्रत्येकका एक एक तोला कल्क छोड़ १ प्रस्थ घृत पकाना चाहिये। यह घृत दुष्ट व्रणोंको शान्त करता तथा नाड़ीव्रणको शुद्ध करता और सद्योव्रणोंको हितकर है ॥ ७९-८१ ॥

प्रपौण्डरीकाद्यं घृतम् ।

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ।
सहरिद्रैः शृतं सर्पिः सक्षीरं व्रणरोपणम् ॥ ८२ ॥

पुण्डरिया, मजीठ, मौरेठी, खश, पद्माख तथा हल्दीके कल्क और दूधके साथ सिद्ध घृत घावको भरता है ॥ ८२ ॥

तिक्ताद्यं घृतम् ।

तिक्तासिक्थनिशायष्टीनक्ताह्वफलपल्लवैः ।
पटोलमालतीनिम्बपत्रैर्व्रण्यं घृतं पचेत् ॥ ८३ ॥

कुटकी, मोम, हल्दी, मौरेठी, कञ्जाके फल और पत्ती तथा परवल, चमेली और नीमकी पत्तीसे सिद्ध घृत घावके लिये हितकर है ॥ ८३ ॥

विपरीतमल्लतैलम् ।

सिन्दूरकुष्ठविषहिंगुरसोनचित्र-
बाणाङ्घ्रिलांगलिककल्कविपक्वतैलम् ।
प्रासादमन्त्रयुतफूत्कृतशुभ्रफेनो
दुष्टव्रणप्रशमनो विपरीतमल्लः ॥ ८४ ॥
खड्गाभिघातगुरुगण्डमहोपदंश-
नाडीव्रणव्रणविचर्चिककुष्ठपामाः ।
एतान्निहन्ति विपरीतकमल्लनाम
तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्य ॥ ८५ ॥

सिंदूर, कूठ, सींगिया, हींग, लहसुन, चीतकी जड़, मूञ्जकी जड़ तथा कलिहारीके कल्कसे सिद्ध तैल, जिसका फेन प्रसन्नताकारक मन्त्रोंसे फूंक डालकर शान्त किया गया है दुष्ट व्रणोंको शान्त करनेवाला "विपरीतमल्लनामक" है। यह तलवारके घाव, बड़े गलगण्ड, उपदंश, नाड़ीव्रण, व्रण, विचर्चिका, कुष्ठ तथा पामाको शान्त करता है। इसमें इच्छानुसार सोना, बैठना और भोजन करना चाहिये (इसमें तैल कड़ुआ ही लेना चाहिये) ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अङ्गारकं तैलम् ।

कुठारकात्पलशतं साधयेन्नल्वणेऽम्भसि ।
तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८६ ॥
कल्कैः कुठारापामार्गप्रोष्ठिकामक्षिकायुतैः ।
एतदंगारकं नाम व्रणशोधनरोपणम् ।
नाडीषु परमोऽभ्यंगो निजास्वागन्तुकीषु च ॥८७॥

कुठारक (बबई) ५ सेर, जल २५ सेर ९॥ छ० मिलाकर पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर तैल १ प्रस्थ (१२८ तो०) तथा बबई, लटजीरा, प्रोष्ठिका मछली भेद, तथा मक्षिकाका कल्क मिलाकर पकाना चाहिये। इसे "अङ्गारक तैल" कहते हैं। यह शारीर तथा आगन्तुक व्रण या नाड़ीव्रणके लिये परमोत्तम है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

प्रपौण्डरीकाद्यं तैलम् ।

प्रपौण्डरीकं मधुकं काकोल्यौ द्वे सचन्दने ।
सिद्धमेभिः समं तैलं तत्परं व्रणरोपणम् ॥ ८८ ॥

पुण्डरिया, मौरेठी, काकोली, क्षीरकाकोली तथा चन्दनके कल्कसे सिद्ध तैल घावका रोपण करता है ॥ ८८ ॥

दूर्वाद्यं तैलं घृतं च ।

दूर्वास्वरससिद्धं वा तैलं कम्पिल्लकेन च ।
दार्वीत्वचश्च कल्केन प्रधानं रोपणं व्रणे ॥ ८९ ॥
येनैव विधिना तैलं घृतं तेनैव साधयेत् ।
रक्तपित्तोत्तरं ज्ञात्वा सर्पिरेवावचारयेत् ॥ ९० ॥

दूर्वाके स्वरस तथा कबीला और दारुहल्दीकी छालके कल्कसे सिद्ध तैल घावको भरता है। जिस विधिसे तैल लिखा है, उसी विधिसे घृत भी पकाना चाहिये और रक्तपित्त प्रधान समझकर घीका ही प्रयोग करना चाहिये ॥ ८९ ॥ ९० ॥

मञ्जिष्ठाद्यं घृतम् ।

मञ्जिष्ठां चन्दनं मूर्वां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ।
सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमिष्यते ॥ ९१ ॥

मञ्जीठ, चन्दन, तथा मूर्वाके कल्कसे सिद्ध घृत समस्त अग्निसे जले हुए घावोंके लिये लाभदायक होता है ॥ ९१ ॥

पाटलीतैलम् ।

सिद्धं कषायकल्काभ्यां पाटल्याः कटुतैलकम् ।
दग्धव्रणरुजास्रावदाहविस्फोटनाशनम् ॥ ९२ ॥

पाढ़लके क्काथ व कल्कसे सिद्ध कडुआ तैल जले व्रणोंकी पीड़ा, स्राव, जलन व फफोलोंको नष्ट करता है ॥ ९२ ॥

चन्दनाद्यं यमकम् ।

चन्दनं वटशुङ्गं च मञ्जिष्ठा मधुकं तथा ।
प्रपौण्डरीकं मूर्वा च पतङ्गं धातकी तथा ॥ ९३ ॥
एभिस्तैलं विपक्तव्यं सर्पिःक्षीरसमन्वितम् ।
अग्निदग्धव्रणेष्विष्टं म्रक्षणाद्रोपणं परम् ॥ ९४ ॥

चन्दन, बरगदके कोमल अंकुर, मञ्जीठ, मौरेठी, पुण्डरिया, मूर्वा, लाल चन्दन तथा धायके फूल इनका कल्क छोड़कर तैल, घी और दूध मिलाकर पकाना चाहिये । यह स्नेह लगानेसे अग्निदग्धव्रण शीघ्र भर जाते हैं ॥ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

मनःशिलादिलेपः ।

मनःशिलाले मञ्जिष्ठा सलाक्षा रजनीद्वयम् ।
प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः परः ॥ ९५ ॥

मनशिल, हरताल, मञ्जीठ, लाख, हल्दी व दारुहल्दी, इनका घी व शहदके साथ लेप त्वचाको शुद्ध करता है ॥ ९५ ॥

अयोरजआदिलेपः ।

अयोरजः सकाशीशं त्रिफलाकुसुमानि च ।
प्रलेपः कुरुते कार्ष्ण्यं सद्य एव नवत्वचि ॥ ९६ ॥

लौहचूर्ण, कासीस तथा त्रिफलाके फूलोंका लेप नवीन त्वचाको काला करता है ॥ ९६ ॥

सवर्णकरणो लेपः ।

कालीयकलताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमैः ।
लेपः सगोमयरसः सवर्णकरणः परः ॥ ९७ ॥

दारुहल्दी, दूब, आमकी गुठली, नागकेशर, कालोनिशोथ तथा रसौतका गोबरके रसके साथ लेप करनेसे त्वचा समानवर्णवाली होती है ॥ ९७ ॥

रोमसञ्जननो लेपः ।

चतुष्पदां हि त्वग्रोमखुरशृङ्गास्थिभस्मना ।
तैलाक्ता चूर्णिता भूमिर्भवेद्रोमवती पुनः ॥ ९८ ॥

चौपायोंकी खाल, रोम, खुर, शृंग और हड्डियोंकी भस्मको तैलमें मिलाकर लगानेसे व्रणवाले स्थानपर रोम जम जाते हैं ॥ ९८ ॥

व्रणग्रन्थिचिकित्सा ।

व्रणग्रन्थिं ग्रन्थिवच्च जयेत्क्षारेण वा भिषक् ॥९९॥

घावकी गांठकी चिकित्सासे अथवा प्रयोगसे व्रणग्रन्थिको शान्त करना चाहिये ॥ ९९ ॥

इति व्रणशोथाधिकारः समाप्तः ।

अथ नाडीव्रणाधिकारः ।

नाडीव्रणचिकित्साक्रमः ।

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणापाटय कर्मवित् ।
सर्वव्रणक्रमं कुर्याच्छोधनं रोपणादिकम् ॥ १ ॥

नाड़ी (नासूर) की गतिका पता लगा शस्त्रसे चीरकर शोधन तथा रोपणादि समस्त व्रणचिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

वातजचिकित्सा ।

नाडीं वातकृतां साधुपाटितां लेपयेद्भिषक् ।
प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ २ ॥

वातज–नाड़ीको ठीक चीरकर लटजीराके फल और तिलको पीसकर लेप करना चाहिये ॥ २ ॥

पित्तकफशल्यजचिकित्सा ।

पैत्तिकीं तिलमञ्जिष्ठानागदन्तीनिशायुगैः ।
श्लैष्मिकीं तिलयष्ट्याह्वनिकुम्भारिष्टसैन्धवैः ।
शल्यजां तिलमध्वाज्यैर्लेपयेच्छिन्नशोधिताम् ॥३॥

पित्तज–नासूरमें तिल, मञ्जीठ, नागदमन, हल्दी तथा दारुहल्दीको पीसकर तथा कफजमें तिल, मौरेठी, दन्ती, नीम तथा सेंधानमकको पीसकर लेप करे तथा शल्यजन्यको भी पूर्ववत् चीरकर तथा शोधन कर तिल, मधु और घृतसे लेप करना चाहिये ॥ ३ ॥

सूत्रवर्तिः ।

आरग्वधनिशाकालाचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता ।
सूत्रवर्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥ ४ ॥

अमलतास, हल्दी तथा निसोथके चूर्णको घी और शहदमें मिला लपेटकर बनायी गई सूत्रवर्ती (व्रणके अन्दर भरनेसे) व्रणको शुद्धकर नासूरको नष्ट करती है॥ ४ ॥

वर्तयः ।

घोण्टाफलत्वङ्‌ मदनात्फलानि
पूगस्य च त्वक्‌ लवणं च मुख्यम्‌ ।
स्नुह्यर्कदुग्धेन सहैष कल्को
वर्तीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम्‌ ॥ ५ ॥
वर्तीकृतं माक्षिकसंप्रयुक्तं
नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं वा ।
दुष्टव्रणे यद्विहितं च तैलं
तत्सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति ॥ ६ ॥
जात्यर्कसम्पाककरञ्जदन्ती-
सिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः ।
वर्तिः कृता हन्त्यचिरेण नाडीं
स्नुक्क्षीरपिष्टा सह माक्षिकेण ॥ ७ ॥

बेरके फल और छाल, मैनफल, सुपारीकी छाल तथा सेंधानमकके कल्कमें सेहुण्ड और आकका दुग्ध मिला कर बनायी गयी वत्ती शीघ्र ही नासूरको नष्ट करती है । तथा केवल सेंधानमककी वत्ती बना शहद मिलाकर रखनेसे नासूर ठीक होता है। इसी प्रकार दुष्ट व्रणके लिये जो तैल कहे हैं, वे भी नासूरको शुद्ध करते हैं । तथा चमेली, आक, कञ्जा, अमलतास, दन्ती, सेंधानमक, कालानमक और जवाखारको पीस सेहुण्डदुग्ध और शहद मिलाकर लगानेसे नासूर नष्ट होता है ॥ ५-७ ॥

कंगुनिकामूलचूर्णम्‌ ।

माहिषदधिकोद्रवान्नमिश्रं हरति चिरविरूढां च ।
भुक्तं कंगुनिकामूलचूर्णमतिदारुणां नाडीम्‌ ॥ ८ ॥

भैंसीका दही और कोदवके भातके साथ कांकुनकी जड़के चूर्णको खानेसे नासूर शीघ्र ही शान्त होता है ॥ ८ ॥

क्षारप्रयोगः ।

कृशदुर्बलभीरूणां गतिर्मर्माश्रिता च या ।
क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण कदाचन ॥ ९ ॥
एषण्या गतिमन्विष्य क्षारसूत्रानुसारिणीम्‌ ।
सूचीं निदध्यादभ्यन्तश्चोन्नाम्याशु च निर्हरेत्‌ १०
सूत्रस्यान्तं समानीय गाढं बन्धं समाचरेत्‌ ।
ततः क्षीणबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत्प्रवेशयेत्‌ ॥ ११ ॥
क्षाराक्तं मतिमान्वैद्यो यावन्न छिद्यते गतिः ।
भगन्दरेऽप्येष विधिः कार्यो वैद्येन जानता ॥ १२ ॥
अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधापयेत्‌ ।
सूचीभिर्यववक्त्राभिराचितं चासमन्ततः ॥ १३ ॥
मूले सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्ने चोपचरेद्‌ व्रणम्‌ ।

पतले, कमजोर, डरपोक पुरुषोंकी नाड़ी तथा जो मर्मस्थानमें हुई है, उसे शस्त्रसे कभी न काटना चाहिये । पता लगानेवाली सलाईसे कहांतक नाड़ीकी गति अर्थात्‌ 'पूयकी उत्पत्ति हो गयी है, इसका पता लगाकर उतना ही लम्बा क्षारसूत्र सूचीके द्वारा अन्दर रखना चाहिये । और सुईको कुछ ऊपर उठाकर निकाल लेना चाहिये । तथा सूत्र निकल न जाय, इस लिये ऊपरसे कसकर बांध देना चाहिये । तथा जब सूत्रमें क्षारकी शक्तिकी शिथिलता प्रतीत होने लगे, तब दूसरा क्षारसूत्र प्रविष्ट करना चाहिये, जबतक गति कट न जावे । भगन्दरमें भी यही चिकित्सा वैद्यको करनी चाहिये । अर्बुद आदिके ऊपर१ उठाकर चारों ओर यवके समान मुखवाली सुइयोंसे कसकर क्षारसूत्रसे बान्धना चाहिये । तथा कस जानेपर व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९-१३ ॥

सप्ताङ्गगुग्गुलुः

गुग्गुलुस्त्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितः ।
नाडीदुष्टव्रणशूलभगन्दरविनाशनः ॥ १४ ॥

गुग्गुलु, त्रिफला तथा त्रिकटुका समान भाग ले घी मिला सेवन करनेसे नाड़ी, दुष्टव्रण, शूल और भगन्दर नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

सर्जिकाद्यं तैलम्‌ ।

सर्जिकासिन्धुदन्त्यग्निरूपिकानलनीलिका ।
खरमञ्जरिबीजेषु तैलं गोमूत्रपाचितम्‌ ।
दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडीव्रणापहम्‌ ॥ १५ ॥

सज्जीखार, सेंधानमक, दन्ती, चीतेकी जड़, सफेद आक, नल, नील और अपामार्ग बीजके कल्क तथा गोमूत्रमें सिद्ध तैल दुष्टव्रण तथा कफज नाड़ीव्रणको शान्त करता है ॥ १५ ॥

कुम्भीकाद्यं तैलम्‌ ।

कुम्भीकखर्जूरकपित्थबिल्व-
वनस्पतीनां तु शलाटुवर्गे ।
कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैल-
मावाप्य मुस्तं सरलं प्रियंगुम्‌ ॥ १६ ॥
सौगन्धिकामोचरसाहिपुष्प-
लोध्राणि दत्त्वा खलु धातकीं च ।
एतेन शल्यप्रभवा हि नाडी
रोहेद्‌ व्रणो वै सुखमाशु चैव ॥ १७ ॥

सुपारी, छुहारा, कैथा, बेल और अन्य वनस्पतियोंके कच्चे फलोंके क्वाथमें तैल पकाना चाहिये । तथा नागरमोथा, धूपकाष्ठ, प्रियंगु, दालचीनी, तेजपात, इलायची, मोचरस, नागकेशर, लोध और धायके फूलका कल्क छोड़ना चाहिये । इससे शल्यज-नाड़ी तथा व्रण भर जाता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

भल्लातकाद्यं तैलम् ।

भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन
सिद्धं विडङ्गरजनीद्वयचित्रकैश्च ।
स्यान्मार्कवस्य च रसेन निहन्ति तैलं
नाडीं कफानिलकृतामपचीं व्रणांश्च ॥१८॥

भिलावां, अकौड़ा, काली मिर्च, सेंधानमक, वायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी व चीतेकी जड़के कल्क तथा भांगरेके रससे सिद्ध तैल कफवातज नाड़ी तथा अपची और व्रणोंको नष्ट करता है ॥ १८ ॥

निर्गुण्डीतैलम् ।

समूलपत्रां निर्गुण्डीं पीडयित्वा रसेन तु ।
तेन सिद्धं समं तैलं नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ १९ ॥
हितं पामापचीनां तु पानाभ्यञ्जननावनैः ।
विविधेषु च स्फोटेषु तथा सर्वव्रणेषु च ॥ २० ॥

सम्भालूके पञ्चांगके स्वरसमें समान भाग तैल सिद्ध किया गया नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, पामा, अपची, फफोलों तथा समस्त व्रणोंको पान, मालिश तथा नस्यसे नष्ट करता है ॥ १९॥२० ॥

हंसपादादितैलम् ।

हंसपाद्यरिष्टपत्रं जातीपत्रं ततो रसैः ।
तत्कल्कैर्विपचेत्तैलं नाडीव्रणविरोहणम् ॥ २१ ॥

लाल लज्जावन्तीकी पत्ती, नीमकी पत्ती तथा चमेलीकी पत्ती इनके कल्क तथा स्वरससे सिद्ध तैल नाड़ी व्रणको भरता है ॥ २१ ॥

इति नाडीव्रणाधिकारः समाप्तः ।

अथ भगन्दराधिकारः ।

रक्तमोक्षणम् ।

गुदस्य श्वयथुं ज्ञात्वा विशोष्य शोधयेत्ततः ।
रक्तावसेचनं कार्यं यथा पाकं न गच्छति ॥ १ ॥

गुदामें सूजन जानकर लंघनादिकर्षण द्वारा सुखाकर वमन, विरेचनादिसे शोधन करना चाहिये । तथा फस्त खुलाना चाहिये । जिससे पके नहीं ॥ १ ॥

वटपत्रादिलेपः ।

वटपत्रेष्टकाशुण्ठीगुडूच्यः सपुनर्नवाः ।
सुपिष्टाः पिडकारम्भे लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ २ ॥

बरगदके कोमल पत्ते, ईंटका चूरा, सोंठ, गुर्च, तथा पुनर्नवाको महीन पीसकर भगन्दरकी उठती हुई पिड़कामें लेप करना चाहिये ॥ २ ॥

पक्वापक्वपिडकाविशेषः ।

पिडकानामपक्वानामपतर्पणपूर्वकम् ।
कर्म कुर्याद्विरेकान्तं भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया ॥ ३ ॥
एषणीपाटनं क्षारवह्निदाहादिकं क्रमम् ।
विधाय व्रणवत्कार्यं यथादोषं यथाक्रमम् ॥ ४ ॥

अपक्व पिड़काओंमें अपतर्पणपूर्वक विरेचनान्त चिकित्सा करनी चाहिये । तथा फूट जानेपर नाड़ीका पता लगाकर चीरना तथा क्षार व अग्निसे दाह कर व्रणके समान यथादोष यथाक्रम चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

त्रिवृदाद्युत्सादनम् ।

त्रिवृत्तिला नागदन्ती मञ्जिष्ठा सह सर्पिषा ।
उत्सादनं भवेदेतत्सैन्धवक्षौद्रसंयुतम् ॥ ५ ॥

निसोथ, तिल, नागदमन तथा मजीठको पीसकर, घी, शहद व सेंधानमक मिलाकर अपक्व पिडकाओंमें उबटन लगाना चाहिये ॥ ५ ॥

रसाञ्जनादिकल्कः ।

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा निम्बपल्लवाः ।
त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीकल्को नाडीव्रणापहः ॥ ६ ॥

रसौंत, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, नीमकी पत्ती, निसोथ, चव्य और दन्तीका कल्क नाड़ीव्रणको शांत करता है ॥ ६ ॥

कुष्ठादिलेपः ।

कुष्ठं त्रिवृत्तिलादन्तीमागध्यः सैन्धवं मधु ।
रजनी त्रिफला तुत्थं हितं व्रणविशोधनम् ॥ ७ ॥

कूठ, निसोथ, तिल, दन्ती, छोटी पीपल, सेंधानमक, शहद, हल्दी, त्रिफला तथा तूतियाका लेप घावको शुद्ध करता है ॥ ७ ॥

स्नुहीदुग्धादिवर्तिः ।

स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्तिं कृत्वा विचक्षणः ।
भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत्तां प्रयत्नतः ॥ ८ ॥
एषा सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यान्न संशयः ॥ ९ ॥

सेहुण्डका दूध, आकका दूध और दारुहल्दीके चूर्णकी बत्ती बनाकर भगन्दरके नासूरमें रखना चाहिये । यह समस्त शरीरके नाड़ीव्रणको नष्ट करती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

तिलादिलेपः।

तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रं
निशा वचा कुष्ठमगारधूमः।
भगन्दरे नाड्युपदंशयोश्च
दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥ १० ॥

तिल, बड़ी हरें, लोध, नीमकी पत्ती तथा हल्दी, वच, कूठ, व गृहधूमका लेप भगन्दर, नाड़ीव्रण, उपदंश तथा दुष्टव्रणको क्रमशः शुद्ध करता और भरता है ॥ १० ॥

विविधा लेपाः।

खरास्रपक्वभूरोहचूर्णलेपो भगन्दरम्।
हन्ति दन्त्यग्न्यतिविषालेपस्तद्वच्छुनोऽस्थि वा ॥११
त्रिफलारससंयुक्तं बिडालास्थिप्रलेपनम्।
भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम् ॥ १२ ॥

गधेके रक्तमें केंचुवाका चूर्ण पकाकर बनाया गया लेप तथा दन्ती, चीतकी जड़ व अतीसका लेप अथवा कुत्तेकी हड्डीका लेप अथवा त्रिफलाके रसके साथ बिलारीकी हड्डीका लेप भगन्दर तथा दुष्ट व्रणको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

नवांशको गुग्गुलुः।

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता।
गुडिका शोथगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिता ॥ १३ ॥

त्रिफला (मिलित) ३ भाग, गुग्गुल ५ भाग, छोटी पीपल १ भागकी गोली भगन्दर, शोथ, गुल्म और अर्शवालोंको हितकर है ॥ १३ ॥

सप्तविंशतिको गुग्गुलुः।

त्रिकटुत्रिफलामुस्ताविडङ्गामृताचित्रकम्।
शट्येलापिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च ॥ १४ ॥
तुम्बुरुः पुष्करं चव्यं विशाला रजनीद्वयम्।
बिडं सौवर्चलं क्षारौ सैन्धवं गजपिप्पली ॥ १५ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावद्द्विगुणगुग्गुलुः।
कोलप्रमाणां गुडिकां भक्षयेन्मधुना सह ॥ १६ ॥
कासं श्वासं तथा शोथमर्शांसि सभगन्दरम्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिवस्तिगुदे रुजम् ॥१७॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च अन्त्रवृद्धिं तथा क्रिमीन्।
चिरज्वरोपसृष्टानां क्षयोपहतचेतसाम् ॥ १८ ॥
आनाहं च तथोन्मादं कुष्टानि चोदराणि च।
नाडीदुष्टव्रणान्सर्वान्प्रमेहं श्लीपदं तथा।
सप्तविंशतिको ह्येष सर्वरोगनिषूदनः।

त्रिकटु, त्रिफला, नागर मोथा, वायविड़ंग, गुर्च चीतकी जड़, कचूर, इलायची, पिपरामूल, हाऊबेर, देवदारु, तुम्बरू, पोहकरमूल, चव्य, इन्द्रायणकी जड़, हल्दी, दारुहल्दी, बिड़नमक, कालानमक, जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, गजपिप्पली, प्रत्येक समान भाग चूर्णकर चूर्णसे द्विगुण गुग्गुल मिलाकर ६ माशेकी गोली बनाकर शहदके साथ चाटना चाहिये। यह कास, श्वास, शोथ, अर्श, भगन्दर, हृदयका शूल, पसलियोंका शूल, कुक्षि तथा वस्ति और गुदाकी पीड़ा, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि तथा क्रिमिरोगको नष्ट करता है। पुराने ज्वरवालोंके लिये तथा क्षयवालोंके लिये हितकर है। तथा आनाह, उन्माद, कुष्ठ, उदररोग, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, प्रमेह, श्लीपद आदि समस्त रोगोंको यह "सप्तविंशतिक गुग्गुलु" नष्ट करता है ॥ १४–१९ ॥

विविधा उपायाः।

जम्बुकस्य च मांसानि भक्षयेद्व्यञ्जनादिभिः।
अजीर्णवर्जी मासेन मुच्यते ना भगन्दरात् ॥ २० ॥
पञ्चतिक्तं घृतं शस्तं पञ्चतिक्तश्च गुग्गुलुः।
न्यग्रोधादिगणो यस्तु हितः शोधनरोपणः ॥ २१ ॥
तैलं घृतं वा तत्पक्वं भगन्दरविनाशनम्।

जम्बूकका मांस व्यञ्जनादिमें खाना चाहिये। अजीर्णका त्याग करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे १ मासमें भगन्दर नष्ट हो जाता है। पञ्चतिक्त घृत, पञ्चतिक्त गुग्गुलु तथा न्यग्रोधादिगणसे सिद्ध घृत अथवा तैल भगन्दरको नष्ट करता है ॥ २० ॥ २१ ॥–

विष्यन्दनतैलम्।

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलपूहयमारकौ ॥ २२ ॥
सुधां वचां लाङ्गलिकीं हरितालं सुवर्चिकाम्।
ज्योतिष्मतीं च संयोज्य तैलं धीरो विपाचयेत् ॥२३
एतद्विष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे।
शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ॥ २४ ॥

चीतकी जड़, आक, निसोथ, पाठा, कठूमर, कनेर, सेहुण्ड, वच, करियारी, हरिताल, सज्जी तथा मालकांगुनीका कल्क छोड़कर तैल पकाना चाहिये। यह "विष्यन्दन तैल" भगन्दरमें लगाना चाहिये। यह शोधन, रोपण तथा सवर्णकारक है ॥ २२–२४ ॥

करवीराद्यं तैलम्।

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः।
मातुलुङ्गार्कवत्साह्वैः पचेत्तैलं भगन्दरे ॥ २५ ॥

कनेर, हल्दी, दन्ती, कलिहारी, सेंधानमक, चीतकी जड़, बिजौरा, आक तथा कुरैयाकी छालके कल्कसे सिद्ध तैल भगन्दरको नष्ट करता है ॥ २५ ॥

निशाद्यं तैलम् ।

निशार्कक्षीरसिंध्वग्निपुराश्वहनवत्सकैः ।
सिद्धमभ्यञ्जने तैलं भगन्दरविनाशनम् ॥ २६ ॥

हल्दी, आकका दूध, सेंधानमक, चीतकी जड़, गुग्गुल, कनैर तथा कुटजके कल्कसे सिद्ध तैल अभ्यञ्जनद्वारा भगन्दरको नष्ट करता है ॥ २६ ॥

वर्ज्यानि ।

व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च ।
संवत्सरं परिहरेदुपरूढव्रणो नरः ॥ २७ ॥

व्यायाम, मैथुन, युद्ध, घोड़े आदिकी पीठकी सवारी तथा गुरु द्रव्यका घाव भर जानेके अनन्तर १ वर्षतक सेवन न करना चाहिये ॥ २७ ॥

इति भगन्दराधिकारः समाप्तः ।

अथोपदंशाधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य ध्वजमध्ये शिराव्यधः ।
जलौकःपातनं वा स्यादूर्ध्वाधः शोधनं तथा ॥१॥
सद्यो निर्हृतदोषस्य रुक्शोथावुपशाम्यतः ।
पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥ २ ॥

स्नेहन स्वेदन कर लिङ्गमें शिराव्यध करना चाहिये । अथवा जोंक लगाना चाहिये । तथा वमन, विरेचन कराना चाहिये । प्रयत्नपूर्वक पकनेसे रोकना चाहिये । क्योंकि पकनेसे लिङ्गक्षय हो जाता है ॥ १ । २ ॥

पटोलादिक्वाथाः ।

पटोलनिम्बत्रिफलागुडूची-
क्वाथं पिबेद्वा खदिराशनाभ्याम् ।
सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा
सर्वोपदंशापहराः प्रयोगाः ॥ ३ ॥

परवलकी पत्ती, नीमकी छाल, त्रिफला तथा गुर्चके क्वाथ अथवा कत्था व विजैसारके क्वाथमें गुग्गुलु अथवा त्रिफलाचूर्ण डालकर सेवन करनेसे समस्त उपदंश नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

वातिके लेपसेकौ ।

प्रपौण्डरीकं मधुकं रास्ना कुष्ठं पुनर्नवा ।
सरलागुरुभद्राह्वैर्वातिके लेपसेचने ॥ ४ ॥

पुण्डरिया, मौरेठी, रासन, कूठ, पुनर्नवा, सरल, अगर व देवदारुसे वातजमें लेप तथा सेक करना चाहिये ॥ ४ ॥

पैत्तिके लेपः ।

गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ।
सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पैत्तिकं संप्रलेपयेत् ॥ ५ ॥

गेरू, सुरमा, मजीठ, मौरेठी, खश, पद्माख, चन्दन, तथा नीलोफरको पीस स्नेह मिलाकर लेप करना चाहिये ॥ ५ ॥

पित्तरक्तजे ।

निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्बशालजम्बूवटोदुम्बरवेतसेषु ।
प्रक्षालनालेपघृतानि कुर्याच्चूर्णानि पित्तास्रभवोपदंशे ।६

नीम, अर्जुन, पीपल, कदम्ब, शाल, जामुन, बरगद, गूलर, वेतस इनके चूर्णोंसे पित्तरक्तके उपदंशमें प्रक्षालन व लेप हितकर है । तथा इन औषधियोंके क्वाथमें सिद्ध घृत सबमें हितकर है ॥ ६ ॥

प्रक्षालनम् ।

त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन वा ।
व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ ७ ॥

त्रिफलाके क्वाथ अथवा भांगरेके रससे उपदंशव्रणको धोना चाहिये ॥ ७ ॥

त्रिफलामसीलेपः ।

दहेत्कटाहे त्रिफलां समांशां मधुसंयुताम् ।
उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ ८ ॥

कड़ाहीमें त्रिफला जला समभाग शहद मिलाकर लेप करनेसे उपदंशका घाव शीघ्र ही भर जाता है ॥ ८ ॥

रसाञ्जनलेपः ।

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् ।
सक्षौद्रं वा प्रलेपेन सर्वलिंगगदापहम् ॥ ९ ॥

रसौंतको शिरीषकी छाल अथवा छोटी हर्रके चूर्ण अथवा शहद मिलाकर लेप करनेसे लिंगके समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

बब्बूलदलादियोगाः ।

बब्बूलदलचूर्णेन दाडिमत्वग्भवेन वा ।
गुण्डनं त्वस्थिचूर्णेन उपदंशहरं परम् ॥ १० ॥

बबूलकी पत्तीका चूर्ण अथवा अनारके छिल्केका चूर्ण अथवा मनुष्यकी हड्डीका चूर्ण उर्रानेसे उपदंश नष्ट होता है ॥ १० ॥

सामान्योपायाः ।

लेपः पूगफलेनाश्वमारमूलेन वा तथा ।
सेवेन्नित्यं यवान्नं च पानीयं कौपमेव च ॥ ११ ॥

सुपारीके फल अथवा कनेरकी जड़का लेप करना चाहिये तथा यवके पदार्थ और कुएँका जल पीना चाहिये ॥ ११ ॥

पाकप्रक्षालनक्काथः ।

जयाजात्यश्वमारार्कसम्पाकानां दलैः पृथक् ।
कृतं प्रक्षालने क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् ॥ १२ ॥

अरणी, चमेली, कनेर, आक तथा अमलतासमेंसे किसी एकके पत्तोंका क्काथ लिंगके पक जानेपर धोनेके लिये प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १२ ॥

भूनिम्बकाद्यं घृतम् ।

भूनिम्बनिम्बात्रिफलापटोलं
करञ्जजातीखदिरासनानाम् ।
सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्वं
सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ १३ ॥

चिरायता, नीम, त्रिफला, परवलकी पत्ती, कञ्जा, चमेली, कत्था तथा विजैसारके क्काथ और कल्कसे पकाया गया घृत समस्त उपदंशोंको नष्ट करता है ॥ १३ ॥

करञ्जाद्यं घृतम् ।

करञ्जनिम्बार्जुनशालजम्बू-
वटादिभिः कल्ककषायसिद्धम् ।
सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं
सदाहपाकं स्रुतिरागयुक्तम् ॥ १४ ॥

कञ्जा, नीमकी पत्ती, अर्जुन, शाल, जामुन, तथा वटादिके कषाय और कल्कसे सिद्ध घृत दाह, पाक, स्राव और लालिमासहित उपदंशको नष्ट करता है ॥ १४ ॥

अगारधूमाद्यं तैलम् ।

अगारधूमरजनीसुराकिट्टं च तैस्त्रिभिः ।
भागोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् ॥ १५ ॥
शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ।

गृहधूम १ भाग, हल्दी २ भाग, शरावका किट्ट ३ भाग इनका कल्क छोड़कर पकाया गया तैल खुजली, सूजन, और पीडाको नष्टकरता, शोधन, रोपण तथा सवर्णताकारक है॥१५॥

लिंगार्शश्चिकित्सा ।

अर्शसां छिन्नदग्धानां क्रिया कार्योपदंशवत् ॥१६॥

अर्शको काट जलाकर उपदंशके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १६ ॥

इत्युपदंशाधिकारः समाप्तः ।

अथ शूकदोषाधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

हितं च सर्पिषः पानं पथ्यं चापि विरेचनम् ।
हितः शोणितमोक्षश्च यच्चापि लघुभोजनम् ॥ १ ॥

घृतपान विरेचन रक्तस्राव तथा लघुभोजन हितकर है ॥ १ ॥

प्रतिभेदचिकित्सा ।

सर्षपीं लिखितां सूक्ष्मैः कषायैरवचूर्णयेत् ।
तैरेवाभ्यञ्जनं तैलं साधयेद्व्रणरोपणम् ॥ २ ॥
क्रियेयमाधिमन्थेऽपि रक्तं स्राव्यं तथोभयोः ।
अष्ठीलायां हृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत् ॥ ३ ॥
कुम्भिकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे ।
तिन्दुकात्रिफलालोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥ ४ ॥
अलज्यां हृतरक्तायामयमेव क्रियाक्रमः ।
स्वेदयेद्ग्रथितं स्निग्धं नाडीस्वेदेन बुद्धिमान् ॥५॥
सुखोष्णैरुपनाहैश्च सस्निग्धैरुपनाहयेत् ।
उत्तमाख्यां तु पिडकां संच्छिद्य बडिशोद्धृताम्॥६॥
कल्कैश्चूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत् ।
क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढयोर्हितः ॥ ७ ॥
त्वक्पाके स्पर्शहान्यां च सेचयेन्मृदितं पुनः ।
बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥ ८ ॥
रसक्रिया विधातव्या लिखिते शतपोनके ।
पृथक्पर्ण्यादिसिद्धं च तैलं देयमनन्तरम् ॥ ९ ॥
पित्तविद्रधिवच्चापि क्रिया शोणितजेऽर्बुदे ।
कषायकल्कसर्पींषि तैलं चूर्णं रसक्रियाम् ॥ १० ॥
शोधने रोपणे चैव वीक्ष्य वीक्ष्यावतारयेत् ।

सर्षपीको खुरचकर कषायद्रव्योंका चूर्ण उर्राना चाहिये । तथा इन्हींसे घाव भरनेके लिये तैल सिद्ध कर लगाना चाहिये । अधिमन्थमें भी यही चिकित्सा करनी चाहिये । तथा रक्त दोनोंमें निकालना चाहिये । अष्ठीलामें रक्त निकालकर कफजग्रन्थिके समान चिकित्सा करनी चाहिये । कुम्भिकामें भी रक्त निकालना चाहिये । पर यदि पक गयी हो, तो घावको शुद्धकर तेन्दू, त्रिफला और लोधका लेप करना चाहिये । तथा रोपण तैलका प्रयोग करना चाहिये । अलजीका रक्त निकालकर यही चिकित्सा करनी चाहिये । ग्रथितको स्निग्ध कर नाड़ीस्वेदसे स्विन्न करना चाहिये । तथा स्नेहयुक्त गरम पुल्टिस बांधनी चाहिये । उत्तमा पिड़काको बडिशसे पकड़ काटकर कषायरसयुक्त द्रव्योंके कल्क और चूर्णमें शहद डालकर लगाना चाहिये । पुष्करी और मूढशूकमें पित्तविसर्पोक्त चिकित्सा करनी चाहिये । त्वक्पाक और स्पर्शज्ञान न होनेपर मर्दनकर कुछ गरम गरम बलातैलका सिञ्चन करना चाहिये । तथा मीठी चीजोंकी पुल्टिस बान्धनी चाहिये । शतपोनकको खुरचकर रसक्रिया (क्काथको गाढ़ा कर लगाने) का प्रयोग करना चाहिये । तदनन्तर पृथक्पर्ण्यादिसे सिद्ध तैल देना चाहिये । रक्तजार्बुदमें कषाय, कल्क, घृत, तैल, चूर्ण, रसक्रिया जहां जो

आवश्यक हो, शोधन रोपणादिके लिये विचारकर प्रयुक्त करना चाहिये ॥ २-१० ॥-

प्रत्याख्येयाः ।

अर्बुदं मांसपाकं च विद्रधिं तिलकालकम् ।
प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक्तेषां प्रतिक्रियाम् ॥ ११ ॥

अर्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालकका प्रत्याख्यान कर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

इति शूकदोषाधिकारः समाप्तः ।

अथ भग्नाधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलाम्बुना ।
पङ्केनालेपनं कार्यं बन्धनं च कुशान्वितम् ।
सुश्रुतोक्तं च भग्नेषु वीक्ष्य बन्धादिमाचरेत् ॥ १ ॥

पहिले भग्न (टूटा हुआ) जानकर ठण्डे जलका सिञ्चन करना चाहिये । फिर कीचड़का लेप तथा व्रणबन्धक द्रव्योंसे बांधना चाहिये । बन्धादि सुश्रुतोक्त भग्नविधानके अनुसार करना चाहिये ॥ १ ॥

स्थानापन्नताकरणम् ।

अवनामितमुन्नह्येदुन्नतं चावनामयेत् ।
आञ्छेदतिक्षिप्तमधोगतं चोपरि वर्तयेत् ॥ २ ॥

जो अस्थि नीचेको लच गयी हो, उसे ऊपर उठा देना चाहिये । जो ऊपरको लौट गयी हो, उसे नीचे लाना चाहिये । अर्थात् जिसप्रकार अस्थि अपने स्थानपर ठीक बैठ जाय, वैसा उपाय करे ॥ २ ॥

लेपः ।

आलेपनार्थं मञ्जिष्ठामधुकं चाम्लपेषितम् ।
शतधौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टं च लेपनम् ॥ ३ ॥

मजीठ व मौरेठीको काञ्जीमें पीसकर अथवा शालि चावलोंको पीस १०० बार धोये हुए घृतमें मिलाकर लेप करना चाहिये ॥ ३ ॥

बन्धमोक्षणविधिः ।

सप्तरात्रात्सप्तरात्रात्सौम्येष्वृतुषु मोक्षणम् ।
कर्तव्यं स्यात्त्रिरात्राच्च तथाऽऽग्नेयेषु जानता ॥४॥
काले च समशीतोष्णे पञ्चरात्राद्विमोक्षयेत् ।

शीतकालमें ७ सात दिनमें, उष्णकालमें ३ तीन दिनमें तथा साधारण कालमें पांच दिनमें बन्धन खोलना चाहिये ॥ ४ ॥-

सेकादिकम् ।

न्यग्रोधादिकषायं च सुशीतं परिषेचने ॥ ५ ॥
पञ्चमूलीविपक्वं तु क्षीरं दद्यात्सवेदने ।
सुखोष्णमवचार्यं वा चक्रतैलं विजानता ॥ ६ ॥

सिञ्चनके लिये न्यग्रोधादि गणका शीतल क्वाथ तथा पीड़ायुक्त होनेपर लघुपञ्चमूलसे पकाये दूधका सिञ्चन करना चाहिये । तथा ताजा तैल गरमकर मलना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

पथ्यम् ।

मांसं मांसरसः सर्पिः क्षीरं यूषः सतीनजः ।
बृंहणं चान्नपानं च देयं भग्ने विजानता ॥ ७ ॥
गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् ।
शीतलं द्राक्षया युक्तं प्रातर्भग्नः पिबेन्नरः ॥ ८ ॥

मांस और मांसरस, घी, दूध, मटरका यूप, तथा बृंहण अन्नपान भग्नवालेको देना चाहिये । तथा एक बार ब्याई हुई गायका दूध मधुर औषधियोंके साथ सिद्ध कर घीमें मिला प्रातःकाल मुनक्काके साथ ठण्ढा ठण्ढा पीना चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥

अस्थिसंहारयोगः ।

सघृतेनास्थिसंहारं लाक्षागोधूममर्जुनम् ।
सन्धिमुक्तेऽस्थिभग्ने च पिबेत्क्षीरेण मानवः ॥ ९ ॥

घी मिले दूधके साथ लाख, गेहूँ, अर्जुनकी छाल, अस्थिसंहारके चूर्णका सेवन करनेसे सन्धिभग्न तथा अस्थिभग्न दोनों ठीक होते हैं ॥ ९ ॥

रसोनोपयोगः ।

रसोनमधुलाक्षाज्यसिताकल्कं समश्नताम् ।
छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां संधानमचिराद्भवेत् ॥ १० ॥

लहसुन, शहद, लाख, घी तथा मिश्रीकी चटनी चाटनेसे छिन्न, भिन्न, च्युत (अलग हुई) हड्डियां शीघ्र ही जुड़ जाती हैं ॥ १० ॥

वराटिकायोगः ।

पीतवराटिकाचूर्णं द्विगुञ्जं वा त्रिगुञ्जकम् ।
अपक्वक्षीरपीतं स्यादस्थिभग्नप्ररोहणम् ॥ ११ ॥

पीली कौड़ीके चूर्णको २ रत्ती अथवा ३ रत्तीकी मात्रामें कच्चे दूधके साथ पीनेसे टूटी हड्डी शीघ्र ही जुड़ जाती है ॥ ११ ॥

विविधा योगाः ।

क्षीरं सलाक्षामधुकं ससर्पिः
स्याज्जीवनीयं च सुखावहं च ।
भग्नः पिबेत्त्वक्पयसाऽर्जुनस्य
गोधूमचूर्णं सघृतेन वाथ ॥ १२ ॥

जीवनीयगणसे सिद्ध दूध, लाख और मौरेठीके चूर्ण तथा घीके साथ पीनेसे सुख मिलता है। अथवा अर्जुनकी छालका चूर्ण दूधके साथ अथवा गेहूँका चूर्ण घी व दूधके साथ पकाकर पीना चाहिये ॥ १२ ॥

लाक्षागुग्गुलुः ।

लाक्षास्थिसंहृत्ककुभाश्वगन्धा-
श्चूर्णीकृता नागवला पुरश्च ।
संभग्नयुक्तास्थिरुजं निहन्या-
दङ्गानि कुर्यात्कुलिशोपमानि ॥ १३ ॥
अत्रान्यतोऽपि दृष्टत्वात्तुल्यश्चूर्णेन गुग्गुलुः॥१४॥

लाख, अस्थिसंहार, अर्जुन, असगन्ध तथा नागबलाका चूर्ण कर सबके समान गुग्गुलु मिला खानेसे भग्नयुक्त अस्थिकी पीड़ा नष्ट होती है तथा शरीर वज्रके समान दृढ होता है। यहां ग्रन्थान्तरोंके प्रमाणसे चूर्णके समान ही गुग्गुलु छोड़ना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

आभागुग्गुलुः ।

आभाफलत्रिकैर्व्योषैः सर्वैरेभिः समीकृतैः ।
तुल्यो गुग्गुलुरायोज्यो भग्नसन्धिप्रसाधकः ॥१५॥

बबूलकी फली, त्रिफला, त्रिकटु सब समान भाग, सबके समान गुग्गुलु मिलाकर सेवन करनेसे टूटी संधियां जुड़ जाती हैं ॥ १५ ॥

सव्रणभग्नचिकित्सा ।

सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तमैः ।
प्रतिसार्य कषायैश्च शेषं भग्नवदाचरेत् ॥ १६ ॥
भग्नं नैति यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक् ।
वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहानत्र प्रयोजयेत्॥१७॥

जहां टूटनेके साथ घाव भी हो गया है, वहां क्वाथकी रसक्रिया कर घी शहद मिला लेप करना चाहिये। भग्नस्थान पके नहीं ऐसा उपाय करना चाहिये। वातव्याधिमें कहे हुए स्नेहोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥

गन्धतैलम् ।

रात्रौ रात्रौ तिलान्कृष्णान्वासयेदस्थिरे जले ।
दिवा दिवैव संशोष्य क्षीरेण परिभावयेत् ॥ १८॥
तृतीयं सप्तरात्रं च भावयेन्मधुकाम्बुना ।
ततः क्षीरं पुनः पीतान्सुशुष्कांश्चूर्णयेद्भिषक् ॥१९॥
काकोल्यादिं श्वदंष्ट्रां च मञ्जिष्ठां शारिवां तथा ।
कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥ २० ॥
शतपुष्पां च संचूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत् ।
पीडनार्थं च कर्तव्यं सर्वगन्धैः शृतं पयः ॥ २१ ॥
चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं विपचेत्पुनः ।
एलामंशुमतीं पत्रं जीरकं तगरं तथा ॥ २२ ॥
लोध्रं प्रपौण्डरीकं च तथा कालानुशारिवाम् ।
शैलेयकं क्षीरशुक्लामनन्तां समधूलिकाम् ॥ २३ ॥
पिष्ट्वा शृङ्गाटकं चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च ।
एभिस्तद्विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाऽग्निना ॥ २४ ॥
एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु ।
आक्षेपके पक्षवधे चाङ्गशोषे तथाऽर्दिते ॥ २५ ॥
मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहे ।
बाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयं गताः ॥२६॥
पथ्ये पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये वस्तिषु योजयेत् ।
ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरनेनैवोपजायते ॥ २७ ॥
मुखं च पद्मप्रतिमं स्यात्सुगन्धिसमीरणम् ।
गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥ २८ ॥
राजार्हमेतत्कर्तव्यं राज्ञामेव विचक्षणैः ।
तिलचूर्णचतुर्थांशं मिलितं चूर्णमिष्यते ॥ २९ ॥

काले तिलोंकी रात्रिमें बहते जलमें पोटली बांधकर रखना चाहिये और दिनमें सुखाना चाहिये, इस प्रकार एक सप्ताह करना चाहिये। दूसरे सप्ताहमें दूधकी भावना देनी चाहिये। तीसरे सप्ताहमें तिलके समान मौरेठीका क्वाथ बनाकर भावना देनी चाहिये। फिर एक सप्ताह दूधकी भावना दे सुखाकर चूर्ण कर लेना चाहिये। फिर तिलोंसे चतुर्थांश मिलित चूर्ण काकोल्यादिगण, गोखुरू, मजीठ, शारिवा, कूठ, राल, जटामांसी, देवदारु, चन्दन व सौंफका मिलाकर एलादिगणसे सिद्ध दूधसे तर कर कोल्हूमें पीड़ित कर तैल निकलवा लेना चाहिये। फिर उस तैलमें चतुर्गुण दूध, इलायची, शालिपर्णी, तेजपात, जीरा, तगर, लोध, पुण्डरिया, काली शारिवा, छरीला, क्षीरविदारी, यवासा, गेहूँ और सिंघाड़ेका कल्क छोड़कर मन्दाग्निसे तैल पकाना चाहिये। यह तैल भग्नवालोंको सब कामोंमें हितकर है। यह आक्षेपक, पक्षाघात, अङ्गशोष, अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, हनुग्रह, बाधिर्य, तिमिरवालोंको तथा जो स्त्रीगमनसे क्षीण हैं, उन्हें पथ्यमें पीनेके लिये, मालिश, नस्य तथा वस्तिमें प्रयोग करना चाहिये, गरदन, कन्धे और छातीकी वृद्धि इसीसे होती है। मुख कमलके समान तथा सुगन्धित वायुयुक्त होता है। यह "गन्धतैल" समस्त वातरोगोंको नष्ट करता है। यह तैल राजाओंके योग्य है। इसे राजाओंके लिये ही बनाना चाहिये। तिल चूर्णसे चौथाई सब चीजोंका मिलित चूर्ण होना चाहिये। (तिल इतने लने चाहियें, जिनसे १ आढक तैल निकल आवे) ॥ १८-२९ ॥

भग्ने वर्ज्यानि ।

लवणं कटुकं क्षारमम्लं मैथुनमातपम् ।
व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥ ३० ॥

भग्नरोगीको लवण, कटु, क्षार, खट्टे पदार्थ, मैथुन, आतप, व्यायाम और रूक्षान्न, इनका सेवन न करना चाहिये ॥ ३० ॥

इति भग्नाधिकारः समाप्तः ।

अथ कुष्ठाधिकारः ।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु ।
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं चाग्र्यम् ॥ १ ॥
प्रच्छनमल्पे कुष्ठे महति च शस्तं शिराव्यधनम् ।
बहुदोषः संशोध्यः कुष्ठी बहुशोऽनुरक्षता प्राणान् ॥ २ ॥

वातप्रधान कुष्ठोंमें घी पीना, कफप्रधानमें वमन, पित्तप्रधानमें रक्तमोक्षण तथा शिराव्यध उत्तम है । तथा थोड़े कुष्ठमें पछने लगाना, बहुतमें शिराव्यध करना तथा बहुदोषयुक्त कुष्ठीको बलकी रक्षा करते हुए संशोधन करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

वमनम् ।

वचावासापटोलानां निम्बस्य फलिनीत्वचः ।
कषायो मधुना पीतो वान्तिकृन्मदनान्वितः ॥ ३ ॥

वच, अडूसा, परवलकी पत्ती, नीमकी पत्तीमें तथा प्रियंगुकी छालके क्वाथमें मैनफलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे वमन होता है ॥ ३ ॥

विरेचनम् ।

विरेचनं तु कर्तव्यं त्रिवृद्दन्तीफलत्रिकैः ॥ ४ ॥

निसोथ, दन्ती और त्रिफलासे विरेचन देना चाहिये ॥४॥

लेपयोग्यता ।

ये लेपाः कुष्ठानां प्रयुज्यन्ते निर्गतास्रदोषाणाम् ।
संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवति तेषाम् ॥५ ॥

वमन, विरेचनद्वारा कोष्ठ तथा रक्तमोक्षणद्वारा रक्त शुद्ध हो जानेपर कुष्ठवालोंको जिन लेपोंका प्रयोग किया जाता है, उनकी सिद्धि शीघ्रही होती है ॥ ५ ॥

लेपाः ।

मनःशिलाले मरिचानि तैल-
मार्कं पयः कुष्ठहरः प्रदेहः ।
करञ्जबीजैडगजः सकुष्ठो
गोमूत्रपिष्टश्च वरः प्रदेहः ॥ ६ ॥
पर्णानि पिष्ट्वा चतुरङ्गुलस्य
तक्रेण पर्णान्यथ काकमाच्याः ।
तैलाक्तगात्रस्य नरस्य कुष्ठा-
न्युद्वर्तयेदश्वहनच्छदैश्च ॥ ७ ॥
आरग्वधः सैडगजः करञ्जो
वासा गुडूची मदनं हरिद्रे ।
श्र्याह्वः सुराह्वः खदिरो धवश्च
निम्बो विडङ्गं करवीरकत्वक् ॥ ८ ॥
ग्रन्थिश्च भौर्जो लशुनः शिरीषः
सलोमशो गुग्गुलुकृष्णगन्धे ।
फणिज्जको वत्सकसप्तपर्णौ
पीलूनि कुष्ठं सुमनःप्रवालाः ॥ ९ ॥
वचा हरेणुस्त्रिवृता निकुम्भो
भल्लातकं गैरिकमञ्जनं च ।
मनःशिलाले गृहधूम एला-
कासीसलोध्रार्जुनमुस्तसर्जाः ॥ १० ॥
इत्यर्धरूपैर्विहिताः षडेते
गोपित्तपीताः पुनरेव पिष्टाः ।
सिद्धाः परं सर्षपतैलयुक्ता-
श्चूर्णप्रदेहा भिषजा प्रयोज्याः ॥ ११ ॥
कुष्ठानि कृच्छ्राणि नवं किलासं
सुरेन्द्रलुप्तं किटिभं सदद्रुम् ।
भगन्दरार्शांस्यपचीं सपामां
हन्युः प्रयुक्ता अचिरान्नराणाम् ॥ १२ ॥

मनःशिला, हरिताल, काली मिर्च व आकके दूधका लेप कुष्ठको नष्ट करता है । तथा कञ्जाके बीज, पवांड़के बीज व कूठको गोमूत्रमें पीसकर लेप करना चाहिये । अथवा अमलतासकी पत्ती, मकोयकी पत्ती तथा कनैरकी पत्तीको मट्ठेमें पीसकर लेप करना चाहिये । तथा (१) अमलतास, पवांड़, कञ्जा, वासा, गुर्च, मैनफल, हल्दी तथा दारुहल्दी (२) अथवा नवनीत खोटि (गन्धाविरोजाभेद) देवदारु, कत्था, धायके फूल, नीम, वायविडङ्ग व कनेरकी छाल । अथवा (३) भोजपत्रकी गांठ, लहसुन, सिरसाकी छाल, काशीस, गुग्गुलु व सहिंजन । अथवा (४) मरुवा, कुटज, सतवन, पीलु, कूठ तथा चमेलीकी पत्ती । अथवा(५)वच, सम्भालूके बीज,निसोथ, दन्ती, भिलावां, गेरू व सुरमा । अथवा (६) मनसिल, हरताल, घरका धुवाँ, इलायची, कासीस, लोध, अर्जुन, मोथा, राल । यह आधे आधे श्लोकमें कहे गये ६ लेप गोपित्त (गोरोचन अथवा गोमूत्रमें) भावना देकर पीसे गये सरसोंके तैलमें मिलाकर लेप करना चाहिये । ये लेप कठिन, कुष्ठ, नवीन किलास, इन्द्रलुप्त, किटिभ, दद्रु, भगन्दर, अर्श, अपची व पामाको शीघ्र ही नष्ट करते हैं ६-१२

मनःशिलादिलेपः ।

मनःशिलात्वक्कुटजात्सकुष्ठात्
सलोमशः सैडगजः करञ्जः ।
ग्रन्थिश्च भौर्जः करवीरमूलं
चूर्णानि साध्यानि तुषोदकेन ॥ १३ ॥
पलाशनिर्दाहरसेन वापि
कर्षोद्धृतान्याढकसंमितेन ।
दार्वीप्रलेपं प्रवदन्ति लेप-
मेतत्परं कुष्ठविनाशनाय ॥ १४ ॥

मनशिल, कुरैयाकी छाल, कूठ, कसीस, पवांड़के बीज, कञ्जा, भोजपत्रकी गांठ, तथा कनैरकी जड़ प्रत्येक एक एक तोलेका चूर्ण एक आढ़क भूसी सहित अन्नकी काञ्जी अथवा ढाकके वृक्षको जलाकर नीचे टपके हुए रसके साथ अवलेहके समान कल्छीमें चिपटने तक पकाना चाहिये । यह कुष्ठ नाश करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ १४ ॥

कुष्ठादिलेपः ।

कुष्ठं हरिद्रे सुरसं पटोलं
निम्बाश्वगन्धे सुरदारुशिग्रू ।
ससर्षपं तुम्बुरुधान्यवन्यं
चण्डाञ्च दूर्वाञ्च समानि कुर्यात् ॥ १५ ॥
तैस्तक्रयुक्तैः प्रथमं शरीरं
तैलाक्तमुद्वर्तयितुं यतेत ।
तथाऽस्य कण्डूः पिडकाः सकोष्ठाः
कुष्ठानि शोथाश्च शमं प्रयान्ति ॥१६ ॥

कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, तुलसी, परवलकी पत्ती, नीम, असगन्ध, देवदारु, सहिंजन, तुम्बुरु, सरसों, धनियां, केवटीमोथा, दन्ती और दूर्वा समान भाग ले मट्ठेमें मिलाकर पहिले तेल लगाये हुए शरीरमें उवटन करना चाहिये । इससे खुजली, फुन्सियां, ददरे, कुष्ठ और सूजन शान्त होती हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

त्रिफलादिलेपः ।

धात्र्यक्षपथ्याक्रिमिशत्रुवह्नि-
भल्लातकावल्गुजलोहभृङ्गैः ।
भागाभिवृद्धैस्तिलतैलमिश्रैः
सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लेपः ॥१७ ॥

आमला १ भाग बहेड़ा २ भाग, हर्र ३ भाग, वायविडंग ४ भाग, चीतकी जड़ ५ भाग, मिलावां ६ भाग, बकुची ७ भाग, लौहचूर्ण ८ भाग तथा भंगरा ९ भाग सबको पीस तिलतैलमें मिलाकर लेप करनेसे समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

विडंगादिलेपः ।

विडङ्गसैन्धवशिवाशशिरेखासर्षपकरञ्जरजनीभिः
गोजलपिष्टो लेपः कुष्ठहरो दिवसनाथसमः॥ १८ ॥

वायविडंग, सेंधानमक, हर्र, बकुची, सरसों, कञ्जा, व हल्दीको गोमूत्रमें पीसकर बनाया गया लेप कुष्ठको नष्ट करनेमें सूर्यके समान है । सूर्यचिकित्सा (रश्मिचिकित्सा) से भी कुष्ठ नष्ट होता है ॥ १८ ॥

अपरो विडंगादिः ।

विडङ्गैडगजाकुष्ठनिशासिन्धूत्थसर्षपैः ।
धान्याम्लपिष्टैर्लेपोऽयं दद्रूकुष्ठरुजापहः ॥ १९ ॥

वायविडंग, पवांड़, कूठ, हल्दी, सेंधानमक व सरसोंको काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रु कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १९ ॥

दूर्वादिलेपः ।

दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्द-
कुठेरकाः काञ्जिकतक्रपिष्टाः ।
त्रिभिः प्रलेपैरतिवद्धमूलं
दद्रूं च कुष्ठं च निवारयन्ति ॥ २० ॥

दूर्वा, बड़ी हर्रं, सेंधा नमक, चकवड़, तथा वनतुलसीको काञ्जी तथा मट्ठेमें पीसकर तीन बार लेप करनेसे ही गहरे दाद और कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ २० ॥

दद्रुगजेंद्रसिंहो लेपः ।

तुल्यो रसः सालतरोस्तुषेण
सचक्रमर्दोऽप्यभयाविमिश्रः ।
पानीयभक्तेन तदाऽम्बुपिष्टो
लेपः कृतो दद्रुगजेंद्रसिंहः ॥ २१ ॥

शालका रस (राल), धानकी भूसी, चकवड़, तथा बड़ी हर्रका छिलका इनको चावलके जलमें पीसकर लेप करनेसे दद्रुरूपी गजेन्द्रको सिंहके समान नष्ट करता है ॥ २१ ॥

विविधा लेपाः ।

प्रपुन्नाडस्य बीजानि धात्री सर्जरसः स्नुही ।
सौवीरपिष्टं दद्रूणामेतदुद्वर्तनं परम् ॥ २२ ॥
चक्रमर्दकबीजानि करञ्जं च समांशकम् ।
स्तोकं सुदर्शनामूलं दद्रुकुष्ठविनाशनम् ॥ २३ ॥
लेपनाद्रक्षणाच्चैव तृणकं दद्रुनाशनम् ।
यूथीपुन्नागमूलं च लेपात्काञ्जिकपेषितम् ॥ २४ ॥

कासमर्दकमूलं च सौवीरेण च पेषितम् ।
दद्रुकिटिभकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेपनात् ॥ २५ ॥

पवांड़के बीज, आमला, राल, तथा सेहुण्डको काञ्जीमें पीसकर लेप करना चाहिये । चकवड़के बीज, कञ्जाके बीज-के समान कुछ सुदर्शनकी जड़ मिलाकर लगानेसे दद्रु नष्ट होता है । गन्धतृणके खाने तथा लगानेसे दद्रु नष्ट होता है । काञ्जीमें जूही और सुपारीकी जड़को पीसकर अथवा कसौंदीकी जड़को काञ्जीमें पीसकर लगानेसे दाद व किटिभकुष्ठ नष्ट होता है ॥ २२–२५ ॥

सिध्मे लेपाः ।

शिखरिरसेन सुपिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्म ।
क्षारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति ॥२६॥
गन्धपाषाणचूर्णेन यवक्षारेण लेपितम् ।
सिध्मनाशं व्रजत्याशु कटुतैलयुतेन वा ॥ २७ ॥
कासमर्दकबीजानि मूलकानां तथैव च ।
गन्धपाषाणमिश्राणि सिध्मानां परमौषधम् ॥ २८ ॥
धात्रीरसः सर्जरसः सपाक्यः
सौवीरपिष्टश्च तथा युतश्च ।
भवन्ति सिध्मानि यथा न भूय-
स्तथैवमुद्वर्तनकं करोति ॥ २९ ॥
कुष्ठं मूलकबीजं प्रियङ्गवः सर्षपास्तथा रजनी ।
एतत्केशरयुक्तं निहन्ति बहुवार्षिकं सिध्म ॥ ३० ॥
नीलकुरुण्टकपत्रं स्वरसेनालिप्य गात्रमतिबहुशः ।
लिम्पेन्मूलकबीजैस्तक्रेणैतद्धि सिध्मनाशाय ॥३१॥

अपामार्गके रसमें अथवा हल्दीयुक्त केलेके क्षारके साथ मूली-के बीजोंको पीसकर लगाया गया लेप सिध्म कुष्ठको नष्ट करता है । इसी प्रकार गन्धकको जवाखार तथा कडुआ तैलमें मिलाकर लेप करनेसे सिध्म नष्ट होता है । इसीभांति कसौंदीके बीज, मूलीके बीज व गन्धक मिलाकर लेप करना सिध्मकी परम औषधि है । तथा आमलेका रस, राल और खारीनमक इनको काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे सिध्म नष्ट होकर फिर नहीं होता । कूठ, मूलीके बीज, प्रियंगु, सरसों, हल्दी व नागकेशर इनका लेप पुराने सिध्मको नष्ट करता है । नील कटसैलाके स्वरसको देहमें लगाकर मट्ठेमें पिसे मूलीके बीजोंका लेप करना सिध्मको नष्ट करता है ॥ २६–३१ ॥

किटिभादिनाशका लेपाः ।

चक्राह्वयं स्नुहीक्षीरभावितं मूत्रसंयुतम् ।
रवितप्तं हि किञ्चित्तु लेपनात्किटिभापहम् ॥ ३२ ॥
आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेषयेत् ।
दद्रुकिटिभकुष्ठानि हन्ति सिध्मानमेव च ॥ ३३ ॥
बीजानि वा मूलकसर्षपाणां
लाक्षारजन्यौ प्रपुनाडबीजम् ।
श्रीवेष्टकव्योपविडङ्गकुष्ठं
पिष्ट्वा च मूत्रेण तु लेपनं स्यात् ॥ ३४ ॥
दद्रूणि सिध्मं किटिभानि पामां
कापालकुष्ठं विषमं च हन्यात् ॥ ३५ ॥
एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरसर्षपैः क्रिमिघ्नैश्च ।
क्रिमिसिध्मदद्रुमण्डलकुष्ठानां नाशनो लेपः ॥ ३६॥

पवांड़के बीजोंको सेहुण्डके दूधमें भावना दे गोमूत्र मिला धूपमें गरम कर लेप करनेसे किटिभकुष्ठ नष्ट होता है । अथवा अमलतासके पत्तोंको काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रु, किटिभ, कुष्ठ, और सिध्म नष्ट होते हैं । मूली, सरसोंके बीज, लाख, हल्दी, पवांड़के बीज, गन्धाबिरोजा, त्रिकटु, वायविडङ्ग तथा कूठको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे दद्रु सिध्म किटिभ पामा और कापालकुष्ठ तथा विषमकुष्ठ नष्ट होते हैं । तथा पवांड, कूठ, सेंधानमक, काञ्जी, सरसों तथा वायविड़ङ्गसे बनाया गया लेप, क्रिमि, सिध्म, दद्रु और मण्डलकुष्ठोंको नष्ट करता है ॥ ३२–३६ ॥

अन्ये लेपाः ।

स्नुक्काण्डे सर्षपात्कल्कः कुकूलानलपाचितः ।
लेपाद्विचर्चिकां हन्ति रागवेग इव त्रपाम् ॥ ३७ ॥
स्नुक्काण्डशुषिरे दग्ध्वा गृहधूमं ससैन्धवम् ।
अन्तर्धूमं तैलयुक्तं लेपाद्धन्ति विचर्चिकाम् ॥३८ ॥
एडगजातिलसर्षपकुष्ठं मागधिकालवणत्रयमस्तु ।
पूतिकृतं दिवसत्रयमेतद्धन्ति विचर्चिकदद्रु सकुष्टम्॥

सेहुण्डकी शाखामें सरसोंका कल्क रखकर कोयलोंकी आंचमें पकाकर लेप करनेसे प्रेम वेगसे लज्जाके समान विचर्चिका नष्ट होती है । तथा सेहुण्डकी डालमें छिद्रकर अन्दर गृहधूम सेंधानमक तैल भरकर अन्तर्धूम पकाकर लेप करनेसे विच-र्चिका नष्ट होती है । तथा पवांड़, तिल, सरसों, कूठ, छोटी पीपल, व तीनों नमकोंको दहीके तोड़के साथ तीन दिन एकमें रखनेके अनन्तर लगानेसे विचर्चिका दद्रु व कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ३७–३९ ॥

उन्मत्तकतैलम् ।

उन्मत्तकस्य बीजेन माणकक्षारवारिणा ।
कटुतैलं विपक्वन्यं शीघ्रं हन्याद्विपादिकाम् ॥ ४०॥

धतूरेके बीजोंके कल्क तथा मानकन्दके क्षारजलसे सिद्ध कटुतैल विपादिकाको नष्ट करता है ॥ ४० ॥

तण्डुललेपः।

नारिकेलोदके न्यस्तास्तण्डुलाः पूतितां गताः।
लेपाद्विपादिकां घ्नन्ति चिरकालानुबन्धिनीम्॥४१॥

नारियलके जलमें रक्खे चावल सड़ जानेपर लेप करनेसे विपादिकाको नष्ट करते हैं॥ ४१॥

पादस्फुटननाशको लेपः।

सर्जरसः सिन्धूद्भवगुडमधुमहिषाक्षगैरिकं सघृतम्।
सिक्थकमेतत्पक्वं पादस्फुटनापहं सिद्धम्॥ ४२॥

राल, सेंधानमक, गुड़, शहद, गुग्गुलु, गेरू, घी तथा मोमको मिला पकाकर लेप करनेसे पैरोंका फटना शान्त होता है॥ ४२॥

कच्छूहरलेपौ।

अवल्गुजं कासमर्दं चक्रमर्दं निशायुतम्।
माणिमन्थेन तुल्यांशं मस्तुकाञ्जिकपेषितम्।
कच्छूं कण्डूं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराट्॥४३॥
कोमलं सिंहास्यदलं सनिशं सुरभिजलेन संपिष्टम्।
दिवसत्रयेण नियतं क्षपयति कच्छूं विलेपनतः ४४

(१) बकुची, कसौंदी, चकवड़, हल्दी तथा सेंधानमक समान भाग ले दहीके तोड़ व काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे उग्र कच्छू व कण्डू नष्ट होती है। अथवा (२) कोमलवासाके पत्ते और हल्दीको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे निःसन्देह ३ दिनमें कच्छू नष्ट होती है॥ ४३॥ ४४॥

पानम्।

हरिद्राकल्कसंयुक्तं गोमूत्रस्य पलद्वयम्।
पिबेन्नरः कामचारी कच्छूपामाविनाशनम्॥ ४५॥

हल्दीके कल्कके साथ गोमूत्र २ पल पीनेसे यथेष्ट आहार विहार करनेपर भी कच्छू व पामा नष्ट होती है॥ ४५॥

पथ्यायोगः।

शोथपाण्ड्वामयहरी गुल्ममेहकफापहा।
कच्छूपामाहरी चैव पथ्या गोमूत्रसाधिता॥ ४६॥

गोमूत्रमें पकायी गयी छोटी हर्रोंके सेवन करनेसे सूजन, पाण्डुरोग, गुल्म, प्रमेह, कफ, कच्छू, और पामा नष्ट होती है॥ ४६॥

गन्धकयोगः।

पिबति सकटुतैलं गन्धपाषाणचूर्णं
रविकिरणसुतप्तं पामलो यः पलार्धम्।
त्रिदिनतदनुसिक्तः क्षीरभोजी च शीघ्रं
भवति कनकदीप्त्या कामयुक्तो मनुष्यः॥४७॥

जो मनुष्य शुद्ध गन्धकका चूर्ण २ तोला कडुये तैलमें मिला सूर्यकी किरणोंमें तपाकर ३ दिनतक पीता है और स्नान कर दूधका पथ्य लेता है, उसका शरीर कनकके समान देदीप्यमान कामयुक्त होता है। (यह मात्रा १ दिनकी न समझना चाहिये किन्तु ३ दिनमें इतना कई बारमें खिलाना चाहिये)॥ ४७॥

उद्वर्तनम्।

निशासुधारग्वधकाकमाची-
पत्रैः सदार्वीप्रपुनाडबीजैः।
तक्रेण पिष्टैः कटुतैलमिश्रैः
पामादिपूद्वर्तनमेतदिष्टम्॥ ४८॥

हल्दी, सेहुण्ड, अमलतास तथा मकोयके पत्ते और दारुहल्दी व पवांड़के बीज सबको मट्ठेमें पीस कडुआ तैल मिलाकर उबटन लगाना पामादिमें हितकर है॥ ४८॥

सिन्दूरयोगः।

सिन्दूरमरिचचूर्णं महिषीनवनीतसंयुतं बहुशः।
लेपान्निहन्ति पामां तैलं करवीरसिद्धं वा॥ ४९॥

सिंदूर, व काली मिर्चका चूर्ण भैंसीके मक्खनमें मिलाकर अनेक बार लेप करनेसे तथा कनैरसे सिद्ध तैल लगानेसे पामा नष्ट होती है॥ ४९॥

कुष्ठहरो गणः।

मांसी चन्दनसम्पाककरञ्जारिष्टसर्षपम्।
शटीकुटजदार्व्यब्दं हन्ति कुष्ठमयं गणः॥ ५०॥

जटामांसी, चन्दन, अमलतास, कञ्जा, नीम, सरसों, कचूर कुटज, दारुहल्दी और नागरमोथा यह गण, कुष्ठको नष्ट करता है॥ ५०॥

भल्लातिकादिलेपः।

भल्लातकद्वीपिसुधार्कमूलं
गुञ्जाफलं त्र्यूषणशङ्खचूर्णम्।
तुत्थं सकुष्ठं लवणानि पञ्च
क्षारद्वयं लाङ्गलिकां च पक्त्वा॥ ५१॥
स्नुह्यर्कदुग्धे घनमायसस्थं
शलाकया तं विदधीत लेपम्।
कुष्ठे किलासे तिलकालके च
अशेषदुर्नामसु चर्मकीले॥ ५२॥

भिलावां, चीता, सेहुण्ड व आकको जड़, गुञ्जाफल, त्रिकटु, शंख, तूतिया, कूठ, पाँचों नमक, यवाखार, सज्जीखार, कलिहारी इनको सेहुंड़ व आकके दूधके साथ लोहेके पात्रमें पाक कर

गाढ़ा हो जानेपर सलाईसे लेप करना चाहिये । यह कुष्ठ, किलास, तिलकालक, अर्श और चर्मकीलको नष्ट करता है ॥५१॥५२ ॥

विषादिलेपः ।

विषवरुणहरिद्राचित्रकागारधूम-
मनलमरिचदूर्वाः क्षीरमर्कस्नुहीभ्याम् ।
दहति पतितमात्राकुष्ठजातीरशेषाः
कुलिशमिव सरोषाच्छक्रहस्ताद्विमुक्तम् ॥५३

सींगिया, वरुणा, हल्दी, चीतकी जड़, गृहधूम्र, भिलावां, मरिच तथा दूबके चूर्णको आक और सेहुंड़के दूधमें मिलाकर लेप करना चाहिये । यह लगते ही समस्त कुष्ठकी जातियोंको इन्द्रके हाथसे छूटे हुए वज्रके समान नष्ट करता है ॥ ५३ ॥

शशांकलेखादिलेहः ।

शशाङ्कलेखा सविडङ्गसारा
सपिप्पलीका सहुताशमूला ।
सायोमला सामलका सतैला
सर्वाणि कुष्ठान्युपहन्ति लीढा ॥ ५४ ॥

बकुची, वायविडंग, छोटी पीपल, चीतकी जड़, मंडूर तथा आमलाके चूर्णको तैलके साथ चाटनेसे समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ५४ ॥

सोमराजीप्रयोगः ।

तीव्रेण कुष्ठेन परीतदेहो
यः सोमराजीं नियमेन खादेत् ।
संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां
स सोमराजीं वपुषाऽतिशेते ॥ ५५ ॥

तीव्र कुष्ठसे व्याप्त देहवाला जो मनुष्य काले तिलके साथ बकुची नियमसे खाता है, उसका शरीर चंद्रमाके समान प्रकाशमान होता है ॥ ५५ ॥

अवल्गुजायोगः ।

घर्मसेवी कदुष्णेन वारिणा वागुजीं पिवेत ।
क्षीरभोजी त्रिसप्ताहात्कुष्ठरोगाद्विमुच्यते ॥ ५६ ॥
एकस्तिलस्य भागौ द्वौ सोमराज्यास्तथैव च ।
भक्ष्यमाणमिदं प्रातर्गुह्यदद्रुविनाशनम् ॥ ५७ ॥
अवल्गुजाद्वीजकर्षं पीत्वा कोष्णेन वारिणा ।
भोजनं सर्पिषा कार्यं सर्वकुष्ठप्रणाशनम् ॥ ५८ ॥

घर्मका सेवन करते हुए कुछ गरम जलके साथ २१ दिनतक बकुची पीना चाहिये तथा दूधका पथ्य लेना चाहिये । इससे २१ दिनमें कुष्ठरोग नष्ट होता है । तथा एक भाग तिल और २ भाग बकुची मिलाकर खानेसे गुह्यस्थानका दद्रु नष्ट होता है । अथवा बकुचीके बीज १ कर्ष कुछ गरम जलके साथ पीकर घीके साथ भोजन करनेसे समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ५६-५८ ॥

त्रिफलादिक्काथः ।

त्रिफलापटोलरजनीमञ्जिष्ठारोहिणीवचानिम्बैः ।
एष कषायोऽभ्यस्तो निहन्ति कफपित्तजं कुष्ठम् ॥५९॥

त्रिफला, परवलकी पत्ती, हल्दी, मजीठ, कुटकी, वच, नीमका क्काथ कुछ दिनतक सेवन करनेसे कफपित्तज कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ५९ ॥

छिन्नाप्रयोगः ।

छिन्नायाः स्वरसो वापि सेव्यमानो यथाबलम् ।
जीर्णे घृतेन भुञ्जीत स्वल्पं यूषोदकेन वा ।
अतिपूतिशरीरोऽपि दिव्यरूपो भवेन्नरः ॥ ६० ॥

शक्तिके अनुसार गुर्चका स्वरस सेवन करते हुए ओषधि पच जानेपर घी अथवा यूषके साथ भोजन करनेसे अति दुर्गन्धित शरीरवाला भी निःसन्देह स्वरूपवान् हो जाता है ॥ ६० ॥

पटोलादिक्काथः ।

पटोलखदिरारिष्टत्रिफलाकृष्णवेत्रजम् ।
तिक्ताशनः पिबेत्क्काथं कुष्ठी कुष्ठं व्यपोहति ॥६१॥

परवलकी पत्ती, कत्था, नीमकी छाल, त्रिफला, काला वेत इनके क्काथको पीने तथा तिक्त पदार्थ सेवन करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है ॥ ६१ ॥

सप्तसमो योगः ।

तिलाज्यत्रिफलाक्षौद्रव्योषभल्लातशर्कराः ।
वृष्यः सप्तसमो मेध्यः कुष्ठहा कामचारिणः ॥ ६२ ॥

तिल, घृत, त्रिफला, शहद, त्रिकटु, भिलावां और शक्कर ये सब समान भाग मिलाकर सेवन करनेसे कुष्ठ नष्ट होता है । इसे "सप्तसमयोग" कहते हैं । इसमें किसी प्रकारके नियमकी आवश्यकता नहीं ॥ ६२ ॥

विडङ्गादिचूर्णम् ।

विडङ्गत्रिफलाकृष्णाचूर्णं लीढं समाक्षिकम् ।
हन्ति कुष्ठक्रिमीन्मेहान्नाडीव्रणभगन्दरान् ॥ ६३ ॥

वायविड़ङ्ग, त्रिफला तथा छोटीपीपलके चूर्णको शहदके साथ सेवन करनेसे कुष्ठ, क्रिमि, प्रमेह, नाड़ी व्रण व भगन्दररोग नष्ट होते हैं ॥ ६३ ॥

विजयामूलयोगः ।

इन्द्राशनं समादाय प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ।
तच्चूर्णं मधुसर्पिर्भ्यां लिह्यात्क्षीरघृताशनः ॥ ६४ ॥
हत्वा च सर्वकुष्ठानि जीवेद्वर्षशतद्वयम् ।

अच्छे दिन भांगके वृक्षोंको उखाड़ चूर्ण बनाकर शहद व घीके साथ चाटना चाहिये । तथा दूध व घीके पथ्य लेना चाहिये । यह समस्त कुष्ठोंको नष्ट करता तथा पुरुषको दीर्घायु बनाता है ॥ ६४ ॥

विविधा योगाः ।

यः खादेदभयारिष्टमरिष्टामलकानि वा ॥ ६५ ॥
स जयेत्सर्वकुष्ठानि मासादूर्ध्वं न संशयः ।
दह्यमानाच्च्युतः कुम्भे मूलगे खादिराद्रसः ॥६६॥
साज्यधात्रीरसक्षौद्रो हन्यात्कुष्ठं रसायनम् ॥ ६७॥

जो हर्रे व नीमकी पत्ती, अथवा नीमकी पत्ती व आमला एक मासतक खाता है, उसके समस्त कुष्ठ निःसन्देह नष्ट होते हैं । अथवा हरे खड़े कत्थेके वृक्षको जलाकर मूलमें टपके हुए रसको ले घी, आमलेके रस तथा शहदके साथ सेवन करनेसे समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ६५–६७ ॥

वायस्यादिलेपः ।

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुडिका कृता ।
वस्तमूत्रेण संपिष्टा लेपाच्छ्वित्रविनाशिनी ॥ ६८॥

मकोय, पवांड़के बीज, कूठ तथा छोटी पीपल पीस बकरेके मूत्रमें घोट गोली बनाकर बकरेके मूत्रमें ही पीसकर लेप करनेसे श्वेतकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ६८ ॥

पूतिकादिलेपः ।

पूतीकार्कस्नुङ्नरेन्द्रद्रुमाणां
मूत्रे पिष्टाः पल्लवाः सौमनाश्च ।
लेपाच्छ्वित्रं घ्नन्ति दद्रुव्रणांश्च ।
कुष्ठान्यर्शांस्युग्रनाडीव्रणांश्च ॥ ६९ ॥

पूतिकरञ्ज, आक, सेहुण्ड, अमलतास और चमेलीके पत्तोंको गोमूत्रमें पीस लेप करनेसे श्वेत कुष्ठ, दद्रुव्रण, कुष्ठ, अर्श तथा नाड़ीव्रण नष्ट होते हैं ॥ ६९ ॥

गजादिचर्ममसीलेपः ।

गजचित्रव्याघ्रचर्ममसीतैलाविलेपनात् ।
श्वित्रं नाशं व्रजेत्किं वा पूतिकीटविलेपनात् ॥७० ॥

हाथी, चीता, तथा व्याघ्रके चर्मकी भस्मको तैलमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा दुर्गन्धित कीटके लेप करनेसे श्वित्र (सफेद कोढ़) नष्ट होता है ॥ ७० ॥

अवल्गुजहरितालपलेपः ।

कुडवोऽवल्गुजबीजाद्धरितालचतुर्थभागसंमिश्रः ॥
मूत्रेण गवां पिष्टः सवर्णकरणः परः श्वित्रे ॥ ७१ ॥

श्वित्रमें बकुचीके बीज १६ तोला, हरिताल ४ तोला दोनों, को गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे शरीरके समान वर्ण हो जाता है ॥ ७१ ॥

धात्र्यादिक्वाथः ।

धात्रीखादिरयोः क्वाथं पीत्वा वल्गुजसंयुतम् ।
शङ्खेन्दुधवलं श्वित्रं तूर्णं हन्ति न संशयः ॥ ७२ ॥

आंवला और कत्थेका क्वाथ बकुचीका चूर्ण मिलाकर पीनेसे शंख और चन्द्रमाके समान श्वित्र भी नष्ट होता है ॥७२॥

गजलेण्डजक्षारयोगः ।

क्षारेण दग्धे गजलेण्डजे च
गजस्य मूत्रेण बहुस्रुते च ।
द्रोणप्रमाणे दशभागयुक्तं
दत्त्वा पचेद्बीजमवल्गुजस्य ॥ ७३ ॥
एतद्यदा चिक्कणतामुपैति
तदा सुसिद्धां गुडिकां प्रयुञ्ज्यात् ।
श्वित्रं विलिम्पेदथ तेन घृष्टं
तदा व्रजत्याशु सवर्णभावम् ॥ ७४ ॥

क्षार द्रव्योंके साथ हाथीकी विष्ठाको जला भस्मको अनेक बार हाथीके मूत्रमें ही छानकर छने हुए १ द्रोण जलको दशमांश बकुचीका चूर्ण मिलाकर पकाना चाहिये, जब यह गोली बनानेके योग्य चिकना हो जावे, तब उतार ठण्ढा कर गोली बना लेनी चाहिये, फिर इस गोलीको घिसे हुए श्वित्रके ऊपर हाथीके मूत्रमें ही घिसकर लेप करना चाहिये । इससे श्वेतकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

जयन्तीयोगः ।

श्वेतजयन्तीमूलं पिष्टं पीतं च गव्यपयसैव ।
श्वित्रं निहन्ति नियतं रविवारे वैद्यनाथाज्ञा ॥७५॥

सफेद जयन्तीकी जड़को पीसकर गायके दूधके साथ रविवारके दिन पीनेसे श्वित्र नष्ट हो जाता है, यह वैद्यनाथकी प्रतिज्ञा है ॥ ७५ ॥

पञ्चनिम्बचूर्णम् ।

पुष्पकाले तु पुष्पाणि फलकाले फलानि च ।
संचूर्ण्य पिचुमर्दस्य त्वङ्मूलानि दलानि च ॥७६॥
द्विरंशानि समाहृत्य भागिकानि प्रकल्पयेत् ।
त्रिफला त्र्यूषणं ब्राह्मी श्वदंष्ट्रारुष्कराग्निकाः ॥७७॥
विडङ्गसारवाराहीलोहचूर्णामृताः समाः ।
द्विहरिद्रावल्गुजकव्याधिघाताः सशर्कराः ॥ ७८ ॥
कुष्ठेन्द्रयवपाठाश्च कृत्वा चूर्णं सुसंयुतम् ।
खदिरासननिम्बानां घनक्वाथेन भावयेत् ॥७९॥

सप्तवा पञ्चनिम्बं तु मार्कवस्वरसेन तु ।
स्निग्धशुद्धतनुर्धीमान्योजयेच्च शुभे दिने ॥ ८० ॥
मधुना तिक्तहविषा खदिरासनवारिणा ।
लेह्यमुष्णाम्बुना वापि कोलवृद्धया पलं पिबेत् ॥८१
जीर्णे च भोजनं कार्यं स्निग्धं लघु हितं च यत्॥८२॥

विचर्चिकोदुम्बरपुण्डरीक-
कपालदद्रूकिटिमालसादीन् ।
शतारुविस्फोटविसर्पपामां
कफप्रकोपं त्रिविधं किलासम् ॥ ८३ ॥

भगन्दरश्लीपदवातरक्तं
जाताम्ध्यनाडीव्रणशीर्षरोगान् ।
सर्वान्प्रमेहान्प्रदरांश्च सर्वान्
दंष्ट्राविषं मूलविषं निहन्ति ॥ ८४ ॥

स्थूलोदरः सिंहकृशोदरश्च
सुश्लिष्टसन्धिर्मधुनोपयोगात् ।
समोपयोगादपि ये दशन्ति
सर्पादयो यान्ति विनाशमाशु ॥ ८५ ॥

जीवेच्चिरं व्याधिजराविमुक्तः
शुभे रतश्चन्द्रसमानकान्तिः ॥ ८६ ॥

नीमके फूलोंके समय फूल और फलोंके समय फल ले सुखाकर तथा नीमकी ही छाल, मूल व पत्तीको सुखाकर प्रत्येक २ भाग तथा त्रिफला, त्रिकटु, ब्राह्मी, गोखुरु, भिलावां, चीतकी जड़, वायविड़ंग, वाराहीकन्द, लोहभस्म, गुर्च, हल्दी, दारुहल्दी, बकुची, अमलतास, बाकर, कूठ, इन्द्रयव तथा पाढ़ प्रत्येक एक भाग ले चूर्ण कर कत्था विजैसार और नीमके गाढ़े क्वाथकी ७ भावना देनी चाहिये । फिर इस चूर्णको भांगरेके स्वरसकी ७ भावना देनी चाहिये । फिर शुष्क चूर्ण कर स्निग्ध और विरेचनादिसे शुद्ध शरीर होकर शुभ मुहूर्तमें शहद अथवा तिक्त घृत अथवा कत्था व विजैसारके क्वाथके साथ अथवा गरम जलके साथ ६ माशेसे १ पल तक प्रयोग करना चाहिये । औषध पच जानेपर चिकना लघु हितकारक भोजन करना चाहिये । यह विचर्चिका, उदुम्बर, पुंडरीक, कपाल, दद्रु, किटिभ, अलस, शतारु, विस्फोटक, विसर्प, पामा, कफरोग, किलास, भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, दृष्टिदोष, नाड़ीव्रण, शिरोरोग, प्रमेह, प्रदर, दंष्ट्राविष तथा मूलविष आदिको नष्ट करता है । शहदके साथ सेवन करनेसे मोटे पेटवाले सिंहके समान कृशोदर हो जाते हैं । इसको एक वर्षभर लेनेवालेको यदि सर्प काट खाते हैं, तो वे (सर्प) ही तत्काल मर जाते हैं । इसका सेवन करनेवाला व्याधि तथा वृद्धतादिसे रहित हो चन्द्रसमान कान्तियुक्त शुभ कर्म करता हुआ अधिक समयतक जीता है ॥ ७६–८६ ॥

चित्रकादिगुग्गुलुः ।

चित्रकं त्रिफलां व्योषमजाजीं कारवीं वचाम् ।
सैन्धवातिविषे कुष्ठं चव्यैलायावशूकजम् ॥ ८७ ॥
विडङ्गान्यजमोदां च मुस्तान्यमरदारु च ।
यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्मात्रं तु गुग्गुलुम्॥८८॥
संक्षुद्य सर्पिषा सार्धं गुडिकां कारयेद्भिषक् ।
प्रातर्भोजनकाले च भक्षयेत्तु यथाबलम् ॥ ८९ ॥
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि क्रिमीन्दुष्टव्रणानि च ।
ग्रहण्यर्शोविकारांश्च मुखामयगलग्रहान् ॥ ९० ॥
गृध्रसीमथ भग्नं च गुल्मं चाशु नियच्छति ।
व्याधीन्कोष्ठगतांश्चान्याञ्जयेद्विष्णुरिवासुरान्॥९१॥

चीतेकी जड़, त्रिफला, त्रिकटु, जीरा, काला जीरा, वच, सेंधव, अतीस, कूठ, चव्य, इलायची, जवाखार, वायविड़ंग, अजमोद, नागर मोथा तथा देवदारु प्रत्येक समान भाग कूट छान सबके समान गुग्गुलु मिलाकर गोली बना लेनी चाहिये । प्रातः तथा भोजनके समय बलानुसार इसका सेवन करना चाहिये । यह अठारह प्रकारके कुष्ठ, क्रिमि, दुष्ट व्रण, ग्रहणी, अर्शोरोग, मुखरोग, गलरोग, गृध्रसी, भग्न तथा कोष्ठगत रोगोंको जैसे विष्णु राक्षसोंको नष्ट करते हैं वैसे ही नष्ट करता है॥८७–९१

भल्लातकप्रयोगः ।

पञ्च भल्लातकांश्छित्त्वा साधयेद्विधिवज्जले ।
कषायं तं पिबेच्छीतं घृतेनाक्तोष्ठतालुकः ॥ ९२ ॥
पञ्चवृद्ध्या पिबेद्यावत्सप्ततिं ह्रासयेत्ततः ।
जीर्णेऽद्यादोदनं शीतं घृतक्षीरोपसंहितम् ॥ ९३ ॥
एतद्रसायनं मेध्यं वलीपलितनाशनम् ।
कुष्ठार्शःक्रिमिदोषघ्नं दुष्टशुक्रविशोधनम् ॥ ९४ ॥

पञ्च भिलावोंको टुकड़ाकर जलमें विधिपूर्वक क्वाथ बनाना चाहिये । फिर ओठों तथा तालुमें घी लगाकर ठण्ढा क्वाथ पीना चाहिये । इसी प्रकार दूसरे दिन ५ बढ़ाकर अर्थात् १० भिलावोंका क्वाथ पीना चाहिये । इस प्रकार जबतक ७० भिलावां न हो जायँ, तबतक बढ़ाना चाहिये । फिर क्रमशः ५ पांच ही प्रतिदिन घटाना चाहिये । औषध पच जानेपर घी, और दूधके साथ भात खाना चाहिये । यह रसायन है । मेधाको बढ़ाता, झुर्रियों तथा बालोंकी सफेदीको नष्ट करता, कुष्ठ, अर्श, क्रिमिदोषको दूर करता तथा दूषित शुक्रको शुद्ध करता है॥९२–९४॥

भल्लातकतैलप्रयोगः ।

तैलं भल्लातकानां च पिबेन्मासं यथाबलम् ।
सर्वोपतापनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं दृढम् ॥ ९५ ॥

१ महीनेतक भिलावेके तैलका बलानुसार सेवन करनेसे समस्त दुःखोंसे रहित होकर १०० वर्षतक जीता है ॥ ९५ ॥

खदिरप्रयोगः।

प्रलेपोद्वर्तनस्नानपानभोजनकर्मणि ।
शीलितं खादिरं वारि सर्वत्वग्दोषनाशनम् ॥९६॥

लेप, उवटन, स्नान, पान तथा भोजनमें खदिरके जलका सेवन करनेसे समस्त त्वग्दोष नष्ट होते हैं ॥ ९६ ॥

तिक्तषट्पलकं घृतम्।

निम्बं पटोलं दार्वीं दुरालभां
तिक्तकरोहिणीं त्रिफलाम् ॥ ९७ ॥
कुर्यादर्धपलांशान्पर्पटकं त्रायमाणां च ।
सलिलाढकसिद्धानां रसेऽष्टभागस्थिते क्षिपेत्पूते ।
चन्दनकिराततिक्तकमागधिकात्रायमाणाश्च ॥९८॥
मुस्तावत्सकबीजं कल्कीकृतमर्धकार्षिकान् भागान् ।
नवसर्पिषश्च षट् पलमेतत्सिद्धं घृतं पेयम् ॥ ९९ ॥
कुष्ठज्वरगुल्मार्शोग्रहणीपाण्ड्वामयश्वयथून् ।
पामाविसर्पपिडकाकण्डूगलगण्डनुत्सिद्धम् ॥१००॥

नीमकी छाल, परवलकी पत्ती, दारुहल्दी, यवासा, कुटकी, त्रिफला, पित्तपापड़ा तथा त्रायमाणा प्रत्येक २ तोले, जल द्रवद्वैगुण्यात् २ आढक अर्थात् ६ सेर ३२ तोले मिलाकर अष्टमांश शेष क्वाथ बना उतार, छानकर २४ तो० नया घृत तथा चन्दन, चिरायता, छोटी पीपल, त्रायमाणा, नागरमोथा व इन्द्रयव प्रत्येक ६ माशेका कल्क छोड़कर घृत सिद्ध करना चाहिये । इसका मात्रासे सेवन करनेसे कुष्ठ, ज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी, पांडुरोग, शोथ, पामा, विसर्प, पिड़का, कण्डू, और गलगण्ड रोग नष्ट होते हैं ॥ ९७–१०० ॥

पञ्चतिक्तकं घृतम् ।

निम्बं पटोलं व्याघ्रीं च गुडूचीं वासकं तथा ।
कुर्याद्दशपलान्भागानेकैकस्य सुकुट्टितान् ॥ १०१ ॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ १०२ ॥
पञ्चतिक्तमिदं ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम् ।
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्॥१०३
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव पानादेवापकर्षति ।
दुष्टव्रणक्रिमीनर्शः पञ्च कासांश्च नाशयेत्॥१०४॥

नीम, परवल, छोटी कटेरी, गुर्च, तथा अड़ूसा प्रत्येक ४० तोला ले दुरकुचाकर जल १ द्रोणमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार, छानकर घी १ प्रस्थ तथा त्रिफलाका मिलित कल्क १६ तोला मिलाकर सिद्ध करना चाहिये । यह "पञ्चतिक्तघृत" कुष्ठ, वात, कफ, पित्तके समस्त रोग, दुष्ट व्रण, कीड़े और अर्शको पीनेसे ही नष्ट करता है ॥ १०१–१०४ ॥

तिक्तकं घृतम् ।

त्रिफलाद्विनिशावासायासपर्पटकूलकान् ।
त्रायन्तीकटुकानिम्बान्प्रत्येकं द्विपलोन्मितान्॥१०५
क्वाथयित्वा जलद्रोणे पादशेषेण तेन तु ।
घृतप्रस्थं पचेत्कल्कैः पिप्पलीवन्यचन्दनैः ॥ १०६॥
त्रायन्तीशक्रभूनिम्बैस्तत्पीतं तिक्तकं घृतम् ।
हन्ति कुष्ठज्वरार्शांसि श्वयथुं ग्रहणीगदम् ।
पाण्डुरोगं विसर्पं च क्लीबानामपि शस्यते ॥१०७॥

त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, अड़ूसा, यवासा, पित्तपापड़ा, परवलकी पत्ती, त्रायमाण, कुटकी तथा नीमकी छाल प्रत्येक ८ तोला, जल १५ सेर ४८ तोला मिलाकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर घी १२८ तोला तथा छोटी पीपल, केवटीमोथा, चन्दन, त्रायमाण, इन्द्रयव व चिरायता प्रत्येक २ तोलाका कल्क छोड़कर सिद्ध करना चाहिये । यह घृत कुष्ठ, ज्वर, अर्श, सूजन, ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग और विसर्पको नष्ट करता है । नपुंसकोंके लिये भी हितकर है ॥ १०५–१०७ ॥

महातिक्तकं घृतम् ।

सप्तच्छदं प्रतिविषां सम्पाकं तिक्तरोहिणीं पाठाम्१०८
मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमर्दपर्पटकम् ।
धन्वयवासं चन्दनमुपकुल्ये पद्मकं रजन्यौ च ।
षड्ग्रन्थां सविशालां शतावरीशारिवे चोभे ॥१०९॥
वत्सकबीजं वासां मूर्वाममृतां किराततिक्तं च ।
कल्कान्कुर्यान्मतिमान्यष्ट्याह्वं त्रायमाणां च ॥ ११० ॥
कल्कश्चतुर्थभागो जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम् ।
द्विगुणो घृताच्च देयस्तत्सर्पिः पाययेत्सिद्धम् ॥ १११ ॥
कुष्ठानि रक्तपित्तं प्रबलान्यर्शांसि रक्तवाहीनि ।
वीसर्पमम्लपित्तं वातासृक्पाण्डुरोगं च ॥ ११२ ॥
विस्फोटकान्सपामानुन्मादं कामलां ज्वरं कण्डूम् ।
हृद्रोगगुल्मपिडकामसृग्दरं गण्डमालां च ॥ ११३ ॥
हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः ।
योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महातिक्तम् ॥ ११४ ॥

सप्तपर्ण, अतीस, अमलतासका गूदा, कुटकी, पाढ, नागरमोथा, खश, त्रिफला, पटोल, निम्ब, पित्तपापड़ा, यवासा, चन्दन, छोटी, व बड़ी पीपल, पद्माख, हल्दी, दारुहल्दी, वच, इन्द्रायण, शतावर, दोनों सारिवा, इन्द्रयव, अड़ूसा, मूर्वा, गुर्च, चिरायता, तथा त्रायमाणका घीसे चतुर्थांश कल्क, जल अठगुना तथा परवलके फलोंका क्वाथ विधिवत् बनाकर घीसे दूना छोड़कर घी पकाना चाहिये । यह घृत, सैकड़ों

योगोंसे असाध्य कुष्ठ, रक्तपित्त, रक्तस्रावी अर्श, विसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग, विस्फोटक, पामा, उन्माद, कामला, ज्वर, कण्डूरोग, हृद्रोग, गुल्म, पिड़िका, रक्तप्रदर तथा गण्डमालाको बलानुसार सेवन करनेसे नष्ट करता है। इसे "महा-तिक्तक घृत" कहते हैं॥ १०८-११४॥

महाखदिरं घृतम्।

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपाशनयोस्तुले।
तुलार्धाः सर्व एवैते करञ्जारिष्टवेतसाः॥ ११५॥
पर्पटः कुटजश्चैव वृषः क्रिमिहरस्तथा।
हरिद्रे कृतमालश्च गुडूची त्रिफला त्रिवृत्॥११६॥
सप्तपर्णस्तु संक्षुण्णो दशद्रोणे च वारिणः।
अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत्॥ ११७॥
धात्रीरसं च तुल्यांशं सर्पिषश्चाढकं पचेत्।
महातिक्तककल्कैश्च यथोक्तैः पलसंमितैः॥ ११८॥
निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यंगान्निषेवणात्।
महाखदिरमित्येतत्परं कुष्ठविनाशनम्॥ ११९॥

कत्था २५ सेर शीशम व विजैसार दोनों मिलाकर १० सेर तथा कञ्जा, नीमकी छाल, बेत, पित्तपापड़ा, कुरैयेकी छाल, आंवला, वायविड़ंग, हल्दी, दारुहल्दी, गुर्च, त्रिफला, निसोथ, व सप्तपर्ण प्रत्येक २॥ सेर, जल १० द्रोण द्रवद्वैगुण्य कर २५६ सेरमें मिलाकर पकाना चाहिये, अष्टमांश शेष रहनेपर उतार कर छानना चाहिये। फिर आंवलेका रस ६ सेर ३२ तो० तथा घी ६ सेर ३२ तोला तथा महातिक्त घृतकी प्रत्येक औषधिका कल्क ४ तोला मिलाकर पकाना चाहिये। इस घृतके पीने तथा मालिश करनेसे समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं। यह "महाखदिर" नामक घृत कुष्ठके नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है॥ ११५-११९॥

पञ्चतिक्तकगुग्गुलुः।

निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां
भागान्पृथग्दशपलान्विपचेद् घटेऽपाम्।
अष्टांशशेषितजलेन सुनिःसुतेन
प्रस्थं घृतस्य विपचेत्पिचुभागकल्कैः॥१२०॥
पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्या-
द्विक्षारनागरनिशामिशिचव्यकुष्ठैः
तेजोवतीमरिचवत्सकदीप्यकाग्नि-
रोहिण्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तैः॥ १२१॥
मञ्जिष्ठयाऽतिविषया वरया यमान्या
संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पञ्चसङ्ख्यैः।
तत्सेवितं विषमतिप्रबलं समीरं
सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक्॥१२२॥
नाडीव्रणार्बुदभगन्दरगण्डमाला
जत्रूर्ध्वसर्वगतगुल्मगुदोत्थमेहान्।
यक्ष्मारुचिश्वसनपीनसकासशोष-
हृत्पाण्डुरोगगलविद्रधिवातरक्तम्॥ १२३॥

नीमकी छाल, गुर्च, अडूसा, परवल, तथा छोटी कटेरी प्रत्येक ४० तो० लेकर जल २५ सेर ४८ तो० मिलाकर पकाना चाहिये। अष्टमांश रह जानेपर उतार छानकर घी १२८ तो० तथा पाढ़, वायविडङ्ग, देवदारु, गजपीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोंठ, हल्दी, सौंफ, चव्य, कूठ, तेजोवती, मरिच, कुड़ेकी छाल, अजवायन, चीतकी जड़, कुटकी, भिलावां, दूधिया वच, पिपरामूल, मजीठ, अतीस, त्रिफला, व अजमोद प्रत्येकका एक तोला महीन पिसा हुआ कल्क तथा शुद्ध गुग्गुलु २० तोला मिलाकर पकाना चाहिये। यह विष, अति प्रबल वायु सन्धि अस्थि तथा मज्जागत कुष्ठ, नाड़ीव्रण, अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला, जत्रूर्ध्वजरोग, सर्वगतरोग, गुल्म, अर्श, प्रमेह, यक्ष्मा, अरुचि, श्वास, पीनस, कास, शोष, हृद्रोग, पाण्डुरोग, गलविद्रधि और वातरक्तको नष्ट करता है॥ १२०-१२३॥

वज्रकं घृतम्।

वासागुडूचीत्रिफलापटोल-
करञ्जनिम्बाशनकृष्णवेत्रम्।
तत्क्वाथकल्केन घृतं विपक्वं
तद्वज्रकं कुष्ठहरं प्रदिष्टम्॥ १२४॥
विशीर्णकर्णाङ्गुलिहस्तपादः
क्रिम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि मर्त्यः।
पौराणिकीं कान्तिमवाप्य जीवे-
दव्याहतो वर्षशतं च कुष्ठी॥ १२५॥

अडूसा, गुर्च, त्रिफला, परवलकी पत्ती, कञ्जा, नीमकी छाल, विजैसार तथा काले वेतके क्वाथ व कल्कसे पकाया घृत "वज्रक" कहा जाता है। यह कुष्ठको नष्ट करता है। इससे कीड़ोंसे पीड़ित स्वरभेदयुक्त कुष्ठी पुनः पुरानी कान्तिको प्राप्त कर १०० वर्षतक सुखपूर्वक जीता है॥ १२४॥ १२५॥

आरग्वधादितैलम्।

आरग्वधं धवं कुष्ठं हरितालं मनःशिलाम्।
रजनीद्वयसंयुक्तं पचेत्तैलं विधानवित्।
एतेनाभ्यञ्जयेच्छ्वित्री क्षिप्रं श्वित्रं विनश्यति १२६

अमलतास, धायके फूल, कूठ, हरिताल, मैनसिल, हल्दी तथा दारुहल्दीके कल्कके साथ तैल पकाकर श्वित्र वालोंको मालिश करना चाहिये। इससे श्वित्र नष्ट होता है॥ १२६॥

तृणकतैलम् ।

मञ्जिष्ठारुङ्निशाचक्रमर्दारग्वधपल्लवैः ।
तृणकस्वरसे सिद्धं तैलं कुष्ठहरं कटु ॥ १२७ ॥

मजीठ, कूठ, हल्दी, चकवड़ तथा अमलतासके पत्तोंका कल्क और तृणपञ्चमूलका स्वरस छोड़कर सिद्ध कडुआ तैल कुष्ठको नष्ट करता है ॥ १२७ ॥

महातृणकतैलम् ।

हरिद्रात्रिफलादारुहयमारकचित्रकम् ।
सप्तच्छदश्च निम्बत्वकरञ्जो वालकं नखी ॥१२८॥
कुष्ठमेडगजाबीजं लाङ्गली गणिकारिका ॥ १२९ ॥
जातीपत्रं च दार्वी च हरितालं मनःशिला ।
कलिङ्गा तिलपत्रं च अर्कक्षीरं च गुग्गुलुः॥१३०॥
गुडत्वङ्मरिचं चैव कुंकुमं ग्रन्थिपर्णकम् ।
सर्जपर्णाशखदिरविडङ्गं पिप्पली वचा ॥ १३१ ॥
घनरेण्वमृतायष्टिकेशरं ध्यामकं विषम् ।
विश्वकट्फलमञ्जिष्ठा बोलस्तुम्बीफलं तथा ॥ १३२॥
स्नुहीसम्पाकयोः पत्रं वागुजीबीजमांसिके ।
एला ज्योतिष्मतीमूलं शिरीषो गोमयाद्रसः॥१३३॥
चन्दने कुष्ठनिर्गुण्डी विशाला मल्लिकाद्वयम् ।
वासाऽश्वगन्धा ब्राह्मी च श्याह्वं चम्पककट्फलम्३४
एतैःकल्कैः पचेत्तैलं तृणकस्वरसद्रवम् ।
सर्वत्वग्दोषहरणं महातृणकसंज्ञितम् ॥ १३५ ॥

हल्दी, त्रिफला, देवदारु, कनेर, चीतेकी जड़, सप्तपर्ण, नीमकी छाल, कञ्जा, सुगन्धवाला, नख, कूठ, पवांड़के बीज, कलिहारी, अरणी, जावित्री, दारुहल्दी, हरताल, मैनशिल, इन्द्रयव, तिलकी पत्ती, आकका दूध, गुग्गुलु, दालचीनी, काली मिर्च, केशर, भटेउर, राल, छोटी तुलसी, कत्था, वायविडंग, छोटी पीपल, दूधिया वच, नागरमोथा, सम्भालूके वीज, गुर्च, मौरेठी, नागकेशर, रोहिषघास, शुद्ध सींगिया, सोंठ, कैफरा, मजीठ, बोल, तोम्बीके बीज, थूहरके पत्ते, अमलतासके पत्ते, बकुचीके बीज, जटामांसी, छोटी इलायची, मालकांगनीकी जड़, सिरसाकी छाल, गोबरका रस, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, कूठ, सम्भालूकी पत्ती, इन्द्रायणकी जड़, चमेलीके फूल, बेलाके फूल, अडूसा, असगन्ध, ब्राह्मी, गन्धाविरोजा चम्पाके फूल व केफराका कल्क और तृणपञ्चमूलका स्वरस छोड़कर तैल पकाना चाहिये । यह तैल समस्त त्वग्दोषोंको नष्ट करता है ॥ १२८–१३५ ॥

वज्रकं तैलम् ।

सप्तपर्णकरञ्जार्कमालतीकरवीरजम् ।
मूलं स्नुहीशिरीषाभ्यां चित्रकास्फोतयोरपि१३६ ॥
करञ्जबीजं त्रिफलां त्रिकटुं रजनीद्वयम् ।
सिद्धार्थकं विडङ्गं च प्रपुन्नाडतिलैः सह ॥ १३७ ॥
मूत्रपिष्टैः पचेत्तैलमेभिः कुष्ठविनाशनम् ।
अभ्यङ्गाद्वज्रकं नाम नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ १३८॥

सप्तपर्ण, कञ्जा, आक, चमेली और कनेरकी जड़ तथा थूहर, सिरसा और चीता व आस्फोतेकी जड़, कञ्जाके बीज, त्रिफला, त्रिकटु, हल्दी, दारुहल्दी, सरसों, वायविडङ्ग, पवांड़के बीज तथा काले तिल इनको गोमूत्रमें पीस कल्क बना छोड़कर जलके साथ तैल पकाना चाहिये । यह तैल मालिश करनेसे कुष्ठ तथा नाडीव्रण व दुष्ट व्रणको नष्ट करता है ॥ १३६–१३८ ॥

मरिचाद्यं तैलम् ।

मरिचालशिलाह्वार्कपयोऽश्वारिजटात्रिवृत् ।
शकृद्रसविशालारुङ्निशायुग्दारुचन्दनैः ॥१३९ ॥
कटुतैलात्पचेत्प्रस्थं द्व्यक्षैर्विषपलान्वितैः ।
सगोमूत्रं तदभ्यङ्गाद्दद्रुश्वित्रविनाशनम् ।
सर्वेष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतत्प्रशस्यते ॥ १४० ॥

काली मिर्च, हरताल, मैनसिल, आकका दूध, कनेरकी जड़, निसोथ, गोबरका रस, इन्द्रायण, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु तथा चन्दन प्रत्येक दो तोला, विष ४ तोला, कडुआ तैल १२८ तोला तथा चतुर्गुण गोमूत्र छोड़कर पकाना चाहिये । यह तैल मालिश करनेसे दद्रु, श्वित्र तथा समस्त कुष्ठोंको नष्ट करता है ॥ १३९ ॥ १४० ॥

बृहन्मरिचाद्यं तैलम् ।

मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः ।
देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ १४१
विशाला करवीरं च हरितालं मनःशिला ।
चित्रको लाङ्गलाख्या च विडङ्गं चक्रमर्दकम् १४२
शिरीषं कुटजो निम्बं सप्तपर्णस्नुहामृताः ।
सम्पाको नक्तमालोऽब्दः खदिरं पिप्पली वचा १४३
ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं भवेत् ।
आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रं तु चतुर्गुणम् ॥ १४४ ॥
पक्त्वा तैलवरं ह्येतन्म्रक्षयेत्कौष्ठिकान्व्रणान्॥१४५॥
मृत्पात्रे लौहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
पामाविचर्चिकादद्रुकण्डूविस्फोटकानि च ।
वलयः पलितं छाया नीली व्यङ्गस्तथैव च ।
अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यं च जायते ॥१४६॥
प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यं तु दीयते ।
परामपि जरां प्राप्य न स्तना यान्ति नम्रताम्१४७॥

वलीवर्दस्तुरङ्गो वा गजो वा वायुपीडितः ।
एभिरभ्यञ्जनैर्गाढं भवेन्मारुतविक्रमः ॥ १४८ ॥

काली मिर्च, निसोथ, दन्ती, आकका दूध, गोवरका रस, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, जटामांसी, कूठ, चन्दन, इन्द्रायण, कनेरकी छाल, हरताल, मैनशिल, चीतकी जड़, कलिहारी, वायविडंग, चकवड़के बीज, सिरसेकी छाल, कुरैयेकी छाल, नीमकी छाल, सतौना, सेहुण्ड, गुर्च, अमलतासके पत्ते, कञ्जा, नागरमोथा, कत्था, छोटी पीपल, दूधिया वच, तथा मालकांगनी प्रत्येक ४ तोला, सींगिया ८ तोला, कडुआ तैल १ आढक (द्रवद्वैगुण्यकर ६ सेर ३२ तोला) गोमूत्र २५ सेर ४८ तोला छोड़कर मिट्टी या लौहके पात्रमें मन्द आंचसे पकाना चाहिये । इस उत्तम तैलको कुष्ठवालोंके व्रणोंमें लगाना चाहिये । इससे पामा, बिवाई, दाद, खुजली, फफोले, झुर्रियां, बालोंकी सफेदी, स्यउहां तथा झांई नष्ट होते हैं और शरीर सुन्दर होता है । जिन स्त्रियोंको छोटी अवस्थामें इस तैलका नस्य दिया जाता है, उनके बहुत बुढापामें भी स्तन कड़े बने रहते हैं । वायुसे पीड़ित बैल घोड़ा अथवा हाथी इसकी मालिशसे वायुके समान वेगवाला होता है ॥ १४१-१४८ ॥

विषतैलम् ।

नक्तमालं हरिद्रे द्वे अर्कस्तगरमेव च ।
करवीरं वचा कुष्टमास्फोता रक्तचन्दनम् ॥ १४९ ॥
मालती सप्तपर्णं च मञ्जिष्ठा सिन्धुवारिका ।
एषामर्धपलान्भागान्विषस्यापि पलं तथा ॥ १५० ॥
चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
श्वित्रविस्फोटकिटिभकीटलूताविचर्चिकाः ॥ १५१ ॥
कण्डूकच्छ्रविकाराश्च ये व्रणा विषदूषिताः ।
विषतैलमिदं नाम्ना सर्वव्रणविशोधनम् ॥ १५२ ॥

कञ्जा, हल्दी, दारुहल्दी, आक, तगर, कनेर, वच, कूठ, आस्फोता, लालचन्दन, चमेली, सतौना, मजीठ तथा सम्भालू प्रत्येक २ तोला, सींगिया ४ तोला, तैल एक प्रस्थ, (द्रवद्वैगुण्यसे १ सेर ९ छ. ३ तोला) चतुर्गुण गोमूत्र मिलाकर पकाना चाहिये । इस तैलसे सफेद कुष्ठ, फफोले, किटिभ, कीट, मकड़ीका विष, विचर्चिका, खुजली, कच्छू तथा विषसे दूषित व्रण नष्ट होते हैं । यह " विषतैल " समस्त व्रणोंको शुद्ध करता है ॥ १४९-१५२ ॥

करवीराद्यं तैलम् ।

श्वेतकरवीरकरसो गोमूत्रं चित्रकं विडङ्गं च ।
कुष्ठेषु तैलयोगः सिद्धोऽयं संमतो भिषजाम् ॥ १५३ ॥

सफेद कनेरका रस, गोमूत्र, चीतकी जड़ और वायविडंग, मिलाकर विधिपूर्वक सिद्ध तैल सब कुष्ठोंको नष्ट करनेवाला है, ऐसा वैद्यलोग बताते हैं ॥ १५३ ॥

अपरं करवीराद्यं तैलम् ।

श्वेतकरवीरमूलं विषांशसाधितं गवां मूत्रे ।
चर्मदलसिध्मपामाविस्फोटक्रिमिकिटिभजित्तैलम् ॥ १५४ ॥

सफेद कनेरकी जड़ और सींगियाका कल्क तथा गोमूत्र मिलाकर सिद्ध तैल चर्मदल, खुजली, सिध्मकुष्ठ, फफोले, कीड़े और किटिभ कुष्ठको नष्ट करता है ॥ १५४ ॥

सिन्दूराद्यं तैलम् ।

सिन्दूरार्धपलं पिष्ट्वा जीरकस्य पलं तथा ।
कटुतैलं पचेन्मानी सद्यः पामाहरं परम् ॥ १५५ ॥

सिन्दूर २ तोला, जीरा ४ तोला, कडुआ तैल ३२ तोला मिला पकाकर लगानेसे तत्काल खुजली नष्ट होती है ॥ १५५ ॥

महासिन्दूराद्यं तैलम् ।

सिन्दूरं चन्दनं मांसीविडङ्गं रजनीद्वयम् ।
प्रियङ्गुं पद्मकं कुष्ठं मञ्जिष्ठां खदिरं वचाम् ॥ १५६ ॥
जात्यर्कत्रिवृतानिम्बकरञ्जविषमेव च ।
कृष्णवेत्रकलोध्रं च प्रपुन्नाडं च संहरेत् ॥ १५७ ॥
श्लक्ष्णपिष्टानि सर्वाणि योजयेत्तैलमात्रया ।
अभ्यङ्गेन प्रयुंजीत सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ १५८ ॥
पामाविचर्चिकाकण्डूविसर्पादिविनाशनम् ।
रक्तपित्तोत्थितान्हन्ति रोगानेवंविधान्बहून् ॥ १५९ ॥

सिन्दूर, चन्दन, जटामांसी, वायविड़ंग, हल्दी, दारुहल्दी फूलप्रियङ्गु, पद्माख, कूठ, मजीठ, कत्था, वच, चमेली, आक, निसोथ, नीमकी छाल, कञ्जा, सींगिया, काला वेत, लोध तथा पवाड़के बीज सबको महीन पीस तैल मिलाकर पकाना चाहिये । इसकी मालिश करनेसे समस्त कुष्ठ, पामा, विचर्चिका, कण्डू, विसर्प तथा रक्तपित्त रोग नष्ट होते हैं ॥ १५६-१५९ ॥

आदित्यपाकं तैलम् ।

मञ्जिष्ठात्रिफलालाक्षानिशागन्धशिलालकैः ।
चूर्णितैस्तैलमादित्यपाकं पामाहरं परम् ॥ १६० ॥

मजीठ, त्रिफला, लाख, हल्दी, मनशिल, तथा गन्धकका चूर्ण कर तैल मिला सूर्यकी किरणोंसे (७ दिनतक) पकाना चाहिये । यह तैल पामाको नष्ट करता है ॥ १६० ॥

दूर्वाद्यं तैलम् ।

स्वरसे चैव दूर्वायाः पचेत्तैलं चतुर्गुणे ।
कच्छूविचर्चिकापामा अभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ १६१ ॥

दूबके स्वरसमें चतुर्थांश तैल मिला पकाकर मालिश करनेसे कच्छू, बिवाई और पामा नष्ट होती है ॥ १६१ ॥

अर्कतैलम् ।

अर्कपत्ररसे पक्वं कटुतैलं निशायुतम् ।
मनःशिलायुतं वापि पामाकच्छ्वादिनाशनम् १६२

आकके पत्तोंके रस और हल्दी अथवा मनशिलके कल्कके साथ सिद्ध तैल पामा, कच्छू आदिको नष्ट करता है ॥ १६२ ॥

गण्डीराद्यं तैलम् ।

गण्डीरिकाचित्रकमार्कवार्ककुष्ठद्रुमत्वग्लवणैः समूत्रैः ।
तैलं पचेन्मण्डलदद्रुकुष्ठदुष्टव्रणारुःकिटिभापहारि १६३

थूहरका दूध, चीतकी जड़, भांगरा, आक, कूठ तथा अमलतासकी छाल, लवण और गोमूत्र मिलाकर सिद्ध किया गया तैल मण्डल, दद्रु, कुष्ठ, दुष्ट व्रण, अरूंषिका और किटिभको नष्ट करता है ॥ १६३ ॥

चित्रकादि तैलम् ।

चित्रकस्याथ निर्गुण्ड्या हयमारस्य मूलतः ।
नाडीच बीजाद्विषतः काञ्जिपिष्टं पलं पलम् ॥१६४
करञ्जतैलाष्टपलं काञ्जिकस्य पलं पुनः
मिश्रितं सूर्यसन्तप्तं तैलं कुष्ठव्रणास्रजित् ॥ १६५ ॥

चीतकी जड़, सम्भालूकी जड़, कनेरकी जड़, नाड़ीचके बीज, तथा सींगिया प्रत्येक ४ तोला काञ्जीमें पीस, कञ्जाका तैल ३२ तोला और काञ्जी ४ तोला, मिलाकर सूर्यकी किरणोंमें तपाना चाहिये । यह तैल कुष्ठ, व्रण और रक्तदोषको नष्ट करता है ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

सोमराजीतैलम् ।

सोमराजी हरिद्रे द्वे सर्षपारग्वधं गदम् ।
करञ्जैडगजाबीजं गर्भं दत्त्वा विपाचयेत् ॥ १६६॥
तैलं सर्षपसम्भूतं नाडीदुष्टव्रणापहम् ।
अनेनाशु प्रशाम्यन्ति कुष्ठान्यष्टादशैव तु ॥ १६७॥
नीलिकापिडकाव्यङ्गं गम्भीरं वातशोणितम् ।
कण्डूकच्छूप्रशमनं कच्छूपामाविनाशनम् ॥ १६८

बकुची, हल्दी, दारुहल्दी, सरसों, अमलतास, कूठ, कञ्जा तथा पवांड़के बीजका कल्क छोड़कर सरसोंका तैल पकाना चाहिये । यह तैल नाड़ीव्रण, दुष्ट व्रण, अठारह प्रकारके कुष्ठ, झाईं, फुंसियां, व्यङ्ग, गम्भीर वातरक्त तथा खुजली आदि नष्ट करता है ॥ १६६–१६८ ॥

सामान्यनियमः ।

पक्षात्पक्षाच्छर्दनान्यभ्युपेयात्
मासान्मासात्स्रंसनं चाप्यधस्तात् ।
त्र्यहात्त्र्यहान्नस्ततश्चावपीडान्
मासेष्वसृङ्मोक्षयेत्षट्सु षट्सु ॥ १६९ ॥

पन्द्रह, पन्द्रह दिनमें वमन करना चाहिये । एक एक महीनेमें विरेचन लेना चाहिये । तीन तीन दिनमें अवपीड़क नस्य लेना चाहिये । तथा छः छः महीनेमें शिराव्यध करना (फस्त खोलना) चाहिये ॥ १६९ ॥

पथ्यम् ।

योषिन्मांससुरात्यागः शालिमुद्गयवादयः ।
पुराणास्तिक्तशाकं च जाङ्गलं कुष्ठिनां हितम् १७०

स्त्रीगमन, मांस और शराबका त्याग, पुराने चावल, मूँग, यव तथा जङ्गली तिक्तशाक कुष्ठवालोंको हितकर होते हैं ॥ १७० ॥

इति कुष्ठाधिकारः समाप्तः ।

अथोदर्दकोठशीतपित्ताधिकारः ।

साधारणः क्रमः ।

अभ्यङ्गः कटुतैलेन सेकश्चोष्णाम्बुभिस्ततः ।
उदर्दे वमनं कार्यं पटोलारिष्टवारिणा ॥ १ ॥

उदर्दमें कड़ुए तैलकी मालिश कर गरम जलसे सिंचन करना चाहिये । तथा परवलकी पत्ती और नीमकी पत्तीसे वमन कराना चाहिये ॥ १ ॥

विरेचनयोगः ।

त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्चात्र शस्यते ।
त्रिफलां क्षौद्रसहितां पिबेद्वा नवकार्षिकम् ।
विसर्पोक्तममृतादिं भिषगत्रापि योजयेत् ॥ २ ॥

त्रिफला, गुग्गुलु और छोटी पीपलसे विरेचन लेना चाहिये । अथवा शहदके साथ त्रिफला अथवा नवकार्षिक क्वाथ (वातरक्तोक्त) विसर्पोक्त अमृतादि क्वाथका प्रयोग करे ॥ २ ॥

केचन योगाः ।

सितां मधुकसंयुक्तां गुडमामलकैः सह ।
सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ् नरः ॥ ३॥
तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहजः ।

मौरेठीके साथ मिश्री अथवा आंवलाके साथ गुड़ अथवा गुड़के साथ अजवायन पथ्यान्न सेवन करते हुए जो मनुष्य खाता है, उसका उदर्द सात दिनमें नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

उद्वर्तनं लेपश्च ।

सिद्धार्थरजनीकल्कैः प्रपुन्नाडतिलैः सह ॥ ४ ॥
कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्तनं हितम् ।
दूर्वानिशायुतो लेपः कच्छूपामाविनाशनः ॥ ५ ॥
क्रिमिदद्रुहरश्चैव शीतपित्तहरः परः ।

सरसों, हल्दी, पवांड़के बीज तथा तिलका कल्क, कडुआ तैल मिलाकर उवटन करना चाहिये । इसी प्रकार दूब और हल्दीका लेप कच्छू, पामा तथा क्रिमि, दद्रु, और शीतपित्तको नष्ट करता है ॥ ४ ॥ ५ ॥–

अग्निमन्थमूललेपः ।

अग्निमन्थभवं मूलं पिष्टं पीतं च सर्पिषा ॥ ६ ॥
शीतपित्तोदर्दकोठान्सप्ताहादेव नाशयेत् ।

अरणीकी जड़ पीसकर घीके साथ पीनेसे सात दिनोंमें ही शीतपित्त, उदर्द और कोढ़को नष्ट करती है ॥ ६ ॥–

कोठसामान्यचिकित्सा ।

कुष्ठोक्तं च कर्म कुर्यादम्लपित्तघ्नमेव च ॥ ७ ॥
उदर्दोक्तां क्रियां चापि कोठरोगे समासतः ।
सर्पिष्पीत्वा महातिक्तं कार्यं शोणितमोक्षणम् ॥८॥

कोठरोगमें कुष्ठोक्त, अम्लपित्तघ्न तथा उदर्दोक्त चिकित्सा करनी चाहिये । तथा महातिक्तघृतको पीकर फस्त खुलाना चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥

निम्बपत्रयोगः ।

निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन
धात्रीविमिश्राण्यथवोपयुञ्ज्यात् ।
विस्फोटकोठक्षतशीतपित्तं
कण्ड्वस्रपित्तं रकसां च हन्यात् ॥ ९ ॥

नीमके पत्तोंके चूर्णको सदा घीके साथ अथवा आंवलेके साथ उपयोग करना चाहिये । इससे फफोले, ददरे, व्रण शीत पित्त, खुजली, और रक्तपित्त, तथा रकसा नामके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

विविधा योगाः ।

क्षारसिन्धूत्थतैलैश्च गात्राभ्यङ्गं प्रयोजयेत् ।
गम्भारिकाफलं पक्वं शुष्कमुत्स्वेदितं पुनः ॥ १० ॥
क्षीरेण शीतपित्तघ्नं खादितं पथ्यसेविना ।
तैलोद्वर्तनयोगेन योज्य एलादिको गणः ॥ ११ ॥
शुष्कमूलकयूषेण कौलत्थेन रसेन वा ।
भोजनं सर्वदा कार्यं लावतित्तिरिजेन वा ॥ १२ ॥

क्षार और सेंधानमकके चूर्णको तैलमें मिलाकर मालिश करना चाहिये । खम्भारका पका फल सूखा हुआ उबालकर दूधके साथ खाने तथा पथ्यसे रहनेसे शीत पित्त नष्ट होती है । तथा तैलके साथ एलादिगणका उबटन लगाना चाहिये । सूखी मूलीके यूष, कुलथीके रस अथवा लवा व तीतरके मांसरसके साथ सदा भोजन करना चाहिये ॥ १०–१२ ॥

सामान्यचिकित्सा ।

शीतलान्यन्नपानानि बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ।
उष्णानि वा यथाकालं शीतपित्ते प्रयोजयेत् ॥१३॥

शीतपित्तमें दोषोंकी गति समझकर शीत अथवा उष्ण अन्नपानका यथा समय प्रयोग करावे ॥ १३ ॥

इत्युदर्दकोठशीतपित्ताधिकारः समाप्तः ।

अथाम्लपित्ताधिकारः ।
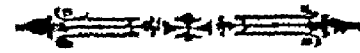
सामान्यचिकित्सा ।

वान्तिं कृत्वाम्लपित्ते तु विरेकं मृदु कारयेत् ।
सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम् ॥१॥
आस्थापनं चिरोद्भूते देयं दोषाद्यपेक्षया ।
क्रिया शुद्धस्य शमनी ह्यनुबन्धव्यपेक्षया ॥ २ ॥
दोषसंसर्गजे कार्या भेषजाहारकल्पना ।
ऊर्ध्वगं वमनैर्धीमानधोगं रेचनैर्हरेत् ।
तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानं वापि प्रकल्पयेत् ॥ ३ ॥
यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः ।
यथास्वं लाजशक्तून्वा सितामधुयुतान्पिबेत् ॥ ४ ॥

अम्लपित्तमें वमन करनेके अनन्तर मृदु विरेचन करना चाहिये । ठीक वमन विरेचन कर लेनेके बाद स्नेहन कर पुराने अम्लपित्तमें दोषादिके अनुसार अनुवासन या आस्थापन वस्ति देना चाहिये । शुद्ध हो जानेपर शान्त करनेवाली औषध व आहारकी कल्पना करनी चाहिये । तथा ऊर्ध्वग अम्लपित्तको वमनसे और अधोगको विरेचनसे शान्त करना चाहिये । तथा तिक्तरसयुक्त आहार अथवा पान देना चाहिये । यव तथा गेहूँके पदार्थ तीक्ष्णसंस्कारके विना अथवा खीलके सत्तू मिश्री व शहद मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ १–४ ॥

यवादिक्वाथः ।

निस्तुषयववृषधात्रीक्वाथस्त्रिसुगंधिमधुयुतः पीतः ।
अपनयति चाम्लपित्तं यदि भुंक्ते मुद्गयूषेण ॥ ५ ॥

भूसीरहित यव, अडूसा तथा आंवलेका काढ़ा, दालचीनी, तेजपात व इलायचीका चूर्ण तथा शहद मिलाकर पीनेसे तथा मूँगकी दालके साथ भोजन करनेसे अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ ५ ॥

शृंगवेरादिक्काथः ।

कफपित्तवमीकण्डूज्वरविस्फोटदाहहा ।
पाचनो दीपनः क्काथः शृङ्गवेरपटोलयोः ॥ ६ ॥

अदरख व परवलका क्वाथ कफपित्तज वमन, खुजली, ज्वर, फफोले, व दाहको नष्ट करता, पाचन तथा दीपन है ॥ ६ ॥

पटोलादिक्काथः ।

पटोलं नागरं धान्यं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ।
कण्डूपामातिशूलघ्नं कफपित्ताग्निमान्द्यजित् ॥ ७ ॥

परवल, सोंठ व धनियांका क्वाथ पीनेसे खुजली, पामा, कफ, पित्त व अग्निमान्द्यको नष्ट करता है ॥ ७ ॥

अपरः पटोलादिः ।

पटोलविश्वामृतरोहिणीकृतं
जलं पिबेत्पित्तकफोच्छ्रये तु ।
शूलभ्रमारोचकवह्निमान्द्य-
दाहज्वरच्छर्दिनिवारणं तत् ॥ ८ ॥

परवल, सोंठ, गुर्च तथा कुटकीका क्वाथ पित्तकफाधिक अम्लपित्तमें देना चाहिये। यह शूल, भ्रम, अरोचक, अग्निमान्द्य, दाह, ज्वर, और वमनको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

अपरो यवादिः ।

यवकृष्णापटोलानां क्काथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ।
नाशयेदम्लपित्तं च अरुचिं च वमिं तथा ॥ ९ ॥

यव, छोटी पीपल व परवलके क्वाथको शहद मिलाकर पीनेसे अम्लपित्त, अरुचि तथा वमन नष्ट होता है ॥ ९ ॥

वासादिक्काथः ।

वासामृतापर्पटकानिम्बभूनिम्बमार्कवैः ।
त्रिफलाकुलकैः क्काथः सक्षौद्रश्चाम्लनाशनः ॥१० ॥

अडूसा, गुर्च, पित्तपापड़ा, नीमकी छाल, चिरायता, भांगरा, त्रिफला तथा परवलका क्वाथ शहदके साथ लेनेसे अम्लपित्तको नष्ट करता है ॥ १० ॥

फलत्रिकादिक्काथः ।

फलत्रिकं पटोलं च तिक्ताक्काथः सितायुतः ।
पीतः क्षीतकमध्वाक्तो ज्वरच्छर्द्यम्लपित्तजित् ॥११॥

त्रिफला, परवल तथा कुटकीका काढ़ा, मिश्री, मौरेठी और शहदके साथ पीनेसे ज्वर, वमन व अम्लपित्तको नष्ट करता है ॥ ११ ॥

पथ्यादिचूर्णम् ।

पथ्याभृङ्गरजश्चूर्णं युक्तं जीर्णगुडेन तु ।
जयेदम्लपित्तजन्यां छर्दिमन्नविदाहजाम् ॥ १२ ॥

छोटी हर्र व भांगरेका चूर्ण पुराने गुड़के साथ अम्लपित्त तथा अन्नविदाहजन्य छर्दिको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

वासादिगुग्गुलुः ।

वासानिम्बपटोलत्रिफलाशनयासयोजितो जयति ।
अधिककफमम्लपित्तं प्रयोजितो गुग्गुलुः क्रमेण १३

अडूसा, नीमकी छाल, परवल, त्रिफला तथा विजैसार युक्त गुग्गुलु क्रमशः अधिककफयुक्त अम्लपित्तको नष्ट करता है ॥ १३ ॥

विविधा योगाः ।

छिन्नाखदिरयष्ट्याह्वदार्व्यम्भो वा मधुद्रवम् ।
सद्राक्षामभयां खादेत्सक्षौद्रां सगुडां च ताम् १४॥
कटुका सितावलेह्या पटोलविश्वं च क्षौद्रसंयुक्तम् ।
रक्तस्रुतौ च युक्त्या वा खण्डकूष्माण्डकं श्रेष्ठम् १५

गुर्च, कत्था, मौरेठी व दारुहल्दीके क्वाथको शहदके साथ अथवा हरड़के चूर्णको मुनक्का, शहद व पुराने गुड़के साथ अथवा परवल तथा सोंठके चूर्णको शहदके साथ खानेसे अम्लपित्त दूर होता है । तथा रक्त गिरनेपर खण्डकूष्माण्डका प्रयोग उत्तम है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अपरःपटोलादिः ।

पटोलधन्याकमहौषधाब्दैः
कृतः कषायो विनिहन्ति शीघ्रम् ।
मन्दानलं पित्तबलासदाह-
च्छर्दिज्वरामानिलशूलरोगान् ॥ १६ ॥

परवल, धनियां, सोंठ तथा नागरमोथाका क्वाथ शीघ्र ही मन्दाग्नि, पित्त, कफ, दाह, वमन, ज्वर, आमवात और शूल आदि रोगोंको नष्ट करता है ॥ १६ ॥

गुडूच्यादिक्काथः ।

छिन्नोद्भवानिम्बपटोलपत्रं
फलत्रिकं सुकथितं सुशीतम् ।
क्षौद्रान्वितं पित्तमनेकरूपं
सुदारुणं हन्ति हि चाम्लपित्तम् ॥ १७ ॥

गुर्च, नीमकी छाल, परवलकी पत्ती तथा त्रिफलाका क्वाथ बनाय ठण्डा होनेपर शहद मिलाकर पीनेसे अनेक प्रकारका पित्तरोग तथा अम्ल पित्त नष्ट होता है ॥ १७ ॥

अन्ये योगाः ।

पटोलत्रिफलानिम्बशृतं मधुयुतं पिबेत् ।
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहशूलोपशान्तये ॥ १८ ॥
सिंहास्यामृतभण्टाकीक्वाथं पीत्वा समाक्षिकम् ।
अम्लपित्तं जयेज्जन्तुः कासं श्वासं ज्वरं वमिम् ॥१९
वासाघृतं तिक्तघृतं पिप्पलीघृतमेव च ।
अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यं गुडकूष्माण्डकं तथा ॥ २० ॥
पक्तिशूलापहा योगास्तथा खण्डामलक्यपि ।
पिप्पलीमधुसंयुक्ता चाम्लपित्तविनाशिनी ॥ २१ ॥
जम्बीरस्वरसः पीतःसायं हन्त्यम्लपित्तकम् ॥२२॥

परवल, त्रिफला तथा नीमके क्वाथको शहद मिलाकर पीनेसे पित्तकफज्वर, वमन, दाह व शूल शान्त होते हैं । इसी प्रकार अडूसा, गुर्च व बड़ी कटेरीके क्वाथको शहद मिलाकर पीनेसे मनुष्य अम्लपित्त, कास, श्वास, ज्वर, और वमनको जीतता है । अम्लपित्तमें वासाघृत, तिक्तघृत, पिप्पलीघृत और गुड़ कूष्माण्डका प्रयोग करना चाहिये । तथा परिणाम शूलको नष्ट करनेवाले योग अथवा खण्डामलकी अथवा शहदके साथ पीपल अम्लपित्तको नष्ट करती है । इसीप्रकार जम्बीरी निम्बूका स्वरस सायंकाल पीनेसे अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ १८-२२ ॥

गुडादिमोदकः ।

गुडपिप्पलिपथ्याभिस्तुल्याभिर्मोदकः कृतः ।
पित्तश्लेष्मापहः प्रोक्तो मन्दमग्निं च दीपयेत् ॥२३॥

गुड़, छोटी पीपल व हर्र समान भाग ले गोली बना सेवन करनेसे अम्लपित्त व कफ नष्ट होता तथा अग्नि दीप्त होती है ॥ २३ ॥

हिंग्वादिपुटपाकः ।

हिंगु च कतकफलानि
चिञ्चात्वचो घृतं च पुटदग्धम् ।
शमयति तदम्लपित्त-
मम्लभुजो यदि यथोत्तरं द्विगुणम् ॥ २४ ॥

भुनी हींग १ भाग, निर्मली २ भाग, इम्लीकी छाल ४ भाग घी ८ भाग सबको पुटपाक विधिसे पकाकर सेवन करने तथा खट्टे पदार्थ खानेसे अम्लपित्त शान्त होता है ॥ २४ ॥

वरायोगः ।

कान्तपात्रे वराकल्को व्युषितेऽभ्यासयोगतः ।
सिताक्षौद्रसमायुक्तः कफपित्तहरः स्मृतः ॥ २५ ॥

कान्तलोहके पात्रमें त्रिफलाका कल्क बासी रख मिश्री और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ २५ ॥

पञ्चनिम्बादिचूर्णम् ।

एकोंऽशः पञ्चनिम्बानां द्विगुणो वृद्धदारकः ।
शक्तुर्दशगुणो देयः शर्करामधुरीकृतः ॥ २६ ॥
शीतेन वारिणा पीतः शूलं पित्तकफोत्थितम् ।
निहन्ति चूर्णं सक्षौद्रमम्लपित्तं सुदारुणम् ॥ २७ ॥

निम्बका पञ्चांग (फूल, फल, पत्र, छाल तथा मूल) मिलित १ भाग, विधारा २ भाग, सत्तू १० भाग, तथा शक्करसे मीठाकर ठण्ढे जलके साथ शहद मिलाकर पीनेसे पित्तकफज शूल तथा अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

अभ्रादिशोधनमारणम् ।

आशुभक्तोदकैः पिष्टमभ्रकं पात्रसंस्थितम् ॥ २८ ॥
कन्दमाणास्थिसंहारखण्डकर्णरसैरथ ।
तण्डुलीयं च शालिं च कालमारिषजेन च ॥ २९॥
धुर्धूरवृहतीभृङ्गलक्ष्मणाकेशराजकैः ।
पेषणं भावनं कुर्यात्पुटं चानेकशो भिषक् ॥ ३० ॥
यावन्निश्चन्द्रकं तत्स्याच्छुद्धिरेवं विहायसः ।
स्वर्णमाक्षिकशालिं च ध्मातं निर्वापितं जले ॥३१
त्रिफलेऽथ विचूर्ण्यैवं लौहं कान्तादिकं पुनः ।
वृहत्पत्रकरीकर्णत्रिफलावृद्धदारजैः ॥ ३२ ॥
माणकन्दास्थिसंहारशृङ्गवेरभवै रसैः ।
दशमूलीमुण्डितिकातालमूलीसमुद्भवैः ॥ ३३ ॥
पुटितं साधु यत्नेन शुद्धिमेवमयो व्रजेत् ।
वशिरं श्वेतवाट्यालं मधुपर्णी मयूरकम् ॥ ३४ ॥
तण्डुलीयं च वर्षाहं दत्त्वाधश्चोर्ध्वमेव च ।
पाक्यं सजीर्णमण्डूरं गोमूत्रेण दिनत्रयम् ॥ ३५ ॥
अन्तर्बाष्पमदग्धं च तथा स्थाप्यं दिनत्रयम् ।
विचूर्णितं शुद्धिरियं लोहकिट्टस्य दर्शिता ॥ ३६ ॥
जयन्त्या वर्द्धमानस्य आर्द्रकस्य रसेन तु ।
वायस्याश्चानुपूर्व्यैवं मर्दनं रसशोधनम् ॥ ३७ ॥
गन्धकं नवनीताख्यं क्षुद्रितं लौहभाजने ।
त्रिधा चण्डातपे शुष्कं भृङ्गराजरसाप्लुतम् ॥ ३८॥
ततो वह्नौ द्रवीभूतं त्वरितं वस्त्रगालितम् ।
यत्नाद् भृङ्गरसे क्षिप्तं पुनः शुष्कं विशुध्यति॥३९॥

ताजे चावलके मांड़से अभ्रकको पीसकर मानकन्द, अस्थिसंहार तथा खण्डकर्ण (खारकोना) के रस तथा चौराई व शालिंच व मर्सा तथा पुनर्नवा, बड़ी कटेरी, भांगरा, लक्ष्मणा व

काला भांगरा इनसे घोट घोट कर अनेक पुट उस समयतक देना चाहिये, जबतक निश्चन्द्र न हो जाय । इस प्रकार अभ्रक कार्ययोग्य होता है । तथा स्वर्णमाक्षिकको शालिञ्चशाकके रसके साथ पीसकर कान्त लौहपर लेप कर उसे त्रिफलाके क्काथमें बुझाना चाहिये । फिर उस कान्तलौहकी श्वेत लोध्र, हस्तिकर्ण, पलाश, त्रिफला, विधारा, मानकन्द, अस्थिसंहार, अदरख, दशमूल, मुण्डी तथा मुशलीके रसमें अनेक बार पुट दनेसे वह शुद्ध हो जाता है । इसी प्रकार सफेद सूर्यावर्त, सफेद खरेटी, अपामार्ग, चौराई, पुनर्नवा तथा गुर्चका कल्क नीचे ऊपर आधा आधा रखकर ३ दिन तक गोमूत्रके साथ मण्डूर अन्तर्बाष्प पकाना चाहिये और जलने न पावे । फिर उसका चूर्ण कर लेना चाहिये । इस प्रकार मण्डूर शुद्ध हो जाता है । तथा जयंती, विधारा, अदरख, और मकोयके रससे पारद शुद्ध होता है । आंवलासार गन्धकके टुकड़ कर भांगरेके रसमें लोहेके वर्तनमें ३ दिन तक धूपमें सुखानेके अनन्तर अग्निमें तपाकर कपड़ेसे भांगरेके रसमें ही छानकर सुखा लेनेसे शुद्ध हो जाता है । इस प्रकार समस्त वस्तुओंका शोधन कर क्षुधावती गुटीमें छोड़ना चाहिये ॥२८-३९॥

क्षुधावती गुटी ।

गगनाद् द्विपलं चूर्णं लौहस्य पलमात्रकम् ।
लौहकिट्टपलार्धं च सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥ ४० ॥
मण्डूकपर्णीवशिरतालमूलीरसैः पुनः ।
वरीभृङ्गकेशराजकालमारिषजैरथ ॥ ४१ ॥
त्रिफलाभद्रमुस्ताभिः स्थालीपाकाद्विपाचितम् ।
रसगन्धकयोः कर्षौ प्रत्येकं ग्राह्यमेकतः ॥ ४२ ॥
तन्मर्दनाच्छिलाखल्वे यत्नतः कज्जलीकृतम् ।
वचा चव्यं यमानी च जीरके शतपुष्पिका ॥ ४३॥
व्योषं मुस्तं विडङ्गं च ग्रन्थिकं खरमञ्जरी ।
त्रिवृता चित्रको दन्ती सूर्यावर्तोऽसितस्तथा ॥४४॥
भृंगमाणककन्दश्च खण्डकर्णक एव च ।
दण्डोत्पलाकेशराजकालाकर्कटकोऽपि च ॥ ४५ ॥
एषामर्धपलं ग्राह्यं पटघृष्टं सुचूर्णितम् ।
प्रत्येकं त्रिफलायाश्च पलार्धं पलमेव च ॥ ४६ ॥
एतत्सर्वं समालोड्य लोहपात्रे तु भावयेत् ।
आतपे दण्डसंघृष्टमार्द्रकस्य रसैस्त्रिधा ॥ ४७ ॥
तद्रसेन शिलापिष्टां गुडिकां कारयेद्भिषक् ।
बदरास्थिनिभां शुष्कां सुनिगुप्तां निधापयेत् ॥४८॥
तत्प्रातर्भोजनादौ तु सेवितं गुडिकात्रयम् ।
अम्लोदकानुपानं च हितं मधुरवर्जितम् ॥ ४९ ॥
दुग्धं च नारिकेलं च वर्जनीयं विशेषतः ।
भोज्यं यथेष्टमिष्टं च वारि भक्ताम्लकाञ्जिकम् ॥५०॥
हन्त्यम्लपित्तं विविधं शूलं च परिणामजम् ।
पाण्डुरोगं च गुल्मं च शोथोदरगुदामयान् ॥ ५१॥
यक्ष्माणं पञ्च कासांश्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
प्लीहानं श्वासमानाहमामवातं सुदारुणम् ।
गुटी क्षुधावती सेयं विख्याता रोगनाशिनी ॥५२॥

अभ्रक ८ तो०, लौह ४ तो०, मंडूर २ तो० सबको खरलमें छोड़कर मण्डूकपर्णी (ब्राह्मीभेद), गजपीपल, मुशलीके रस तथा शतावरी, भांगरा, काला भांगरा तथा मर्साके रस तथा त्रिफला व नागरमोथाके स्वरससे स्थालीपाक विधिसे पकाकर प्रत्येक पारा व गन्धक २ तोले की कज्जली कर मिलाना चाहिये। फिर वच, चव्य, अजवायन, दोनों जीरे, सौंफ, त्रिकटु, नागरमोथा, वायविड़ंग, पिपरामूल, लटजीरा, निसोथ, चीत, दन्ती, काला सूर्यावर्त, भांगरा, मानकन्द, खण्डकर्ण (शकरकन्द) नीलोफर, काला भांगरा तथा काकड़ासिंही प्रत्येक २ तोला ले कूट कपड़छान चूर्ण कर त्रिफला प्रत्येक ६ तोला चूर्ण कर सब चीजोंको लोहपात्रमें अदरखके रसकी भावना दे, दण्डसे घोटकर तीन दिन धूपमें रखना चाहिये । फिर अदरखके ही रससे सिलपर पीसकर बेरकी गुठलीके बराबर गोली बनानी चाहिये । सूख जानेपर रखना चाहिये ।इसे प्रातःकाल भोजनके पहिले ३ गोलियोंकी मात्रामें काञ्जीके साथ सेवन करना चाहिये । मीठे पदार्थ, दूध तथा नरियलका जल नहीं खाना चाहिये । शेष पदार्थ यथेष्ट खाना चाहिये । विशेषतः काञ्जी और भात तथा जलका सेवन करना चाहिये । यह "क्षुधावती गुटी" अम्लपित्त, परिणामशूल, पाण्डुरोग, गुल्म, शोथ, उदररोग, अर्श, यक्ष्मा, पांचों कास, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, श्वास, अफारा, आमवात इन सब रोगोंको नष्ट करती है ॥ ४०-५२ ॥

जीरकाद्यं घृतम् ।

पिष्ट्वाजाजीं सधन्याकां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवमिं जयेत् ॥ ५३ ॥

जीरा व धनियांके कल्कमें १ प्रस्थ घृत पकाना चाहिये । यह कफपित्त, अरुचि, मन्दाग्नि व वमनको नष्ट करता है ॥ ५३ ॥

पटोलशुण्ठीघृतम् ।

पटोलशुण्ठ्योः कल्काभ्यां केवलं कुलकेन वा ।
घृतप्रस्थं विपक्तव्यं कफपित्तहरं परम् ॥ ५४ ॥

परवल व सोंठके कल्क अथवा केवल परवलके कल्कसे सिद्ध घृत कफपित्तको नष्ट करता है ॥ ५४ ॥

पिप्पलीघृतम् ।

पिप्पलीक्काथकल्केन घृतं सिद्धं मधुप्लुतम् ।
पिबेत्तत्प्रातरुत्थाय अम्लपित्तनिवृत्तये ॥ ५५ ॥

पीपलके क्वाथ व कल्कसे सिद्ध घृतमें शहदको मिलाकर प्रातःकाल अम्लपित्तके निवारणार्थ पीना चाहिये ॥ ५५ ॥

द्राक्षाद्यं घृतम् ।

द्राक्षामृताशक्रपटोलपत्रैः
सोशीरधात्रीघनचन्दनैश्च ।
त्रायन्तिकापद्मकिरातधान्यैः ।
कल्कैः पचेत्सर्पिरुपेतमेभिः ॥ ५६ ॥
युञ्जीत मात्रां सह भोजनेन
सर्वत्र पानेऽपि भिषग्विदध्यात् ।
बलासपित्तं ग्रहणीं प्रवृद्धां
कासाग्निसादं ज्वरमम्लपित्तम् ।
सर्वं निहन्याद् घृतमेतदाशु
सम्यक्प्रयुक्तं ह्यमृतोपमं च ॥ ५७ ॥

मुनक्का, गुर्च, इन्द्रयव, परवलकी पत्ती, खश, आंवला, नागरमोथा, चन्दन, त्रायमाण, कमलके फूल, चिरायता, धनियां इनके कल्कसे युक्त घीको (विधिपूर्वक) पकाना चाहिये । इसे भोजनके साथ मात्रासे देना चाहिये । सब ऋतुओंमें इसका प्रयोग करना चाहिये । यह कफपित्त, ग्रहणी, कास, अग्निमान्द्य, ज्वर व अम्लपित्तको नष्ट करता है । विधिपूर्वक प्रयोग करनेसे अमृतके तुल्य गुण देता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

शतावरीघृतम् ।

शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पयःसमम् ।
पचेन्मृद्वग्निना सम्यक् क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥५८॥
नाशयेदम्लपित्तं च वातपित्तोद्भवान्गदान् ।
रक्तपित्तं तृषां मूर्च्छां श्वासं सन्तापमेव च ॥ ५९॥

शतावरीका कल्क, घृत समान भाग जल तथा चतुर्गुण दूध मिलाकर मन्दाग्निसे पकाना चाहिये । यह अम्लपित्त, वातपित्तके रोग, रक्तपित्त, प्यास, मूर्च्छा, श्वास और सन्तापको नष्ट करता है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

इत्यम्लपित्ताधिकारः समाप्तः ।

अथ विसर्पविस्फोटाधिकारः ।

विसर्पे सामान्यतश्चिकित्सा ।

विरेकवमनालेपसेचनासृग्विमोक्षणैः ।
उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः ॥ १ ॥

विसर्पोंको दोषोंके अनुसार विरेचन, वमन, आलेप, सिञ्चन, रक्तमोक्षण और अविदाही (जलन न करनेवाले) प्रयोगोंसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

वमनम् ।

पटोलपिचुमर्दाभ्यां पिप्पल्या मदनेन च ।
विसर्पे वमनं शस्तं तथैवेन्द्रयवैः सह ॥ २ ॥

परवलकी पत्ती, नीमकी छाल, छोटी पीपल, मैनफल तथा इन्द्रयवके साथ विसर्पमें वमन कराना चाहिये ॥ २ ॥

विरेचनम् ।

त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह ।
प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरशान्तये ॥ ३ ॥
रसमामलकानां वा घृतमिश्रं प्रदापयेत् ।

त्रिफलाके रस तथा निसोथके चूर्णके साथ घृतका प्रयोग विरेचन द्वारा विसर्प तथा ज्वरको शान्त करता है । अथवा आंवलेके रसको घीमें मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ३ ॥

वातविसर्पचिकित्सा ।

तृणवर्जं प्रयोक्तव्यं पञ्चमूलचतुष्टयम् ।
प्रदेहसेकसर्पिर्भिर्विसर्पे वातसम्भवे ॥ ४ ॥

तृणपञ्चमूलको छोड़कर शेष चारों पञ्चमूलोंका लेप सेक और घृतसे वातज विसर्पमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ४ ॥

कुष्ठादिगणः ।

कुष्ठं शताह्वासुरदारुमुस्ता-
वाराहिकुस्तुम्बुरुकृष्णगन्धाः ।
वातेऽर्कवंशार्तगलाश्च योज्याः
सेकेषु लेपेषु तथा घृतेषु ॥ ५ ॥

कूठ, सौंफ, देवदारु, नागरमोथा, वाराहीकन्द, धनियां, सहिंजन, आक, बांस तथा कटसैलेका सेक, लेप तथा घृतद्वारा प्रयोग करना चाहिये ॥ ५ ॥

पित्तविसर्पचिकित्सा ।

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मकोशीरचन्दनैः ।
सयष्टीन्दीवरैः पित्ते क्षीरपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ६ ॥
कशेरुशृङ्गाटकपद्मगुन्द्राः
सशैवलाः सोत्पलकर्दमाश्च ।
वस्त्रान्तराः पित्तकृते विसर्पे
लेपा विधेयाः सघृताः सुशीताः ॥ ७ ॥
प्रदेहाः परिषेकाश्च शस्यन्ते पञ्च वल्कलाः ।
पद्मकोशीरमधुकचन्दनैर्वा प्रशस्यते ॥ ८ ॥
पित्ते तु पद्मिनीपङ्कं पिष्टं वा शङ्खशैवलम् ।
गुन्द्रामूलं तु शुक्तिर्वा गैरिकं वा घृतान्वितम् ॥ ९ ॥
न्यग्रोधपादा गुन्द्रा च कदलीगर्भ एव च ।
विसग्रन्थिकलेपः स्याच्छतधौतघृताप्लुतः ॥ १० ॥

हरेणवो मसूराश्च मुद्गाश्चैव सशालयः ।
पृथक्पृथक्प्रदेहाः स्युः सर्वैर्वा सर्पिषा सह ॥११॥

पुण्डरिया, मजीठ, पद्माख, खश, चन्दन, मौरेठी तथा नीलोफरको दूधमें पीसकर लेप करना चाहिये । अथवा कशेरू, सिंघाड़ा, कमलके फूल, गुर्च, सेवार, नीलोफर तथा उसके पासका कीचड़ इनको घीमें मिला पतले कपड़ेपर शीत लेप करना चाहिये । पञ्चवल्कल अथवा पद्माख, खश, मौरेठी व चन्दनसे लेप करना चाहिये । पित्तमें कमलिनीका कीचड़ अथवा शंखका सेवारके साथ कल्क अथवा गुर्चकी जड़ अथवा शुक्ति अथवा घीके साथ गेरू अथवा बरगदकी वौं व गुर्च अथवा केलेका सार अथवा कमलकी दण्डीका लेप सौ वार धोये हुए घीके साथ अथवा मटर, मसूर, मूङ्ग, चावल अलग अलग अथवा सब मिलाकर घीके साथ लेप करना चाहिये ॥ ६–११ ॥

विरेचनम् ।

द्राक्षारग्वधकाश्मर्यत्रिफलैरण्डपीलुभिः ।
त्रिवृद्धरीतकीभिश्च विसर्पे शोधनं हितम् ॥ १२ ॥

मुनक्का, अमलतास, खम्भार, त्रिफला, एरण्ड, पीलु, निसोथ तथा हरोंको विरेचनके लिये देना चाहिये ॥ १२ ॥

श्लेष्मजविसर्पचिकित्सा ।

गायत्रीसप्तपर्णाब्दवासारग्वधदारुभिः ।
कुटन्नटैर्भवेल्लेपो विसर्पे श्लेष्मसम्भवे ॥ १३ ॥
अजाश्वगन्धा सरलाथ काला
सैकेशिका वाप्यथवाजशृङ्गी ।
गोमूत्रपिष्टो विहितः प्रलेपो
हन्याद्विसर्पं कफजं सुशीघ्रम् ॥ १४ ॥

कत्था, सतौना, नागरमोथा, अड़ूसा, अमलतासका गूदा, देवदारु व केवटीमोथेका लेप कफज-विसर्पमें करना चाहिये । अथवा बबई, असगन्ध, धूप, काला निसोथ, पाढी, अथवा मेढासिंगी इनको गोमूत्रमें पीसकर कफजमें लेप करना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

वमनम् ।

मदनं मधुकं निम्बं वत्सकस्य फलानि च ।
वमनं च विधातव्यं विसर्पे कफसम्भवे ॥ १५ ॥

मैनफल, मौरेठी, नीमकी छाल तथा इन्द्रयवको कफज-विसर्पमें वमनके लिये प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १५ ॥

अन्ये योगाः ।

त्रिफलापद्मकोशीरसमङ्गाकरवीरकम् ।
फलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ॥ १६ ॥
आरग्वधस्य पत्राणि त्वचः श्लेष्मातकोद्भवाः ।
शिरीषपुष्पं कामाची हिता लेपावचूर्णनैः ॥ १७ ॥

त्रिफला, पद्माख, खश, लज्जालु, कनेर, मैनफलकी जड़ तथा यवासाका कफज–विसर्पनाशार्थ प्रयोग करना चाहिये । तथा अमलतासके पत्ते, लसोड़ेकी छाल, सिरसाके फूल व मकोयका लेप व अवचूर्णन द्वारा प्रयोग करना चाहिये॥१६॥१७॥

त्रिदोषजविसर्पचिकित्सा ।

मुस्तारिष्टपटोलानां क्वाथः सर्वविसर्पनुत् ।
धात्रीपटोलमुद्गानामथवा घृतसंप्लुतः ॥ १८ ॥

नागरमोथा, नीमकी छाल व परवलकी पत्तीका क्वाथ समस्त विसर्पोंको नष्ट करता है । अथवा आंवला, परवल और मूंगका क्वाथ घीके साथ समस्त विसर्प नष्ट करता है ॥ १८ ॥

अमृतादिगुग्गुलुः ।

अमृतवृषपटोलं निम्बकल्कैरुपेतं
त्रिफलखदिरसारं व्याधिघातं च तुल्यम् ।
कथितमिदमशेषं गुग्गुलोर्भागयुक्तं
जयति विषविसर्पान्कुष्ठमष्टादशाख्यम् १९॥

गुर्च, अड़ूसा, परवल, नीमकी पत्ती, त्रिफला, कत्था, अमलतासका गूदा प्रत्येक समान भाग, सबके समान शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर सेवन करनेसे विषदोष, विसर्प तथा अठारह प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १९ ॥

अमृतादिक्वाथद्वयम् ।

अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्ण
खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे ।
विविधविषविसर्पान्कुष्ठविस्फोटकण्डू-
रपनयति मसूरीं शीतपित्तं ज्वरं च ॥ २० ॥
पटोलामृतभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः
खदिराब्दयुतैःक्वाथो विस्फोटार्तिज्वरापहः ॥२१

(१) गुर्च, अड़ूसा, परवल, नागरमोथा, सप्तपर्ण, कत्था, काला बेत, नीमकी पत्ती, हल्दी तथा दारुहल्दीका क्वाथ अनेक प्रकारके विष, विसर्प, कुष्ठ, विस्फोटक, खुजली, मसूरी, शीत-पित्त और ज्वरको नष्ट करता है । इसी प्रकार (२) परवल, गुर्च, चिरायता, अड़ूसा, नीमकी पत्ती, पित्तपापड़ा, कत्था, नागरमोथाका क्वाथ, फफोला, बेचैनी व ज्वरको नष्ट करता है ॥ २० ॥ २१ ॥

पटोलादिक्वाथः ।

पटोलत्रिफलारिष्टगुडूचीमुस्तचन्दनैः ।
समूर्वा रोहिणी पाठा रजनी सदुरालभा ॥ २२॥

कषायं पाययेदेतच्छ्लेष्मपित्तज्वरापहम् ।
कण्डूत्वग्दोषविस्फोटविषवीसर्पनाशनम् ॥ २३ ॥

परवलकी पत्ती, त्रिफला, नीमकी पत्ती, गुर्च, नागरमोथा, चन्दन, मूर्वा, कुटकी, पाढ, हल्दी व यवासाका क्वाथ बनाकर पिलानेसे कफपित्तज्वर, खुजली, त्वग्दोष, फफोले, विष और विसर्प नष्ट होते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

भूनिम्बादिक्वाथः ।

भूनिम्बवासाकटुकापटोल-
फलत्रिकाचन्दननिम्बसिद्धः ।
विसर्पदाहज्वरवक्त्रशोष-
विस्फोटतृष्णावमिनुत्कषायः ॥ २४ ॥

चिरायता, अडूसा, कुटकी, परवलकी पत्ती, त्रिफला, चन्दन और नीमका क्वाथ विसर्प, दाह, ज्वर, मुखका सूखना, फफोले, तृष्णा और वमनको नष्ट करता है ॥ २४ ॥

अन्ये योगाः ।

सकफे पित्तयुक्ते तु त्रिफलां योजयेत्पुरैः ॥ २५ ॥
दुरालभां पर्पटकं पटोलं कटुकां तथा ।
सोष्णं गुग्गुलुसंमिश्रं पिबेद्वा खदिराष्टकम् ॥२६ ॥
कुण्डलीपिचुमर्दाम्बु खदिरेन्द्रयवाम्बु वा ।
विस्फोटं नाशयत्याशु वायुर्जलधरानिव ॥ २७ ॥

पित्तकफजन्य विसर्पमें गुग्गुलुके साथ त्रिफलाका प्रयोग करना चाहिये । अथवा यवासा, पित्तपापड़ा, परवलकी पत्ती व कुटकीके गरम गरम क्वाथको गुग्गुलु मिलाकर पीना चाहिये । अथवा खदिराष्टकका क्वाथ (मसूरिकाधिकारोक्त) पीना चाहिये । अथवा गुर्च व नीमकी छालका क्वाथ अथवा कत्था व इन्द्रयवका क्वाथ विसर्पको मेघोंको वायुके समान नष्ट करता है ॥ २५-२७ ॥

चन्दनादिलेपः ।

चन्दनं नागपुष्पं च तण्डुलीयकशारिवे ।
शिरीषवल्कलं जातीलेपः स्याद्दाहनाशनः ॥ २८ ॥

चन्दन, नागकेशर, चौराई, शारिवा, सिर्साकी छाल, व चमेलीका लेप दाहको नष्ट करता है ॥ २८ ॥

शुकतर्वादिलेपः ।

शुकतरुनते च मांसी रजनी पद्मा च तुल्यानि ।
पिष्टानि शीततोयेन लेपः स्यात्सर्वविस्फोटे ॥ २९॥

सिर्साकी छाल, तगर, जटामांसी, हल्दी, भारङ्गी इनको समान भाग ले ठण्ढे जलमें पीसकर लेप करनेसे यह समस्त फफोलोंको नष्ट करता है ॥ २९ ॥

कवलग्रहाः ।

शिरीषमूलमञ्जिष्ठाचव्यामलकयष्टिकाः ।
सजातीपल्लवक्षौद्रा विस्फोटे कवलग्रहाः ॥ ३० ॥

सिर्साकी छाल, मजीठ, चव्य, आंवला, मौरेठी तथा चमेलीकी पत्तीका चूर्ण बनाकर शहदमें मिला कवल धारण करनेसे मुखके फफोले नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥

शिरीषादिलेपाः ।

शिरीषोदुम्बरौ जम्बु सेकालेपनयोर्हिताः ।
श्लेष्मातकत्वचो वापि प्रलेपाश्च्योतने हिताः॥३१॥

सिर्साकी छाल, गूलरकी छाल व जामुनकी छाल लेप और सेकमें हितकर हैं । अथवा लसौढाकी छाल प्रलेप और आश्च्योतनमें हितकर है ॥ ३१ ॥

दशाङ्गलेपः ।

शिरीषयष्टीनतचन्दनैला-
मांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः ।
लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रदिष्टो
विसर्पकण्डूज्वरशोथहारी ॥ ३२ ॥

सिर्साकी छाल, मौरेठी, तगर, सफेद चन्दन, छोटी इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ व सुगन्धवालाका लेप घीके साथ विसर्प, कण्डू, ज्वर और शोथको नष्ट करता है । इसे " दशाङ्गलेप " कहते हैं ॥ ३२ ॥

शिरीषादिलेपः ।

शिरीषोशीरनागाह्वहिंस्राभिर्लेपनाद्द्रुतम् ।
विसर्पविषविस्फोटाः प्रशाम्यन्ति न संशयः ॥३३॥

सिर्सेकी छाल, खश, नागकेशर व जटमांसीका लेप विसर्प विष और फफोलोंको नष्ट करता है ॥ ३३ ॥

विषाद्यं घृतम् ।

वृषखदिरपटोलपत्रनिम्ब-
त्वगमृतामलकीकषायकल्कैः ।
घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं
जयति विसर्पगदान्सकुष्ठगुल्मान् ॥ ३४ ॥

अडूसा, कत्था, परवलकी पत्ती, नीमकी छाल, गुर्च व आंवलाके क्वाथ व कल्कमें सिद्ध घृत विसर्प, कुष्ठ व गुल्मको नष्ट करता है ॥ ३४ ॥

पञ्चतिक्तं घृतम् ।

पटोलसप्तच्छदनिम्बवासा-
फलत्रिकं छिन्नरुहाविपक्वम् ।

नत्पञ्चतिक्तं घृतमाशु हन्ति
त्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः ॥ ३५ ॥

परवलकी पत्ती, सप्तपर्ण, नीमकी छाल, अडूसा, त्रिफला तथा गुर्चसे सिद्ध "पञ्चतिक्त" कहा जाता है। यह त्रिदोषजन्य विस्फोटक, विसर्प व खुजलीको नष्ट करता है ॥ ३५ ॥

महापद्मकं घृतम् ।

पद्मकं मधुकं लोध्रं नागपुष्पस्य केशरम् ।
द्वे हरिद्रे विडङ्गानि सूक्ष्मैला तगरं तथा ॥ ३६ ॥
कुष्ठं लाक्षापत्रकं च सिक्थकं तुत्थमेव च ।
बहुवारः शिरीषश्च कपित्थफलमेव च ॥ ३७ ॥
तोयेनालोडय तत्सर्वं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
यांश्च रोगान्निहन्त्याशु तान्निबोध महामुने ॥ ३८ ॥
सर्पकीटाखुदष्टेषु लूतामूत्रकृतेषु च ।
विविधेषु स्फोटकेषु तथा कुष्ठविसर्पिषु ॥ ३९ ॥
नाडीषु गण्डमालासु प्रभिन्नासु विशेषतः ।
अगस्त्यविहितं धन्यं पद्मकं तु महाघृतम् ॥ ४० ॥

पद्माख, मौरेठी, लोध, नागकेशर, हल्दी, दारुहल्दी, वायविडङ्ग, छोटी इलायची, तगर, कूठ, लाख, तेजपात, मोम, तूतिया, लसोड़ा, सिरसेकी छाल व कैथा इन सबका कल्क जलमें मिलाकर १ प्रस्थ घृत सिद्ध करना चाहिये। इससे सर्प, कीड़ों व मूसोंके विषमें, मकड़ीके विषमें, फफोलेमें तथा कुष्ठविसर्प, नासूर, व गण्डमालामें विशेष लाभ होता है। यह अगस्त्यका बनाया "महापद्माक" नामक घृत है ॥ ३६-४० ॥

स्नायुकचिकित्सा ।

रोगस्तु स्नायुकाख्यो यः क्रिया तत्र विसर्पवत् ।
गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम् ।
पिबेत्स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ४१ ॥

स्नायुक (नहरुवा) नामक रोगमें विसर्पके समान चिकित्सा करनी चाहिये। ३ दिन गायका घी पीकर ३ दिन सम्भालूका स्वरस पीना चाहिये। इससे उग्र स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

लेपः ।

शोभाञ्जनमूलदलैः काञ्जिकपिष्टैः सलवणैर्लेपः ।
हन्ति स्नायुकरोगं यद्वा मोचकत्वचो लेपः ॥ ४२ ॥

सहिंजनकी मूल और पत्तोंको नमक मिला काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे अथवा सेमरकी छालका लेप करनेसे स्नायुक रोग नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

इति विसर्पविस्फोटाधिकारः समाप्तः ।

अथ मसूर्यधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

सर्वासां वमनं पथ्यं पटोलारिष्टवासकैः ।
कषायैश्च वचावत्सयष्ट्याह्वफलकल्कितैः ॥ १ ॥
सक्षौद्रं पाययेद् ब्राह्म्या रसं वा हैलमोचिकम् ।
वान्तस्य रेचनं देयं शमनं चाबले नरे ॥ २ ॥

समस्त मसूरिकाओंमें परवलकी पत्ती, नीमकी पत्ती तथा अडूसेकी पत्तीके क्काथमें बच, कुड़ेकी छाल, मौरेठी, व मैनफलका कल्क छोड़कर वमनके लिये पिलाना हितकर है। तथा शहदके साथ ब्राह्मीके रसको अथवा हिलमोचिकाके रसको पिलाना चाहिये। वमन कराकर विरेचन करना चाहिये। तथा निर्बल पुरुषको शमनकारक उपाय करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

शमनम् ।

सुषवीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम् ।
रोमान्तीज्वरविस्फोटमसूरीशान्तये पिबेत् ॥ ३ ॥

काले जीरेके पत्तोंके रसमें अथवा करेलेके पत्तोंके रसमें हल्दीके चूर्णको मिलाकर पीनेसे रोमन्तिका, ज्वर, फफोले तथा मसूरीकी शान्ति होती है ॥ ३ ॥

वमनविरेचनफलम् ।

उभाभ्यां हृतदोषस्य विशुष्यन्ति मसूरिकाः ।
निर्विकाराश्चाल्पपूयाः पच्यंते चाल्पवेदनाः ॥ ४ ॥

वमन तथा विरेचनसे दोषोंके निकाल देनेसे मसूरिकाएँ सूख जाती हैं। अथवा विना उपद्रव व पीड़ाके शीघ्र ही पक जाती हैं और मवाद कम आता है ॥ ४ ॥

विविधा योगाः ।

कण्टाकुम्भाण्डमूलं क्कथनविधिकृतं
हिङ्गुमाषिकयुक्तं
पीतं बीजं जयायाःसघृतमुषितवाः
पीतमङ्घ्रिः सिकट्याः ।
माध्यामूलं शिफा वा मदनकुसुमजा
सोषणा वाथ पूतिः ।
योगा वास्यम्बुनैते प्रथम मघगदे
दृश्यमाने प्रयोज्याः ॥ ५ ॥

कण्टाकुम्भाण्ड (कटीली लताविशेष) की जड़का क्काथ हींग १ माशे (वर्तमान कालके लिये १ रत्ती) के साथ अथवा

भांगके बीजोंको घीके साथ अथवा शिकटी (लताविशेष) की जड़के चूर्णको वासी जलके साथ अथवा कुन्दकी जड़को अथवा देवनाकी जड़को अथवा कालीमिर्चमिलित पूतिकरञ्जको मसूरिकाके दिखाई देनेपर वासी जलके साथ पीना चाहिये ॥ ५ ॥

मुष्टियोगपरिभाषा ।

उद्धृत्य मुष्टिमाच्छाद्य भेषजं यत्प्रयुज्यते ।
तन्मुष्टियोगमित्याहुर्मुष्टियोगपरायणाः ॥ ६ ॥

औषधि उखाड़ मुट्ठीमें बन्द कर रोगीको देना "मुष्टियोग", कहा जाता है, ऐसा मुष्टियोगको जाननेवाले वैद्य कहते हैं ॥ ६ ॥

विविधा योगाः ।

उष्ट्रकण्टकमूलं वाप्यनन्तामूलमेव वा ।
विधिगृहीतं ज्येष्ठाम्बु पीतं हन्ति मसूरिकाम् ॥ ७ ॥
तद्वच्छृगालकण्टकमूलं व्युषिताम्भसा युक्तम् ।
मसूरीं मूर्च्छितो हन्ति गन्धकार्धस्तु पारदः ॥८ ॥
निशाचिञ्चाच्छदे शीतवारिपीते तथैव तु ।
यावत्संख्या मसूर्यङ्गे तावद्भिः शैलुजैर्दलैः ॥ ९ ॥
छिन्नैरातुरनाम्ना तु गुटी व्येति न वर्धते ।
व्युषितं वारि सक्षौद्रं पीतं दाहगुटीहरम् ॥ १० ॥
शैलुत्वक्कृतशीताम्भःसेको वा कायशोषणे ।

ऊंटकटारेकी जड़को अथवा अनन्तमूलकी जड़को चावलके जलके साथ पीनेसे मसूरिका नष्ट होती हैं । इसी प्रकार शृगालकण्टक की जड़को वासी जलके साथ अथवा पारदसे आधा गन्धक मिला कज्जली बनाकर सेवन करने अथवा हल्दी व अम्लीकी पत्तीको ठण्डे जलके साथ पीनेसे मसूरी नष्ट होती है। तथा शरीरमें जितनी मसूरिकाएँ हों, उतने ही लसोड़ेके पत्तोंको तोड़ रोगीका नाम लेकर फेंक देनेसे मसूरिकाएँ नष्ट होती हैं। इसी प्रकार वासी जलको शहदमें मिलाकर पीनेसे जलन और मसूरिकाएँ नष्ट होती हैं । अथवा लसोढ़ेके पत्तोंका शीतकषाय जलनको शान्त तथा मसूरिकाओंका शोषण करता है ॥ ७–१० ॥

धूपाः ।

उग्राज्यवंशनीलीयववृषकार्पासकीकसब्राह्मी ॥११॥
सुरसमयूरकलाक्षाधूपो रोमान्तिकादिहरः ।

वच, घी, बांस, नील, यव, अडूसा, कपासकी मींगी, ब्राह्मी, तुलसी, अपामार्ग तथा लाखकी धूप रोमान्तिकाको नष्ट करती है ॥ ११ ॥–

वातजचिकित्सा ।

तर्पणं वातजायां प्राग्लाजचूर्णैः सशर्करैः ॥ १२ ॥
भोजनं तिक्तयूपैश्च प्रतुदानां रसेन वा ।
द्विपञ्चमूलं रास्ना च दार्व्युशीरं दुरालभा ॥ १३ ॥
सामृतं धान्यकं मुस्तं जयेद्वातसमुत्थिताम् ।
गुडूचीं मधुकं रास्नां पञ्चमूलं कनिष्ठकम् ॥ १४ ॥
चन्दनं काश्मर्यफलं बलामूलं विकङ्कतम् ।
पाककाले मसूर्यां तु वातजायां प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥

वातजन्य मसूरिकामें प्रथम शक्करके सहित खीलके चूर्णके द्वारा तर्पण करावे । अथवा तिक्तयूप और प्रतुद (खजूरआदि) प्राणियोंके मांसरसके साथ भोजन देना चाहिये । दशमूल, रासन, दारुहल्दी, खश, यवासा, गुर्च, धनियां, नागरमोथा इनका क्वाथ वातज मसूरिकाको नष्ट करता है । तथा गुर्च, मौरेठी, रासन, लघुपञ्चमूल, चन्दन, खम्भारके फल खरेटीकी जड़, कत्था इनके क्वाथका वातज मसूरिकाके समय प्रयोग करना चाहिये ॥ १२–१५ ॥

पित्तजचिकित्सा ।

द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः ।
लाजामलकदुस्पर्शैः सितायुक्तैश्च पैत्तिके ॥ १६ ॥
शिरीषोदुम्बराश्वत्थशैलुन्यग्रोधवल्कलैः ।
प्रलेपः सघृतः शीघ्रं व्रणविस्फोटदाहहा ॥ १७ ॥
दुरालभां पर्पटकं भूनिम्बं कटुरोहिणीम् ।
श्लैष्मिक्यां पित्तजायां वा पाने निष्काथ्य दापयेत् १८

मुनक्का, खम्भार, छुहारा, परवल, नीमकी पत्ती, अडूसा, खील, आंवला तथा यवासाके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पित्तजमें पीना चाहिये । तथा सिरसाकी छाल, गूलर, पीपल लसोढ़ व बरगदकी छालको पीस घी मिला लेप करनेसे शीघ्र ही व्रण फफोले तथा दाह नष्ट होते हैं। तथा यवासा, पित्तपापड़ा, चिरायता, व कुटकीका क्वाथ पित्तज अथवा श्लेष्मज–मसूरिकामें देना चाहिये ॥ १६–१८ ॥

निम्बादिक्वाथः ।

निम्बं पर्पटकं पाठां पटोलं कटुरोहिणीम् ।
वासां दुरालभां धात्रीमुशीरं चन्दनद्वयम् ॥ १९ ॥
एष निम्बादिकः ख्यातः पीतः शर्करया युतः ।
हन्ति त्रिदोषमसूरीं ज्वरवीसर्पसम्भवाम् ॥ २० ॥
उत्थिता प्रविशेद्या तु पुनस्तां बाह्यतो नयेत् ॥२१॥

नीमकी छाल, पित्तपापड़ा, पाढ़, परवल, कुटकी, अडूसा, यवासा, आंवला, खश तथा दोनों चन्दनका क्वाथ, निम्बादि

क्वाथ" है । इसको शक्करके साथ पीनेसे त्रिदोषजमसूरिका, ज्वर तथा विसर्प जनित मसूरिकाएं नष्ट होती हैं। जो उठती हुई मसूरिका दब जाती है, उसे फिर निकाल देता है॥ १९–२१ ॥

पटोलादिक्काथः ।

पटोलकुण्डलीमुस्तवृषधन्वयवासकैः ।
भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च शृतं जलम् ॥ २२ ॥
मसूरीं शमयेदामां पक्कां चैव विशोषयेत् ।
नातः परतरं किञ्चिद्विस्फोटज्वरशान्तये ॥ २३ ॥

परवलकी पत्ती, गुर्च, नागरमोथा, अडूसा, यवासा, चिरायता, नीमकी छाल, कुटकी, तथा पित्तपापड़ाका क्वाथ आम (अपक्व) मसूरीको शान्त करता, तथा पक्कको सुखाता है। इससे बढ़कर फफोले तथा ज्वरको शान्त करनेवाला दूसर कोई श्रेष्ठ प्रयोग नहीं है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अन्यत्पटोलादिद्वयम् ।

पटोलमूलारुणतण्डुलीयकं
पिबेद्धरिद्रामलककल्कसंयुतम् ।
मसूरिकास्फोटविदाहशान्तये
तदेव रोमान्तिवमिज्वरापहम् ॥ २४ ॥
पटोलमूलारुणतण्डुलीयकं
तथैव धात्रीखदिरेण संयुतम् ।
पिबेज्जलं सुक्कथितं सुशीतलं
मसूरिकारोगविनाशनं परम् ॥ २५ ॥

(१) परवलकी जड़ व लाल चौराईका क्वाथ, हल्दी व आंवलेके कल्कके साथ मसूरिका, फफोले, जलन, ज्वर, रोमान्तिका व वमनको नष्ट करता है। तथा (२) परवलकी जड़, लाल चौराईका क्वाथ, आंवला व कत्थेके कल्कके साथ ठण्ढा कर पीनेसे मसूरिका रोग नष्ट होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

खदिराष्टकः ।

खदिरत्रिफलारिष्टपटोलामृतवासकैः ।
क्काथोऽष्टकाङ्को जयति रोमान्तिकमसूरिकाः ।
कुष्ठवीसर्पविस्फोटकण्ड्वादीनपि पानतः ॥ २६ ॥

कत्था, त्रिफला, नीमकी पत्ती, परवलकी पत्ती, गुर्च तथा अडूसाका क्वाथ रोमान्तिका, मसूरिका, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोट, खुजली आदिको नष्ट करता है ॥ २६ ॥

अमृतादिक्काथः।

अमृतादिकषायस्तु जयेत्पित्तकफात्मिकाम् ।
अमृतादि क्वाथ पित्तकफात्मक मसूरिकाको नष्ट करता है।

प्रलेपः ।

सौवीरेण तु संपिष्टं मातुलुङ्गस्य केशरम् ॥ २७ ॥
प्रलेपात्पातयत्याशु दाहं चाशु नियच्छति ।

बिजौरे निम्बूकी केशरको काञ्जीके साथ पीसकर लेप करनेसे दाह अवश्य नष्ट होता है तथा मसूरिकाओंकी पपड़ी गिर जाती है ॥ २७ ॥

पादपिडकाचिकित्सा ।

पाददाहं प्रकुरुते पिडका पादसंभवा ॥ २८ ॥
तत्र सेकं प्रशंसन्ति बहुशस्तण्डुलाम्बुना ।

पैरोंमें पिड़का उत्पन्न होकर दाह करती है, उसमें चावलके जलका सिञ्चन हितकर है ॥ २८ ॥–

पाकावस्थाप्रयोगाः ।

पाककाले तु सर्वास्ता विशोषयति मारुतः ॥२९॥
तस्मात्संबृंहणं कार्यं न तु पथ्यं विशोषणम् ।
गुडूची मधुकं द्राक्षा मोरटं दाडिमैः सह ॥ ३० ॥
पालकाले तु दातव्यं भेषजं गुडसंयुतम् ।
तेन पाकं व्रजत्याशु न च वायुः प्रकुप्यति ॥३१॥
लिहेद्वा बादरं चूर्णं पाचनार्थं गुडेन तु ।
अनेनाशु विपच्यन्ते वातपित्तकफात्मिकाः ॥ ३२॥

पाककालमें सभी प्रकारकी मसूरिकाओंको वायु सुखा देता है, अतः सभीमें बृंहण चिकित्सा हितकर होती है, शोषण नहीं। अतः गुर्च, मौरेठी, मुनक्का, इक्षुमूल तथा अनारदानाके चूर्णको गुड़के साथ पाकके समय देना चाहिये। इससे मसूरिकाएँ पक जाती हैं, वायु नहीं बढ़ती। अथवा पकानेके लिये बेरका चूर्ण गुड़के साथ खाना चाहिये। इससे वातपित्त कफात्मक मसूरिकाएँ शीघ्र ही पक जाती हैं ॥ २९–३२ ॥

विविधास्ववस्थासु विविधा योगाः ।

शूलाध्मानपरीतस्य कम्पमानस्य वायुना ।
धन्वमांसरसाः शस्ता ईषत्सैन्धवसंयुताः ॥ ३३ ॥
दाडिमाम्लरसैर्युक्ता यूषाः स्युररुचौ हिताः ।
पिबेदम्भस्तप्तशीतं भावितं खादिराशनैः ॥३४ ॥
शौचे वारि प्रयुञ्जीत गायत्रीबहुवारजम् ।
जातीपत्रं समञ्जिष्ठं दार्वीपूगफलं शमीम् ॥ ३५ ॥
धात्रीफलं समधुकं क्कथितं मधुसंयुतम् ।
मुखरोगे कण्ठरोगे गण्डूषार्थं प्रशस्यते ॥ ३६ ॥
अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुकाम्बुना ।
मधुकं त्रिफला मूर्वा दार्वीत्वङ् नीलमुत्पलम्॥३७॥
उशीरलोध्रमञ्जिष्ठाः प्रलेपाश्च्योतने हिताः

नश्यन्त्यनेन दृग्जाता मसूर्यो न द्रवन्ति च ॥ ३८॥
पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लेदिनीमवचूर्णयेत् ।
भस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद्गोमयरेणुना ॥ ३९ ॥
क्रिमिपातभयाच्चापि धूपयेत्सरलादिना ।
वेदनादाहशान्त्यर्थं स्रुतानां च विशुद्धये ॥ ४० ॥
सगुग्गुलुं वराक्वाथं युञ्ज्याद्वा खदिराष्टकम् ।
कृष्णाभयारजो लिह्यान् मधुना कण्ठशुद्धये ॥४१॥
अथाष्टाङ्गावलेहो वा कवलश्चार्द्रकादिभिः ।
पञ्चादिक्तं प्रयुञ्जीत पानाभ्यञ्जनभोजनैः ॥ ४२ ॥
कुर्याद् व्रणविधानं च तैलादीन्वर्जयेच्चिरम् ।
विषघ्नैः सिद्धमन्त्रैश्च प्रमृज्यात्तु पुनः पुनः ।
तथा शोणितसंसृष्टाः काश्चिच्छोणितमोक्षणैः॥४३॥

शूल तथा पेटकी गुड़गुड़ाहटसे युक्त तथा वायुसे कंपते हुए पुरुषको जांगल प्राणियोंका मांसरस कुछ सेंधानमक मिलाकर देना हितकर है। अरुचिमें अनार आदि खट्टे रसोंसे युक्त यूप हितकर है। जल गरम कर ठण्ढा किया हुआ अथवा कत्था व विजैसारसे सिद्ध कर देना चाहिये। शौचादिके लिये कत्था व लसोड़ेका जल देना चाहिये। मुख तथा कण्ठके रोगोंमें चमेलीके पत्ते, मजीठ, दारुहल्दी, सुपारी, शमी, आंवला, तथा मौरेठीके क्वाथमें शहद मिलाकर गण्डूष धारण करना चाहिये। और पसही तथा मौरेठीके जलसे आंखोंमें सेक करना चाहिये। तथा मौरेठी, त्रिफला, मूर्वा, दारुहल्दीकी छाल, नीलोफर, खश, लोध, व मजीठका लेप तथा आश्च्योतन (इनके रसका प्रक्षेप) करना आंखोंमें हितकर है। इससे दृष्टिमें उत्पन्न मसूरिकाएँ नष्ट हो जाती हैं और फूटती नहीं। फूट गयी मसूरिकामें पञ्चवल्कलका चूर्ण उर्राना चाहिये। कुछ आचार्योंका मत है कि राख तथा कुछका मत है कि गोवरका चूर्ण उर्राना चाहिये। कीड़े न पड़ जावें, अतः सरल आदिकी धूप देनी चाहिये। पीड़ा व जलनकी शान्ति तथा बहती हुई मसूरिकाओंको शुद्ध करनेके लिये गुग्गुलुके साथ त्रिफलाका क्वाथ अथवा खदिराष्टकका प्रयोग करना चाहिये। कण्ठ शुद्धिके लिये छोटी पीपल व हर्रके चूर्णको शहदके साथ चाटना चाहिये। अथवा अष्टांगावलेहिका चाटनी चाहिये। तथा अदरख आदिके रसका कवल धारण करना चाहिये। पीने मालिश तथा भोजनमें पञ्चतिक्तघृतका प्रयोग करना चाहिये। तथा व्रणोक्त चिकित्सा करनी चाहिये और तैल आदिका चिरकालतक त्याग करना चाहिये। विषनाशक सिद्ध मन्त्रोंसे बारबार मार्जन करना चाहिये। तथा जिन मसूरिकाओंमें रक्त दूषित हो, उनमें रक्तमोक्षण करना चाहिये ॥ ३३-४३ ॥

निशादिलेपः ।

निशाद्वयोशीरशिरीषमुस्तकैः
सलोध्रभद्रश्रियनागकेशरैः ।
सस्वेदविस्फोटविसर्पकुष्ठ-
दौर्गन्ध्यरोमाञ्चिहरः प्रदेहः ॥ ४४ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, खश, सिरसेकी छाल, नागरमोथा, लोध, चन्दन तथा नागकेशरका लेप स्वेद, फफोले, विसर्प, कुष्ठ, दुर्गन्धि तथा रोमान्तिकाको नष्ट करता है ॥ ४४ ॥

बिम्ब्यादिक्वाथः ।

बिम्ब्यतिमुक्तकाऽशोकप्लक्षवेतसपल्लवैः ।
निशि पर्युषितः क्वाथो मसूरीभयनाशनः ॥ ४५ ॥

कुंदरू, अतिमुक्तक (माधवीलता), अशोक पकारिया वेतके पत्तोंको रात्रिमें जलमें भिगोकर प्रातः मलछान कर पीनेसे मसूरिकाका भय नष्ट होता है * ॥ ४५ ॥

प्रभावः ।

चैत्रासितभूतदिने रक्तपताकान्वितः स्नुही भवने ।
धवलितकलशन्यस्ता पापरुजो दूरतो धत्ते ॥ ४६ ॥

चैत्र कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन सफेद कलशके ऊपर लाल पताकासे युक्त सेहुण्ड़को घरमें रखनेसे पापरोग (मसूरिका) दूर ही रहते हैं ॥ ४६ ॥

इति मसूर्यधिकारः समाप्तः ।

अथ क्षुद्ररोगाधिकारः ।

अजगल्लिकादिचिकित्सा ।

तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत् ।
शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः ॥ १ ॥
नवीनकण्टकार्यास्तु कण्टकैर्वेधमात्रतः ।
किमाश्चर्यं विपच्याशु प्रशाम्यत्यजगल्लिका ॥
कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम् ।
श्लेष्मविद्रधिकल्पेन जयेदनुशयीं भिषक् ॥ २ ॥
विवृतामिन्द्रवृद्धां च गर्दभीं जालगर्दभम् ।
हरिवेल्लिकां गन्धनाम्नीं जयेत्पित्तविसर्पवत् ॥ ३ ॥

---

* कूर्परादिशोथचिकित्सा—" मसूरीस्फोटयोरन्ते कूर्परे मणिबन्धके । मुखेंऽसफलके शोथो जायते यः सुदारुणः ॥ व्रणशोथहरैर्योगैर्वातघ्नैश्च जलौकसा । हर्तव्यस्तैलभृष्टस्य वृश्चिकस्य विलेपनैः ॥ " मसूरीके फफोलोंके अनन्तर कूर्पर, मणिबन्ध, मुख और अंसफलकमें जो कठिन सूजन हो जाती है, उसे व्रणशोथनाशक तथा वातघ्न योगोंसे अथवा जोंक लगाकर अथवा तैलमें भूने हुए बीछू (या वृश्चिकनामक ओषधिविशेष) को पीस लेप कर नष्ट करना चाहिये ॥

१ मसूरिका ही शीतला है ।

मधुरौषधसिद्धेन सर्पिषा शमयेद् व्रणान्।
रक्तावसेकैर्बहुभिः स्वेदनैरपतर्पणैः ॥ ४ ॥
जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः।
पनसिकां कच्छपिकामनेन विधिना भिषक् ॥ ५ ॥
साधयेत्कठिनानन्यांञ्शोथान्दोषसमुद्भवान्।
अन्त्रालजीं कच्छपिकां तथा पाषाणगर्दभम् ॥६ ॥
सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत्।
कफमारुतशोथघ्नो लेपः पाषाणगर्दभे ॥ ७ ॥

कच्ची अजगल्लिकाको जोंक लगाकर शान्त करना चाहिये। तथा शुक्ति व फिटकरीके क्षारकल्कको बार बार लगाना चाहिये। नवीन कण्टकारीके कांटोंसे छेद देनेसे अजगल्लिका पककर शान्त हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं। तथा काठिन अजगल्लिकाको क्षारयोगसे बहाना चाहिये। अनुशयीको श्लेष्मविद्रधिकी विधिसे जीतना चाहिये। तथा विवृता, इन्द्रवृद्धा, गर्दभी, जालगर्दभ, इरिवेल्लिका और गन्धनामिकाको पित्तविसर्पके समान जीतना चाहिये। व्रणोंको मीठी ओषधियोंसे सिद्ध घीसे जीतना चाहिये। तथा रक्तावसेक, स्वेदन तथा अपतर्पणसे विदारिकाको जीतना चाहिये। तथा सहिंजन व देवदारुका लेप लगाना चाहिये। इसी प्रकार पनसिका और कच्छपिका तथा दोषजन्य अन्य शोथोंको सिद्ध करना चाहिये। तथा अन्त्रालजी, कच्छपिका तथा पाषाणगर्दभमें स्वेदन कर देवदारु, मैनशिल और कूठका लेप करना चाहिये। पाषाणगर्दभमें कफ व वायुशोथनाशक लेप लगाना चाहिये ॥ १–७ ॥

वल्मीकचिकित्सा।

शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत्।
मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः ॥ ८ ॥
जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत्।
वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुस्वनम् ॥ ९ ॥

वल्मीकको शस्त्रसे काटकर क्षार तथा अग्निका प्रयोग करना चाहिये। तथा मनशिल, हरताल, भिलावा, छोटी इलायची, अगर चन्दन तथा चमेलीके पत्तोंके कल्कसे नीमका तैल सिद्ध करना चाहिये। यह तैल बहुत छिद्र तथा बहुत शब्दयुक्त वल्मीक रोगको नष्ट करता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

पाददारीचिकित्सा।

पाददारीषु च शिरां व्यधयेत्तलशोधिनीम्।
स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ चालेपयेन्मुहुः ॥ १० ॥
मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतक्षारैर्विमिश्रितैः।
सर्जाख्यसिन्धूद्भवयोश्चूर्णं मधुघृताप्लुतम्।
निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जनम् ॥ ११ ॥

पाददारीमें तलशोधनी शिराका व्यध करना चाहिये। तथा पैरोंका स्नेहन, स्वेदन कर मोम, चर्बी, मज्जा, घी व क्षारका लेप करना चाहिये। तथा राल व सेंधानमकके चूर्णको शहद, घी तथा कडुए तैलमें मिलाकर पैरोंमें लगाना हितकर है ॥ १० ॥ ११ ॥

उपोदिकादिक्षारतैलम्।

उपोदिकासर्षपनिम्बमोच-
कर्कारुकैर्वारुकभस्मतोये।
तैलं विपक्वं लवणांशयुक्तं
तत्पाददारीं विनिहन्ति लेपात् ॥ १२ ॥

पोय, सरसों, नीमकी पत्ती, सेमर तथा ककड़ी व खीरा इन ओषधियोंको यथाविधि जलाकर भस्म बना ले। इस भस्मके जलमें पकाया गया तैल नमक मिलाकर लेप करनेसे पाददारीको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

अलसकचिकित्सा।

अलसेऽम्लैश्चिरं सिक्तौ चरणौ परिलेपयेत्।
पटोलारिष्टकाशीसत्रिफलाभिर्मुहुर्मुहुः ॥ १३ ॥
करञ्जबीजं रजनी काशीसं मधुकं मधु।
रोचना हरितालं च लेपोऽयमलसे हितः ॥ १४ ॥
लाक्षाभयारसो लेपः कार्यं वा रक्तमोक्षणम्।
जातीपत्रं च संमर्द्य दद्यादलसके भिषक् ॥ १५ ॥
बृहतीरससिद्धेन तैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान्।
शिलारोचनकाशीसचूर्णैर्वा प्रतिसारयेत् ॥ १६ ॥

अलसकमें पैरोंको काञ्जीसे तर कर परवल, नीम, काशीस व त्रिफलाके कल्कका बारबार लेप करे। अथवा कञ्जाके बीज, हल्दी, काशीस, मौरेठी, शहद, गोरोचन व हरितालका लेप लगाना चाहिये। अथवा लाख, हर्र और रासनका लेप करना चाहिये। अथवा रक्तमोक्षण करना चाहिये। अथवा चमेलीके पत्तोंको पीसकर अलसकमें लगाना चाहिये। अथवा बड़ी कटेरीके रससे सिद्ध तैलसे मालिश कर मनशिल, गोरोचन व काशीसके चूर्णको उर्रावे ॥ १३–१६ ॥

कदरचिप्पचिकित्सा।

दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा।
चिप्पमुष्णाम्बुना स्विन्नमुत्कृत्याभ्यज्य तं व्रणम् ॥१७
दत्त्वा सर्जरसं चूर्णं बद्ध्वा व्रणवदाचरेत्।
स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृष्णायसेऽभयाम् ॥१८॥
घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्पं पुनः पुनः।
चिप्पे सटङ्कणारफोतामूललेपो नखप्रदः ॥ १९ ॥

कदरको खुरचकर तैल अथवा अग्निसे जलाना चाहिये । चिप्पकको गरम जलसे स्वेदित करनेके अनन्तर खुरच कर उस व्रणमें रालका चूर्ण उर्राकर व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये । तथा काले लोहके पात्रमें हल्दीके स्वरससे हर्रेको घिसकर चिप्पमें वारवार लेप करना चाहिये। तथा चिप्पमें सुहागा और आस्फोतेकी जड़का लेप नाखूनको उत्पन्न करता है ॥ १७-१९ ॥

पद्मिनीकण्टकचिकित्सा ।

निम्बोदकेन वमनं पद्मिनीकण्टके हितम् ।
निम्बोदककृतं सर्पिः सक्षौद्रं पानमिष्यते ॥ २० ॥
पद्मनालकृतः क्षारः पद्मिनीं हन्ति लेपतः ।
निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्तनं हितम् ॥ २१ ॥

नीमके जलसे वमन कराना पद्मिनीकण्टकमें हितकर है। तथा नीमके जलसे सिद्ध घृतमें शहदको मिलाकर पीना चाहिये । तथा कमलकी डण्डीकी क्षारका लेप पद्मिनीको नष्ट करता है । तथा नीम व अमलतासके कल्कका वारवार उवटन करना चाहिये ॥ २० ॥ २१ ॥

जालगर्दभचिकित्सा ।

नीलीपटोलमूलाभ्यां साज्याभ्यां लेपनं हितम् ।
जालगर्दभरोगे तु सद्यो हन्ति च वेदनाम् ॥ २२ ॥

घीसे मिलित नील व परवलकी जड़का लेप जालगर्दभ रोगको नष्ट करता तथा पीड़ाको शान्त करता है ॥ २२ ॥

अहिपूतनकचिकित्सा ।

अहिपूतनके धात्र्याः पूर्वं स्तन्यं विशोधयेत् ।
त्रिफलाखदिरक्काथैर्व्रणानां धावनं सदा ॥ २३ ॥
करञ्जत्रिफलातिक्तैः सर्पिः सिद्धं शिशोर्हितम् ।
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ २४ ॥

अहिपूतनामें पहिले धायका दूध शुद्ध करना चाहिये । तथा त्रिफला व कत्थाके क्काथसे सदा घावोंको धोना चाहिये । तथा कञ्जा, त्रिफला व तिक्तद्रव्योंसे सिद्ध घृत बालकोंके लिये हितकर है । तथा पीने व लेपके लिये विशेषकर रसौत हितकर हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

गुदभ्रंशचिकित्सा ।

गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्याशु प्रवेशयेत् ।
प्रविष्टे स्वेदयेचापि बद्धं गोफणया भृशम् ॥ २५ ॥
कोमलं पद्मिनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम् ।
एतान्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ २६ ॥
वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीबिल्वपाठायवाग्रजम् ।
तक्रेण शीलयेत्पायुभ्रंशार्तोऽनलदीपनम् ॥ २७ ॥
गुदं च गव्यपयसा प्रक्षयेदविशङ्कितः ।
दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः ॥ २८ ॥
मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदे सम्यक्प्रलेपनम् ।
स्विन्नमूषिकमांसेन चाथवा स्वेदयेद् गुदम् ॥२९॥

गुदभ्रंशमें स्नेहकी मालिश कर गुदाको प्रविष्ट करना चाहिये। प्रविष्ट हो जानेपर स्वेदन कर गोफणाबन्धसे बान्ध देना चाहिये । तथा जो कोमल कमलिनीके पत्तोंको शक्करके साथ खाता है, उसकी गुदा निःसन्देह नहीं निकलती तथा कोकम अथवा अम्लवेत, चीत, चाङ्गेरी, बेल, पाठा तथा जवाखार इन ओष धियोंके चूर्णको मट्ठेके साथ खानेसे गुदभ्रंश नष्ट होता है और अग्नि दीप्त होती है । यदि गुदा बैठती न हो, तो गायके दूधका सिञ्चन करना चाहिये, इससे गुदा शीघ्र ही बैठ जाती है । मूसोंकी वसासे गुदामें लेप करना अथवा मूषिकामांससे स्वेदन करना चाहिये ॥ २५-२९ ॥

चांगेरीघृतम् ।

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम् ।
घृतमुत्कथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ।
शुण्डीक्षारावत्र कल्कौ शिष्टं तु द्रवमिष्यते ॥ ३० ॥

अमलोनिया, बेर, दही, काञ्जी, सोंठ और क्षारसे सिद्ध घृत गुदभ्रंशको नष्ट करता है । इसमें सोंठ व क्षारका कल्क तथा शेष द्रव छोड़ना चाहिये ॥ ३० ॥

मूषिकातैलम् ।

क्षीरे महत्पञ्चमूलं मूषिकामन्त्रवर्जिताम् ।
पक्त्वा तस्मिन्पचेत्तैलं वातघ्नौषधसाधितम् ॥ ३१ ॥
गुदभ्रंशमिदं तैलं पानाभ्यङ्गात्प्रसाधयेत् ॥ ३२ ॥

दूधमें महत्पञ्चमूल और आन्तोंरहित मूषिकाको पका कर उसी क्काथमें वातनाशक ओषधियोंके सहित तैल सिद्ध करना चाहिये । यह तैल पीने तथा मालिश करनेसे गुदभ्रंशको नष्ट करता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

परिकर्तिकाचिकित्सा ।

स्वेदोपनाहौ परिकर्तिकायां
कृत्वा समभ्यज्य घृतेन पश्चात् ।
प्रवेशयेच्चर्म शनैः प्रविष्टे
मांसैः सुखोष्णैरुपनाहयेच्च ॥ ३३ ॥

परिकर्तिकामें स्वेदन तथा उपनाह कर घीसे मालिश कर धीरे धीरे चर्म प्रविष्ट करना चाहिये । फिर कुछ गरम गरम मांससे स्वेदन करना चाहिये ॥ ३३ ॥

अवपाटिकादिचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदैस्तथैवैनां चिकित्सेदवपाटिकाम् ।
निरुद्धप्रकशे नाडीं द्विमुखीं कनकादिजाम् ॥ ३४॥

क्षिप्त्वाऽभ्यक्त्वा चुल्लकादिस्नेहेन परिषेचयेत् ।
तैलेन वा पचादारुकल्कैः सिद्धेन च त्र्यहात् ॥३५
पुनः स्थूलतरा नाडी देया स्रोतोविवृद्धये ।
शस्त्रेण सेवनीं त्यक्त्वा भित्त्वा व्रणवदाचरेत् ॥३६
स्निग्धं च भोजनं बद्धे गुदेऽप्येष क्रियाक्रमः ।
चर्मकीलं जतुमणिं मशकांस्तिलकालकान् ॥ ३७ ॥
उद्धृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ।
रुबुनालस्य चूर्णेन घर्षो मशकनाशनः ॥ ३८ ॥
निर्मोकभस्मघर्षाद्वा मशः शान्तिं व्रजेत्सदा ।

अवपाटिकाकी स्नेहन व स्वेदन कर चिकित्सा करनी चाहिये। निरुद्धप्रकशमें सोने आदिकी द्विमुखी नाड़ी छोड़े, फिर चुल्लकादि जल जन्तुओंके स्नेहसे सिञ्चन करे। अथवा वच व देवदारुके कल्कसे सिद्ध तैलसे सिञ्चन करे। फिर ३ दिनके बाद छिद्र बढानेके लिये बड़ी नली लगावे। तथा सेवनीको छोड़ शस्त्रसे काटकर व्रणवत् चिकित्सा करे। तथा स्नेहयुक्त भोजन देवे। बद्धगुदमें भी यही चिकित्सा करनी चाहिये। चर्मकील, जतुमणि, मशक, तिलकालक इनको शस्त्रसे काटकर क्षार तथा अग्निसे समग्र जलाना चाहिये। एरण्डनालके चूर्णसे मसेमें घिसना मसेको नष्ट करता है। तथा सांपकी केंचुलकी भस्म घिसनेसे मशा शान्त होता है ॥ ३४–३८ ॥

युवानपिडकादिचिकित्सा ।

युवानपिडकान्यच्छनीलिकाव्यङ्गशर्कराः ॥ ३९ ॥
शिराव्यधैः प्रलेपैश्च जयेदभ्यञ्जनैस्तथा ।
लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिडकापहः ॥ ४० ॥
तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपतः ।
सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम् ॥ ४१ ॥
वमनं च निहन्त्याशु पिडकां यौवनोद्भवाम् ।

मुहासे, स्याउहां, झाईं, नीलिका तथा शर्कराको शिराव्यध, लेप, तथा मालिशसे जीतना चाहिये। पठानी लोध, धनियां तथा वचका लेप मुहासोंको नष्ट करता है। इसी प्रकार गोरोचन, मिर्च मिलाकर लेप करनेसे लाभ करता है। तथा सरसों, वच, लोध व सेंधानमकका लेप तथा वमन कराना मुहासोंको नष्ट करता है ॥ ३९–४१ ॥

मुखकान्तिकरा लेपाः ।

व्यङ्गेषु चार्जुनत्वग्वा माञ्जिष्ठा वा समाक्षिका ॥४२
लेपः सनवनीता वा श्वेताश्वखुरजा मसी ।
रक्तचन्दनमञ्जिष्ठालोध्रकुष्ठप्रियङ्गवः ॥ ४३ ॥
वटांकुरमसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः
व्यङ्गानां लेपनं शस्तं रुधिरेण शशस्य च ॥ ४४ ॥
मसूरैः सर्पिषा पिष्टैर्लिप्तमास्यं पयोऽन्वितैः ।
सप्ताहाच्च भवेत्सत्यं पुण्डरीकदलप्रभम् ॥ ४५ ॥
मातुलुङ्गजटासर्पिः शिलागोशकृतो रसः ।
मुखकान्तिकरो लेपः पिडकातिलकालजित् ॥४६॥
नवनीतगुडक्षौद्रकोलमज्जप्रलेपनम् ।
व्यङ्गजिद्वरुणत्वग्वा छागक्षीरप्रपेषिता ॥ ४७ ॥
जातीफलकल्कलेपो नीलीव्यङ्गादिनाशनः ।
सायं च कटुतैलेनाभ्यङ्गो वक्त्रप्रसादनः ॥ ४८ ॥

व्यङ्गमें अर्जुनकी छाल अथवा मजीठको पीस शहद मिलाकर लेप करना चाहिये। अथवा मक्खनके साथ सफेद घोड़ेके खुरकी राख लगाना चाहिये। तथा लाल चन्दन, मजीठ, लोध, कूठ, प्रियङ्गु बरगदके अंकुर व मसूरका लेप व्यङ्गको नष्ट करता तथा मुखकी शोभाको बढ़ाता है। तथा खरगोशके रक्तसे व्यङ्गमें लेप करना उत्तम है। इसी प्रकार मसूरको पीस दूध व घीमें मिलाकर मुखमें लेप करनेसे ७ दिनमें कमलके सदृश मुख होता है। तथा बिजौरे निम्बूकी जड़, घी, मैनशिल व गायके गोबरके रसका लेप मुखकी शोभाको बढ़ाता तथा फुन्सियां व तिल आदिको नष्ट करता है। इसी प्रकार मक्खन, गुड़, शहद व बेरकी गुठलीका लेप अथवा वरुणाकी छालको बकरीके दूधमें पीसकर लेप करनेसे मुखकी झांइयां मिटती हैं। तथा जायफलके कल्कका लेप नीली व्यङ्ग आदिको नष्ट करता है। तथा सायंकाल कडुए तैलकी मालिश मुखको प्रसन्न करती है ॥ ४२–४८ ॥

कालीयकादिलेपः ।

कालीयकोत्पलामयदधिसरबदरास्थिमध्यफलिनीभिः।
लिप्तं भवति च वदनं शशिप्रभं सप्तरात्रेण ॥ ४९ ॥

दारुहल्दी, नीलोफर, कूठ, दहीका तोड़, बेरकी गुठलीकी मींगी तथा प्रियङ्गुका लेप करनेसे मुख ७ दिनमें चन्द्रमाके समान शोभायमान होता है ॥ ४९ ॥

यवादिलेपः ।

तुषरहितमसृणयवचूर्णसयष्टिमधुकलोध्रलेपेन ।
भवति मुखं परिनिर्जितचामीकरचारुसौभाग्यम् ५०

छिलके रहित चिकने यवका चूर्ण, मौरेठी और लोधके लेपसे मुख सुवर्णसे अधिक मनोहर होता है ॥ ५० ॥

रक्षोघ्नादिलेपः ।

रक्षोघ्नशर्वरीद्वयमाञ्जिष्ठागैरिकाज्यवस्तपयः ।
सिद्धेन लिप्तमाननमुद्यद्विधुबिम्बवद्भाति ॥ ५१ ॥
सफेद सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ तथा गेरूको घी व

दूधमें मिलाकर बनाये गये लेपको लगानेसे मुख उदय होते हुए चन्द्रमाके समान स्वच्छ होता है ॥ ५१ ॥

दध्यादिलेपः ।

परिणतदधिशरपुङ्खैः
कुवलयदलकुष्ठचन्दनोशीरैः ।
मुखकमलकान्तिकारी
भ्रुकुटीतिलकालकाञ्जयति ॥ ५२ ॥

जमा दही, शरपुंखा, कमलकी पत्ती, कूठ, चन्दन व खशका लेप मुखकी कान्तिको बढ़ाता तथा भौंहोंके तिल आदिको नष्ट करता है ॥ ५२ ॥

हरिद्रादिलेपः ।

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वकालीयककुचन्दनैः ।
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मपद्मककुंकुमैः ॥ ५३ ॥
कपित्थतिन्दुकप्लक्षवटपत्रैः पयोऽन्वितैः ।
लेपयेत्कल्कितैरेभिस्तैलं वाभ्यञ्जनं चरेत् ॥ ५४ ॥
पिप्लवं नीलिकाव्यङ्गांस्तिलकान्मुखदूषिकान् ।
नित्यसेवी जयेत्क्षिप्रं मुखं कुर्यान्मनोरमम् ॥ ५५॥

हल्दी, दारुहल्दी, मौरेठी, दारुहल्दी, लालचन्दन, पुंड़रिया, मजीठ, कमल, पद्माख, केशर, कैथा, तेन्दू, पकरिया तथा वरगदके पत्तोंका दूधके साथ कल्ककर लेप करनेसे अथवा इनसे सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे मशे, नीलिका; व्यङ्ग, तिल, मुहासे आदि शीघ्र नष्ट होते हैं तथा मुख मनोहर होता है ॥ ५३-५५ ॥

कनकतैलम् ।

मधुकस्य कषायेण तैलस्य कुडवं पचेत् ।
कल्कैः प्रियङ्गुमञ्जिष्ठाचन्दनोत्पलकेशरैः ॥ ५६॥
कनकं नाम तत्तैलं मुखकान्तिकरं परम् ।
अभीक्ष्णनीलिकाव्यङ्गशोधनं परमर्चितम् ॥ ५७ ॥

मौरेठीके काढ़े तथा प्रियङ्गु, मजीठ, चन्दन, नीलोफर नागकेशरके कल्कसे सिद्ध तैल मुखकान्तिको बढ़ाता तथा मुहासे, नीलिका, व्यंग आदिको नष्ट करता है। इसे "कनकतैल" कहते हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

मञ्जिष्ठादितैलम् ।

मञ्जिष्ठा चन्दनं लाक्षा मातुलुङ्गं सयष्टिकम् ।
कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा ॥ ५८ ॥
आजं पयस्तद्द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
नीलिकापिडकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥५९ ॥
मुखं प्रसन्नोपचितं वलीपलितवर्जितम् ।
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत्कनकसन्निभम् ॥ ६० ॥

मजीठ, चन्दन, लाख, बिजौरानिम्बू, तथा मौरेठी, प्रत्येक एक तोला, तैल १६ तोला, बकरीका दूध ३२ तो० सबको मिलाकर मन्द आंचसे पकावे । इसकी मालिशसे झांई, फुन्सियां, व्यङ्ग नष्ट होते हैं, मुख प्रसन्न और स्थूल होता है, तथा झुर्रियां व बालोंकी सफेदी नष्ट होती है, सात रातके प्रयोगसे मुख सोनेके समान सुन्दर होता है ॥ ५८-६० ॥

कुंकुमादितैलम् ।

कुङ्कुमं चन्दनं लाक्षा मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका ।
कालीयकमुशीरं च पद्मकं नीलमुत्पलम् ॥ ६१ ॥
न्यग्रोधपादाः प्लक्षस्य शुङ्गाः पद्मस्य केशरम् ।
द्विपञ्चमूलसहितैः कषायैः पलिकैः पृथक् ॥ ६२॥
जलाढके विपक्तव्यं पादशेषमथोद्धरेत् ।
मञ्जिष्ठा मधुकं लाक्षा पतङ्गं मधुयष्टिका ॥ ६३ ॥
कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा ।
अजाक्षीरं तद्द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ६४ ॥
सम्यक्पक्वं परं ह्येतन्मुखवर्णप्रसादनम् ।
नीलिकापिडकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ ६५॥
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत्काञ्चनसन्निभम् ।
कुङ्कुमाद्यमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ६६ ॥

केशर, चन्दन, लाख, मजीठ, मौरेठी, दारु हल्दी, खश, पद्माख, नीलोफर, वरगदकी बौं, पकरियाकी मुलायम पत्ती, कमलका केशर तथा दशमूल प्रत्येक ४ तोलाका काढा ३ सेर १६ तो० जल (द्रवद्वैगुण्यात् ६ सेर ३२ तो०) में पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये । फिर इसी क्वाथमें मजीठ १ तोला, मौरेठी, लाख, पीला चन्दन, मौरेठी प्रत्येक १ तोलाका कल्क तथा तैल १६ तो० और बकरीका दूध दूना मिलाकर मन्द आंचसे पकाना चाहिये । अच्छी तरह पका हुआ यह मुखके वर्णको उत्तम करता है । झांई, फुन्सियां, व्यङ्ग आदिको मालिशसे नष्ट करता है । सात रातके प्रयोगसे मुख सोनेके समान उत्तम होता है । यह "कुंकुमादि" तैल पहिले पहिल अश्विनीकुमारने बनाया था * ॥ ६१-६६ ॥

---

* यहांपर इसी तैलके अनन्तर एक दूसरा तैल भी **द्वितीय कुंकुमादि**के नामसे है । यह पूर्व तैलका एक बहुत छोटा अंश है । यथा,—" कुंकुमं चन्दनं लाक्षा मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका । कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं पचेत् ॥ " शेष प्रथमके ६४, ६५, ६६, के अनुसार अर्थात् केवल केशर, चन्दन, लाख, मजीठ, मौरेठी इनके १ तो० की मात्रासे कल्क छोड़कर एक कुडव तैल, २ कुडव बकरीका दूध और २ कुडव जल मिलाकर पकाना चाहिये । हम इसे "लघुकुंकुमादि" कह सकते हैं ॥

द्वितीयं कुङ्कुमादितैलम् ।

कुङ्कुमं किंशुकं लाक्षा मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम् ।
कालीयकं पद्मकं च मातुलुङ्गस्य केशरम् ॥ ६७ ॥
कुसुम्भं मधुयष्टीकं फलिनी मदयन्तिका ।
निशे द्वे रोचना पद्ममुत्पलं च मनःशिला ॥ ६८॥
काकोल्यादिसमायुक्तैरेतैरक्षसमैर्भिषक् ।
लाक्षारसपयोभ्यां च तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६९ ॥
कुङ्कुमाद्यमिदं तैलमभ्यङ्गात्काञ्चनोपमम् ।
करोति वदनं सद्यः पुष्टिलावण्यकान्तिदम् ।
सौभाग्यलक्ष्मीजननं वशीकरणमुत्तमम् ॥ ७० ॥

केशर, ढाकके, फूल, लाख, मजीठ, लालचन्दन, दारुहल्दी पद्माख, विजौरे निम्बूका केशर, कुसुम, मौरेठी, प्रियंगु, चमेली, हल्दी, दारुहल्दी, गोरोचन, कमल, नीलोफर, मैनशिल तथा काकोल्यादि गणकी औषधियां प्रत्येक १ तोले लाखका रस तथा दूध तैलसे चतुर्गुण मिलाकर तैल १२८ तोला छोड़कर पकाना चाहिये । यह "कुंकुमादि तैल" मालिश करनेसे मुखको कमलके समान बनाता तथा पुष्टि, मनोहरता, कांति, सौभाग्य व लक्ष्मीको बढ़ाता तथा उत्तम वशीकरण है ॥ ६७–७० ॥

वर्णकं घृतम् ।

मधुकं चन्दनं कङ्गु सर्षपं पद्मकं तथा ।
कालीयकं हरिद्रा च लोध्रमेभिश्च कल्कितैः ॥७१॥
विपचेद्धि घृतं वैद्यस्तत्पक्वं वस्त्रगालितम् ।
पादांशं कुङ्कुमं सिक्थं क्षिप्त्वा मन्दानले पचेत्॥७२
तत्सिद्धं शिशिरे नीरे प्रक्षिप्याकर्षयेत्ततः ।
तदेतद्वर्णकं नाम घृतं वर्णप्रसादनम् ॥ ७३ ॥
अनेनाभ्यासलिप्तं हि वलीभूतमपि क्रमात् ।
निष्कलङ्केन्दुबिम्बाभं स्याद्विलासवतीमुखम् ॥ ७४॥

मौरेठी, चन्दन, कांकुन, सरसों, पद्माख, तगर, हल्दी तथा लोधके कल्कको छोड़कर घीको पकावे । फिर उसे छानकर चतुर्थांश केशर व मोम मिलाकर मन्द आंचसे पकावे । फिर इसे ठण्डे जलमें छोड़कर निकाल लेवे । यह "वर्णक" नाम घृत वर्णको उत्तम बनाता है । इसे नियमसे लगानेसे स्त्रियोंका मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर होता है ॥ ७१–७४ ॥

अरूंषिकाचिकित्सा ।

अरूंषिकायां रुधिरेऽवसिक्ते
शिराव्यधेनाथ जलौकसा वा ।
निम्बाम्बुसिक्तैः शिरसि प्रलेपो
देयोऽश्ववर्चोरससैन्धवाभ्याम् ॥ ७५ ॥
पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य वा ।
मूत्रपिष्टं प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरूंषिकाम् ॥ ७६ ॥
अरूंषिन्नं भृष्टकुष्ठचूर्णं तैलेन संयुतम्।

अरूषिकाओंमें शिराव्यध अथवा जोंकोंसे रक्त निकाल नीमके जलका सिञ्चनकर घोड़ेकी लीदके रस तथा सेंधानमकसे लेप करना चाहिये । अथवा पुराना पीना अथवा मुर्गेकी विष्ठाको मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे फुन्सिया दूर होती हैं । इसी प्रकार भुने कूठके चूर्णको तैलमें मिलाकर लेप करनेसे अरूंषिका नष्ट होती है ॥ ७५–७६ ॥–

हरिद्राद्वयतैलम् ।

हरिद्राद्वयभूनिम्बात्रिफलारिष्टचन्दनैः ।
एतत्तैलमरूंषीणां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥ ७७ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, चिरायता, आंवला, हर्र, बहेड़ा, नीमकी छाल, चन्दनके कल्कमें सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे अरूंषिकाएँ नष्ट होती हैं ॥ ७७ ॥

दारुणाचिकित्सा ।

दारुणे तु शिरां विध्येत्स्निग्धां स्विन्नां ललाटजाम् ।
अवपीडशिरोवस्तीनभ्यङ्गांश्चावचारयेत् ॥ ७८ ॥
कोद्रवाणां तृणक्षारपानीयं परिधावने ।
कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ॥ ७९ ॥
प्रियालबीजमधुककुष्ठमिश्रैः ससैन्धवैः ।
काञ्जिकस्थास्त्रिसप्ताहं माषा दारुणकापहाः ॥८०॥

दारुण रोगमें स्नेहन व स्वेदन कर मस्तककी शिराका व्यध करना चाहिये । तथा अवपीडक नस्य, शिरोवस्ति और मालिश भी करनी चाहिये । धोनेके लिये कोदवके क्षार जलका प्रयोग करना चाहिये । तथा चिरौंजी, मौरेठी, कूठ व सेंधानमकको पीसकर शहदके साथ सिरमें लेप करना चाहिये । इसी प्रकार काञ्जीमें उड़द भिगो पीसकर २१ दिनतक लगानेसे दारुण रोग नष्ट होता है ॥ ७८–८० ॥

नीलोत्पलादिलेपः ।

सह नीलोत्पलकेशरयष्टीमधुकतिलैःसदृशमामलकम् ।
चिरजातमपि च शीर्षे दारुणरोगं शमं नयति ॥८१ ॥

नीलोफर, नागकेशर, मौरेठी, तिल तथा सबके समान आंवला मिलाकर लेप करनेसे पुराना दारुण रोग नष्ट होता है ॥ ८१ ॥

त्रिफलादितैलम् ।

त्रिफलाया रजो मांसी मार्कवोत्पलशारिवैः ।
ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गाद्दारुणकं जयेत् ॥८२॥

त्रिफलाका चूर्ण, जटामांसी, भांगरा, नीलोफर, शारिवा तथा सेंधानमकसे सिद्ध तैल रूक्षिका फिहासको नष्ट करता है ॥ ८२ ॥

चित्रकादितैलम् ।

चित्रकं दन्तिमूलं च कोपातकीसमन्वितम् ।
कल्कं पिष्ट्वा पचेत्तैलं केशदद्रुविनाशनम् ॥ ८३ ॥

चीतकी जड़, दन्तीकी जड़, तथा कड़ुई तोरईका कल्क छोड़कर सिद्ध तैल बालोंके दादको नष्ट करता है ॥ ८३॥

गुञ्जातैलम् ।

गुञ्जाफलैः शृतं तैलं भृङ्गराजरसेन तु ।
कण्डूदारुणहृत्कुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥ ८४ ॥

गुञ्जाके कल्क और भांगरेके रससे सिद्ध तैल खुजली, दारुण, कुष्ठ और कपाल व्याधिको नष्ट करता है ॥ ८४ ॥

भृंगराजतैलम् ।

भृङ्गरजस्त्रिफलोत्पलशारि
लौहपुरीषसमन्वितकारि ।
तैलमिदं पच दारुणहारि
कुञ्चितकेशघनस्थिरकारि ॥ ८५ ॥

भांगरा, त्रिफला, नीलोफर, सारिवा, लोहकिट्ट इन सबके कल्कमें तैलको छोड़कर पकाना चाहिये । यह दारुणको नष्ट करता तथा बालोंको घन, स्थिर तथा घुंघुराले बनाता है ॥ ८५ ॥

प्रतिमर्शतैलम् ।

प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः ।
कार्षिकैस्तैलकुडवं तैर्द्विरामलकीरसः ॥ ८६ ॥
साध्यः स प्रतिमर्शः स्यात्सर्वशीर्षगदापहः ।

पुण्डरिया, मौरेठी, छोटी पीपल, चन्दन व नीलोफर प्रत्येक एक तोला, तैल १६ तोला तथा आंवलेका रस ३२ तोला मिलाकर पकाना चाहिये । इस प्रतिमर्शका नस्य लेनेसे समस्त शिरोरोग नष्ट होते हैं ॥ ८६ ॥

इन्द्रलुप्तचिकित्सा ।

मालतीकरवीराग्निनक्तमालविपाचितम् ॥ ८७ ॥
तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तापहं परम् ।
इदं हि त्वरितं हन्ति दारुणं नियतं नृणाम् ॥ ८८ ॥
धात्र्याम्रमज्जलेपात्स्यात्स्थिरता स्निग्धकेशता ।
इन्द्रलुप्ते शिरां विद्ध्वा शिलाकासीसतुत्थकैः ॥८९॥
लेपयेत्परितः कल्कैस्तैलं चाभ्यञ्जने हितम् ।
कुटन्नटशिखीजातीकरञ्जकरवीरजैः ॥ ९० ॥
अवगाढपदं चैव प्रच्छायित्वा पुनः पुनः ।
गुञ्जाफलैश्चिरं लिम्पेत्केशभूमिं समन्ततः ॥ ९१ ॥
हस्तिदन्तमसीं कृत्वा मुख्यं चैव रसाञ्जनम् ।
लोमान्यनेन जायन्ते नृणां पाणितलेष्वपि ॥ ९२ ॥
भल्लातकबृहतीफलगुञ्जामूलफलेभ्य एकेन ।
मधुसहितेन विलिप्तं सुरपतिलुप्तं शमं याति ॥ ९३॥
बृहतीफलरसपिष्टं गुञ्जाफलमूलं चेन्द्रलुप्तस्य ।
कनकनिघृष्टस्य सतो दातव्यं प्रच्छितस्य सदा ९४॥
घृष्टस्य कर्कशैः पत्रैरिन्द्रलुप्तस्य गुण्डनम् ।
चूर्णितैर्मरिचैः कार्यमिन्द्रलुप्तनिवारणम् । ९५ ॥

मालती, कनेर, चीतकी जड़ तथा कञ्जासे सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे इन्द्रलुप्त नष्ट होता है । यह तैल दारुणको शीघ्र ही नष्ट करता है । इसी प्रकार आंवला और आमकी गुठलीका लेप करनेसे बाल मजबूत तथा चिकने होते हैं । इन्द्रलुप्तमें शिराव्यध कर मैनशिल, कसीस और तूतियाका लेप करना चाहिये । तथा केवटीमोथा, लटजीरा, चमेली, कञ्जा व कनेरसे सिद्ध तैल लगाना चाहिये । तथा गाढ़ पछने लगाकर बार बार गुञ्जाफलका लेप करना चाहिये । हाथीदांतकी भस्म बना रसाञ्जन मिला लगानेसे हाथके तलुओंमें भी बाल जमते हैं । भिलावां, बड़ी कटेरीका फल, गुञ्जाकी जड़ अथवा फल इनमेंसे किसी एकको शहद मिलाकर लेप करनेसे इन्द्रलुप्त नष्ट होता है । सुवर्णद्वारा खुरचे अथवा पछने लगाये इन्द्रलुप्त (बालोंके गिरने,) में बड़ी कटेरीके रसमें पीसे गुञ्जामूल व फलको लगानेसे इन्द्रलुप्त नष्ट होता है । अथवा कड़े पत्तोंसे खुरचकर काली मिर्चका चूर्ण उर्रानेसे इन्द्रलुप्त नष्ट होता है ॥ ८७–९५ ॥

छागीक्षीरादिलेपद्वयम् ।

छागक्षीररसाञ्जनपुटदग्धगजेन्द्रदन्तमसिलिप्ताः ।
जायन्ते सप्तरात्रात् खल्ल्यामपि कुञ्चिताश्चिकुराः ॥९६
मधुकेन्दीवरमूर्वातिलाज्यगोक्षीरभृङ्गलेपेन ।
अचिराद्भवन्ति केशा घनदृढमूलायता ऋजवः ॥९७॥

बकरीका दूध, रसौंत पुटमें जलाई हाथीदांतकी स्याहीका लेप करनेसे ७ दिनमें खल्वाटके भी घन केश उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार मौरेठी, नीलोफर, मूर्वा, तिल, घी, गायका दूध, भांगरा इनका लेप करनेसे बाल घने, दृढ़मूल, लम्बे तथा सीधे होते हैं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

स्नुह्याद्यं तैलम् ।

स्नुहीपयः पयोऽर्कस्य मार्कवो लाङ्गलीविषम् ।
मूत्रमाजं सगोमूत्रं रक्तिका सेन्द्रवारुणी ॥ ९८ ॥
सिद्धार्थं तीक्ष्णतैलं च गर्भं दत्त्वा विपाचितम् ।
वह्निना मृदुना पक्वं तैलं खालित्यनाशनम् ॥ ९९ ॥

कूर्मपृष्ठसमानापि रुह्या या रोमतस्करी।
दिग्धा सानेन जायेत ऋक्षशारीरलोमशा ॥ १००॥

सेहुण्डका दूध, आकका दूध, भांगरा, कलिहारी, सींगिया, बकरीका मूत्र, गोमूत्र, गुञ्जा, इन्द्रायण तथा सरसोंका कल्क छोड़कर सिद्ध किया गया सरसोंका तैल खालित्यको नष्ट करता है। कछुवेकी पीठके समान लोमरहित रुह्या इसकी मालिशसे ऋक्षके समान बालोंसे युक्त होती है॥ ९८–१०० ॥

आदित्यपाकतैलम्।

वटावरोहकेशिन्योश्चूर्णेनादित्यपाचितम्।
गुडूचीस्वरसे तैलं चाभ्यङ्गात्केशरोपणम्॥ १०१ ॥

बरगदकी वौं व जटामांसीके चूर्णसे युक्त किये गुर्चके स्वरसमें सूर्य्यकी किरणोंसे पकाये तैलकी मालिश करनेसे बालोंको उत्पन्न करता है॥ १०१॥

चन्दनादितैलम्।

चन्दनं मधुकं मूर्वा त्रिफला नीलमुत्पलम्।
कान्ता वटावरोहश्च गुडूची बिसमेव च॥ १०२ ॥
लोहचूर्णं तथा केशी शारिवे द्वे तथैव च।
मार्कवस्वरसेनैव तैलं मृद्वग्निना पचेत्॥ १०३ ॥
शिरस्युत्पतिताः केशा जायन्ते घनकुञ्चिताः।
दृढमूलाश्च स्निग्धाश्च तथा भ्रमरसन्निभाः।
नस्येनाकालपलितं निहन्यात्तैलमुत्तमम्॥ १०४ ॥

चन्दन, मौरेठी, मूर्वा, त्रिफला, नीलोफर, प्रियङ्गु, वटकी वौं, गुर्च, कमलके तन्तु, लोहचूर्ण, जटामांसी, शारिवा तथा काली शारिवाके कल्क और भांगरेकेस्वरससे मन्द आंचसे पकाया गया तैल मालिशसे शिरके उखड़े बालोंको घने घुंघुराले, चिकने, भ्रमरके समान काले तथा दृढमूल बनाता है। इसके नस्यसे अकालपलित नष्ट होता है॥ १०२–१०४ ॥

यष्टीमधुकतैलम्।

तैलं सयष्टीमधुकैः क्षीरे धात्रीफलैः शृतम्।
नस्ये दत्तं जनयति केशान्श्मश्रूणि चाप्यथ॥१०५॥

मौरेठी व आंवलेके कल्क तथा दूधमें पकाये तैलका नस्य लेनेसे बालों तथा मूछोंको उत्पन्न करता है॥ १०५॥

कृष्णीकरणम्।

त्रिफला नीलिनीपत्रं लोहं भृङ्गरजःसमम्।
अविमूत्रेण संयुक्तं कृष्णीकरणमुत्तमम्॥ १०६ ॥

त्रिफला, नीलकी पत्ती, लौह तथा भांगराको भेड़के मूत्रमें मिलाकर लेप करनेसे बाल काले होते हैं॥ १०६ ॥

अपरं कृष्णीकरणम्।

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तं लोहचूर्णं विनिक्षिपेत्।
ईषत्पक्वे नारिकेले भृङ्गराजरसान्विते॥ १०७ ॥
मासमेकं तु निक्षिप्य सम्यग्गर्भात्समुद्धरेत्।
ततः शिरो मुण्डयित्वा लेपं दद्याद्भिषग्वरः॥१०८॥
संवेष्ट्य कदलीपत्रैर्मोचयेत्सप्तमे दिने।
क्षालयेत्त्रिफलाक्वाथैः क्षीरमांसरसाशिनः॥ १०९
कपालरञ्जनं चैतत्कृष्णीकरणमुत्तमम्।

कुछ पके नरियलमें भांगरेका रस छोड़कर त्रिफलाचूर्ण व लौहचूर्ण छोड़ बन्दकर गढ़ेमें गाड़ देना चाहिये। एक मासके अनन्तर निकालकर शिरका मुण्डन करा लेप करना चाहिये। ऊपरसे केलेके पत्तेको लपेटकर बांध देना चाहिये। फिर ७ दिनके बाद खोलकर त्रिफलाके काढ़ेसे धोना चाहिये। दूध तथा मांसरसका भोजन करना चाहिये। यह शिर तथा बालोंको काला करता है अर्थात् एक प्रकारका खिजाब है॥ १०७–१०९॥

अपरे योगाः।

उत्पलं पयसा सार्धं मासं भूमौ निधापयेत्॥११०॥
केशानां कृष्णकरणं स्नेहनं च विधीयते।
भृङ्गपुष्पं जपापुष्पं मेषीदुग्धप्रपेषितम्॥ १११ ॥
तेनैवालोडितं लौहपात्रस्थं भूम्यधःकृतम्।
सप्ताहादुद्धृतं पश्चाद् भृङ्गराजरसेन तु॥ ११२ ॥
आलोड्याभ्यज्य च शिरो वेष्टयित्वा वसेन्निशाम्।
प्रातस्तु क्षालनं कार्यमेवं स्यान्मूर्धरञ्जनम्।
एवं सिन्दूरबालाम्रशङ्खभृङ्गरसैः क्रिया॥११३॥

नीलोफर दूधके साथ महीनेभर पृथिवीमें गाड़कर लेप करनेसे बाल काले तथा चिकने होते हैं। इसी प्रकार भाङ्गराके फूल व जपाके फूल, भेड़के दूधमें पीस उसीमें मिला लोहेके वर्तनमें पृथिवीके अन्दर गाड़ सात दिनमें निकालकर भांगरेके रसमें मिलाकर मालिश करना चाहिये और पत्तोंसे लपेट देना चाहिये। प्रातःकाल धोना चाहिये। इस प्रकार शिर काला होता है। इसी प्रकार सिन्दूर, कच्चे आमकी गुठली व शंखको यथाविधि साधित कर भांगरेके रससे क्रिया करनी चाहिये॥ ११०–११३॥

शङ्खचूर्णप्रयोगः।

नवदग्धशङ्खचूर्णं
काञ्जिकसिक्तं हि सीसकं घृष्ट्वा।
लेपात्कचानर्कदलै-
र्वेद्धान्करोति हि नीलतरान्॥ ११४ ॥

नवीन शंखभस्मको काञ्जीमें डुबोकर शीसा घिसकर बालोंमें लगा ऊपरसे आकके पत्ते बांधनेसे सफेद बाल अतिशय नील होते हैं॥ ११४॥

स्नानम् ।

लोहमलामलकल्कैः सजवाकुसुमैर्नरः सदा स्नायी ।
पलितानीह न पश्यति गङ्गास्नायीव नरकाणि ॥११५॥

लोहकिट्ट, आंवला तथा जपापुष्पके कल्ककी मालिश कर जलसे स्नान करनेसे गंगास्नानसे पातकोंके समान बालोंकी सफेदी नष्ट हो जाती है ॥ ११५ ॥

निम्बबीजयोगः ।

निम्बस्य बीजानि हि भावितानि
भृङ्गस्य तोयेन तथाशनस्य ।
तैलं तु तेषां विनिहन्ति नस्याद्
दुग्धान्नभोक्तुः पलितं समूलम् ॥ ११६ ॥

नीमके बीजोंको भांगरेके क्वाथ तथा विजैसारके क्वाथकी भावना देनेके अनन्तर निकाले गये तैलका नस्य लेनेसे तथा दूध भातका पथ्य लेनेसे सफेद बाल काले हो जाते हैं ॥ ११६ ॥

निम्बतैलयोगः ।

निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव
नस्ये निषिक्तं विधिना यथावत् ।
मासेन गोक्षीरभुजो नरस्य
जराप्रभूतं पलितं निहन्ति ॥ ११७ ॥

नीमके तैलका एक मासतक नस्य लेने तथा गोदुग्धका पथ्य लेनेसे सफेद बाल काले होते हैं ॥ ११७ ॥

क्षीरादितैलम् ।

क्षीरात्समार्कवरसाद् द्विप्रस्थे मधुकात्पले ।
तैलस्य कुडवं पक्वं तन्नस्यं पलितापहम् ॥ ११८ ॥

दूध व भांगरेका रस दोनों मिलकर २ प्रस्थ, मौरेठी २ पल, तैल १ कुड़व पकाकर नस्य लेनेसे पलित नष्ट होता है ॥ ११८ ॥

महानीलं तैलम् ।

आदित्यवल्लिमूलानि कृष्णशैरीयकस्य च ।
सुरसस्य च पत्राणि फलं कृष्णशणस्य च ॥११९॥
मार्कवं काकमाची च मधुकं देवदारु च ।
पृथग्दशपलांशानि पिप्पली त्रिफलाञ्जनम् ॥१२०॥
प्रपौण्डरीकं माञ्जिष्ठा लोध्रं कृष्णागुरूत्पलम् ।
आम्रास्थिकर्दमः कृष्णो मृणाली रक्तचन्दनम् ॥१२१॥
नीलीभल्लातकास्थीनि कासीसं मदयन्तिका ।
सोमराज्यशनः शस्त्रं कृष्णौ पिण्डीतचित्रकौ ॥१२२॥
पुष्पाण्यर्जुनकाश्मर्योरम्राम्रजम्बूफलानि च ।
पृथक्पञ्चपलैर्भागैः सुपिष्टैराढकं पचेत् ॥ १२३ ॥
वैभीतकस्य तैलस्य धात्रीरसचतुर्गुणम् ।
कुर्याद्वादित्यपाकं वा यावच्छुष्को भवेद्रसः॥१२४॥
लोहपात्रे ततः पूतं संशुद्धमुपयोजयेत् ।
पाने नस्यक्रियायां च शिरोऽभ्यंगे तथैव च॥१२५॥
एतच्चक्षुष्यमायुष्यं शिरसः सर्वरोगनुत् ।
महानीलमिति ख्यातं पलितघ्नमनुत्तमम् ॥ १२६ ॥

सूर्यमुखीकी जड़, काले कटसैलाकी जड़, तुलसीकी पत्ती, काले सनके फल, भांगरा, मकोय, मौरेठी, तथा देवदारु प्रत्येक दश पल, छोटी पीपल, त्रिफला रसौंत, पुण्डरिया, मजीठ, लोध, काला अगर, नीलोफर, आमकी गुठली, काला कीचड़, कमल, लाल चन्दन, नील, भिलावेकी गुठली, काशीस, बेला, बकुची, विजैसार, तीक्ष्ण लौहभस्म, काला मैनफल, काली चीत, अर्जुन व खम्भारके फूल तथा आम व जामुनके फल, फुल्की गुठली प्रत्येक ५ पल पीसकर एक आढक बहेड़ेका तैल, ४ आढक आंवलेका रस मिलाकर पकाना चाहिये । अथवा सूर्यकी किरणोंसे रसको सुखा लेना चाहिये । फिर लोहेके बर्तनमें छानकर पीने, नस्य तथा मालिशसे उपयोग करना चाहिये । यह नेत्रोंके लिये हितकर, आयुको बढानेवाला तथा शिरके सब रोगोंको नष्ट करता है । इसे "महानील" तैल कहते हैं । यह पलितरोगको नष्ट करता है ॥ ११९–१२६ ॥

पलितघ्नं घृतम् ।

भृङ्गराजरसे पक्वं शिखिपित्तेन कल्कितम् ।
घृतं नस्येन पलितं हन्यात्सप्ताहयोगतः ॥ १२७ ॥

भांगरेके रसमें मयूरके पित्तके कल्कको छोड़कर सिद्ध घृतका नस्य लेनेसे ७ दिनमें पलित नष्ट होता है॥ १२७ ॥

शेलुकतैलम् ।

काञ्जिकपिष्टशेलुफलमज्जि सच्छिद्रलोहगे ।
यदर्कतापात्पतति तैलं तन्नस्यम्रक्षणात् ॥ १२८ ॥
केशा नीलालिसङ्काशाःसद्यःस्निग्धा भवन्ति च ।
नयनश्रवणग्रीवादन्तरोगांश्च हन्त्यदः ॥१२९ ॥

काञ्जीमें पीसी लसोढेके फलकी मज्जाको छिद्रयुक्त लोहपात्रमें भरकर सूर्यकी किरणोंसे तपकर जो तैल नीचे गिरता है, उसके नस्य तथा मालिशसे बाल नील भँवरोंके सदृश काले तथा चिकने होते हैं तथा नेत्र, कान, गर्दन और दन्तोंके रोग नष्ट होते हैं ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

वृषणकच्छ्वादिचिकित्सा ।

कासीसं रोचनातुल्यं हरितालं रसाञ्जनम् ।
अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं वृषकच्छ्वहिपूतयोः ॥१३०॥

काशीस, गोरोचन, हरिताल तथा रसौतको समान भाग ले काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे वृषणकच्छ्र तथा अहिपूतना नष्ट होती है ॥ १३० ॥

पटोलादिघृतम् ।

पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम् ।
पीतं घृतं निहन्त्याशु कृच्छ्रामप्यहिपूतनाम् ॥१२१

परवलकी पत्ती, त्रिफला तथा रसौतसे सिद्ध घृतको पीनेसे अहिपूतना नष्ट होती है ॥ १२१ ॥

शूकरदंष्ट्रकचिकित्सा ।

रजनीमार्कवमूलं पिष्टं शीतेन वारिणा तुल्यम् ।
हन्ति विसर्पं लेपाद्वराहदशनाह्वयं घोरम् ॥ १३२॥

हल्दी व भांगरेकी जड़ दोनों समान भाग ले ठण्ढे जलमें पीसकर लेप करनेसे घोर शूकरदंष्ट्रक रोग नष्ट होता है ॥ १३२ ॥

पाददाहचिकित्सा ।

नागकेशरचूर्णं वा शतधौतेन सर्पिषा ।
पिष्ट्वा लेपो विधातव्यो दाहे हर्षे च पादयोः॥१३३

नागकेशरके चूर्णको १०० बार धोये हुए घीमें मिलाकर पाददाह तथा पादहर्षमें लगाना चाहिये ॥ १३३ ॥

इति क्षुद्ररोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ मुखरोगाधिकारः ।

वातजौष्ठरोगचिकित्सा ।

ओष्ठप्रकोपे वातोत्थे शाल्वणेनोपनाहनम् ।
मस्तिष्के चैव नस्ये च तैलं वातहरैः शृतम् ।
स्वेदोऽभ्यङ्गः स्नेहपानं रसायनमिहेष्यते ॥ १ ॥

वातज ओष्ठकोपमें शाल्वणस्वेदकी ओषधियोंसे पुल्टिस बान्धनी चाहिये । तथा वातनाशक ओषधियोंसे सिद्ध तैलको शिरमें लगाना तथा नस्य लेना चाहिये । और पसीना निकालना, मालिश करना, स्नेहपान तथा रसायन सेवन इसमें हितकर है ॥ १ ॥

श्रीवेष्टकादिलेपः ।

श्रीवेष्टकं सर्जरसं गुग्गुलुं सुरदारु च ।
यष्टीमधुकचूर्णं च विदध्यात्प्रतिसारणम् ॥ २ ॥

गन्धाविरोजा, राल, गुग्गुलु, देवदारु और मौरेठीके चूर्णको ओठोंपर लगाना चाहिये ॥ २ ॥

पित्तजचिकित्सा ।

वेधं शिराणां वमनं विरेकं
तिक्तस्य पानं रसभोजनं च ।
शीतान्प्रलेपान्परिषेचनं च
पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥ ३ ॥

पित्तरक्ताभिघातोत्थाञ्जलौकाभिरुपाचरेत् ।
पित्तविद्रधिवच्चापि क्रियां कुर्यादशेषतः ॥ ४ ॥

पित्तयुक्त ओष्ठोंमें शिराव्यध, वमन, विरेचन, तिक्त रस सेवन, मांसरसका भोजन, शीतल लेप तथा सिञ्चन करना चाहिये । और पित्तरक्त तथा अभिघातजन्य ओष्ठरोगमें जोंक लगाकर तथा पित्तविद्रधिके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

कफजचिकित्सा ।

शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवलधारणम् ।
हृतरक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे कफात्मके ॥ ५ ॥
त्रिकटुः सर्जिकाक्षारः क्षारश्च यावशूकजः ।
क्षौद्रयुक्तं विधातव्यमेतच्च प्रतिसारणम् ॥ ६ ॥

कफात्मक ओष्ठरोगमें रक्त निकालनेके अनन्तर शिरोविरेचन, धूम, स्वेद, कवल धारण करने चाहियें । तथा त्रिकटु, सज्जीखार व जवाखारके चूर्णको शहद मिलाकर लगाना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

मेदोजचिकित्सा ।

मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनो हितः ॥
प्रियङ्गुत्रिफलालोध्रं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ।
हितं च त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं प्रलेपनम् ॥ ७ ॥
सर्जरसकनकगैरिकधन्याकघृततैलसिन्धुसंयुक्तम् ।
सिद्धं सिक्थकमधरे स्फुटितोच्चटितं व्रणं हरति॥८॥

मेदोज ओष्ठरोगमें स्वेदन भेदन तथा शोधन अग्नि ताप करना चाहिये और प्रियंगु त्रिफला व लोधके चूर्णको शहदके साथ लगाना चाहिये । अथवा त्रिफलाके चूर्णको शहदमें मिलाकर लगाना चाहिये । तथा राल, सुनहरा गेरू, धनियां, घी, तैल, सेंधानमक तथा मोम इनका यथाविधि पाक कर लगानेसे ओष्ठका फटना व पपड़ी पड़ना नष्ट होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

शीतादचिकित्सा ।

शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान् ।
निःक्वाथ्य त्रिफलां चापि कुर्याद्गण्डूषधारणम् ॥९॥
प्रियङ्गवश्च मुस्ता च त्रिफला च प्रलेपनम्॥ १० ॥

---

१ " सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः । कण्डूमाञ्ज्वरकारी च स स्याच्छूकरदंष्ट्रकः " ॥

शीताद नामके दन्तरोगमें, रक्तको निकालकर जलके साथ सोंठ, सरसों और त्रिफलाका क्वाथ कर गण्डूष धारण करना चाहिये । तथा प्रियंगु त्रिफला और मोथाका लेप करना चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥

रक्तस्रावचिकित्सा ।

कुष्ठं दार्वभिन्दलोध्रं समङ्गा
पाठा तिक्ता तेजनी पीतिका च ।
चूर्णं शस्तं घर्षणं तद्द्विजानां
रक्तस्रावं हन्ति कण्डूं रुजां च ॥ ११ ॥

कूठ, दारुहल्दी, नागरमोथा, लोध, लज्जालु, पाठ, कुटकी, चव्य तथा हल्दीके चूर्णको दांतोंमें घिसनेसे रक्तस्राव, खुजली व पीड़ा नष्ट होती है ॥ ११ ॥

चलदन्तस्थिरीकरणम् ।

चलदन्तस्थिरकरं कार्यं बकुलचर्वणम् ।
आर्तगलदलक्वाथगण्डूषो दन्तचालनुत् ॥ १२ ॥
दन्तचाले हितं श्रेष्ठं तिलोग्राचर्वणं सदा ।
दन्तपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् ॥ १३ ॥
सपञ्चलवणः क्षारः सक्षौद्रः प्रतिसारणम् ।
दन्तानां तोदहर्षे च वातघ्नाः कवला हिताः ॥१४॥
दन्तचाले तु गण्डूषो बकुलत्वक्कृतो हितः ।

मौलसिरीकी छालको चावना हिलते दाँतोंको मज़बूत करता है । तथा नीले कटसैलेकी पत्तीके क्वाथका गण्डूष धारण करनेसे दाँतोंका हिलना वन्द होता है तथा दाँतोंके हिलनेमें तिल व वचको चवाना हितकर है । नवीन दन्त पुप्पुटकमें रक्तमोक्षण करना चाहिये । तथा पांचों नमक और क्षारके चूर्णको शहद मिलाकर लगाना चाहिये । दाँतोंके दर्द व गुंठलानेमें वातनाशक कवल हितकर है । तथा दांतोंके हिलनेमें मौलसिरीकी छालके क्वाथका गण्डूप धारण करना चाहिये ॥ १२–१४ ॥

दन्तशूलचिकित्सा ।

माक्षिकं पिप्पलीसर्पिर्मिश्रितं धारयेन्मुखे ॥ १५ ॥
दन्तशूलहरं प्रोक्तं प्रधानमिदमौषधम् ।
विस्राविते दन्तवेष्टे व्रणं तु प्रतिसारयेत् ॥ १६ ॥
लोध्रपत्तंगमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधूत्तरैः ।
गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः ॥१७॥

शहद, छोटी पीपल व घीको मिलाकर मुखमें रखना चाहिये । यह दन्तशूलको नष्ट करनेमें प्रधान औषधि है । तथा दन्तवेष्टके रक्तको निकालकर घावमें लोध, पीला चन्दन, मौरेठी व लाखके चूर्णको शहद मिलाकर लगाना चाहिये और गण्डूप धारणके लिये क्षीरी वृक्षोंके कषायमें शहद, घी व शक्कर मिलाकर प्रयोग करना चाहिये ॥ १५–१७ ॥

शैशिरचिकित्सा ।

शैशिरे हृतरक्ते च लोध्रमुस्तरसाञ्जनैः ।
सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः॥१८॥

दांतोंके शैशिररोगमें रक्त निकालकर शहदके साथ लोध, नागरमोथा और रसौंतका लेप करना चाहिये और दूधवाले वृक्षोंका गंडूप धारण करना चाहिये ॥ १८ ॥

परिदरोपकुशचिकित्सा ।

क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः ।
संशोध्योभयतः कार्यं शिरश्चोपकुशे ततः ॥ १९ ॥
काकोदुम्बरिकागोजीपत्रैर्विस्रावयेद् भिषक् ।
क्षौद्रयुक्तैश्च लवणैः सव्योषैः प्रतिसारयेत् ॥ २० ॥
पिप्पल्यः सर्षपाः श्वेता नागरं नैचुलं फलम् ।
सुखोदकेन संगृह्य कवलं तस्य योजयेत् ॥ २१ ॥

परिदरमें शीतादोक्त चिकित्सा करनी चाहिये । तथा उपकुशमें वमन, विरेचन तथा नस्यसे शोधन कर कठूमर या गोजिह्वाके पत्तोंसे खुरच कर रक्त निकालना चाहिये । फिर शहदमें त्रिकटु और पांचों नमकोंको मिलाकर लगाना चाहिये । तथा छोटी पीपल, सरसों, सोंठ व समुद्रफलको गुनगुने जलमें मिलाकर कवल धारण कराना चाहिये ॥ १९–२१ ॥

दन्तवैदर्भचिकित्सा ।

शस्त्रेण दन्तवैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत् ।
ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः॥२२॥

दन्तवैदर्भमें शस्त्रसे दन्तमूलको शोध कर क्षार लगाना चाहिये । तथा समस्त शीतल चिकित्सा करनी चाहिये ॥२२॥

अधिकदन्तचिकित्सा ।

उद्धृत्याधिकदन्तं तु ततोऽग्निमवचारयेत् ।
क्रिमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्यो विजानता ॥ २३॥

अधिक दांतको उखाड़ कर अग्निसे जला देना चाहिये तथा इसमें क्रिमिदन्तकेसमान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २३ ॥

अधिमांसचिकित्सा ।

छित्त्वाऽधिमांसं सक्षौद्रैरेतैश्चूर्णैरुपाचरेत् ।
पाठावचातेजोवतिसर्जिकायावशूकजैः ।
क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः कवलश्चात्र कीर्तितः॥२४॥
पटोलनिम्बत्रिफलाकषायश्चात्र धावने ।
शिरोविरेकश्च हितो धूमो वैरेचनश्च यः ॥ २५ ॥

अधिमांसको काटकर शहदके साथ पाढ, वच, चव्य सज्जीखार तथा जवाखारके चूर्णको लगाना चाहिये तथा पीपलको शहदके साथ मिलाकर कवल धारण करना चाहिये । इसमें धोनेके लिये परवल नीम व त्रिफलाके काढ़ेको काममें लाना चाहिये । तथा शिरोविरेचन और विरेचन (कफनिःसारक) धूमका प्रयोग करना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

दन्तनाडीचिकित्सा ।

नाडीव्रणहरं कर्म दन्तनाडीषु कारयेत् ।
यं दन्तमधिजायेत नाडी तद्दन्तमुद्धरेत् ॥ २६ ॥

दन्तनाड़ी पायरियामें नाड़ीव्रणनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । तथा जिस दन्तमें नाड़ी होगयी हो, उसे उखाड़ डालना चाहिये ॥ २६ ॥

अधिमांसादिचिकित्सा ।

छित्त्वाधिमांसं शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत् ।
शोधयित्वा दहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा ॥ २७ ॥
गतिर्हिनस्ति हन्वस्थि दशने समुपेक्षिते ।
तस्मात्समूलं दशनमुद्धरेद्भग्नमस्थि च ॥ २८ ॥
उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोणितं संप्रसिच्यते ।
रक्तातियोगात्पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति च ॥२९॥
चलमप्युत्तरं दन्तमतो नापहरेद्भिषक् ।
कषायं जातिमदनकटुकस्वादुकण्टकैः ॥ ३० ॥
लोध्रखदिरमाञ्जिष्ठायष्ट्याह्वैश्चापि यत्कृतम् ।
तैलं संशोधनं तद्धि हन्याद्दन्तगतां गतिम् ॥ ३१ ॥
कषायं परतः कृत्वा पिष्ट्वा लोध्रादिकाल्कितम् ।
कण्टकीमदनो योऽयः स्वादुकण्टो विकंकतः ॥३२॥
सुखोष्णाः स्नेहकवलाः सर्पिषस्त्रैवृतस्य वा ।
निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ॥ ३३ ॥
स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च ।
अहिंसन् दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्भिषक् ॥३४ ॥
लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रतिसारयेत ।
दन्तहर्षक्रियां चापि कुर्यान्निरवशेषतः ॥ ३५ ॥

अधिमांस यदि ऊपर न हो, तो शस्त्रसे काटकर शुद्ध करना चाहिये । फिर क्षार या अग्निसे जला देना चाहिये । दांतकी उपेक्षा करनेसे नासूर दाढ़को नष्ट कर देता है, अतः समूल दांत और टूटी हड्डी इनको उखाड़ डालना चाहिये । ऊपरके दांतको उखाड़नेसे खून बहता है, रक्तके बहनेसे और अनेक कठिन रोग हो जाते हैं, अतः हिलते हुए भी ऊपरके दांतको न उखाड़ना चाहिये । चमेली, मैनफल, कुटकी व विकंकतके क्वाथसे कवलधारणसे दन्तनाड़ी ठीक होती है । तथा इन्हींके क्वाथ व लोध, कत्था मजीठ तथा मौरेठीके कल्कसे सिद्ध तैल दन्तनाड़ीको शुद्ध करता है । ऊपरके तैलमें जाती आदिका क्वाथ तथा लोध आदिका कल्क छोड़ना चाहिये और मैनफल कटीला तथा स्वादुकण्टकसे विकंकत लेना चाहिये । कुछ गरम गरम स्नेहके कवलधारण करने चाहियें । दन्त हर्षमें त्रैवृत घृतके द्वारा कमल धारण करना चाहिये । तथा वातनाशक औषधियोंके क्वाथ दन्तहर्षको नष्ट करते हैं । स्नैहिक धूम तथा स्नैहिक नस्यका प्रयोग करना चाहिये । दन्तमूल कटने न पावे, इस प्रकार शर्कराको खुरच कर निकालना चाहिये । फिर शहदसे मिले हुए लाखके चूर्णको लगाना चाहिये और दन्तहर्षकी समग्र क्रिया करनी चाहिये ॥ २७–३५ ॥

कपालिकाक्रिमिदन्ताचिकित्सा ।

कपालिकाः कृच्छ्रसाध्यास्तत्राप्येषा क्रिया मता ।
जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं क्रिमिदन्तकम् ॥ ३६ ॥
तथावपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः ।
भद्रदार्वादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः ।
सोषणं हिंगु मतिमान्क्रिमिदन्तेषु दापयेत् ॥३७ ॥

कपालिका कृच्छ्रसाध्य होती है, उसमें भी यही क्रिया करनी चाहिये । जो क्रिमिदन्त हिलता न हो, उसका स्वेदन कर खूनको निकालना चाहिये । तथा वातघ्न अवपीड़क नस्य, स्नेहगण्डूष और भद्रदार्वादि और पुनर्नवाके लेप तथा स्निग्ध भोजन कराना चाहिये । तथा क्रिमिदंतमें बुद्धिमान् वैद्य काली मिर्च व हींगको रखवावे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

बृहत्यादिक्वाथः ।

बृहतीभूमिकदम्बकपञ्चाङ्गुलिकण्टकारिकाक्वाथैः ।
गण्डूषस्तैलयुतःक्रिमिदन्तकवेदनाशमनः ॥ ३८ ॥

बड़ी कटेरी, मुण्डी, एरण्ड व कण्टकारिकाके क्वाथमें तैल मिलाकर गण्डूष धारण करनेसे क्रिमिदन्तकी पीड़ा शांत होती है ॥ ३८ ॥

नील्यादिचर्वणम् ।

नीलीवायसजंघास्नुग्दुग्धीनां तु मूलमेकैकम् ।
संचर्व्य दशनविधृतं दशनक्रिमिपातनं प्राहुः॥३९॥
चलमुद्धृत्य वा स्थानं दहेत्तु शुषिरस्य वा ।
ततो विदारीयष्ट्याह्वशृङ्गाटककशेरुभिः ।
तैलं दशगुणक्षीरसिद्धं नस्ये तु योजयेत् ॥ ४० ॥

नील, काकजंघा, सेहुण्ड, दूधीमेंसे किसी एककी जड़ खोद चबाकर दांतमें रखनेसे दांतके कीड़े गिर जाते हैं । चलदन्तका उखाड़ना तथा छिद्रमें आग लगा देनी चाहिये । फिर विदारीकन्द, मौरेठी, सिंघाड़ा व कशेरुक

कल्क तथा तैलसे दशगुण दूध मिलाकर सिद्ध तैलका नस्य देना चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥

हनुमोक्षादिचिकित्सा ।

हनुमोक्षे समुद्दिष्टा कार्या चार्दितवत्क्रिया ।
फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्नं दन्तधावनम् ॥ ४१ ॥
तथातिकठिनान्भक्ष्यान्दन्तरोगी विवर्जयेत् ।
सप्तच्छदार्कदुग्धाभ्यां पूरणं क्रिमिदन्तनुत् ॥ ४२ ॥
जीवनीयेन दुग्धेन क्रिमिरन्ध्रप्रपूरणम् ।
अर्कक्षीरेणैवमेकयोगः सद्भिः प्रशस्यते ॥ ४३ ॥
द्रोणपुष्पीद्रवः फेनमधुतैलसमायुतः ।
क्रिमिदन्तविनाशाय कार्यं कर्णस्य पूरणम् ॥ ४४ ॥

हनुमोक्षमें अर्दितके समान चिकित्सा करनी चाहिये । दन्तरोगी खट्टे फल, ठण्ढा जल, रूखा अन्न, दन्तधावन तथा अति कठिन पदार्थ इन सबको त्याग देवे । सप्तपर्ण और आकके दूधसे भरना क्रिमिदन्तको नष्ट करता है। जीवनीय गणसे सिद्ध दूधसे कीड़ोंके छिद्र भर जाते हैं। अथवा अकेले आकके दूधसे कीड़ोंके छिद्र भर जाते हैं। क्रिमिदन्तके नाशार्थ गूमाके रसमें समुद्रफेन शहद व तैल मिलाकर कानमें छोड़ना चाहिये ॥ ४१-४४ ॥

जिह्वारोगचिकित्सा ।

पटोलकटुकाव्योषपाठासैन्धवभार्ङ्गिकैः ।
चूर्णैर्मधुयुतो लेपः कवलो मधुतैलकैः ।
जिह्वारोगेषु कर्तव्यं विधानमिदमौषधम् ॥ ४५ ॥
मुस्तामधुकनिर्गुण्डीखदिरोशीरदारुभिः ।
समञ्जिष्ठाविडङ्गैश्च सिद्धं तैलं हरेत्क्रिमीन् ॥ ४६ ॥

परवल, कुटकी, त्रिकटु, पाढ व सेंधानमकके चूर्णको शहदमें मिलाकर लेप करना चाहिये । तथा शहद व तैलका कवल धारण करना चाहिये । जिह्वा रोगोंके लिये यह प्रधान औषध है। तथा नागरमोथा, मौरेठी, सँभालू, कत्था, खश, देवदारु, मजीठ, व वायविडङ्गसे सिद्ध तैल कीड़ोंको नष्ट करता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

कण्टकचिकित्सा ।

ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक् चिकित्सितम् ।
कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा खलु ॥ ४७ ॥
पित्तजेषु निघृष्टेषु निस्रुते दुष्टशोणिते ।
प्रतिसारणगण्डूषा नस्यं च मधुरं हितम् ॥ ४८ ॥
कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये ।
पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्यं तु प्रतिसारणम् ॥ ४९ ॥
गृह्णीयात्कवलांश्चापि गौरसर्षपसैन्धवैः ।
पटोलनिम्बवार्ताकुक्षारयूषैश्च भोजयेत् ॥ ५० ॥

वातज ओष्ठरोगमें जो चिकित्सा कही गयी है, वही वातजकण्टकोंमें करनी चाहिये । पित्तजकण्टकोंमें कण्टकोंको खुरचकर दुष्ट रक्त निकल जानेपर प्रतिसारण गण्डूष और नस्य, मधुर हितकर हैं । कफजकण्टकोंको खुरचकर रक्तके क्षीण हो जानेपर शहदसे मिलित पिप्पल्यादिगणकी ओषधियोंका प्रयोग करना चाहिये । और सफेद सरसों व सेंधानमकका कवल धारण करना चाहिये । तथा परवल, नीम, बैंगन, क्षार व यूषसे भोजन कराना चाहिये ॥ ४७-५० ॥

जिह्वाजाड्यचिकित्सा ।

जिह्वाजाड्यं चिरजं माणकभस्मलवणघर्षणं हन्ति ।
ईषत्स्नुक्क्षीराक्तं जम्बीराद्यम्लचर्वणं वापि ॥ ५१ ॥

माणकन्दकी भस्म व नमकके घिसनेसे पुरानी जिह्वाकी जड़ता नष्ट होती है । तथा थोड़े सेहुण्डके दूधसे युक्त जम्बीरादि खट्टी चीजोंका चबाना हितकर है ॥ ५१ ॥

दन्तशब्दचिकित्सा ।

कर्कटाङ्घ्रिक्षीरपक्वघृताभ्यङ्गेन नश्यति ।
दन्तशब्दः कर्कटाङ्घ्रिलेपाद्वा दन्तयोजितात् ॥ ५२ ॥

काकड़ाशिङ्गीकी जड़से सिद्ध दूधसे बनाये घीकी मालिश करनेसे दांतोंकी कटकटाहट नष्ट होती है । अथवा काकड़ाशिङ्गीकी जड़के लेपसे भी नष्ट होती है ॥ ५२ ॥

उपजिह्वाचिकित्सा ।

उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् ।
शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनामुपाचरेत् ॥ ५३ ॥
व्योषक्षाराभयावह्निचूर्णमेतत्प्रघर्षणम् ।
उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेतैस्तैलं विपाचयेत् ॥ ५४ ॥

उपजिह्वाको खुरचकर क्षार लगाना चाहिये । तथा शिरोविरेचन, गण्डूष और धूम पिलाना चाहिये । और त्रिकटु, क्षार, बड़ी हर्र व चीतकी जड़के चूर्णको घिसना चाहिये । तथा उपजिह्वाकी शांतिके लिये इन्हींसे तैल पकाना चाहिये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

गलशुण्डीचिकित्सा ।

छित्त्वा घर्षेद्गलशुण्डीं व्योषोग्राक्षौद्रसिन्धुजैः ।
कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाप्लवैरपि ॥ ५५ ॥
सक्षौद्रैर्भिषजा कार्यं गलशुण्ड्या विघर्षणम् ।
उपनासाव्यधो हन्ति गलशुण्डीमशेषतः ॥ ५६ ॥
गलशुण्डीहरं तद्वच्छेफालीमूलचर्वणम् ।
वचामतिविषां पाठां रास्नां कटुकरोहिणीम् ।
निष्क्वाथ्य पिचुमर्दं च कवलं तत्र योजयेत् ॥ ५७ ॥

गलशुण्डीको काटकर त्रिकटु, वच, शहद व सेंधानमकसे अथवा कूठ, काली मिर्च, वच, सेंधानमक, छोटी पीपल, पाढ़

व केवटीमोथाको शहदके साथ मिलाकर रगड़ना चाहिये । तथा उपनासाका व्यघ गलशुण्डीको नष्ट करता है, इसी प्रकार सम्मालूकी जड़का चर्वण गलशुण्डीको नष्ट करता है । तथा इसमें बच, अतीस पाढ़, रासन, कुटकी और नीमका बनाकर केवल धारण करना चाहिये ॥ ५५-५७ ॥

तुण्डीकेर्यादिचिकित्सा ।

क्षारसिद्धेषु मुद्गेषु यूषाश्चाप्यशने हिताः ।
तुण्डिकेर्यध्रुषे कूर्मे संघाते तालुपुप्पटे ॥ ५८ ॥
एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्मणि ।
तालुपाके तु कर्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् ॥ ५९ ॥
स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ।

तुंडिकेरी, अध्रुप, कूर्मसंघात और तालुपुप्पुटमें क्षारसे सिद्ध मूँगके यूषका पथ्य देना चाहिये । तथा शस्त्रकर्म भी विशेष अवस्थामें करना चाहिये । तालुपाकमें पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । तालुशोषमें स्नेहन, स्वेदन तथा वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥–

रोहिणीचिकित्सा ।

साध्यानां रोहिणीनां तु हितं शोणितमोक्षणम् ॥६०॥
छर्दनं धूमपानं च गण्डूषो नस्यकर्म च ।
वातिकीं तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत् ॥ ६१ ॥
सुखोष्णांस्तैलकवलान्धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ।
पतंगशर्कराक्षौद्रैः पैत्तिकीं प्रतिसारयेत् ॥ ६२ ॥
द्राक्षापरूषकक्वाथो हितश्च कवलग्रहे ।
आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ॥ ६३ ॥
श्वेताविडंगदन्तीषु सिद्धं तैलं ससैन्धवम् ।
नस्यकर्मणि दातव्यं कवलं च कफोच्छ्रये ॥ ६४ ॥
पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं रक्तसम्भवाम् ।

साध्यरोहिणियोंमें रक्त निकालना चाहिये । तथा वमन, धूमपान, गण्डूष और नस्यकर्म करना चाहिये । वातिकरोहिणीमें रक्तको निकालकर नमकोंको उर्राना चाहिये । कुछ गरम गरम तैलके कवल धारण करना चाहिये । पैत्तिकरोहिणीमें पीतचन्दन व शक्करको शहद मिलाकर लगाना चाहिये । तथा मुनक्का व फालसेके क्वाथका कवल धारण करना चाहिये । कफजमें गृहधूम तथा त्रिकटुको मिलाकर उर्राना चाहिये । तथा सफेद विष्णुक्रान्ता, वायविडङ्ग व दन्तीसे सिद्ध तैलमें सेंधानमक मिलाकर नस्य तथा कवल धारण करना चाहिये । तथा पित्तके समान रक्तज रोहिणीकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६०–६४ ॥

कण्ठशालूकादिचिकित्सा ।

विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् ॥६५॥
एककालं यवान्नं च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ।
उपजिह्विकवच्चापि साधयेदधिजिह्विकाम् ॥ ६६ ॥
उन्नाम्य जिह्वामाकृष्य बडिशेनाधिजिह्विकाम् ।
छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्घर्षणादिभिः ॥ ६७ ॥
एकवृन्दं तु विस्राव्य विधिं शोधनमाचरेत् ।
गिलायुश्चापि यो व्याधिस्तं च शस्त्रेण साधयेत् ६८॥
अमर्मस्थं सुपक्वं च भेदयेद्गलविद्रधिम् ।

कण्ठशालूकको चीरकर तुंडिकेरीके समान चिकित्सा करनी चाहिये । तथा एक वार यवका अन्न चिकना घृतादियुक्त थोड़ा थोड़ा खाना चाहिये । उपजिह्वाके समान अधिजिह्वाकी चिकित्सा करनी चाहिये । जिह्वाको उठाकर वडिशसे खींचकर मण्डलाग्रसे काट देना चाहिये । एकवृन्दको तीक्ष्ण उष्ण घर्षणादिसे बहाकर शोधनविधि करनी चाहिये । गिलायुनामक रोगको शस्त्रसे सिद्ध करना चाहिये । तथा जो गलविद्रधि पक गयी हो, और मर्मस्थानमें न हो, उसे चीर देना चाहिये ॥ ६५–६८ ॥–

कण्ठरोगचिकित्सा ।

कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्म च ॥६९ ॥
क्राथपानं तु दार्वीत्वङ्निम्बतार्क्ष्यकलिङ्गजम् ।
हरीतकीकषायो वा पेयो माक्षिकसंयुतः ॥ ७० ॥

कण्ठरोगोंमें रक्तको निकालना चाहिये । तथा तीक्ष्ण औषधियोंसे नस्यादि कर्म करना चाहिये । तथा दारुहल्दीकी छाल, नीम, रसौंत व इन्द्रयवके काढ़ेको पीना चाहिये । अथवा हर्रोंके काढ़ेमें शहद मिलाकर पीना चाहिये ॥ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

कटुकादिक्राथः ।

कटुकातिविषादारुपाठामुस्तकलिङ्गकाः ।
गोमूत्रक्वथिताः पेयाः कण्ठरोगविनाशनाः ॥ ७१ ॥

कुटकी, अतीस, देवदारु, पाढ़, नागरमोथा, व इन्द्रयवका गोमूत्रमें क्वाथ बनाकर पीनेसे कण्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ ७१ ॥

कालकचूर्णम् ।

गृहधूमो यवक्षारः पाठा व्योषरसाञ्जनम् ।
तेजोह्वा त्रिफला लोहं चित्रकश्चेति चूर्णितम् ॥७२॥
सक्षौद्रं धारयेदेतद्गलरोगविनाशनम् ।
कालकं नाम तच्चूर्णं दन्तजिह्वास्यरोगनुत् ॥७३ ॥

गृहधूम, जवाखार, पाढ़, त्रिकटु, रसौंत, चव्य, त्रिफला, लौह भस्म व चीतकी जड़के चूर्णको शहद मिलाकर धारण करनेसे दन्त, जिह्वा व मुखके रोगोंको नष्ट करता है। इसे "कालक" चूर्ण कहते हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

पञ्चकोलकक्षारचूर्णम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
सर्जिकाक्षारतुल्यांशैश्चूर्णोऽयं गलरोगनुत् ॥ ७४ ॥

छोटी पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीतकी जड़, सोंठ, और सज्जीखार सब समान भाग ले चूर्ण बनाकर मुखमें रखनेसे गलरोग नष्ट होते हैं ॥ ७४ ॥

पीतकचूर्णम् ।

मनःशिला यवक्षारो हरितालं ससैन्धवम् ।
दार्वीत्वक्चेति तच्चूर्णं माक्षिकेण समायुतम् ॥७५॥
मूर्छितं घृतमण्डेन कण्ठरोगेषु धारयेत् ।
मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम कीर्तितम् ॥ ७६ ॥

मनशिल, जवाखार, हरिताल, सेंधानमक व दारुहल्दीकी छालके चूर्णको शहद तथा घी मिलाकर कण्ठरोग और मुखरोगोंमें धारण करना चाहिये। इसे "पीतक चूर्ण" कहते हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

यवाग्रजादिगुटिका ।

यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां
रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम् ।
क्षौद्रेण कुर्याद् गुटिकां मुखेन
तां धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥ ७७ ॥

जवाखार, चव्य, पाढ़, रसौंत, दारुहल्दी तथा छोटी पीपलका चूर्ण कर शहदसे गोली बना समस्त गलरोगोंमें मुखमें धारण करना चाहिये ॥ ७७ ॥

सामान्ययोगाः ।

दशमूलं पिबेदुष्णं यूषं मूलककुलत्थयोः ।
क्षीरेक्षुरसगोमूत्रदधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ॥ ७८ ॥
विदध्यात्कवलान्वीक्ष्य दोषं तैलघृतैरपि ।

दशमूलका क्वाथ तथा मूली व कुलथीके यूष अथवा दूध व ईखके रस, गोमूत्र दहीके तोड़ काञ्जी अथवा तैल व घीके कवल दोषोंके अनुसार निश्चित कर धारण करना चाहिये ॥ ७८ ॥–

पञ्चकोलादिक्षारगुटिका ।

पञ्चकोलकतालीसपत्रैलामरिचत्वचः ॥ ७९ ॥
पलाशमुष्ककक्षारयवक्षाराश्च चूर्णिताः ।
गुडे पुराणे क्वथिते द्विगुणे गुडिकाः कृताः ॥ ८० ॥
कर्कन्धुमात्राः सप्ताहं स्थिता मुष्ककभस्मनि ।
कण्ठरोगेषु सर्वेषु धार्याः स्युरमृतोपमाः ॥ ८१ ॥

पञ्चकोल, तालीशपत्र, इलायची, मिर्च, दालचीनी, ढाकके क्षार, मोखाके क्षार तथा जवाखारके चूर्णको दूने पुराने गुड़की चाशनीमें बेरके बराबर गोली बनाकर सात दिन मोखाकी भस्ममें रख कण्ठरोगोंमें धारण करना चाहिये। यह अमृतके तुल्य गुण देती हैं ॥ ७९–८१ ॥

मुखरोगचिकित्सा ।

मूत्रस्विन्नां शिवां तुल्यां मधुरीकुष्ठपत्रकैः ।
अभ्यस्य मुखरोगांस्तु जयेद्विरसतामपि ॥ ८२ ॥

गोमूत्रमें स्विन्न छोटी हर्रें, सौंफ, कूठ, व तेजपात तीनोंके बराबर लेकर मुखमें रखनेसे मुखकी विरसता तथा अन्य मुखरोग नष्ट होते हैं ॥ ८२ ॥

सर्वसरचिकित्सा ।

वातात्सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् ।
तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ ८३ ॥
पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः ।
सर्वपित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ ८४ ॥
प्रतिसारणगण्डूषान्धूमं संशोधनानि च ।
कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात्कफापहम् ॥ ८५ ॥

वातज सर्वसरमें लवणोंके चूर्णको धारण करना चाहिये। तथा कवल व नस्यमें वातनाशक तैलका प्रयोग करना चाहिये। पित्तात्मक सर्वसरमें शुद्ध शरीरवाले पुरुषको समस्त पित्तनाशक मीठी व ठण्ढी चिकित्सा करनी चाहिये। कफात्मक सर्वसरमें कफनाशक प्रतिसारण गण्डूष, धूम, संशोधन तथा समस्त कफ नाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८३–८५ ॥

मुखपाकचिकित्सा ।

मुखपाके शिरावेधः शिरःकायविरेचनम् ।
कार्यं च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम् ॥८६॥

मुखपाकमें शिराव्यध, शिरोविरेचन, कायविरेचन तथा प्रतिदिन अनेक बार चमेलीकी पत्तीका चवण करना चाहिये ॥ ८६ ॥

जातीपत्रादिक्वाथगण्डूषः ।

जातीपत्रामृताद्राक्षायासदार्वीफलत्रिकैः ।
क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकनुत् ॥८७॥

चमेलीकी पत्ती, गुर्च, मुनक्का, यवासा, दारुहल्दी व त्रिफलाके क्वाथको ठण्ढाकर शहदके साथ कवल धारण करनेसे मुखपाक नष्ट होता है ॥ ८७ ॥

कृष्णजीरकादिचूर्णम् ।

कृष्णजीरककुष्ठेन्द्रयवानां चूर्णतस्त्र्यहात् ।
मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ॥ ८८ ॥

काले जीरा, कूठ व इन्द्रयवके चूर्णको ३ दिनतक धारण करनेसे मुखपाक, व्रणका गीलापन और दुर्गन्ध नष्ट होती है ॥८८॥

रसाञ्जनादिचूर्णम् ।

रसाञ्जनं लोध्रमथाभयां च
मनःशिलानागरगैरिकं च ।
पाठा हरिद्रा गजपिप्पली च
स्याद्धारणं क्षौद्रयुतं मुखस्य ॥ ८९ ॥

रसौत, लोध, बड़ी हर्र, मनशिल, सोंठ, गेरू, पाढ़, हल्दी व गजपीपलके चूर्णको शहद मिलाकर मुखमें धारण करना चाहिये ॥ ८९ ॥

पटोलादिधावनकषायाः ।

पटोलनिम्बजम्ब्वाम्रमालतीनवपल्लवाः ।
पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने ॥ ९० ॥
पञ्चवल्ककषायो वा त्रिफलाक्काथ एव वा ।
मुखपाकेषु सक्षौद्रः प्रयोज्यो मुखधावने ॥ ९१ ॥

परवल, नीम, जामुन, आम व चमेलीकी नवीन पत्तियोंके क्काथका मुख धोनेके लिये प्रयोग करना चाहिये । तथा पञ्चवल्कलके क्काथ अथवा त्रिफलेके क्काथको शहद मिलाकर मुख धोनेके लिये मुखपाकमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ९० ॥ ९१ ॥

दार्व्यारसक्रिया ।

स्वरसः कथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया ।
सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा ॥ ९२ ॥

दारुहल्दीका स्वरस गाढ़ा कर शहदमें मिला मुखमें लगानेसे मुखरोग, रक्तदोष तथा नाड़ीव्रण नष्ट होते हैं ॥ ९२ ॥

सप्तच्छदादिक्काथः ।

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्त-
हरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः ।
यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च
क्काथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥ ९३ ॥

सप्तपर्ण, खश, परवलकी पत्ती, नागरमोथा, हर्र, कुटकी, मौरेठी, अमलतास व चन्दनसे सिद्ध क्काथ मुखपाकको नष्ट करता है । इसे पीना चाहिये ॥ ९३ ॥

पटोलादिक्काथः ।

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशाला-
त्रायन्तितिक्ताद्विनिशामृतानाम् ।
पीतः कषायो मधुना निहन्ति
मुखे स्थितश्चास्यगदानशेषान् ॥ ९४ ॥

परवलकी पत्ती, सोंठ, त्रिफला, इन्द्रायण, त्रायमाण, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी व गुर्च इनके क्काथको शहद मिलाकर पीनेसे अथवा मुखमें धारण करनेसे समग्र मुखरोग नष्ट होते हैं ॥ ९४ ॥

त्रिफलादियोगाः ।

कथितास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः ।
निषेव्या भक्षणीया वा त्रिफला मुखपाकहा ॥ ९५ ॥

त्रिफला, पाढ, मुनक्का व चमेलीकी पत्तीके काढेको वन कर पीना चाहिये । अथवा त्रिफलाके काढ़ेको पीना चाहिये । इन योगोंसे मुखपाक नष्ट होता है ॥ ९५ ॥

दग्धमुखचिकित्सा ।

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च ।
सक्षौद्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहपाकनुत् ।
तैलेन काञ्जिकेनाथ गण्डूषश्चूर्णदाहहा ॥ ९६ ॥

तिल, नीलोफर, घी, शक्कर और दूधको शहदके साथ मिलाकर गण्डूष धारण करनेसे मुखकी दाह तथा पकना शान्त होता है और तैल अथवा काञ्जीका गण्डूष चूनेसे कटे मुखकी वेदनाको शान्त करता है ॥ ९६ ॥

दौर्गन्ध्यहरो योगः ।

घनकुष्ठैलाधान्यकयष्टीमध्वेलवालुकाकवलः ।
वदनेऽतिपूतिगन्धं हरति सुरालशुनगन्धं च ॥९७॥

नागरमोथा, कूठ, धनियां, मौरेठी तथा एलवालुकका कवल मुखकी दुर्गन्ध तथा शराब लशुनकी दुर्गन्धको नष्ट करता है ॥ ९७ ॥

सहचरतैलम् ।

तुलां तथा नीलकुरंटकस्य
द्रोणेऽम्भसः संश्रपयेद्यथावत् ।
पूत्वा चतुर्भागरसे तु तैलं
पचेच्छनैरर्धपलप्रयुक्तैः ॥ ९८ ॥
कल्कैरनन्ताखदिरारिमेद-
जम्ब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् ।
तत्तैलमाशेव धृतं मुखेन
स्थैर्यं द्विजानां विदधाति सद्यः ॥ ९९ ॥

नीले कटसैलाका पञ्चाङ्ग ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तो० में मिलाकर पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान क्काथमें १२८ तो० तिल तैल तथा यवासा, कत्था, दुर्गन्धित कत्था, जामुन, आम, मौरेठी नीलोफर, प्रत्येक २ तोलाका कल्क छोड़कर सिद्ध तैल मुखमें धारण करनेसे दांतोंको पुष्ट करता है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

इरिमेदादितैलम् ।

इरिमेदत्वक्पलशतमभिनवमापोथ्य खण्डशः कृत्वा ।
तोयाढकैश्चतुर्भिर्निष्क्वाथ्य चतुर्थशेषेण ॥ १०० ॥

तेन क्वाथेन मतिमांस्तिलस्यार्धाढकं शनैर्विपचेत् ।
कल्कैरक्षसमांशैर्मञ्जिष्ठालोध्रमधुकानाम् ॥ १०१ ॥
इरिमेदखदिरकट्फललाक्षान्यग्रोधमुस्तसूक्ष्मैला ।
कर्पूरागुरुपद्मकलवङ्गकंकोलजातीनाम् ॥ १०२ ॥
पतङ्गकोषगैरिकवराङ्गगजकुसुमधातकीनां च ।
सिद्धं भिषग्विदध्यादिदं मुखोत्थेषु रोगेषु ॥ १०३ ॥
परिशीर्णदन्तविद्रधिशैशिरशीतादन्तहर्षेषु ।
क्रिमिदन्तदारणचलितप्रदुष्टमांसावशीर्णेषु ।
मुखदौर्गन्ध्ये कार्यं प्रागुक्तेष्वामयेषु तैलमिदम् ॥१०४॥

नई दुर्गन्धित खैरकी छाल ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तो० मिला पका चतुर्थांश शेष रहने पर उतार छान क्वाथमें ३ सेर १६ तो० तैल तथा मजीठ, लोध, मौरेठी, इरिमेद (दुर्गन्धितखैर) खैर, कैफरा, लाख, वरगदकी छाल, नागरमोथा, छोटी इलायची, कपूर, अगर, पद्माख, लवंग कंकोल, जायफल, रक्तचन्दन, जावित्री, गेरू दालचीनी तथा धायके फूल प्रत्येक एक तोलाका कल्क छोड़कर सिद्ध तैलका वैद्यको मुखरोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । तथा गिरते हुए दांतों, विद्रधि, शैशिर, शीताद, दन्तहर्ष, क्रिमिदन्त, दारुण, चल दन्त, दूषितमांसके कटनेमें मुखकी दुर्गन्धिमें तथा और कहे हुए रोगोंमें इसका प्रयोग करना चाहिये ॥ १००-१०४ ॥

लाक्षादितैलम् ।

तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक्प्रस्थं समं पचेत् ।
चतुर्गुणेऽरिमक्वाथे द्रव्यैश्च पलसंमितैः ॥ १०५ ॥
लोध्रकट्फलमंजिष्ठापद्मकेशरपद्मकैः ।
चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तैलं गण्डूषधारणम् ॥ १०६ ॥
दालनं दन्तचालं च हनुमोक्षं कपालिकाम् ।
शीतादं पूतिवक्त्रं च ह्यरुचिं विरसास्यताम् ।
हन्यादास्यगदानेतान्कुर्याद्दन्तानपि स्थिरान् ॥१०७॥

तैल, लाखका रस, दूध प्रत्येक १ प्रस्थ (१ से० ९ छ० ३ तो०) दुर्गन्धित कथेका क्वाथ६सेर ३२ तो० और लोध ,कैफरा मजीठ, कमलका केशर, पद्माख, चन्दन, नीलोफर, मौरेठी प्रत्येक ४ तोलेका कल्क छोड़कर सिद्ध तैल गण्डूप धारण करनेसे फटना, दन्त हिलना, हनुमोक्ष, कपालिका, शीताद, मुखदुर्गन्धि, अरुचि, विरसता इन मुखरोगोंको नष्ट करता तथा दांतोंको दृढ करता है ॥ १०५-१०७ ॥

बकुलादितैलम् ।

बकुलस्य फलं लोध्रं वज्रवल्ली कुरुण्टकम् ।
चतुरङ्गुलबब्बोलवाजिकर्णेरिमाशनम् ॥ १०८ ॥
एषां कषायकल्काभ्यां तैलं पक्वं मुखे धृतम् ।
स्थैर्यं करोति चलतां दन्तानां धावनेन च ॥१०९॥

मौलसिरीके फल, लोध, हडजोड़, कटसैला, अमलतास,बबूल, राल, दुर्गंधि कत्था व विजैसारके क्वाथ, व कल्कसे सिद्ध तैलको मुखमें रखनेसे दांत स्थिर होते हैं । तथा इस क्वाथसे धोनेसे भी दांत मजबूत होते हैं ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

वदनसौरभदा गुटी ।

एलालतालवनिकाफलशीतकोप-
कोलद्विकानि खदिरस्य कृते कषाये ।
तुल्यांशकानि दशभागमिते निधाय
प्रोद्भिन्नकेतकपुटे पुटवद्विपाच्य ॥ १०१ ॥
प्रागंशतुल्यशशिनाभितमेकसंघं
पिष्ट्वा नवेन सहकाररसेन हस्तौ ।
लिप्त्वा यथाभिलषितां गुडिकां विदध्यात्
स्त्रीपुंसयोर्वदनसौरभबन्धुभूताम् ॥ १११ ॥

इलायची, लताकस्तूरिकाके बीज, लवंग, जावत्री छोटे बड़े बेर सब समान भाग दशभाग कत्थेके क्वाथमें खिले केवड़ाके फूलके अन्दर रख विधिपूर्वक पकाकर पूर्व अंशके बराबर ही (१ भाग) कपूर मिलाकर पीसना चाहिये, फिर आमके रसको हाथोंमें लेपकर गोली बना लेनी चाहिये । यह स्त्री व पुरुषके मुखको सुगन्धित करती है ॥ ११० ॥ १११ ॥

लघुखदिरवटिका ।

खदिरस्य तुलां सम्यग्जलद्रोणे विपाचयेत् ।
शेषेऽष्टभागे तत्रैव प्रतिवापं प्रदापयेत् ॥ ११२ ॥
जातीकर्पूरपूगानि कक्कोलफलकानि च ।
इत्येषा गुडिका कार्या मुखसौभाग्यवर्धिनी ।
दन्तौष्ठमुखरोगेषु जिह्वाताल्वामयेषु च ॥ ११३ ॥

कत्था ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तो० मिलाकर पकाना चाहिये, अष्टमांश रहनेपर जावित्री, कपूर सुपारी, कंकोल प्रत्येक ४ तोला चूर्णको छोड़कर गोली बना लेनी चाहिये । यह मुखको सुगन्धित करती तथा दन्त, ओष्ठ, मुख, जिह्वा व तालुरोगोंको नष्ट करती है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

बृहत्खदिरगुटिका ।

गायत्रिसारतुलयेरिमवल्कलानां
सार्धं तुलायुगलमम्बुघटैश्चतुर्भिः ।
निष्क्वाथ्य पादमवशिष्टसुवस्त्रपूतं
भूयः पचेदथ शनैर्मृदुपावकेन ॥ ११४ ॥
तस्मिन्घनत्वमुपगच्छति चूर्णमेषां
श्लक्ष्णं क्षिपेच्च कवलग्रहभागिकानाम् ।
एलामृणालसितचन्दनचन्दनाम्बु-
श्यामातमालविकषाघनलोहयष्टी ॥ ११५ ॥

लज्जाफलत्रयरसाञ्जनधातकीभ-
श्रीपुष्पगैरिककटङ्कटकट्फलानाम् ।
पद्माह्वलोध्रवटरोहयवासकानां
मांसीनिशासुरभिवल्कलसंयुतानाम् ॥ ११६ ॥
कक्कोलजातिफलकोपलवङ्गकानि
चूर्णीकृतानि विदधीत पलांशकानि ।
शीतेऽवतार्य घनसारचतुःपलं च
क्षिप्त्वा कलायसदृशीर्वटिकाःप्रकुर्यात् ११७
शुष्का मुखे विनिहिता विनिवारयन्ति
रोगान्गलौष्ठरसनाद्विजतालुजातान् ।
कुर्युर्मुखे सुरभितां पटुतां रुचिं च
स्थैर्यं परं दशनगं रसनालघुत्वम् ॥ ११८ ॥

कत्था ५ सेर, दुर्गन्धित खैर १२॥ सेर दोनोंको २ मन २२ सेर ३२ तो० जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर कपड़ेसे छानकर फिर मन्द आंचसे पकाना चाहिये । जब गाढ़ा हो जाय, तो इलायची, सफेद चन्दन, कमलकी डण्डी, लालचन्दन, सुगन्धवाला, प्रियंगु, तेजपात, मजीठ, नागरमोथा, अगर, मोरेठी लज्जावंती, त्रिफला, रसौंत, धायके फूल नागकेशर, लौंग, गेरू, दारुहल्दी, कैफरा, पद्माख, लोध, वरगदकी वौं, यवासा, जटामांसी, हल्दी, दालचीनी प्रत्येक एक तोला, कंकोल, जायफल, जावित्री, लवङ्ग प्रत्येक ४ तोला ले चूर्णकर छोड़ना चाहिये । ठण्ढा होनेपर कपूर १६ तोला मिला मटरकी वरावर गोली वनाकर सुखा लेना चाहिये । यह गोली मुखमें रखनेसे गले, ओष्ठ, जिह्वा व तालुके रोग नष्ट होते हैं । मुख सुगन्धित स्वच्छ होता, रुचि उत्पन्न होती, दन्त दृढ तथा जिह्वा हल्की होती है ॥ ११४–११८ ॥

इति मुखरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ कर्णरोगाधिकारः ।

कर्णशूलचिकित्सा ।

कपित्थमातुलुङ्गाम्लशृङ्गवेररसैः शुभैः ।
सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥ १ ॥
शृंगवेरं च मधु च सैन्धवं तैलमेव च ।
कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनापहम् ॥ २ ॥
लशुनार्द्रकशिग्रूणां सुरंग्या मूलकस्य च ।
कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ।
समुद्रफेनचूर्णेन युक्त्या वाप्यवचूर्णयेत् ॥ ३ ॥

आर्द्रकसूर्यावर्तक-
शोभाञ्जनमूलमूलकस्वरसाः ।
मधुतैलसैन्धवयुताः
पृथगुष्णाः कर्णशूलहराः ॥ ४ ॥
शोभाञ्जनकनिर्यासस्तिलतैलेन संयुतः ।
कदुष्णः पूरणः कर्णे कर्णशूलोपशान्तये ॥ ५ ॥
अष्टानामपि मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेन च ।
कोष्णेन पूरयेत्कर्णौ कर्णशूलोपशान्तये ॥ ६ ॥
अश्वत्थपत्रखल्वं वा विधाय बहुपत्रकम् ।
तैलाक्तमङ्गारपूर्णं निदध्याच्छ्रवणोपरि ॥ ७ ॥
यत्तैलं च्यवते तस्मात्खल्वादङ्गारतापितात् ।
तत्प्राप्तं श्रवणस्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ८ ॥
अर्कपत्रपुटे दग्धस्नुहीपत्रभवो रसः ।
कदुष्णं पूरणादेव कर्णशूलनिवारणः ॥ ९ ॥

कैथा, विजौरा निम्बू तथा अदरखके रसको गरम कर गुनगुना गुनगुना कानमें डालनेसे कर्णशूल शान्त होता है । अथवा अदरखका रस, शहद, सेंधानमक व तैल कुछ गरमकर कानमें छोड़नेसे पीड़ा नष्ट होती है । अथवा लहसुन, अदरख, सहिंजन, लाल सहिंजन, मूली और केलाके स्वरसको कुछ गरम गरम कानमें छोड़नेसे अथवा समुद्रफेनके चूर्णको छोड़नेसे कानकी पीड़ा शान्त होती है । अदरख, सूर्यावर्तक, सहिंजनकी जड़ और मूली इनमेंसे किसी एकके स्वरसको गरम कर शहद, तैल व सेंधानमक मिला छोड़नेसे कानके शूल नष्ट होते हैं । तथा सहिंजनके स्वरसको तिल तैलके साथ मिला गरम कर कानमें छोड़नेसे अथवा आठ मूत्रोंमेंसे किसी एकको गरमकर कानमें छोड़नेसे कर्णशूल शान्त होता है । अथवा पीपलके पत्तोंका दोना बनाकर तैल चुपर अंगार रख कर कानके ऊपर (कुछ दूर) रखना चाहिये । इससे जो तैल कानमें टपकेगा, उससे कर्णशूल तत्काल शान्त होगा । अथवा आकके पत्तोंके अन्दर थोहरके पत्तोंको रख पुटपाकसे निचोड़कर निकाला रस कानमें छोड़नेसे तत्काल कर्णशूल नष्ट होता है ॥ १–९ ॥

दीपिकातैलम् ।

महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि च ।
क्षौमेणावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ १० ॥
यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तत्प्रयोजयेत् ।
ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ११ ॥
एवं कुर्याद्भद्रकाष्ठे कुष्ठे काष्ठे च सारले ।
मतिमान्दीपिकातैलं कर्णशूलनिवारणम् ॥ १२ ॥

बेल, सोनापाठा, खम्भार, पाढल व अरणीकी लकड़ी आठ २ अंगुलकी ले अलसीके वस्त्रसे लपेट तैलसे तर कर

जलाना चाहिये । इससे जो तैल चुवे, वह गुनगुना गुनगुना कानमें डालनेसे तत्काल पीड़ा शान्त होती है । इसी प्रकार देवदारु, कूठ और सरलकी लकड़ियोंसे तैल निकाल कानमें छोड़नेसे शूल मिटता है ॥ १०-१२ ॥

अर्कपत्रयोगः ।

अर्कस्य पत्रं परिणामपीत-
माज्येन लिप्तं शिखिनावतप्तम् ।
आपीड्य तोयं श्रवणे निषिक्तं
निहन्ति शूलं बहुवेदनं च ॥ १३ ॥

जो आकका पत्ता अपने आप पककर पीला हो गया हो, उसमें घी लगा अग्निमें गरमकर रस निचोड़ कानमें छोड़नेसे पीड़ा नष्ट होती है ॥ १३ ॥

अन्ये योगाः ।

तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि ।
बस्तमूत्रं क्षिपेत्कोष्णं सैन्धवेनावचूर्णितम् ॥ १४ ॥
वंशावलेखसंयुक्ते मूत्रे चाजाविके भिषक् ।
तैलं पचेत्तेन कर्णं पूरयेत्कर्णशूलिनः ॥ १५ ॥
हिंगुतुम्बुरुशुण्ठीभिः साध्यं तैलं तु सार्षपम् ।
कर्णशूले प्रधानं तु पूरणं हितमुच्यते ॥ १६ ॥

तीव्रशूल युक्त बहते और शब्द करते हुए कानमें कुछ कुछ गरम गरम बकरेके मूत्रमें सेंधानमक मिलाकर छोड़ना चाहिये । अथवा वंशलोचनसे युक्त बकरी और भेड़के मूत्रमें तैल पकाकर कानमें छोड़नेसे कर्णशूल नष्ट होता है । अथवा हींग, तुम्बरु, सोंठके कल्कसे सरसोंके तैलको सिद्ध कर कानमें छोड़नेसे लाभ होता है ॥ १४-१६ ॥

क्षारतैलम् ।

बालमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिंगु सनागरम् ।
शतपुष्पवचाकुष्ठं दारुशिग्रुरसाञ्जनम् ॥ १७ ॥
सौवर्चलं यवक्षारः सर्जिकोद्भिदसैन्धवम् ।
भूर्जग्रन्थिविडं मुस्तं मधुशुक्तं चतुर्गुणम् ॥ १८ ॥
मातुलुंगरसश्चैव कदल्या रस एव च ।
तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ॥ १९ ॥
बाधिर्यं कर्णनादश्च पूयास्रावश्च दारुणः ।
पूरणादस्य तैलस्य क्रिमयः कर्णसंश्रिताः ॥ २० ॥
क्षिप्रं विनाशं गच्छन्ति कृष्णात्रेयस्य शासनात् ।
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तामयापहम् ॥ २१ ॥
मधुप्रधानं शुक्तं तु मधुशुक्तं तथापरम् ।
जम्बीरस्य फलरसं पिप्पलीमूलसंयुतम् ॥ २२ ॥
मधुभाण्डे विनिक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत् ।
मासेन तज्जातरसं मधुशुक्तमुदाहृतम् ॥ २३ ॥

कच्ची मूलीके टुकड़ोंको सुखाकर बनाया गया क्षार, हींग, सोंठ, सौंफ, वच, कूठ, देवदारु, सहिंजन, रसौंत, कालानमक, जवाखार, सज्जीखार, खारीनमक, सेंधानमक, भोजपत्रकी गांठ, विड़नमक, नागरमोथाका कल्क, तथा तैलसे चतुर्गुण मधुशुक्त तथा बिजौरेनिम्बूका रस व केलेका रस प्रत्येक तैलसे चतुर्गुण मिलाकर सिद्ध तैलको कानमें छोड़नेसे कानके कीड़े नष्ट होते हैं। यह भगवान् पुनर्वसुकी आज्ञा है। यह "क्षारतैल" मुख और दांतके रोगोंको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है । मधु प्रधान शुक्त "मधुशुक्त" कहा जाता है । अथवा जम्बीरी निम्बूके फलके रसको पिपरामूलके साथ मिलाकर शहदके वर्तनमें रखकर धान्यराशिमें रखना चाहिये । यह महीने भरमें खटमिट्ठा हो जानेपर " मधुशुक्त " कहा जाता है ॥ १७-२३ ॥

कर्णनादचिकित्सा ।

कर्णनादे कर्णक्ष्वेडे कटुतैलेन पूरणम् ।
नादबाधिर्ययोः कुर्यात्कर्णशूलोक्तमौषधम् ॥ २४ ॥

कर्णनाद और कानोंकी सनसनाहटमें कड़ुए तैलको कानमें छोड़ना चाहिये । तथा बहरेपनमें कर्णशूलोक्त औषध छोड़ना चाहिये ॥ २४ ॥

अपामार्गक्षारतैलम् ।

अपामार्गक्षारजले तत्कृतकल्केन साधितं तिलजम् ।
अपहरति कर्णनादं बाधिर्यं चापि पूरणतः ॥ २५ ॥

अपामार्गक्षारके जलमें अपामार्गके ही कल्कसे सिद्ध तिलतैलको कानमें डालनेसे कर्णनाद व बहिरापन नष्ट होता है ॥ २५ ॥

सर्जिकादितैलम् ।

सर्जिका मूलकं शुष्कं हिंगु कृष्णा महौषधम् ।
शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं शुक्तचतुर्गुणम् ।
प्रणादशूलबाधिर्यं स्रावं चाशु व्यपोहति ॥ २६ ॥

सज्जीखार, सूखी मूली, हींग, छोटी पीपल, सोंठ व सौंफके कल्क तथा चतुर्गुण सिरका मिलाकर सिद्ध तैल शीघ्र ही कर्णनाद, बाधिर्य और स्रावको नष्ट करता है ॥ २६ ॥

दशमूलीतैलम् ।

दशमूलीकषायेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
एतत् कल्कं प्रदायैव बाधिर्ये परमौषधम् ॥ २७ ॥

दशमूलके काढ़े व कल्कसे सिद्ध तैल बाधिर्यकी परमौषध है ॥ २७ ॥

बिल्वतैलम् ।

फलं बिल्वस्य मूत्रेण पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ।
साजक्षीरं हरेत्तद्धि बाधिर्यं कर्णपूरणे ॥ २८ ॥

एष एव विधिः कार्यः प्रणादे नस्यपूर्वकः ।
गुडनागरतोयेन नस्यं स्यादुभयोरपि ॥ २९ ॥

बेलके फलको गोमूत्रके साथ पीस बकरीके दूधमें मिला तैल सिद्ध कर कानमें छोड़नेसे बाधिर्य नष्ट होता है । यही विधि नस्यपूर्वक कर्णनादमें करनी चाहिये। तथा दोनोंमें गुड़ व सोंठके जलसे नस्य लेना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

कर्णस्रावचिकित्सा ।

चूर्णं पञ्चकषायाणां कपित्थरससंयुतम् ।
कर्णस्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना सह ॥ ३० ॥
मालतीदलरसमधुना पूरितमथवा गवां मूत्रैः ।
दूरेण परित्यज्यते च श्रवणयुगं पूतिरोगेण ॥३१ ॥
हरितालं सगोमूत्रं पूरणं पूतिकर्णजित् ।
सर्जत्वक्चूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलजो रसः ।
मधुना संयुतः साधु कर्णस्रावे प्रशस्यते ॥ ३१ ॥

पञ्चकषाय (वच, अडूसा, प्रियंगु, पटोल, निम्ब) के चूर्णको कैथेके रस व शहदमें मिलाकर कानमें छोड़ना हितकर है । तथा चमेलीकी पत्तीके रसको शहदके साथ अथवा गोमूत्रके साथ कानमें पूरण करनेसे दुर्गन्धित कर्णता नष्ट होती है । इसी प्रकार हरिताल व गोमूत्रके अथवा रालकी छालके चूर्णको कपासके रसमें व शहदमें मिला कानमें डाले तो कर्णस्राव शान्त होता है ॥ ३०-३२ ॥

जम्ब्वादिरसः ।

जम्ब्वाम्रपत्रं तरुणं समांशं
कपित्थकार्पासफलं च सार्द्रम् ।
क्षुत्त्वा रसं तन्मधुना विमिश्रं
स्रावापहं संप्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३३ ॥
एतैः श्रृतं निम्बकरञ्जतैलं
ससार्षपं स्रावहरं प्रदिष्टम् ॥ ३४ ॥
पुटपाकविधिस्विन्नहस्तिविड्जातगोण्डकः ।
रसः सतैलसिन्धूत्थः कर्णस्रावहरः परः ॥ ३५ ॥

मुलायम जामुन व आमकी पत्ती तथा कैथा व कपासका फल प्रत्येक समान भाग ले रस निकाल शहद मिलाकर कानमें छोड़नेसे कर्णस्राव नष्ट होता है । अथवा इन्हींसे सिद्ध नीम व कञ्जीका तैल सरसोंके तैलके साथ स्रावको नष्ट करता है । तथा पुटपाक विधिसे स्विन्न हाथीकी वींटके गोलेका रस तैल व सेंधानमकके साथ कर्णस्रावको नष्ट करता है ॥ ३३-३५ ॥

कर्णनाडीचिकित्सा ।

शम्बूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत् ।
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ ३६ ॥
निशागन्धपले पक्वं कटुतैलं पलाष्टकम् ।
धूस्तूरपत्रजरसे कर्णनाडीजिदुत्तमम् ॥ ३७ ॥

घोंघेके मांससे कडुए तैलको पकाकर कानमें छोड़नेसे कानका नासूर शान्त होता है । इसी भांति हल्दी व गन्धक प्रत्येक ४ तो०, कडुआ तैल ३२ तो० धतूरेके पत्तेके रसमें सिद्ध कर कानमें छोड़नेसे कानके नासूरको नष्ट करता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

कर्णप्रतिनाहचिकित्सा ।

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् ।
ततो विरिक्तशिरसः क्रियां प्राप्तां समाचरेत् ॥३८॥

कर्णप्रतीनाहमें, स्नेहन, स्वेदन तथा शिरोविरेचन कर उचित चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

विविधा योगाः ।

कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यात्क्षतविसर्पवत् ।
नाडीस्वेदोऽथ वमनं धूममूर्ध्वविरेचनम् ॥ ३९ ॥
विधिश्च कफहा सर्वः कर्णकण्डूं व्यपोहति ।
क्लेदयित्वा तु तैलेन स्वेदेन प्रतिलाप्य च ॥ ४० ॥
शोधयेत्कर्णगूथं तु भिषक् सम्यक् शलाकया ।
निर्गुण्डीस्वरसस्तैलं सिन्धुधूमरजो गुडः ॥ ४१ ॥
पूरणात्पूतिकर्णस्य शमनो मधुसंयुतः ।
जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् ॥ ४२ ॥

कर्णपाककी चिकित्सा क्षतविसर्पके समान करनी चाहिये । कफजन्य खुजलीको नाड़ीस्वेद, वमन, धूम, शिरोविरेचन और कफनाशकविधि नष्ट करती है । कर्णगूथमें तैल छोड़ स्वेदन ढीला कर सलाईसे उसे निकाल देना चाहिये । सम्भालूका स्वरस, तैल, सेंधानमक, गृहधूम, गुड़ व शहदको मिलाकर कानमें छोड़नेसे कानकी दुर्गंधि नष्ट होती है। तथा चमेलीकी पत्तीके रसमें पकाया तैल कानकी दुर्गन्धिको नष्ट करता है ॥ ३९-४२ ॥

वरुणादितैलम् ।

वरुणार्ककपित्थाम्रजम्बूपल्लवसाधितम् ।
पूतिकर्णापहं तैलं जातीपत्ररसेन वा ॥ ४३ ॥

वरुण, आक, कैथा आम व जामुनकी पत्तीके रस अथवा केवल चमेलीकी पत्तीके रससे सिद्ध तैल कानकी दुर्गन्धको नष्ट करता है ।

कर्णक्रिमिचिकित्सा ।

सूर्यावर्तकस्वरसं सिन्धुवाररसस्तथा ।
लाङ्गलीमूलजरसं त्र्यूषणेनावचूर्णितम् ॥ ४४ ॥
पूरयेत्क्रिमिकर्णं तु जन्तूनां नाशनं परम् ।
क्रिमिकर्णकनाशार्थं क्रिमिघ्नं योजयेद्विधिम् ॥४५ ॥

वार्ताकुधूमश्च हितः सर्षपस्नेह एव च ।
हलिसूर्यावर्तव्योपस्वरसेनातिपूरिते ॥ ४६ ॥
कर्णे पतन्ति सहसा सर्वास्तु क्रिमिजातयः ।
नीलबुह्मारसस्तैलसिन्धुकाञ्जिकसंयुतः ॥ ४७ ॥
कदुष्णः पूरणात्कर्णे निःशेषक्रिमिपातनः ।
धूपनः कर्णदौर्गन्ध्ये गुग्गुलुः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ४८ ॥

सूर्यावर्तका स्वरस, सम्भालूका रस तथा कलिहारीका रस त्रिकटुके चूर्णके साथ कानमें छोड़नेसे कानके कीड़े नष्ट होते हैं । तथा कानके क्रिमिनाशार्थ क्रिमिघ्नविधिका प्रयोग करना चाहिये । इसके लिये बैंगनका धुआँ तथा सरसोंका तैल भी उत्तम है । कलिहारी, सूर्यावर्त और त्रिकटुके स्वरससे कानको भरनेसे कीड़े गिर जाते हैं । इसी प्रकार नीलका रस, तैल, सेंधानमक व काञ्जीको मिलाकर कुछ गरम गरम कानमें छोड़नेसे समग्र कीड़े गिर जाते हैं । तथा कानकी दुर्गंधिमें गुग्गुलकी धूप देना श्रेष्ठ है ॥ ४४–४८ ॥

धावनादि ।

राजवृक्षादितोयेन सुरसादिजलेन वा ।
कर्णप्रक्षालनं कार्यं चूर्णैरेतैः प्रपूरणम् ॥ ४९ ॥
घृतं रसाञ्जनं नार्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम् ।
प्रशस्यते चिरोत्थेऽपि स्रावे पूतिकर्णके ॥ ५० ॥

राजवृक्षादि अथवा सुरसादिके क्काथसे कानको धोना तथा इन्हींका चूर्ण छोड़ना तथा घी, रसौंत, स्त्रीका दूध और शहद मिलाकर छोड़नेसे पुराने बहते हुए दुर्गन्धियुक्त कानको शुद्ध करता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

कुष्ठादितैलम् ।

कुष्ठहिंगुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः ।
पूतिकर्णापहं तैलं वस्तमूत्रेण साधितम् ॥ ५१ ॥

कूठ, हींग, वच, देवदारु, सौंफ, सोंठ, व सेंधानमक इनके कल्कको बकरेके मूत्रमें मिलाकर सिद्ध किया गया तैल कानकी दुर्गंधिको नष्ट करता है ॥ ५१ ॥

कर्णविद्रधिचिकित्सा ।

विद्रधौ चापि कुर्वीत विद्रध्युक्तं हि भेषजम् ।

कर्ण विद्रधिमें विद्रधिकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

कर्णपालीपोषणम् ।

शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्डबीजकैः ॥ ५२ ॥
तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीनां पुष्टिकृत्परम् ।
गुञ्जाचूर्णयुते जाते माहिषे क्षीर उद्धृतम् ॥ ५३ ॥
नवनीतं तदभ्यङ्गात्कर्णपालिविवर्धनम् ।
विषगर्भं तिक्ततुम्बीतैलमष्टगुणे खरात् ॥ ५४ ॥
मूत्रे पक्वं तदभ्यङ्गात्कर्णपालिविवर्धनम् ।
कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि साधितम् ॥ ५५ ॥
आनूपमांसक्काथेन पालीपोषणवर्धनम् ।
माहिषनवनीतयुतं सप्ताहं धान्यराशिपरिवासितम् ५६
नवमुसलिकन्दचूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालीनाम् ।

शतावरी, असगन्ध, क्षीरविदारी व एरण्डबीजके कल्क दूधके सहित पकाया तैल कर्णपालियोंको पुष्ट करता है । इसी प्रकार गुञ्जाके चूर्णके साथ पकाये भैंसीके दूधसे निकाले मक्खनकी मालिश करनेसे कर्णपाली पुष्ट होता है । इसी प्रकार सींगियाके कल्क, कडुई तोम्बीके बीजोंके तैल तथा गधेका अठगुना मूत्र छोड़कर सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे कर्णपाली बढ़ती है । तथा जीवनीय कल्कसे दूधके साथ आनूप मांसका क्काथ छोड़कर सिद्ध तैलकी मालिशसे कर्णपालीको पुष्ट करता तथा बढ़ाता है । इसी प्रकार भैंसीके मक्खनको सात दिन धान्यराशिमें रख नवीन मुसलीकन्दके चूर्णको छोड़ मलनेसे कर्णपालीको बढ़ाता है ॥ ५२–५६ ॥–

दुर्व्यधादिचिकित्सा ।

कर्णस्य दुर्व्यधे भूते संरम्भो वेदना भवेत् ॥५७ ॥
तत्र दुर्व्यधरोहार्थं लेपो मध्वाज्यसंयुतैः ।
मधूकयवमाञ्जिष्ठारुबुमूलैः समन्ततः ॥ ५८ ॥
अनेकधा तु च्छिन्नस्य सन्धिः कर्णस्य वै भिषक् ।
यो यथाभिनिविष्टः स्यात्तं तथा विनियोजयेत्॥५९॥
धान्याम्लोष्णोदकाभ्यां तु सेको वातेन दूषिते ।
रक्तपित्तेन पयसा श्लेष्मणा तूष्णवारिणा ॥ ६० ॥
ततः सीव्य स्थिरं कुर्यात्संधिं बन्धेन वा पुनः ।
मध्वाज्येन ततोऽभ्यज्य पिचुना सन्धिवेष्टनम् ।
कपालचूर्णेन ततश्चूर्णयेत्पथ्ययाथवा ॥ ६१ ॥

कानके ठीक व्यध न होनेपर सूजन तथा पीड़ा होती है । अतः उसके भरनेके लिये शहद व घीसे मिलित महुआ, यव, मजीठ व एरण्ड तैलका लेप करना चाहिये । तथा अनेक प्रकारसे कटे कानकी सन्धि जो जहां बैठ सके, उसे वहां लगाना चाहिये । वातदूषितमें काञ्जी व गरम जलका सेक, रक्तपित्तसे दूषितमें दूधसे, तथा कफसे दूषितमें गरम जलसे सेक करना चाहिये । फिर सींकर अथवा बंधसे संधिको ठीक करना चाहिये । फिर घी, शहद चुपड़कर खपड़ेके चूर्ण अथवा छोटी हर्रोंके चूर्णको उर्राना चाहिये ॥ ५७–६१ ॥

इति कर्णरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ नासारोगाधिकारः ।

पीनसचिकित्सा ।

पञ्चमूलीशृतं क्षीरं स्याच्चित्रकहरीतकी ।
सर्पिर्गुडः षडङ्गश्च यूषः पीनसशान्तये ॥ १ ॥

पीनसकी शांतिके लिये पञ्चमूलसे सिद्ध दूध चित्रक व हरीतकी अथवा सर्पिर्गुड और षडङ्गयूष इनका प्रयोग करना चाहिये॥१॥

व्योषादिचूर्णम् ।

व्योषचित्रकतालीसतिन्तिडीकाम्लवेतसम् ।
सचव्याजाजितुल्यांशमेलात्वक्पत्रपादिकम् ।
व्योषादिकं चूर्णमिदं पुराणगुडसंयुतम् ।
पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥ ३ ॥

त्रिकटु, चीता, तालीशपत्र, तितिडीक, अम्लवेत, चव्य, व जीरा प्रत्येक समान भाग, इलायची, दालचीनी, तेजपात प्रत्येक चतुर्थांश ले चूर्णकर पुराना गुड़ मिलाकर सेवन करनेसे जुखाम, श्वास, कास नष्ट होते तथा रुचि और स्वर उत्तम होते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

पाठादितैलम् ।

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ।
दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं सम्यक्तु पीनसे ॥ ४ ॥

पाढ़, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, छोटी पीपल, चमेलीकी पत्ती और दंतीसे सिद्ध तैलका नस्य देनेसे पीनसमें लाभ होता है ॥४॥

व्याघ्र्यादितैलम् ।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसव्योषसैन्धवैः ।
पाचितं नावनं तैलं पूतिनासागदं जयेत् ॥ ५ ॥

छोटी कटेरी, दंती, वच, सहिंजन, तुलसी, त्रिकटु व सेंधानमकसे सिद्ध तैलके नस्यसे नासाकी दुर्गंध नष्ट होती है ॥ ५ ॥

त्रिकट्वादितैलम् ।

त्रिकटुविडङ्गसैन्धवबृहतीफलशिग्रुसुरसदंतीभिः ।
तैलं गोजलसिद्धं नस्यं स्यात्पूतिनस्यस्य ॥ ६ ॥

त्रिकटु, वायविडंग, सेंधानमक, बड़ी कटेरीका फल, सहिंजन, तुलसी व दन्तीके कल्कसे मिलित गोमूत्रमें सिद्ध तैलके नस्य देनेसे नासाकी दुर्गंध नष्ट होती है ॥ ६ ॥

कालिङ्गादिनस्यम् ।

कालिङ्गहिङ्गुमरिचलाक्षासुरसकट्फलैः ।
कुष्ठोमाशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥ ७ ॥
तैरेव मूत्रसंयुक्तैः कटु तैलं विपाचयेत् ।
अपीनसे पूतिनस्ये शमनं कीर्तितं परम् ॥ ८ ॥

इन्द्रयव, हींग, मिर्च, लाख, तुलसी, कैफरा, कूठ, वच, सहिंजन व वायविडंगके चूर्णका नस्य देना चाहिये । इन्हींमें गोमूत्र मिलाकर पकाया गया कडुआ तैल पीनस और नासाकी दुर्गन्धको शान्त करता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

नासापाकचिकित्सा ।

नासापाके पित्तहृत्संविधानं
कार्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरं च ।
हृत्वा रक्तं क्षीरिवृक्षत्वचश्च
योज्याः सेकाः सघृताश्च प्रदेहाः ॥ ९ ॥
पूयास्रक्पित्तघ्नाः कषाया नावनानि च ।

नासापाकमें बाह्य तथा आभ्यन्तर पित्तहर चिकित्सा करनी चाहिये । रक्त निकालना चाहिये । तथा क्षीरी वृक्षों (औदुम्बरादि) की छालके क्वाथका सिंचन तथा घीके सहित लेप लगाना चाहिये । तथा मवाद, रक्त व रक्तपित्तनाशक काढे और नस्य देना हितकर है ॥ ९ ॥

शुण्ठ्यादितैलं घृतं वा ।

शुण्ठीकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्ककषायवत् ।
साधितं तैलमाज्यं वा नस्यं क्षवथुरुक्प्रणुत् ॥ १० ॥

सोंठ, कूठ, छोटी पीपल, बेलका गुदा व मुनक्काके कल्क और काढेसे सिद्ध तैल अथवा घीका नस्य देनेसे छींक तथा पीड़ा शान्त होती है ॥ १० ॥

दीप्तानाहचिकित्सा ।

दीप्ते रोगे पैत्तिकं संविधानं
सर्वं कुर्यान्माधुरं शीतलं च ।
नासानाहे स्नेहपानं प्रधानं
स्निग्धा धूमा मूर्ध्नि बस्तिश्च नित्यम् ॥ ११ ॥

दीप्तरोगमें पैत्तिक चिकित्सा समस्त मधुर व ठण्डी करनी चाहिये । तथा नासानाहमें स्नेहपान, स्निग्धधूम, तथा शिरोबस्तिका प्रयोग नित्य करना चाहिये ॥ ११ ॥

प्रतिश्यायचिकित्सा ।

वातिके तु प्रतिश्याये पिबेत्सर्पिर्यथाक्रमम् ।
पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन च ॥ १२ ॥
नस्यादिषु विधिं कृत्स्नमवेक्षेतार्दितेरितम् ।
पित्तरक्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ॥ १३ ॥
परिषेकान्प्रदेहांश्च कुर्यादपि च शीतलान् ।
कफजे सर्पिषा स्निग्धं तिलमाषविपक्वया ॥ १४ ॥
यवाग्वा वामयित्वा वा कफघ्नं क्रममाचरेत् ।

वातिक प्रतिश्यायमें पांचों लवणोंसे सिद्ध अथवा वातनाशक गणसे सिद्ध घी पिलाना चाहिये । तथा अर्दित रोगमें कहे नस्य आदि देने चाहियें । पित्तरक्तज प्रतिश्यायमें मीठी चीजोंसे सिद्ध घी पिलाना चाहिये तथा शीतल सेक तथा लेप करना चाहिये। और कफज प्रतिश्यायमें घीसे स्नेहन कर तिल तथा उड़दसे पकायी यवागूसे वमन कराकर कफनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १२-१४ ॥

धूमयोगः ।

दार्वीङ्गुदीनिकुम्भैश्च किणिह्या सुरसेन च ॥ १५ ॥
वर्तयोऽत्र कृता योज्या धूमपाने यथाविधि ।
अथवा सघृतान्सक्तून्कृत्वा मल्लकसम्पुटे ।
नवप्रतिश्यायवतां धूमं वैद्यः प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥

दारुहल्दी, इंगुदी, दन्ती, लटजीरा व तुलसीसे बनायी वर्त्तीका धूम पीना चाहिये । अथवा घीके सहित सत्तू छिद्रयुक्त सम्पुटमें रखकर धूम पीना चाहिये । यह प्रयोग नये प्रतिश्यायमें करना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥

शीतलजलयोगः ।

यः पिबति शयनकाले शयनारूढः सुशीतलं भूरि ।
सलिलं पीनसयुक्तः स मुच्यते तेन रोगेण ॥१७॥

जो सोनेके समय यथेष्ट ठण्डा जल पीता है, उसका पीनस-रोग नष्ट होता है ॥ १७ ॥

जयापत्त्रयोगः ।

पुटपक्वं जयापत्रं सिन्धूत्थतैलसमन्वितम् ।
प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥ १८ ॥

पुटपाक--साधित अरणीके पत्तोंमें सेंधानमक तथा तैल मिलाकर सेवन करनेसे समस्त प्रतिश्याय दूर होते हैं ॥ १८ ॥

अन्ये उपायाः ।

शोषणं गुडसंयुक्तं स्निग्धदध्यम्लभोजनम् ।
नवप्रतिश्यायहरं विशेषात्कफपाचनम् ॥ १९ ॥
प्रतिश्याये नवे शस्तो यूषश्चिञ्चादलोद्भवः ।
ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरेचनैः ॥ २० ॥
शिरसोऽभ्यञ्जनस्वेदनस्यकट्वम्लभोजनैः ।
वमनैर्घृतपानैश्च तान्यथास्वमुपाचरेत् ॥ २१ ॥

काली मिर्च व गुड़के साथ स्नेहयुक्त (बिना मक्खन निकाले) दहीके साथ भोजन नवीन जुकामको नष्ट करता तथा कफका पाचन होता है । नवीन जुकाममें इमलीकी पत्तीका यूष हितकर है। फिर कफ पक जाने पर शीर्षविरेचनसे निकालना चाहिये । शिरकी मालिश, स्वेदन, नस्य, कड़वे तथा खट्टे भोजन, वमन व घृतपान जो उचित हो, करना चाहिये ॥ १९-२१ ॥

माषयोगः ।

भक्षयति भुक्तमात्रे सलवणमुत्स्विन्नमाषमत्युष्णम् ।
स जयति सर्वसमुत्थं चिरजातं च प्रतिश्यायम् २२

भोजनकरनेपर ही उबाले गरम गरम उड़दको जो खाता है, वह सब दोषोंसे उत्पन्न पुराने प्रतिश्यायको भी जीतता है ॥ २२ ॥

अवपीडः ।

पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गं मरिचानि च ।
अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणः ॥ २३ ॥

छोटी पीपल, सहिंजनके बीज, वायविडङ्ग, व काली मिर्चका नस्य प्रतिश्यायको नष्ट करता है ॥ २३ ॥

क्रिमिचिकित्सा ।

समूत्रपिष्टाश्चोद्दिष्टाः क्रियाः क्रिमिषु योजयेत् ।
नावनार्थं क्रिमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ।
शेषाणां तु विकाराणां यथास्वं स्याच्चिकित्सितम्॥२४

मूत्रमें पीसकर कही गयी क्रियाएँ क्रिमि रोगमें करनी चाहियें । तथा नस्यके लिये क्रिमिघ्न औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये । शेष रोगोंकी यथादोष चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २४ ॥

करवीरतैलम् ।

रक्तकरवीरपुष्पं जात्यशनकमल्लिकायाश्च ।
एतैः समं तु तैलं नासार्शोनाशनं श्रेष्ठम् ॥ २५ ॥

लाल कनेरके फूल, चमेली, विजैसार, और मल्लिकाके फूलोंके साथ सिद्ध तैल नासार्शको नष्ट करता है ॥ २५ ॥

गृहधूमादितैलम् ।

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः ।
सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम्॥२६॥

गृहधूम, छोटी पीपल, देवदारु, जवाखार, कञ्जा, सेंधानमक और अपामार्गके बीजोंसे सिद्ध तैल नासार्शके लिये हितकर है ॥ २६ ॥

चित्रकादितैलम् ।

चित्रकचविकादीप्यकनिदिग्धिकाकरञ्जबीजलवणार्कैः।
गोमूत्रयुतं सिद्धं तैलं नासार्शसां विहितम् ॥ २७ ॥

चीतकी, जड़, चव्य, अजवायन, छोटी कटेरी, कञ्जा, लवण व आकके कल्क व गोमूत्रसे सिद्ध तैल नासार्शके लिये हितकर है ॥ २७ ॥

चित्रकहरीतकी।

चित्रकस्यामलक्याश्च गुडूच्या दशमूलजम्।
शतं शतं रसं दत्त्वा पथ्याचूर्णाढकं गुडात् ॥२८॥
शतं पचेद् घनीभूते पलं द्वादशकं क्षिपेत्।
व्योषत्रिजातयोः क्षारात्पलार्धमपरेऽहनि ॥ २९ ॥
प्रस्थार्धं मधुनो दत्त्वा यथाग्न्यद्यादतन्द्रितः।
वृद्धयेऽग्नेः क्षयं कासं पीनसं दुस्तरं क्रिमीन्।
गुल्मोदावर्तदुर्नामश्वासान्हन्ति रसायनम् ॥ ३० ॥

चीतकी जड़, आंवला; गुर्च, दशमूल, प्रत्येक ५ सेर रस (क्वाथ) में छोटी हर्रोंका चूर्ण ३ सेर १६ तो०, गुड़ ५ सेर छोड़कर पकाना चाहिये, गाढ़ा हो जानेपर मिलित त्रिकटु, त्रिफला ४८ तोले (अर्थात् प्रत्येक ८ तोला) जवाखार २ तोला छोड़ना चाहिये । दूसरे दिन ३२ तोला शहद मिलाना चाहिये, फिर अग्निके अनुसार सावधानीसे सेवन करना चाहिये । इससे अग्नि बढ़ती तथा क्षय, कास, कठिन पीनस, क्रिमि, गुल्म, उदावर्त, अर्श, व श्वासरोग नष्ट होते हैं। यह रसायन है ॥ २८-३० ॥

इति नासारोगाधिकारः समाप्तः।

अथ नेत्ररोगाधिकारः।

सामान्यतश्चिकित्साक्रमः।

लंघनालेपनस्वेदशिराव्यधविरेचनैः।
उपाचरेदभिष्यन्दानञ्जनाश्च्योतनादिभिः ॥ १ ॥

लंघन, आलेपन, स्वेद, शिराव्यध, विरेचन, अञ्जन, तथा आश्च्योतनादिसे अभिष्यन्दोंकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

श्रीवासादिगुण्डनम्।

श्रीवासातिविषालोध्रैश्चूर्णितैरल्पसैन्धवैः।
अव्यक्तेऽक्षिगदे कार्यं प्लोतस्थैर्गुण्डनं बहिः ॥ २ ॥

देवदारु, अतीस, व लोध्रके चूर्णमें थोड़ा सेंधानमक मिला कपड़ेमें बाहर रगड़ना चाहिये जबतक नेत्ररोगका पूर्वरूप हो ॥ २ ॥

लंघनप्राधान्यम्।

अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणज्वराः।
पञ्चैते पञ्चरात्रेण प्रशमं यान्ति लङ्घनात् ॥ ३ ॥

नेत्र और पेटके रोग, जुखाम, व्रण और ज्वर ये पांचों रोग लंघन करनेसे पांच रात्रिमें ही शान्त हो जाते हैं ॥ ३ ॥

पाचनानि।

स्वेदः प्रलेपस्तिक्तान्नं सेको दिनचतुष्टयम्।
लंघनं चाक्षिरोगाणामामानां पाचनानि षट् ।
अञ्जनं पूरणं क्वाथपानमामे न शस्यते ॥ ४ ॥

स्वेद, प्रलेप, तिक्तान्न, सेक, नेत्र दूखनेपर चार दिन व्यतीत होजाना, लंघन यह छः आम नेत्ररोगोंके पाचन हैं । तथा अञ्जन, पूरण और क्वाथपान आममें हितकर नहीं है ॥ ४ ॥

पूरणम्।

धात्रीफलनिर्यासो नवदृक्कोपं निहन्ति पूरणतः।
सक्षौद्रसैन्धवो वा शिग्रूद्भवपत्ररससेकः ॥ ५ ॥
दार्वीरसाञ्जनं वापि स्तन्ययुक्तं प्रपूरणम्।
निहन्ति शीघ्रं दाहाश्रुवेदनाः स्यन्दसम्भवाः ॥६ ॥

आंवलेके फलका रस पूरण करनेसे नवीन नेत्ररोगको नष्ट करता है । अथवा शहद व सेंधानमक(के)साथ सहिंजनके पत्तोंके रसका सेक । अथवा दारुहल्दीके क्वाथसे यथाविधि साधित रसौंतको स्त्रीके दूधमें पीसकर छोड़नेसे अभिष्यन्दजन्य जलन, अश्रु और पीड़ा शान्त होते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

करवीरजलसेकः।

करवीरतरुणकिसलयच्छेदोद्भवबहुलसलिलसंपूर्णम्।
नयनयुगं भवति दृढं सहसैव तत्क्षणात्कुपितम् ॥ ७ ॥

कनेरकी मुलायम पत्तियोंके तोड़नेसे निकला जल आंखमें भरनेसे सहसा कुपित नेत्र दृढ़ होते हैं ॥ ७ ॥

शिखरियोगः।

शिखरिमूलं ताम्रकभाजने स्तोकसैन्धवोन्मिश्रम्।
मस्तु निघृष्टं भरणाद्धरति नवं लोचनोत्कोपम् ॥८॥

अपामार्गकी जड़, थोड़े सेंधानमक और दहीके तोड़को ताम्रपात्रमें घिसकर आँखमें छोड़नेसे नवीन-नेत्ररोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

लेपाः।

सैन्धवदारुहरिद्रागैरिकपथ्यारसाञ्जनैः पिष्टैः।
दत्तो बहिः प्रलेपो भवत्यशेषाक्षिरोगहरः ॥ ९ ॥
तथा शाखकं लोध्रं घृतभृष्टं बिडालकः।
घृतभ्रष्टहरीतक्या तद्वत्कार्यो बिडालकः ॥ १० ॥
शालाक्येऽक्ष्णोर्बहिर्लेपो बिडालक उदाहृतः।
गिरिमृच्चन्दनमागरखटिकांशयोजितो बहिर्लेपः ११
कुरुते वचया मिश्रो लोचनमगदं न सन्देहः ॥१२॥
भूम्यामलकी घृष्टा सैन्धवगृहवारियोजिता ताम्रे।
याता घनत्वमक्ष्णोर्जयति बहिर्लेपतः पीडाम् ॥१३॥

सेंधानमक, दारुहल्दी, गेरू, छोटी हर्र व रसौंतको पीसकर नेत्रके बाहर लेप लगानेसे समस्त नेत्ररोग नष्ट होते हैं। इसी प्रकार सावर लोधको घीमें भूनकर शलाकासे नेत्रके बाहर लेप लगाना चाहिये । इसी प्रकार हर्रको घीमें भूनकर विडालक लेप लगाना चाहिये । शालाक्य तन्त्रमें नेत्रोंके बाहर लेप लगाना "विडालक" कहा जाताहै। अथवा गेरू, चन्दन, सोंठ, खड़िया और वच समान भाग ले नेत्रके बाहर लेप करना चाहिये । इसी प्रकार भुईं आँवलेको ताम्रके वर्तनमें सेंधानमक और काञ्जीके साथ घिसकर गाढा हो जानेपर बाहर लेप करनेसे नेत्रपीड़ा शान्त होती है ॥ ९-१३ ॥

आश्च्योतनम् ।

आश्च्योतनं मारुतजे क्वाथो विल्वादिभिर्हितः ।
कोष्णः सैरण्डबृहतीतर्कारीमधुशिग्रुभिः ॥ १४ ॥
एरण्डपल्लवे मूले त्वचि चाजं पयः शृतम् ।
कण्टकार्याश्च मूलेषु सुखोष्णं सेचने हितम् ॥ १५ ॥

वातजन्य नेत्ररोगमें विल्वादि पञ्चमूल, एरण्ड, बड़ी कटेरी, अरणी, व मीठे सहिंजनेके क्वाथका गुनगुना गुनगुना आश्च्योतन करना चाहिये । एरण्डके पत्ते, छाल और जड़से सिद्ध बकरीके दूध अथवा कटेरीकी जड़से सिद्ध गुनगुने गुनगुने दूधका सिंचन करना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

अञ्जनादिसमयनिश्चयः ।

सम्पक्वेऽक्षिगदे कार्यं चाञ्जनादिकमिष्यते ।
प्रशस्तवर्त्मता चाक्ष्णोः संरम्भाश्रुप्रशान्तता ॥ १६ ॥
मन्दवेदनता कण्डूः पक्वाक्षिगदलक्षणम् ।
अञ्जनादिविधिश्चाग्रे निखिलेनाभिधास्यते ॥ १७ ॥

सम्पक्व नेत्रदोषोंमें अञ्जनादि लगाना चाहिये । विन्नियोंका स्वच्छ होना नेत्रोंकी लालिमा व आंसुओंका कम होना, पीड़ा कम होना, खुजलीका होना, पक्व नेत्ररोगके लक्षण हैं । ऐसी अवस्थाके लिये आगे अञ्जनादि लिखते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

बृहत्यादिवर्तिः ।

बृहत्येरण्डमूलत्वक् शिग्रोर्मूलं ससैन्धवम् ।
अजाक्षीरेण पिष्टं स्याद्वर्तिर्वाताक्षिरोगनुत् ॥ १८ ॥

बड़ी कटेरी, एरण्डकी जड़की छाल, सहिंजनकी जड़की छाल व सेंधानमक इन सबको पीसकर बकरीके दूधमें बत्ती बनाकर वातज-नेत्ररोगमें लगाना चाहिये ॥ १८ ॥

हरिद्राद्यञ्जनम् ।

हरिद्रे मधुकं पथ्यां देवदारु च पेषयेत् ।
आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदञ्जनम् ॥ १९ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मौरेठी, हर्र व देवदारुको पीसकर बकरीके दूधमें लगाना अभिष्यन्दके लिये हितकर है ॥ १९ ॥

गैरिकाद्यञ्जनम् ।

गैरिकं सैन्धवं कृष्णां नागरं च यथोत्तरम् ।
पिष्टं द्विरंशतोऽद्भिर्वा गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥ २० ॥

गेरू १ भाग, सेंधानमक २ भाग, छोटी पीपल ४ भाग, सोंठ ८ भाग इनको जलमें पीस गोली बनाकर अञ्जन लगाना चाहिये ॥ २० ॥

पित्तजनेत्ररोगे आश्च्योतनम् ।

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वनिशामलकपद्मकैः ।
शीतैर्मधुसितायुक्तैः सेकः पित्ताक्षिरोगनुत् ॥ २१ ॥
द्राक्षामधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयैः शृतं पयः ।
प्रातराश्च्योतनं पथ्यं शोथशूलाक्षिरोगिणाम् ॥ २२ ॥

पुण्डरिया, मौरेठी, हल्दी, आंवला व पद्माखके शीतकषायमें शहद व शक्कर मिलाकर नेत्रमें छोड़नेसे पित्तज-नेत्ररोग शान्त होता है । अथवा मुनक्का, मौरेठी, मजीठ और जीवनीयगणकी औषधियोंसे सिद्ध दूध प्रातःकाल नेत्रमें छोड़नेसे नेत्रोंका शोथ व शूल नष्ट होता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

लोध्रपुटपाकाः ।

निम्बस्य पत्रैः परिलिप्य लोध्रं
स्वेदोऽग्निना चूर्णमथापि कल्कम् ।
आश्च्योतनं मानुषदुग्धयुक्तं
पित्तास्रवातापहमग्र्यमुक्तम् ॥ २३ ॥

लोधके कल्क अथवा चूर्णके ऊपर नीमकी पत्तीका लेप कर अग्निमें पका स्त्रीदुग्धमें मिलाकर नेत्रमें आश्च्योतन करना पित्तज और वातज नेत्ररोगोंको शान्त करता है ॥ २३ ॥

कफजचिकित्सा ।

कफजे लङ्घनं स्वेदो नस्यं तिक्तान्नभोजनम् ।
तीक्ष्णैः प्रधमनं कुर्यात्तीक्ष्णैश्चैवोपनाहनम् ॥ २४ ॥
फणिज्जकास्फोतकपित्थ[1]विल्वपत्तूरपीलुसुरसार्जकभङ्गैः ।
स्वेदं विदध्यादथवा प्रलेपं बर्हिष्टशुण्ठीसुरदारुकुष्ठैः ।
शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डः सुखोष्णैःस्वल्पसैन्धवैः ।
धार्यश्चक्षुषि संलेपाच्छोथकण्डूरुजापहः ॥ २६ ॥
वल्कलं पारिजातस्य तैलकाञ्जिकसैन्धवम् ।
कफोद्भूताक्षिशूलघ्नं तरुघ्नं कुलिशं तथा ॥ २७ ॥

---

1 कपित्थ इति पाठान्तरम् । तन्मते कैथाकी छाल ।

कफजमें लंघन, स्वेद, नस्य, तिक्तान्न भोजन, तीक्ष्ण औषधियोंका नस्य तथा तीक्ष्ण ही पुल्टिस बांधनी चाहिये। अथवा मरुवा, आस्फोता, पारस, पीपल, विल्व, पतूर, (पकरिया अथवा लाल चन्दन) पीलु, तुलसी, वनतुलसीके पत्तोंको गरम कर स्वेद करना चाहिये । अथवा सुगन्धवाला, सोंठ, देवदारु व कूठका लेप करना चाहिये । इसी प्रकार सोंठ व नीमकी पत्तीके पिंडमें थोड़ा नमक मिला गरमकर गुनगुना नेत्रोंमें धारण करनेसे शोथ खुजली और पीड़ा मिटती है । इसी प्रकार पारिजातकी छाल, तैल, काञ्जी और सेंधानमक मिलाकर लेप करनेसे कफज नेत्रशूल इस प्रकार नष्ट होता है जैसे वृक्षको वज्र नष्ट करता है ॥ २४-२७ ॥

सैन्धवाद्याश्च्योतनम् ।

ससैन्धवं लोध्रमथाज्यभृष्टं
सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम् ।
आश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्यात्
कण्डूं च दाहं च रुजां च हन्यात् ॥ २८॥

लोधको घीमें भून सेंधानमक मिला काञ्जीमें पीस सफेद कपड़ेमें बांधकर नेत्रमें निचोड़ना चाहिये । यह खुजली, जलन और पीड़ाको नष्ट करता है ॥ २८ ॥

सामान्यनियमाः ।

स्निग्धैरुष्णैश्च वातोत्थाः पित्तजा मृदुशीतलैः ।
तीक्ष्णरूक्षोष्णविशदैः प्रशाम्यन्ति कफात्मकाः ।
तीक्ष्णोष्णमृदुशीतानां व्यत्यासात्सान्निपातिकाः २९

चिकने व गरम पदार्थोंसे वातज, मीठे व शीतल पदार्थोंसे पित्तज, तेज रूखे गरम व फेलनेवाले पदार्थोंसे कफज तथा तीक्ष्ण, उष्ण, मृदु, व शीतलके सम्मिश्रणसे सन्निपातज रोग शान्त होते हैं ॥ २९ ॥

रक्ताभिष्यन्दचिकित्सा ।

तिरीटत्रिफलायष्टीशर्कराभद्रमुस्तकैः ।
पिष्टैः शीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः॥३०
कशेरुमधुकानां च चूर्णमम्बरसंयुतम् ।
न्यस्तमप्स्वान्तरीक्ष्यासु हितमाश्च्योतनं भवेत्३१॥

लोध, त्रिफला, मौरेठी, शक्कर व नागरमोथाको पीस ठण्डे जलमें मिलाकर नेत्रमें सिञ्चन करना रक्ताभिष्यन्दको नष्ट करता है । अथवा कशेरू और मौरेठीका चूर्ण कपड़ेमें बांध आकाशके जलमें डुबोकर नेत्रमें निचोड़ना हितकर है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

दार्व्यादिरसक्रिया ।

दार्वीपटोलमधुकं सनिम्बं पद्मकोत्पलम् ।
प्रपौण्डरीकं चैतानि पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ ३२ ॥
विपाच्य पादशेषं तु तत्पुनः कुडवं पचेत् ।
शीतीभूते तत्र मधु दद्यात्पादांशिकं ततः ॥ ३३ ॥
रसक्रियैषा दाहाश्रुरागरक्तरुजापहा ।

दारुहल्दी, परवलकी पत्ती, नीम, मौरेठी, पद्माख, नीलोफर, पुंडरिया, इनको चतुर्गुण जलमें मिलाकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर फिर पकाना चाहिये, गाढा हो जानेपर उतारकर चतुर्थांश शहद मिलाना चाहिये । यह रसक्रिया जलन, आंसू, लालिमा और रक्तकी पीड़ाको शान्त करती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

विशेषचिकित्सा ।

तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम् ॥ ३४ ॥
अक्ष्णोरपि समन्ताच्च पातनं तु जलौकसः ।
पित्ताभिष्यन्दशमनो विधिश्चाप्युपपादितः ॥ ३५॥

तिक्त घृतपान, अनेक वार विरेचन, नेत्रोंके चारों ओर जोंक लगाना तथा पित्ताभिष्यन्द नाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

धूपः ।

शिग्रुपल्लवनिर्यासः सुघृष्टस्ताम्रसंपुटे ।
घृतेन धूपितो हन्ति शोथघर्षाश्रुवेदनाः ॥ ३६ ॥

सहिंजनके पत्तोंके रसको घीके साथ ताम्रके पात्रमें घिस मिलाकर धूप देनेसे सूजन, किरकिराहट, आसुओंका गिरना और पीड़ा शांत होती है ॥ ३६ ॥

निम्बपत्रगुटिका ।

पिष्टैर्निम्बस्य पत्रैरतिविमलतरैर्जातिसिन्धूत्थमिश्रा ।
अन्तर्गर्भं दधाना पटुतरगुडिका पिष्टलोध्रेण सृष्टा ।
तूलैः सौवीरसार्द्रैरतिशयमृदुभिर्वेष्टिता सा समन्ता-
च्चक्षुःकोपप्रशान्तिं चिरमुपरि
दृशोर्भ्राम्यमाणा करोति ॥ ३७ ॥

साफ मुलायम नीमकी पत्ती पीस चमेलीकी पत्ती और सेंधानमक मिला गोली बनाकर ऊपरसे पीसे लोधको लपेटकर काञ्जीसे तर मुलायम रुईसे लपेटना चाहिये, इस गोलीको आंखोंके ऊपर अधिक समय तक घुमानेसे नेत्रकोप शांत होता है ॥ ३७॥

बिल्वपत्ररसपूरणम् ।

बिल्वपत्ररसः पूतः सैन्धवाज्येन चान्वितः ।
शुल्वे वराटिकाघृष्टो धूपितो गोमयाग्निना ॥ ३८ ॥

पयसालोडितश्चाक्ष्णोः पूरणाच्छोथशूलनुत् ।
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च स्रावे रक्ते च शस्यते ॥३९॥

बेलकी पत्तीके रसमें सेंधानमक और घी मिलाकर ताम्रके वर्तनमें कौड़ियोंके साथ घिस गायके गोबरकी आंचसे गरमकर दूध मिला आंखोंमें छोड़नेसे सूजन, शूल, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, स्राव और रक्तदोष शांत होते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

लवणादिसिञ्चनम् ।

सलवणकटुतैलं काञ्जिकं कांस्यपात्रे
घनितमुपलघृष्टं धूपितं गोमयाग्नौ ।
सपवनकफकोपं छागदुग्धावसिक्तं
जयति नयनशूलं स्रावशोथं सरागम् ॥४०॥

नमक और कडुए तैलके साथ काञ्जीको कासेके पात्रमें गाढ़ाकर पत्थरसे घिस गोबरके कण्डोंसे गरमकर बकरीके दूधमें मिलाकर आंखमें छोड़नेसे वात व कफके कोप, नेत्रशूल, स्राव, शोथ तथा लालिमा दूर होते हैं ॥ ४० ॥

अन्ये उपायाः ।

तरुस्थविद्धामलकरसः सर्वाक्षिरोगनुत् ।
पुराणं सर्वथा सर्पिः सर्वनेत्रामयापहम् ॥ ४१॥
अयमेव विधिः सर्वो मन्थादिष्वपि शस्यते ।
अशान्तौ सर्वथा मन्थे भ्रुवोरुपरि दाहयेत्॥५२

पेड़से तोड़े ताजे आंवलेका रस समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करता है । तथा पुराना घी समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करता है । यही सर्व विधि मन्थादिमें करनी चाहिये, यदि मन्थ शांत न हो तो भौंके ऊपर दागना चाहिये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

नेत्रपाकचिकित्सा ।

जलौकःपातनं शस्तं नेत्रपाके विरेचनम् ।
शिराव्यधं वा कुर्वीत सेका लेपाश्च शुक्रवत् ॥४३॥

नेत्रपाकमें जोंक लगाना, विरेचन, शिराव्यध करना चाहिये तथा शुक्रके समान लेप व सेक करना चाहिये ॥ ४३ ॥

विभीतकादिक्वाथः ।

विभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः ।
क्वाथो गुग्गुलुना पेयः शोथशूलाक्षिपाकहा ॥ ४४॥
पुष्पं च सव्रणं शुक्रं रागादींश्चापि नाशयेत् ।
एतैश्चापि घृतं पक्वं रोगांस्तांश्च व्यपोहति ॥४५॥

बहेड़ा, हर्र, आंवला, परवल, नीमकी छाल व अडूसाके क्वाथमें गुग्गुलु मिलाकर पीनेसे सूजन तथा दर्द तथा नेत्रपाक, फूला, व्रणयुक्त सूजन लालिमा आदि नष्ट होती है । तथा इन्हींसे पकाया घी भी इन रोगोंको नष्ट करता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

वासादिक्वाथः ।

आटरूषाभयानिम्बधात्रीमुस्ताक्षकूलकैः ।
रक्तस्रावं कफं हन्ति चक्षुष्यं वासकादिकम् ॥४६ ॥

अडूसा, हर्र, नीमकी छाल, आंवला, नागरमोथा, बहेड़ा, परवलका क्वाथ रक्तस्राव व कफको नष्ट करता तथा नेत्रोंके लिये हितकर है ॥ ४६ ॥

बृहद्वासादिः ।

वासां घनं निम्बपटोलपत्रं
तिक्तामृताचन्दनवत्सकत्वक् ।
कलिङ्गदार्वीदहनं च शुण्ठी-
भूनिम्बधात्र्याभयाविभीतम् ॥ ४७ ॥
श्यामायवक्वाथमथाष्टभागं
पिबेदिमं पूर्वदिने कषायम् ।
तिमिरैकण्डूपटलार्बुदं च
शुक्रं निहन्याद् व्रणमव्रणं च ॥ ४८ ॥
पील्लं च काचं च महारजश्च
नक्तान्ध्यरागं श्वयथुं सशूलम् ।
निहन्ति सर्वान्नयनामयांश्च
वासादिरेष प्रथितप्रभावः ॥ ४९ ॥

अडूसा, नागरमोथा, नीमकी पत्ती, परवलकी पत्ती, कुटकी, गुर्च, चन्दन, कुड़ेकी छाल, इन्द्रयव, दारुहल्दी चीता, सोंठ, चिरायता, आंवला, बड़ी हर्र, बहेड़ा, निसोथ व यवका अष्टमांश शेष क्वाथ प्रातःकाल पीना चाहिये । यह तिमिररोग, खुजली, पटल, अर्बुद, सव्रण, अव्रण, शुक्र, पील्ल, काच, धूलिपूर्णता, रतौन्धी, लालिमा, सूजन, शूल, यहांतक कि समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करता है । यह "वासादि" प्रसिद्ध प्रभाववाला है॥४७-४९॥

त्रिफलाक्वाथः ।

पथ्यास्तिस्रो विभीतक्यः षड् धात्र्यो द्वादशैव तु ।
प्रस्थार्धे सलिले क्वाथमष्टभागावशेषितम् ॥ ५० ॥
पीत्वाभिष्यन्दमास्रावं रागञ्च तिमिरं जयेत् ॥५१॥
संरम्भरागशूलाश्रुनाशनं दृक्प्रसादनम् ।

हर्र ३, बहेड़े ६, आंवले १२, जल ६४ तो० में पकाना चाहिये । ८ तोला बाकी रहनेपर उतार मल छानकर पीनेसे अभिष्यन्द, आस्राव, लालिमा व तिमिरको नष्ट करता है तथा शोथ शूल आदिको नष्ट कर दृष्टिको स्वच्छ करता है॥५०॥५१॥

आगन्तुज चिकित्सा ।

नेत्रे त्वभिहते कुर्याच्छीतमाश्च्योतनादिकम् ५२
दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात्

स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः ।
स्वेदाग्निधूपभयशोकरुजाभितापै-
रभ्याहतामपि तथैव भिषक्चिकित्सेत् ॥ ५३॥

आगन्तुदोषं प्रसमीक्ष्य कार्यं
वक्त्रोष्मणा स्वेदितमादितस्तु ।
आश्च्योतनं स्त्रीपयसा च सद्यो
यच्चापि पित्तक्षतजापहं स्यात् ॥ ५४ ॥

नेत्रमें चोट लग जानेपर ठंढी आश्च्योतनादि चिकित्सा करनी चाहिये । तथा दृष्टि स्वच्छ करनेवाली विधि शीघ्रही चिकने शीतल तथा मधुर पदार्थोंसे करनी चाहिये । इसी प्रकार स्वेद, अग्नि, धूप, भय, शोक, पीड़ा व जलनसे पीड़ित नेत्रोंकी भी चिकित्सा करनी चाहिये । आगंतुकमें पहिले मुखकी गरमीसे स्वेदन कर दोषानुसार चिकित्सा करनी चाहिये । स्त्रीके दूधसे आश्च्योतन करना चाहिये तथा सद्यः पित्तज व्रणकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५२-५४ ॥

सूर्याद्युपहतदृष्टिचिकित्सा ।

सूर्योपरागानलविद्युदादि-
विलोकनेनोपहतेक्षणस्य ।
सन्तर्पणं स्निग्धहिमादि कार्यं
सायं निषेव्यास्त्रिफलाप्रयोगाः ॥ ५५ ॥

सूर्यग्रहण, अग्नि, विजली आदिके देखनेसे उपहत दृष्टिवालेको चिकने, शीतल, सन्तर्पण प्रयोग करने चाहियें तथा सायङ्काल त्रिफला क्वाथके द्वारा आंखोंको धो डाले अथवा सेक करे ॥५५॥

निशादिपूरणम् ।

निशाब्दत्रिफलादार्वीसितामधुकसंयुतम् ।
अभिघाताक्षिशूलघ्नं नारीक्षीरेण पूरणम् ॥ ५६ ॥
इत्कटाङ्कुरजस्तद्वत्स्वरसो नेत्रपूरणम् ।

हल्दी, नागरमोथा, त्रिफला, दारुहल्दी, मिश्री व मौरेठीको स्त्रीके दूधमें पीसकर नेत्रमें भरनेसे अभिघात व अक्षिशूल शान्त होता है । इसी प्रकार रोहिषघासका स्वरस लाभ करता है॥५६॥-

नेत्राभिघातघ्नं घृतम् ।

आजं घृतं क्षीरपात्रं मधुकं चोत्पलानि च ॥ ५७ ॥
जीवकर्षभकौ चापि पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ।
सर्वनेत्राभिघातेषु सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ ५८ ॥

बकरीका घृत ६४ तोला, दूध ३ सेर १६ तो०, मौरेठी, नीलोफर, जीवक, व ऋषभक इन चारोंका कल्क १६ तो० मिलाकर सिद्ध घृत समस्त नेत्राभिघातोंको शान्त करता है॥५७॥५८॥

शुष्कपाकघ्नमञ्जनम् ।

सैन्धवं दारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसो घृतम् ।
स्तन्योदकाभ्यां कर्तव्यं शुष्कपाके तदञ्जनम् ॥५९॥

सेंधानमक, देवदारु, सोंठ, बिजौरे निम्बूका रस, घी, स्त्रीदुग्ध और जल मिला अञ्जन बनाकर शुष्कपाकमें लगाना चाहिये॥५९॥

अन्यद्वातमारुतपर्ययचिकित्सा ।

वाताभिष्यन्दवच्चान्यद्वाते मारुतपर्यये ।
पूर्वभुक्तं हितं सर्पिः क्षीरं चाप्यथ भोजने ॥ ६० ॥
वृक्षादन्यां कपित्थे च पञ्चमूले महत्यपि ।
सक्षीरं कर्कटरसे सिद्धं चापि पिबेद् घृतम् ॥ ६१॥

अन्यतोवात और वातपर्ययमें वाताभिष्यन्दके समान चिकित्सा करनी चाहिये तथा भोजनके पहिले घी पीना और भोजनके साथ दूध पीना चाहिये । तथा वान्दा, कैथा, महत्पञ्चमूल और काकड़ाशिंगी के क्वाथ तथा दूधके साथ सिद्ध घृत पीना चाहिये ॥ ६० ॥ ६१ ॥

शिराव्यधव्यवस्था ।

अभिष्यन्दमधीमन्थं रक्तोत्थमथवार्जुनम् ।
शिरोत्पातं शिराहर्षमन्यांश्चाक्षिभवान्गदान् ॥६९॥
स्निग्धस्याज्येन कौम्भेन शिराविधैः शमं नयेत् ।

अभिष्यन्द, अधिमन्थ अथवा रक्तोत्थ अर्जुन तथा शिरोत्पात, शिराहर्ष तथा और भी नेत्रके रोगोंमें दश वर्षके पुराने घीसे स्नेहन कराकर शिराव्यधसे शान्त करना चाहिये॥६२॥-

अम्लाध्युषितचिकित्सा ।

अम्लाध्युषितशान्त्यर्थं कुर्याल्लेपान्सुशीतलान् ॥६३॥
तैन्दुकं त्रैफलं सर्पिर्जीर्णं वा केवलं हितम् ।
शिराव्यधं विना कार्यः पित्तस्यन्दहरो विधिः ॥६४

अम्लाध्युषितकी शान्तिके लिये शीतल लेप करना चाहिये । तथा तेन्दूसे सिद्ध घृत अथवा त्रिफलासे सिद्ध घृत अथवा केवल पुराना घृत लगाना चाहिये । तथा शिराव्यधके सिवाय समस्त पित्तस्यन्दनाशक विधिका सेवन कराना चाहिये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

शिरोत्पातचिकित्सा ।

सर्पिः क्षौद्राञ्जनं च स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम् ।
तद्वत्सैन्धवकासीसं स्तन्यपिष्टं च पूजितम् ॥६५॥

घी और शहदका अञ्जन अथवा स्त्रीदुग्धमें पीसा हुआ सेंधानमक व कासीस शिरोत्पातकी चिकित्सा है ॥ ६५ ॥

शिराहर्षचिकित्सा ।

शिराहर्षेऽञ्जनं कुर्यात्फाणितं मधुसंयुतम् ।
मधुना तार्क्ष्यशैलं वा कासीसं वा समाक्षिकम् ६६

शिराहर्षमें शहदके साथ रात्र अथवा शहदके साथ रसौत अथवा शहदके साथ कासीस लगाना चाहिये ॥ ६६ ॥

व्रणशुक्रचिकित्सा ।

व्रणशुक्रप्रशान्त्यर्थं षडङ्गं गुग्गुलुं पिबेत् ॥
कतकस्य फलं शङ्खं तिन्दुकं रूप्यमेव च ॥ ६७ ॥
कांस्ये निघृष्टं स्तन्येन क्षतशुक्रार्तिरागजित् ।
चन्दनं गैरिकं लाक्षामालतीकलिका समा ॥ ६८ ॥
व्रणशुक्रहरी वर्तिः शोणितस्य प्रसादनी ।
शिरया वा हरेद्रक्तं जलौकोभिश्च लोचनात् ॥६९॥
अक्षमज्जाञ्जनं सार्यं स्तन्येन शुक्रनाशनम् ।
एकं वा पुण्डरीकं च छागीक्षीरावसेचितम् ॥७०॥
रागाश्रुवेदनां हन्यात्क्षतपाकात्ययाजकाः ।
तुत्थकं वारिणा युक्तं शुक्रं हन्त्यक्षिपूरणात् ॥७१॥

व्रणशुक्रकी शान्तिके लिये षडंग गुग्गुलु पीना चाहिये । तथा निर्मली, शंख, तेन्दू और चान्दीका भस्म इनको कांसेके वर्तनमें दूधके साथ घिसकर लगाना चाहिये । इससे व्रणशुक्र, पीड़ा व लालिमा मिटती हैं । व चन्दन, गेरु, लाख तथा चमेलीकी कली समान भाग ले वत्ती बना नेत्रमें लगानेसे व्रणशुक्र नष्ट करती तथा नेत्र स्वच्छ करती है । अथवा फस्त खोलकर या जोंक लगाकर नेत्रसे रक्त निकालना चाहिये । तथा सायङ्काल वहेड़ेकी मींगीको स्त्रीदुग्धमें घिसकर आञ्जनेसे शुक्र नष्ट होता हैं । तथा केवल कमलके पुष्पको वकरीके दूधसे सिक्तकर सिञ्चन करनेसे लालिमा, आंसू, पीड़ा, व्रण, पाकात्यय तथा अजका आदिको नष्ट करता है । अथवा जलके साथ तूतियाको घिसकर नेत्रमें छोड़नेसे शुक्र नष्ट होता है ॥ ६७–७१ ॥

फेनादिवर्तिः ।

समुद्रफेनदक्षाण्डत्वक्सिन्धूत्थैः समाक्षिकैः ।
शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिः शुक्रघ्नी शिग्रुवारिणा ॥ ७२ ॥

समुद्रफेन, मुर्गीके अण्डेका छिल्का, सेंधानमक, शहद और सहिंजनके बीजका चूर्ण कर सहिंजनके रससे बनायी वर्ति शुक्रको नष्ट करती है ॥ ७२ ॥

आश्च्योतनम् ।

धात्रीफलं निम्बपटोलपत्रं
यष्टयाह्वलोध्रं खदिरं तिलाश्च ।
क्वाथः सुशीतो नयने निषिक्तः
सर्वप्रकारं विनिहन्ति शुक्रम् ॥ ७३ ॥

आंवला, नीमकी पत्ती, परवलकी पत्ती, मौरेठी, लोध, कत्था व तिलके शीतकषायको नेत्रमें छोड़नेसे सब प्रकारके शुक्र नष्ट होते हैं ॥ ७३ ॥

पुष्पचिकित्सा ।

क्षुण्णपुन्नागपत्रेण परिभावितवारिणा ।
श्यामाक्वाथाम्बुना वाथ सेचनं कुसुमापहम् ॥७४॥
दक्षाण्डत्वक्छिलाशंखकाचचन्दनगैरिकैः ।
तुल्यैरञ्जनयोगोऽयं पुष्पार्मादिविलेखनः ॥ ७५ ॥
शिरीषबीजमरिचपिप्पलीसैन्धवैरपि ।
शुक्रे प्रघर्षणं कार्यमथवा सैन्धवेन च ॥ ७६ ॥

कुटे पुन्नागके पत्तोंसे भावित जलसे अथवा निसोथके क्वाथसे सिञ्चन करनेसे फूली कटती है । तथा मुरगीके अण्डेका छिल्का, मैनशिल, शंख, काच, चंदन व गेरु समान भाग ले अञ्जन बनाकर लगानेसे फूली, अर्म आदि कटते हैं । तथा सिरसाके बीज, मिरच, छोटी पीपल व सेंधानमककी वर्तीसे अथवा केवल सेंधानमकसे फूलीमें घिसना चाहिये ॥ ७४–७६ ॥

करञ्जवर्तिः ।

बहुशः पलाशकुसुमस्वरसैः परिभाविता जयत्यचिरात् ।
नक्ताह्वबीजवर्तिः कुसुमचयं दक्षु चिरजमपि ॥ ७७ ॥

कञ्जाके बीजोंके चूर्णमें ढाकके फूलोंके स्वरससे यथाविधि अनेक भावना देकर बनायी गयी वर्ति पुरानी और बड़ी फूलीको भी नष्ट करती है ॥ ७७ ॥

सैन्धवादिवर्तिः ।

सैन्धवत्रिफलाकृष्णाकटुकाशङ्खनाभयः ।
सताम्ररजसो वर्तिः पिष्टा शुक्रविनाशिनी ॥ ७८॥

सेंधानमक, त्रिफला, छोटी पीपल, कुटकी, शंखनाभी और ताम्रभस्म इन ओषधियोंके चूर्णको पानीके साथ घोटकर बनायी वर्त्तीको लगानेसे फूली नष्ट होती है ॥ ७८ ॥

चन्दनादिचूर्णाञ्जनम् ।

चन्दनं सैन्धवं पथ्या पलाशतरुशोणितम् ।
क्रमवृद्धमिदं चूर्णं शुक्रार्मादिविलेखनम् ॥ ७९ ॥

चन्दन, सेंधानमक, छोटी हर्रें, ढाकका गोंद इनके उत्तरोत्तर भागवृद्ध चूर्णका अञ्जन फूली तथा अर्म आदिको काटता है ॥ ७९ ॥

दन्तवर्तिः ।

दन्तैर्हस्तिवराहोष्ट्रगवाश्वाजखरोद्भवैः ।
सशंखमौक्तिकाम्भोधिफेनैर्मरिचपादिकैः ।
क्षतशुक्रमपि व्याधिं दन्तवर्तिर्निवर्तयेत् ॥ ८० ॥

हाथी, सुअर, ऊँट, घोड़ा, वकरी और गधाके दाँत, शंख, मोती व समुद्रफेन प्रत्येक समान भाग तथा सबसे चतुर्थांश मिर्च मिला घोट वत्ती बनाकर आँखमें लगानेसे व्रणशुक्र भी नष्ट होता है ॥ ८० ॥

शंखाद्यञ्जनम् ।

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्ततोऽर्धेन मनःशिला ।
मनःशिलार्धं मरिचं मरिचार्धेन सैन्धवम् ॥ ८१ ॥
एतच्चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं शुक्रयोस्तिमिरेषु च ।
पिचिटे मधुना योज्यमर्बुदे मस्तुना तथा ॥ ८२ ॥

शंख ४ भाग, मैनसिल २ भाग, कालीमिर्च १ भाग तथा सेंधानमक आधा भाग इनका चूर्णाञ्जन बनाकर लगानेसे शुक्र तथा तिमिर नष्ट होता है । इसका पिचिटमें शहदके साथ तथा अर्बुदमें दहीके तोड़के साथ प्रयोग करना चाहिये ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अन्यान्यञ्जनानि ।

ताप्यं मधुकसारो वा बीजं चाक्षस्य सैन्धवम् ।
मधुनाञ्जनयोगाः स्युश्चत्वारः शुक्रशान्तये ॥ ८३ ॥
वटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णं कर्पूरजं रजः ।
क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति शुक्रं चापि घनोन्नतम् ॥८४॥
त्रिफलामज्जमङ्गल्यामधुकं रक्तचन्दनम् ।
पूरणं मधुसंयुक्तं क्षतशुक्राजकाश्रुजित् ॥ ८५ ॥

स्वर्णमाक्षिक, मौरेठी, बहेड़ेकी मींगी अथवा सेंधानमक इनमेंसे किसी एकके चूर्णको शहदमें मिलाकर लगानेसे फूली शान्त होती है । इसी प्रकार बरगदके दूधके साथ कपूरका चूर्ण लगानेसे कड़ी व ऊँची फूली मिटती है । तथा त्रिफलाकी गुठलियाँ, गोरोचन, मौरेठी व लाल चन्दन चूर्णको शहदके साथ आँखमें लगानेसे व्रणशुक्र, अजका और अश्रु शान्त होते हैं ॥ ८३-८५ ॥

क्षाराञ्जनम् ।

तालस्य नारिकेलस्य तथैवारुष्करस्य च ।
करीरस्य च वंशानां कृत्वा क्षारं परिस्रुतम् ॥८६॥
करभास्थिकृतं चूर्णं क्षारेण परिभावितम् ।
सप्तकृत्वोऽष्टकृत्वो वा श्लक्ष्णं चूर्णं तु कारयेत्॥८७
एतच्छुक्रेष्वसाध्येषु कृष्णीकरणमुत्तमम् ।
यानि शुक्राणि साध्यानि तेषां परममञ्जनम् ॥ ८८

ताल, नरियल, भिलावाँ, करीर तथा बाँस प्रत्येकका क्षार पतला बनाकर उसीसे हाथीकी हड्डीके चूर्णको ७ या आठ भावना देकर महीन चूर्ण कर लेना चाहिये । यह असाध्य शुक्रोंको काला कर देता तथा साध्यको अच्छा कर देता है ॥ ८६-८८ ॥

पटोलाद्यं घृतम् ।

पटोलं कटुकां दार्वीं निम्बं वासां फलत्रिकम् ।
दुरालभां पर्पटकं त्रायन्तीं च पलोन्मिताम् ॥८९॥
प्रस्थमामलकानां च क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि ।
पादशेषे रसे तस्मिन्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९० ॥
कल्कैर्भूनिम्बकुटजमुस्तयष्ट्याह्वचन्दनैः ।
सपिप्पलीकैस्तत्सिद्धं चक्षुष्यं शुक्रयोर्हितम् ॥९१ ॥
घ्राणकर्णाक्षिवर्त्मत्वङ्मुखरोगव्रणापहम् ।
कामलाज्वरवीसर्पगण्डमालाहरं परम् ॥ ९२ ॥

परवल, कुटकी, दारुहल्दी, नीम, अडूसा, त्रिफला, यवासा, पित्तपापड़ा, तथा त्रायमाण प्रत्येक एक पल, आँवला, १ प्रस्थ, जल १ द्रोणमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान एक प्रस्थ घी तथा चिरायता, कुड़ा, नागरमोथा, मौरेठी, चन्दन व छोटी पीपलका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये । यह घृत नेत्रोंको बलदायक, शुक्रनाशक, नासा, कान, नेत्र, विन्नियों व त्वचारोग, मुखरोग और व्रणोंको नष्ट करता तथा कामला, ज्वर, विसर्प व गण्डमालाको हरता है ॥ ८९ ॥ ९२ ॥

कृष्णादितैलम् ।

कृष्णाविडङ्गमधुयष्टिकासिन्धुजन्म-
विश्वौषधैः पयसि सिद्धमिदं छगल्याः ।
तैलं नृणां तिमिरशुक्रशिरोऽक्षिशूल-
पाकात्ययाञ्जयति नस्यविधौ प्रयुक्तम्॥९३।

छोटी पीपल, वायविडंग, मौरेठी, सेंधानमक व सोंठ के कल्क और बकरीके दूधमें सिद्ध तैलका नस्य देनेसे तिमिर, शुक्र, शिर व नेत्रका शूल तथा पाकात्ययादि नष्ट होते हैं॥९३ ॥

अजकाचिकित्सा ।

अजकां पार्श्वतो विद्ध्वा सूच्या विस्राव्य चोदकम्।
व्रणं गोमयचूर्णेन पूरयेत्सर्पिषा सह ॥ ९४ ॥
सैन्धवं वाजिपादं च गोरोचनसमन्वितम् ।
शेलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणं चाजकापहम् ॥ ९५ ॥

अजकाको बगलसे वेध जल निकालकर उस घावमें घीसे मिले गोबरके चूर्णको भरना चाहिये । तथा सेंधानमक, सफेद गोकर्णी तथा गोरोचनको लसोड़ेकी छालके स्वरसके साथ घोटकर आँखोंमें डालनेसे अजका नष्ट होती है ॥ ९४ ॥९५ ॥

शशकघृतद्वयम् ।

शशकस्य शिरः कल्के शेषाङ्गक्वथिते जले ।
घृतस्य कुडवं पक्वं पूरणं चाजकापहम् ॥ ९६ ॥
शशकस्य कषाये च सर्पिषः कुडवं पचेत् ।
यष्टीप्रपौण्डरीकस्य कल्केन पयसा समम् ॥९७ ॥

छगल्याः पूरणाच्छुक्रक्षतपाकात्ययाजकाः ।
हन्ति भ्रूशङ्खशूलं च दाहरोगानशेषतः ॥ ९८ ॥

(१) खरगोशके शिरके कल्क तथा शेफालिके क्काथमें सिद्ध १६ तोला घृत आँखोंमें छोड़नेसे अजका नष्ट होती है । इसी प्रकार (२) खरगोशके काढ़े और मौरेठी व पुण्डरीयके कल्क तथा बकरीके दूध समान भागके साथ सिद्ध १६ तोले घीको आँखोंमें छोड़नेसे शुक्रव्रण, पाकात्यय, अजका, भौहों तथा शंखका शूल तथा समग्र जलन व लालिमा नष्ट होती है ॥ ९६-९८ ॥

पथ्यम् ।

त्रिफला घृतं मधु यवाःपादाभ्यङ्गःशतावरी मुद्गाः।
चक्षुष्यःसंक्षेपाद् वर्गः कथितो भिषग्भिरयम्॥९९॥

त्रिफला, घी, शहद, यव, पैरोंमें मालिश, शतावरी, व मूँगको संक्षेपतः वैद्योंने नेत्रोंके लिये हितकर बताया है ॥ ९९ ॥

तिमिरे त्रिफलाविधिः ।

लिह्यात्सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां
मधुप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे।
समीरजे तैलयुतां कफात्मके
मधुप्रगाढां विदधीत युक्तितः ॥ १०० ॥
कल्कः क्काथोऽथवा चूर्णं त्रिफलाया निषेवितम् ।
मधुना हविषा वापि समस्ततिमिरान्तकृत् ॥१०१॥
यस्त्रैफलं चूर्णमपथ्यवर्जी
सायं समश्नाति हविर्मधुभ्याम् ।
स मुच्यते नेत्रगतैर्विकारै-
र्भृत्यैर्यथा क्षीणधनो मनुष्यः ॥ १०२ ॥
सघृतं वा वराक्काथं शीलयेत्तिमिरामयी ।
जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ।
त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् ॥ १०३ ॥

पित्तज तिमिरमें त्रिफलाके चूर्णको शहदके साथ, वातजमें तैलके साथ तथा कफजमें शहदके साथ चाटना चाहिये । इसी प्रकार त्रिफलाके कल्क, क्काथ अथवा चूर्णको शहद अथवा घीके साथ चाटनेसे समस्त तिमिररोग नष्ट होते हैं । जो मनुष्य अपथ्यको त्यागकर सायंकाल त्रिफलाके चूर्णको घी व शहदके साथ सेवन करता है, उसके नेत्ररोग इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे धन न रहनेपर नौकर छोड़कर चले जाते हैं । अथवा घृतके साथ त्रिफलाके क्काथको पीना चाहिये इससे उत्पन्न रोग नष्ट हो जाते हैं और फिर कभी नहीं होते । इसी प्रकार त्रिफलाको काढ़ेसे नेत्रको प्रातःकाल धोनेसे लाभ होता है ॥ १००-१०३॥

जलप्रयोगः ।

जलगण्डूषैः प्रातर्वहुशोऽम्भोभिः प्रपूर्य मुखरन्ध्रम् ।
निर्दयमुक्षन्नक्षि क्षपयति तिमिराणि ना सद्यः॥१०४
भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यत्प्रदीयते ।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ १०५॥

प्रातःकाल मुखमें जल भरकर बार बार आँखें धोनेसे तिमिर नष्ट होता है । इसी प्रकार भोजन करनेके अनन्तर जल हाथोंमें लेकर आँखोंको धोनेसे तिमिर नष्ट होते हैं ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

सुखावती वर्तिः ।

कतकस्य फलं शङ्खं त्र्यूषणं सैन्धवं सिता ।
फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला ।
कुक्कुटाण्डकपालानि वर्तिरेषा व्यपोहति ॥ १०६॥
तिमिरं पटलं काचमर्म शुक्रं तथैव च ।
कण्ड्क्लेदार्बुदं हन्ति मलं चाशु सुखावती ॥ १०७॥

निर्मली, शंख, त्रिकटु, सेंधानमक, मिश्री, समुद्रफेन, रसौंत, शहद, वायविडंग, मनशिल व मुर्गीके अण्डेके छिल्कोंके चूर्णको जलमें घोटकर बनायी गयी वर्ति तिमिर, पटल, काच, अर्म, फूली, खुजली, मवाद तथा अर्बुद और कीचड़को दूर करती है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

चन्द्रोदया वर्तिः ।

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च ।
बिभीतकस्य मज्जा च शङ्खनाभिर्मनःशिला॥१०८
सर्वमेतत्समं कृत्वा छागीक्षीरेण पेषयेत् ।
नाशयेत्तिमिरं कण्डूं पटलान्यर्बुदानि च ॥ १०९ ॥
अधिकानि च मांसानि यश्च रात्रौ न पश्यति ।
अपि द्विवार्षिकं पुष्पं मासेनैकेन साधयेत् ॥११०॥
वर्तिश्चन्द्रोदया नाम नृणां दृष्टिप्रसादनी ॥ १११॥

हर्र, वच, कूठ, छोटी पीपल, कालीमिर्च, बहेड़ेकी मींगी, शंखनाभि व मैनशिल यह सब समान भाग ले बकरीके दूधसे पीसकर बनायी गयी वर्ती तिमिर, खुजली, पटलदोष, अर्बुद, अधिकमांस, रतौंधी, तथा दो वर्षकी फूलीको एक मासमें दूर करती है । यह "चन्द्रोदया वर्ति" मनुष्योंकी दृष्टिको स्वच्छ रखती है ॥ १०८-१११ ॥

हरीतक्यादिवर्तिः ।

हरीतकी हरिद्रा च पिप्पल्यो लवणानि च ।
कण्डूतिमिरजिद्वर्तिर्न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ ११२ ॥

हर्र, हल्दी, छोटी पिप्पली तथा पांचों नमक मिलाकर बनायी गयी वर्ति खुजली व तिमिरको नष्ट करती है, कहींपर भी व्यर्थ नहीं जाती ॥ ११२ ॥

कुमारिकावर्तिः ।

अशीतिस्तिलपुष्पाणि षष्टिः पिप्पलितण्डुलाः ।
जातीकुसुमपञ्चाशन्मरिचानि च षोडश ।
एषा कुमारिका वर्तिर्गतं चक्षुर्निवारयेत् ॥११३॥

तिलके फूल ८०, छोटी पीपलके दाने ६०, चमेलीके फूल ५०, काली मिर्च १६ इनकी बनायी वर्ति "कुमारिका" कही जाती है । यह गत चक्षुको भी पुनः शक्तिसम्पन्न करती है ॥ ११३ ॥

त्रिफलादिवर्तिः ।

त्रिफलाकुक्कुटाण्डत्वक्कासीसमयसो रजः ।
नीलोत्पलं विडंगानि फेनं च सरितां पतेः ॥११४॥
आजेन पयसा पिष्ट्वा भावयेत्ताम्रभाजने ।
सप्तरात्रं स्थितं भूयः पिष्ट्वा क्षीरेण वर्तयेत्॥११५
एषा दृष्टिप्रदा वर्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः ।

त्रिफला, मुर्गीके अण्डेका छिल्का, काशीस, लौहभस्म, नीलोफर, वायविडंग तथा समुद्रफेनको बकरीके दूधसे ७ दिनतक ताम्रके पात्रमें भावना देकर फिर दूधसे ही पीसकर बनायी गयी वर्ति जिसे दिखायी नहीं पड़ता पर आँख बैठी नहीं है, उसे दृष्टिदान करती है ॥ ११४ ॥ ११५ ॥–

अन्या वर्तयः ।

चन्दनत्रिफलापूगपलाशतरुशोणितैः ॥ ११६ ॥
जलपिष्टैरियं वर्तिरशेषतिमिरापहा ।
निशाद्वयाभयामांसीकुष्ठकृष्णा विचूर्णिता ॥११७॥
सर्वनेत्रामयान्हन्यादेतत्सौगतमञ्जनम् ।
व्योषोत्पलाभयाकुष्ठताक्ष्यैर्वर्तिः कृता हरेत्॥११८॥
अर्बुदं पटलं काचं तिमिरार्माश्रुनिस्रुतिम् ।
त्र्यूषणं त्रिफलावत्क्रसैन्धवालमनः शिलाः ।
क्लेदोपदेहकण्डूघ्नी वर्तिः शस्ता कफापहा ॥११९॥
एकगुणा मागधिका
द्विगुणा च हरीतकी सलिलपिष्टा ।
वर्तिरियं नयनसुखा-
र्मतिमिरपटलकाचाश्रुहरी ॥ १२० ॥

चन्दन, त्रिफला, सुपारी तथा ढाकके गोंदको जलमें पीसकर बनायी वर्ति समस्त तिमिरोंको नष्ट करती है । इसी प्रकार हल्दी, दारुहल्दी, बड़ी हर्रका छिल्का, जटामांसी, कूठ व छोटी पीपलके चूर्णको आंखमें लगानेसे समस्त नेत्ररोग नष्ट होते हैं। तथा त्रिकटु, नीलोफर, हर्र, कूठ, रसौंतकी वत्ती अर्बुद, पटल, काच, तिमिर, अर्म और अश्रुप्रवाहको नष्ट करती है । तथा त्रिकटु, त्रिफला, तगर, सेंधानमक, हरताल व मनशिलसे की गई वत्ती मवाद, लेप और खुजलीको नष्ट करती तथा कफनाशक है । तथा छोटी पीपल १ भाग, हर्र २ भाग दोनोंको जलमें पीसकर बनायी गयी वत्ती नेत्रोंको सुख देती है । अर्म, तिमिर, पटल, काच आंसुओंको शान्त करती है ॥ ११६–१२० ॥

चन्द्रप्रभावर्तिः ।

अञ्जनं श्वेतमरिचं पिप्पली मधुयष्टिका ।
विभीतकस्य मध्यं तु शङ्खनाभिर्मनःशिला १२१॥
एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत् ।
छायाशुष्कां कृतां वर्तिं नेत्रेषु च प्रयोजयेत् ॥१२२
अर्बुदं पटलं काचं तिमिरं रक्तराजिकाम् ।
अधिमासं मलं चैव यश्च रात्रौ न पश्यति ॥१२३॥
वर्तिश्चन्द्रप्रभा नाम जातान्ध्यमपि शोधयेत्॥१२४॥

काला सुरमा, सहिंजनके बीज, छोटी पीपल, मौरेठी, बहेड़ेकी गुठली, शंखनाभी, मैनसिल इनका समान भाग ले बकरीके दूधमें पीस गोलीको बनाकर छायामें सुखाकर आंखोंमें लगाना चाहिये । यह अर्बुद, पटल, काच, तिमिर, लाल रेखाएँ, अधिमांस, मल, रतौंधी और जन्मान्ध्यको भी नष्ट करती है ॥ १२१–१२४ ॥

श्रीनागार्जुनीयवर्तिः ।

त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थयष्टीतुत्थरसाञ्जनम् ।
प्रपौण्डरीकं जन्तुघ्नं लोध्रं ताम्रं चतुर्दश ॥ १२५ ॥
द्रव्याण्येतानि संचूर्ण्य वर्तिः कार्या नभोऽम्बुना ।
नागार्जुनेन लिखिता स्तम्भे पाटलिपुत्रके ॥१२६॥
नाशनी तिमिराणां च पटलानां तथैव च ।
सद्यः प्रकोपं स्तन्येन स्त्रिया विजयते ध्रुवम् ॥१२७
किंशुकस्वरसेनाथ पिल्लपुष्पकरक्तताः ।
अञ्जनाल्लोध्रतोयेन चासन्नतिमिरं जयेत् ॥ १२८ ॥
चिरसंच्छादिते नेत्रे वस्तमूत्रेण संयुता ।
उन्मीलयत्यकृच्छ्रेण प्रसादं चाधिगच्छति ॥१२९॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, आंवला, हर्र, बहेड़ा, सेंधानमक, मौरेठी, तूतिया, रसौंत, पुण्डरिया, वायविडङ्ग, लोध्र और ताम्र ये चौदह औषधियां समान भाग ले चूर्णकर आकाशसे वर्षे जलसे वत्ती बना लेनी चाहिये । यह वत्ती नागार्जुनने पाटलिपुत्रमें खम्भेमें लिखी है । यह तिमिर और पटलको नष्ट करती है, जल्दीके प्रकोप अभिष्यन्दको स्त्रीके दूधसे जीतती है। ढाकके स्वरससे पिल्ल, फूली और लालिमाको जीतती है । लोधके जलसे तिमिरको नष्ट करती है, अधिक समयसे बन्द नेत्रमें बकरेके मूत्रके साथ

लगानेसे सरलतासे खोलती और आंखोंको स्वच्छ बनाती है ॥ १२५-१२९ ॥

पिप्पल्यादिवर्तिः ।

पिप्पलीं सतगरोत्पलपत्रां
वर्तयेत्समधुकां सहरिद्राम् ।
एलया सततमञ्जयितव्यं
यः सुपर्णसममिच्छति चक्षुः ॥ १३० ॥

छोटी पीपल, तगर, नीलोफर, मौरेठी और हल्दीके चूर्णको जलमें पीसकर बनायी हुई वत्तीसे आंजनेसे सुपर्णके सदृश दृष्टि होती है ॥ १३० ॥

व्योषादिवर्तिः ।

व्योषायश्चूर्णसिन्धूत्थत्रिफलाञ्जनसंयुता ।
गुडिका जलपिष्टेयं कोकिला तिमिरापहा ॥१३१॥

त्रिकटु, लोह चूर्ण, सेंधानमक, त्रिफला और अञ्जनके साथ बनायी गयी वत्ती तिमिरको नष्ट करती है । इसे "कोकिला वर्ती" कहते हैं ॥ १३१ ॥

अपरा व्योषादिः ।

त्रीणि कटूनि करञ्जफलानि
द्वे च निशे सह सैन्धवकं च
बिल्वतरोर्वरुणस्य च मूलं
वारिचरं दशमं प्रवदन्ति ॥ १३२ ॥
हन्ति तमस्तिमिरं पटलं च ।
पिच्चिटशुक्रमथार्जुनकं च
अञ्जनकं जनरञ्जनकं च
दृक्च न नश्यति वर्षशतं च ॥ १३३ ॥

त्रिकटु, कञ्जा, हल्दी, दारुहल्दी, सेंधानमक, वेलकी छाल, वरुणकी छाल, व शंखको पीस वत्ती बना आंखमें लगानेसे अन्धेरापन, तिमिर, पटल, पिच्चिट, शुक्र, व अर्जुन नष्ट होता है । यह अञ्जन मनुष्योंको प्रसन्न करता है । इससे दृष्टि १०० वर्षतक नहीं बिगड़ती ॥ १३२-१३३ ॥

नीलोत्पलाद्यञ्जनम् ।

नीलोत्पलं विडङ्गानि पिप्पली रक्तचन्दनम् ।
अञ्जनं सैन्धवं चैव सद्यस्तिमिरनाशनम् ॥ १३४ ॥

नीलोफर, वायविडङ्ग, पीपल, लालचन्दन, अञ्जन और सेंधानमकका अञ्जन शीघ्र ही तिमिरको नष्ट करता है ॥१३४॥

पत्राद्यञ्जनम् ।

पत्रगैरिककर्पूरयष्टीनीलोत्पलाञ्जनम् ।
नागकेशरसंयुक्तमशेषतिमिरापहम् ॥ १३५ ॥

तेजपात, गेरू, कपूर, मौरेठी, नीलोफर, सुर्मा व नागकेशरका अञ्जन-समस्त तिमिरोंको नष्ट करता है ॥ १३५ ॥

शंखाद्यञ्जनम् ।

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्तदर्धेन मनःशिला ।
मनःशिलार्धं मरिचं मरिचार्धेन पिप्पली ॥ १३६ ॥
वारिणा तिमिरं हन्ति अर्बुदं हन्ति मस्तुना ।
पिच्चिटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तदुत्तमम् ॥१३७॥

शंख ४ भाग, मनशिल २ भाग, मिर्च १ भाग, व छोटी पीपल आधा भाग, घोटकर जलके साथ लगानेसे तिमिर, दहीके तोड़से अर्बुद, शहदसे पिच्चिट और स्त्रीदुग्धसे फूलीको नष्ट करता है ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

हरिद्रादिगुटिका ।

हरिद्रा निम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरिचानि च ।
भद्रमुस्तं विडङ्गानि सप्तमं विश्वभेषजम् ॥ १३८ ॥
गोमूत्रेण गुटी कार्या छागमूत्रेण चाञ्जनम् ।
ज्वरांश्च निखिलान्हन्ति भूतावेशं तथैव च ॥१३९
वारिणा तिमिरं हन्ति मधुना पटलं तथा ।
नक्तान्ध्यं भृङ्गराजेन नारीक्षीरेण पुष्पकम् ।
शिशिरेण परिस्रावमर्बुदं पिच्चिटं तथा ॥ १४० ॥

हल्दी, नीमकी पत्ती, छोटी पीपल, काली मिर्च, नागरमोथा, वायविडङ्ग व सोंठका चूर्ण गोमूत्रसे गोली बनानी चाहिये । तथा बकरेके मूत्रसे आंजना चाहिये । यह समस्त ज्वरों तथा भूतावेशको नष्ट करती है, जलसे तिमिरको, शहदसे पटलको, भांगरेसे रतौंधी स्त्रीदूधसे फूली और ठण्डे जलसे परिस्राव, अर्बुद तथा पिच्चिटको नष्ट करती है ॥ १३८ ॥ १४० ॥

गण्डूपदकज्जलम् ।

संगृह्योपरतानलक्तकरसेनामृज्य गण्डूपदान्
लाक्षारञ्जिततूलवर्तिनिहितान् यष्टीमधून्मिश्रितान् ।
प्रज्वाल्योत्तमसर्पिषानलशिखासन्तापजं कज्जलं
दूरासन्ननिशान्ध्यसर्वतिमिरप्रध्वंसकृच्चोदितम् १४१

मरे केचुवोंको ले धो लाखके रससे धो लाखसे रंगी रूईकी वत्तीमें मौरेठीके साथ लपेट घीसे तर कर अग्निसे जला कज्जल बनाना चाहिये । यह पुराने व नये दोष तथा दूर या समीपका न दिखाई देना, रतौंधी और समस्त तिमिरोंको नष्ट करता है ॥ १४१ ॥

अङ्गुलियोगः ।

भूमौ निघृष्याङ्गुल्या अञ्जनं शमनं तयोः ।
तिमिरकाचार्महरं धूमिकायाश्च नाशनम् ॥ १४१ ॥

पृथ्वीमें अङ्गुली घिसकर आञ्जनेसे दूर या समीप न दिखलाई पड़ना तथा तिमिर, काच और अर्म तथा धूमिका नष्ट होते हैं ॥ १४२ ॥

नागयोगः ।

त्रिफलाभृङ्गमहौषधमध्वाज्यच्छागपयसि गोमूत्रे ।
नागं सप्त निषिक्तं करोति गरुडोपमं चक्षुः ॥१४३॥

त्रिफला, भांगरा, सोंठ, शहद, घी, बकरीके दूध, व गोमूत्रमें सात दिनतक भावित शीसा नेत्रको गरुड़के समान उत्तम बनाता है ॥ १४३ ॥

शलाकाः ।

त्रिफलसलिलयोगे भृङ्गराजद्रवे च
हविषि च विषकल्के क्षार आजे मधूग्रे ।
प्रतिदिनमथ तप्तं सप्तधा सीसमेकं
प्रणिहितमथ पश्चात्कारयेत्तच्छलाकाम् १४४
सवितुरुदयकाले साञ्जना व्यञ्जना वा
करकरिकसमेतानर्मपैचिट्यरोगान् ।
असितसितसमुत्थान्सान्धिवर्त्माभिजातान्
हरति नयनरोगान्सेव्यमाना शलाका १४५॥

एक शीसाके टुकड़ेको एक एक चीजमें सात सात बार तपाकर बुझाना चाहिये । बुझानेकी चीजें–त्रिफलाका काढ़ा, भांगरेका रस, घी, सींगियाका कल्क, क्षार, और बकरीका दूध तथा शहद है । इसके अनन्तर उस शीशेकी सलाई बनवानी चाहिये । सूर्य उदयके समय यह सलाई अञ्जनके सहित अथवा विना अञ्जनके आंखमें लगानेसे करकरी, अर्म, पिचिट, काले भाग या सफेद भाग सन्धि और वीर्त्मियोंके रोगोंको नष्ट करती है ॥ १४४ ॥ १४५ ॥

गौञ्जाञ्जनम् ।

चिञ्चापत्ररसं निधाय विमले चौदुम्बरे भाजने
मूले तत्र निघृष्टसैन्धवयुतं गौञ्जं विशोष्यातपे ।
तच्चूर्णं विमलाञ्जनेन सहितं नेत्राञ्जने शस्यते
काचार्मार्जुनपिचिटे सतिमिरे स्रावं च निर्वारयेत् ॥

इमलीकी पत्तीके रसको स्वच्छ ताम्रके पात्रमें रखकर उसीमें घिसे, सेंधानमकके साथ गुञ्जाकी जड़ रख धूपमें सुखाना चाहिये । इस चूर्णको सफेद सुर्माके साथ मिलाकर आंखमें लगाना काच, अर्म, अर्जुन, पिचिट और तिमिरमें हितकर है तथा स्रावको बन्द करता है ॥ १४६ ॥

सैन्धवयोगः ।

चित्राषष्ठीयोगे सैन्धवममलं विचूर्ण्य तेनाक्षि ।
शममञ्जनेन तिमिरं गच्छति वर्षादसाध्यमपि १४७

चित्रा नक्षत्र और षष्ठी तिथि जिस दिन हो, उस दिन सफेद सेंधानमक महीन पीसकर अञ्जन लगाते रहनेसे एक सालमें असाध्य तिमिर भी शान्त होता है ॥ १४७ ॥

उशीराञ्जनम् ।

दद्यादुशीरनिर्यूहे चूर्णितं कणसैन्धवम् ।
तच्छृतं सघृतं भूयः पचेत्क्षौद्रं क्षिपेद् घने॥१४८॥
शीते तस्मिन्हितमिदं सर्वजे तिमिरेऽञ्जनम् ॥ १४९

खशके क्वाथमें चूर्ण किया सेंधानमक छोड़े, फिर उसको घी मिलाकर पकावे, फिर गाढ़ा होजानेपर उतार ठंडा कर शहदके साथ मिलाकर अञ्जन लगावे । यह अञ्जन सर्वज तिमिरके लिये हितकर है ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

धात्र्यादिरसक्रिया ।

धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रसर्पिर्भिस्तु रसक्रिया
पित्तानिलाक्षिरोगघ्नी तैमिर्यपटलापहा ॥ १५० ॥

आंवला, रसौंत, शहद व घीकी रसक्रिया पित्त और वातजन्य नेत्ररोग तथा तिमिर और पटलको नष्ट करती है ॥ १५० ॥

शृंगवेरादिनस्यम् ।

शृंगवेरं भृंगराजं यष्टीतैलेन मिश्रितम् ।
नस्यमेतेन दातव्यं महापटलनाशनम् ॥ १५१ ॥

सोंठ, भांगरा व मौरेठीको तैलमें मिलाकर नस्य देनेसे महापटल नष्ट होता है ॥ १५१ ॥

लिङ्गनाशचिकित्सा ।

लिङ्गनाशे कफोद्भूते यथावद्विधिपूर्वकम् ।
विद्ध्वा दैवकृते छिद्रे नेत्रं स्तन्येन पूरयेत् ॥१२॥
ततो दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः ।
नयनं सर्पिषाभ्यज्य वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥ १५३ ॥
ततो गृहे निराबाधे शयीतोत्तान एव च ।
उद्गारकासक्षवथुष्ठीवनोत्कम्पनानि च ॥ १५४ ॥
तत्कालं नाचरेदूर्ध्वं यन्त्रणा स्नेहपीतवत् ।
त्र्यहात्त्र्यहाद्धावयेत्तु कषायैरनिलापहैः ॥ १५५ ॥
वायोर्भयात्त्र्यहादूर्ध्वं स्वेदयेदाक्षि पूर्ववत् ।
दशरात्रं तु संयम्य हितं दृष्टिप्रसादनम् ॥ १५६ ॥
पश्चात्कर्म च सेवेत लघ्वन्नं चापि मात्रया ।
रागश्चोपोऽर्बुदं शोथो बुद्बुदं केकराक्षिता ॥१५७

अधिमन्थादयश्चान्ये रोगाः स्युर्दुष्टवेधजाः ।
अहिताचारतो वापि यथास्वं तानुपाचरेत् ॥१५८॥
रुजायामक्षिरोगे वा भूयो योगान्निबोध मे ।

कफजन्य लिंगनाश (मोतियाविन्दमें) विधिपूर्वक दैवकृत छिद्र (अपाङ्गकी ओर शुक्लभाग) में वेधकर नेत्रको स्त्रीदुग्धसे भर देना चाहिये । फिर जब रूप दिखलाई पड़ने लगे तो सलाई धीरेसे निकाल लेनी चाहिये । फिर नेत्रमें घीको चुपड़कर कपड़ा लपेट देना चाहिये । फिर बाधारहित घरमें उत्तान ही सोना चाहिये । वेधके समय डकार, खांसी, थूकना, छींकना, हिलना आदि बन्द रक्खें, बादमें स्नेहपान करनेवालेके समान परहेज करे, तथा तीन तीन दिनमें वातनाशक काढ़ोंसे धोवे, तथा वायुके भयसे ३ दिनके बाद स्नेहका सिञ्चन पूर्ववत् करे । इस प्रकार दश रात्रि संयम कर नेत्र स्वच्छ करनेवाला उपाय करे और हल्का अन्न मात्रासे खावे । लालिमा, गरमी, अर्बुद, शोथ, बुलबुला, केकराक्षिता तथा अधिमन्थ आदि अनेक रोग दुष्ट वेध या मिथ्याहार विहारसे हो जाते हैं, उनकी यथोचित चिकित्सा करे । पीड़ा और लालिमामें आगे कहे हुए योग काममें लाने चाहियें ॥ १५२–१५८ ॥–

रुजाहरलेपाः ।

कल्किताः सघृता दूर्वायवगैरिकशारिवाः ॥१५९॥
सुखलेपाः प्रयोक्तव्या रुजारागोपशान्तये ।
पयस्याशारिवापत्रमञ्जिष्ठामधुकैरपि ॥ १६० ॥
अजाक्षीरान्वितैर्लेपः सुखोष्णः पथ्य उच्यते ।

दूब, यव, गेरू, व शारिवा इनका कल्क कर घीमें मिला कुछ गुनगुना लेप पीड़ा व लालिमाकी शान्तिके लिये करना चाहिये । अथवा क्षीरविदारी, शारिवा, तेजपात, मजीठ व मौरेठी को बकरीके दूधमें पीस गुनगुना लेप हितकर होता है ॥ १५९ ॥ १६० ॥–

घृतम् ।

वातघ्नसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे ॥ १६१ ॥
काकोल्यादिप्रतीवापं प्रयुञ्ज्यात्सर्वकर्मसु ।

वातनाशक ओषधियोंसे सिद्ध चतुर्गुण दूधमें सिद्ध घृतको काकोल्यादि चूर्णके साथ मिलाकर सब काममें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १६१ ॥–

शिराव्यधः ।

शाम्यत्येवं न चेच्छूलं स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत् १६२
ततः शिरां दहेच्चापि मतिमान्कीर्तितां यथा ।
द्दष्टेरतः प्रसादार्थमञ्जने शृणु मे शुभे ॥ १६३ ॥

यदि इस प्रकार शूल शान्त न हो, तो स्नेहन स्वेदन कर शिराव्यध करना चाहिये तथा शिरादाह करना चाहिये । इसके बाद नेत्रको शुद्ध करनेवाले अञ्जन कहते हैं ॥ १६२ ॥ १६३ ॥

मेषशृङ्ग्याद्यञ्जनम् ।

मेषशृङ्ग्यस्य पत्राणि शिरीषधवयोरपि ।
मालत्याश्चापि तुल्यानि मुक्तावैदूर्यमेव च ॥१६४॥
अजाक्षीरेण संपिष्य ताम्रे सप्ताहमावपेत् ।
प्रणिधाय तु तद्वर्तिं योजयेदञ्जने भिषक् ॥ १६५ ॥

मेषशृङ्गीके पत्ते, सिरसा, धव और चमेलीके पत्ते, तथा मोती व लहसुनिया समान भाग ले बकरीके दूधसे घोटकर ७ दिन ताम्रपात्रमें रखना चाहिये, फिर इसकी वत्ती बनाकर अञ्जन लगाना चाहिये ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

स्रोतोजांजनम् ।

स्रोतोजं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिलाम् ।
मारिचानि च तद्वर्तिं कारयेत्पूर्ववद्भिषक् ॥ १६६ ॥

नीला सुरमा, मूंगा, समुद्रफेन, मनशिल व कालीमिर्चकी वत्ती बनाकर आंजना चाहिये ॥ १६६ ॥

रसाञ्जनाञ्जनम् ।

रसाञ्जनं घृतं क्षौद्रं तालीसं स्वर्णगैरिकम् ।
गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये ॥ १६७ ॥

रसौत, घी, शहद, तालीसपत्र व सुनहला गेरू इनको गायके गोबरके रससे पित्तसे दूषित नेत्रवालेको लगाना चाहिये ॥ १६७ ॥

नलिन्यञ्जनम् ।

नलिन्युत्पलकिञ्जल्कं गोशकृद्रससंयुतम् ।
गुडिकाञ्जनमेतत्स्याद्दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् ॥ १६८ ॥

कमलिनी, व कमलके केशरकी गायके गोबरके रससे गोली बनाकर आंखमें लगाना दिन और रात्रि दोनोंकी अन्धतामें लाभ करता है ॥ १६८ ॥

नदीजाञ्जनम् ।

नदीजशङ्खत्रिकटून्यथाञ्जनं
मनःशिला द्वे च निशे गवां शकृत् ।
सचन्दनेयं गुडिकाथ चाञ्जने
प्रशस्यते रात्रिदिनेष्वपश्यताम् ॥ १६९ ॥

नीला सुरमा, शंख, त्रिकटु, रसौत, मैनशिल, हल्दी, दारुहल्दी, गोबर व चन्दनकी गोली बनाकर आंखमें लगानेसे पूर्वोक्त गुण करती है ॥ १६९ ॥

कणायोगः ।

कणा च्छागशकृन्मध्ये पक्वा तद्रसपेषिता ।
अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥ १७० ॥

छोटी पीपल बकरीकी लेंडिओंके साथ पका और उसीके रसमें पीसकर आंखमें लगानेसे अथवा काली मिर्च शहदमें मिलाकर लगानेसे रतौंधी शीघ्रही मिटती है ॥ १७० ॥

गौधयकृद्योगः ।

पचेत्तु गौधं हि यकृत्प्रकल्पितं
प्रपूरितं मागधिकाभिरग्निना ।
निषेवितं तत्सकृदञ्जनेन च
निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयं खलु ॥ १७१ ॥

गोहका यकृत् और छोटी पीपल पका गोली बनाकर एक वार ही लगानेसे निःसन्देह रतौंधी नष्ट होती है ॥ १७१ ॥

नक्तान्ध्यहरा विविधा योगाः ।

दध्ना निघृष्टं मरिचं रात्र्यान्ध्याञ्जनमुत्तमम् ।
ताम्बूलयुक्तं खद्योतभक्षणं च तदर्थकृत् ॥ १७२ ॥
शफरीमत्स्यक्षारो नक्तान्ध्यं चाञ्जनाद्विनिहन्ति ।
तद्वद्रामठटङ्कणकर्णमलं चैकशोऽञ्जनान्मधुना १७३
केशराजान्वितं सिद्धं मत्स्याण्डं हन्ति भक्षितम् ।
नक्तान्ध्यं नियतं नृणां सप्ताहात्पथ्यसेविनाम् १७४

दहीमें घिसी काली मिर्चका रतौंधीमें अञ्जन लगाना चाहिये । तथा पानके साथ जुगुनूका खाना भी यही गुण करता है । इसी प्रकार छोटी मछलीका क्षार अञ्जन लगानेसे रतौंधीको नष्ट करता है । अथवा हींग, सुहागा, कानका मैल इनमेंसे कोई एक शहदमें मिलाकर लगाना चाहिये । तथा काले भांगरेके साथ सिद्ध मछलीका अण्डा खाने और सात दिनतक पथ्यसे रहनेसे निःसन्देह रतौंधी नष्ट हो जाती है॥१७२–१७४॥

त्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम् ।
तिमिराण्यचिराद्धन्ति पीतमेतन्निशामुखे ॥ १७५ ॥

त्रिफलाके क्वाथ व कल्क तथा दूध मिलाकर सिद्ध घृत सायंकाल पीनेसे शीघ्रही तिमिर नष्ट होता है ॥ १७५ ॥

महात्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च ।
वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥ १७६ ॥
अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा ।
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥१७७ ॥
कल्कः कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम् ।
मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥१७८॥
तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् ।
ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्यपानं च शस्यते ॥ १७९ ॥
यावन्तो नेत्ररोगास्तान्पानादेवापकर्षति ।
सरक्ते रक्तदुष्टे च रक्ते चातिस्रुतेऽपि च ॥१८०॥
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे ।
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे सुदारुणे ॥ १८१
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च ।
अदृष्टिं मन्ददृष्टिं च कफवातप्रदूषिताम् ॥ १८२ ॥
स्रवतो वातपित्ताभ्यां सकण्ड्वासन्नदूरदृक् ।
गृध्रदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्धनम् ।
सर्वनेत्रामयं हन्यात्त्रिफलाद्यं महद् घृतम् ॥ १८३॥

त्रिफलाका रस एक प्रस्थ, भांगरेका रस १ प्रस्थ, अडूसेका रस १ प्रस्थ, शतावरीका रस १ प्रस्थ तथा बकरीका दूध, गुर्चका रस, आंवलेका रस प्रत्येक एक प्रस्थ तथा घी १ प्रस्थ, और छोटी पीपल, मिश्री, मुनक्का, त्रिफला, नीलोफर, मौरेठी, क्षीरकाकोली, दूध व छोटी कटेरीका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये । ठीक सिद्ध हो जानेपर अच्छे वर्तनमें रखना चाहिये । इसे सबेरे दो पहर व शामको पीना चाहिये । जितने नेत्ररोग होते हैं, उन्हें पीनेसे ही नष्ट करता है । लाल नेत्रोंमें, रक्तदूषित अथवा अधिक बहते हुए नेत्रोंमें, रतौन्धी, तिमिर, काच, नीलिकापटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, दारुण पक्ष्मकोप वातपित्तकफजन्य समस्त रोगोंमें हितकर है । न दिखलाई पड़ना, मन्द दृष्टि कफवातसे दूषित दृष्टि तथा वातपित्तसे बहती हुई दृष्टि, खुजली और समीप व दूरकी दृष्टिको शुद्ध करता, बल, वर्णको बढ़ाता तथा समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करता है । इसे "महात्रिफलाद्यिघृत" कहते हैं ॥ १७६–१८३ ॥

काश्यपत्रैफलं घृतम् ।

त्रिफला त्र्यूषणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी ।
प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेशरम् ॥१८४ ॥
नीलोत्पलं शारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम् ।
कार्षिकैः पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥१८५
घृतप्रस्थं पचेदेतत्सर्वनेत्ररुजापहम् ।
तिमिरं दोषमास्रावं कामलां काचमर्बुदम् ॥१८६॥
वीसर्पं प्रदरं कण्डूं रक्तं श्वयथुमेव च ।
खालित्यं पलितं चैव केशानां पतनं तथा ॥१८७ ॥
विषमज्वरमर्माणि शुक्रं चाशु व्यपोहति ।
अन्ये च बहवो रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मजाः ।
तान्सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १८८
न चैवास्मात्परं किञ्चिद्दृषिभिः काश्यपादिभिः ।
दृष्टिप्रसादनं दृष्टं यथा स्यात्त्रैफलं घृतम् ॥ १८९॥

त्रिफला, त्रिकटु, मुनक्का, मौरेठी, कुटकी, पुण्डरिया, छोटी इलायची, वायविड़ंग, नागकेशर, नीलोफर, शारिवा काली शारिवा, चन्दन, हल्दी, दारुहल्दी प्रत्येक एक एक तोलेका कल्क घी १२८ तो०, दूध १२८ तोला तथा त्रिफलाका रस ४ सेर ६४ तोला मिलाकर पकाना चाहिये। यह समस्त नेत्ररोग तथा तिमिर, वहना, कामला, काच, तथा अर्बुद, विसर्प, प्रदर, खुजली, लालिमा, सूजन, वालोंका गिरना, सफेदी, इन्द्रलुप्त, विषमज्वर, अर्म, फूली तथा और जो अनेक नेत्र या विनियोंमें रोग होते हैं, उन सबको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकारको। काश्यपादि ऋषियोंने इससे बढ़कर कोई प्रयोग नेत्रोंके लिये लाभदायक नहीं समझा ॥ १८४–१८९ ॥

तिमिरघ्नत्रैफलं घृतम् ।

फलत्रिकाभीरुकषायसिद्धं
कल्केन यष्टीमधुकस्य युक्तम् ।
सर्पिः समं क्षौद्रचतुर्थभागं
हन्यात्रिदोषं तिमिरं प्रवृद्धम् ॥ १९० ॥

त्रिफला, और शतावरीके क्राथ तथा मौरेठीके कल्कसे सिद्ध घृतमें चतुर्थांश शहद मिलाकर सेवन करनेसे त्रिदोषज तिमिर शान्त होता है ॥ १९० ॥

भृङ्गराजतैलम् ।

भृङ्गराजरसप्रस्थे यष्टीमधुपलेन च ।
तैलस्य कुडवं पक्वं सद्यो दृष्टिं प्रसादयेत् ।
नस्याद्वलीपलितघ्नं मासेनैतन्न संशयः ॥ १९१ ॥

भाँगरेका रस ६४ तो०, मौरेठीका कल्क ४ तोला, तैल १६ तो० पकाकर नस्य लेनेसे झुर्रियाँ और वालोंकी सफेदी नष्ट करता तथा नेत्र उत्तम बनाता है ॥ १९१ ॥

गोशकृत्तैलम् ।

गवां शकृत्क्राथविपक्वमुत्तमं
हितं च तैलं तिमिरेषु नस्ततः ।
घृतं हितं केवलमेव पैत्तिके
तथाणुतैलं पवनासृगुत्थयोः ॥ १९२ ॥

गायके गोवरके क्राथसे पकाया तैल नस्य लेनेसे तिमिरको शान्त करता है। पैत्तिकमें केवल घृत तथा वातरक्तजमें अणुतैल हितकर है ॥ १९२ ॥

नृपवल्लभतैलम् ।

जीवकर्षभकौ मेदे द्राक्षांशुमती निदिग्धिका बृहती ।
मधुकं बला विडङ्गं मञ्जिष्ठा शर्करा रास्ना ॥१९३॥
नीलोत्पलं श्वदंष्ट्रा प्रपौण्डरीकं पुनर्नवा लवणम् ।
पिप्पल्यः सर्वेषां भागैरक्षांशिकैः पिष्टैः ॥ १९४ ॥
तैलं यदि वा सर्पिर्दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणं पक्वम् ।
तिमिरं पटलं काचं नक्तान्ध्यं चार्बुदं तथान्ध्यं च ।
श्वेतं च लिङ्गनाशं नाशयति परं च नीलिकाव्यङ्गम् ।
मुखनासादौर्गन्ध्यं पलितं चाकालजं हनुस्तम्भम् ।
कासं श्वासं शोषं हिक्कां स्तम्भं तथात्ययं नेत्रे १९६
मुखरोगमर्धभेदं रोगं बाहुग्रहं शिरःस्तम्भम् ।
रोगानथोर्ध्वजत्रोः सर्वानचिरेण नाशयति ॥१९७॥
नस्यार्थं कुडवं तैलं पक्तव्यं नृपवल्लभम् ।
अक्षांशैः शाणिकैः कल्कैरन्ये भृङ्गादितैलवत् १९८

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, मुनक्का, सरिवन, कटेरी, बड़ी कटेरी, मौरेठी, खरेटी, वायविडंग मजीठ, शक्कर, रास्ना, नीलोफर, गोखुरू, पुण्डरिया, पुनर्नवा, नमक तथा छोटी पीपल प्रत्येक ३ मासेका कल्क तैल अथवा घी १६ तोला, दूध ६४ तो० छोड़कर पकाना चाहिये। यह तिमिर, पटल, काच, नक्तान्ध्य, अर्बुद, अन्धता, लिङ्गनाश, सफेदी, झाई, व्यंग, मुखनासादुर्गंध तथा अकालपलित, हनुस्तम्भ, कास, श्वास, शोष, हिक्कास्तम्भ तथा नेत्रात्यय, मुखरोग, अर्धभेद, बाहुकी जकड़ाहट, शिरःस्तम्भ तथा ऊर्ध्वजत्रुके समस्त रोग शीघ्रही नष्ट करता है। इसका नस्य लेना चाहिये। इसमें प्रत्येकका कल्क ३ माशे और तैल १६ तोला छोड़ना चाहिये। कुछलोग कहते हैं कि भृंगराज तैलके समान बनाना चाहिये ॥ १९३–१९८ ॥

अभिजित्तैलम् ।

तैलस्य पचेत्कुडवं मधुकस्य पलेन कल्कपिष्टेन ।
आमलकरसप्रस्थं क्षीरप्रस्थेन संयुतं कृत्वा ॥१९९॥
अभिजिन्नाम्ना तैलं तिमिरं हन्यान्मुनिप्रोक्तम् ।
विमलां कुरुते दृष्टिं नष्टामप्यानयेदिदं शीघ्रम् २००

तैल १६ तोला, मौरेठी ४ तो०, आंवलेका रस ६४ तो० व दूध ६४ तो० मिलाकर पकाना चाहिये। इसका नस्य तिमिरको नष्ट करता तथा दृष्टिको स्वच्छ करता है। इसे "अभिजित्तैल" कहते हैं ॥ १९९ ॥ २०० ॥

अर्मचिकित्सा ।

अर्म तु छेदनीयं स्यात्कृष्णप्राप्तं भवेद्यदा ।
बाडिशाविद्धमुन्नम्य त्रिभागं चात्र वर्जयेत् ॥२०१ ॥
पिप्पलीत्रिफलालाक्षालोहचूर्णं ससैन्धवम् ।
भृङ्गराजरसे पिष्टं गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥ २०२ ॥
अर्म सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रं तदर्जुनम् ।
अजकां नेत्ररोगांश्च हन्यान्निरवशेषतः ॥ २०३ ॥

अर्म जब काले भागमें पहुंच जाय, तब बड़िशसे पकड़ उन्नमित कर ३ भाग छोड़कर काटना चाहिये। तथा छोटी पीपल

त्रिफला, लाख, लोहचूर्ण व सेंधानमकको भांगरेके रसमें पीसकर गुटिकाञ्जन बनाना चाहिये । यह अर्म, तिमिर, काच, खुजली-फूली, अर्जुन, अजका और समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करता है ॥ २०१–२०३ ॥

पुष्पादिरसक्रिया ।

पुष्पाख्यताक्ष्यंजसितोदधिफेनशङ्ख-
सिन्धूत्थगैरिकशिलामरिचैः समांशैः ।
पिष्टैश्च माक्षिकरसेन रसक्रियेयं
हन्त्यर्मकाचतिमिरार्जुनवर्त्मरोगान् ॥२०४॥

पुष्पकासीस, रसौंत, मिश्री, समुद्रफेन, शंख, सेंधानमक, गेरू, मनशिल व काली मिर्च समान भाग ले शहदमें घोटकर बनायी गयी रसक्रिया अर्म, काच, तिमिर, अर्जुन और वर्त्म-रोगोंको नष्ट करती है ॥ २०४ ॥

शुक्तिकाचिकित्सा ।

कौम्भस्य सर्पिषः पानैर्विरेकालेपसेचनैः ।
स्वादुशीतैः प्रशमयेच्छुक्तिकामञ्जनैस्ततः ॥ २०५॥
प्रवालमुक्तावैदूर्यशङ्खस्फाटिकचन्दनम् ।
सुवर्णरजतं क्षौद्रमञ्जनं शुक्तिकापहम् ॥ २०६ ॥

दश वर्षका पुराना घृत पिलाकर तथा विरेचन, लेप व सेक और मीठे, ठण्डे पदार्थ तथा अञ्जनसे शुक्तिका शान्त करनी चाहिये । तथा मूँगा, मोती, लहसुनिया, शंख, स्फटिक, चन्दन, सोना, चाँदी और शहदका अञ्जन शुक्तिकाको नष्ट करता है ॥ २०५ ॥ २०६ ॥

अर्जुनचिकित्सा ।

शङ्खः क्षौद्रेण संयुक्तः कतकः सैन्धवेन वा ।
सितयार्णवफेनो वा पृथगञ्जनमर्जुने ॥ २०७ ॥
पैत्तं विधिमशेषेण कुर्यादर्जुनशान्तये ॥ २०८ ॥

अर्जुनमें शंखको पीसकर शहदके साथ अथवा निर्मलीको पीसकर सेंधानमकके साथ अथवा समुद्रफेनको मिश्रीके साथ नेत्रमें लगाना चाहिये । तथा समग्र पैत्तिक विधि अर्जुनमें करनी चाहिये ॥ २०७ ॥ २०८ ॥

पिष्टिकाचिकित्सा ।

वैदेही श्वेतमरिचं सैन्धवं नागरं समम् ।
मातुलुङ्गरसैः पिष्टमञ्जनं पिष्टिकापहम् ॥ २०९ ॥

छोटी पीपल, सहिंजनके बीज, सेंधानमक व सोंठ समान भाग ले बिजौरे निम्बूके रसमें पीसकर बनाया पछने गया अञ्जन पिष्टिकाको नष्ट करता है ॥ २०९ ॥

उपनाहचिकित्सा ।

भित्त्वोपनाहं कफजं पिप्पलीमधुसैन्धवैः ।
विलिम्पेन्मण्डलाग्रेण प्रच्छयेद्वा समन्ततः ॥ २१०॥

कफज–उपनाहका भेदन कर छोटी पीपल, शहद व सेंधा-नमकका लेप करना चाहिये । अथवा मण्डलाग्रशस्त्रसे लगाना चाहिये ॥ २१० ॥

फलबीजवर्तिः ।

पथ्याक्षधात्रीफलमध्यबीजै-
स्त्रिद्व्येकभागैर्विदधीत वर्तिम् ।
तयाञ्जयेदश्रुमतिप्रगाढ-
मक्ष्णोर्हरेत्कष्टमपि प्रकोपम् ॥ २११ ॥

आँवलेकी मींगी १ भाग, बहेड़ाकी मींगी २ भाग, हर्रेकी मींगी ३ भाग पीसकर बत्ती बनानी चाहिये । इससे अञ्जन लगानेसे गाढे आँसुओंका आना आदि नेत्र कष्ट नष्ट होता है ॥ २११ ॥

त्रिफलायोगाः ।

स्रावेषु त्रिफलाक्वाथं यथादोषं प्रयोजयेत् ।
क्षौद्रेणाज्येन पिप्पल्या मिश्रं विध्येच्छिरां तथा२१२
त्रिफलामूत्रकासीससैन्धवैः सरसाञ्जनैः ।
रसक्रिया क्रिमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात्प्रतिसारणम् ॥२१३

स्रावोंमें दोषोंके अनुसार त्रिफला क्वाथका प्रयोग शहद, घी, तथा छोटी पीपल मिलाकर करना चाहिये । तथा शिराव्यध करना चाहिये । क्रिमिग्रन्थिका भेदन कर त्रिफला, गोमूत्र, कासीस, सेंधानमक व रसौंतकी रसक्रिया कर लगाना चाहिये ॥ २१२ ॥ २१३ ॥

अञ्जननामिकाचिकित्सा ।

स्विन्नां भित्त्वा विनिष्पीड्य भिन्नामञ्जननामिकाम् ।
शिलैलानतसिन्धूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥२१४॥
रसाञ्जनमधुभ्यां च भिन्नां वा शस्त्रकर्मवित् ।
प्रतिसार्याञ्जनैर्युञ्ज्यादुष्णैर्दीपशिखोद्भवैः ॥२१५॥
स्वेदयेद् घृष्टयाङ्गुल्या हरेद्रक्तं जलौकसा ।
रोचनाक्षारतुल्यानि पिप्पल्यः क्षौद्रमेव च ॥२१६॥
प्रतिसारणमेकैकं भिन्नेन गण इष्यते ।

अञ्जननामिकाका स्वेदन, भेदन कर शुद्ध होनेपर मनःशिला, इलायची, तगर, व सेंधानमकके चूर्णको शहद मिलाकर लगाना चाहिये । तथा अञ्जननामिका फूट जानेपर रसौंत और शहद लगाकर गरम दीपशिखाका अञ्जन लगाना चाहिये । और अंगुलीको गदोरी पर घिसकर लगाना चाहिये । तथा

जोंक लगाकर खून निकालना चाहिये । गोरोचन, क्षार, तूतिया छोटी पीपल, शहद इनमेंसे कोई एक प्रतिसारणमें उत्तम है ॥ २१४–२१६ ॥–

निमिषविसग्रन्थिचिकित्सा ।

निमिषे नासया पेयं सर्पिस्तेन च पूरणम् ॥ २१७॥
स्वेदयित्वा विसग्रन्थिं छिद्राण्यस्य निराश्रयम् ।
पक्वं भित्त्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेनावचूर्णयेत्॥२१८॥

निमिषमें नासिकासे घी पीना तथा घीसे ही नेत्र भरना चाहिये । विसग्रन्थिका स्वेदन कर पकनेपर भेदनद्वारा साफ कर सेंधानमक लगाना चाहिये ॥ २१७ ॥ २१८ ॥

पिल्लचिकित्सा ।

वर्त्मावलेखं बहुशस्तद्वच्छोणितमोक्षणम् ।
पुनःपुनर्विरेकं च पिल्लरोगातुरो भजेत् ॥ २१९ ॥
पिल्ली स्निग्धो वमेत्पूर्वं शिरां विद्धयेत् स्रुतेऽसृजि ।
शिलारसाञ्जनव्योषगोपित्तैश्चक्षुरञ्जयेत् ॥ २२० ॥
हरितालवचादारुसुरसारसपेषितम् ।
अभयारसपिष्टं वा तगरं पिल्लनाशनम् ॥ २२१ ॥

पिल्लरोगमें वार वार विनियोंका खुरचना, फस्तका खोलना तथा वार वार विरेचन लेना चाहिये । तथा पहिले स्नेहन कर वमन करना चाहिये, फिर शिराव्यध कर रक्त निकल जानेपर मनशिल, रसौंत, त्रिकटु व गोरोचनसे अञ्जन लगाना चाहिये । इसी प्रकार तुलसीके रसमें पीसे हरिताल, वच, देवदारु अथवा हर्रके रसमें पीसा तगर, लगानेसे पिल्ल नष्ट होता है ॥ २१९–२२१ ॥

धूपः ।

भावितं बस्तमूत्रेण सस्नेहं देवदारु च ।
काकमाचीफलैकेन घृतयुक्तेन बुद्धिमान् ॥ २२२ ॥
धूपयेत्पिल्लरोगार्तं पतन्ति क्रिमयोऽचिरात् ।

बकरेके मूत्रसे भावित स्नेहके सहित देवदारु, अथवा घीके सहित मकोयके फलकी धूप देनेसे पिल्ल रोगके कीड़े गिर जाते हैं ॥ २२२ ॥–

प्रक्लिन्नवर्त्मचिकित्सा ।

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला ॥ २२३॥
समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ।
एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्नवर्त्मनि ॥ २२४ ॥
अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणां च प्ररोहणम् ।
मस्तकास्थि चुलुक्यास्तु तुपोदलवणान्वितम् ॥२२५
ताम्रपात्रेऽञ्जनं घृष्टं पिल्ले प्रक्लिन्नवर्त्मनि ।
ताम्रपात्रे गुहामूलं सिन्धूत्थं मरिचान्वितम्॥२२६॥
आरनालेन संघृष्टमञ्जनं पिल्लनाशनम् ।

रसौंत, राल, चमेलीके फूल, मैनशिल, समुद्रफेन, नमक, गेरू, व काली मिर्च समान भाग ले शहदमें मिलाकर प्रक्लिन्न वर्त्ममें अञ्जन लगानेसे गीलापन, खुजली नष्ट करता व विनियोंको जमाता है । तथा चुलकी (मछली) की हड्डी, काञ्जी व नमकके साथ ताम्रके वर्तनमें अञ्जन घिसकर पिल्ल तथा प्रक्लिन्नवर्त्ममें लगाना चाहिये । इसी प्रकार पिठिवनकी जड़, सेंधानमक व काली मिर्च काञ्जीमें ताम्रपात्रमें ७ दिन घिसकर आँखमें लगाना पिल्लको नष्ट करता है ॥ २२३–२२६ ॥–

हरिद्रादिवर्तिः ।

हरिद्रे त्रिफला लोध्रं मधुकं रक्तचन्दनम् ॥ २२७ ॥
भृङ्गराजरसे पिष्ट्वा घर्षयेल्लोहभाजने ।
तथा ताम्रे च सप्ताहं कृत्वा वर्तिं रजोऽथवा॥२२८॥
पिचिटी धूमदर्शी च तिमिरोपहतेक्षणः ।
प्रातर्निश्यञ्जयेन्नित्यं सर्वनेत्रामयापहम् ॥ २२९ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, लोध, मौरेठी व लालचन्दनको भांगरेके रसमें पीसकर लोहेके वर्तनमें घिसना चाहिये । फिर सात दिन तांबेके वर्तनमें रखकर बत्ती बना लेनी चाहिये, । अथवा चूर्ण रखना चाहिये । इसका प्रातः और सायंकाल अञ्जन लगानेसे पिचिट, धूमदर्शन, तिमिर आदि समस्त नेत्र राग शान्त होते हैं ॥ २२७–२२९ ॥

माञ्जिष्ठाद्यञ्जनम् ।

मञ्जिष्ठामधुकोत्पलोदधिकफत्वक्सेव्यगोरोचना-
मांसीचन्दनशङ्खपत्रगिरिमृत्तालीसपुष्पाञ्जनैः ।
सर्वैरेव समांशमञ्जनमिदं शस्तं सदा चक्षुषोः
कण्डूक्लेदमलाश्रुशोणितरुजापिल्लार्मशुक्रापहम्२३०॥

मजीठ, मौरेठी, नीलोफर, समुद्रफेन, दालचीनी, खश, गोरोचन, जटामासी, चन्दन, शंख, तेजपात, गेरू, तालीशपत्र, कासीस तथा रसौंत सब समान ले अञ्जन लगाना आंखोंको हितकर तथा कण्डू, गीलापन, मल, आंसू तथा रक्तदोष, पिल्ल, अर्म और शुक्रको नष्ट करता है ॥ २३० ॥

तुत्थकादिसेकः ।

तुत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः ।
त्रिंशता काञ्जिकपलैः पिष्ट्वा ताम्रे निधापयेत्॥२३१
पिल्लानपिल्लान्कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि ।
तत्सेकेनोपदेहाश्रुकण्डूशोथांश्च नाशयेत् ॥ २३२ ॥

तूतिया ४ तो० सहिंजनके बीज २०, काञ्जी १॥ सेरमें मिलाकर ताम्रके वर्तनमें रखना चाहिये। इसके सिञ्चनसे पुराने पिल्ल दूर होते हैं तथा उपदेह, आंसू, खुजली और सूजन नष्ट होती है॥ २३१॥ २३२॥

पक्ष्मोपरोधचिकित्सा।

याप्यः पक्ष्मोपरोधस्तु रोमोद्धरणलेखनैः।
वर्त्मन्युपचितं लेख्यं स्राव्यमुत्क्लिष्टशोणितम्॥२३३॥
प्रवृद्धान्तर्मुखं रोम सहिष्णोरुद्धरेच्छनैः।
संदंशेनोद्धरेद् दृष्ट्यां पक्ष्मरोमाणि बुद्धिमान्॥२३४
रक्षन्नक्षि दहेत्पक्ष्म तप्तहेमशलाकया।
पक्ष्मरोगे पुनर्नैवं कदाचिद्रोमसंभवः॥ २३५॥

पक्ष्मोपरोध याप्य होता है, इसमें रोमोंका उद्धरण तथा लेखन करते रहना चाहिये। विर्त्ममें इकट्ठा रक्त खुरचना चाहिये तथा बहुत बढ़ा रक्त निकाल देना चाहिये। अन्तर्मुख बढे रोवें धीरे धीरे चिमटीसे सहिष्णु पुरुषके उखाड़ देने चाहिये। आंखको बचाते हुए गरम सोनेकी सलाईसे जला देना चाहिये। इससे फिर रोम नहीं जमते॥ २३३-२३५॥

लेख्यभेद्यरोगाः।

उत्सङ्गिनी बहुलकर्दमवर्त्मनी च
श्यावं च यच्च पठितं त्विह बद्धवर्त्म।
क्लिन्नं च पोथकियुतं त्विह वर्त्म यच्च
कुम्भीकिनी च सह शर्करयावलेख्याः॥२३६
श्लेष्मोपनाहलगणौ च विसं च भेद्यो
ग्रन्थिश्च यः क्रिमिकृतोऽञ्जननामिका च॥ २३७॥

उत्संगिनी, बहुलवर्त्म, कर्दम, श्याव, बद्धवर्त्म, क्लिन्न, पोथकी, कुम्भीकिनी, व शर्करा, इनका अवलेखन करना चाहिये। तथा श्लेष्मरोग, उपनाह, विसग्रंथि, क्रिमिग्रंथि और अञ्जननामिकाका भेदन करना चाहिये॥ २३६॥ २३७॥

कफानाहादिचिकित्सा।

घृतसैन्धवचूर्णेन कफानाहं पुनः पुनः।
विलिम्पेन्मण्डलाग्रेण प्रच्छयेद्वा समन्ततः॥२३८॥
पटोलामलकक्वाथैराश्च्योतनविधिर्हितः।
फणिज्जकरसोनस्य रसैः पोथकिनाशनः॥ २३९॥
आनाहपिडकां स्विन्नां तिर्यग्भित्त्वाग्निना दहेत्।
अर्शस्तथा वर्त्म नाम्ना शुष्कार्शोऽर्बुदमेव च २४०॥
मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन मूले छिन्द्याद्भिषक् शनैः।
सिन्धूत्थपिप्पलीकुष्ठपर्णिनीत्रिफलारसैः॥ २४१॥
सुरामण्डेन वर्तिः स्याच्छ्लेष्माभिष्यन्दनाशिनी।
वर्त्मोपरोधे पोथक्यां क्रिमिग्रन्थौ कुकूणके॥२४२॥

कफानाहको बार बार घी व सेंधानमकके चूर्णसे लेप करना अथवा मण्डलाग्रसे पछने लगाने चाहिये। तथा परवल व आंवलेके काथसे आश्च्योतन विधि हितकर है तथा देवना और लहसुनके रससे पोथकी नष्ट होती है। आनाहपिडिकाका स्वेदन कर तिरछा भेदन करना फिर अग्निसे जलाना चाहिये। अर्शोवर्त्म तथा शुष्कार्श और अर्बुदको तीक्ष्ण मण्डलाग्रसे धीरेसे मूलसे काट देना चाहिये। सेंधानमक, छोटी पीपल, कूठ, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी और त्रिफलाके रस तथा सुरामण्डसे बनायी वत्ती श्लेष्माभिष्यन्द, पोथकी, वर्त्मोपरोध क्रिमिग्रंथि और कुकूणकको नष्ट करती है॥ २३८-२४२॥

इति नेत्ररोगाधिकारः समाप्तः।

अथ शिरोरोगाधिकारः।

वातिकचिकित्सा।

वातिके शिरसो रोगे स्नेहस्वेदान्सनावनान्।
पानान्नमुपहारांश्च कुर्याद्वातामयापहान्॥ १॥
कुष्ठमेरण्डतैलं च लेपात्काञ्जिकपेषितम्।
शिरोऽर्तिं नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचुकुन्दजम्॥२॥
पञ्चमूलीशृतं क्षीरं नस्ये दद्याच्छिरोगदे।

वातज शिरोरोगमें नस्य, स्नेहन, स्वेदन, पान, अन्नभोजन आदि वातनाशक करने चाहियें। कूठ व एरण्ड तैल काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे अथवा मुचकुंदके फूलका लेप करनेसे शिरोऽर्ति नष्ट होती है। तथा पञ्चमूलसे सिद्ध दूधका नस्य देनेसे शिरोऽर्ति शान्त होती है॥ १॥ २॥

शिरोबस्तिः।

आशिरो व्यायतं चर्म कृत्वाष्टांगुलमुच्छ्रितम्॥ ३॥
तेनावेष्ट्य शिरोऽधस्तान्माषकल्केन लेपयेत्।
निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैरुष्णैः प्रपूरयेत्॥ ४॥
धारयेदारुजः शान्तेर्यामं यामार्धमेव वा।
शिरोबस्तिर्जयत्येष शिरोरोगं मरुद्भवम्॥ ५॥
हनुमन्याक्षिकर्णार्तिमर्दितं मूर्धकम्पनम्।
तैलेनापूर्य मूर्धानं पञ्चमात्राशतानि च॥ ६॥
तिष्ठेच्छ्लेष्माणि पित्तेऽष्टौ दश वाते शिरोगदी।
एष एव विधिः कार्यस्तथा कर्णाक्षिपूरणे॥ ७॥

शिरके बराबर लम्बा तथा आठ अंगुल ऊँचा चर्म लेकर शिरमें लपेटना चाहिये। नीचे उड़दके कल्कका लेप करना चाहिये। फिर सीधा बैठाल कर गुनगुने तैलसे भर देना चाहिये और जबतक पीड़ा शांत न हो, तबतक १॥ घण्टेसे ३ घण्टेतक

रखना चाहिये । यह शिरोवस्ति वातज शिरोरोग, हनु, मन्या, कान व नेत्रकी पीड़ा, अर्दित, शिरका कम्पना आदि नष्ट करती है । सामान्य दशामें तैलसे शिर भरकर कफमें ५०० मात्रा उच्चारण काल पित्तमें ८०० और वातमें १००० मात्रा उच्चारण तक रखना चाहिये । यही विधि कान और आंखमें भरनेकी है ॥ ३-७ ॥

पैत्तिकचिकित्सा ।

पैत्ते घृतं पयःसेकाः शीतलेपाः सनावनाः ।
जीवनीयानि सर्पींषि पानान्नं चापि पित्तनुत् ॥८॥
पित्तात्मके शिरोरोगे स्निग्धं सम्यग्विरेचयेत् ।
मृद्वीकात्रिफलेक्षूणां रसैः क्षीरैर्घृतैरपि ॥ ९ ॥
शतधौतघृताभ्यङ्गः शीतवातादिसेवनम् ।
शीतस्पर्शाश्च संसेव्याः सदा दाहार्तिशान्तये ॥ १०
चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रीनखोत्पलैः ।
क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्याच्छृतैर्वा परिषेचनम् ॥ ११ ॥
मृणालबिसशालूकचन्दनोत्पलकेशरैः ।
स्निग्धशीतैः शिरो दिह्यात्तद्वदामलकोत्पलैः ॥१२॥

पैत्तिकमें घी व दूधका सिञ्चन, नस्य तथा शीतल लेप जीवनीय घृत तथा पित्तनाशक भोजन व पानका प्रयोग करना चाहिये । तथा ठीक स्नेहन कर विरेचन देना चाहिये । विरेचनके लिये मुनक्का, त्रिफला, ईखका रस, दूध और घृतका प्रयोग करना चाहिये । तथा १०० वार धोये घीकी मालिश, शीतवायु-सेवन, शीत स्पर्श सदा दाह और पीड़ाकी शान्तिके लिये करना चाहिये । तथा चन्दन, खश, मौरेठी, खरेटी, कटेरी, नख, नीलोफर, दूधमें पीसकर लेप करना चाहिये । अथवा क्काथ बना ठण्डा कर सिञ्चन करना चाहिये । इसी प्रकार शीतल व स्नेहयुक्त कमलकी डण्डी, कमलके तन्तु, भँसीड़ा, चन्दन, नीलोफर व कमलके केशरका अथवा आंवला और नीलोफरका लेप करना चाहिये ॥ ८-१२ ॥

नस्यम् ।

यष्ट्याह्वचन्दनानन्ताक्षीरसिद्धं घृतं हितम् ।
नावनं शर्कराद्राक्षामधुकैर्वापि पित्तजैः ॥ १३ ॥
त्वक्पत्रशर्करापिष्टा नावनं तण्डुलाम्बुना ।
क्षीरसर्पिर्हितं नस्यं रसा वा जाङ्गला शुभाः॥१४॥

मौरेठी, चन्दन, यवासा, और दूधसे सिद्ध घृत अथवा शक्कर मुनक्का व मौरेठीसे सिद्ध घृतका नस्य पैत्तिकमें देना चाहिये । अथवा दालचीनी, तेजपातका शक्करको पीसकर चावलके धोवनके साथ नस्य लेना अथवा दूध व घीका नस्य अथवा जांगल प्राणियोंके मांसरसका नस्य लेना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

रक्तजचिकित्सा ।

रक्तजे पित्तवत्सर्वं भोजनालेपसेचनम् ।
शीतोष्णयोश्च व्यत्यासो विशेषो रक्तमोक्षणम् १५॥

रक्तजमें पित्तके समान ही सब भोजन आलेप और सेचन करना चाहिये । व उष्ण प्रयोग बदल बदल करना चाहिये । तथा रक्तमोक्षण करना चाहिये ॥ १५ ॥

कफजचिकित्सा ।

कफजे लङ्घनं स्वेदो रूक्षोष्णैः पाचनात्मकैः ।
तीक्ष्णावपीडा धूमाश्च तीक्ष्णाश्च कवला हिताः१६॥
अच्छं च पाययेत्सर्पिः पुराणं स्वेदयेत्ततः ।
मधूकसारेण शिरः स्विन्नं चास्य विरेचयेत् ॥ १७॥

कफजमें लंघन, रूक्ष उष्ण तथा पाचनात्मक पदार्थोंसे स्वेदन, तीक्ष्ण नस्य, तीक्ष्ण धूम तथा कवल हितकर है । अकेले पुराना घी पिलाकर स्वेदन करना चाहिये फिर महुआके सारसे शिरो-विरेचन करना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥

कृष्णादिलेपः ।

कृष्णाब्दशुण्ठीमधुकशताह्वोत्पलपाकलैः ।
जलपिष्टैः शिरोलेपः सद्यः शूलनिवारणः ॥ १८ ॥

छोटी पीपल, नागरमोथा, सोंठ, मौरेठी, सौंफ, नीलोफर और कूठको जलमें पीसकर लेप करनेसे शीघ्रही शिरदर्द शान्त होता है ॥ १८ ॥

देवदार्वादिलेपः ।

देवदारु नतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम् ।
लेपः काञ्जिकसंपिष्टस्तैलयुक्तः शिरोऽर्तिनुत्॥१९॥

देवदारु, तगर, कूठ, जटामांसी व सोंठको काञ्जीमें पीस तैल मिलाकर लेप करना शिरदर्दको शान्त करता है ॥ १९ ॥

सन्निपातजचिकित्सा ।

सन्निपातभवे कार्या दोषत्रयहरी क्रिया ।
सर्पिष्पानं विशेषेण पुराणं त्वादिशन्ति हि ॥ २०॥

सन्निपातजमें त्रिदोषनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । तथा विशेषकर पुराना घी पिलाना उत्तम है ॥ २० ॥

त्रिकट्वादिक्काथनस्यम् ।

त्रिकटुकपुष्कररजनीरास्नासुरदारुतुरगगन्धानाम् ।
क्काथः शिरोऽर्तिजालं नासापीतो निवारयति॥२१॥

त्रिकटु, पोहकरमूल, हल्दी, रासन, देवदारु व असगन्धका क्काथ नासिकासे पीनेसे शिरकी पीड़ाको नष्ट करता है ॥ २१ ॥

अपरं नस्यम् ।

नागरकल्कविमिश्रं क्षीरं नस्येन योजितं पुंसाम् ।
नानादोषोद्भूतां शिरोरुजं हन्ति तीव्रतराम् ॥२२॥

सोंठके कल्कसे मिले दूधका नस्य लेनेसे त्रिदोषज शिरःशूल नष्ट होता है ॥ २२ ॥

लेपाः ।

नतोत्पलं चन्दनकुष्ठयुक्तं
शिरोरुजायां सघृतः प्रदेहः ।
प्रपौण्डरीकं सुरदारु कुष्ठं
यष्ट्याह्वमेला कमलोत्पले च ।
शिरोरुजायां सघृतः प्रदेहो
लोहैरकापद्मकचोरकैश्च ॥ २३ ॥

तगर, नीलोफर, चन्दन व कूठ, घीके साथ अथवा पुण्डरिया, देवदारु, कूठ, मौरेठी, इलायची, कमल व नीलोफर घीके साथ अथवा तगर, रोहिष, पद्माख और मटेउरका लेप घीके साथ त्रिदोषज शिरदर्दको शान्त करता है ॥ २३ ॥

शताह्वाद्यं तैलम् ।

शताह्वैरण्डमूलोग्रावक्रव्याघ्रीफलैः शृतम् ।
तैलं नस्यं मरुच्छ्लेष्मतिमिरोर्ध्वगदापहम् ॥ २४॥

सौंफ, एरण्डकी जड़, वच, तगर और कटेरीके फलोंसे सिद्ध तैलके नस्य लेनेसे वायुकफजन्य तिमिर तथा शिरोरोग नष्ट होते हैं ॥ २४ ॥

जीवकादितैलम् ।

जीवकर्षभकद्राक्षासितायष्टीबलोत्पलैः ।
तैलं नस्यं पयः पक्वं वातपित्तशिरोगदे ॥ २५ ॥

जीवक, ऋषभक, मुनका, मिश्री, मौरेठी, खरेटी व नीलोफरके कल्क तथा दूध मिलाकर सिद्ध तैल नस्य लेनेसे वातपित्तज शिरोरोग शान्त करता है ॥ २५ ॥

बृहज्जीवकाद्यं तैलम् ।

जीवकर्षभकौ द्राक्षा मधूकं मधुकं बला ।
नीलोत्पलं चन्दनं च विदारी शर्करा तथा ॥ २६ ॥
तैलप्रस्थं पचेदेभिः शनैः पयसि षड्गुणे ।
जाङ्गलस्य तु मांसस्य तुलार्धस्य रसेन तु ॥ २६ ॥
सिद्धमेतद्भवेन्नस्यं तैलमर्धावभेदकम् ।
बाधिर्यं कर्णशूलं च तिमिरं गलशुण्डिकाम् ॥२८॥
वातिकं पैत्तिकं चैव शीर्षरोगं नियच्छति ।
दन्तचालं शिरःशूलमर्दितं चापकर्षति ॥ २९ ॥

जीवक, ऋषभक, मुनका, मौरेठी, महुआ, खरेटी, नीलोफर, चन्दन, विदारीकन्द व शक्करके कल्क तथा ६ गुने दूधमें तथा जाङ्गल मांस २॥ सेरके रसके साथ १ प्रस्थ तैल सिद्ध करना चाहिये । यह तैल नस्यसे अर्धावभेदक, बाधिर्य, कानके दर्द, तिमिर, गलशुण्डी, वातिक, पैत्तिक, शिरोरोग, दांतोंके हिलने और अर्दितरोगको नष्ट करता है ॥ २६–२९ ॥

षड्बिन्दुतैलम् ।

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा
जीवन्ति रास्ना सह सैन्धवं च ।
भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च
विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ ३० ॥
आजं पयस्तैलविमिश्रितं च
चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपक्वम् ।
षड् बिन्दवो नासिकया विधेयाः
शीघ्रं निहन्युः शिरसो विकारान् ॥ ३१ ॥
शुभ्रांश्च केशांश्चलितांश्च दन्तान्
दुर्बद्धमूलांश्च दृढीकरोति ।
सुपर्णदृष्टिप्रतिमं च चक्षु-
र्बाह्वोर्बलं चाभ्यधिकं ददाति ॥ ३२ ॥

एरण्डकी जड़, तगर, सौंफ, जीवन्ती, रास्ना, सेंधानमक भांगरा, वायविडङ्ग, मौरेठी, सोंठ, काले तिलोंका तैल, बकरीका दूध तैलके तथा तैलसे चतुर्गुण भांगरेका रस मिलाकर पकाना चाहिये । इसके ६ बिन्दु नाकमें डालनेसे शीघ्रही शिरोरोग नष्ट होते, सफेद बाल काले होते तथा हिलते दांत मजबूत होते हैं । और गरुड़के समान दृष्टि तथा बाहुओंमें बलकी वृद्धि होती है ॥ ३०–३२ ॥

क्षयजचिकित्सा ।

क्षयजे क्षयमासाद्य कर्तव्यो बृंहणो विधिः ।
पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नैर्मधुरैः शृतम् ॥३३॥

क्षयजमें क्षयका निश्चय कर बृंहणविधि करनी चाहिये । तथा पीने व नस्यके लिये वातनाशक मीठे पदार्थोंसे सिद्ध कर घीका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३३ ॥

क्रिमिजचिकित्सा ।

क्रिमिजे व्योषनक्ताह्वशिग्रुबीजैश्च नावनम् ।
अजामूत्रयुतं नस्यं क्रिमिजे क्रिमिजित्परम् ॥ ३४ ॥

क्रिमिजमें त्रिकटु, कञ्जा व सहिंजनके बीजोंको बकरीके मूत्रमें मिलाकर नस्य देनेसे क्रिमि नष्ट होते हैं ॥ ३४ ॥

अपामार्गतैलम् ।

अपामार्गफलव्योपनिशाक्षारकरामठैः ।
सविडङ्गं शृतं मूत्रे तैलं नस्यं क्रिमिं जयेत् ॥३५॥

अपामार्गके बीज, त्रिकटु, हल्दी, क्षार, हिंगु व वायविडङ्गके कल्क तथा गोमूत्रसे सिद्ध तैलके नस्य देनेसे क्रिमियोंको नष्ट करता है ॥ ३५ ॥

नागरादियोगौ ।

नागरं सगुडं विश्वं पिप्पली वा ससैन्धवा ।
भुजस्तम्भादिरोगेषु सर्वेष्वूर्ध्वगदेषु च ॥ ३६ ॥

गुड़के सहित सोंठ, अथवा सोंठ व छोटी पीपल व संधानमकके साथ बनाये गये नस्यका भुजस्तम्भादि रोगों तथा शिरोरोगोंमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ३६ ॥

सूर्यावर्तचिकित्सा ।

सूर्यावर्ते विधातव्यं नस्यकर्मादि भेपजम् ।
पाययेत्सगुडं सर्पिर्घृतपूरांश्च भक्षयेत् ॥ ३७ ॥
सूर्यावर्ते शिरावेधो नावनं क्षीरसर्पिपा ।
हितः क्षीरघृताभ्यासस्ताभ्यां चैव विरेचनम् ।
क्षीरपिष्टैस्तिलैः स्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते ॥ ३८ ॥

सूर्यावर्तमें नस्य आदि देना चाहिये, गुड़के साथ घी पिलाना चाहिये, घृतसे पूर्ण पदार्थ खाना चाहिये । तथा शिरावेध करना चाहिये और दूध व घीसे नस्य लेना चाहिये । दूध और घीका सेवन तथा इन्हींके साथ विरेचन, और दूधमें पीसे तिलोंसे स्वेदन तथा जीवनीयगणके प्रयोग हितकर होते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

कुङ्कुमनस्यम् ।

सशर्करं कुङ्कुममाज्यमृष्टं
नस्यं विधेयं पवनासृगुत्थे ।
भ्रूशङ्खकर्णाक्षिशिरोऽर्धशूले
दिनाभिवृद्धिप्रभवे च रोगे ॥ ३९ ॥

शक्करके साथ केशर घीमें मिलाकर वातरक्त जन्य भ्रूशंखकर्ण, अक्षि व शिरके अर्धभागके शूल तथा दिनमें बढ़नेवाले शूलमें नस्य लेना हितकर है ॥ ३९ ॥

कृतमालघृतम् ।

कृतमालपल्लवरसे खरमञ्जरिकल्कसिद्धनवनीतम् ।
नस्येन जयति नियतं सूर्यावर्तं सुदुर्वारम् ॥ ४० ॥

अमलतासके पत्तोंके रस तथा अपामार्गके कल्कके साथ पकाया मक्खन नस्य लेनेसे कठिन सूर्यावर्तको नष्ट करता है ॥ ४० ॥

दशमूलप्रयोगः ।

दशमूलीकपायं तु सर्पिःसैन्धवसंयुतम् ।
नस्यमर्धावभेदघ्नं सूर्यावर्तशिरोर्तिनुत् ॥ ४१ ॥

दशमूलके क्राथका घी व सेंधानमक मिलाकर नस्य लेनेसे अर्धावभेद, सूर्यावर्त और शिरदर्द रोग नष्ट होते हैं ॥ ४१ ॥

अन्ये प्रयोगाः ।

शिरीपमूलकफलैरवपीडं च योजयेत् ।
अवपीडो हितो वा स्याद्वचापिप्पलिभिः शृतः ॥ ४२
जाङ्गलानि च मांसानि कारयेदुपनाहनम् ।
तेनास्य शाम्यति व्याधिः सूर्यावर्तः सुदारुणः ।
एप एव विधिः कृत्स्नः कार्यश्चार्धावभेदके ॥४३॥
शारिवोत्पलकुष्टानि मधुकं चाम्लपेपितम् ।
सर्पिस्तैलयुतो लेपः सूर्यावर्तार्धभेदयोः ॥ ४४ ॥

सिरस और मूलीके बीजोंका नस्य अथवा वच और पीपलके क्वाथका नस्य देना चाहिये । तथा जांगल मांसको गरमकर बांधना चाहिये । इससे सूर्यावर्तरोग शान्त होता है । यही विधि अर्धावभेदकमें करना चाहिये । अथवा शारिवा, नीलोफर, कूठ व मौरेठीको काञ्जीमें पीस घी व तैलमें मिलाकर सूर्यावर्त व अर्धावभेदकमें लेप करना चाहिये ॥ ४२-४४ ॥

शर्करोदकयोगः ।

पिबेत्सशर्करं क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम् ।
सुशीतं वापि पानीयं सर्पिर्वा नस्ततस्तयोः ॥४५॥

सूर्यावर्त व अर्द्धावभेदकमें शक्करके साथ दूध अथवा नारियलका जल अथवा केवल ठण्ढा जल घीका नस्य लेना चाहिये ॥ ४५ ॥

अनन्तवातचिकित्सा ।

अनन्तवाते कर्तव्यः सूर्यावर्तहितो विधिः ।
शिरावेधश्च कर्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥ ४६ ॥
आहारश्च विधातव्यो वातपित्तविनाशनः ।
मधुमस्तुकसंयावघृतपूरैर्हितः क्रमः ॥ ४७ ॥

अनन्तवातमें सूर्यावर्तकी विधि करनी चाहिये । तथा शिराव्यध भी करना चाहिये । और वातपित्तनाशक आहार करना चाहिये । तथा शहद, दहीके तोड़, दलिया व घीके प्रयोग हितकर हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

शंखकचिकित्सा ।

सूर्यावर्ते हितं यत्तच्छङ्खके स्वेदवर्जितम् ।
क्षीरसर्पिः प्रशंसन्ति नस्तःपानं च शङ्खके ॥४८॥

सूर्यावर्तकी ही विधि स्वेदको छोड़कर शंखकमें करनी चाहिये । और क्षीरजन्य घृतका पान तथा नस्य देना हितकर है ॥ ४८ ॥

लेपाः ।

शतावरीं कृष्णतिलान्मधुकं नीलमुत्पलम् ।
मूर्वां पुनर्नवां चापि लेपं साध्ववतारयेत् ॥ ४९ ॥
शीततोयावसेकांश्च क्षीरसेकांश्च शीतलान् ।
कल्कैश्च क्षीरिवृक्षाणां शङ्खकस्य प्रलेपनम् ॥५०॥

शतावरी, काले तिल, मौरेठी नीलोफर, मूर्वा और पुनर्नवाका लेप करना चाहिये । तथा शीतल जलका सिञ्चन अथवा शीतल दूधका सिञ्चन तथा दूधवाले वृक्षोंके कल्कसे शंखकमें लेप करना चाहिये ॥ ४९ ॥ ५० ॥

शिराव्यधः ।

क्रौञ्चकादम्बहंसानां शरार्याः कच्छपस्य च ।
रसैः संविहितस्याथ तस्य शङ्खकसन्धिजाः ॥५१॥
ऊर्ध्वं तिस्रः शिराः प्राज्ञो भिन्द्यादेव न ताडयेत् ।

क्रौञ्च, कादम्ब, हँस, शरारी और कच्छपके मांसरसोंका सेवन कराकर शंखक सन्धिके ऊपरकी ३ शिराओंका वेध कर देना चाहिये । पर (वेध करते समय नियमानुकूल शिरा ताड़ित की जाती है) पर यह शिराताडन न करना चाहिये ॥ ५१ ॥

शिरःकम्पचिकित्सा ।

शिरःकम्पेऽमृतारास्नाबलास्नेहसुगन्धिभिः ॥ ५२ ॥
स्नेहस्वेदादि वातघ्नं शिरोबस्तिश्च शस्यते ।

शिरःकम्पमें गुर्च, रासन, खरेटी, स्नेह और सुगंधित पदार्थोंका सेवन तथा वातघ्न स्नेहन, स्वेदन और शिरोवस्ति हितकर हैं ॥ ५२ ॥

यष्ट्याद्यं घृतम् ।

यष्टीमधुबलारास्नादशमूलाम्बुसाधितम् ।
मधुरैश्च घृतं सिद्धमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ५३ ॥

मौरेठी, खरेटी, रासन, व दशमूलके काढे और मधुर औषधियोंके कल्कसे सिद्ध घृत सिरके रोगोंको नष्ट करता है ॥ ५३ ॥

मयूराद्यं घृतम् ।

दशमूलबलारास्नामधुकैस्त्रिपलैः सह ।
मयूरं पक्षपित्तान्त्रशकृत्पादास्यवर्जितम् ॥ ५४ ॥
जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन्क्षीरसमं पचेत् ।
मधुरैः कार्षिकैः कल्कैःशिरोरोगार्दितापहम् ॥५५॥
कर्णनासाक्षिजिह्वास्यगलरोगविनाशनम् ।
मयूराद्यमिदं ख्यातमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ५६ ॥
आखुभिः कुक्कुटैर्हंसैः शशैश्चापि हि बुद्धिमान् ।
कल्केनानेन विपचेत्सर्पिरूर्ध्वगदापहम् ॥ ५७ ॥
दशमूलादिना तुल्यो मयूर इह गृह्यते ।
अन्ये त्वाकृतिमानेन मयूरग्रहणं विदुः ॥ ५८ ॥

दशमूल १२ तोला, खरेटी, रासन, मौरेठी प्रत्येक १२ तोला और पखने, पित्त, आन्ते, विष्ठा, पैर और मुखरहित एक मयूर जलमें पकाना चाहिये । फिर इसी क्वाथमें एक प्रस्थ घृत, समान भाग दूध तथा मधुर औषधियों (जीवनीय गण) का प्रत्येकका १ तोल कल्क मिलाकर पकाना चाहिये । यह घृत शिरो रोग, आर्दित, कान, नाक, नेत्र, जिह्वा, मुख, व गलेके रोग यहांतक कि जत्रुके ऊपरके समस्त रोगोंको नष्ट करता है । इसी प्रकार मूसे, कुक्कुट, हंस और खरगोशके मांसरस तथा मधुरसंज्ञक औषधियोंके कल्कके साथ शिरोरोगनाशक घी पकाना चाहिये । इसमें दशमूलादिके समान "मयूर" लेना चाहिये । कुछ आचार्य आकृतिमान अर्थात् एकवचन निर्देशात् १ लेते हैं । इन घृतोंका नस्य लेनी चाहिये ॥ ५४–५८ ॥

प्रपौण्डरीकाद्यं तैलम्

प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः ।
सिद्धं धात्रीरसे तैलं नस्येनाभ्यञ्जनेन वा ।
सर्वानूर्ध्वगदान्हन्ति पलितानि च शीलितम् ॥५९॥

पुण्डरिया, मौरेठी, छोटी पीपल, चन्दन व नीलोफरके साथ आंवलेके रसमें सिद्ध तेलका नस्य लेनेसे समस्त शिरके रोग तथा पलित नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

महामायूरं घृतम् ।

शतं मयूरमांसस्य दशमूलबलातुलाम् ।
द्रोणेऽम्भसःपचेत्क्षुत्त्वा तस्मिन्पादस्थिते ततः ६०॥
निषिच्य पयसो द्रोणं पचेत्तत्र घृताढकम् ।
प्रपौण्डरीकवर्गोक्तैर्जीवनीयैश्च भेषजैः ॥ ६१॥
मेधाबुद्धिस्मृतिकरमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ।
मायूरमेतन्निर्दिष्टं सर्वानिलहरं परम् ॥ ६२ ॥
मन्याकर्णशिरोनेत्ररुजापस्मारनाशनम् ।
विषवातामयश्वासविषमज्वरकासनुत् ॥ ६३ ॥

मयूरका मांस ५ सेर, दशमूल मिलित २॥ सेर, खरेटी २॥ सेर, जल २५ सेर ९ छ० ३ तोलामें पकाना चाहिये, चतुर्थांश रहनेपर उतार छानकर दूध २५ सेर ४८ तो०, घी ६ सेर ३२ तो०, प्रपौंडरीकादिक औषधियों तथा जीवनीयगणकी औषधियोंका कल्क छोड़कर घी पकाना चाहिये । यह घी नस्य तथा

पानसे मेधा, बुद्धि, स्मरणशक्ति बढाता, शिरोरोगों तथा समस्त वातरोगोंको नष्ट करता और मन्या, कर्ण, शिर व नेत्रकी पीड़ा तथा अपस्मार, विष, वातरोग, श्वास, विषमज्वर और कासको विनष्ट करता है ॥ ६०-६३ ॥

इति शिरोरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथासृग्दराधिकारः

सामान्यचिकित्सा ।

दध्ना सौवर्चलाजाजी मधुकं नीलमुत्पलम् ।
पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरपीडिता ॥ १ ॥
पिबेदैणेयकं रक्तं शर्करामधुसंयुतम् ।
वासास्वरसं पैत्ते गुडूच्या रसमेव वा ॥ २ ॥
रोहीतकान्मूलकल्कं पाण्डुरेऽसृग्दरे पिबेत् ।
जलेनामलकाद्बीजकल्कं वा ससितामधु ॥ ३ ॥
धातक्याश्चाक्षमात्रं वा आमलक्या मधुद्रवम् ।
काकजानुकमूलं वा मूलं कार्पासमेव वा ॥ ४ ॥
पाण्डुप्रदरशान्त्यर्थं पिबेत्तण्डुलवारिणा ।
अशोकवल्कलक्वाथशृतं दुग्धं सुशीतलम् ।
यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥ ५ ॥

वातज प्रदरसे पीड़ित स्त्री शहदके साथ काले नमक जीरा, मौरेठी व नीलोफरके चूर्णको दहीमें मिलाकर खावे । पित्तजमें शक्कर और शहद मिलाकर हरिणका रक्त पीवे । अथवा अडूसेका स्वरस अथवा गुर्चका रस पीवे । कफज प्रदरमें रोहीतककी जड़का कल्क जल मिलाकर पीवे । अथवा आंवलेके बीजोंका कल्क शक्कर व शहद मिलाकर पीवे । अथवा धायके फूलोंका रस अथवा आंवलेका रस १ तोलेकी मात्रासे शहद मिलाकर पीवे । अथवा काकजंघाकी जड़ अथवा कपासकी जड़ चावलके जलके साथ पीले प्रदरकी शान्तिके लिये पीवें । तीव्र रक्तप्रदरकी शान्तिके लिये अशोककी छालसे सिद्ध दूध ठण्डा कर बलके अनुसार प्रातःकाल पीवे ॥ १-५ ॥

दार्व्यादिक्वाथः ।

दार्वीरसाञ्जनवृषाब्दकिरातबिल्व-
भल्लातकैरवकृतो मधुना कषायः ।
पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं
पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम् ॥ ६ ॥

दारुहल्दी, रसौंत, अडूसा, नागरमोथा, चिरायता, बेल और भिलावेंका क्वाथ ठण्डा कर शहद मिला पीनेसे शूलयुक्त, अति बलवान्, पीला, काला, लाल, नीला सफेद तथा अरुण प्रदर बन्द होता है ॥ ६ ॥

रसाञ्जनादियोगः ।

रसाञ्जनं तण्डुलीयस्य मूलं
क्षौद्रान्वितं तण्डुलतोयपीतम् ।
असृग्दरं सर्वभवं निहन्ति
श्वासं च भार्ङ्गी सह नागरेण ॥ ७ ॥

रसौंत, चौराईकी जड़को पीस शहद मिला चावलके जलके साथ पीनेसे सन्निपातप्रदर नष्ट होता तथा इसीमें भारङ्गी और सोंठ मिलाकर सेवन करनेसे श्वास भी नष्ट होता है ॥ ७ ॥

विविधा योगाः ।

दशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना ।
एतत्पीत्वा त्र्यहान्नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ ८ ॥
क्षौद्रयुक्तं फलरसं काष्ठोदुम्बरजं पिबेत् ।
असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक् ॥ ९ ॥
प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुग्धेन मधुयुतं पीतम् ।
कुशवाटयालकमूलं तण्डुलसलिलेन रक्ताख्यम् ।
शमयति मदिरापानं तदुभयमपि रक्तसंज्ञशुक्लाख्यौ
गुडेन बदरीचूर्णं मोचमामं तथा पयः ।
पीता लाक्षा च सघृता पृथक्प्रदरनाशना ॥ ११ ॥

दशमूल लेकर चावलके जलके साथ पीसकर पीनेसे ३ दिनमें स्त्री प्रदरसे मुक्त हो जाती है । अथवा कठूमरके शहद साथ मिलाकर पीना चाहिये । तथा शक्कर, दूध और भातका पथ्य रखना चाहिये। इसी प्रकार खरेटीकी जड़के चूर्णको शहदमें मिलाकर दूधके साथ पीनेसे प्रदर नष्ट होता है । तथा कुश और खरेटीकी जड़के चूर्णको चावलके जलके साथ पीनेसे रक्तप्रदर शान्त होता है । शराब पीना लाल तथा सफेद दोनों प्रदरोंको नष्ट करता है । गुड़के साथ बेरकी जड़के चूर्णका सेवन करनेसे अथवा केला और कच्चे दूधके सेवनसे अथवा घीके साथ लाख पीनेसे प्रदर नष्ट होता है ॥ ८-११ ॥

सामान्यनियमः ।

रक्तपित्तविधानेन प्रदरांश्चाप्युपाचरेत् ।
असृग्दरे विशेषेण कुटजाष्टकमाचरेत् ॥ १२ ॥

रक्तपित्तविधानसे प्रदरकी चिकित्सा करनी चाहिये । तथा रक्तप्रदरमें विशेषकर कुटजाष्टकका प्रयोग करना चाहिये ॥ १२ ॥

पुष्यानुगचूर्णम् ।

पाठाजम्ब्वाम्रयोर्मध्यं शिलाभेदरसाञ्जनम् ।
अम्बष्ठकी मोचरसः समङ्गापद्मकेशरान् ॥ १३ ॥
वत्सकातिविषामुस्तं बिल्वं लोध्रं सगैरिकम् ।
कट्फलं मरिचं शुण्ठी मृद्वीका रक्तचन्दनम् ॥ १४ ॥

कट्वङ्गवत्सकानन्ताधातकीमधुकार्जुनम्।
पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥१५
तानि क्षौद्रेण संयोज्य पाययेत्तण्डुलाम्बुना।
असृग्दरातिसारेषु रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥ १६ ॥
दोषागन्तुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत्।
योनिदोषं रजोदोषं श्वेतं नीलं सपीतकम् ॥ १७ ॥
स्त्रीणां श्यावारुणं यच्च तत्प्रसह्य निवर्तयेत्।
चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ॥ १८ ॥

पाढ, आम और जामुनकी मींगी, पाषाणभेद, रसौंत अम्बष्ठकी (किसीके मतसे पाढ़ ही डबल करना चाहिये । क्योंकि अम्बष्ठा पाढ़का नाम है। कोई सनके बीज छोड़ते हैं। पर मेरे विचारसे तो पाढ़ ही दूनी छोड़ना) मोचरस, लज्जालुके बीज, कमलका केशर, कुड़ेकी छाल, अतीस, नागरमोथा, बेल, लोध, गेरू, कैफरा, काली मिर्च, सोंठ, मुनक्का, लाल चन्दन, सोनापाढा, इन्द्रयव, यवासा, धायके फूल, मौरेठी व अर्जुनकी छाल, सब चीजें पुष्यनक्षत्रमें लाकर महीन चूर्ण करना चाहिये । उस चूर्णको शहदमें मिलाकर चावलके जलसे पीना चाहिये । यह रक्तप्रदर, रक्तातीसार, अतीसार और बालकोंके दोषज तथा आगन्तुक अतिसारोंको नष्ट करता है। स्त्रियोंके योनिदोष, रजोदोष, सफेद, नीले, पीले, आसमानी और लालिमा लिये हुए प्रदरोंको बलात् नष्ट करता है। यह "पुष्यानुगचूर्ण" अत्यन्त हितकर आत्रेय महर्षिसे प्रशंसित है ॥ १३-१८ ॥

मुद्गाद्यं घृतम्।

मुद्गमाषस्य निर्यूहे रास्नाचित्रकनागरैः।
सिद्धं सपिप्पलीबिल्वैः सर्पिः श्रेष्ठमसृग्दरे ॥ १९॥

मूँग और उड़दके क्वाथमें रासन, चीतकी जड़, सोंठ, छोटी पीपल और बेलके कल्कको छोड़कर सिद्ध घृत रक्तप्रदरमें हितकर है ॥ १९ ॥

शीतकल्याणकं घृतम्।

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमो रक्तशालयः।
मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका ॥ २० ॥
बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम्।
विदारी शतमूली च शालपर्णी सजीवका ॥ २१ ॥
त्रिफला त्रापुषं बीजं प्रत्यग्रं कदलीफलम्।
एषामर्धपलान्भागान्गव्यं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ २२ ॥
पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
प्रदरे रक्तपित्ते च रक्तगुल्मे हलीमके ॥२३ ॥
बहुरूपं च यत्पित्तं कामलावातशोणिते।
अरोचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे ॥ २४ ॥
तरुणी चाल्पपुष्पा या या च गर्भं न विन्दति।
अहन्यहानि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्धनम्।
शीतकल्याणकं नाम परमुक्तं रसायनम् ॥ २५ ॥

कुमुद (कमलभेद) पद्माख, खश, गेहूं, लाल चावल, मुद्गपर्णी, क्षीरविदारी, खम्भार, मौरेठी, खरेटेकी जड़, कंघीकी जड़, नीलोफर, ताड़की बाली, विदारीकन्द, शतावर, शालपर्णी, जीवक, त्रिफला, खीरा बीज तथा कच्चा केला इनका कल्क प्रत्येक २ तोला, गायका दूध ६ सेर ३२ तो०, जल ३ सेर ३ छ० ९ तो०, घी १२८ तो० मिलाकर पकाना चाहिये । सिद्ध होने पर उतार छान सेवन करना चाहिये । यह प्रदर, रक्तपित्त, रक्तगुल्म, हलीमक, अनेक प्रकारके अम्लपित्त, कामला, वातरक्त, अरोचक, ज्वर, जीर्ण ज्वर, पाण्डुरोग, नशा तथा चक्करको नष्ट करता है । जिस स्त्रीको मासिक धर्म कम होता है, तथा जिन्हें गर्भ नहीं रहता, उन्हें पिलाना चाहिये । इससे स्त्रियोंकी प्रसन्नता बढ़ती है । यह "शीतकल्याणक" नाम घृत परम रसायन है ॥ २०-२५ ॥

शतावरीघृतम्।

शतावरीरसप्रस्थं क्षोदयित्वाऽवपीडयेत्।
घृतप्रस्थसमायुक्तं क्षीरद्विगुणितं भिषक् ॥ २६॥
अत्र कल्कानिमान्दद्यात्स्थूलोदुम्बरसंमितान्।
जीवनीयानि यान्यष्टौ यष्टिपद्मकचन्दनम् ॥ २७॥
श्वदंष्ट्रा चात्मगुप्ता च बला नागबला तथा।
शालपर्णी पृश्निपर्णी विदारी शारिवाद्वयम् ॥२८॥
शर्करा च समा देया काश्मर्याश्च फलानि च।
सम्यक् सिद्धं तु विज्ञाय तद् घृतं चावतारयेत्॥२९॥
रक्तपित्तविकारेषु वातपित्तकृतेषु च।
वातरक्तं क्षयं श्वासं हिक्कां कासं च दुस्तरम् ॥३०॥
अङ्गदाहं शिरोदाहं रक्तपित्तसमुद्भवम्।
असृग्दरं सर्वभवं मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम्।
एतान् रोगाञ्शमयति भास्करस्तिमिरं यथा ॥३१॥

ताजी शतावरको कूटकर १२८ तो० रस निकालना चाहिये । इसमें घी १२८ तोला, दूध २५६ तो० तथा जल १२८ तो० और जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, मौरेठी, चन्दन, गोखुरू, कौंचके बीज, खरेटी, गंगेरन, सरिवन, पिठिवन, विदारीकन्द, सारिवा, काली सारिवा, शक्कर, और खम्भारके फल प्रत्येक १ तोलाका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये । तैयार हो जानेपर उतारकर छान लेना चाहिये । इसका रक्तपित्तके रोग, वातपित्तके रोग, वातरक्त, क्षय, श्वास, हिक्का, कास, अङ्गकी जलन, रक्तपित्तसे उत्पन्न शिरकी जलन,

सन्निपातज प्रदर, कठिन मूत्रकृच्छ्र आदि रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । यह घृत इन रोगोंको सूर्य अन्धकारके समान नष्ट करता है ॥ २६-३१ ॥

इत्यसृग्दराधिकारः समाप्तः ।

अथ योनिव्यापदधिकारः ।

सामान्यचिकित्सा ।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित् ।
वस्त्यभ्यङ्गपरीषेकप्रलेपाः पिचुधारणम् ॥ १ ॥

योनिव्यापत्में अधिकतर वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । तथा वस्ति, मालिश, सिञ्चन, लेप और फोहोंका धारण कराना चाहिये ॥ १ ॥

वचादियोगः ।

वचोपकुञ्चिकाजातीकृष्णावृषकसैन्धवम् ।
अजमोदां यवक्षारं चित्रकं शर्करान्वितम् ॥ २ ॥
पिष्ट्वा प्रसन्नयालोड्य खादेत्तद् घृतभर्जितम् ।
योनिपार्श्वार्तिहृद्रोगगुल्मार्शोविनिवृत्तये ॥ ३ ॥

दूधिया वच, कलौंजी, चमेली, छोटी पीपल, अडूसा, सेंधानमक, अजमोद, जवाखार तथा चीतकी जड़के चूर्णको घीमें भून शक्कर मिला शराबके स्वच्छ भागमें मिलाकर खाना चाहिये । यह योनिरोग पार्श्वशूल, हृद्रोग गुल्म और अर्शको दूर करता है ॥ २ ॥ ३ ॥

परिषेचनाद्युपायाः ।

गुडूचीत्रिफलादंतीकाथैश्च परिषेचनम् ।
नतवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः ॥ ४ ॥
तैलात्प्रसाधिताद्धार्यः पिचुर्योनौ रुजापहः ।
पित्तलानां तु योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ॥ ५ ॥
शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ।
योन्यां बलासदुष्टायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम् ॥ ६ ॥

गुर्च, त्रिफला और दन्तीके क्वाथसे योनिमें सिञ्चन कराना चाहिये तथा तगर, बैंगन, कूठ, सेंधानमक व देवदारुसे सिद्ध तैलका फोहा योनिमें धारण कराना चाहिये । इससे पीड़ा शान्त होती है । पित्तल योनियोंके लिये सेक, मालिश और फोहा शीतल पित्तनाशक रखना चाहिये । स्नेहनके लिये घी लगाना तथा खाना चाहिये । कफदूषित योनिमें समस्त रूखे और गरम प्रयोग करने चाहियें ॥ ४-६ ॥

योनिविशोधिनी वर्तिः ।

पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ।
वर्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्या योनिविशोधनी ॥ ७ ॥

छोटी पीपल, मिर्च, उड़द, सौंफ, कूठ, व सेंधानमकके चूर्णको साथ घोटकर बनायी गयी प्रदेशिनी अंगुलीके समान वत्ती योनिमें धारण करनेसे योनि शुद्ध करती है ॥ ७ ॥

दोषानुसारवर्तयः ।

हिंस्राकल्कं तु वातार्ता कोष्णमभ्यज्य धारयेत् ।
पञ्चवल्कस्य पित्तार्ता श्यामादीनां कफोत्तरा ॥ ८ ॥

वातार्ता योनिमें मालिश कर जटामांसीके कल्ककी वत्ती बनाकर रक्खें । पित्तार्ता योनिमें पञ्चवल्कलके कल्ककी वत्ती और कफार्ता योनिमें निसोथ आदिके कल्ककी वत्ती बनाकर रक्खें ॥ ८ ॥

योन्यर्शश्चिकित्सा ।

मूषिकामांससंयुक्तं तैलमातपभावितम् ।
अभ्यंगाद्धन्ति योन्यर्शः स्वेदस्तन्मांससैन्धवैः ॥ ९ ॥

मूषिकाके मांससे युक्त तैल धूपमें तपाकर लगानेसे योन्यर्श नष्ट होता है । अथवा मूषिकाके मांस और सेंधानमकसे स्वेद लेना भी योन्यर्श नष्ट करता है ॥ ९ ॥

अचरणादिचिकित्सा ।

गोपित्ते मत्स्यपित्ते वा क्षौमं त्रिःसप्तभावितम् ।
मधुना किण्वचूर्णं वा दद्यादचरणापहम् ॥ १० ॥
स्रोतसां शोधनं शोथकण्डूक्लेदहरं च तत् ।
कामिन्याःपूतियोन्याश्च कर्तव्यः स्वेदनो विधिः ११ ॥
क्रमः कार्यस्ततः स्नेहपिचुभिस्तर्पणं भवेत् ।
शल्लकीजिङ्गिनीजम्बुधवत्वक्पञ्चवल्कलैः ॥ १२ ॥
कषायैः साधितः स्नेहः पिचुः स्याद्विप्लुतापहः ।
कर्णिन्यां वर्तिका कुष्ठपिप्पल्यर्काग्रसैन्धवैः ॥ १३ ॥
वस्तमूत्रकृता धार्या सर्वं च श्लेष्मनुद्धितम् ।
त्रैवृत्तं स्नेहनं स्वेद उदावर्तानिलार्तिषु ।
तदेव च महायोन्यां स्रस्तायां तु विधीयते ॥ १४ ॥

गोपित्त अथवा मछलीके पित्तमें अलसीके वस्त्रकी २१ भावना देकर अथवा शराबके किट्टको शहदके साथ योनिमें रखनेसे अचरणा नष्ट होती है । तथा छिद्रोंका शोधन और सूजन, खुजली व गीलापन आदिका नाश भी उपरोक्त प्रयोग करते हैं । पूतियोनिवाली स्त्रीके लिये स्वेदन करना चाहिये । फिर स्नेहयुक्त फोहेका धारण करना चाहिये । शल्लकी (शालभेद), मञ्जिष्ठा, जामुनकी छाल, धायकी छाल व

पञ्चवल्कलके क्वाथसे सिद्ध स्नेहमें भिगे हुए फोहेके धारण करनेसे विप्लुता नष्ट होती है । कर्णिनीमें कूठ, छोटी पीपल, आकके अंकुर व सेंधानमककी बकरेके मूत्रमें बत्ती बनाकर धारण करना चाहिये । तथा समस्त कफनाशक उपाय करना चाहिये । उदावर्त और वायुरोगोंमें घृत, तैल व वसाका प्रयोग तथा स्वेदन करना चाहिये । और यही विधि महायोनि और स्रस्त योनिमें भी करनी चाहिये ॥ १०–१४ ॥

आखुतैलम् ।

आखोर्मांसं सपदि बहुधा खण्डखण्डीकृतं यत्
तैले पाच्यं द्रवति नियतं यावदेतन्न सम्यक् ।
तत्तैलाक्तं वसनमनिशं योनिभागे दधाना
हन्ति व्रीडाकरभगफलं नात्र सन्देहबुद्धिः ॥ १५ ॥

मूसेके मांसके छोटे छोटे टुकड़े चतुर्गुण तैल (तथा तैलसे चतुर्गुण जल) मिलाकर पकाना चाहिये । जब यह सिद्ध हो जाय, तब उतार कर छान उस तैलसे भिगोया हुआ कपड़ा योनिमें रखनेसे योनिकन्द नष्ट होता है, इसमें सन्देह न करना चाहिये ॥ १५ ॥

भिन्नादिचिकित्सा ।

शतपुष्पातिललेपाद्बदरीदलजात्तथा ।
पेटिकामूललेपाच्च योनिर्भिन्ना प्रशाम्यति ॥ १६ ॥
सुषवीमूललेपेन प्रविष्टान्तर्बहिर्भवेत् ।
योनिर्मूषरसाभ्यङ्गान्निःसृता प्रविशेदपि ॥ १७ ॥
लोध्रतुम्बीफलालेपो योनिदार्ढ्यं करोति च ।
वेतसमूलनिष्काथक्षालनेन तथैव च ॥ १८ ॥
मूषिकावागुलिवसाम्रक्षणं योनिदार्ढ्यदम् ।

सौंफके तैलके लेप तथा वेरीकी पत्तीके लेप अथवा पेटिका (पाढल) की जड़के लेपसे भिन्न योनि शान्त होती है । और काले जीरेकी जड़के लेपसे अन्तःप्रविष्ट योनि बाहर निकलती है । तथा मूसेके मांस रसकी मालिशसे बाहर निकली प्रविष्ट हो जाती है । लोध और तोम्बीके फलका लेप योनिको दृढ करता है । वेतकी जड़के काढ़ेसे धोनेसे भी यही गुण होता है । और मूसा तथा वगुलेकी वसाकी मालिश योनिको दृढ करती है ॥ १६–१८ ॥–

योनिसंकोचनम् ।

वचा नीलोत्पलं कुष्ठं मरिचानि तथैव च ॥ १९ ॥
अश्वगन्धा हरिद्रा च गाढीकरणमुत्तमम् ॥ २० ॥
मदनफलमधुककर्पूरपूरितं भवति कामिनीजनस्य ।
विगलितयौवनस्य च वराङ्गमतिगाढं सुकुमारम् ॥ २१

वचा, नीलोफर, कूठ, काली मिर्च, असगन्ध और हल्दीका लेप योनिको संकुचित करता है । तथा मैनफल, शहद, व कपूरसे पूर्ण वृद्धा स्त्रीकी भी योनि बहुत कड़ी और चिकनी होती है ॥ १९–२१ ॥

योनिगन्धनाशकं घृतम् ।

पञ्चपल्लवयष्ट्याह्वमालतीकुसुमैर्घृतम् ।
रविपक्वमन्यथा वा योनिगन्धार्तिनाशनम् ॥ २२ ॥

पञ्चपल्लव, मौरेठी व चमेलीके फूलके कल्कसे सूर्यकी किरणोंमें तपाया अथवा चतुर्गुण जल मिलाकर पकाया घृत योनिगन्धको नष्ट करता है ॥ २२ ॥

कुसुमसञ्जननी वर्तिः ।

इक्ष्वाकुबीजदन्तीचपलागुडमदनकिण्वयष्ट्याह्वैः ।
सस्नुक्क्षीरैर्वर्तिर्योनिगता कुसुमसञ्जननी ॥ २३ ॥

कडुई तोंबीके बीज, दन्ती, छोटी पीपल, गुड़, मैनफल, किण्व (शराबकी किट्ट) और मौरेठीके चूर्णको थूहरके दूधमें मिलाकर बनायी गयी बत्ती योनिमें रखनेसे मासिक धर्मको उत्पन्न करती है ॥ २३ ॥

प्राशः ।

सकाञ्जिकं जवापुष्पं भृष्टं ज्योतिष्मतीदलम् ।
सम्प्राश्य न चिरादेव वनिता स्वार्तवं लभेत् ॥२४॥

काञ्जीके साथ जवापुष्प और भूने मालकांगनीके पत्ते पीसकर चाटनेसे शीघ्रही मासिक धर्म होता है ॥ २४ ॥

दूर्वाप्राशः ।

सरक्तप्रदरा वापि सस्रुक्स्रावा च गर्भिणी ।
दूर्वायाः पिष्टकम्प्राश्य नासृक्स्रावेण पीडयते २५॥

दूधकी चटनी बनाकर चाटनेसे रक्तस्राव बन्द होता है॥२५॥

रजोनाशकयोगौ ।

धात्र्यञ्जनाभयाचूर्णं तोयपीतं रजो हरेत् ।
शेलुच्छदमिश्रपिष्टं भक्षणं च तदर्थकृत् ॥ २५ ॥

(१) आँवला, सुरमा और हर्रोंका चूर्ण कर जलके साथ पीनेसे मासिकधर्म नहीं होता । (२) तथा लसोढ़ेके पत्तोंको पीसकर खाना भी यही गुण करता है ॥ २५ ॥

गर्भप्रदा योगाः ।

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणायाश्चक्राङ्कायास्तु कन्यया ।
पिष्टं मूलं दुग्धघृतमृतौ पीतं तु पुत्रदम् ॥ २६ ॥
क्वाथेन हयगन्धायाः साधितं सघृतं पयः ।
ऋतुस्नाताङ्गना पीत्वा गर्भं धत्ते न संशयः ॥२७॥

पिप्पल्यः शृङ्गवेरं च मरिचं केशरं तथा ।
घृतेन सह पातव्यं वन्ध्यापि लभते सुतम् ॥ २८ ॥

पुष्यनक्षत्रमें उखाड़ी चक्रांग (जिसके ऊपर लाल विंदु होते हैं उस) लक्ष्मणाकी जड़को कन्यासे पिसाकर दूध व घीमें मिलाकर ऋतुकालमें पीनेसे गर्भ धारण होता है। इसी प्रकार असगन्धके क्काथसे सिद्ध दूधमें घी मिलाकर पीनेसे ऋतुस्नाता स्त्री गर्भ धारण करती है। तथा छोटी पीपल, सोंठ, काली मिर्च, व नागकेशरके चूर्णको घीमें मिलाकर पीनेसे वन्ध्या भी गर्भ धारण करती है ॥ २६-२८ ॥

स्वर्णादिभस्मयोगः ।

स्वर्णस्य रूप्यकस्य च चूर्णे ताम्रस्य चाज्यसंमिश्रे ।
पीते शुद्धे क्षेत्रे भेषजयोगाद्भवेद्गर्भः ॥ २९ ॥

सोना और चांदी तथा ताम्रकी भस्ममें घी मिलाकर रजोधर्मके बाद सेवन करनेसे गर्भ रहता है ॥ २९ ॥

नियतगर्भचिकित्सा ।

कृत्वा शुद्धौ स्नानं
विलङ्घ्य दिवसान्तरे ततः प्रातः ।
स्नात्वा द्विजाय दत्त्वा
सम्पूज्य तथैव लोकनाथेशम् ॥ ३० ॥
श्वेतबलाङ्घ्रिकयष्टी कर्षं कर्षं पलं सितायाश्च ।
पिष्टैकवर्णजीवितवत्साया गोस्तु दुग्धेन ॥ ३१ ॥
समधिकघृतेन पीतं नात्र दिने देयमन्नमन्यच्च ।
क्षुधिते सदुग्धमन्नं दद्यादा पुरुषसन्निधेस्तस्याः ॥ ३२ ॥
समदिवसे शुभयोगे दक्षिणपार्श्वावलम्बिनी धीरा ।
त्यक्तस्त्र्यन्तरसङ्गप्रहृष्टमनसोऽतिवृद्धधातोश्च ।
पुरुषस्य सङ्गमात्राल्लभते पुत्रं ततो नियतम् ॥ ३३ ॥

रजःशुद्धिके दिन स्नान कर लंघन करना चाहिये । दूसरे दिन प्रातःकाल स्नानकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण तथा शंकरजीका पूजन कर सफेद खरेटीकी जड़ १ तो० मौरेठी १ तो० व शक्कर ४ तो० एकमें पीस मिलाकर एक रङ्गवाली बछड़ा सहित गायके दूधमें घी मिलाकर ओषधिके साथ पीना चाहिये। इस दिन दूसरा अन्न नहीं खाना चाहिये । भूंख लगनेपर दूध भात देना चाहिये । जबतक पुरुषसंयोग न हो जाय, तबतक यही पथ्य रखना चाहिये । सम दिन अर्थात् छठे, आठवें या दशवें, या बारहवें दिन शुभ योगमें दहिनी ओरको जिस पुरुषने दूसरी स्त्रीका संग नहीं किया, तथा जिसका मन प्रसन्न हो रहा है, धातु बढ़े हुए हैं उसके सङ्गमात्रसे निःसन्देह पुत्रको प्राप्त करती है ॥ ३०-३३ ॥

पुत्रोत्पादका योगाः ।

गोष्ठजातवटस्य प्रागुत्तरशाखजे शुभे शृङ्गे ।
माषौ द्वौ च तथा गौरसर्षपौ दधियोजितौ ।
पुष्यापीतौ द्रुतापन्नगर्भायाः पुत्रकारकौ ॥ ३४ ॥
कानकान् राजतान्वापि लौहान्पुरुषकानमून् ।
ध्माताग्निवर्णान्पयसो दध्नो वाप्युदकस्य वा ।
क्षिप्त्वाञ्जलौ पिबेत्पुष्ये गर्भे पुत्रत्वकारकान् ॥ ३५ ॥

गौओंके ठहरनेके स्थानमें उत्पन्न बरगदकी पूर्व तथा उत्तरकी डालके २ टिम्हुने, २ उडद, सफेद सरसों दहीमें मिलाकर पुष्य नक्षत्रमें पीनेसे शीघ्र गर्भ धारण करनेवाली स्त्रीके गर्भसे पुत्र ही होता है । इसीप्रकार सोने, चांदी अथवा लोहेके पुरुषकी मूर्ति बना अग्निमें लाल कर दूध, दही अथवा जलकी अञ्जली (१६ तो०) में बुझाकर पुष्य नक्षत्रमें पीनेसे गर्भसे पुत्र ही होता है * ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

फलघृतम् ।

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा बला ।
मेदा पयस्या काकोली मूलं चैवाश्वगन्धजम् ॥ ३६ ॥
अजमोदा हरिद्रे द्वे हिङ्गुकं कटुरोहिणी ।
उत्पलं कुमुदं द्राक्षा काकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ ३७ ॥
एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
शतावरीरसक्षीरं घृताद्देयं चतुर्गुणम् ॥ ३८ ॥
सर्पिरेतन्नरः पीत्वा नित्यं स्त्रीषु वृषायते ।
पुत्राञ्जनयते नारी मेधाढ्यान् प्रियदर्शनान् ॥ ३९ ॥
या चैव स्थिरगर्भा स्याद्या वा जनयते मृतम् ।
अल्पायुषं वा जनयेद्या च कन्यां प्रसूयते ॥ ४० ॥
योनिदोषे रजोदोषे परिस्रावे च शस्यते ।
प्रजावर्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ४१ ॥
नाम्ना फलघृतं ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् ।
अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः ॥ ४२ ॥
जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतमत्र प्रशस्यते ।
आरण्यगोमयेनापि वह्निज्वाला प्रदीयते ॥ ४३ ॥

मजीठ, मौरेठी, कूठ, त्रिफला, शक्कर, खरेटी, मेदा, क्षीरकाकोली, काकोली, असगन्ध, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, हींग, कुटकी, नीलोफर, कमल, मुनक्का, दोनों काकोली, तथा दोनों चन्दन प्रत्येकका १ तोला कल्क छोड़कर १२८ तोला घी, शतावरीका रस २५८ तोला, दूध २५८ तोला मिलाकर पकाना चाहिये। इस घृतके पीनेसे पुरुष स्त्रीगमनमें अधिक समर्थ होता है।

---

* श्वेतकण्टकारिकायोगः-" सिंह्यास्तु श्वेतपुष्पाया मूलं पुष्यसमुद्धृतम् । जलपिष्टमृतुस्नाता नस्याद्गर्भं तु विन्दति ॥ " ऋतुस्नाता स्त्रीको पुष्य नक्षत्रमें उखड़ी सफेद फूलकी कटेरीकी जड़को जलमें पीसकर नस्य लेनी चाहिये । इससे गर्भ रहता है । (यह योग बहुत प्रसिद्ध तथा लाभदायक है ॥)

और स्त्री इसे पीकर सुन्दर मेधावी बालक उत्पन्न करती है। जिसके गर्भ नहीं रहता, अथवा जो मरा या अल्पायु बालक उत्पन्न करती है, अथवा जिसके कन्या ही उत्पन्न होती है, वे सभी सुन्दर बालक उत्पन्न करती हैं। योनिदोष, रजोदोष व परिस्रावमें यह हितकर है। यह सन्तान बढाता, आयु बढाता तथा समस्त ग्रहदोष नष्ट करता है। इसको भगवान् अश्विनीकुमारने "फलघृत" नामसे कहा है। इसमें लक्ष्मणाकी जड़ नहीं कही गयी, पर वैद्य उसे भी छोड़ते हैं। इसमें जिसका बछड़ा जीता हो, ऐसी एक रङ्गवाली गायका घी उत्तम बताते हैं, तथा जंगली कण्डोंकी आँच देनी चाहिये ॥ ३६–४३ ॥

अपरं फलघृतम् ।

सहचरे द्वे त्रिफलां गुडूचीं सपुनर्नवाम् ।
शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम् ॥४४॥
कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरचतुर्गुणम् ।
तत्सिद्धं प्रपिबेन्नारि योनिशूलप्रपीडिता ॥४५॥
पिण्डिता चलिता या च निःसृता विवृता च या ।
पिण्डयोनिस्तु विस्रस्ता पण्ढयोनिश्च या स्मृता ४६॥
प्रपद्यन्ते तु ताः स्थानं गर्भं गृह्णन्ति चासकृत् ।
एतत्फलघृतं नाम योनिदोषहरं परम् ॥ ४७ ॥

दोनों कटसला, त्रिफला, गुर्च, पुनर्नवा, सोना पाठा, हल्दी, दारुहल्दी, रासन, मेदा, व शतावरीका कल्क कर १ प्रस्थ घी, चौगुना दूध मिलाकर पकाना चाहिये। यह घृत योनिशूलसे पीड़ित, पिंड़ित, चलित, निःसृत, विवृत, पिण्डयोनि, शिथिलयोनि तथा षण्ढयोनिवाली स्त्रियोंको पिलाना चाहिये। इससे योनि ठीक गर्भ धारण योग्य हो जाती है। यह "फलघृत" योनिदोष नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ४४–४७ ॥

सोमघृतम् ।

सिद्धार्थकं वचा ब्राह्मी शंखपुष्पी पुनर्नवा ।
पयस्यामययष्ट्याह्वकटुकैलाफलत्रयम् ॥ ४८ ॥
शारिवे रजनी पाठा भृङ्गदारु सुवर्चला ।
मञ्जिष्ठा त्रिफला श्यामा वृषपुष्पं सगैरिकम् ॥४९॥
धीमान्पक्त्वा घृतप्रस्थं सम्यङ् मन्त्राभिमन्त्रितम् ।
द्विमासगर्भिणी नारी षण्मासान्न प्रयोजयेत् ॥५०॥
सर्वाङ्गं जनयेत्पुत्रं शूरं पण्डितमानिनम् ।
जडगद्गदमूकत्वं पानादेवापकर्षति ॥ ५१ ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण नरः श्रुतिधरो भवेत् ।
नाग्निर्दहति तद्वेश्म न वज्रं हन्ति न ग्रहाः ॥५२॥
न तत्र म्रियते बालो यत्रास्ते सोमसंज्ञितः ।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं सर्वामयविवर्जितम् ।
योनिदुष्टाश्च या नार्यो रेतोदुष्टाश्च ये नराः ॥५३॥
अस्य प्रभावात्कुक्षिस्थः स्फुटवाग्व्याहरत्यपि ।
द्राक्षा परूषकाश्मर्यौ फलत्रयमुदाहृतम् ॥ ५४ ॥
"ओं नमो महाविनायकाया-
मृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं
देहि रुद्रवचनेन स्वाहा"
सप्तदूर्वाभिमन्त्रितम् ॥ ५५ ॥

सरसों, वच, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, पुनर्नवा, क्षीरविदारी कूठ, मौरेठी, कुटकी, इलायची, मुनक्का, फालसा, खम्भार, फल शारिवा, काली शारिवा, हल्दी, पाठ, भँगरा, देवदारु, हुलहुल, मजीठ, त्रिफला, निसोथ, अड्सेके फूल, गेरू इनके साथ १ प्रस्थ घी सिद्ध कर ठीक मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर दो मासकी गर्भिणी स्त्री ६ मासतक सेवन करे, फिर न सेवन करे, वह पूर्णाङ्ग, बलवान्, पण्डित पुत्रको उत्पन्न करती है। जड़ता, गद्गदता और मूकता पीनेसे ही नष्ट होती है। सात रात्रितक इसके प्रयोग करनेसे मनुष्य श्रुतग्राही हो जाता है। जहाँ यह घृत रहता है, उस घरको अग्नि नहीं जलाती, न वज्र नष्ट करता है, न ग्रहोंका आक्रमण होता है, न बालक ही मरता है। जहाँ यह "सोमघृत" रहता है, वन्ध्या भी रोगरहित बालक उत्पन्न करती हैं। जो स्त्रियाँ योनिरोगसे पीड़ित तथा जो पुरुष शुक्रदोषसे दूषित होते हैं, वे इसके सेवनसे शुद्ध होते हैं। इसके प्रभावसे पेटके अन्दर ही गर्भ बोलने लग जाता है। इसमें त्रिफलासे मुनक्का, फालसा और खम्भार लेना चाहिये। ७ दूब लेकर नीचे लिखे मन्त्रसे बनाते समय तथा खाते समय अभिमन्त्रण करना चाहिये। मन्त्रः–" ॐ नमो महाविनायकायामृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा " ॥ ४८–५५ ॥

नीलोत्पलादिघृतम् ।

नीलोत्पलोशीरमधूकयष्टी-
द्राक्षाविदारीतृणपञ्चमूलैः ।
स्याज्जीवनीयैश्च घृतं विपक्वं
शतावरीकारसदुग्धमिश्रम् ॥ ५६ ॥
तच्छर्करापादयुतं प्रशस्त-
मसृग्दरे मारुतरक्तपित्ते ।
क्षीणे बले रेतसि संप्रनष्टे
कृच्छ्रे च रक्तप्रभवे च गुल्मे ॥ ५७ ॥

नीलोफर, खश, मौरेठी, मुनक्का, विदारीकन्द, तृणपञ्चमूल और जीवनीयगणके कल्कमें शतावरीका रस और दूध मिलाकर सिद्ध घृत चतुर्थांश शक्करके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वातरक्तपित्तजन्य प्रदर, बलकी क्षीणता, शुक्रनाश, मूत्रकृच्छ्र और रक्तज गुल्ममें लाभ पहुंचता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

बृहच्छतावरीघृतम् ।

शतावरीमूलतुलाश्चतस्रः संप्रपीडयेत् ।
रसेन क्षीरतुल्येन पचेत्तेन घृताढकम् ॥ ५८ ॥
जीवनीयैः शतावर्या मृद्वीकाभिः परूषकैः ।
पिष्टैः प्रियालैश्चाक्षांशैर्द्वियष्टीमधुकैर्भिषक् ॥ ५९ ॥
सिद्धशीते च मधुनः पिप्पल्याश्चाष्टकं पलम् ।
दत्त्वा दशपलं चात्र सितायास्तद्विमिश्रितम् ॥६०॥
ब्राह्मणान्प्राशयेत्पूर्वं लिह्यात्पाणितलं ततः ।
योन्यसृक्शुक्रदोषघ्नं वृष्यं पुंसवनं च तत् ॥ ६१ ॥
क्षतक्षयं रक्तपित्तं कासं श्वासं हलीमकम् ।
कामलां वातरक्तं च विसर्पं हृच्छिरोग्रहम् ।
उन्मादादीनपस्मारान्वातपित्तात्मकाञ्जयेत् ॥६२ ॥

शतावरीकी जड़ २० सेर पीस कर रस निकालना चाहिये, उस रसके बराबर दूध मिलाकर घी ६ सेर ३२ तो० तथा जीवनीयगणकी ओषधियाँ शतावरी, मुनक्का, फाल्सा, व चिरौंजी प्रत्येक एक तोला तथा मौरेठी २ तोलेकी कल्क छोड़कर पकाना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर उतार छान ठंढ़ाकर शहद ३२ तोला, छोटी पीपलका चूर्ण ३२ तोला व मिश्री ४० तोला मिलाकर पहिले ब्राह्मणोंको चटाना चाहिये, फिर १ तोला स्वयम् चाटना चाहिये । यह योनिरक्त और शुक्रके दोषोंको नष्ट करता, वाजीकर तथा बालक उत्पन्न करता है । क्षतक्षय, रक्तपित्त, कास, श्वास, हलीमक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृदय, और शिरकी जकड़ाहट, उन्माद और अपस्मारादि वातपित्तात्मक रोगोंको नष्ट करता है ॥ ५८-६२ ॥

लोमनाशका योगाः ।

दग्ध्वा शङ्खं क्षिपेद्रम्भास्वरसे तत्तु पेषितम् ।
तुल्यालं लेपतो हन्ति रोम गुह्यादिसम्भवम् ॥ ६३ ॥
रक्ताञ्जनापुच्छचूर्णयुक्तं तैलं तु सार्षपम् ।
सप्ताहं व्युषितं हन्ति मूलाद्रोमाण्यसंशयम् ।
कुसुम्भतैलाभ्यङ्गो वा रोम्णामुत्पाटितेऽन्तकृत् ६४॥

शंखकी भस्म कर केलेके स्वरसमें छोड़ना चाहिये । फिर उसमें समान भाग हरिताल मिलाकर लेप करनेसे गुह्यादिके लोम नष्ट होते हैं । रक्ताञ्जना (अञ्जननामिका) की पूँछके चूर्णके साथ सरसोंका तैल ७ दिन रखकर लगानेसे जड़से बाल उड़ जाते हैं । कुसुमके तैलकी मालिश भी रोम नष्ट करनेमें यम ही है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

आरग्वधादितैलम् ।

आरग्वधमूलपलं कर्षद्वितयं च शङ्खचूर्णस्य ।
हरितालस्य च खरजे मूत्रप्रस्थे पचेच्च कटुतैलम् ६५
तैलं तदिदं शङ्खहरितालचूर्णितं लेपात् ।
निर्मूलयति च रोमाण्यन्येषां सम्भवो नैव ॥ ६६ ॥

अमलतासकी जड़ ४ तोला, शंखचूर्ण २ तो०, हरिताल २ तो०, कडुतैल ४० तो० गधेका मूत्र १ प्रस्थ और जल मिलाकर सिद्ध तैलमें फिर शंख और हरितालका प्रक्षेप छोड़कर लेप करनेसे बालोंको उखाड़ देता है और नये जमते नहीं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

कर्पूरादितैलम् ।

कर्पूरभल्लातकशङ्खचूर्णं
क्षारो यवानां च मनःशिला च ।
तैलं विपक्वं हरितालमिश्रं
रोमाणि निर्मूलयति क्षणेन ॥ ६७ ॥

कर्पूर, भिलावां व शंखका चूर्ण, जवाखार, मैनशिल, और हरिताल मिलाकर पकाया गया तैल क्षणभरमें रोमोंको उखाड़ देता है ॥ ६७ ॥

क्षारतैलम् ।

शुक्तिशम्बूकशंखानां दीर्घवृन्तात्समुष्ककात् ।
दग्ध्वा क्षारं समादाय खरमूत्रेण गालयेत् ॥ ६८ ॥
क्षारार्धभागं विपचेत्तैलं च सार्षपं बुधः ।
इदमन्तःपुरे देयं तैलमात्रेयपूजितम् ॥ ६९ ॥
बिन्दुरेकः पतेद्यत्र तत्र रोमापुनर्भवः ।
मदनादिव्रणे देयमश्विभ्यां च विनिर्मितम् ॥ ७० ॥
अर्शसां कुष्ठरोगाणां पामादद्रुविचर्चिनाम् ।
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं सर्वक्लेदहरं परम् ॥ ७१ ॥

शुक्ति, घोंघा, शंख, सोनापाठा व मोखा इन सबको जलाके क्षार बनाकर गधेके पेशाबसे छानना चाहिये । क्षार जलसे आधा भाग सरसोंका तैल मिला पकावे । यह रनिवासमें देना चाहिये । इसका एक बिन्दु जहां गिर जाता है, वहां फिर रोवाँ नहीं जमते । मदनादि (उपदंश) के घावमें इसे लगाना चाहिये । इसे अश्विनीकुमारने बनाया है । अर्श, कुष्ठ, पामा, दद्रु और विचर्चिकाको यह तैल नष्ट करता है । यह "क्षारतैल" समस्त व्रणोंके मवादको साफ करता है ॥ ६८-७१ ॥

इति योनिव्यापदधिकारः समाप्तः ।

अथ स्त्रीरोगाधिकारः ।

गर्भस्रावचिकित्सा ।

मधुकं शाकबीजं च पयसा सुरदारु च ।
अश्मन्तकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ १ ॥

वृक्षादनी पयस्या च तथैवोत्पलशारिवा ।
अनन्ता शारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥ २ ॥
बृहतीद्वयकाश्मर्यक्षीरिशुङ्गास्त्वचो घृतम् ।
पृथक्पर्णी बला शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुयष्टिका ॥ ३ ॥
शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कशेरु मधुकं सिता ।
मासेषु सप्त योगाः स्युरर्धश्लोकास्तु सप्तसु ॥ ४ ॥
यथाक्रमं प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोऽन्विताः ।
कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः ॥ ५ ॥
मूलानि क्षीरसिद्धानि दापयेद्भिषगष्टमे ।
नवमे मधुकानन्तापयस्याशारिवाः पिबेत् ॥ ६ ॥
पयस्तु दशमे शुण्ठ्या शृतशीतं प्रशस्यते ।

गर्भवतीको गर्भस्रावकी शङ्का होनेपर पहिले महीनेमें मौरेठी, शाकबीज, क्षीरकाकोली, देवदारु । दूसरे महीनेमें अश्मन्तक, काले तिल, मजीठ, शतावरी । तीसरे महीनेमें बांदा, क्षीरकाकोली, काली सारिवा । चौथे महीनेमें अनन्ता, शारिवा, रासन, भारङ्गी, मौरेठी । पांचवें महीनेमें छोटी बड़ी कटेरी, खम्भार, दूधवाले वृक्षोंके अङ्कुर और छाल तथा घृत । छठे महीनेमें पृष्ठपर्णी, खरेटी, सहिंजन, गोखुरू, मौरेठी । सातवें महीनेमें सिंघाड़ा, कमलके तन्तु, मुनक्का, कशेरू, मौरेठी, मिश्री । इन आधे आधे श्लोकमें वर्णित सात योगोंका गर्भस्रावको रोकनेके लिये दूधके साथ प्रयोग करना चाहिये । तथा कैथा, बेल, बड़ी कटेरी, परवल, ईख व छोटी कटेरीकी जड़ दूधमें सिद्ध कर आठवें महीनेमें । नवम मासमें मौरेठी, यवासा, क्षीरविदारी, शारिवा तथा दशममासमें सोंठसे सिद्ध कर ठण्ढा किया दूध देना चाहिये ॥ १–६ ॥–

अपरे प्रयोगाः ।

सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं देवदारु च ॥ ७ ॥
एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् चोपशाम्यति ।
कुशकाशोरुबूकानां मूलैर्गोक्षुरकस्य च ।
शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत्परम् ॥ ८ ॥

दूधके साथ मौरेठी, सोंठ और देवदारु देना चाहिये । इस तरह गर्भ बढता है और तीव्र पीड़ा शान्त होती है । इसी प्रकार कुश, काश एरण्ड व गोखुरूकी जड़से सिद्ध कर ठण्ढा किया दूध मिश्री मिलाकर देनेसे गर्भिणीका शूल नष्ट होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

कशेरुकादिक्षीरम् ।

कशेरुशृङ्गाटकजीवनीय-
पद्मोत्पलैरण्डशतावरीभिः ।
सिद्धं पयः शर्करया विमिश्रं
संस्थापयेद्गर्भमुदीर्णशूलम् ॥ ९ ॥

कशेरू, सिंघाड़ा, जीवनीयगणकी ओषधियां, कमल, नीलोफर, एरण्ड शतावरीसे सिद्ध दूध शक्कर मिलाकर पीनेसे शूलसहित गर्भको स्थापित करता है ॥ ९ ॥

कशेरुकादिचूर्णम् ।

कशेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं
समुद्गपर्णीमधुकं सशर्करम् ।
सशूलगर्भस्रुतिपीडिताङ्गना
पयोविमिश्रं पयसान्नभुक् पिबेत् ॥ १० ॥

कशेरू, सिंघाड़ा, पद्माख, नीलोफर, मुद्गपर्णी, मौरेठीको दूधमें पका शक्करके साथ मिला शूल तथा गर्भस्रावसे पीड़ित स्त्री सेवन करे तथा दूधके साथ भात खावे ॥ १० ॥

शुष्कगर्भचिकित्सा ।

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानां चापि शुष्यताम् ।
सितामधुककाश्मर्यैर्हितमुत्थापने पयः ॥ ११ ॥
गर्भशोषे त्वामगर्भाः प्रसहाश्च सदा हिताः ।

वातसे गर्भके सूखनेपर तथा बालकोंके सूखनेपर मिश्री, मौरेठी व खम्भारसे सिद्ध दूध पोषण करता है तथा गर्भके सूखनेपर कच्चे गर्भ तथा प्रसह प्राणियोंके मांसरस उत्तम होते हैं ॥ ११ ॥–

सुखप्रसवोपायाः ।

पाठा लाङ्गलिसिंहास्यमयूरकजटैः पृथक् ॥ १२ ॥
नाभिबस्तिभगालेपात्सुखं नारी प्रसूयते ।
परूषकस्थिरामूललेपस्तद्वत्पृथक् पृथक् ॥ १३ ॥
वासामूले द्रुतं तद्वत्कटिबद्धे प्रसूयते ।
पाठायास्तु शिफां योनौ या नारी संप्रधारयेत् १४॥
उरःप्रसवकाले च सा सुखेन प्रसूयते ।
तुषाम्बुपरिपिष्टेन मूलेन परिलेपयेत् ॥ १५ ॥
लाङ्गल्याश्चरणौ सूते क्षिप्रमेतेन गर्भिणी ।
आटरूषकमूलेन नाभिबस्तिभगालेपः कर्त्तव्यः ॥१६
गृहाम्बुना गेहधूमपानं गर्भापकर्षणम् ।
मातुलुङ्गस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् ॥ १७ ॥
घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ १८ ॥
पुटदग्धसर्पकञ्चुक-
मसृणमसी कुसुमसारसहिताञ्जिताक्षी ।
झटिति विशल्या जायेत
गर्भवती मूढगर्भापि ॥ १९ ॥
गृहाम्बुना हिंगुसिन्धुपानं गर्भापकर्षणम्

पाढ, कलिहारी, वासा व अपामार्ग इनमेंसे किसी एककी जड़ पीसकर नाभि, वस्ति और भगमें लेप करनेसे सुखपूर्वक स्त्रीके

वालक उत्पन्न होता है । इसी प्रकार फालसा और शालिपर्णीमेंसे किसीकी जड़का लेप अथवा वासाकी जड़को कमरमें बांधनेसे शीघ्र ही वालक उत्पन्न हो जाता है । जो स्त्री पाढकी जड़ योनिमें रखती है वह प्रसवकालमें सुखपूर्वक वालक उत्पन्न करती है । कलिहारीकी जड़ काञ्जीमें पीसकर पैरोंमें लगानेसे शीघ्र ही वालक हो जाता है । अडूसेकी जड़से भी नाभि, मूत्राशय और भगमें लेप करना चाहिये । तथा काञ्जीके साथ गृहधूम पिलाना चाहिये । इससे सुखपूर्वक गर्भोत्पत्ति होती है । विजौरे निम्बूकी जड़ व मौरेठीके चूर्णको शहदमें मिलाकर घीके साथ पिलानेसे सुखपूर्वक वालक होता है, पुटमें जलायी गयी सांपकी केंचुलकी चिकनी भस्मको शहदके साथ आंखमें लगानेसे स्त्री शीघ्र ही गर्भको वाहर करती है । चाहे मूढगर्भा ही क्यों न हो गृहाम्बुके[1] साथ हींग व सेंधानमकका पान गर्भको वाहर निकालता है ॥ १२–१९ ॥

सुखप्रसूतिकरो मन्त्रः ।

इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि ।
उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥ २० ॥
इदममृतमपां समुद्धृतं वै-
भव लघुगर्भमिमं विमुञ्चतु स्त्री ।
तदनलपवनार्कवासवास्ते
सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम् ॥२१
मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः ।
मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एह्येहि मा चिरं स्वाहा ॥ २२ ॥

ऊपर लिखे मन्त्रसे सात वार अभिमन्त्रित जल पिलानेसे सुखपूर्वक वालक होता है ॥ २०–२२ ॥

यन्त्रप्रयोगः ।

जलं च्यवनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम् ।
पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा चोभयत्रिंशकम् ॥२३ ॥
तथोभयपञ्चदशदर्शनं सुखसूतिकृत् ।
षोडशर्तुवसुभिः सह पक्षदिगष्टादशभिरेव च ॥२४
अर्कभुवनाब्धिसहितैरुभयत्रिंशकमिदमाश्चर्यम् ।
वसुगुणाब्ध्येकवाणनवषट्सप्तयुगैः क्रमात् ॥ २५ ॥
सर्वे पञ्चदश द्विस्तु त्रिंशकं नवकोष्ठके ।

उभयपञ्चदशकम् ।

८	३	४
१	५	९
६	७	२

उभयत्रिंशकम् ।

१६	६	८
२	१०	१८
१२	१४	४

इन यन्त्रोंको लिखाकर दिखानेसे सुखपूर्वक वालक हो जाता है ॥ २३–२५ ॥

अपरापातनयोगाः ।

कटुतुम्ब्यहिनिर्मोककृतवेधनसर्षपैः ॥ २६ ॥
कटुतैलान्वितो धूमो योनेः पातयतेऽपराम् ।
कचवेष्टितयांगुल्या घृष्टे कण्ठे सुखं पतत्यपरा ॥२७

कडुई तोम्बी, सांपकी केंचुल, कडुई तोरई व सरसोंके बीजके चूर्णको कडुए तैलके साथ धूम योनिकी अपराको गिराता है । वालोंको अंगुलीमें लपेटकर कण्ठमें घिसनेसे अपरा गिरती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

अपरो मन्त्रः ।

" एरण्डस्य वनात् काको गङ्गातीरमुपागतः ।
इतः पिबति पानीयं विशल्या गर्भिणी भवेत् ॥ "
अनेन सप्तधामन्त्र्य जलं देयं विशल्यकम् ॥ २८ ॥

एरण्डक वनसे कौआ गङ्गातीर आया, इधर पानी पीता है, इधर गर्भिणी गर्भरहित होती है । इस मन्त्रसे सात वार आमन्त्रित कर जल पीनेसे गर्भिणी गर्भरहित होती तथा अपराका पातन होता है ॥ २८ ॥

अपरे योगाः ।

मूलेन लाङ्गलिक्या वा संलिप्ते पाणिपादे च ।
अपरापातनं मद्यैः पिप्पल्यादिरजः पिबेत् ॥ २९ ॥
गरीमदनदहनमूलं चिरजमपि ।
गर्भं मृतममृतं वा निपातयति ॥ ३० ॥

कलिहारीकी जड़से हाथ पैरोंमें लेप कर शरावके साथ पिप्पल्यादिचूर्ण पीनेसे अपरा पातन होता है। इसी प्रकार गरी (नारियल) मैनफल व चीतकी जड़का चूर्ण भी मृत या जीवित गर्भको गिराता है ॥ २९–३० ॥

मक्कलचिकित्सा ।

शालिमूलाक्षमात्रं वा मूत्रेणाम्लेन वान्वितम् ।
उपकुञ्चिकां पिप्पलीं च मदिरां लाभतः पिबेत् ॥३१
सौवर्चलेन संयुक्तां योनिशूलनिवारणीम् ।
सूताया हृच्छिरोवस्तिशूलं मक्कलसंज्ञितम् ॥ ३२ ॥
यवक्षारं पिबेत्तत्र सर्पिषोष्णोदकेन वा ।
पिप्पल्यादिगणक्वाथं पिबेद्वा लवणान्वितम् ॥ ३३॥

शालि (धान) की जड़ १ तोला मूत्र अथवा काञ्जीके साथ अथवा कलौंजी, छोटी पीपल, शराव व काला नमक मिलाकर पीनेसे योनि शूल तथा प्रसूता स्त्रीके हृदय, शिर और वस्तिके शूल तथा मक्कल शूल नष्ट होता है । अथवा उसमें जवाखार घी अथवा गरम जलके साथ पीवे

[1] "गृहाम्बु" काञ्जीको कहते हैं ।

अथवा पिप्पल्यादि गणका क्वाथ नमकके साथ पीना चाहिये ॥ ३१-३३ ॥

रक्तस्रावचिकित्सा ।

पारावतशकृत्पीतं शालितण्डुलवारिणा ।
गर्भपातान्तरोत्थे तु रक्तस्रावनिवारणम् ॥ ३४ ॥

कबूतरकी बीट चावलके जलसे पीनेसे गर्भपातके अनन्तर बहते हुए रक्तको शांत करता है ॥ ३४ ॥

किक्किशरोगचिकित्सा ।

जलपिष्टवरुणपत्रैः सघृतैरुद्वर्तनालेपौ ।
किक्किशरोगं हरतो गोमयघर्षादथो विहितौ ॥३५॥

जलमें पिसे वरुणाके पत्तोंके चूर्णको घीमें मिलाकर किया गया लेप और उबटन अथवा गोबरसे घिसना किक्किश रोगको शान्त करता है ३५ ॥

ह्रीबेरादिकाथः ।

ह्रीबेरारणिरक्तचन्दनबलाधन्याकवत्सादनी-
मुस्तोशीरयवासपर्पटविषाकाथं पिबेद्गर्भिणी ।
नानादोषयुतातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्यामये शस्यते ३६

सुगन्धवाला, अरणी, लालचन्दन, खरेटी, धनियां, गुर्च, मोथा, खश, यवासा, पित्तपापड़ा, व अतीसका काथ गर्भिणी अनेक दोषयुक्त अतीसार, रक्तस्राव तथा ज्वरमें पीवे, तथा यह योग मुनियोंने सूतिका रोगमें भी कहा है ॥ ३६ ॥

अमृतादिकाथः ।

अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलजलदजलम् ।
शृतशीतं मधुयुक्तं निवारयति सूतिकातङ्कम् ॥ ३७ ॥

गुर्च, सोंठ, कटसैला, गन्धप्रसारणी, पञ्चमूल नागरमोथा व सुगन्धवालाके काथको ठण्डा कर शहद मिला सेवन करनेसे ज्वर व सूतिकारोग नष्ट होते हैं ॥ ३७ ॥

सहचरादिकाथः ।

सहचरपुष्करवेतसमूलं
वैकङ्कतं दारु कुलत्थसमम् ।
जलमत्र सैन्धवहिङ्गुयुतं
सद्यो घोरसूतिकाशूलहरम् ॥ ३८ ॥
दशमूलीकृतः काथः सद्यः सूतिरुजापहः ।

कटसैला, पोहकरमूल, बेतकी जड़, विकङ्कत, देवदारु, कुलथी समान भाग ले काथ बना सेंधानमक व भुनी हींग मिलाकर पीनेसे शीघ्र ही घोर सूतिका रोग नष्ट होता है । दशमूलका काथ तत्काल सूतिकादोषको नष्ट करता है ॥ ३८ ॥

वज्रककाञ्जिकम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुण्ठी यमानिका ॥३९॥
जीरके द्वे हरिद्रे द्वे बिडसौवर्चलं तथा ।
एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं प्रसाधितम् ॥ ४० ॥
आमवातहरं वृष्यं कफघ्नं वह्निदीपनम् ।
काञ्जिकं वज्रकं नाम स्त्रीणामग्निविवर्धनम् ॥४१॥
मक्कलशूलशमनं परं क्षीराभिवर्धनम् ।
क्षीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥ ४२ ॥

छोटी पीपल, पिपरामूल, चव्य, सोंठ, अजवाइन, सफेद जीरा, स्याह जीरा, हल्दी, दारुहल्दी, विड़नमक व कालानमक इन औषधियोंसे सिद्ध काञ्जी आमवातको नष्ट करती, वृष्य, कफघ्न, अग्निदीपक तथा स्त्रियोंके दूधको बढ़ाती है । तथा मक्कलशूल नष्ट करती है । इस प्रयोगमें उपरोक्त औषधियाँ मिलाकर १ भाग, काञ्जी ८ भाग और जल ४ भाग, मिलाकर पकाना चाहिये । जलमात्र जलजानेपर उतार छानकर प्रयोग करना चाहिये ॥ ३९-४२ ॥

पञ्चजीरकगुडः ।

जीरकं हपुषा धान्यं शताह्वा सुरदारु च ।
यमानी कुञ्चिका हिङ्गुपत्रिका कासमर्दकम् ॥४३॥
पिप्पली पिप्पलीमूलमजमोदाथ बाष्पिका ।
चित्रकं च पलांशानि तथान्यच्च चतुष्पलम् ॥४४ ॥
कशेरुकं नागरं च कुष्ठं दीप्यकमेव च ।
गुडस्य च शतं दद्याद् घृतप्रस्थं तथैव च ॥ ४५ ॥
क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
पञ्चजीरक इत्येष सूतिकानां प्रशस्यते ।
गर्भार्थिनीनां नारीणां बृंहणीये समारुते ।
विंशतिर्व्यापदो योनेः कासं श्वासं ज्वरं क्षयम् ४७॥
हलीमकं पाण्डुरोगं दौर्गन्ध्यं बहुमूत्रताम् ।
हन्ति पीनोन्नतकुचाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ।
उपयोगात्स्त्रियो नित्यमलक्ष्मीमलवर्जिताः ॥ ४८ ॥

जीरा, हाऊबेर, धनियां, सौंफ, देवदारु, अजवाइन, राई, नारीकी पत्ती, कसौंदी, छोटी पीपल, पिपरामूल, अजमोद, छोटी राई, तथा चीतकी जड़ प्रत्येक४ तो०, कशेरु १६ तोला, सोंठ १६ तोला, कूठ १६ तोला, अजवाइन १६ तो० गुड़ ५ सेर, घी १२८ तो०, दूध ३ सेर ३ छ० १ तो०, धीरे २ मन्द आंचसे पकाना चाहिये । यह "पञ्चजीरक गुड़" सूतिका स्त्रियोंके लिये हितकर है । तथा गर्भकी इच्छावाली स्त्रियोंके लिये, बृंहणीय वायुरोगमें, योनिकी २० व्यापत्तियों, कास, श्वास, ज्वर, क्षय, हलीमक, पांडुरोग, दुर्गंधि तथा

बहुमूत्रतामें इसे देना चाहिये । इसके प्रयोगसे स्त्रियां मोटे ऊँचे कुचवाली कमल सदृश नेत्रवाली और सुन्दर होती हैं ॥ ४३-४८ ॥

क्षीराभिवर्धनम् ।

वनकार्पासिकेक्षूणां मूलं सौवीरकेण वा ।
विदारीकन्दं सुरया पिबेद्वा स्तन्यवर्धनम् ॥ ४९ ॥
दुग्धेन शालितण्डुलचूर्णपानं विवर्धयेत् ।
स्तन्यं सप्ताहतः क्षीरसेविन्यास्तु न संशयः ॥ ५० ॥

जङ्गली कपासकी जड़ और ईखकी जड़के चूर्णको काञ्जीके साथ अथवा विदारीकन्दको शराबके साथ दूध बढ़ानेके लिये पीना चाहिये । दूधका सेवन करनेवाली और दूधके ही साथ शालिचावलके चूर्णको फाकनेवाली स्त्रीका दूध ७ दिनमें निःसन्देह बढ़ जाता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

स्तन्यविशोधनम् ।

हरिद्रादिं वचादिं वा पिबेत्स्तन्यविशुद्धये ।
तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलीजलं पिबेत् ॥ ५१ ॥
पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलं निम्बचन्दनम् ।
धात्री कुमारश्च पिबेत्काथयित्वा सशारिवम् ॥५२॥
कफे वा त्रिफलामुस्ताभूनिम्बं कटुरोहिणीम् ।
धात्रीस्तन्यविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसाशिनी ॥ ५३ ॥
भार्ङ्गीवचादारुपाठाः पिबेत्सातिविषाः शृताः॥५४॥

स्तन्यकी शुद्धिके लिये हरिद्रादि या वचादिका प्रयोग करे । वातात्मक दूधमें दशमूलका जल पीवे । पित्तसे दूषित दूधमें धाय तथा कुमार, गुर्च, शतावरी, परवल, नीम, चन्दन और शारिवाका क्वाथ पीवे । कफमें त्रिफला, नागरमोथा, चिरायता व कुटकीका क्वाथ पीवे । मूँगके यूषके साथ भोजन करे । अथवा भारङ्गी, वच, देवदारु, पाढ़ व अतीसका क्वाथ पीवे ॥ ५१-५४ ॥

स्तनकीलचिकित्सा ।

कुक्कुरमेञ्चुकमूलं चर्वितमास्ये विधारितं जयति ।
सप्ताहात्स्तनकीलं स्तन्यं चैकान्ततः कुरुते ॥ ५५ ॥

नागवलाकी जड़को मुखमें चबाकर स्तनमें लगानेसे ७ दिनमें स्तनकील नष्ट होता और दूध बढ़ता है ॥ ५५ ॥

स्तनशोथचिकित्सा ।

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्या-
द्यद्विद्रधावभिहितं त्विह भेषजं तत् ।
आमे विदह्यति तथैव गते च पाकं
तस्याः स्तनौ सततमेव च निर्दुहीत ॥५६॥

स्तनोंकी सूजनमें विद्रधिमें आम, पच्यमान व पक्व अवस्थामें कही गयी चिकित्सा करे । तथा स्तनोंको सदा दुहते रहना चाहिये ॥ ५६ ॥

स्तनपीडाचिकित्सा ।

विशालामूललेपस्तु हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम् ।
निशाकनकफलाभ्यां लेपश्चापि स्तनार्तिहा ॥ ५७ ॥

इन्द्रायणकी जड़को पीसकर लेप करनेसे स्तनपीड़ा दूर होती है । इसी प्रकार हल्दी व धतूरेके फलोंका लेप स्तनपीड़ाको नष्ट करता है ॥ ५७ ॥

स्तनकठिनीकरणम् ।

मूषिकवसया शूकरगजमहिषमांसचूर्णसंयुतया ।
अभ्यङ्गमर्दनाभ्यां कठिनौ पीनौ स्तनौ भवतः ५८॥
महिषीभवनवनीतं व्याधिवलोग्रास्तथैव नागबला ।
पिष्टा मर्दनयोगात्पीनं कठिनं स्तनं कुरुते ॥ ५९ ॥

मूसेकी चर्बी, शूकर, हाथी व भैंसाके मांसके चूर्णके साथ स्तनोंपर मालिश तथा मर्दन करनेसे स्तन कड़े और मोटे होते हैं । इसी प्रकार भैंसीका मक्खन, कूठ, खरेटी, वच, व गङ्गेरनको पीसकर स्तनोंपर मर्दन करनेसे स्तन मोटे तथा कड़े होते हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

श्रीपर्णीतैलम् ।

श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम् ।
तत्तैलं तूलकेनैव स्तनस्योपरि धारयेत् ॥ ६० ॥
पतितावुत्थितौ स्त्रीणां भवेतां तु पयोधरौ ॥ ६१ ॥

खम्भारके रस और कल्कसे सिद्ध तिलतैलमें भिगोये हुए फोहेको स्तनपर रखनेसे गिरे हुए स्तन उठ जाते हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

कासीसादितैलम ।

काशीसतुरगगन्धाशारिवागजपिप्पलीविपक्वेन ।
तैलेन यान्ति वृद्धिं स्तनकर्णवराङ्गलिङ्गानि ॥६२ ॥

काशीस, असगन्ध, शारिवा व गजपीपलसे सिद्ध तेलका मालिश करनेसे स्तन, कान, मुख और लिङ्ग बढ़ते हैं ॥ ६२ ॥

स्तनस्थिरीकरणम् ।

प्रथमर्तौ तण्डुलाम्भो नस्यं कुर्यात्स्तनौ स्थिरौ ।
गोमहिषीघृतसहितं तैलं श्यामाकृताञ्जलिवचाभिः ६३
सन्निकटुनिशाभिः सिद्धं नस्यं स्तनोत्थापनं परम् ।
तनूकरोति मध्यं पीतं मथितेन माधवीमूलम् ॥६४॥

प्रथम ऋतुकालमें गाय और भैंसीके घीके साथ चावलके जलका नस्य देनेसे स्तन स्थिर होते हैं । इसी तरह प्रियङ्गु,

लज्जालु, वच, सोंठ, मिर्च, पीपल और हल्दीसे सिद्ध तैलका नस्य स्तनोंको उठाता है । इसी प्रकार मट्ठेके साथ माधवी (कुन्द) की जड़को पीसकर पीनेसे कमर पतली होती है ॥ ६३–६४ ॥

योनिसंकोचनं वशीकरणं च ।

स्याच्छिथिलापि च गाढा
सुरगोपाज्याभ्यक्ततो योनिः ।
शववहनस्थितवन्धन-
रज्ज्वा सन्ताडनाद्धि दयितेन ॥ ६५ ॥
नश्यत्यबलाद्वेषः पत्यौ सहजः कृतोऽथवा योगैः ।
दत्त्वैव दुग्धभक्तं विप्रायोत्पाट्य सितबलामूलम् ।
पुष्ये कन्यापिष्टं दत्तमनिच्छाहरं भक्ष्ये ॥ ६६ ॥

इन्द्रगोप और घीकी मालिशसे ढीली योनि कड़ी हो जाती है । तथा पतिसे मुर्देकी रथीके वन्धनकी रस्सीसे ताडित होनेसे स्वाभाविक अथवा कृत्रिम पतिद्वेष नष्ट होता है । इसी प्रकार ब्राह्मणको दूध भात खिलाकर पुष्यनक्षत्रमें सफेद खरेटीकी जड़ उखाड़ कन्यासे पिसवाकर भोजनमें मिला खिलानेसे पतिका पत्नीकी ओर प्रेम होता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

इति स्त्रीरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ बालरोगाधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

कुष्ठवचाभयाब्राह्मीकमलं क्षौद्रसर्पिषा ।
वर्णायुःकान्तिजननं लेहं बालस्य दापयेत् ॥ १ ॥
स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ।
कर्कन्धोर्गुडिकां तप्तां निर्वाप्य कटुतैलके ।
तत्तैलं पानतो हन्ति बालानामुल्वमुद्धतम् ॥ २ ॥
व्योषशिवोग्रा रजनी कल्कं वा पीतमथ पयसा ।
उल्वमशेषं हरते पटुतां बालस्य चात्यन्तम् ॥ ३ ॥

कूठ, वच, बड़ी हर्रोका छिल्का, ब्राह्मी व कमलके चूर्णको शहद और घीके साथ मिलाकर बालकको देना चाहिये । इससे बालकका वर्ण, आयु और कान्ति बढती है । और माके दूध न होनेपर बकरी अथवा गायका दूध तद्गुण ही होता है । उसे पीना चाहिये । बेरकी गोली बना तपाकर तैलमें बुझाना चाहिये । यह तैल बालकोंके पिलानेसे जरायुके अंशको साफ करता है । इसी प्रकार त्रिकटु, हर्र, वच, व हल्दीके कल्कको दूधके साथ पिलानेसे जरायु दोषको नाशता है । तथा बालकको फुर्तीला बनाता है ॥ १–३ ॥

तुण्डिचिकित्सा ।

मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा ।
स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेन प्रशाम्यति ॥ ४ ॥

मिट्टीके ढेलेको अग्निमें तपा दूधमें बुझाकर गरम गरम उसी दूधके सिञ्चनसे नाभिशोथ शान्त होता है ॥ ४ ॥

नाभिपाकचिकित्सा ।

नाभिपाके निशालोध्रप्रियङ्गुमधुकैः शृतम् ।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिर्वाप्यवचूर्णनम् ॥ ५ ॥

नाभिपाकमें हल्दी, लोध, प्रियङ्गु व मौरेठीसे सिद्ध तैल लगाना अथवा चूर्णका उर्राना हितकर है ॥ ५ ॥

अहिण्डिकाचिकित्सा ।

सोमग्रहणे विधिवत्केकिशिखामूलमुद्धृतं बद्धम् ।
जघनेऽथ कन्धरायां क्षपयत्याहिण्डिकां नियतम् ॥ ६ ॥
सप्तदलपुष्पमरिचं पिष्टं गोरोचनासहितम् ।
पीतं तद्वत्तण्डुलभक्तकृतो दग्धपिष्टकप्राशः ॥ ७ ॥
जम्बुकनासा वायसजिह्वा नाभिर्वराहसंभूता ।
कांस्यं रसोऽथ गरलं प्रावृड्भेकस्य वामजङ्घास्थि ८
इत्येकशोऽथ मिलितं विधृतं ग्रीवादिकटिदेशे ।
अहिण्डिकाप्रशमनमभ्यङ्गो नातिपथ्यविधिः ॥ ९ ॥

चन्द्रग्रहणमें विधिपूर्वक मयूरशिखाकी जड़ उखाड़ कमर या गर्दनमें वान्धनेसे अहिंडिका रोग अवश्य नष्ट होता है । इसी प्रकार सप्तपर्णके फूल, काली मिर्च व गोरोचनको पीसकर दूधके साथ पिलाना चाहिये । अथवा चावलके भातकी जली पिट्ठी पीसकर दूध व शहद मिलाकर पिलाना चाहिये । इसी प्रकार श्रृगालकी नाक, कौएकी जिह्वा, शूकरकी नाभि, कांसा, पारद और सर्पविष तथा वर्साती मेढककी वामजंघाकी हड्डी, सब एकमें मिलाकर गर्दन या कमर आदिमें बांधना अहिंडिका शान्त करता है । इसमें अभ्यङ्ग या पथ्यविधि विशेष नहीं है ॥ ६–९ ॥

अनामकचिकित्सा ।

अनामके घुर्घुरिकावुक्कामरिचरोचनाः ।
नवनीतं च संमिश्र्य खादेत्तद्रोगनाशनम् ॥ १० ॥
तैलाक्तशिरस्तालुनि सप्तदलार्कस्नुहीभवं क्षीरम् ।
दत्त्वा रजनीचूर्णं दत्ते नश्येदनामको रोगः ॥ ११ ॥
लेहयेच्च शुना बालं नवनीतेन लेपितम् ।
स्फुटकपत्रजरसोद्वर्तनं च हि तद्धितम् ॥ १२ ॥

अनामकमें घुर्घुरिका (कीट) के आगेका मांस, काली मिर्च, गोरोचन और मक्खन मिलाकर खानेसे यह रोग नष्ट होता है । शिरमें तालुपर तैल चुपर सप्तदल, आक और सेहुण्डके

दूधको लगाकर ऊपरसे हल्दीका चूर्ण उर्राने से अनामक रोग नष्ट होता है । बालकके शरीरमें मक्खनका लेप कर कुत्तेसे चटाना चाहिये ॥ १०-१२ ॥

अनामकहरं तैलम् ।

तैलस्य भागमेकं मूत्रस्य द्वौ च शिम्बिदलरसस्य ।
गव्यं पयश्चतुर्गुणमेवं दत्त्वा पचेत्तैलम् ।
तेनाभ्यंगः सततं रोगमनामकाख्यमपहरति ॥ १३॥

एक भाग तैल, २ भाग गोमूत्र, २ भाग सेमकी पत्तीका रस, ४ भाग गोदुग्ध छोड़कर तैल पकाना चाहिये । इससे सदा मालिश अनामक रोग नष्ट करती है ॥ १३ ॥

कज्जलम् ।

आर्कं तूलकमाविकरोमाण्यादाय केशराजस्य ।
स्वरसेनाक्ते वस्त्रे कृत्वा वर्ति च तैलाक्ताम् ॥ १४॥
तज्जातकज्जलाञ्चितलोचनयुगलोऽप्यलंकृतो बालः ।
कष्टमनामकरोगं क्षपयति भूतादिकं चापि ॥ १५ ॥

आककी रुई व भेड़के वाल ले भांगरेके रसमें तर कर सुखा बत्ती बना तैलमें डुबोकर जलाना चाहिये । इससे बनाये गये काजलको बालककी आँखोंमें लगानेसे अनामकरोग तथा भूतादि बाधा शान्त होती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अपरे प्रयोगाः ।

चालनिकातलसंस्थितपोतं संप्लाव्य गव्यमूत्रेण ।
ओकोदशालिकायां रजकक्षारोदकस्नानम् ॥ १६ ॥
दासक्रयणश्रावणवराटिका रसेन्द्रपूरिता धृता कण्ठे ।
नलिनीदले च शयनं सुकष्टमनामकाख्यरोगघ्नम् १७

लड़केको धोबीके पाटेपर खड़ा कर चलनीसे गोमूत्र छोड़कर स्नान कराना चाहिये । फिर धोबीके क्षार मिश्रित जलसे स्नान कराना चाहिये । इसी प्रकार नौकर द्वारा खरीदी गयी किसी योगी या पाखण्डीके पासकी कौड़ी पारद भरकर गलेमें बांधनेसे अथवा कमलके पत्तोंकी शय्यापर सुलानेसे अनामकरोग दूर होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

सामान्यमात्राः ।

भैषज्यं पूर्वमुदिष्टं नराणां यज्ज्वरादिषु ।
देयं तदेव बालानां मात्रा तस्य कनीयसी ॥ १८ ॥
प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका ।
अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ॥ १९ ॥
एकैकां वर्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् ।
तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्याद्यावद्षोडशाब्दिकाः ॥२०॥

मनुष्योंके लिये ज्वरादिकोंमें जो औषधियां बतायी गयी हैं, वही बालकोंको देना चाहिये । पर मात्रा छोटी रहे । पहिले महीनेमें १ रत्ती औषधि शहद, दूध, घी व मिश्रीसे पतली कर पिलाना चाहिये । महीनेकी वृद्धिके साथ साथ औषध मात्रा भी एक एक रत्ती प्रतिमास बढाना चाहिये । सालभरतक यही क्रम रखनेके अनन्तर फिर प्रति वर्ष १ माशा सोलह वर्षतक बढाना चाहिये* ॥ १८-२० ॥

हरिद्रादिक्वाथः ।

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कषायस्स्तन्यदोषजित् ॥२१॥

हल्दी, दारुहल्दी, मौरेठी, कटेरी व इन्द्रयवका क्वाथ बालकोंके ज्वरातिसारको नष्ट करता तथा स्तन्य दोषको जीतता है ॥ २१ ॥

चातुर्भद्रचूर्णम् ।

घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम् ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं कासश्वासवमीहरम् ॥ २२ ॥

नागरमोथा, छोटी, पीपर, मजीठ व काकड़ासिंगीका चूर्ण शहदके साथ बालकको देनेसे ज्वरातिसारको नष्ट करता तथा कास, श्वास व वमनको शान्त करता है ॥ २२ ॥

धातक्यादिलेहः ।

धातकीबिल्वधन्याकलोध्रेन्द्रयववालकैः ।
लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातीसारवान्तिजित्॥२३॥

धायके फूल, बेल, धनियां, लोध व इन्द्रयवसे बनाया गया लेह शहदके साथ बालकोंके ज्वरातिसार और वमनको शांत करता है ॥ २३ ॥

रजन्यादिचूर्णम् ।

रजनीदारुसरलश्रेयसीबृहतीद्वयम् ।
पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढं मासिकसर्पिषा ॥२४ ॥
ग्रहणीदीपनं हन्ति मारुतार्तिं सकामलाम् ।
ज्वरातीसारपाण्डुघ्नं बालानां सर्वशोथनुत् ॥२५ ॥

हल्दी, देवदारु, सरल धूप, गजपीपल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, पिठिवन और सौंफके चूर्णको शहद व घीके साथ चाटनेसे बालकोंकी ग्रहणी दीप्त होती, वायुकी पीड़ा, कामला, ज्वरातिसार, पांडु और समस्त शोथ नष्ट होते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

---

* जवान पुरुषके लिये किसी औषधकी जितनी मात्रा हो सकती है, उससे $\frac{1}{192}$ भाग १ मासके बालकको, $\frac{1}{96}$ भाग २ मासके बालकको, $\frac{1}{64}$ भाग ३ मासके बालकको, $\frac{1}{48}$ भाग चार मासके लिये इसी प्रकार बढाते हुए $\frac{1}{16}$ भाग, एक वर्षवालेके लिये $\frac{1}{8}$ भाग २ वर्षवालेके लिये इसी प्रकार बढाते हुए १६ वर्षमें पूर्ण मात्रा देनी चाहिये ॥

मिश्यादिलेहः ।

मिशी कृष्णाञ्जनं लाजा शृङ्गीमरिचमाक्षिकैः ।
लेहः शिशोर्विधातव्यश्छर्दिकासज्वरापहः ॥ २६ ॥

सौंफ, काला सुरमा, खील, काकड़ाशिंगी, काली मिर्च व शहदका लेह वालकोंकी वमन, खांसी और ज्वरको नष्ट करता है ॥ २६ ॥

शृङ्ग्यादिलेहः ।

शृङ्गीं समुस्तातिविषां विचूर्ण्य
लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् ।
कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां
समाक्षिकां चातिविषां तथैकाम् ॥ २७ ॥

काकड़ासिंही, अतीस व नागरमोथाका चूर्णकर शहदके साथ अथवा अकेले अतीस शहदके साथ चटानेसे वालकोंकी खांसी, ज्वर और वमन शांत होती है ॥ २७ ॥

छर्दिचिकित्सा ।

पीतं पीतं वमेद्यस्तु स्तन्यं तन्मधुसर्पिषा ।
द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत् ॥ २८ ॥
आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थैर्लेहः क्षौद्रेण छर्दिनुत् ॥२९॥
पिप्पलीमरिचानां तु चूर्णं समधुशर्करम् ।
रसेन मातुलुङ्गस्य हिक्काच्छर्दिनिवारणम् ॥ ३० ॥

जो वालक दूध पीकर वमन कर देता है, उसे छोटी वड़ी कटेरीके फलोंका रस व पञ्चकोलका चूर्ण शहद व घी मिलाकर पिलाना चाहिये । इसी प्रकार आमकी गुठली, खील व संघानमकका चूर्ण शहदके साथ चटानेसे वमन शान्त करता है । तथा छोटी पीपल व काली मिर्चका चूर्ण शहद, शक्कर और विजौरे निम्बूके रसके साथ हिक्का और वमनको शान्त करता है ॥ २८–३० ॥

पेट्यादिपिण्डः ।

पेटीपाठामूलाज्जम्ब्वः सहकारवल्कलतः कल्कः ।
इत्येकशश्च पिण्डो विधृतो ह्न्नाभिमध्यतालवादौ ।
छर्द्यतीसारजवेगं प्रवलं धत्ते तदेव नियमेन ॥३१॥

पेटी (पाढल) की जड़, पाढकी जड़, जामुनकी व आमकी छालका एक गोला वनाकर हृदय व नाभिके वीचमें तथा तालुपर घुमानेसे निःसन्देह प्रवल वमन और अतीसारका वेग शांत होता है ॥ ३१ ॥

बिल्वादिक्वाथः ।

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां
जलं सलोध्रं गजपिप्पली च ।
क्काथावलेहौ मधुना विमिश्रौ
वालेषु योज्याववतिसारितेषु ॥ ३२ ॥

वेलका गूदा, धायके फूल, सुगन्धवाला, लोध व गजपीपलका क्काथ या अवलेह शहद मिलाकर पिलानेसे वालकोंके दस्त वन्द होते हैं ॥ ३२ ॥

समङ्गादिक्काथः ।

समङ्गाधातकीलोध्रशारिवाभिः शृतं जलम् ।
दुर्धरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम् ॥ ३३ ॥

लज्जालुके वीज, धायके फूल, लोध, व शारिवासे सिद्ध क्काथको शहदके साथ वालकोंके कठिन अतिसारमें देना चाहिये ॥ ३३ ॥

नागरादिक्काथः ।

नागरातिविषामुस्तावालकेन्द्रयवैः शृतम् ।
कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातिसारनाशनम् ॥ ३४ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धवाला व इन्द्रयवके क्वाथको प्रातःकाल पिलानेसे समस्त अतीसार नष्ट होते हैं ॥ ३४ ॥

समङ्गादियवागूः ।

समङ्गा धातकी पद्मं वयस्था कच्छुरा तथा ।
पिष्टैरेतैर्यवागूः स्यात्सर्वातीसारनाशिनी ॥ ३५ ॥

लज्जालुके वीज, धायके फूल, कमल, वच व कौंचके वीजको पीसकर वनायी गयी यवागू सव अतीसारोंको नष्ट करती है ॥ ३५ ॥

लाजायोगः ।

विल्वमूलकषायेण लाजाश्चैव सशर्कराः ।
आलोड्य पाययेद्वालं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ ३६ ॥

वेलकी जड़के काढेके साथ खील व शक्कर मिलाकर वालकको पिलानेसे सव अतीसार नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥

प्रियङ्ग्वादिकल्कः ।

कल्कः प्रियंगुकोलास्थिमध्यमुस्तरसाञ्जनैः ।
क्षौद्रलीढः कुमारस्य छर्दितृष्णातिसारनुत् ॥३७ ॥

प्रियंगु, वेरकी गुठलीकी मींगी, नागरमोथा व रसौंतके कल्कको शहदमें मिलाकर चाटनेसे वालककी प्यास, वमन तथा दस्त नष्ट होते हैं ॥ ३७ ॥

रक्तातिसारप्रवाहिकाचिकित्सा ।

मोचरसः समङ्गा च धातकी पद्मकेशरम् ।
पिष्टैरेतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसारनाशिनी ॥ ३८ ॥
लेहस्तैलसिताक्षौद्रतिलयष्ट्याह्वकल्कितः ।
वालस्य रुन्ध्यान्नियतं रक्तस्रावं प्रवाहिकाम् ॥३९॥

लाजा सयष्टीमधुकं शर्कराक्षौद्रमेव च ।
तण्डुलोदकसंसिक्तं क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥४०॥

मोचरस, लज्जालु, धायके फूल व कमलके केशरको पीसकर बनायी गयी यवागू रक्तातीसारको नष्ट करती है। तथा तेल, मिश्री, शहद, तिल व मौरेठीका कल्क मिलाकर बनाया गया लेह नियमसे रक्तस्राव और प्रवाहिकाको नष्ट करता है। इसी प्रकार खील, मौरेठी, शक्कर व शहदके कल्कको चावलके जलके साथ पीनेसे शीघ्रही प्रवाहिका नष्ट होती है॥ ३८-४०॥

ग्रहण्यतीसारनाशका योगाः।

अङ्कोटमूलमथवा तण्डुलसलिलेन वटजमूलं वा ।
पीतं हन्त्यतिसारं ग्रहणीरोगं सुदुर्वारम् ॥ ४१ ॥
सितजीरकसर्जचूर्णं बिल्वदलोत्थाम्बुमिश्रितं पीतम् ।
हन्त्यामरक्तशूलं गुडसहितः श्वेतसर्जो वा ॥ ४२ ॥
मरिचमहौषधकुटजं द्विगुणीकृतमुत्तरोत्तरं क्रमशः ।
गुडतक्रयुक्तमेतद् ग्रहणीरोगं निहन्त्याशु ॥ ४३ ॥

अकोहरकी जड़ अथवा वरगदकी जड़को पीस चावलके जलके साथ पीनेसे अतीसार और ग्रहणी नष्ट होती है, तथा सफेद जीरा और रालके चूर्णको बेलकी पत्तीके रसमें मिलाकर अथवा गुड़के साथ सफेद रालके चूर्णको खानेसे आमरक्त और शूल शान्त होता है। अथवा काली मिर्च १ भाग, सोंठ २ भाग, व कुरैया ४ भाग इनके चूर्णको गुड़ और मट्ठेमें मिलाकर पीनेसे ग्रहणीरोग शान्त होता है॥ ४१-४३॥

बिल्वादिक्षीरम्।

बिल्वशक्राम्बुमोचाब्दसिद्धमाजं पयः शिशोः ।
सामां सरक्तां ग्रहणीं पीतं हन्यात्त्रिरात्रतः ॥ ४४॥

बेलका गूदा, इन्द्रयव, सुगन्धवाला, मोचरस व नागरमोथासे सिद्ध वकरीके दूधको पीनेसे ३ रात्रिमें साम, सरक्त ग्रहणी दोष नष्ट होते हैं॥ ४४॥

तद्वदजाक्षीरसमो जम्बूत्वगुद्भवो रसः ।

इसी प्रकार वकरीके दूधके साथ जामुनकी छालका रस लाभ करता है॥

गुदपाकचिकित्सा।

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥४५॥
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ ४६ ॥

बालकोंके गुदपाकमें पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये। विशेषकर पिलाने व लगानेके लिये रसौंत हितकर है॥ ४५॥ ४६॥

मूत्रग्रहतालुपातचिकित्सा।

कणोपणसिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृतः ।
मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह उत्तमः ॥ ४७॥
घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिङ्गुभार्ङ्गीरजो लिहन् ।
आनाहं वातिकं शूलं जयेत्तोयेन वा शिशुः ॥४८॥
हरीतकी वचा कुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम् ।
पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुपातनात् ४९ ॥

बालकोंके मूत्रकी रुकावटमें छोटी पीपल, काली मिर्च, मिश्री, शहद, छोटी इलायची सेंधानमकके लेहको चटाना चाहिये। वातज आनाह तथा शूलमें सेंधानमक, सोंठ, इलायची, भुनी हींग, भारंगीके चूर्णको घी अथवा जलके साथ चटाना चाहिये। तथा हर्र, वच और कूठके कल्कको शहद व दूधके साथ पिलानेसे तालुपातरोग नष्ट होता है॥ ४७-४९॥

मुखपाकचिकित्सा।

मुखपाके तु बालानां साम्रसारमयोरजः ।
गैरिकं क्षौद्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम् ॥ ५० ॥
अश्वत्थत्वग्दलक्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम् ।
दार्वीयष्ट्यभयाजातीपत्रक्षौद्रैस्तथापरम् ॥ ५१ ॥
सह जम्बीररसेन स्नुग्दलरसघर्षणं सद्यः ।
कृतमुपहन्ति हि पाकं मुखजं बालस्य चाश्वेव ॥५२
लावतित्तिरिवल्लूररजः पुष्परसान्वितम् ।
द्रुतं करोति बालानां पद्मकेशरवन्मुखम् ॥ ५३ ॥

बालकोंके मुखपाकमें आमके अन्दरकी छाल, लोहभस्म, गेरु और रसौंत शहद मिलाकर लगाना तथा चटाना भी चाहिये। तथा पीपलकी छाल और पत्तीके चूर्णका शहदके साथ लेप करना चाहिये। अथवा दारुहल्दी, मौरेठी, हर्र व जावित्रीके चूर्णका शहदके साथ लेप करना चाहिये। इसी प्रकार जम्बीरी निम्बूके रसके साथ सेहुंडके पत्तोंके रसका घिसना बालकोंके मुखपाकको नष्ट करता है। और लवा व तीतर इनके शुष्क मांसके चूर्णको शहदके साथ चटानेसे बालकोंके मुख कमलके समान होते हैं॥ ॥ ५०-५३॥

दन्तोद्भवगदचिकित्सा।

दन्तोद्भवोत्थरोगेषु न बालमतियन्त्रयेत् ।
स्वयमप्युपशाम्यन्ति जातदन्तस्य ते गदाः ॥ ५४ ॥

दन्त निकलते समय उत्पन्न रोगोंमें अधिक उपाय न करना चाहिये। दांत निकल जानेपर वे स्वयम् ही शान्त हो जाते हैं॥ ५४॥

अरिष्टशान्तिः।

सदन्तो यस्तु जायेत दन्ताः स्युर्यस्य चोत्तराः ।
कुर्यात्तस्य पिता शान्तिं बालस्यापि द्विजातये ।
दद्यात्सदक्षिणं बालं नैगमेषं प्रपूजयेत् ॥ ५५ ॥

---

१ वल्लूरं शुष्कमांसम् पुष्परसो मधु। इति वाग्भटः।

जो बालक दांतसहित ही पैदा हो अथवा जिसके पहिले ऊपरके दांत निकलें, उसका पिता शान्ति करे तथा बालकको दक्षिणाके सहित ब्राह्मणके लिये दान करे और नैगमेष ग्रहका पूजन करे ॥ ५५ ॥

हिक्काचिकित्सा ।

पञ्चमूलीकषायेण सघृतेन पयः शृतम् ।
सशृङ्गवेरं सगुडं शीतं हिक्कार्दितः पिबेत् ॥५६॥
सुवर्णगैरिकस्यापि चूर्णानि मधुना सह ।
लीढ्वा सुखमवाप्नोति क्षिप्रं हिक्कार्दितः शिशुः॥५७॥

हिक्कासे पीड़ित बालक घी सहित पञ्चमूलके काढ़ेसे सिद्ध कर ठण्ढा किया दूध गुड़ व सोंठके साथ पीवे । तथा सुनहले गेरूके चूर्णको भी शहदके साथ चाटनेसे शीघ्र ही बालककी हिक्का शान्त होती है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

चित्रकादिचूर्णम् ।

चित्रकं शृगवेरं च तथा दन्ती गवाक्ष्यपि ।
चूर्णं कृत्वा तु सर्वेषां सुखोष्णेनाम्बुना पिबेत् ।
श्वासं कासमथो हिक्कां कुमाराणां प्रणाशयेत् ५८॥

चीतकी जड़, सोंठ, दन्ती व इन्द्रायणका चूर्ण कर कुछ गरम जलके साथ पीनेसे बालकोंकी श्वास, कास, तथा हिक्का शान्त होती हैं ॥ ५८ ॥

द्राक्षादिलेहः ।

द्राक्षायासाभयाकृष्णाचूर्णं सक्षौद्रसर्पिषा ।
लीढं श्वासं निहन्त्याशु कासं च तमकं तथा ५९॥

मुनक्का, जवासा, बड़ी हर्र व छोटी पीपलके चूर्णको शहद व घीके साथ चाटनेसे कास तथा तमक श्वास (दमा नामवाला रोग) नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

पुष्करादिचूर्णम् ।

पुष्करातिविषाशृङ्गीमागधीधन्वयासकैः ।
तच्चूर्णं मधुना लीढं शिशूनां पञ्चकासनुत् ॥६०॥

पोहकरमूल, अतीस, काकड़ाशिंगी, छोटी पीपल व यवासाके चूर्णको शहदके साथ चाटनेसे समस्त कास नष्ट होते हैं ॥ ६० ॥

तृष्णाचिकित्सा ।

दाडिमस्य च बीजानि जीरकं नागकेशरम् ।
चूर्णितं शर्कराक्षौद्रलीढं तृष्णाविनाशनम् ॥ ६१ ॥
मायूरपक्षभस्म व्युषितजलं तेन भावितं पेयम् ।
तृष्णाघ्नं वटकाङ्कुरशीतजलं वक्त्रशोषजिद् धृतं वक्त्रे॥६२

अनारदाना, जीरा, व नागकेशरके चूर्णको शक्कर व शहद मिलाकर चाटनेसे प्यास नष्ट होती है तथा मयूरके पंखकी भस्मको बासी जलमें मिलाकर पीना चाहिये । अथवा बरगदकी वौंका हिम बनाकर मुखमें कवल धारण करना प्यासको शान्त करता है * ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

नेत्रामयचिकित्सा ।

पिष्टैश्छागेन पयसा दार्वीमुस्तकगैरिकैः ।
बहिरालेपनं शस्तं शिशोर्नेत्रामयापहम् ॥ ६३ ॥
मनःशिला शंखनाभिः पिप्पल्योऽथ रसाञ्जनम् ।
वर्तिः क्षौद्रेण संयुक्ता बालस्याक्षिरुजाप्रणुत् ॥६४॥
मातृस्तन्यकटुस्नेहकाञ्जिकैर्भावितो जयेत् ॥
स्वेदाद्दीपशिखोत्तप्तो नेत्रामयमलक्तकः ॥ ६५ ॥
शुण्ठीभृंगनिशाकल्कः पुटपाकः ससैन्धवः ।
कुकूणकेऽक्षिरोगेषु भद्रमाश्च्योतनं हितम् ॥ ६६ ॥
क्रिमिघ्नालशिलादार्वीलाक्षाकाञ्चनगैरिकैः ।
चूर्णाञ्जनं कुकूणे स्याच्छिशूनां पोथकीषु च ॥६७॥
सुदर्शनामूलचूर्णादञ्जनं स्यात्कुकूणके ॥ ६८ ॥

दारुहल्दी, नागरमोथा और गेरूको बकरीके दूधमें पीसकर आंखोंके बाहर लेप करनेसे बालकके नेत्ररोग शान्त होते हैं । तथा मनशिल, शंखनाभि, छोटी पीपल, व रसौतको पीसकर बनायी गयी वत्तीको शहदमें मिलाकर लगानेसे समग्र नेत्ररोग नष्ट होते हैं । तथा माताके दूध, कडुआ तैल और काञ्जीसे भावित वस्त्रको दीपशिखामें गरम कर सेकनेसे नेत्ररोग नष्ट होते हैं । इसीप्रकार सोंठ, भांगरा, हल्दी और सेंधानमकका पुटपाक कर आश्च्योतन करना कुकूणक (कुथुई) तथा अन्य नेत्ररोगोंमें लाभ करता है । तथा वायविड़ंग, हरिताल, मनशिल, दारुहल्दी, लाख, सुनहले गेरूके चूर्णका अञ्जन बालकोंके कुकूणक तथा पोथकी रोगमें लगाना चाहिये । कुकूणकमें सुदर्शनकी जड़के चूर्णका भी अञ्जन किया जाता है ॥ ६३–६८ ॥

सिध्मपामादिचिकित्सा ।

गृहधूमनिशाकुष्ठवाजिकेन्द्रयवैः शिशोः ।
लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ॥६९॥

घरका धुआँ, हल्दी, कूठ, असगन्ध और इन्द्रयवको मट्ठेके साथ पीसकर किये गये लेपसे सिध्म, पामा और विचर्चिकारोग नष्ट होते हैं ॥ ६९ ॥

अश्वगन्धाघृतम् ।

पादकल्केऽश्वगन्धायाः क्षीरे दशगुणे पचेत् ।
घृतं पेयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्धनम् ॥ ७० ॥

असगन्धके चतुर्थांश कल्क और दशगुण दूधमें सिद्ध घृत बालकोंको पुष्ट तथा बलवान् करता है ॥ ७० ॥

---

* कुछ पुस्तकोंमें यहांसे ७२ श्लोकतकका पाठ नहीं है ॥

चाङ्गेरीघृतम् ।

चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिश्छागक्षीरसमे पचेत् ।
कपित्थव्योषसिन्धूत्थसमंगोत्पलवालकैः ॥ ८१ ॥
सबिल्वधातकीमोचैः सिद्धं सर्वातिसारनुत् ।
ग्रहणीं दुस्तरां हन्ति बालानां तु विशेषतः ॥ ७२ ॥

चांगेरीके स्वरस ३ भाग, घी १ भाग, दूध १ भाग तथा कैथा, त्रिकटु, सेंधानमक, लज्जालु, नीलोफर, सुगन्धवाला, बेल, धायके फूल, व मोचरसके कल्कसे सिद्ध घृत बालकोंके समस्त अतीसारों तथा दुष्ट ग्रहणीको नष्ट करता है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

कुमारकल्याणकं घृतम् ।

शङ्खपुष्पी वचा ब्राह्मी कुष्ठं त्रिफलया सह ।
द्राक्षा सशर्करा शुण्ठी जीवन्ती जीरकं बला ॥७३
शठी दुरालभा बिल्वं दाडिमं सुरसास्थिरा ।
मुस्तं पुष्करमूलं च सूक्ष्मैला गजपिप्पली ॥ ७४ ॥
एषां कर्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
कषाये कण्टकार्याश्च क्षीरे तस्मिंश्चतुर्गुणे ॥ ७५ ॥
एतत्कुमारकल्याणघृतरत्नं सुखप्रदम् ।
बलवर्णकरं धन्यं पुष्ट्यग्निबलवर्धनम् ।
छायासर्वग्रहालक्ष्मीक्रिमिदन्तगदापहम् ।
सर्वबालामयहरं दन्तोद्भेदं विशेषतः ॥ ७७ ॥

शंखपुष्पी, वच, ब्राह्मी, कूठ, त्रिफला, मुनक्का, शक्कर, सोंठ, जीवन्ती, जीरा, खरेटी, कचूर, यवासा, बेल, अनार, तुलसी, शालपर्णी, नागर मोथा, पोहकरमूल, छोटी इलायची, व गजपीपल, प्रत्येक १ तोलेका कल्क, छोटी कटेरीका क्वाथ ६ सेर ३२ तोला, दूध ६ सेर ३२ तो० मिलाकर १२८ तोला, घी पकाना चाहिये। यह " कुमारकल्याण " नामक घृत बल व वर्णको बढाता पुष्टि तथा अग्निको बढाता, ग्रहदोष, छाया, क्रिमिदन्त तथा दांत उत्पन्न होनेके समय उत्पन्न होनेवाले रोगोंको विशेषतः नष्ट करता है ॥ ७३–७७ ॥

अष्टमङ्गलं घृतम् ।

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि च ।
शारिवा सैन्धवं चैव पिप्पलीघृतमष्टमम् ॥ ७८ ॥
मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पातव्यं च दिने दिने ।
दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान्भवेत् ॥७९॥
न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः ।
प्रभवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमङ्गलम् ॥ ८० ॥

वच, कूठ, ब्राह्मी, सरसों, शारिवा, सेंधानमक व छोटी पीपलके कल्कमें घृत और जल मिलाकर पकाना चाहिये । घृत सिद्ध हो जानेपर बालकको प्रतिदिन पिलाना चाहिये । यह मेधाको बढाता है। इसके सेवनसे बालक स्मृतिमान्, बुद्धिमान् व मेधावी होता है । इसे पीनेवाले बालकोंपर पिशाच, राक्षस, भूत और माता आदि किसीका प्रभाव नहीं पड़ता। इसे " अष्टमङ्गल " कहते हैं ॥ ७८–८० ॥

लाक्षादितैलम् ।

लाक्षारससमं सिद्धं तैलं मस्तु चतुर्गुणम् ।
रास्नाचन्दनकुष्ठाब्दवाजिगन्धानिशायुगैः ॥ ८१ ॥
शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः ।
बालानां ज्वररक्षोघ्नमभ्यङ्गाद्बलवर्णकृत् ॥ ८२ ॥

लाखके रसके समान, चतुर्गुण दहीके तोड़ और रासन, चन्दन, कूठ, नागरमोथा, असगन्ध, हल्दी, दारुहल्दी, सौंफ, देवदारु, मौरेठी, मूर्वा, कुटकी व सम्भालूके बीजके कल्कसे सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे बालकोंके ज्वर तथा राक्षसदोष नष्ट होते हैं ॥ ८१–८२ ॥

ग्रहचिकित्सा ।

सहामुण्डितिकोदीच्यक्वाथस्नानं ग्रहापहम् ।
सप्तच्छदनिशाकुष्ठचन्दनैश्चानुलेपनम् ॥ ८३ ॥
सर्पत्वग्लशुनं मूर्वासर्षपारिष्टपल्लवाः ।
बैडालविड्जालोममेषशृङ्गीवचामधु ॥ ८४ ॥
धूपः शिशोर्ज्वरघ्नोऽयमशेषग्रहनाशनः ।
बलिशान्तीष्टकर्माणि कार्याणि ग्रहशान्तये ॥ ८५ ॥
मन्त्रश्चायं प्रयोक्तव्यस्तत्रादौ सार्वकामिकः ॥ ८६॥

मुद्गपर्णी, मुण्डी, व सुगन्धवालाके क्वाथसे स्नान ग्रहदोषको नष्ट करता है। तथा सप्तपर्ण, हल्दी, कूठ, व चन्दनका अनुलेप भी ग्रहदोषको नष्ट करता है । और सांपकी केंचुल, लहसुन, मूर्वा, सरसों, नीमकी पत्ती, बिडालकी विष्ठा, बकरीके रोवां, मेढाशिङ्गी, वच व शहदकी धूप बालकके ज्वर तथा समग्र ग्रहदोषोंको नष्ट करती है। तथा बलि, शान्ति व इष्टकर्म आदि ग्रहशान्तिके लिये करना चाहिये । और धूप देनेके लिये यह आगे लिखा सार्वकामिक मन्त्र पढना चाहिये ॥ ८३–८६ ॥

सार्वकामिको मन्त्रः ।

ॐ नमो भगवते गरुडाय त्र्यम्बकाय सद्यस्तवस्तुतः स्वाहा । ॐ कं पं टं शं वैनतेयाय नमः ॐ ह्रीं ह्रूं क्षः ॥ इति मन्त्रः ।

बालदेहप्रमाणेन पुष्पमालां तु सर्वतः ।
प्रगृह्य मुच्छिकाभक्तबलिर्देयस्तु शान्तिकः ।

बालककी देहके बराबर फूलोंकी माला लेकर भातसे भरे सिकोरेके चारों ओर लपेटकर बलि देना चाहिये । और बलि देते समय नीचे लिखा मन्त्र पढना चाहिये ।

बलिमन्त्रः ।

ओङ्कारी स्वर्णपक्षी बालकं रक्ष रक्ष स्वाहा । गरुड बलिः । ॐ नमो नारायणाय नमः इति मन्त्रः ॥८७॥

नन्दनामातृकाचिकित्सा ।

प्रथमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति नन्दना नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः । अशुभं शब्दं मुञ्चति, चीत्कारं च करोति, स्तन्यं न गृह्णाति। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लौदनं, शुक्लपुष्पं, शुक्ल सप्त ध्वजाः, सप्त प्रदीपाः, सप्त स्वस्तिकाः, सप्त वटकाः, सप्त शष्कुलिकाः, जम्बुलिकाः, सप्त मुष्टिकाः, गन्धं, पुष्पं, ताम्बूलं, मत्स्यं, मांसं, सुरा, अग्रभक्तं च पूर्वस्यां दिशि चतुष्पथे मध्याह्ने बलिर्देयः। ततोऽश्वत्थपत्रं कुम्भे प्रक्षिप्य शान्त्युदकेन स्नापयेत् । रसोनसिद्धार्थकमेषशृङ्गनिम्बपत्रशिवनिर्माल्यैर्बालकं धूपयेत् । "ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा" एवं दिनत्रयं बलिं दत्त्वा चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् । ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ८८ ॥

पहिले दिन, पहिले महीने अथवा पहिले वर्षमें नन्दनानाम मातृका ग्रहण करती है । उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर आता है । अशुभ शब्द करता तथा चिचिहाता है, दूध नहीं पीता । उसके लिये बलि बतलाते हैं, जिससे बालक सुखी होता है । नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टी लेकर सफेद भात, फूल, सफेद सात झंडियाँ, सात दीपक, सात स्वस्तिक (सन्थिया) ७ बड़े, ७ पूड़ियां, ७ जलेबियाँ, ७ मुट्ठी सुगन्धित पुष्प, मछलियाँ, पान, मांस, शरावकी बलि, अग्रभक्त (उत्तम हांड़ीमें भरे भात) के साथ मध्याह्नमें पूर्व दिशाके चौराहेपर देना चाहिये । फिर पीपलका पत्र जलमें छोड़कर शान्तिकारक जलसे स्नान कराना चाहिये । तथा लहसुन, सरसों, मेढाका सींग, नीमकी पत्ती और शिवनिर्माल्यकी धूप देनी चाहिये और यह मन्त्र पढ़ना चाहिये । "ओं नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा " इस प्रकार तीन दिन बलि देकर चौथे दिन ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये । इस प्रकार बालक आरोग्य होता है ॥ ८८ ॥

सुनन्दालक्षणं चिकित्सा च ।

द्वितीये दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति सुनन्दा नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः । चक्षुरुन्मीलयति, गात्रमुद्वेजयति, न शेते, क्रन्दति, स्तन्यं न गृह्णाति, चीत्कारश्च भवति । बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । तण्डुलं हस्तपृष्ठैकं दधिगुडघृतं च मिश्रितं, शरावैकं, गन्धताम्बूलं, पीतपुष्पं, पीतसप्तध्वजा, सप्त प्रदीपाः, दश स्वस्तिकाः, मत्स्यमांससुरातिलचूर्णानि। पश्चिमायां दिशि चतुष्पथे बलिर्देयः दिनानि त्रीणि सन्ध्यायाम् । ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिवनिर्माल्यसिद्धार्थमार्जारलोमोशीरवालघृतैर्धूपं दद्यात् । "ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा " । चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् । ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ८९ ॥

दूसरे दिन, मास और वर्षमें सुनन्दानाम मातृका ग्रहण करती है । उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर होता है, बालक आंखें फैलाता है, शरीर कम्पाता है, सोता नहीं, रोता है, दूध नहीं पीता, चीत्कार करता है। उसके लिये नीचे लिखी विधिसे बलि देना चाहिये । एक पसर भात, दही, गुड़, घी मिलाकर एक शराव, गन्ध, पान, पीले फूल, पीली ७ झंडियां, सात दीपक, दश स्वस्तिक, मछलियां, मांस, शराव तिलचूर्ण पश्चिमदिशाको चौराहेमें सायंकाल बलि देना चाहिये। इस प्रकार ३ दिन करना चाहिये । फिर शान्तिजलसे स्नान कराना चाहिये । तथा शिवनिर्माल्य, सरसों, बिल्लीके रोवां, खश, सुगन्धवाला और घीकी धूप देनी चाहिये । और यह मन्त्र पढना चाहिये । " ओं नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा " । चौथे दिन ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये । इस प्रकार बालक सुखी होता है ॥ ८९ ॥

पूतनाचिकित्सा ।

तृतीये दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति पूतना नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः । गात्रमुद्वेजयति, स्तन्यं न गृह्णाति, मुष्टिं बध्नाति, क्रन्दति, ऊर्ध्वं निरीक्षते । बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा गन्धपुष्पताम्बूलरक्तचन्दनं, रक्तपुष्पं, रक्तसप्त ध्वजाः, सप्त प्रदीपाः, सप्तस्वस्तिकाः, पक्षिमांसं, सुरा, अग्रभक्तं च, दक्षिणस्यां दिशि अपराह्णे चतुष्पथे बलिर्दातव्यः । शिवनिर्माल्यगुग्गुलसर्षपनिम्बपत्रमेषशृङ्गैर्दिनत्रयं धूपयेत् । "ॐ नमो नारायणाय बालस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रासय ह्रासय स्वाहा" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ९० ॥

तीसरे दिन महीने और वर्षमें पूतनानाम मातृका ग्रहण करती है । उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर

आता है, बालकका शरीर कम्पाता है, दूध नहीं पीता, मुट्ठी बांधता, रोता तथा ऊपरको देखता है। उसके लिये वलि देनेकी यह विधि है कि नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टीको लेकर पुतला बना गन्ध, फूल, पान, लाल चन्दन, लाल फूल, लाल ७ पताका, ७ दीपक, ७ स्वस्तिक, पक्षियोंका मांस, शराब व उत्तम भातकी दक्षिणदिशाके चौराहेमें अपराह्णमें वलि देनी चाहिये। और शिवनिर्माल्य, गुग्गुलु, सरसों, नीमकी पत्ती व मेढाके सींगसे धूप करनी चाहिये। तथा यह मन्त्र पढना चाहिये। "ॐ नमो नारायणाय बालकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च हासय हासय स्वाहा"। चौथे दिन ब्राह्मण भोजन करावे। इस प्रकार सुख होता है ॥ ९० ॥

मुखमण्डिकाचिकित्सा ।

चतुर्थे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति मुखमण्डिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। ग्रीवां नामयति, अक्षिणी उन्मीलयति, स्तन्यं न गृह्णाति, रोदिति, स्वपिति, मुष्टिं बध्नाति। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा उत्पलपुष्पं,गन्धताम्बूलं, दश ध्वजाः, चत्वारः प्रदीपाः, त्रयोदश स्वस्तिकाः, मत्स्यमांससुरा, अग्रभक्तं च उत्तरस्यां दिशि अपराह्णे चतुष्पथे बलिं दद्यात्। आद्यः मासिको धूपः "ॐ नमो नारायणाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ९१ ॥

चौथे दिन चौथे महीने अथवा चौथे वर्षमें मुखमण्डिका नाम मातृका ग्रहण करती है, उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर होता है, गर्दन चलाता है, आंखें निकालता है, दूध नहीं पीता, रोता, सोता तथा मुट्ठी बांधता है। उसके लिये वलि इस प्रकार देना चाहिये। नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टीसे पुतला बना नीलकमलके फूल, गन्ध, ताम्बूल, दश पताकाएँ, ४ दीपक, १३ स्वस्तिक, मछली, मांस, शराब, भात उत्तर दिशामें सायङ्काल चौराहेपर वलि देनी चाहिये। तथा प्रथम मासमें कही हुई धूप देनी चाहिये। "ॐ नमो नारायणाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा"। चौथे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। तब सुखी होता है ॥ ९१ ॥

कटपूतनामातृकाचिकित्सा ।

पञ्चमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति कटपूतना नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रमुद्वेजयति, स्तन्यं न गृह्णाति, मुष्टिं च बध्नाति बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। कुम्भकारचक्रस्य मृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां निर्माय गन्धताम्बूलं, शुक्लौदनं,शुक्लपुष्पं,पञ्च ध्वजाः,पञ्च प्रदीपाः,पञ्च वटकाः, ऐशान्यां दिशि बलिर्दातव्यः। शान्त्युदकेन स्नापयेच्छिवनिर्माल्यसर्पनिर्मोकगुग्गुलुनिम्बपत्रवालकघृतैर्धूपं दद्यात् "ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ९२ ॥

पांचवें, दिन, महीने और वर्षमें कटपूतनानाम मातृका ग्रहण करती है। उसके ग्रहण करते ही ज्वर आता है, शरीर कम्पता है, दूध नहीं पीता, मुट्ठी बांधता है, । उसके लिये इस प्रकार वलि देना चाहिये। कुम्हारके चाककी मिट्टी ले पुतला बना गन्ध, ताम्बूल, सफेद भात, सफेद फूल, ५ पताकाएँ ५ दीपक,५ बड़े इनकी ऐशान्य दिशामें वलि देनी चाहिये। शान्तिजलसे स्नान कराना चाहिये और शिवनिर्माल्य, सांपकी केंचुल, गुग्गुलु, नीमकी पत्ती, सुगन्धवाला और घीसे धूप देनी चाहिये। और "ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा" यह मन्त्र पढ़ना चाहिये। चौथे दिन ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार शुभ होता है ॥ ९२ ॥

शकुनिकाचिकित्सा ।

षष्ठे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति शकुनिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रभेदं च दर्शयति, दिवारात्रावुत्थानं भवति.ऊर्ध्वं निरीक्षते। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। पिष्टकेन पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लपुष्पं, रक्तपुष्पं, पीतपुष्पं गन्धताम्बूलं,दशप्रदीपाः,दशध्वजाः,दश स्वस्तिका, दश मुष्टिकाः, दश वटकाः, क्षीरजम्बूडिका, मत्स्यमांससुरा आग्नेय्यां दिशि निष्क्रान्ते मध्याह्ने बलिं दापयेत्। शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिवनिर्माल्यरसोनगुग्गुलुसर्पनिर्मोकनिम्बपत्रघृतैर्धूपं दद्यात्। "ॐ नमो नारायणाय चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ९३ ॥

छठे दिन, महीने और वर्षमें शकुनिका ग्रहण करती है। उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर आता है, शरीर टूटता है, दिनरात चौंकता है, ऊपर देखता है। उसके लिये इस प्रकार वलि देना चाहिये। पिट्ठीका पुतला बना सफेद फूल, लाल फूल, पीले फूल, गन्ध, ताम्बूल, दशदीप, दशपताकाएँ, दशस्वस्तिक, दश लड्डू, दश वडे, दूधकी जलेवी, मछली, मांस व शराबकी आग्नेय दिशामें मध्याह्न वीत जानेपर वलि देनी चाहिये तथा शान्तिजलसे स्नान कराना चाहिये और शिवनिर्माल्य, लहसुन, गुग्गुलु, सांपकी केंचुल, नीमकी पत्तीकी धूप देने

चाहिये । और " ॐ नमो नारायणाय चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा " । इस मन्त्रका जप करना चाहिये । और चौथे दिन ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये । तब शांति होती है ॥ ९३ ॥

शुष्करेवतीचिकित्सा ।

सप्तमे दिवसे मासे वर्षे वा यदा गृह्णाति शुष्करेवती नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः । गात्रमुद्वेजयति, मुष्टिं बध्नाति, रोदिति । बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । रक्तपुष्पं, शुक्लपुष्पं, गन्धताम्बूलं, रक्तौदनं, कृसरा, त्रयोदश स्वस्तिकाः, मत्स्यमांससुरास्त्रयोदश ध्वजाः, पञ्च प्रदीपाः, पश्चिमदिग्भागे ग्रामनिष्कासे अपराह्णे वृक्षमाश्रित्यबलिं दद्यात् । शान्त्युदकेन स्नानं गुग्गुलुमेषशृङ्गीसर्षपोशीरवालकघृतैर्धूपयेत् । " ॐ नमो नारायणाय दीप्ततेजसे हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा " चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्ततःसम्पद्यते शुभम् ॥ ९४ ॥

सातवें दिन, महीने या वर्षमें शुष्करेवती नामक मातृका ग्रहण करती है । उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर होता है, शरीर कम्पाता है, मुट्ठी बांधता है, रोता है । उसके लिये बलि कहते हैं । लाल फूल, सफेद फूल, गन्ध, ताम्बूल, लाल भात, खिचडी, १३ स्वस्तिक, मछली, मांस, शराब, तेरह पताका, और ५ दीपक सायंकाल ग्रामके निकासपर पश्चिम दिशामें वृक्षके नीचे बलि देवे । तथा शांतिजलसे बालकको स्नान करावे । और गुग्गुलु मेढाशिंगी, सरसों, खश, सुगन्धवाला व घीकी धूप देनी चाहिये । " ॐ नमो नारायणाय दीप्ततेजसे हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा " । यह मन्त्र पढना चाहिये । चौथे दिन ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये । तब सुखी होता है ॥ ९४॥

अर्यकाचिकित्सा ।

अष्टमे दिवसे मासे वर्षे वा यदि गृह्णाति अर्यका नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः । गृध्रगन्धः पूतिगन्धश्च जायते,आहारं च न गृह्णाति,उद्वेजयति गात्राणि । बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । रक्तपीतध्वजाः, चन्दनं, पुष्पं, शष्कुल्यः, पर्पटिका, मत्स्यमांससुराजम्बुडिकाः प्रत्यूषे बलिर्देयः प्रान्तरे । मन्त्रः "ॐ नमो नारायणाय चतुर्दिङ्मोक्षणाय व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ॐ ह्रीं फट् स्वाहा" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ९५ ॥

आठवें दिन, महीने और वर्षमें जो ग्रहण करती है, उसे अर्यका नाम मातृका कहते हैं । उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर आता है, गृध्रके समान दुर्गन्ध आती है, आहार नहीं करता, शरीर कम्पाता है । उसके लिये बलि कहते हैं-जिससे सुख होता है । लाल पीली पताकाएँ, चन्दन, फूल, पूडी, पापड मछलियां, मांस, शराब, जलेबियां इनकी सवेरे एक किनारे बलि देना चाहिये और यह मन्त्र पढना चाहिये । " ॐ नमो नारायणाय चतुर्दिङ्मोक्षणाय व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ॐ ह्रीं फट् स्वाहा " । चौथे दिन ब्राह्मण भोजन करावे । तब शुभ होता, है ॥ ९५ ॥

भूसूतिकाचिकित्सा ।

नवमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति भूसूतिका नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः । नित्यं छर्दिर्भवति,गात्रभेदं दर्शयति, मुष्टिं बध्नाति। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकाः निर्माय शुक्लवस्त्रेण वेष्टयेच्छुक्लपुष्पं,गन्धताम्बूलं, शुक्लत्रयोदश ध्वजाः,त्रयोदश दीपाः त्रयोदश स्वस्तिकाः,त्रयोदश पुत्तलिकाः, त्रयोदशमत्स्य पुत्तलिकाः, मत्स्यमांससुराः,उत्तरदिग्भागे ग्रामनिष्कासे बलिं दद्यात्।शान्त्युदकेन स्नानं,गुग्गुलुनिम्बपत्रगोशृङ्गश्वेतसर्षपघृतैर्धूपं दद्यात् । मन्त्रः "ॐ नमो नारायणाय चतुर्भुजाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ९६ ॥

नवें दिन, महीने और वर्षमें भूसूतिकानाम मातृका ग्रहण करती है । उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर आता है, नित्य वमन होती है, शरीरमें पीड़ा होती है, मुट्ठी बांधता है । उसके लिये बलि कहते हैं- जिससे सुख होता है । नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टी ले पुतला बना सफेद कपड़ेसे लपेटना चाहिये । तथा सफेद फूल, गन्ध, ताम्बूल, सफेद १३ झण्डियां, १३ दीपक, १३ स्वस्ति, १३ पुत्तलिका, १३ मछलीकी पुत्तलियां, मछलियां मांस व शराबकी उत्तर दिशामें ग्रामके निकासपर बलि देनी चाहिये । शान्तिजलसे स्नान कराना चाहिये । और गुग्गुलु नीमकी पत्ती, गायका सींग, सफेद सरसों और घीकी धूप देनी चाहिये (" ॐ नमो नारायणाय चतुर्भुजाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा " यह मन्त्र पढना चाहिये । चौथे दिन ब्राह्मण भोजन करावे । तब सुख होता है ॥ ९६ ॥

निर्ऋताचिकित्सा ।

दशमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति निर्ऋता नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः।गात्रमुद्वेजयति,चीत्कारं करोति,रोदिति, मूत्रं पुरीषं च भवति । बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । पारावारमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां निर्माय गन्धताम्बूलं, रक्त-

पुष्पं, रक्तचन्दनं, पञ्च वर्णध्वजाः, पञ्च प्रदीपाः, पंच स्वस्तिकाः, पञ्च पुत्तलिकाः, मत्स्यमांससुराः, वायव्यां दिशि बलिं दद्यात् । काकविष्ठागोमांसगोश्रृङ्गरसोनमार्जारलोमनिम्बपत्रघृतैर्धूपयेत् । " ॐ नमो नारायणाय चूर्णितहस्ताय मुञ्च मुञ्च स्वाहा " चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्ततः स्वस्थो भवति बालकः ॥ ९७ ॥

दशवें दिन, महीने या वर्षमें निर्ऋतिका मातृका ग्रहण करती है। उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर आता है, शरीर कम्पाता है, चीत्कार करता है, रोते रोते दस्त व पेशाव हो जाता है। उसके लिये बलि कहते है । नदीके दोनों ओरकी मिट्टी ले पुतला बना गन्ध, ताम्बूल, लाल फूल, लाल चन्दन, पॉच रङ्गकी पताकाएँ, पॉच दीपक, ५ स्वस्तिक, ५ पुत्तलियॉ, मछलियॉ, मास व शरावकी वायव्य दिशामें बलि देनी चाहिये और लशुन, बिल्लीके रोवें, काकविष्ठा, गोमांस, गोश्रृग, नीमकी पत्ती और घीसे धूप देनी चाहिये । " ॐ नमो नारायणाय चूर्णितहस्ताय मुञ्च मुञ्च स्वाहा " यह मन्त्र पढना चाहिये । चौथे दिन ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये । तब बालक स्वस्थ होता है ॥ ९७ ॥

पिलिपिच्छिलिकाचिकित्सा ।

एकादशे दिवसे मासे वर्षे वा यदि गृह्णाति पिलिपिच्छिलिका नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। आहारं न गृह्णाति, ऊर्ध्वदृष्टिर्भवति गात्रभङ्गो भवति। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। पिष्टकेन पुत्तलिकां कृत्वा रक्तचन्दनं रक्तं पुष्पं च तस्या मुखं दुग्धेन सिञ्चेत्। पीतपुष्पं, गन्धताम्बूलं, सप्त पीतध्वजाः, सप्त प्रदीपाः, अष्टौ वटकाः, अष्टौ शष्कुलिकाः, अष्टौ पूरिकाः, मत्स्यमांससुराः पूर्वस्यां दिशि बलिर्दातव्यः । शान्त्युदकेन स्नानं शिवनिर्माल्यगुग्गुलुगोश्रृङ्गसर्पनिर्मोकघृतैर्धूपयेत्। " ॐ नमो नारायणाय मुञ्च मुञ्च स्वाहा " चतुर्थदिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्ततः सुस्थो भवति बालकः ॥ ९८ ॥

ग्यारहवें दिन महीने वर्षमें पिलिपिच्छिलिका मातृका ग्रहण करती है । उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर आता है, आहार नहीं करता, आँखें निकालता है, शरीर टूटता है । उसके लिये बलि कहते हैं । पिट्ठीकी पुत्तलिका बनाकर उसका मुख लाल चन्दनसे रङ्गकर उसमे दूध छोड़ना चाहिये। तथा पीले फूल, गन्ध, तांबूल, सात पीली पताकाएँ, सात दीपक, आठ बड़े, आठ पूड़ियां आठ जलेबियां, मछली, मांस व शरावकी पूर्वदिशामें बलि देनी चाहिये । शान्तिजलसे स्नान कराना चाहिये तथा शिवनिर्माल्य, गुग्गुलु, गोश्रृंग, सांपकी कैंचुल और घीसे धूप करना चाहिये । " ॐ नमो नारायणाय मुञ्च मुञ्च स्वाहा " यह मन्त्र पढ़ना चाहिये । तब बालक सुस्थ होता है ॥ ९८ ॥

कालिकाचिकित्सा ।

द्वादशे दिवसे वर्षे वा यदि गृह्णाति कालिका नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः । विहस्य वादयति, करेण तर्जयति, गृह्णाति, क्रामति, निःश्वसिति, मुहुर्मुहुश्छर्दयति, आहारं न करोति। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। क्षीरेण पुत्तलिकां कृत्वा गन्धं, ताम्बूलं, शुक्लपुष्पं, शुक्लसप्तध्वजाः, सप्त प्रदीपाः, सप्त पूपिकाः, करस्थेन दधिभक्तेन सर्वकर्मबलिं दद्याच्छान्त्युदकेन स्नापयेत् । शिवनिर्माल्यगुग्गुलुसर्षपघृतैर्धूपयेत् । " ॐ नमो नारायणाय मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा " चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्ततः सुस्थो भवति बालकः ॥ ९९ ॥

बारहवें दिन, महीने या वर्षमे कालिका मातृका ग्रहण करती है । उसके ग्रहण करते ही ज्वर आता है । हँसकर तालियां बजाता है, उठता है, पकड़ताहै, चलता है, श्वास लेता है, बारबार वमन करता है, आहार नहीं करता । उसके लिये बलि कहते हैं । दूधके साथ पुतला बनाकर गन्ध, ताम्बूल, सफेद फूल, सफेद सात पताका, सात दीपक, ७ पुवा, तथा हाथमें दही भात लेकर समस्त बलिकर्म करना चाहिये । शान्तिजलसे स्नान कराना चाहिये तथा शिवनिर्माल्य, गुग्गुलु, सरसों और घीसे धूप देनी चाहिये । " ओं नमोनारायणाय मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा " यह मन्त्र पढना चाहिये। चौथे दिन ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये । तब बालक स्वस्थ होता है ॥ ९९ ॥

इति बालरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ विषाधिकारः ।

सामान्यचिकित्सा ।

अरिष्टाबन्धनं मन्त्राः प्रयोगाश्च विषापहाः ।
दंशनं दंशकस्याहेः फलस्य मृदुनोऽपि वा ॥ १ ॥

१ पूर्वोक्त समस्त मन्त्रोंमें नारायणके स्थानमे "रावणाय" अनेक प्रतियोंमें मिलता है । पर वह उत्तम नहीं प्रतीत होता । क्योंकि एक तो रावणको प्रणाम करनेकी लौकिक प्रथा नहीं, दूसरे एक मन्त्रमें "चतुर्भुजाय" विशेषण भी आया है, जो कि विष्णुभगवानके लिये ही आता है । अतः "नारायणाय यही" ठीक है । पर नारायणके लिये दूसरोंके मांस तथा शराब आदिकी बलि देना उचित नहीं प्रतीत होता, अतः द्विजातियोंको ऐसे पदार्थ पृथक् कर ही पूजन करना चाहिये ॥

दंशसे चार अङ्गुल ऊपर वस्त्र या रस्सी आदिसे बांधना (तथा मन्त्रद्वारा बान्ध देना) मन्त्र, विषनाशक प्रयोग तथा काटनेवाले सर्पको ही पकड़कर काट देना और यदि सर्प न मिले, तो मुलायम फलोंको दांतोंसे काटकर फेंकनेसे सर्पविष शान्त होता है ॥ १ ॥

प्रत्यङ्गिरामूलयोगाः।

मूलं तण्डुलवारिणा पिबति यः प्रत्यङ्गिरासम्भवं
निष्पिष्टं शुचि भद्रयोगदिवसे तस्याहिभीतिः कुतः।
दर्पादेव फणी यदा दशति तं मोहान्वितो मूलपं
स्थाने तत्र स एव याति नियतं वक्त्रं यमस्याचिरात्॥२॥

जो मनुष्य कण्टकिशिरीषकी जड़के चूर्णको चावलके जलके साथ आषाढ़ मासमें उत्तम नक्षत्रादियुक्त दिनमें पीता है, उसको सर्पका कोई भय नहीं रहता। यदि कोई सांप दर्पसे उसे काटही ले, तो तुरन्त उसी स्थानमें वह सर्प ही मर जाता है ॥ २ ॥

निम्बपत्रयोगः।

मसूरं निम्बपत्राभ्यां खादेन्मेषगते रवौ।
अब्दमेकं न भीतिः स्याद्विषात्तस्य न संशयः ॥३॥

जो मनुष्य मेषके सूर्यमें मसूरकी दालको नीमकी पत्तीके शाकके साथ खाता है, उसे एक वर्षतक विषसे कोई भय नहीं होता ॥ ३ ॥

पुनर्नवायोगाः।

धवलपुनर्नवजटया तण्डुलजलपीतया च पुष्यर्क्षे।
अपहरति विषधरविषोपद्रवमावत्सरं पुंसाम् ॥४॥

सफेद पुनर्नवाकी जड़को पुष्यनक्षत्रमें चावलके जलके साथ पीस मिलाकर पीनेसे एक वर्षतकके लिये सर्पके विषके भयको दूर रखता है ॥ ४ ॥

सर्पदष्टचिकित्सा।

गृहधूमो हरिद्रे द्वे समूलं तण्डुलीयकम्।
अपि वासुकिना दष्टः पिबेद्दधिघृताप्लुतम्।
कूलिकामूलनस्येन कालदष्टोऽपि जीवति ॥ ५॥
श्लेष्मणः कर्णगूथस्य वामानासिकया कृतः।
लेपो हन्याद्विषं घोरं नृमूत्रासेचनं तथा ॥ ६ ॥
शिरीषपुष्पस्वरसे भावितं श्वेतसर्षपम्।
सप्ताहं सर्पदष्टानां नस्यपानाञ्जने हितम् ॥ ७॥

१ काटनेवाले सांपको ही काट खाना या मुलायम फल या मिट्टीका ढेला या कंकड़ आदिको दांतोंसे काटकर फेंकना सुश्रुतमें भी हितकर बताया है।

द्विपलं नतकुष्ठाभ्यां घृतक्षौद्रं चतुष्पलम्।
अपि तक्षकदष्टानां पानमेतत्सुखप्रदम् ॥ ८ ॥
वन्ध्याकर्कोटजं मूलं छागमूत्रेण भावितम्।
नस्यं काञ्जिकसंयुक्तं विषोपहतचेतसः ॥ ९ ॥

सांपके काटे हुएको गृहधूम, हल्दी, दारुहल्दी, व समूल चौराईके कल्कमें घी व दही मिलाकर पिलाना चाहिये। तथा परवलकी जड़के चूर्णके नस्यसे काले सांपसे काटा भी जी जाता है। तथा मुखके कफ अथवा कानके मैलको वाम हाथकी अनामिका अंगुलीसे लेकर दंशपर लेप करने तथा मनुष्यमूत्रका सिञ्चन करनेसे सर्पविष नष्ट होता है। तथा सिरसाके फूलोंके स्वरसमें भावित सफेद सरसोंका चूर्ण कर पान, नस्य व अञ्जनके लिये सांपके काटे हुए मनुष्योंको ७ दिनतक प्रयोग करना चाहिये। तथा तगर व कूठका मिलित चूर्ण ८ तो० और शहद व घी मिलित १६ तोला मिलाकर पीनेसे तक्षकसे काटा हुआ भी सुखी होता है। तथा वांझखेखसाकी जड़ बकरेके मूत्रमें भावित कर काञ्जीमें मिलाकर विषसे बेहोश मनुष्यको नस्य देना चाहिये ॥ ५-९ ॥

महागदः।

त्रिवृद्विशाले मधुकं हरिद्रे
मञ्जिष्ठवर्गो लवणं च सर्वम्।
कटुत्रिकं चैव विचूर्णितानि
शृङ्गे निदध्यान्मधुना युतानि ॥ १० ॥
एषोऽगदो हन्त्युपयुज्यमानः
पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्ययोगैः।
अवार्यवीर्यो विषवेगहन्ता
महागदो नाम महाप्रभावः ॥ ११ ॥

निसोथ, इन्द्रायण, मौरेठी, हल्दी, दारुहल्दी; मजिष्ठादिगणकी औषधियां, समस्त नमक व त्रिकटु सब महीन पीस कपड़छान कर शहद मिलाकर सीङ्गकी शीशीमें धरना चाहिये। यह पीने, अञ्जन, नस्य तथा मालिशसे विषके वेगको नष्ट करता है। इसका प्रभाव अनिवार्य होता है। यह महाप्रभावशाली "महागद" नामसे कहा जाता है ॥ १० ॥ ११ ॥

विविधावस्थायां विविधा योगाः।

पीते विषे स्याद्वमनं च त्वक्स्थे।
प्रदेहसेकादि सुशीतलं च ॥ १२ ॥
कपित्थमामं ससिताक्षौद्रं कण्ठगते विषे।
लिह्यादामाशयगते ताभ्यां चूर्णपलं नतात् ॥ १३ ॥
विषे पक्वाशयगते पिप्पलीरजनीद्वयम्।
मञ्जिष्ठां च समं पिष्ट्वा गोपित्तेन नरः पिबेत् ॥१४॥

रजनीसैन्धवक्षौद्रसंयुक्तं घृतमुत्तमम् ।
पानं मूलविषार्तस्य दिग्धविद्धस्य चेष्यते ॥ १५ ॥

विष पी लेनेपर, वमन तथा त्वचामें लग जानेपर शीतल लेप या सेक करना चाहिये । तथा कण्ठतक पहुँचे विषमें कच्चे कैथेके गूदेको मिश्री व शहदके साथ मिलाकर चटाना चाहिये। तथा आमाशयगत विषमें तगरका चूर्ण ४ तो० शहद व मिश्री मिलाकर चाटना चाहिये । तथा पक्वाशयगत विषमें छोटी पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, व मजीठ समान भाग ले गोपित्तमें पीसकर पीना चाहिये । तथा जो मूलविषसे पीड़ित है, अथवा जो विष लिप्तशस्त्रसे विंध गया है, उसे हल्दी व सेंधानमकका चूर्ण शहद व उत्तम घी मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ १२–१५ ॥

संयोगजविषचिकित्सा ।

सितामधुयुतं चूर्णं ताम्रस्य कनकस्य वा ।
लेहः प्रशमयत्युग्रं सर्वं संयोगजं विषम् ॥ १६ ॥
अङ्कोटमूलनिष्क्राथफाणितं सघृतं लिहेत् ।
तैलाक्तः स्विन्नसर्वाङ्गो गरदोषविषापहः ॥ १७ ॥

ताम्र अथवा सोनेकी भस्मको मिश्री व शहद मिलाकर चाटनेसे समस्त संयोगज विष नष्ट होते हैं। तथा अंकोहरकी जड़के क्वाथको गाढ़ा कर घी मिला चाटने तथा तैलकी मालिश कर समस्त शरीरके स्वेदन करनेसे गरदोष और विष नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

कीटादिविषचिकित्सा ।

कटभ्यर्जुनशैरीयशेलुक्षीरिद्रुमत्वचः ।
कषायचूर्णकल्काः स्युः कीटलूताव्रणापहाः ॥१८॥

मालकांगनी, अर्जुन, कटसैला, लसोढा और दूधवाले वृक्षोंकी छालका कषाय अथवा चूर्ण अथवा कल्कमेंसे किसी एकका सेवन करनेसे कीड़े, मकड़ी आदिके व्रण शान्त होते हैं ॥ १८ ॥

मूषकविषचिकित्सा ।

आगारधूममञ्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः ।
लेपो जयत्याखुविषं कर्णिकायाश्च पातनम् ॥ १९ ॥

गृहधूम, मजीठ, हल्दी और सेंधानमकको पीसकर लगाया गया लेप कर्णिका (गांठ) को गिराता तथा मूषकविषको शान्त करता है ॥ १९ ॥

वृश्चिकचिकित्सा ।

यः कासमर्दपत्रं वदने प्रक्षिप्य कर्णफूत्कारम् ।
मनुजो ददाति शीघ्रं जयति विषं वृश्चिकानां सः ॥२०
दंशे भ्रामणविधिना वृश्चिकविषहृत्कुठेरपादगुडिका।
पुरधूपपूर्वमर्कच्छदमिव पिष्ट्वा कृतो लेपः ॥ २१ ॥
जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः ।
सुखोष्णो वृश्चिकार्तानां सुलेपो वेदनापहः ॥ २२ ॥
अमलावघर्षणं दंशे कण्टकं च तदुद्धरेत् ।
करणे विषजे लेपात्फणिज्जकरसोऽथवा ॥ २३ ॥

जो कसौंदीके पत्तोंको मुखमें चबाकर कानमें फूँकता है, वह बिच्छूके विषको शीघ्रही नष्ट करता है । तथा बिच्छूके दंशके ऊपर तुलसीके जड़की गोली घुमानेसे बिच्छूका विष शीघ्रही उतर जाता है। ऐसे ही गुग्गुलुकी धूप देकर आकके पत्तोंका लेप लाभ करता है । तथा जीरेके कल्कमें घी व सेंधानमक मिला गरम कर दंशपर गुनगुना लेप करनेसे वृश्चिकविषकी पीड़ा शान्त होती है । ऐसे ही दंशके कांटेको निकालकर निर्मलीका घिसना लाभ करता है । अथवा मरुवाके रसका दंशके ऊपर लेप करनेसे लाभ होता है ॥ २२–२३ ॥

गोधादिविषचिकित्सा ।

कुङ्कुमकुनटीकर्कटपलहरितालैः
कुसुम्भसंमिलितैः ।
कृतगुडिकाभ्रामणतो
विदष्टगोधासरटविषजित् ॥ २४ ॥

केशर, मनशिल, केकड़ेके मांस, हरिताल तथा कुसुम्भके फूल मिलाकर बनायी गयी गोली दंशपर फेरनेसे गोह या गिरगिटका विष नष्ट होता है ॥ २४ ॥

मीनादिविषचिकित्सा ।

अङ्कोटपत्रधूमो मीनविषं झटिति विघटयेच्छृङ्गी ।
गोधावरटीविषमिव लेपेन कुटजकपालिजटा॥२५॥

अंकोहरके पत्तोंका धुआं शीघ्रही मीनविषको नष्ट करता है । तथा काकड़ाशिङ्गीका लेप भी यही गुण करता है । जैसे कि कुरैयाकी छाल और नारियलकी जटासे गोह और वर्रका विष नष्ट होता है ॥ २५ ॥

श्वविषचिकित्सा ।

कनकोदुंबरफलमिव तण्डुलजलपिष्टं पीतमपहरति ।
कनकदलद्रवघृतगुडदुग्धपलैकं शुनां गरलम् ॥२६॥

धतूरा और गूलरके फल चावलके जलमें पीसकर पीनेसे या धतूरेके पत्तोंका रस घी, गुड़ व दूध मिलाकर ४ तोला पीनेसे कुत्तेका जहर मिट जाता है ॥ २६ ॥

भेकविषचिकित्सा ।

लेप इव भेकगरलं शिरीषवीजैः स्नुहीपयःसिक्तैः ।
हरति गरलं त्र्यहमशिताङ्कोटजटाकुष्ठसम्मिलिता ॥

सिरसाके बीज, सेहुण्डके दूधके साथ अथवा काले अंकोहरकी जड़ और कूठका ३ दिन लेप करनेसे मण्डूकविष नष्ट होता है ॥ २७ ॥

लालाविषचिकित्सा ।

मरिचमहौषधवालकनागाह्वैर्मक्षिकाविषे लेपः ।
लालाविषमपनयतो मूले मिलिते पटोलनीलिकयोः॥

काली मिर्च, सोंठ, सुगन्धवाला तथा नागकेशरको पीसकर बनाया गया लेप मक्खियोंके विषको तथा परवल और नीलकी जड़का लेप लालाविषको नष्ट करता है ॥ २८ ॥

नखदंतविषे लेपः ।

सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपाद्यपि ।
रजन्यौ गैरिकं लेपो नखदन्तविषापहः ॥ २९ ॥

सफेद कत्था, राल, गाउजुवां, हंसराज, हल्दी, दारुहल्दी, और गेरूका लेप नख और दन्तविषको नष्ट करता है ॥ २९ ॥

कीटविषचिकित्सा ।

वचा हिङ्गु विडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली ।
पाठा अतिविषा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम् ३०
दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ।
कीटदष्टक्रियाः सर्वाः समानाः स्युर्जलौकसाम्॥३१॥

बच, हींग, वायविडङ्ग, सेंधानमक, गजपीपल, पाढ़, अतीस, व त्रिकटु इन दश चीजोंका लेप "दशांग अगद" कहा जाता है । यह समस्त कीटविषोंको नष्ट करता है । इसी प्रकार जोंकोंके विषमें भी समस्त कीटविषनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥

मृतसञ्जीवनोऽगदः ।

स्पृक्काप्लवस्थौणेयकांक्षीशैलेयरोचनातगरम् ।
ध्यामकं कुङ्कुमं मांसी सुरसात्रिफलैलकुष्ठघ्नम् ॥
बृहतीशिरीषपुष्पश्रीवेष्टकपद्मचारटिविशालाः ।
सुरदारुपद्मकेशरशावरकमनःशिलाकौन्त्यः ॥३३॥
जात्यर्कपुष्पसर्षपरजनीद्वयहिङ्गुपिप्पलीद्राक्षाः ॥
जलमुद्गपर्णीमधूकदमनकमथ सिन्धुवाराश्च ॥३४॥
सम्पाकलोध्रमयूरकगन्धफलीलाङ्गलीविडंगाः ।
पुष्ये समुद्धृत्य समं पिष्ट्वा गुडिका विधेयाःस्युः ३५
सर्वविषघ्नो जयकृद्विषमृतसञ्जीवनो ज्वरनिहन्ता ।
पेयविलेपनधारणधूम्रग्रहणैर्गृहस्थश्च ॥ ३६ ॥
भूतविषजन्त्वलक्ष्मीकार्मणमन्त्राग्न्यशन्यरीन्हन्यात्
दुःस्वप्नस्त्रीदोषानकालमरणाम्बुचौरभयम् ॥३६॥
धनधान्यकार्यसिद्धिश्रीपुष्टिवर्णायुर्वर्धनो धन्यः ।
मृतसञ्जीवन एष प्रागमृताद् ब्रह्मणाभिहितः॥३८॥

मालतीके फूल, केवटी मोथा, गठौना, फिटकरी, छरीला, गोरोचन, तगर, रोहिष, केशर, जटामांसी, तुलसी, त्रिफल छोटी इलायची, कत्था, बड़ी कटेरी, सिरसाके फूल, गन्धाविरोजा, कमल, भुइआमला, इन्द्रायण, देवदारु, कमलका केशर, शावरलोध, मनशिल, सम्भालूके बीज, चमेलीके फूल, आकके फूल, सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, हींग, छोटी पीपल, मुनक्का, सुगन्धवाला, मुद्गपर्णी, मौरेठी, देवना, सम्भालू, अमलतास, लोध, अपामार्ग, प्रियंगु, कलिहारी व वायविडङ्ग, समस्त द्रव्य समान भाग ले कूट पीसकर पुष्य नक्षत्रमें गोली बनानी चाहिये । यह समस्त विषोंको नष्ट करता, विषसे मरते हुएको बचाता तथा ज्वर नष्ट करता है । यह पीने, लेप करने, धारण करने, धूम पीने तथा घरमें रखनेसे भी लाभ करता है । तथा भूत, विष, क्रिमि, दरिद्रता, मन्त्र प्रयोग, अग्नि, वज्र और शत्रुओंके भय, दुःस्वप्न, स्त्रीदोष, अकाल मृत्यु, जल तथा चोरभयको दूर करता है । यह "मृतसञ्जीवन" धन, धान्य, कार्यसिद्धि, लक्ष्मी, पुष्टि, वर्ण और आयुको अधिक बढाता, अतः धन्य है । इसे श्रीब्रह्माजीने अमृतके पहिले कहा है ॥ ३२-३८ ॥

इति विषाधिकारः समाप्तः ।

अथ रसायनाधिकारः ।

सामान्यव्यवस्था ।

यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् ।
पूर्वे वयसि मध्ये वा शुद्धदेहः समाचरेत् ॥ १ ॥
नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रासायनो विधिः ॥ १ ॥
नाभाति वाससि क्लिष्टे रङ्गयोग इवार्पितः ॥२ ॥

जो औषध वृद्धावस्था व रोगको नष्ट करती है, उसे "रसायन" कहते हैं । उसका प्रयोग बाल्यावस्था व युवावस्थामें शुद्ध शरीर (वमनादिसे) होकर करना चाहिये, शरीरकी शुद्धि विना रसायनप्रयोग लाभ नहीं करता, जिस प्रकार मैले कपड़ेपर रङ्ग नहीं चढ़ता ॥ १ ॥ २ ॥

पथ्यारसायनम् ।

गुडेन मधुना शुण्ठ्या कणया लवणेन वा ।
द्वे द्वे खादन्सदा पथ्ये जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ ३ ॥

गुड़, शहद, सोंठ, छोटी पीपल, व नमक इनमेंसे किसी एक के साथ प्रतिदिन २ छोटी हर्रे खानेसे १०० वर्षतक नीरोग रहकर १०० वर्षतक मनुष्य जीता है ॥ ३ ॥

अभयाप्रयोगः।

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात्।
वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणैषिणा ॥ ४ ॥

रसायनकी इच्छा रखनेवालेको बड़ी हर्रका सेवन वर्षाकालमें सेंधानमकके साथ, शरद् ऋतुमें शक्करके साथ, हेमन्तमें सोंठके साथ, शिशिरमें पिप्पलीके साथ और वसन्तमें शहदके तथा ग्रीष्ममें गुड़के साथ करना चाहिये ॥ ४ ॥

लौहत्रिफलायोगः।

त्रैफलेनायसीं पात्रीं कल्केनालेपयेन्नवाम्।
तमहोरात्रिकं लेपं पिबेत्क्षौद्रोदकाप्लुतम् ॥ ५ ॥
प्रभूतस्नेहमशनं जीर्णे तस्मिन्प्रयोजयेत्।
अजरोऽरुक्समाभ्यासाज्जीवेच्चापि समाः शतम् ६॥

त्रिफलाके कल्कका लेप नवीन लोहेके पात्रमें करना चाहिये। फिर रातदिन रहा हुआ वह लेप शहद और जल मिलाकर पीना चाहिये। इसके हजम हो जानेपर अधिक स्नेह मिला भोजन करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षके प्रयोग कर लेनेसे मनुष्य जवान तथा नीरोग रह कर १०० वर्षतक जीता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

पिप्पलीरसायनम्।

पञ्चाष्टौ सप्त दश वा पिप्पलीः क्षौद्रसर्पिषा।
रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत्॥ ७ ॥
तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाह्णे भुक्त्वाग्रे भोजनस्य च।
पिप्पल्यः किंशुकक्षारभाविता घृतभर्जिताः ॥ ८ ॥
प्रयोज्या मधुसंमिश्रा रसायनगुणैषिणा।
जेतुं कासं क्षयं श्वासं शोषं हिक्कां गलामयम्॥९॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं पाण्डुतां विषमज्वरम्।
वैस्वर्यं पीनसं शोषं गुल्मं वातबलासकम् ॥ १० ॥

रसायनके गुणोंकी इच्छा रखनेवालेको पीपल ५, ७, ८, १०, (अपनी प्रकृतिके अनुसार) प्रतिदिन शहद व घीके साथ सेवन करना चाहिये। यह प्रयोग एक वर्षका है। अथवा ढाकके क्षार जलसे भावित तथा घीमें भूनी गयी छोटी पीपल तीन तीनकी मात्रासे शहदमें मिलाकर प्रातःकाल, भोजनसे पहिले व भोजनके अनन्तर खानेसे कास, क्षय, श्वास, शोष, हिक्का, गलरोग, अर्श, ग्रहणीदोष, पाण्डुरोग, विषमज्वर, स्वरभेद, पीनस, गुल्म व वातबलासक, नष्ट होते हैं ॥ ७-१० ॥

त्रिफलारसायनम्।

जरणान्तेऽभयामेकां प्राग्भक्ते द्वे विभीतके।
भुक्त्वा तु मधुसर्पिर्भ्यां चत्वार्यामलकानि च ॥११
प्रयोजयेत्समामेकां त्रिफलाया रसायनम्।
जीवेद्वर्षशतं पूर्णमजरोऽव्याधिरेव च ॥ १२ ॥

अन्न हजम हो जानेपर १ हर्र, भोजनके पहिले दो बहेड़े और भोजनके बाद ८ आँवलेका घी व शहदके साथ १ वर्ष तक प्रयोग करनेसे मनुष्य युवा तथा नीरोग रहकर १०० वर्ष तक जीता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

विविधानि रसायनानि।

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः
क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम्।
रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्याः
कल्कः प्रयोज्यः खलु शङ्खपुष्प्याः ॥ १३ ॥
आयुःप्रदान्यामयनाशनानि
बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि।
मेध्यानि चैतानि रसायनानि
मेध्या विशेषेण तु शङ्खपुष्पी ॥ १४ ॥

मण्डूकपर्णीका स्वरस अथवा दूधके साथ मौरेठीका चूर्ण अथवा गुर्चका रस, अथवा मूल व पुष्पसहित शंखपुष्पीका रस इनमेंसे किसी एकका प्रयोग करना चाहिये। यह आयु बढानेवाले, रोग नष्ट करनेवाले, बल, अग्नि तथा वर्ण और स्वरको बढानेवाले तथा मेधाके लिये हितकर रसायन हैं। इनमें भी शंखपुष्पी विशेष कर मेधाके लिये हितकर है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अश्वगन्धारसायनम्।

पीताश्वगन्धा पयसार्धमासं
घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते
बालस्य शस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥ १५ ॥

असगन्धके चूर्णका दूधके साथ अथवा घृत, तैल या गुनगुने जलमेंसे किसी एकके साथ सेवन करनेसे दुर्बलके शरीरको इस प्रकार पुष्ट करता है, जैसे जलवृष्टि छोटे धानोंको ॥ १५ ॥

धात्रीतिलरसायनम्।

धात्रीतिलान्भृङ्गरजोविमिश्रान्
ये भक्षयेयुर्मनुजाः क्रमेण।
ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च
निर्व्याधयो वर्षशतं भवेयुः ॥ १६ ॥

जो मनुष्य आंवला, तिल व भांगराके चूर्णका सेवन करते हैं, वे कालेकेशयुक्त इन्द्रियशक्तिसम्पन्न १०० वर्ष तक जीते हैं ॥ १६ ॥

वृद्धदारकरसायनम् ।

वृद्धदारकमूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
शतावर्या रसेनैव सप्तरात्राणि भावयेत् ॥ १७ ॥
अक्षमात्रं तु तच्चूर्णं सर्पिषा सह भोजयेत् ।
मासमात्रोपयोगेन मतिमाञ्जायते नरः ॥ १८ ॥
मेधावी स्मृतिमांश्चैव वलीपलितवर्जितः ।

विधाराकी जड़का महीन चूर्ण कर शतावरीके रसकी ७ भावना देनी चाहियें । यह चूर्ण १ तोलाकी मात्रासे प्रतिदिन घीके साथ खाना चाहिये । इसके सेवनसे मनुष्य बुद्धिमान्, मेधावी, स्मृतिमान् तथा वलीपलितरहित होता है ॥ १७॥१८ ॥

हस्तिकर्णचूर्णरसायनम् ।

हस्तिकर्णरजः खादेत्प्रातरुत्थाय सर्पिषा ॥ १९ ॥
यथेष्टाहारचारोऽपि सहस्रायुर्भवेन्नरः ।
मेधावी बलवान्कामी स्त्रीशतानि व्रजत्यसौ ॥२०॥
मधुना त्वश्ववेगः स्याद्बलिष्ठः स्त्रीसहस्रगः ।
मन्त्रश्चायं प्रयोक्तव्यो भिषजा चाभिमन्त्रणे ॥२१॥
"ओं नमो महाविनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा" ॥ २२ ॥

जो मनुष्य प्रातःकाल भूपलाशके चूर्णको घीके साथ चाटता है, तथा यथेष्ट आहार विहार करता है, वह १००० वर्षतक जीता है । तथा मेधावी, बलवान् व कामी होकर १०० स्त्रियोंके साथ मैथुन करता है । तथा इसीको शहदके साथ चाटनेसे हजारों स्त्रियोंको गमन करनेकी शक्ति हो जाती है । तथा इस मन्त्रसे अभिमन्त्रण करना चाहिये । " ओं नमो महाविनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा " ॥ १९–२२ ॥

धात्रीचूर्णरसायनम् ।

धात्रीचूर्णाढकं स्वस्वरसपरिगतं क्षौद्रसर्पिः समांशं
कृष्णामानीसिताष्टप्रसृतयुतमिदं स्थापितं भस्मराशौ ।
वर्षान्ते तत्समश्नन्भवति विपलितो रूपवर्णप्रभावै
र्निर्व्याधिर्बुद्धिमेधास्मृतिबलवचनस्थैर्यसत्त्वैरुपेतः २३ ॥

आंवलेका चूर्ण ३ सेर १६ तोला, आंवलेके स्वरससे ही ७ वार भावित कर शहद व घी समान भाग मिला तथा छोटी पीपल ३२ तोला, मिश्री ६४ तोला मिलाकर भस्मराशिमें गाड़ देना चाहिये । वर्षाकालके अनन्तर निकाल कर इसका सेवन करनेसे मनुष्य पलितरहित रूप, वर्ण और प्रभावयुक्त, नीरोग तथा बुद्धि, धारण शक्ति, स्मरणशक्ति, बल व वचनकी स्थिरता तथा सत्त्वगुणसे युक्त होता है ॥ २३ ॥

गुडूच्यादिलेहः ।

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशङ्खिनी
वचाभयाकुष्ठशतावरी समा ।
घृतेन लीढा प्रकरोति मानवं
त्रिभिर्दिनैः श्लोकसहस्रधारिणम् ॥ २४ ॥

गुर्च, अपामार्ग, वायविडङ्ग, शंखपुष्पी, वच, हर्र, कूठ और शतावरी समान भाग ले चूर्ण कर घीके साथ चाटनेसे ३ दिनके ही प्रयोगसे मनुष्य हजारों श्लोक कण्ठ करनेकी शक्तिसे सम्पन्न होता है ॥ २४ ॥

सारस्वतघृतम् ।

समूलपत्रामादाय ब्राह्मीं प्रक्षाल्य वारिणा ।
उलूखले क्षोदयित्वा रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ २५ ॥
रसे चतुर्गुणे तस्मिन्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
औषधानि तु पेष्याणि तानीमानि प्रदापयेत् ॥ २६ ॥
हरिद्रा मालती कुष्ठं त्रिवृता सहरीतकी ।
एतेषां पलिकान्भागाञ्शेषाणि कार्षिकाणि तु ॥२७॥
पिप्पल्योऽथ विडङ्गानि सैन्धवं शर्करा वचा ।
सर्वमेतत्समालोड्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ २८ ॥
एतत्प्राशितमात्रेण वाग्विशुद्धिश्च जायते ।
सप्तरात्रप्रयोगेण किन्नरैः सह गीयते ॥ २९ ॥
अर्धमासप्रयोगेण सोमराजीवपुर्भवेत् ।
मासमात्रप्रयोगेण श्रुतमात्रं तु धारयेत् ॥ ३० ॥
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि अर्शांसि विविधानि च ।
पञ्च गुल्मान् प्रमेहांश्च कासं पञ्चविधं जयेत् ॥३१॥
वन्ध्यानां चैव नारीणां नराणां चाल्परेतसाम् ।
घृतं सारस्वतं नाम बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ ३२ ॥

मूलपत्रसहित ब्राह्मी खोद जलसे धो ओखलीमें कूटकर कपड़ेसे रस छानना चाहिये । इस प्रकार छने ६ सेर ३२ तो० रसमें १ सेर ९ छ. ३ तो० घी मिलाकर पकाना चाहिये । तथा हल्दी, मालती, कूठ, निसोथ व हर्र, प्रत्येक ४ तोले तथा छोटी पीपल, वायविड़ंग, सेंधानमक, शक्कर व वच प्रत्येक १ तोलाका कल्क मिलाकर मन्द आँचसे पकाना चाहिये । सम्यक् पाकार्थ घीसे चौगुना जल भी छोड़ना चाहिये । यह घृत चाटनेसे ही वाणी शुद्ध करता है, इसका प्रयोग करनेवाला ७ दिनमें ही किन्नरोंके समान गानेवाला, १५ दिनमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान शरीरवाला होता है । एक मास प्रयोग कर लेनेसे जो कुछ सुनता है, उसे ही कण्ठ कर लेता है । यह अठारह प्रकारके कुष्ठ, अर्श, पांचों गुल्म प्रमेह तथा पांचों प्रकारके कास नष्ट करता है । वन्ध्या स्त्रियों तथा अल्पवीर्यान्वित पुरुषोंके लिये हितकर है । तथा यह "सारस्वत घृत" बल वर्ण व अग्निको बढाता है॥२५–३२॥

जलरसायनम् ।

कासश्वासातिसारज्वरपिडककटीकुष्ठकोठप्रकारान् ।
मूत्राघातोदरार्शःश्वयथुगलशिरःकर्णशूलाक्षिरोगान् ।
ये चान्ये वातपित्तक्षतजकफकृता व्याधयः सन्ति जन्तो-
स्तांस्तानभ्यासयोगादपनयति पयः पीतमन्ते निशायाः॥
व्यङ्गवलीपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासशोथघ्नम् ।
रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिजननं च ॥ ३४ ॥

रात्रिके अन्तमें जल पीनेके अभ्याससे कास, श्वास, अतीसार, ज्वर, कमरकी पीड़ा, कुष्ठ, ददरे, मूत्राघात, उदर, अर्श, शोथ, गले, शिर, कान व नेत्रके रोग तथा अन्य वात, पित्त, कफ तथा रक्तसे उत्पन्न होनेवाले रोग नष्ट होते हैं । इसी प्रकार प्रातःकाल जलका नस्य लेनेसे झांई, झुर्रियां, बालोंकी सफेदी, पीनस, स्वरभेद, कास, सूजन नष्ट होती है । तथा यह रसायन नेत्रोंकी शक्तिको बढाता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अमृतसारलोहरसायनम् ।

नागार्जुनो मुनीन्द्रः शशास यल्लोहशास्त्रमतिगहनम् ।
तस्यार्थस्य स्मृतये वयमेतद्विशदाक्षरैर्ब्रूमः ॥ ३५ ॥
मेने मुनिः स्वतन्त्रे भूयः पाकं न पलपञ्चकादर्वाक् ।
सुबहुप्रयोगदोषादूर्ध्वं न पलत्रयोदशकात् ॥ ३६ ॥
तत्रायसि पचनीये पञ्चपलादौ त्रयोदशपलान्ते च ।
लोहात्त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या षड्भिः पलैरधिका ॥
मारणपुटनस्थालीपाकास्त्रिफलैकभागसम्पाद्याः ।
त्रिफलाभागद्वितयं ग्रहणीयं लोहपाकार्थम् ॥ ३८ ॥

नागार्जुन मुनिने जो लोहशास्त्र अति कठिन तथा गम्भीर कहा है, उसके स्मरणार्थ हम उसका विशद व्याख्यान करते हैं । मुनिने अपने शास्त्रमें पांच पलसे कम तथा तेरह पलसे अधिक लोहका एक बारमें प्रयोग नहीं कहा । उस लोहकी भस्म करनेके लिये जितना लोह हो, उससे तिगुना छः पल अधिक मिलाकर (जैसे ५ पल लोहके लिये ५ के तिगुने १५ और ६ अर्थात् २१ पल इसी प्रकार १० पल लोहके लिये १० के तिगुने ३० और ६ अर्थात् ३६ पल) त्रिफला लेनी चाहिये । उसके तीन भाग करने चाहियें एक भागसे मारण, पुटन और स्थालीपाक करना चाहिये । शेष २ भाग त्रिफला प्रधानपाकके लिये रखनी चाहिये ॥ ३५–३८ ॥

जलनिश्चयः ।

सर्वत्रायःपुटनाद्यर्थैकांशे शरावसंख्यातम् ।
प्रतिपलमेव त्रिगुणं पाथः क्वाथार्थमादेयम् ॥ ३९ ॥
सप्तपलादौ भागे पञ्चदशान्तेऽम्भसां शरावैश्च ।
त्र्याद्येकादशकान्तैरधिकं तद्वारि कर्तव्यम् ॥ ४० ॥
तत्राष्टमो विभागः शेषः क्वाथस्य यत्नतः स्थाप्यः ।
तेन हि मारणपुटनस्थालीपाका भविष्यन्ति ॥४१॥
पाकार्थे तु त्रिफला भागद्वितये शरावसंख्यातम् ।
प्रतिपलमम्बु समं स्यादधिकं द्वाभ्यां शरावाभ्याम्॥
तत्र चतुर्थो भागः शेषो निपुणेन यत्नतो ग्राह्यः ।
अयसः पाकार्थत्वात्स च सर्वस्मात्प्रधानतमः॥४३॥

समस्त लौहकर्ममें क्वाथ बनानेके लिये प्रतिपल ३ शराव (६ कुडव) जल छोड़ना चाहिये, तथा सात पल (पांच पल लोहके लिये गृहीत त्रिफलाके तृतीयांशभाग) से १५ पलतक त्रिफलामें जल पूर्वोक्त मानसे क्रमशः ३ से ११ शराव तक अधिक छोड़ना । जैसे ७ पलके लिये ७×३=२१ और ३ शराव अधिक अर्थात् २४ शराव जल लेना चाहिये । ऐसे ही (६ पल लोहके लिये गृहीत त्रिफलाके तृतीयांश भाग) ८ पल त्रिफलाके लिये २४ शराव और ४ शराव अधिक अर्थात् २८ शराव जल लेना चाहिये । ऐसे ही क्रमशः जितने पल क्वाथ्य त्रिफला हो, उससे त्रिगुण शराव जल तथा ९ पलमें ५, दश पलमें ६, ग्यारहमें ७, इसी प्रकार बढाते हुए १५ पलमें ११ शराव अधिक अर्थात् १५ के त्रिगुण ४५ और ११ और ५६ शराव जल छोड़ना चाहिये । तथा अष्टमांश क्वाथ शेष रखना चाहिये । इसीसे मारण, पुटन व स्थालीपाक करना चाहिये तथा प्रधान पाकके लिये बचे त्रिफलामें प्रतिपल १ शराव (अर्थात् त्रिफलासे अष्टगुण) जल और २ शराव अधिक छोड़ना चाहिये और चतुर्थांश शेष रखना चाहिये । प्रधानपाकमें सहायक होनेसे यह क्वाथ भी प्रधान है ॥ ३९–४३ ॥

दुग्धनिश्चयः ।

पाकार्थमश्मसारे पञ्चपलादौ त्रयोदशपलान्ते ।
दुग्धशरावद्वितयं पादैरेकादिकैरधिकम् ॥ ४४ ॥

लौहपाकके लिये ५ पलसे १३ पलतक लौहमें २ शराव और ¼ शराव दूध अधिक प्रतिपलमें लेना चाहिये । अर्थात् ५ पलमें २। शराव, ६ पलमें २॥ शराव, ७ पलमें २॥। शराव, ८ पलमें ३ शराव इसी प्रकार प्रतिपल लौहमें चौथाई शराव दूध बढा देना चाहिये ॥ ४४ ॥

लौहमात्रानिश्चयः।

पञ्चपलादिकमात्रा तदभावे तदनुसारतो ग्राह्यम् ।
चतुरादिकमेकान्तं शक्तावधिकं त्रयोदशकात्॥४५॥

सामान्यनियम पञ्चपलादिका है, पर इसके अभावमें ४ पलसे १ पलतकका तथा शक्ति होनेपर १३ पलसे अधिक लौहका भी पाक कर सकते हैं ॥ ४५ ॥

प्रक्षेप्यौषधनिर्णयः ।

त्रिफलात्रिकटुकचित्रककान्तक्रामकविडङ्गचूर्णानि ।
अन्यान्यपि देयानि पलाशवृक्षस्य च बीजानि॥४६
जातीफलजातीकोषैलाकक्कोलकलवङ्गानाम् ।
सितकृष्णजीरकयोरपि चूर्णान्ययसः समानि स्युः ।
त्रिफलात्रिकटुविडङ्गा नियता अन्ये यथाप्रकृति ॥
कालायसदोषहृतेर्जातीफलादेर्लवङ्गान्तस्य ।
क्षेपः प्राप्त्यनुरूपः सर्वस्योनस्य चैकाद्यैः ॥ ४८ ॥
कान्तक्रामकमेकं निःशेषं दोषमपहरत्ययसः ।
द्विगुणत्रिगुणचतुर्गुणमाज्यं ग्राह्यं यथाप्रकृति ॥४९॥
यदि भेषजभूयस्त्वं स्तोकत्वं वापि चूर्णानाम् ।
अयसा साम्यं संख्या भूयोऽल्पत्वेन भूयोऽल्पा॥५०
एवं धात्वनुसारात्तत्तत्कथितौषधस्य बाधेन ।
सर्वत्रैव विधेयस्तत्तदकथितस्यौषधस्योहः ॥ ५१ ॥

त्रिफला, त्रिकटु, चीतेकी जड़, नागरमोथा, वायविड्ङ्ग, ढाकके बीज, जायफल, जावित्री, इलायची, कंकोल, लवङ्ग, सफेद जीरा, काला जीरा समस्त समान भागमें मिलित द्रव्योंका चूर्ण मिलकर लौहके बराबर लेना चाहिये । इनमेंसे त्रिफला, त्रिकटु और वायविड्ङ्ग अवश्य डालना चाहिये । और द्रव्य प्रकृतिके अनुसार छोड़ना चाहिये । तथा लोहके दोष दूर करनेके लिये जायफलसे लवंगतक जितने द्रव्य गिनाये हैं, वे एक दो न मिलनेपर जितने मिल सकें, उतने ही अवश्य छोड़ने चाहियें। तथा नागरमोथा अकेला ही लोहके सब दोष दूर करता है, अतः उसे अवश्य छोड़े। तथा रोगीकी प्रकृतिके अनुसार (क्रमशः कफ, पित्त, वातमें) द्विगुण, त्रिगुण तथा चतुर्गुण घी छोड़ना चाहिये । यदि ओषधियां अधिक हों, अर्थात् सब मिल जावें, तो प्रत्येक चूर्ण थोड़ा और यदि कम मिले तो प्रत्येक चूर्ण अधिक छोडना चाहिये। अर्थात् औषधियोंकी संख्याके न्यूनाधिक्यसे चूर्णकी मात्रा कम या अधिक न होगी । वह प्रत्येक अवस्थामें मिलकर लोहके बराबर ही होनी चाहिये । इसी प्रकार रोगीकी प्रकृतिके अनुसार कही हुई औषधियोंको भी अलग करना तथा अनुक्त ओषधियां भी छोड़नी चाहियें ॥ ४६-५१ ॥

लोहमारणविधिः ।

कान्तादिलौहमारणविधानसर्वस्वमुच्यते तावत् ।
यस्य कृते तल्लौहं पक्तव्यं तस्य शुभे दिवसे॥५२॥
समृदङ्गारकरालितनतभूभागे शिवं समभ्यर्च्य ।
वैदिकविधिना वह्निं निधाय हुत्वाहुतीस्तत्र ॥ ५३॥

धर्मात्सिध्यति सर्वं श्रेयस्तद्धर्मसिद्धये किमपि ।
शक्त्यनुरूपं दद्याद् द्विजाय सन्तोषिणे गुणिने॥५४
सन्तोष्य कर्मकारं प्रसादपूगादिदानसंमानैः ।
आदौ तदश्मसारं निर्मलमेकान्ततः कुर्यात् ॥५५ ॥
तदनु कुठारच्छिन्नात्रिफलागिरिकर्णिकास्थिसंहारैः।
करिकर्णच्छदमूलकशतावरीकेशराजाख्यैः ॥५६ ॥
शालिञ्चमूलकाशीमूलप्रावृजभृङ्गराजैश्च ।
लिप्त्वा दग्धव्यं तद् दृष्टिक्रियलोहकारेण ॥ ५७ ॥
चिरजलभावितविमलं शालाङ्गारेण परित आच्छाद्य
कुशलाध्मापितभस्त्रानवरतमुक्तेन पवनेन ॥ ५८ ॥
वह्नेर्बाह्यज्वाला बोद्धव्या जातु नैव कुब्जिकया ।
मृल्लवणसलिलभाजा किन्तु स्वच्छाम्बुसंप्लुतया ५९
द्रव्यान्तरसंयोगात्स्वां शक्तिं भेषजानि मुञ्चन्ति ।
मलधूलीमत्सर्वं सर्वत्र विवर्जयेत्तस्मात् ॥ ६० ॥
सन्दंशेन गृहीत्वान्तः प्रज्वालिताग्निमध्यमुपनीय ।
गलति यथायथमग्नौ तथैव मृदु वर्धयेन्निपुणः ॥६१
तलनिहितोर्ध्वमुखाङ्कुशलग्नं त्रिफलाजले ।
त्रिनिक्षिप्य निर्वापयेच्छेषं त्रिफलाम्बु रक्षेच्च ॥६२॥
यल्लौहं न मृतं तत्पुनरपि पक्तव्यमुक्तमार्गेण ।
यन्न मृतं तथापि तत्त्यक्तव्यमलौहमेव ततः ॥६३ ॥
तदनु घनलौहपात्रे कालायसो मुद्गरेण संचूर्ण्य ।
दत्त्वा बहुशः सलिलं प्रक्षाल्याङ्गारमुद्धृत्य ॥६४॥
तदयः केवलमग्नौ शुष्कीकृत्याथवातपे पश्चात् ।
लौहशिलायां पिष्यादसितेऽश्मनि वा तदप्राप्तौ ६५

अब कान्तादिलोहकी मारण विधि कहते हैं । जिस रोगीके लिये लोह बनाना है, उसके लिये शुभ नक्षत्रादिसे युक्त दिनमें मिट्टी और अङ्गारोंको मिला लिपी गयी भूमिपर शंकरजीका पूजन कर वैदिकविधिसे अग्नि स्थापित कर आहुति करनी चाहिये । धर्मसे सर्व कार्य सफल होते हैं, अतः धर्मार्थ किसी सन्तोषी गुणवान् ब्राह्मणके लिये शक्तिके अनुकूल दान करना चाहिये । फिर लुहारको सुपारी, पान तथा प्रसाद आदि देकर सम्मानित तथा सन्तुष्ट करना चाहिये । पाहिले उस लोहको बिल्कुल शुद्ध कर लेना चाहिये (लोहशोधनकी कोई परिभाषा ग्रन्थकारने नहीं लिखी । यद्यपि शिवदासजीने लिखी है, पर वह अतिविस्तृत होनेसे तथा अधिक कष्टसाध्य होनेसे छोडता हूं और रसग्रन्थोंमें जो अनेक पद्धतियाँ बतलायी गयी हैं उनमेंसे एक यह है–

" चिञ्चापत्रजलक्वाथाद्यो दोषमुदस्यति ।
यद्वा फलत्रयीपेते गोमूत्रे क्वथितं खलु "

१ उक्त प्रक्षेप्य औषधियां लोह सिद्ध हो जानेपर ही मिलाना चाहिये ।

अर्थात् इमलीकी पत्तीके रससे स्वेदन करनेसे अथवा त्रिफला और गोमूत्रमें स्वेदन करनेसे भी लोह शुद्ध हो जाता है । विशेष उन्हीं ग्रन्थोंमें देखिये) इसके अनंतर कन्दगुडूची, त्रिफला, विष्णुक्रांता, अस्थिसंहार (हत्थाजोड़ी) हस्तिकर्णपलाशके पत्ते और जड़ तथा शतावरी व काला भांगरा, शालिञ्चशाककी जड़, काशकी जड़, पुनर्नवा और भांगराके कल्कसे वस लोहपर लेप करना चाहिये और फिर उसे सुखा लेना चाहिये । फिर अधिक समयतक जलमें भावित कर साफ किये शालके कोपलोंको भट्टीमें बिछाकर धौंकनीसे धौंकना चाहिये । तथा अग्निकी लपट अधिक करनेके लिये मिट्टी, नमक आदि मिली कूचीसे कोयलोंको न हटाना चाहिये किन्तु यदि हटानेकी आवश्यकता ही हो, तो स्वच्छ जलमें धोकर सुखायी गयी कूँचीसे हटाना चाहिये । क्योंकि दूसरे द्रव्योंके मिल जानेसे ओषधियाँ, अपना गुण छोड़ देती हैं । अतः कूड़ा या धूलि आदिको सदा बचाना चाहिये । फिर लोहके पत्रोंको चिमटेसे पकड़कर प्रज्वलित भट्टीके मध्यमें रखना चाहिये। ज्यों ज्यों लोहा गलता जावे, त्यों त्यों और बढाते जाना चाहिये और गले हुए लौहको ऊर्ध्वमुखवाली अंकुश (कटोरीयुक्त चम्मच) से निकाल कर पूर्वस्थापित त्रिफलाक्राथमें बुझाना चाहिये । शेष त्रिफलाक्राथ रख लेना चाहिये । और जो लोह इस प्रकार भस्म न हुआ हो, उसे फिर इसी प्रकार पकाना चाहिये । फिर भी जो न मरे, उसे छोड ही देना चाहिये, क्योंकि वह लोह ही न होगा । फिर उस लौहको मजबूत लौहके खरलमें कूट बहुत जल छोड़ धोकर मिट्टी और कोयला साफ कर अग्नि अथवा धूपमें सुखाना चाहिये । फिर उसे लौहकी सिल अथवा काले पत्थरकी सिलपर पीसना चाहिये । (उपरोक्त धूपमें सुखा लेना ही लोहका "भानुपाक" कहा जाता है । तथा जो कंद गुडूची आदि ओषधियाँ बतलायी हैं, उनके साथ वैद्य लोग लौहसे षोडशांश अथवा आधा स्वर्णमाक्षिक भी छोड़ते हैं) ॥ ५२-६५ ॥

स्थालीपाकविधिः ।

अथ कृत्वायोभाण्डे दत्त्वा त्रिफलाम्बुशेषमन्यद्वा ।
प्रथमं स्थालीपाकं दद्याद् द्रवक्षयात्तदनु ॥ ६६ ॥
गजकर्णपत्रमूलशतावरीभृङ्गकेशराजरसैः ।
प्राग्वत्स्थालीपाकं कुर्यात्प्रत्येकमेकं वा ॥ ६७ ॥

इसके अनन्तर लोहेकी कडाईमें शेष त्रिफलाजल व लौह छोड़कर उस समयतक पकाना चाहिये, जबतक द्रव निःशेष हो जावे । फिर हस्तिकर्णपलाशकी जड़, शतावरी, भांगरा व काले भांगराका त्रिफलाके मानके अनुसार मिलित क्राथ बना छोड़कर पकाना चाहिये । अर्थात् ५ पल लौहमें ७ पल ओषधियाँ २४ शराव जलमें पकाकर ३ शराव शेष रखना चाहिये । उसी क्राथसे पाक करना चाहिये ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

पुटपाकविधिः ।

हस्तप्रमाणवदनं श्वभ्रं हस्तैकखातसममध्यम् ।
कृत्वा कटाहसदृशं तत्र करीषं तुषं च काष्ठं च ॥६८
अन्तर्घनतरमर्द्धं शुषिरं परिपूर्य दहनमायोज्य ।
पश्चादयसश्चूर्णं श्लक्ष्णं पङ्कोपमं कुर्यात् ॥ ६९ ॥
त्रिफलाम्बुभृङ्गकेशरशतावरीकन्दमाणसहजरसैः ।
भल्लातककरिकर्णच्छदमूलपुनर्नवास्वरसैः ॥ ७० ॥
क्षिप्त्वाथ लोहपात्रे मार्दे वा लौहमार्दपात्राभ्याम् ।
तुल्याभ्यां पृष्टेनाच्छाद्यान्ते रन्ध्रमालिप्य ॥ ७१ ॥
तत्पुटपात्रं तत्र श्वभ्रज्वलने निधाय भूयोऽपि ।
काष्ठकरीषतुषैस्तत्सञ्छाद्याहर्निशं दहेत्प्राज्ञः ॥७२ ॥
एवं नवभिर्भेषजराजैस्तु पचेत्सदैव पुटपाकम् ।
प्रत्येकमेकमेभिर्मिलितैर्वा त्रिचतुरान्वारान् ॥ ७३॥
प्रतिपुटनं तत्पिष्यात्स्थालीपाकं विधाय तथैव ।
तावदिनं च पिष्याद्विगलद्रजसा तु युज्यते यत्र ७४
तदयश्चूर्णं पिष्टं घृष्टं घनसूक्ष्मवाससि श्लक्ष्णम् ।
यदि रजसा सदृशं स्यात्केतक्यास्तर्हि तद्भद्रम्॥७५
पुटने स्थालीपाकेऽधिकृतपुरुषे स्वभावरुगाधिगमात्।
कथितमपि हेयमौषधमुचितमुपादेयमन्यदपि ॥७६॥

एक हाथका गोल गड्ढा खोदना चाहिये, बीचमें बराबर रखना चाहिये । तथा उसका मुख कटाहके सदृश गोल बनाना चाहिये । इस गढेके नीचेके आधे भागको बनकण्डे, धानकी भूसी और लकडियाँ भरकर आग लगा देनी चाहिये । ऊपरसे त्रिफलाके क्राथ तथा भांगरा, नागकेशर, शतावरी, माणकन्द, मिलावाँ तथा एरण्डके पत्र और मूलके स्वरससे भावित कीचड़के समान लौहको लोह या मिट्टीके शराव सम्पुटमें बन्द कर रखना चाहिये । ऊपरसे फिर बनकण्डे आदिसे ढककर रात-दिन आँच देनी चाहिये । इस प्रकार इन नौ ओषधियोंमेंसे प्रत्येकसे एक एक बार अथवा सब मिलाकर ३ या ४ पुट देना चाहिये । प्रतिपुटमें पीसना तथा स्थालीपाक करना चाहिये । पीसना इतना चाहिये कि कपड़ेसे छन जाय । फिर उसे महीन कपड़ेसे छानना चाहिये । यदि केवड़ेके रजके सदृश महीन हो जावे, तो समझना चाहिये कि उत्तम लौहभस्म बन गयी । पर यह ध्यान रहे कि जिस पुरुषके लिये लोह बनाना है, उसकी प्रकृति व रोगके अनुसार कही हुई ओषधियाँ भी अलग कर देनी चाहियें और अनुक्त भी मिला देनी चाहियें । वैद्यको इसके लिये विशेष ध्यान देना चाहिये ॥ ६८-७६ ॥

लौहपाकरसायनम् ।

अभ्यस्तकर्मविधिभिर्बालकुशाग्रीयबुद्धिभिरलक्ष्यम् ।
लौहस्य पाकमधुना नागार्जुनशिष्टमाभिदध्मः ॥७७॥
लौहारकूटताम्रजकटाहे दृढमृण्मये प्रणम्य शिवम् ।
तदयः पचेदचपलः काष्ठेन्धनेन वह्निना मृदुना ७८
निक्षिप्य त्रिफलाजलमुदितं यत्तद् घृतं च दुग्धं च ।
सञ्चाल्य लौहमय्या दर्व्या लग्नं समुत्पाट्य ॥७९॥
मृदुमध्यखरभावैः पाकस्त्रिविधोऽत्र वक्ष्यते पुंसाम् ।
पित्तसमीरणश्लेष्मप्रकृतीनां मध्यमस्य समः ॥८०॥

अब हम कुशाग्रबुद्धि तथा दृष्टकर्मा वैद्योंसे भी दुर्ज्ञेय महामान्य मुनि नागार्जुनद्वारा वर्णित लौहपाकविधि कहते हैं । शंकरजीको प्रणाम कर वह लौह व त्रिफलाजल तथा घी व दूध (उक्तमात्रामें) छोड़कर लकड़ियों द्वारा मन्द आँचसे पकाना चाहिये । तथा कड़ाहीमें चिपकता हुआ कल्छीसे खुरचते जाना चाहिये । पाक तीन प्रकारका होता है । पित्तप्रकृतिवालेके लिये " मृदुपाक, " वातप्रकृतिवालेके लिये " मध्यमपाक " और कफप्रकृतिवालेके लिये " खरपाक " तथा समप्रकृतिवालेके लिये " समपाक " होना चाहिये ॥ ७७–८० ॥

त्रिविधपाकलक्षणम् ।

अभ्यक्तदर्वि लोहं सुखदुःखस्खलनयोगि मृदु मध्यम्
उज्झितदर्वि खरं परिभाषन्ते केचिदाचार्याः ॥८१॥
अन्ये विहीनदर्वीप्रलेपमाखूत्कराकृतिं ब्रुवते ।
मृदुः मध्यमर्धचूर्णं सिकतापुञ्जोपमं तु खरम् ॥८२॥

जो कल्छीमें लिपा रहे उसे "मृदु" जो कुछ कठिनतासे कुछ आसानीसे छूट जाय उसे "मध्यम" जो कल्छीसे छूट जाय उसे "खर" पाक कहते हैं । दूसरे आचार्योंका सिद्धान्त है कि जो लौह कल्छीमें न चिपकते हुए भी मूसेकी लेंडीके समान हो जाय, वह "मृदु" जो आधा चूर्णसा हो जाय वह "मध्य" जो रेतीके ढेरके समान हो जाय उसे "खर" पाक कहते हैं ॥ ८१॥८२ ॥

त्रिविधपाकफलम् ।

त्रिविधोऽपि पाक ईदृक् सर्वेषां गुणकृदेव न तु विफलः ।
प्रकृतिविषये च सूक्ष्मौ गुणदोषौ जनयत्यल्पम् ॥८३॥

तीनों प्रकारका पाक सभीके लिये गुणकारी ही होता है, विफल नहीं । पर प्रकृतिके अनुसार कुछ विशेष गुण तथा कुछ थोड़े दोष भी करता है ॥ ८३ ॥

प्रक्षेप्यव्यवस्था ।

विज्ञाय पाकमेवं द्रागवतार्य क्षितौ क्षणान्कियतः ।
विश्राम्य तत्र लोहे त्रिफलादेःप्रक्षिपेच्चूर्णम् ॥८४॥
यदि कर्पूरप्राप्तिर्भवति ततो विगलिते तदुष्णत्वे ।
चूर्णीकृतमनुरूपं क्षिपेन्न वा न यदि तल्लाभः॥८५॥

इस प्रकार पाक हो जानेपर पात्रको शीघ्रही भूमिमें उतार कुछ देर ठहरकर त्रिफला आदिका चूर्ण पूर्वोक्त मानमें छोड़ना चाहिये । यदि उत्तम कर्पूर मिले, तो उसे विल्कुल ठण्डा हो जानेपर मिलाना चाहिये । और न मिले, तो कोई आवश्यकता नहीं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

लौहस्थापनम् ।

पक्वं तदश्मसारं सुचिरघृतास्थित्यभाविरूक्षत्वे ।
गोदोहनादिभाण्डे भाण्डाभावे सति स्थाप्यम् ८६॥

इस प्रकार पका हुआ लौह उत्तम लौहके ही भांडमें और उसके अभावमें अधिक समयतक घी रखनेसे जिसकी रूक्षता मिट गयी है, ऐसे मिट्टीके बर्तनमें अथवा गोदोहनी आदिमें रखना चाहिये ॥ ८६ ॥

लोहाद् घृताहरणम् ।

यदि तु परिप्लुतिहेतोर्घृतमीक्षेताधिकं ततोऽन्यस्मिन् ।
भाण्डे निधाय रक्षेद्व्याप्युपयोगो ह्यनेन महान् ॥ ८७ ॥

यदि इस लौहमें घृत अधिक तैरता दिखायी दे, तो उसे किसी दूसरे पात्रमें निकालकर रख दे और लौहके रूक्ष हो जानेपर इसे छोड़े । इससे यही बड़ा काम होगा ॥ ८७ ॥

त्रिफलाघृतनिषेकः ।

अयसि विरूक्षीभूते स्नेहस्त्रिफलाघृतेन सम्पाद्यः ।
एतत्ततो गुणोत्तरमित्यमुना स्नेहनीयं तत् ॥ ८८ ॥

लौहके विशेष रूक्ष हो जानेपर तथा लौहपाकसे बचा घी न रहनेपर त्रिफलाके क्वाथ तथा कल्कसे सिद्ध घृतसे स्नेहन करना चाहिये । यह "त्रिफला घृत" लोहपाकसे निकाले गये घृतसे भी अधिक गुणदायक होता है, अतः इसीका निर्विघ्न करना चाहिये ॥ ८८ ॥

लोहपाकावशिष्टघृतप्रयोगः ।

अत्यन्तकफप्रकृतेर्भक्षणमयसोऽमुनैव शंसन्ति ।
केवलमपीदमाशितं जनयत्ययसो गुणान्कियतः॥८९

तथा अत्यन्त कफ प्रकृतिवाले मनुष्यको इसी त्रिफला घृतके साथ लौहका सेवन करना चाहिये । यह घृत अकेले सेवन करनेसे भी लौहके गुणोंको करता है ॥ ८९ ॥

लौहाभ्ररसायनम् ।

अथवा वक्तव्यविधिसंस्कृतकृष्णाभ्रकचूर्णमादाय ।
लौहचतुर्थार्द्धसमाद्विस्त्रिचतुःपंचगुणभागम् ॥ ९० ॥
प्राक्षिप्यायः प्राग्वत् पचेद्भिषग्भ्यां भवेद्रजो यावत् ।
तावन्मानानुस्मृतेःस्यात्त्रिफलादिद्रव्यपरिमाणम् ॥९१॥

इदमाप्यायकमिदमति-
पित्तनुदिदमेव कान्तिवलजननम् ।
स्तभ्नाति तृट्क्षुधौ तत्
परमधिकमात्रया युक्तम् ॥ ९२ ॥

अथवा आगे कही हुई विधिसे संस्कृत (सिद्ध) कृष्णाभ्रक भस्म लौहसे चतुर्थांश आधी समान, द्विगुण, त्रिगुण, चतुर्गुण अथवा पञ्चगुण ले एकमें मिलाकर मिलित लोहाभ्रसे पूर्वोक्त विधिसे त्रिफलादि क्वाथ और दूध, घी मिलाकर पूर्वकी भांति ही पकाना चाहिये । यह रसायन शरीर बढाता, पित्त शान्त करता, कान्ति व वल उत्पन्न करता है, पर अधिक मात्रामें सेवन करनेसे भूख प्यास कम कर देता है ॥ ९०-९२ ॥

अभ्रकभस्मविधिः ।

कृष्णाभ्रकमेकवपुर्वज्राख्यं चैकपत्रकं कृत्वा ।
काष्ठमयोदूखलके चूर्णं मुसलेन कुर्वीत ॥ ९३ ॥
भूयो दृषदि च पिष्टं वासः सूक्ष्मावकाशतलगलितम् ।
मण्डूकपर्णिकायाः प्रचुररसे स्थापयेत्त्रिदिनम् ९४॥
उद्धृत्य तद्रसादथ पिण्याद्धैमन्तधान्यभक्तस्य ।
अक्षोदात्यन्ताम्लस्वच्छजलेन प्रयत्नेन ॥ ९५ ॥
मण्डूकपर्णिकायाः पूर्वं स्वरसेनालोडनं कुर्यात् ।
स्थालीपाकं पुटनं चाद्यैरपि भृङ्गराजाद्यैः ॥ ९६ ॥
तालादिपत्रमध्ये कृत्वा पिण्डं निधाय भस्त्राग्नौ ।
तावद्दहेन्न यावन्नीलोऽग्निर्दृश्यते सुचिरम् ॥ ९७ ॥
निर्वापयेच्च दुग्धे दुग्धं प्रक्षाल्य वारिणा तदनु ।
पिष्ट्वा घृष्ट्वा वस्त्रे चूर्णं निश्चन्द्रिकं कुर्यात् ॥९८॥

एक वर्णवाले काले वज्राभ्रकका लकड़ीके उलूखलमें मूसरसे चूर्ण करना चाहिये । फिर सिलपर पीसकर महीन कपड़ेसे छान लेना चाहिये । फिर मण्डूकपर्णीके बहुत रसमें ३ दिनतक रक्खे, फिर उससे निकालकर हैमंतिक (हेमन्तऋतुमें उत्पन्न होनेवाले) चावलोंके भातसे वनायी काञ्जीके अत्यन्त स्वच्छ जलके साथ घोटे । फिर मण्डूकपर्णीके स्वरसमें मिला मथकर स्थालीपाक और पुटपाक करे तथा पूर्व लौह रसायनमें कहे भृंगराज आदिके रससे भी स्थालीपाक और पुटपाक करे। फिर ताड़ आदिके पत्तोंमें रखकर भट्टीमें रख धौंकनीसे धौंकते हुए उस समयतक आंच दे, जबतक कि अग्नि नीलवर्ण न प्रतीत होने लगे । फिर अग्निसे निकाले और दूधमें बुझावे, फिर दूधको पानीसे धोकर साफ करना चाहिये, फिर इस सिद्ध अभ्रकको महीन पीस कपड़ेसे छानकर निश्चन्द्र कर ले ॥ ९३-९८ ॥

लोहसेवनविधिः ।

नानाविधरुक्शान्त्यै पुष्ट्यै कान्त्यै शिवं समभ्यर्च्य ।
सुविशुद्धेऽहनि पुण्ये तदमृतमादय लौहाख्यम् ९९॥
दशकृष्णलपरिमाणं शक्तिवयोभेदमाकलय्य पुनः ।
इदमधिकं तदधिकतरमियदेव न मातृमोदकवत् १००
सममसृणामलपात्रे लौहे लौहेन मर्दयेद् दृढं भूयः ।
दत्त्वा मध्वनुरूपं तदनु घृतं योजयेदधिकम् १०१॥
वन्धं गृह्णाति यथा मध्वपृथक्त्वेन पङ्कमविशिपेत् ।
इदमिह दृष्टोपकरणमेतद् दृष्टं तु मन्त्रेण ॥ १०२॥
स्वाहान्तेन विमर्दो भवति फडन्तेन लौहवलरक्षा ।
सनमस्कारेण वलिर्भक्षणमयसो ह्रीमन्तेन ॥१०३॥
" ओं अमृतोद्भवाय स्वाहा ।
ओं अमृते ह्रीम्[1] फट्, ओं नमश्चण्डवज्रपाणये ।
महायक्षसेनाधिपतये सुरगुरुविद्यामहावलाय स्वाहा
ओं अमृते ह्रीम्[3]" ॥ १०४ ॥

अनेक प्रकारकी पीड़ाकी शान्ति, पुष्टि और कांतिके लिये शंकरजीका पूजन कर उत्तम मुहूर्तमें यह लोहामृत रसायन सामान्यतः १० रत्तीकी मात्रा (मात्राका विशेष निश्चय करना चाहिये, क्योंकि सबके लिये एक मात्रा नहीं हो सकती, तथा यह मात्रा बहुत बड़ी होनेके कारण आजकलके लिये उपयोगी नहीं) तथा या अवस्थाके अनुसार कम या अधिक भी निश्चित करना चाहिये । माताके दिये लड्डुओंके समान सबके लिये बराबर ही मात्रा नहीं हो सकती । फिर उस मात्राको चिकने साफ लौहके पात्रमें लौहके ही दण्डसे खूब घोटना चाहिये । फिर उसी मात्राके समान मधु तथा घी उससे अधिक छोड़कर फिर घोटना चाहिये, जिसमें घी, शहद एकमें मिल जावे । इतने तो दृष्ट प्रयोग हैं । अव अदृष्ट मन्त्र शक्तिका वर्णन करते हैं । " ओं अमृतोद्भवाय स्वाहा " इस मन्त्रसे घोटना चाहिये । अर्थात् घोटते समय इसका जप करना चाहिये " ओं अमृते ह्रीम् फट् (किसी २ में " ओं अमृते ह्रूम् फट् " यह पाठ है) इस मन्त्रसे लोहकी बलरक्षा करनी चाहिये । तथा " ओं नमश्चण्डवज्रपाणये महायक्षसेनाधिपतये सुरगुरुविद्यामहावलाय स्वाहा " इस मन्त्रसे बलि तथा " ओं अमृते ह्रीम् " (किसी किसीमें " ओं अमृते ह्रूम् ") यह पाठ है। इस मन्त्रको पढकर लौह चाटना चाहिये ॥ ९९-१०४ ॥

अनुपानपथ्यादिकम् ।

जग्ध्वा तदमृतसारं नीरं वा क्षीरमेव वानुपिबेत् ।
कान्तकामकममलं संचर्व्य रसं पिबेन्न तु तत् १०५॥
आचम्य च ताम्बूलं लाभे घनसारसहितमुपयोज्यम् ।
नात्युपविष्टो नाप्यतिभाषी नातिस्थितस्तिष्ठेत् १०६॥
अत्यन्तवातशीतातपयानस्नानवेगरोधादीन् ।
जह्याच्च दिवानिद्रासहितं चाकालभुक्तं च॥१०७॥

(१, २, ३) ह्रूमिति पाठान्तरम् ।

वातकृतः पित्तकृतः सर्वान् कट्वम्लतिक्तककषायान् ।
तत्क्षणविनाशहेतून् मैथुनकोपश्रमान्दूरे ॥ १०८ ॥

इस रसायनका सेवनकर ऊपरसे दूध अथवा जल पीना चाहिये । (अनुपानकी मात्राके सम्बन्धमें शिवदासजीने योग रत्नाकरकारका समर्थन किया है जो इस प्रकार है–" अनुपानं बुधाः प्राहुश्चतुःषष्टिगुणं सदा " । पर और आचार्य लौहसे पञ्चगुण ही कहते हैं, वह बहुत कम है) इसके अनन्तर नागरमोथाको चबाकर रस पी जाना चाहिये । कल्क बाहर फेंक देना चाहिये । फिर आचमन (श्वतशीत अथवा हँसोदक जलसे) कर कर्पूरयुक्त पान खाना चाहिये । लौह सेवन कर न अधिक बैठना चाहिये । न अधिक बातचीत करनी चाहिये । न अधिक खड़ाही रहना चाहिये । अत्यन्त वायु, शीत, धूप, सवारी, स्नान, मूत्रपुरीषादिके वेगका रोकना, अकाल भोजन तथा वातपित्तको बढानेवाले कटु, अम्ल, तिक्त, कषायरस, मैथुन, क्रोध और थकावट आदि त्याग देना चाहिये । क्योंकि ये तत्काल विनाशके कारण हो जाते हैं ॥ १०५–१०८ ॥

भोजनादिनियमः ।

अशितं तदयः पश्चात्पततु न वा पाटवं छद्म प्रथताम् ।
आर्तिर्भवति न वान्त्रं कूजति भोक्तव्यमव्याजम् ॥१०९॥

उस लौहका सेवनकर लेनेपर वह कहीं गिर न जावे, ऐसी निपुणता करनी चाहिये । भोजन ऐसा करना चाहिये कि जिससे न आन्तोंमें कुडकुडाहट हो, न पेटमें पीड़ा हो । तथा रुचिके अनुसार ही भोजन करना चाहिये ॥ १०९ ॥

भोजनविधिः ।

प्रथमं पीत्वा दुग्धं शाल्यन्नं विशदसिद्धमक्लिन्नम् ।
घृतसंप्लुतमश्नीयान्मांसैर्विहङ्गमैः प्रायः ॥ ११० ॥
उत्तममूषरभूचरविष्किरमांसं तथाजमैणादि ।
अन्यदपि जलचराणां पृथुरोमापेक्षया न्यायः॥१११
मांसालाभे मत्स्या अदोपलाः स्थूलसद्गुणा ग्राह्याः।
मद्गुररोहितशकुला दग्धाः पललान्मनागूनाः ११२

पहिले दूध पीना चाहिये । फिर स्वच्छ सूखा खिला हुआ चावलका भात घी मिलाकर पक्षियोंके मांसरसके साथ खाना चाहिये । तथा ऊषरभूमिमें चरनेवाले अथवा विष्किर और बकरी हिरन आदिका मांस तथा जलचरोंका मांस मोटे रोवेंवालोंकी अपेक्षा अधिक हितकर है, तथा मांसके न मिलनेपर मोटी, गुण-युक्त, दोष रहित मछलियां लेनी चाहियें । तथा भुने हुए, मद्-गुर और रोही मछलीके टुकड़े मांससे कुछ कम गुणकारी होते हैं ॥ ११०–११२ ॥

फलशाकप्रयोगः ।

शृङ्गाटकफलकशेरुकदलीफलतालनारिकेलादि ।
अन्यदपि यच्च वृष्यं मधुरं पनसादिकं न्यायः ११३॥
केवुकताडकरीरान्वार्ताकुपटोलफलदलसंमठान् ।
मुद्गमसूरेक्षुरसाञ्शंसन्ति निरामिषेष्वेतान् ॥११४॥
शाकं प्रहेयमखिलं स्तोकं रुचये तु वास्तुकं दद्यात् ।
विहितनिषिद्धादन्यन्मध्यमकोटिस्थितं विद्यात् ११५

सिंघाडा, कशेरू, केला, ताड, नारियल तथा दूसरे भी मधुर तथा वाजीकर कटहल आदि खाना चाहिये, तथा नाडी, ताडकी करीर (नवीन अंकुर) बैंगन, परवलके फल, समठशाक तथा परवलकी पत्तीका शाक तथा मूंग मसूर और ईखके रसका निरामिष भोजियोंको उपयोग करना चाहिये । इसके अतिरिक्त कोई शाक न खाना चाहिये । रुचिके लिये थोड़ा बथुवा खाना चाहिये । जो पदार्थ कहे गये अथवा जिनका निषेध किया गया, उनको छोड़कर शेष मध्य कोटिमें समझना चाहिये ॥ ११३–११५ ॥

कोष्ठबद्धताहरव्यवस्था ।

तप्तदुग्धानुपानं प्रायः सारयति बद्धकोष्ठस्य ।
अनुपीतमम्बु यद्वा कोमलफलनारिकेरस्य ॥११६॥
यस्य न तथा सरति स यवक्षारं जलं पिबेत्कोष्णम् ।
कोष्णत्रिफलाकाथसनाथं क्षारं ततोऽप्यधिकम् ११७

बद्धकोष्ठ (कब्जियत) वालोंको गरम दूधका अनुपान देना चाहिये तथा कोमल नारियलके फलके जलसे भी दस्त साफ आते हैं । जिसे इस प्रकार भी दस्त न आवें, उसे जवाखार मिलाकर गुनगुना जल पिलाना चाहिये। अथवा त्रिफलाके क्काथमें जवाखार मिलाकर पीना चाहिये । यह भी अधिक गुण करता है ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

मात्रावृद्धिह्रासप्रकारः ।

त्रीणि दिनानि समं स्यादह्नि चतुर्थे वर्धयेत्क्रमशः ।
यावच्चाष्टममापं न वर्धयेत्पुनरितोऽप्यधिकम् ॥११८॥
आदौ रक्तिद्वितयं द्वितीयवृद्धौ तु रक्तिकात्रितयम् ।
रक्तिपञ्चकपञ्चकमत ऊर्ध्वं वर्धयेन्नियतम् ॥११९॥
वात्सरिककल्पपक्षे दिनानि यावन्ति वर्धितं प्रथमम् ।
तावन्ति वर्षशेषे प्रतिलोमं ह्रासयेत्तदयः ॥ १२० ॥
तेष्वष्टमापकेषु प्रातर्मापद्वयं समश्नीयात् ।
सायं च तावदह्नोर्मध्ये मासद्वयं शेषम् ॥ १२१ ॥

प्रथम तीन दिन समान मात्रा लेनी चाहिये । फिर चौथे दिनसे क्रमशः बढ़ाना चाहिये, जबतक ८ मापा (वर्तमान ६ मापा) न हो जाय । इससे अधिक न बढ़ाना चाहिये । प्रथम

२ रत्तीका प्रयोग करना चाहिये। फिर प्रथम वृद्धिमें ३ रत्ती (प्रथम ३ दिन २ रत्ती चौथे दिनसे छठे दिनतक प्रतिदिन ३ रत्ती) द्वितीय वृद्धिमें (७ वेंसे ९ वें दिनतक) ५ रत्ती और फिर प्रति ३ दिनमें ५ रत्ती बढ़ाना चाहिये। वर्षादिनके प्रयोगमें जितने दिन प्रथम बढ़कर ६ मासेकी मात्रा हुई है, उतने ही दिन पहिलेसे उसी क्रमसे कम करना चाहिये। उस पूर्वोक्त पूर्ण मात्राको दिनमें तीन बारमें इस भांति खाना चाहिये। प्रातःकाल १८ रत्ती, मध्यान्हमें १२ रत्ती और सायंकाल १८ रत्ती ॥ १८-१२१ ॥

अमृतसारलौहसेवनगुणाः।

एवं तदमृतमश्नन्कान्तिं लभते चिरस्थिरं देहम्।
सप्ताहत्रयमात्रात्सर्वरुजो हन्ति किं बहुना ॥१२२॥

इस प्रकार इस अमृतका सेवन करनेसे शरीरकी कांति बढ़ती और देह चिरकालके लिये दृढ़ हो जाता है। केवल २१ दिनके प्रयोगसे समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १२२ ॥

उपसंहारः।

आर्याभिरिह नवत्या सप्तविधीनां यथावदाख्यातम्।
अमतिविपर्ययसंशयशून्यमनुष्ठानमुपनीतम् ॥ १२३ ॥
मुनिरचितशास्त्रपारं गत्वा सारं ततः समुद्धृत्य।
निबबन्ध बान्धवानामुपकृतये कोऽपि षट्कर्मा॥१२४॥

इस प्रकार ९० आर्याछन्दोंमें लोहरसायनकी ७ विधियां (साध्यसाधनपरिमाणविधिः, स्थालीपाकविधिः, पुनटविधिः-प्रधाननिष्पत्तिः, पाकविधिः, अभ्रविधिर्भक्षणविधिश्च) ठीक कही गयी हैं। इसमें कोई बात ऐसी नहीं, जो बुद्धिके विपरीत अथवा संशयात्मक हो। यह महामान्य मुनि नागार्जुनरचित लौहशास्त्रका पूर्णतया अनुशील कर बन्धुओंकी उपकारकामनासे किसी षट्कर्मा ब्राह्मणने "अमृतसारनामक" निबन्ध लिखा है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

सामान्यलोहरसायनम्।

यत्र तत्रोद्भवं लौहं निःशेषं मारितं यदि।
त्रिफलाव्योषसंयुक्तं भक्षयेद्वलिनाशनम् ॥ १२५ ॥

कहींका लोहा ले विधिपूर्वक भस्म कर त्रिफला व त्रिकटु मिला विधिपूर्वक सेवन करनेसे वलीपलित (झुर्रियां, बालोंकी सफेदी आदि बुढ़ापेके चिह्न) नष्ट हो जाते हैं ॥ १२५ ॥

कान्तप्रशंसा।

सामान्याद् द्विगुणं चौण्ड्रं कलिङ्गोऽष्टगुणस्ततः।
तस्माच्छतगुणं भद्रं भद्राद्वज्रं सहस्रधा ॥ १२६ ॥
वज्रात्षष्टिगुणा पाण्डिर्निरविर्दशभिर्गुणैः।
ततः कोटिसहस्रं वा अयस्कान्तं महागुणम्॥१२७॥

सामान्य लोहसे चौण्ड्र द्विगुण, कलिङ्ग इससे अष्टगुण, उससे भद्र शतगुण, भद्रसे वज्र सहस्र गुण और वज्रसे पाण्डि साठगुण और उससे निरवि दशगुण तथा कान्तलोह उससे करोड़ों गुण अधिक गुणशाली अतएव महागुणवाला होता है ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

रसादिरसायनम्।

रसतस्ताम्रं द्विगुणं ताम्रात्कृष्णाभ्रकं द्विगुणम्।
पृथगेवैषां शुद्धिस्ताम्रस्य ततो द्विविधा ॥ १२८ ॥
पत्रीकृतस्य गन्धकयोगाद्वा मारणं तथा लवणैः।
आक्ते ध्मापितताम्रे निर्गुण्डीकल्ककाञ्जिकनिमग्ने॥१२९
यत्पतति गैरिकाभं तत्पिष्टं चार्धगन्धकं तदनु।
पुटपाकेन विशुद्धं शुद्धं स्यादभ्रकं तु पुनः ॥ १३० ॥
हिलमोचिमूलपिण्डे क्षिप्तं तदनु मार्दसंपुटे लिप्ते।
तीक्ष्णं दग्धं पिष्टमम्लाम्भसा साधु चन्द्रिकारहितम् ॥
रेचितताम्रेण रसः खल्वे घृष्ट्वा च पिण्डिका कार्या।
उत्स्वेद्य गृहसलिलेन निर्गुण्डीकल्केऽसकृच्छुद्धौ ॥१३२॥
एतत्सिद्धं त्रितयं चूर्णितताम्रार्द्धिकैः पृथग्युक्तम्।
पिप्पलिविडङ्गमरिचैः श्लक्ष्णं द्वित्रिमाषिकं भक्ष्यम्१३३
शूलाम्लपित्तश्वयथुग्रहणीयक्ष्मादिकुक्षिरोगेषु।
रसायनं महदेतत्परिहारो नियमतो नात्र ॥ १३४ ॥

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध ताम्र २ भाग, तथा शुद्ध अभ्रक ४ भाग (इस प्रकार तीनों अलग अलग शुद्ध) लेना चाहिये। इसमें ताम्र २ प्रकारसे शुद्ध किया जाता है। प्रथम प्रकार-ताम्रके पत्रोंके समान भाग गन्धक मिलाकर पुटद्वारा भस्म। द्वितीय प्रकार-लवणोंसे लिप्त ताम्रके पत्रोंको तपाकर सम्भालूके कल्क व काञ्जीमें बुझाना चाहिये। इस प्रकार काञ्जीमें गिरे हुए गैरिकके समान वर्णवाले ताम्रसे आधे परिमाणमें गन्धक मिलाकर पुटद्वारा भस्म। उपरोक्त दो विधियोंमेंसे किसी एकसे ताम्र शुद्ध कर ले तथा अभ्रकको ले हिलमोचिकाकी जड़के कल्कके पिण्डमें रखकर चूनेसे लिपे हुए मिट्टीके शराव सम्पुटमें रखना चाहिये। शराव सम्पुटमें विधिपूर्वक कपरमिट्टी कर गजपुटमें फूक देना चाहिये। स्वांग शीतल हो जानेपर निकाल कर काञ्जी मिलाकर घोट लेना चाहिये। इस प्रकार अभ्रक निश्चन्द्र हो जाता है। यही शुद्ध अभ्रक हुआ। तथा पारदशोधनकी विधि यह है कि-पद्धतिसे शुद्ध किये ताम्रसे समान भाग पारद मिला खरलमें घोट गोला बना लेना चाहिये। उस गोलेको काञ्जीमें स्वेदन कर सम्भालूके कल्कके साथ अनेक बार घोटना चाहिये। फिर इस गोलेसे (डमरू यन्त्र अथवा विद्याधर यन्त्रमें रखकर) पारद निकाल लेना चाहिये। यही शुद्ध पारद हुआ। इस प्रकार शुद्ध पारद १ भाग शुद्ध ताम्र २ भाग, शुद्ध अभ्रक ४ भाग तथा छोटी पीपल

वायविडंग, काली मिर्च प्रत्येक १ भाग ले चूर्ण कर सब एकमें घोटकर चूर्ण बना लेना चाहिये। इसे २ या ३ माशेकी मात्रासे खाना चाहिये। यह रसायन–शूल, अम्लपित्त, सूजन, ग्रहणी, यक्ष्मा और पेटके रोगोंको नष्ट करता है। यह महारसायन है। इसमें नियमतः कोई परहेज भी नहीं है ॥ १२८–१३४ ॥

ताम्ररसायनम्।

तनुपत्रीकृतं ताम्रं नैपालं गन्धकं समम्।
दत्त्वा चोर्ध्वमधो मध्ये स्थालिकामध्यसंस्थितम् ॥
कृत्वा स्वल्पपिधानेन स्थालीमध्ये पिधाय च।
शर्कराभक्तलेपेन लिप्त्वा सन्धिं तदूर्ध्वतः ॥१३६॥
वालुकापूरितस्थाल्यां पिहितायां पुनस्तथा।
सुलिप्तायां च यामैकमधो ज्वालां प्रदापयेत्॥१३७॥
तत आकृष्टताम्रस्य मृतस्य त्विह योजना।
अथ कर्षं गन्धकस्य वह्निस्थलोहपात्रगम् ॥ १३८ ॥
शिलापुत्रेण संमर्द्य द्रुतं घृष्टं पुनः पुनः।
कृत्वा देयं मृतं ताम्रं कर्षमानं ततः पुनः ॥ १३९ ॥
रसोऽम्लमथितः शुद्धस्तावन्मात्रः प्रदीयते।
ततस्तथैव संमर्द्य पुनराज्यं प्रदापयेत् ॥ १४० ॥
अष्टविन्दुकमात्रं च मर्दयेन्मूर्च्छितं यथा।
सर्वं स्यात्तत्समाकृष्य शिलापुत्रादितो दृढम्॥१४१॥
संहृत्यालम्बुषरसप्रसृतेन विलोडितम्।
पुनस्तथैव वह्निस्थलौहपात्रे विमर्दयेत् ॥ १४२ ॥
यावद् द्रवक्षयं पश्चादाकृष्य संप्रपेषितम्।
अलम्बुषारसेनैव गुडकं संप्रकल्पयेत् ॥ १४३ ॥
तत्पिण्डं वस्त्रविस्तीर्णे पिण्डे त्रिकटुजे पुनः।
वसनान्तरिते दत्त्वा पोट्टलीं कारयेद् बुधः॥१४४॥
ततस्तां पोट्टलीमाज्यमग्नां कृत्वा विधारिताम्।
सूत्रेण दण्डसंलग्नां पाचयेत्कुशलो भिषक् ॥१४५॥
यदा निष्फेनता चाज्ये पुटिका च दृढा भवेत्।
तदा पक्कं तमाकृष्य पञ्चगुञ्जातुलावृतम् ॥१४६॥
त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं तुल्यं प्रातः प्रयोजयेत्।
तक्रं स्यादनुपानं तु अम्लपित्तोच्छ्रये पुनः ॥१४७॥
त्रिफलैव समा देया कोष्णं वारि पिबेदनु।
सप्तमे दिवसे रक्तिवृद्धिस्ताम्रात्तु माषकम् ॥ १४८ ॥
यावत्प्रयोगश्च तथैवापकर्षः पुनर्भवेत्।
योगोऽयं ग्रहणीयक्ष्मापित्तशूलाम्लपित्तहा ॥ १४९ ॥
रसायनं चैतदिष्टं गुदकीलादिनाशनम्।
न चात्र परिहारोऽस्ति विहाराहारकर्मणि ॥१५०॥

नैपाली ताम्रके पतले पत्र और गन्धक आमलासार समान भाग लेना चाहिये। फिर बड़ी भंडियामें आधा गन्धक नीचे, बीचमें ताम्र तथा आधा गन्धक ऊपर रखना चाहिये। फिर एक छोटे शिकोरेको ले ताम्र व गन्धकके ऊपर ढक देना चाहिये और उसकी सन्धियाँ मिट्टी व भातके लेपसे बन्द कर देनी चाहिये। उसके ऊपर वालू भर बड़े ढक्कनसे हंड़ीका मुख बन्द कर ऊपरसे कपड़मिट्टी कर देनी चाहिये तथा हण्डीके नीचे भी कपरमिट्टी कर देनी चाहिये। जिससे हण्डी आंचसे फूट न जावे। कपड़मिट्टीके सूख जानेपर भंडिया चूल्हेपर चढ़ाकर नीचेसे ३ घण्टे तक आँच देनी चाहिये। फिर उसे स्वाङ्ग शीतल हो जानेपर उतार कर निकाल लेना चाहिये। इस प्रकार भस्मीभूत ताम्र १ तोला और शुद्ध गन्धक १ तोला ले गन्धकको लोहेके पात्रमें अग्निपर गरम करना चाहिये। गन्धक पिघल जानेपर उपरोक्त ताम्रभस्म १ तोला तथा काञ्जीसे शुद्ध पारद १ तोला मिलाकर घोटना चाहिये। खूब घुट जानेपर आठ बिन्दु घी छोड़ना चाहिये। जब सब मिल जावे, तब उसे निकाल लेना चाहिये। तथा मुसलीमें लगा हुआ भी खुरच लेना चाहिये। फिर इसे मुण्डीका रस ८ तोला मिलाकर घोटना चाहिये। फिर उसे अग्निपर चढे लौहपात्रमें छोड़कर उस समयतक घोटना चाहिये, जबतक कि द्रव्य क्षीण न हो जावे। फिर उसे निकाल पीसकर मुण्डीके ही रससे घोटकर एक गोली बना लेनी चाहिये। फिर उस गोलीको एक महीन कपड़ेमें लपेटना चाहिये और दूसरे कपडेमें गोलीके समान भाग ही मिलित सोंठ, मिर्च व छोटी पीपलका कल्क रखकर उसी कल्कमें गोलीवाली पोटली रखनी चाहिये। फिर इसी पोटलीको दोलायन्त्रकी विधिसे एक भंडियामें घी छोड़कर उसीमें एक डोरेमें बांधकर भंडियाके मुखपर बीचोंबीच रखे हुए डंडेमें बान्धकर लटका देनी चाहिये। पर यह ध्यान रहे कि पोटली घीमें डूबी रहे, पर भंडियाकी पेंदीमें बैठे नहीं, किन्तु हिलती रहे। इस प्रकार भंडिया चूल्हेपर चढाकर नीचेसे आँच देनी चाहिये। जब घीसे झाग उठने बन्द हो जावें, और गोलीकी पोटली दृढ हो जावे, तब उतार ठण्डा कर ताम्रगोलीको निकाल कर घोट लेना चाहिये। इस सिद्ध रसकी ५ गुञ्जा (वर्तमानकालके आधी गुञ्जासे १ गुञ्जातक) घी ५ रत्ती त्रिकटु और त्रिफलाकी प्रत्येक ओषधिका चूर्ण ५ गुञ्जा मिलाकर सेवन करना चाहिये। ऊपरसे मट्ठा पीना चाहिये। तथा अम्लपित्तमें केवल त्रिफलाका चूर्ण और गुनगुना जल ही देना चाहिये। सातवें सातवें दिन १ गुञ्जा बढ़ाना चाहिये। इसका प्रयोग १ माशे (६ रत्ती) तकका है। फिर इसी प्रकार कम करना चाहिये। यह योग, यक्ष्मा, ग्रहणी, पित्तशूल,

---

१ ताम्र व गन्धकको शराव सम्पुटमें रखकर बड़ी हाँडीमें रखना उत्तम होगा।

अम्लपित्त और अर्शको नष्ट करता तथा रसायन है । इसमें आहार व विहारमें कोई परहेज नहीं है ॥ १३५–१५० ॥

शिलाजतुरसायनम् ।

हेमाद्याः सूर्यसन्तप्ताः स्रवन्ति गिरिधातवः ।
जत्वाभं मृदु मृत्स्नाच्छं यन्मलं तच्छिलाजतु ॥१५१॥
अनम्लं चाकषायं च कटुपाकि शिलाजतु ।
नात्युष्णशीतं धातुभ्यश्चतुर्भ्यस्तस्य सम्भवः ॥१५२॥
हेम्नोऽथ रजतात्ताम्राद्वरं कृष्णायसादपि ।

सोना आदि पर्वतके धातु सूर्यकी गरमीसे तपकर जो लाखके समान मृदु, चिकना और स्वच्छ मल छोड़ते हैं, वही "शिलाजतु" कहा जाता है । शिलाजतु खट्टा तथा कषैला नहीं होता और सब रस रहते हैं । तथा पाकमें कडुआ होता है । तथा न अति गरम न अधिक ठण्डा ही होता है । तथा सोना चान्दी ताम्बा और लोहा इनसे वह निकलता है । इनमेंसे लोहसे निकलनेवाला ही उत्तम होता है ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

शिलाजतुभेदाः ।

मधुरं च सतिक्तं च जवापुष्पनिभं च यत् ॥१५३॥
विपाके कटु तिक्तं च तत्सुवर्णस्य निःस्रवम् ।
राजतं कटुकं श्वेतं स्वादु शीतं विपच्यते ॥ १५४॥
ताम्रान्मयूरकण्ठाभं तीक्ष्णोष्णं पच्यते कटु ।
यत्तु गुग्गुलुसङ्काशं तिक्तकं लवणान्वितम् ॥१५५॥
विपाके कटु शीतं च सर्वश्रेष्ठं तदायसम् ।
गोमूत्रगन्धः सर्वेषां सर्वकर्मसु यौगिकः ॥ १५६ ॥
रसायनप्रयोगेषु पश्चिमं तु विशिष्यते ।

सुवर्णसे निकला शिलाजतु मीठा, तिक्त, जवापुष्पके समान लाल, विपाकमें कडुआ तथा तिक्त होता है । चाँदीसे निकला शिलाजतु कडुआ, सफेद, मीठा तथा विपाकमें शीतल होता है । ताम्रका शिलाजतु मयूरकण्ठके समान नील, चमकदार, तीक्ष्ण, गरम तथा विपाकमें कडुआ होता है । लोहसे निकला हुआ शिलाजतु गुग्गुलके वर्णका, तिक्त, नमकीन तथा विपाकमें कडुआ तथा शीतल होता है । वही उत्तम होता है । सभी शिलाजतु गोमूत्र गंधयुक्त होते हैं तथा सब कामोंके लिये प्रयुक्त हो सकते हैं, पर रसायनप्रयोगोंमें लौहज ही उत्तम होता है ॥ १५३–१५६ ॥

प्रयोगविधिः परीक्षा च ।

यथाक्रमं वातपित्ते श्लेष्मपित्ते कफे त्रिषु ॥ १५७ ॥
विशेषेण प्रशस्यन्ते मला हेमादिधातुजाः ।
लौहकिट्टायते वह्नौ विधूमं दह्यतेऽम्भसि ॥ १५८ ॥
तृणाग्रे कृतं श्रेप्रमधो गलति तन्तुवत् ।
मलिनं यद्भवेत्तच्च क्षालयेत्केवलाम्भसा ॥ १५९ ॥
लौहपात्रेषु विधिना ऊर्ध्वीभूतं च संहरेत् ।
वातपित्तकफघ्नैस्तु निर्यूहैस्तत्सुभावितम् ॥ १६० ॥
वीर्योत्कर्षं परं याति सर्वैरेकैकशोऽपि वा ।
प्रक्षिप्योद्धृतमावानं पुनस्तत्प्रक्षिपेद्रसे ।
कोष्णे सप्ताहमेतेन विधिना तस्य भावना ॥१६१॥
तुल्यं गिरिजेन जले चतुर्गुणे भावनौषधं क्वाथ्यम् ।
तत्क्वाथे पादांशे पूतोष्णे प्रक्षिपेद्गिरिजम् ।
तत्समरसतां यातं संशुष्कं प्रक्षिपेद्रसे भूयः ॥१६३
पूर्वोक्तेन विधानेन लौहैश्चूर्णीकृतैः सह ।
तत्पीतं पयसा दद्याद्दीर्घमायुः सुखान्वितम् ॥१६४

सोनेका शिलाजतु वातपित्तमें, चान्दीका पित्तकफमें, ताम्रका कफमें और लोहेका शिलाजतु त्रिदोषमें हितकर है । उसकी प्रधान परीक्षा यह है कि अग्निमें छोड़नेसे लौहकिट्टके समान विना धुआँके जलता है । जलमें छोडनेसे प्रथम तैरता फिर डोरोंके समान विघल कर नीचे बैठता है । जो शिलाजतु मलिन हो, उसे उष्ण जलमें घोल छानकर लौहपात्रमें रखना चाहिये । जो ऊपर तैरता हुआ जमे, उसे निकाल लेना चाहिये । वही शुद्ध शिलाजतु हुआ (इसी विधिसे शिलाजतुके पत्थरोंसे भी शिलाजतु निकाली जाती है)। इसके अनन्तर वातपित्तकफनाशक दशमूल, तृणपञ्चमूल, पिप्पल्यादि द्रव्योंसे प्रत्येकसे अलग अलग अथवा मिलाकर भावना देनी चाहिये । इस प्रकार शिलाजतुकी शक्ति अधिक बढ जाती है । एक द्रव द्रव्यमें छोड़कर घोटना चाहिये । फिर उसे धूपमें रखना चाहिये । द्रव सूख जानेपर दूसरे पात्रमें रखा हुआ गुनगुना कषाय छोडना चाहिये । इस प्रकार जिन द्रवद्रव्योंसे भावना देनी हो, सबकेसे सात भावना देनी चाहिये । भावनार्थ क्वाथ बनानेके लिये शिलाजतुके समान औषध ले चतुर्गुण जल मिलाकर क्वाथ करना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर शिलाजतुमें मिलाना चाहिये और उस रसके सूख जानेपर और रस मिलाना चाहिये । इस प्रकार भावित शिलाजतु लौहभस्मके साथ दूधमें मिलाकर पीनेसे सुखयुक्त दीर्घ आयु प्रदान करता है ॥ १५७–१६४ ॥

शिलाजतुगुणाः ।

जराव्याधिप्रशमनं देहदार्ढ्यकरं परम् ।
मेधास्मृतिकरं धन्यं क्षीराशी तत्प्रयोजयेत् ॥१६५॥
प्रयोगः सप्त सप्ताहास्त्रयश्चैकश्च सप्तकः ।
निर्दिष्टस्त्रिविधस्तस्य परो मध्योऽवरस्तथा ॥१६६॥
मात्रा पलं त्वर्धपलं स्यात्कर्षं तु कनीयसी ।

यह वृद्धावस्था तथा रोगको दूर करनेवाला, देहको दृढ करनेवाला तथा मेधा और स्मरणशक्तिको बढानेवाला है ।

इसका प्रयोग करनेवाला दूधके साथ ही भोजन करे। इसका प्रयोग ७ सप्ताह अथवा ३ सप्ताह अथवा १ सप्ताहका है। तथा इसकी ४ तोला, २ तोला या १ तोला (वर्तमानसमयानुकूल मात्रा ४ रत्तीसे २ माशेतक) क्रमशः उत्तम, मध्यम और हीन मात्रा है ॥ १६५ ॥ १६६ ॥–

पथ्यापथ्यम्।

शिलाजतुप्रयोगेषु विदाहीनि गुरूणि च।
वर्जयेत्सर्वकालं च कुलत्थान्परिवर्जयेत् ॥ १६७ ॥
पयांसि शुक्तानि रसाः सयूषा-
स्तोयं समूत्रं विविधाः कषायाः।
आलोडनार्थे गिरिजस्य शस्ता-
स्ते ते प्रयोज्याः प्रसमीक्ष्य कार्यम् ॥१६८॥
चरकोक्तशिलाजतुनो विधानं सोपस्करं ह्येतत्।

शिलाजतुके प्रयोगोंमें जलन करनेवाले तथा गुरु अन्न और कुलथीका सदाके लिये त्याग कर देना चाहिये। तथा शिलाजतुके अनुपानमें दूध, सिरका, मांसरस, यूष, जल, गोमूत्र तथा अनेक (रोगीकी प्रकृतिके अनुकूल) प्रकारके क्वाथोंका प्रयोग करना चाहिये। यह चरकोक्त शिलाजतुका विधान आवश्यक अंग बढाकर लिखा गया है ॥ १६७ ॥ १६८ ॥–

शिवा गुटिका।

काले तु रवितापाढ्ये कृष्णायसजं शिलाजतु प्रवरम् १६९
त्रिफलारससंयुक्तं त्र्यहञ्च शुष्कं पुनः शुष्कम्।
दशमूलस्य गुडूच्या रसे बलायास्तथा पटोलस्य १७०॥
मधुकरसैर्गोमूत्रे त्र्यहं त्र्यहं भावयेत्क्रमशः।
एकाहं क्षीरेण तु तच्च पुनर्भावयेच्छुष्कम्।
सप्ताहं भाव्यं स्यात्क्वाथैरेषां यथालाभम् ॥ १७१ ॥
काकोल्यौ द्वे मेदे विदारियुग्मं शतावरी द्राक्षा।
ऋद्धियुगर्षभवीरामुण्डितिकाजीरकेऽशुमत्यौ च ॥१७२
रास्नापुष्करचित्रकदन्तीभकणाकलिङ्गचव्याब्दाः।
कटुकाशृङ्गीपाठा एतानि पलांशिकानि कार्याणि १७३
अब्द्रोणे साधितानां रसेन पादांशिकेन भाव्यानि।
गिरिजस्यैवं भावितशुद्धस्य पलानि दश षट् च॥१७४॥
द्विपलं च विश्वधात्र्योर्मागधिकायाश्च मरिचानाम्।
चूर्णं पलं विदार्यास्तालीसपलानि चत्वारि ॥ १७५ ॥
षोडश सितापलानि चत्वारि घृतस्य माक्षिकस्याष्टौ।
तिलतैलस्य द्विपलं चूर्णार्धपलानि पञ्चानाम् ॥ १७६ ॥
त्वक्क्षीरिपत्रत्वङ्नागैलानां च मिश्रयित्वा तु।
गिरिजस्य षोडशपलैर्गुडिकाःकार्यास्ततोऽक्षसमाः १७७
ताः शुष्का नवकुम्भे जातीपुष्पाधिवासिते स्थाप्याः।
तासामेका काले भक्ष्या पेयापि वा सततम् ॥ १७८ ॥
क्षीररसदाडिमरसाः सुरासवं मधु च शिशिरतोयानि।
आलोडनानि तासामनुपाने वा प्रशस्यन्ते ॥ १७९ ॥
जीर्णे लघ्वन्नपयो जाङ्गलनिर्यूहयूषभोजी स्यात्।
सप्ताहं यावदतः परं भवेत्सोऽपि सामान्यः ॥ १८० ॥
भुक्त्वापि भक्षितेयं यदृच्छया नावहेद्भयं किञ्चित्।
निरुपद्रवा प्रयुक्ता सुकुमारैः कामिभिश्चैव ॥ १८१ ॥

सूर्यकी किरणोंसे तपे हुए समयमें उत्तम लौह शिलाजतु ले त्रिफलाका रस मिलाकर तीन दिनतक भावना देनी चाहिये। फिर क्रमशः दशमूल, गुर्च, खरेटी, परवल, मौरेठीके रस तथा गोमूत्र प्रत्येकमें ३ तीन भावना देनी चाहिये। सूख जानेपर एक दिन दूधकी भावना देनी चाहिये। फिर ७ दिनतक नीचे लिखी ओषधियोंमें जो मिल सकें, उनकी भावना देनी चाहिये। भावनाकी ओषधियाँ–काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, विदारी, क्षीरविदारी, शतावरी, मुनक्का, ऋद्धि, वृद्धि, ऋषभक, ब्राह्मी, मुण्डी, सफेद जीरा, स्याह जीरा, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, रासन, पोहकरमूल, चीतकी जड़, दन्ती, गजपीपल, इन्द्रयव, चव्य, नागरमोथा, कुटकी, काकड़ाशिंगी व पाठा प्रत्येक द्रव्य एक पल लेकर एक द्रोण जलमें मिलाकर पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान शुद्ध शिलाजतु १६ पल (६४ तोला) छोड़ ७ दिनतक भावना देनी चाहिये। यद्यपि यहांपर एक वार कषाय कर छोड़ना लिखा है। पर बासी कषाय खट्टा होकर खराब हो जाता है, अतः प्रत्येक दिन ताजा कषाय ही छोड़ना चाहिये। अतः प्रत्येक द्रव्य प्रतिदिन १ पल न लेकर १ पलका सप्तमांश अर्थात् वर्तमान तौलसे ६ माशे ७ रत्ती और जल ३ सेर १०॥ छ० छोड़ पका चतुर्थांश शेष रख कपड़ेसे छानकर मिलाना चाहिये। इसप्रकार भावना समाप्त हो जानेपर नीचे लिखी ओषधियाँ मिलानी चाहियें। सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल, आंवला प्रत्येकका चूर्ण ८ तोला, विदारीकन्द ४ तोला, तालीशपत्र १६ तोला, मिश्री ६४ तोला, घी १६ तोला, शहद ३२ तोला, तिलतैल ८ तोला, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर प्रत्येक २ तोलेका चूर्ण मिला घोटकर १ तोलेकी मात्रा (वर्तमानकालके लिये १ माशेकी मात्रा) से गुटिका बना सुखाकर चमेलीके फूलोंसे अधिवासित नवीन घड़ेमें रखना चाहिये। इसकी एक मात्रा खाना या द्रवद्रव्य मिलाकर पीना चाहिये। इसके अनुपान या आलोड़नके लिये दूध, मांसरस, अनारका रस, शराब, शहद या ठण्डा जल काममें लाना चाहिये। औषधका परिपाक हो जानेपर हल्का अन्न, दूध, जांगल प्राणियोंके मांसरस या यूषके साथ खाना चाहिये। सात दिनतक यह नियम रखना चाहिये। इसके अनन्तर सामान्य भोजन करना चाहिये। भोजन करनेके

अनन्तर भी इस गुटिकाके खानेसे कोई हानि नहीं होती। सुकुमार प्रकृतिवाले बालक तथा कामी पुरुषोंको भी इससे कोई हानि नहीं होती ॥ १६९–१८१ ॥

शिवागुटिकागुणाः ।

संवत्सरप्रयुक्ता हन्त्येषा वातशोणितं प्रबलम् ।
बहुवार्षिकमपि गाढं यक्ष्माणं चाढयवातं च ॥ १८२॥
ज्वरयोनिशुक्रदोषप्लीहार्शःपाण्डुग्रहणिरोगान् ।
अश्ववमिगुल्मपीनसहिक्काकासारुचिश्वासान् ॥ १८३ ॥
जठरं श्वित्रं कुष्ठं पाण्डुं क्लैव्यं मदं क्षयं शोषम् ॥
उन्मादापस्मारौ वदनाक्षिशिरोगदान्सर्वान् ॥ १८४ ॥
आनाहमतीसारं सासृग्दरं कामलाप्रमेहांश्च ।
यकृदर्बुदानि विद्रधिं भगन्दरं रक्तपित्तं च ॥ १८५ ॥
अतिकार्श्यमतिस्थौल्यं स्वेदमथ श्लीपदं च विनिहन्ति ।
दंष्ट्राविषं समौलं गराणि च बहुप्रकाराणि ॥ १८६ ॥
मन्त्रौषधियोगादीन्विप्रयुतान्भौतिकान्भावान् ।
पापालक्ष्म्यौ चेयं शमयेद् गुडिका शिवा नाम्नी १८७॥
बल्या वृष्या धन्या कान्तियशःप्रजाकरी चेयम् ।
दद्यान्नृपवल्लभतां जयं विवादे मुखस्था च ॥ १८८ ॥
श्रीमान्प्रकृष्टमेधःस्मृतिबुद्धिबलान्वितोऽतुलशरीरः ।
पुष्ट्योजोवर्णेन्द्रियतेजोबलसम्पदादिसमुपेतः ॥१८९॥
वलिपलितरोगरहितो जीवेच्छरदां शतद्वयं पुरुषः ।
संवत्सरप्रयोगाद् द्वाभ्यां शतानि चत्वारि ॥ १९० ॥
सर्वामयजित्कथितं मुनिगणभक्ष्यं रसायनरहस्यम् १९१

समुद्रभूवामृतमन्थनोत्थः
स्वेदः शिलाभ्योऽमृतवद्गिरेः प्राक् ।
यो मन्दरस्यात्मभुवा हिताय
न्यस्तश्च शैलेषु शिलाजरूपी ॥ १९२ ॥
शिवागुडिकेति रसायन-
मुक्तं गिरिशेन गणपतये ।
शिववदनविनिर्गता यस्मा-
न्नाम्ना तस्माच्छिवागुडिकेति ॥ १९३ ॥

यह एक वर्ष सेवन करनेसे प्रबल वातरक्तको नष्ट करती है, तथा राजयक्ष्मा और ऊरुस्तंभ नष्ट करती है तथा ज्वर, योनिदोष, शुक्रदोष, प्लीहा, अर्श, पांडु और ग्रहणीरोग, वद, वमन, गुल्म, पीनस, हिक्का, कास, अरुचि, श्वास, उदर, सफेद कुष्ठ, नपुंसकता, मदात्यय, क्षय, शोष उन्माद, अपस्मार, मुखरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, आनाह, अतीसार, प्रदर, कामला, प्रमेह, यकृत्, अर्बुद, विद्रधि, भगन्दर, रक्तपित्त, अतिदुर्बलता, अतिस्थूलता, स्वेद, श्लीपद, दन्तविष, मूलविष, कृत्रिमविष, मंत्रौषधि आदिके प्रयोग, विरुद्धभोजनदोष, क्रिमिदोष, पाप तथा कुरूपता इससे नष्ट हो जाते हैं। यह सेवकके धन, कांति, यश और सन्तानको बढाती, बलकारक तथा उत्तम वाजीकरण है। मुखमें रखनेसे राजाओंको वश करती तथा विवादमें जय करती है। इसका सेवन करनेवाला श्री, मेधा, स्मृति, बुद्धि, बल, उत्तम शरीर, पुष्टि, ओज, वर्ण, इंद्रियशक्ति, तेज तथा सम्पत्ति आदिसे युक्त होकर वलीपलित रहित २०० वर्षतक जीता है। इतनी आयु केवल १ वर्षके प्रयोगसे होती है, दो वर्षके प्रयोग करनेसे ४०० वर्षकी आयु हो जाती है। समस्त रोगोंको नष्ट करनेवाला मुनियोंने यह परमोत्तम रसायन आविष्कृत किया है। इसमें शिलाजतुका प्रयोग मुख्य है। वह शिला जतु सर्व प्रथम समुद्र मंथन करते समय मन्दराचल पर्वतकी शिलाओंसे स्वेदरूपसे निकला था। उसे ब्रह्माजीने मानवजातिके हितार्थ पर्वतोंकी शिलाओंमें रख दिया था। यह "शिवागुटिका" रसायन श्रीशंकरजीने गणेशजीके लिये बताया। सर्व प्रथम शिवजीने इसे कहा, अतः इसे "शिवा गुटिका" कहते हैं ॥ १८२–१९३ ॥

अमृतभल्लातकी ।

सुपक्वभल्लातफलानि सम्यक्
द्विधा विदार्याढकसंमितानि ।
विपाच्य तोयेन चतुर्गुणेन
चतुर्थशेषे व्यपनीय तानि ॥ १९४ ॥
पुनः पचेत्क्षीरचतुर्गुणेन
घृतांशयुक्तेन घनं यथा स्यात् ।
सितोपलाषोडशभिः पलैस्तु
विमिश्र्य संस्थाप्य दिनानि सप्त ॥१९५॥
ततः प्रयोज्याग्निबलेन मात्रां
जयेद् गुदोत्थानखिलान्विकारान् ।
कचान्सुनीलान् घनकुञ्चिताग्रान्
सुपर्णदृष्टिं सुकुमारतां च ॥ १९६ ॥
जवं हयानां च मतंगजं बलं
स्वरं मयूरस्य हुताशदीप्तिम् ।
स्त्रीवल्लभत्वं लभते प्रजां च
नीरोगमब्दद्विशतानि चायुः ॥ १९७ ॥
न चान्नपाने परिहार्यमस्ति
न चातपे नाध्वनि मैथुने च ।
एको हि कालः सकलामयानां
राजा ह्ययं सर्वरसायनानाम् ॥ १९८ ॥
भल्लातकशुद्धिरिह प्रागिष्टचूर्णगुण्डनात् ।
घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं घृतस्य प्रस्थ इष्यते ॥ १९९ ॥

३ सेर १६ तोला मिलावाँ लेकर प्रथम ईंटके चूरेके साथ खूब रगड़ना चाहिये । फिर गरम जलसे धोकर साफ कर लेना चाहिये । फिर एक एक भल्लातकके दो दो टुकड़े कर चतुर्गुण जल (१२ सेर ६४ तो० द्रवद्वैगुण्यात् २५ सेर ९ छ० ३ तो०) में पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर क्वाथके बराबर दूध तथा घी १ सेर ९ छ० ३ तो० मिलाकर पकाना चाहिये । अवलेह सिद्ध हो जानेपर उतारकर ७ दिन तक उसे वैसे ही रखे रहना चाहिये । ७ दिनके अनंतर अग्निबलके अनुसार इसकी मात्रा सेवन करनी चाहिये । (इसकी मात्रा ६ माशेसे २ तोलेतक है) यह समग्र अर्शरोग नष्ट करता, बाल घने घुंघुराले तथा काले बनाता तथा गरुडके समान दृष्टि तथा सुकुमारता बढाता, घोड़ोंके समान वेगवान्, हाथियोंके समान बलवान्, मयूरके सदृश स्वर, अग्नि दीप्त करता तथा स्त्रियोंकी प्रियता और सन्तान तथा २०० वर्षकी नीरोग आयु प्रदान करता है । इसमें भोजन मैथुन तथा मार्ग चलने आदिका कोई परहेज नहीं है । यह समस्त रोगोंके लिये काल तथा समस्त रसायनोंका राजा है । इसमें भल्लातकशुद्धि[1] ईंटके चूरेमें रगड़कर की जाती है और दूध घीसे चौगुना छोड़ा जाता है । और घी १ प्रस्थ (द्रवद्वैगुण्यात् २ प्रस्थ–१ सेर ९ छटांक ३ तोला) छोड़ा जाता है ॥ १९४–१९९ ॥

इति रसायनाधिकारः समाप्तः ।

अथ वाजीकरणाधिकारः ।

पिप्पलीलवणोपेतौ बस्ताण्डौ क्षीरसर्पिषा ।
साधितौ भक्षयेद्यस्तु स गच्छेत्प्रमदाशतम् ॥ १ ॥
बस्ताण्डसिद्धे पयसि साधितानसकृत्तिलान् ।
यः खादेत्स नरो गच्छेत्स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ २ ॥

बकरेके अण्डकोषको दूधसे निकाले गये घीमें तलकर छोटी पीपल व नमक मिला सेवन करनेसे मनुष्य १०० स्त्रियोंके साथ मैथुन कर सकता है । इसी बकरेके अण्डकोषसे सिद्ध दूधसे भावित तिल खानेसे १०० स्त्रियोंके साथ मैथुन करनेकी शक्ति होती है ॥ १ ॥ २ ॥

विदारीचूर्णम् ।

चूर्णं विदार्याः सुकृतं स्वरसेनैव भावितम् ।
सर्पिःक्षौद्रयुतं लीढ्वा शतं गच्छेद्वराङ्गनाः ॥ ३ ॥

इसी प्रकार विदारीकन्दके चूर्णको विदारीकन्दके ही स्वरससे भावना देकर घी व शहद मिलाकर चाटनेसे सैकड़ों स्त्रियोंके साथ मैथुन करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

आमलकचूर्णम् ।

एवमामलकं चूर्णं स्वरसेनैव भावितम् ।
शर्करामधुसर्पिर्भिर्युक्तं लीढ्वा पयः पिबेत् ।
एतेनाशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यते ॥ ४ ॥

इसी प्रकार आंवलेके चूर्णमें आंवलेके स्वरसकी ही भावना दे शक्कर, घी और शहद मिलाकर चाटना चाहिये, ऊपरसे दूध पीना चाहिये । इससे ८० वर्षका बूढा भी जवानके समान मैथुनशक्तिसम्पन्न होता है ॥ ४ ॥

विदारीकल्कः ।

विदारीकन्दकल्कं तु घृतेन पयसा नरः ।
उदुम्बरसमं खादन्वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ५ ॥

विदारीकन्दका कल्क १ तोलेकी मात्रासे घी व दूधके साथ खानेसे वृद्ध भी जवानके सदृश होता है ॥ ५ ॥

स्वयंगुप्तादिचूर्णम् ।

स्वयंगुप्तागोक्षुरयोर्बीजचूर्णं सशर्करम् ।
धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत् ॥६॥

कौंचके बीज तथा गोखरूके बीजोंका चूर्ण शक्कर मिला धारोष्ण दूधके साथ पीनेसे मनुष्य क्षीण नहीं होता है ॥ ६ ॥

उच्चटाचूर्णम् ।

उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तममुच्यते ।
शतावर्युच्चटाचूर्णं पेयमेवं सुखार्थिना ॥ ७ ॥

इसी प्रकार केवल उच्चटा (श्वेतगुञ्जामूल) का चूर्ण अथवा शतावरी व उच्चटा दोनोंके चूर्णको दूधके साथ पीनेसे कामशक्ति बढती है ॥ ७ ॥

मधुकचूर्णम् ।

कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ।
पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः स ना भवेत् ॥८॥

१ तोला मौरेठीके चूर्णको घी व शहदमें मिला चाटकर ऊपरसे दूध पीनेसे मनुष्य नित्य वेगवान् होता है ॥ ८ ॥

गोक्षुरादिचूर्णम् ।

गोक्षुरकः क्षुरकः शतमूली
वानरिनागबलातिबला च ।

---

[1] भल्लातकका प्रयोग सावधानीसे करना चाहिये । बनाते समय इसके तैलके छींटे पड़ जाने या पकाते समय इसकी भाप लग जानेसे शोथ हो जाता है, तथा–खानेसे भी किसी किसीको शोथ हो जाता है । ऐसी अवस्थामें तिल और गरीका उबटन तथा खाना लाभदायक होता है । तथा इम्लीके पत्तेके क्वाथसे स्नान करना चाहिये ॥

चूर्णमिदं पयसा निशि पेयं
यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति ॥ ९ ॥

गोखुरू, तालमखाना, शतावरी, कौंचके बीज गङ्गेरन व कंघीके चूर्णको दूधके साथ रातमें उन्हें पीना चाहिये जिनके घरमें १०० स्त्रियां हैं ॥ ९ ॥

माषपायसः ।

घृतभृष्टो दुग्धमाषपायसो वृष्य उत्तमः ।

घीमें भूनकर उड़दकी दूधके साथ बनायी गयी खीर उत्तम वाजीकरण है ।

रसाला ।

दध्नः सारं शरच्चन्द्रसन्निभं दोषवर्जितम् ॥ १० ॥
शर्कराक्षौद्रमरिचैस्तुगाक्षीर्या च बुद्धिमान् ।
युक्त्या युक्तं ससूक्ष्मैलं नवे कुम्भे शुचौ पटैः॥११॥
मार्जिते प्रक्षिपेच्छीतं घृताढ्यं षष्टिकौदनम् ।
अद्यात्तदुपरिष्टाच्च रसालां मात्रया पिबेत् ।
वर्णस्वरबलोपेतः पुमांस्तेन वृषायते ॥ १२ ॥

उत्तम दहीके सार (ऊपरकी मलाई) में शक्कर, शहद, काली मिर्च, वंशलोचन और छोटी इलायचीका चूर्ण मिलाकर नये कपड़ेसे साफ किये घड़ेमें रखना चाहिये । ठंडा भात घी मिलाकर खाना चाहिये । ऊपरसे यह "रसाला" पीनी चाहिये । इससे मनुष्य वर्ण, स्वर और बलसे युक्त होकर वेगवान् होता है ॥ १०–१२ ॥

मत्स्यमांसयोगः ।

आर्द्राणि मत्स्यमांसानि शफरीर्वा सुभर्जिताः ।
तप्ते सर्पिषि यः खादेत्स गच्छेत्स्त्रीषु न क्षयम्॥१३

गीले मछलीके मांस अथवा छोटी मछलियाँ घीमें भूनकर जो खाता है, वह स्त्रीगमनसे क्षीण नहीं होता ॥ १३ ॥

नारसिंहचूर्णम् ।

शतावरीरजःप्रस्थं प्रस्थं गोक्षुरकस्य च ।
वाराह्या विंशतिपलं गुडूच्याः पञ्चविंशतिः ।
भल्लातकानां द्वात्रिंशच्चित्रकस्य दशैव तु ॥ १४ ॥
तिलानां शोधितानां च प्रस्थं दद्यात्सुचूर्णितम् ।
त्र्यूषणस्य पलान्यष्टौ शर्करायाश्च सप्ततिः ॥ १५ ॥
माक्षिकं शर्करार्धेन माक्षिकार्धेन वै घृतम् ।
शतावरीसमं देयं विदारीकन्दजं रजः ॥ १६ ॥
एतदेकीकृतं चूर्णं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ।
पलार्धमुपयुञ्जीत यथेष्टं चापि भोजनम् ॥ १७ ॥
मासिकमुपयोगेन जरां हन्ति रुजामपि ।
वलीपलितखालित्यमेहपाण्ड्वाद्यपीनसान् ॥ १८ ॥
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि तथाष्टावुदराणि च ।
भगन्दरं मूत्रकृच्छ्रं गृध्रसीं सहलीमकम् ॥ १९ ॥
क्षयं चैव महाश्वासान्पञ्च कासान्सुदारुणान् ।
अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंश्च पैत्तिकान्॥२०॥
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव संसृष्टान्सान्निपातिकान् ।
सर्वानर्शोगदान्हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २१ ॥
स काञ्चनाभो मृगराजविक्रम-
स्तुरङ्गमं चाप्यनुयाति वेगतः ।
स्त्रीणां शतं गच्छति सोऽतिरेकं
प्रकृष्टदृष्टिश्च यथा विहङ्गः ॥ २२ ॥
पुत्रान्सञ्जनयेद्वीरान्नरसिंहानिभांस्तथा ।
नारसिंहमिदं चूर्णं सर्वरोगहरं नृणाम् ॥ २३ ॥
वाराहीकन्दसंज्ञस्तु चर्मकारालुको मतः ।
पश्चिमे घृष्टिशब्दाख्यो वराहलोमवानिव ॥ २४ ॥

शतावरीका चूर्ण ६४ तोला, गोखरू ६४ तोला, वाराहीकन्दचूर्ण ८० तोला, गुर्च १०० तोला, भिलावां १२८ तोला, सोंठ, मिर्च, पीपल प्रत्येक ३२ तोला, विदारीकन्दका चूर्ण ६४ तोला सबका चूर्ण एकमें मिलाकर मिश्री २८० तोला, शहद १४० तोला, घी ७० तोला मिला एक चिकने घृतभावित घड़ेमें रखना चाहिये । इससे २ तोलेकी मात्रा (वर्तमानसमयमें ६ माशेसे १ तोला तक) प्रतिदिन खाना चाहिये । तथा यथारुचि भोजन करना चाहिये । इसके १ मासके सेवनसे वृद्धावस्था तथा रोग दूर हो जाते हैं । झुर्रियां, पलित, इन्द्रलुप्त, प्रमेह, पाण्डुरोग, पीनस अठारह प्रकारके कुष्ठ, ८ प्रकारके उदररोग, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, गृध्रसी, हलीमक, क्षय, महाश्वास, पांचों कास, अस्सी प्रकारके वातरोग, ४० प्रकारके पित्तरोग, २० प्रकारके कफरोग, द्वंद्वज तथा सान्निपातिक रोग तथा समस्त अर्शोरोग इसके सेवनसे इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे इन्द्रवज्रसे वृक्ष । इसका सेवन करनेवाला सोनेके समान कान्तिवाला, सिंहके समान पराक्रमी, घोड़ेके समान वेगवाला तथा सैकड़ों स्त्रियोंके साथ रमण करनेकी शक्तिवाला तथा पक्षियोंके सदृश दृष्टियुक्त होता है । इसके सेवनसे नृसिंहके समान वीर पुत्र उत्पन्न करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है । यह समस्त रोगोंको नष्ट करनेवाला "नारसिंह" चूर्ण है । "वाराहीकन्द" नाम चर्मकारालुका है, पश्चिममें इसे " घृष्टि " कहते हैं, इसके कन्दके ऊपर शूकरकेसे लोम होते हैं ॥ १४–२४ ॥

गोधूमाद्यं घृतम् ।

गोधूमाच्च पलशतं निष्क्वाथ्य सलिलाढके ।
पादावशेषे पूते च द्रव्याणीमानि दापयेत् ॥ २५ ॥
गोधूमं मुञ्जातफलं माषद्राक्षापरूषकम् ।
काकोली क्षीरकाकोली जीवन्ती सशतावरी ॥२६॥

अश्वगन्धा सखर्जूरा मधुकं त्र्यूषणं सिता ।
भल्लातकमात्मगुप्ता समभागानि कारयेत् ॥ २७ ॥
घृतप्रस्थं पचेदेकं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
मृद्वग्निना च सिद्धे च द्रव्याण्येतानि निःक्षिपेत्॥२८॥
त्वगेलापिप्पलीधान्यकर्पूरं नागकेशरम् ।
यथालाभं विनिक्षिप्य सिताक्षौद्रपलाष्टकम् ॥२९॥
शक्त्येक्षुदण्डेनालोड्य विधिवद्विनियोजयेत् ।
शाल्योदनेन भुञ्जीत पिबेन्मांसरसेन वा ॥ ३० ॥
केवलस्य पिबेदस्य पलमात्रां प्रमाणतः ।
न तस्य लिङ्गशैथिल्यं न च शुक्रक्षयो भवेत्॥३१॥
बल्यं परं वातहरं शुक्रसञ्जननं परम् ।
मूत्रकृच्छ्रप्रशमनं वृद्धानां चापि शस्यते ॥ ३२ ॥
पलद्वयं तदश्नीयाद्दशरात्रमतन्द्रितः ।
स्त्रीणां शतं च भजते पीत्वा चानुपिबेत्पयः ॥३३॥
अश्विभ्यां निर्मितं चैतद्गोधूमाद्यं रसायनम् ।
जलद्रोणे तु गोधूमक्वाथे तच्छेषमाढकम् ॥ ३४ ॥
मुञ्जातकस्य स्थाने तु तद्गुणं तालमस्तकम् ।
कल्कद्रव्यसमं मानं त्वगादेः साहचर्यतः ॥ ३५ ॥

गेहूँ ५ सेर, जल २५ सेर ९ छ० ३ तो० छोड़कर पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर क्वाथ तैयार करना चाहिये । उस क्वाथमें गेहूँ, मुञ्जातफल (मूजके बीज), उड़द, मुनक्का, फालसा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, शतावरी, असगन्ध, छुहारा, मौरेठी, सोंठ, मिर्च, पीपल, मिश्री, कौंचके बीज व भिलावां प्रत्येक १ तोले का कल्क तथा घी १ सेर ९ छ० ३ तो० और दूध ६ सेर ३२ तो० मिलाकर मन्द आंचसे पकाना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर दालचीनी, इलायची, छोटी पीपल, धनियां, कपूर, नागकेशर प्रत्येक एक तोलेका चूर्ण छोड़ना चाहिये, तथा मिश्री व शहद ३२ तो० (दोनों मिलाकर) छोड़ कर ईखके दण्डसे मिलाकर रखना चाहिये । इसे शालिके भातके साथ खाना अथवा मांसरसमें मिलाकर पीना चाहिये अथवा केवल घृत ४ तोलेकी मात्रासे पीवे । इसके सेवनसे लिङ्ग शिथिल नहीं होता । न शुक्र ही क्षीण होता है । यह बल तथा वीर्य बढाता और वायुको नष्ट करता है। तथा मूत्रकृच्छ्रको शान्त करता और वृद्धोंके लिये भी हितकर है । इसे ८ तोलेतककी मात्रामें १० दिनतक सावधानीसे सेवन करना चाहिये । इसे पीकर ऊपरसे दूध पीना चाहिये । यह "गोधूमादि" रसायन भगवान् अश्विनीकुमारोंने बनाया है । इसमें गेहूँका क्वाथ एक द्रोण (द्रवद्वैगुण्यात् २ द्रोण,) जलमें बनाना चाहिये, चतुर्थांश क्वाथ रखना चाहिये । मुञ्जातकके न मिलनेपर ताड़की वाली छोड़नी चाहिये । दालचीनी आदिका मान भी साहचर्यसे कल्कद्रवकी भांति प्रत्येक १ तोला लेना चाहिये ॥ २५–३५ ॥

शतावरीघृतम् ।

घृतं शतावरीगर्भं क्षीरे दशगुणे पचेत् ।
शर्करापिप्पलीक्षौद्रयुक्तं तद् वृष्यमुच्यते ॥ ३६ ॥

शतावरीका कल्क तथा घृतसे दशगुण दूध मिलाकर घी पकाना चाहिये । घी सिद्ध हो जानेपर उतार छान शक्कर व छोटी पीपलका प्रक्षेप उचित मात्रामें छोड़कर सेवन करना चाहिये । यह उत्तम वाजीकरण है ॥ ३६ ॥

गुडकूष्माण्डकम् ।

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ।
प्रस्थं घृतस्य तैलस्य तस्मिंस्तप्ते प्रदापयेत्॥ ३७ ॥
पत्रत्वग्धान्यकव्योषजीरकैलाद्वयानलम् ।
ग्रन्थिकं चव्यमातङ्गपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ ३८ ॥
शृङ्गाटकं कशेरुं च प्रलम्बं तालमस्तकम् ।
चूर्णीकृतं पलांशं च गुडस्य च तुलां पचेत् ॥३९॥
शीतीभूते पलान्यष्टौ मधुनः सम्प्रदापयेत् ।
कफपित्तानिलहरं मन्दाग्नीनां च शस्यते ॥ ४० ॥
कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम् ।
प्रमदासु प्रसक्तानां ये च स्युः क्षीणरेतसः ॥ ४१॥
क्षयेण च गृहीतानां परमेतद्भिषग्जितम् ।
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां हन्ति छर्दिमरोचकम्॥४२॥
गुडकूष्माण्डकं ख्यातमश्विभ्यां समुदाहृतम् ।
खण्डकूष्माण्डवत्पात्रं स्विन्नकूष्माण्डकाद्द्रवः ॥४३॥

छिलके व बीजरहित पेठा उबाल रस निचोड़ अलग रखना चाहिये । फिर गायका घी ६४ तो० वा तिल तैल ६४ तो० मिलाकर पूर्वोक्त विधिसे स्विन्न ५ सेर पेठा भूनना चाहिये । जब पेठा अच्छी तरह भुन जावे, अर्थात् सुर्खी आजाय और सुगन्ध उठने लगे, उस समय वही पेठेका रस तथा ५ सेर गुड़ (गुड़ पुराना होना चाहिये । पर आज कल इसे मिश्री छोड़कर बनाते हैं) मिला छानकर छोड़ देना चाहिये और उस समयतक पकाना चाहिये जबतक खूब गाढा न हो जाय । फिर तेजपात, दालचीनी, धनियां, त्रिकटु, जीरा, छोटी व बड़ी इलायची, चीतकी जड़, पिपरामूल, चव्य, गजपीपल, सोंठ, सिंहाड़ा, कशेरू, ताड़की वाली प्रत्येक ४ तोले चूर्णको छोड़कर उतार लेना चाहिये । तथा ठण्डा हो जानेपर शहद ३२ तोला मिलाना चाहिये । यह कफ, पित्त और वायुको नष्ट करता तथा मन्दाग्निवालोंके लिये हितकर है । तथा कृशपुरुषोंको पुष्ट करता और उत्तम वाजीकरण है । स्त्रीगमनसे जो क्षीण होरहे हैं, अथवा जो क्षयसे पीड़ित हैं, उनके लिये यह

उत्तम औषध है । तथा यह कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, छर्दि तथा अरुचिको नष्ट करता है । इस "गुड़कूष्मांडक" रसायनका आविष्कार भगवान् अश्विनीकुमारोंने किया है । यहां स्विन्नकूष्मांडकका ही द्रव खण्डकूष्माण्डकी तरह १ आढक अथवा जितना निकले लेना चाहिये । इसकी मात्रा २ तोलेसे ४ तोले तक ॥ ३७-४३ ॥

सामान्यवृष्यम् ।

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृंहणं गुरु ।
हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद् वृष्यमुच्यते ॥ ४४ ॥

जितने द्रव्य, मीठे, चिकने, जीवन, बृंहण, गुरु तथा मनको प्रसन्न रखनेवाले हैं, वे सब "वृष्य" हैं ॥ ४४ ॥

लिंगवृद्धिकरा योगाः ।

भल्लातकबृहतीफलदाडिमफलवल्कसाधितं कुरुते ।
लिङ्गं मर्दनविधिना कटुतैलं वाजिलिङ्गाभम् ४५॥
कनकरसमसृणवर्तितहयगन्धामूलविश्वपर्युषितम् ।
माहिषमिह नवनीतं गतबीजे कनकफलमध्ये ॥४६॥
गोमयगाढोद्वर्तितपूर्वं पश्चादनेन संलिप्तम् ।
भवति हयलिङ्गसदृशं लिङ्गं कठिनाङ्गनादयितम् ४७

भिलावां, बड़ी कटेरीके फल और अनारके फलकी छालके कल्कसे सिद्ध कडुआ तैल मर्दन करनेसे लिङ्ग घोड़ेके लिङ्गके समान स्थूल होता है । इसी प्रकार धतूरके फलके बीज निकालकर उसी खाली फलमें धतूरेके ही रससे महीन पिसी असगन्ध की जड़ और सोंठ तथा भैंसीका मक्खन तीनों मिलाकर रखना चाहिये । बासी हो जानेपर लिङ्गमें पहिले गायके गोबरके उबटन कर इसका लेप करना चाहिये । इससे लिङ्ग घोड़ेके लिङ्गके सदृश स्थूल अतएव स्त्रियोंके लिये प्रेम पात्र हो जाता है ॥ ४५-४७ ॥

अश्वगन्धादितैलम् ।

अश्वगन्धावरीकुष्ठमांसीसिंहीफलान्वितम् ।
चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत् ।
स्तनलिङ्गकर्णपालिवर्धनं म्रक्षणादिदम् ॥ ४८ ॥

असगन्ध, शतावरी, कूठ, जटामांसी तथा छोटी कटेरीके फलोंका कल्क और चतुर्गुण दूध मिलाकर सिद्ध तिलतैल मालिश करनेसे स्तन, लिङ्ग और कर्णपालियोंको बढाता है ॥ ४८ ॥ *

*वराहवसायोगः—" मेदसा क्षौद्रयुक्तेन वराहस्य प्रलेपितम् । लिङ्गं स्निग्धं रतान्तेऽपि स्तब्धतां न प्रमुञ्चति ॥ "

शूकरकी चर्बीको शहदके साथ मिलाकर लिङ्गमें लेप करनेसे मैथुनके बाद भी लिङ्गकी स्तब्धता नहीं मिटती ।

स्तम्भनम्—" बीजं बृहत्करञ्जस्य कृतमन्तः सुपारदम् । हेम्ना सुवेष्टितं न्यस्तं वदने बीजधृङ् मतम् ॥ "—

भल्लातकादिलेपः ।

भल्लातकबृहतीफलनलिनीदलसिन्धुजलशूकैः ।
माहिषनवनीतेन च करम्बितैः सप्तदिनमुषितैः ॥४९
मूलेन हयगन्धाया माहिषमलमर्दितपूर्वमथ ।
लिप्तं भवति लघुकृतरासभलिङ्गं ध्रुवं पुंसाम् ॥५०॥

भिलावाँ, बड़ी कटेरीके फल, कमलिनीके पत्ते, सेंधानमक व जोंकका कल्क कर भैंसीके मक्खनमें मिला ७ दिन रखकर प्रथम लिङ्गमें भैंसके गोबरसे उबटन कर असगन्धकी जड़से इसका लेप करना चाहिये । इससे मनुष्योंका लिङ्ग गधेके लिङ्गसे भी मोटा हो जाता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अन्ये योगाः ।

नीलोत्पलसितपङ्कजकेशरमधुशर्करावलिप्तेन ।
सुरते सुचिरं रमते दृढलिङ्गो भवति नाभिविवरेण ॥५१॥
सिद्धं कुसुम्भतैलं भूमिलताचूर्णमिश्रितं कुरुते ।
चरणाभ्यङ्गेन रतेर्बीजस्तम्भाद् दृढं लिङ्गम् ॥ ५२ ॥
सप्ताहं छागभवसलिलस्थं करभवारुणीमूलम् ।
गाढोद्वर्तनविधिना लिङ्गस्तम्भं तथा दृढं कुरुते ॥५३॥
गोरेकोन्नतशृङ्गत्वग्भवचूर्णेन धूपितं वस्त्रम् ।
परिधाय भजति ललनां नैकाण्डो भवति हर्षितः ॥५४॥

'नील कमल, सफेद कमल,' नागकेशर, शहद और शक्कर मिलाकर लेप करनेसे अधिक समयतक मैथुन करनेकी शक्ति प्राप्त होती और लिङ्ग दृढ होता है । यह लेप नाभिके ऊपर करना चाहिये । इसी प्रकार सूखे केंचुओंका कल्क छोड़कर सिद्ध किया गया कुसुम्भका तैल पैरमें मालिश करनेसे वीर्यस्तम्भ तथा लिङ्ग दृढ होता है । इसी प्रकार बकरेके मूत्रमें ७ दिनतक भावित इन्द्रायणकी जड़के चूर्णका लेप करनेसे लिङ्ग दृढ तथा वीर्य स्तब्ध होता है । इसी प्रकार गायके एक बड़े सींगकी त्वचाके चूर्णसे धूपित वस्त्र पहिन कर मैथुन करनेसे मैथुनेच्छा शान्त नहीं होती ॥ ५१-५४ ॥

कुप्रयोगजषांढ्यचिकित्सा ।

समतिलगोक्षुरचूर्णं छागीक्षीरेण साधितं समधु ।
भुक्तं क्षपयति पाण्ढ्यं यज्जनितं कुप्रयोगेण ॥५५॥

—लताकरञ्जके बीजमें शुद्ध पारद भरकर ऊपरसे सोनेके पत्रसे मढवा देना चाहिये । इसको मुखमें रखकर मैथुन करनेसे वीर्यपात नहीं होता ।

अपरं स्तम्भनम्—"आजं तूष्ट्रीक्षीरं गव्यघृतं चरणयुगललेपेन । स्तम्भयति पुरुषबीजं योगोऽयं यामिनीं सकलाम् " ॥

बकरीका दूध, ऊँटिनीका दूध और गायका घृत तीनों एकमें मिला पैरोंमें लेप कर मैथुन कर समग्र रात वीर्यपात नहीं होता ॥ यह तीनों प्रयोग कुछ पुस्तकोंमें हैं, कुछमें नहीं ।

योगजवराङ्गबद्धं मथितेन क्षालितं हरति ।
उन्मुखगोशृङ्गोद्भवलेपो ध्वजभङ्ग हृत्प्रोक्तः ॥५६॥

तिल और गोखुरूका चूर्ण समान भाग ले बकरीके दूधमें पका ठण्ढाकर शहद मिला खानेसे कुप्रयोग (दुष्टौषध अथवा हस्तक्रियादि) से उत्पन्न नपुंसकता नष्ट होती है । इसी प्रकार कुप्रयोगज नपुंसकता मट्ठेसे धोने तथा ऊर्ध्वमुख शृंगके चूर्णको मट्ठेमें मिलाकर लेप करनेसे नष्ट होती है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अथ मुखगन्धहरो योगः ।

कुष्ठैलवालुकैलामुस्तकधन्याकमधुकजः कवलः ।
अपहरति पूतिगन्धं रसोनमदिरादिजं गन्धम् ॥ ५७ ॥

कूठ, एलुवा, इलायची, नागरमोथा, धनियां तथा मौरेठीके चूर्ण अथवा क्वाथका कवल धारण करनेसे मुखसे आनेवाली लहसुन, शराब आदिकी दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है ॥ ५७ ॥

अधोवातचिकित्सा ।

क्षौद्रेण बीजपूरत्वग्लीढाधोवातगन्धनुत् ॥ ५८ ॥

बिजौरे निम्बूकी छालके चूर्णको शहदके साथ चाटनेसे अधोवातज दुर्गन्ध नष्ट होती है ॥ ५८ ॥

इति वाजीकरणाधिकारः समाप्तः ।

अथ स्नेहाधिकारः ।

स्नेहविचारः ।

सर्पिस्तैलं वसा मज्जा स्नेहेषु प्रवरं मतम् ।
तत्रापि चोत्तमं सर्पिः संस्कारस्यानुवर्तनात् ॥ १ ॥
केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् ।
देयं बहुकफे चापि व्योषक्षारसमायुतम् ॥ २ ॥
तथा धीस्मृतिमेधाग्निकांक्षिणां शस्यते घृतम् ।
ग्रन्थिनाडीक्रिमिश्लेष्ममेदोमारुतरोगिषु ॥ ३ ॥
तैलं लाघवदार्ढ्यार्थं क्रूरकोष्ठेषु देहिषु ।
वातातपाध्वभारस्त्रीव्यायामक्षीणधातुषु ॥ ४ ॥
रूक्षक्लेशासहात्यग्निवातावृतपथेषु च ।
शेषौ वसन्ते सन्ध्यस्थिमर्मकोष्ठरुजासु च ।
तथा दग्धाहतभ्रष्टयोनिकर्णशिरोरुजि ॥ ५ ॥
तैलं प्रावृषि वर्षान्ते सर्पिरन्त्यौ तु माधवे ।
साधारणर्तौ स्नेहं पिबेत्कार्यवशादिह ॥ ६ ॥

स्नेहोंमें घी, तैल, चर्बी तथा मज्जा उत्तम हैं । इनमें भी घी सबसे उत्तम है, क्योंकि घीसंस्कारका अनुवर्तन (अर्थात् घी जिन द्रव्योंके साथ सिद्ध किया जाता है, उनके गुण उसमें आ जाते हैं और अपने भी गुण बने रहते हैं, अतः) करता है । पैत्तिक रोगोंमें केवल घृत, वातिकमें नमक मिलाकर और कफजमें सोंठ, मिर्च, पीपल और क्षार मिलाकर देना चाहिये । तथा बुद्धि, स्मरणशक्ति, मेधा और अग्निकी इच्छा रखनेवालोंके लिये घी हितकर है । ग्रन्थि, क्रमि, नाड़ीव्रण, कफ, मेद तथा वायुके रोगोंमें तथा लघुता और दृढताकी इच्छा रखनेवालों तथा क्रूर कोष्ठवालोंके लिये तैल हितकर होता है । वायु, धूप, मार्गगमन, भार उठाने, स्त्रीगमन अथवा व्यायामसे जिनके धातु क्षीण हो गये हैं, तथा क्लेशको न सह सकनेवाले, तथा तीक्ष्णाग्नि और वायुसे आवृत मार्गवालोंके लिये वसा और मज्जा हितकर है । उनमेंसे वसाका प्रयोग सन्धि, अस्थि, मर्म और कोष्ठकी पीड़ामें तथा जले, आहत (चोट युक्त) और योनि, कान व शिरकी पीड़ामें भी करना चाहिये । तथा वर्षाऋतुमें तैल, शरदृतुमें घृत और वसन्तऋतुमें मज्जाका प्रयोग करना चाहिये । तथा आवश्यकता वश सभी ऋतुओंमें साधारण समयमें सब स्नेह प्रयुक्त किये जा सकते हैं ॥ १–६ ॥

स्नेहसमयः ।

वातपित्ताधिको रात्रावुष्णे चापि पिबेन्नरः ।
श्लेष्माधिको दिवा शीते पिबेच्चामलभास्करे ॥ ७ ॥

वातपित्ताधिक मनुष्य तथा उष्णकालमें भी रात्रिमें स्नेहपान करे तथा कफाधिक मनुष्यको और शीतकालमें दिनमें सूर्यके निर्मल रहनेपर ही स्नेहपान करना चाहिये ॥ ७ ॥

स्नेहार्हा तदनर्हा वा ।

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचिन्तकाः ।
वृद्धा बाला बलकृशा रूक्षक्षीणास्त्ररेतसः ॥ ८ ॥
वातार्तस्यन्दतिमिरदारुणप्रतिबोधिनः ।
स्नेह्या न त्वतिमन्दाग्नितीक्ष्णाग्निस्थूलदुर्बलाः ॥९॥
ऊरुस्तम्भातिसारामगलरोगगरोदरैः ।
मूर्च्छाछर्द्यरुचिश्लेष्मतृष्णामद्यैश्च पीडिताः ॥ १० ॥
आमप्रसूता युक्ते च नस्ये वस्तौ विरेचने ।

जिनका स्वेदन तथा संशोधन करना है, तथा जो मद्यपान, स्त्रीगमन तथा व्यायाममें लगे रहते हैं, तथा अधिक चिन्ता करनेवाले, वृद्ध, बालक, निर्बल, पतले, रूक्ष, क्षीणरक्त, क्षीणशुक्र, वायुसे पीड़ित, स्यन्द, तिमिरसे पीड़ित तथा अधिक जागरण करनेवाले पुरुष स्नेहनके योग्य हैं । तथा अतिमन्दाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, स्थूल, दुर्बल, ऊरुस्तम्भ, अतिसार, आमदोष, गलरोग, कृत्रिम विष, उदररोग, मूर्छा, छर्दि, अरुचि, तथा कफजतृष्णा और मद्यपानसे पीड़ित पुरुष स्नेहपानके अयोग्य हैं । तथा जिस स्त्रीको गर्भपात हुआ है अथवा जिन्होंने वस्ति, नस्य अथवा विरेचन लिया है, उनके लिये स्नेहन निषिद्ध है ॥ ८–१० ॥–

स्नेहविधिः ।

स्नेहसात्म्यः क्लेशसहो दृढः काले च शीतले ॥११॥
अच्छमेव पिबेत्स्नेहमच्छपानं हि शोभनम् ।
पिबेत्संशमनं स्नेहमन्नकाले प्रकाङ्क्षितः ॥ १२ ॥
शुद्ध्यर्थं पुनराहारे नैशे जीर्णे पिबेन्नरः ।

जिसे स्नेहका अभ्यास है तथा जो स्नेहव्यापत्तिको सहन कर सकता है और दृढ है, उसे तथा शीत कालमें केवल स्नेह पीना चाहिये । केवल स्नेहपान ही उत्तम है । दोषोंको शान्त करनेके लिये संशमन स्नेह भूख लगनेपर भोजनके समय पीना चाहिये । तथा शुद्धिके लिये रात्रिका आहार पच जानेपर पीना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥

मात्रानुपाननिश्चयः ।

अहोरात्रमहः कृत्स्नं दिनार्धं च प्रतीक्षते ॥ १३ ॥
उत्तमा मध्यमा ह्रस्वा स्नेहमात्रा जरां प्रति
उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमे ॥ १४ ॥
जघन्यस्य पलार्धेन स्नेहकाथ्यौषधेषु च ।
जलमुष्णं घृते पेयं यूषस्तैलेऽनुशस्यते ॥ १५ ॥
वसामज्ज्ञोस्तु मण्डः स्यात्सर्वेषूष्णमथाम्बु वा ।
भल्लाते तौवरे स्नेहे शीतमेव जलं पिबेत् ॥ १६ ॥

दिनरातमें हजम होनेवाली स्नेहमात्रा "उत्तम" केवल दिनभरमें हजम होनेवाली "मध्यम" तथा आधे दिनमें हजम होनेवाली स्नेहमात्रा "हीन" मात्रा कही जाती है । स्नेह तथा क्वाथ्य औषधियोंकी मात्रा क्रमशः उत्तम १ पल (४ तोले), मध्यम ३ कर्ष (३ तोले), हीन २ कर्ष (२ तोले) है । तथा घृतके अनन्तर गरम जल, तैलके अनन्तर यूष तथा वसा और मज्जाके अनन्तर मण्ड अथवा सबके अनन्तर गरम जल ही पीना चाहिये । तथा भल्लातकतैल और तुवरकतैलमें शीतल जल ही पीना चाहिये ॥ १३-१६ ॥

स्नेहव्यापत्तिचिकित्सा ।

स्नेहपीतस्तु तृष्णायां पिबेदुष्णोदकं नरः ।
एवं चाप्यप्रशाम्यन्त्यां स्नेहमुष्णाम्बुनोद्धरेत् ॥१७॥
मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वा यस्य स्नेहो न जीर्यति ।
विष्टभ्य वापि जीर्येत्तं वारिणोष्णेन वामयेत् ॥१८॥
ततः स्नेहं पुनर्दद्याल्लघुकोष्ठाय देहिने ।
जीर्णाजीर्णविशङ्कायां पिबेदुष्णोदकं नरः ॥१९॥
तेनोद्गारो भवेच्छुद्धो रुचिश्चान्ने भवेत्प्रति ।
भोज्योऽन्नं मात्रया पास्यन्श्वः पिबन्पीतवानपि ।
द्रवोष्णमनभिष्यन्दि नातिस्निग्धमसङ्करम् ॥२०॥

स्नेहपान करनेवालोंको प्यासकी अधिकतामें गरम ही जल पीना चाहिये, यदि इस प्रकार शान्ति न हो, तो गरम जल अधिक पीकर वमन कर डालना चाहिये । इसी प्रकार जिसका स्नेह मिथ्याचार या अधिक होनेके कारण हजम न होता हो, अथवा ठहर कर हजम होता हो, उसे भी गुनगुना जल पिलाकर वमन करा देना चाहिये । कोष्ठ हलका हो जानेपर फिर स्नेह देना चाहिये तथा स्नेह हजम हुआ या नहीं ऐसी शंकामें गरम जल पीना चाहिये । गरम जल पीनेसे डकार शुद्ध आती है और अन्नपर रुचि होती है, तथा जिसे स्नेह कल पिलाना है या आज पिया है या कल पी चुका है, उसे मात्रासे द्रव (पतला), उष्ण, अनभिष्यन्दि (कफको बढाकर छिद्रोंको न भर देनेवाला) तथा न अधिक चिकना और न कई अन्न मिले हुए भोजन करना चाहिये ॥ १७-२० ॥

स्नेहमर्यादा ।

त्र्यहावरं सप्तदिनं परन्तु
स्निग्धः परं स्वेदयितव्य इष्टः ।
नातः परं स्नेहनमादिशन्ति
सात्म्यीभवेत्सप्तदिनात्परं तु ॥ २१ ॥
मृदुकोष्ठस्त्रिरात्रेण स्निह्यत्यच्छोपसेवया ।
स्निह्यति क्रूरकोष्ठस्तु सप्तरात्रेण मानवः ॥ २२ ॥

कमसे कम तीन दिन (मृदुकोष्ठमें) अधिकसे अधिक ७ दिन (क्रूरकोष्ठमें) स्नेहन कर स्वेदन करना चाहिये । इससे अधिक स्नेहन नहीं करना चाहिये । क्योंकि ७ दिनके बाद स्नेह सात्म्य हो जाता है । मृदुकोष्ठ पुरुष अच्छस्नेहपान कर ३ दिनमें और क्रूर कोष्ठवाले ७ दिनमें सम्यक् स्निग्ध हो जाते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

वमनविरेचनसमयः ।

स्निग्धद्रवोष्णधन्वोत्थरसभुक्स्वेदमाचरेत् ।
स्निग्धस्त्र्यहं स्थितः कुर्याद्विरेकं वमनं पुनः ॥ २३ ॥
एकाहं दिनमन्यच्च कफमुत्क्लेश्य तत्करैः ।

स्नेहन हो जानेपर स्नेहयुक्त, द्रव, उष्ण, जांगल प्राणियोंका मांस भोजन करता हुआ ३ दिनतक स्वेदन करे । इस प्रकार ३ दिन ठहर कर विरेचन देना चाहिये और यदि वमन कराना हो, तो एक दिन और ठहर अर्थात् चौथे दिन कफको बढानेवाले पदार्थ खिला कफ बढाकर वमन कराना चाहिये ॥ २३ ॥-

स्निग्धातिस्निग्धलक्षणम् ।

वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम् ॥२४॥
स्नेहोद्वेगः क्लमः सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः ।
अतिस्निग्धे तु पाण्डुत्वं घ्राणवक्त्रगुदस्रवाः ॥२५॥

१-पर ७ दिनमें भी जिसे ठीक स्नेहन न हो, उसे बाद भी स्नेहपान करना चाहिये । जैसा कि वृद्ध वाग्भटने लिखा है-
" त्र्यहमच्छं मृदौ कोष्ठे क्रूरे सप्तदिनं भवेत् ।
सम्यक्स्निग्धोऽथवा यावदतः सात्म्यी भवेत्परम् ॥"

ठीक ठीक स्नेहन हो जानेपर वायुका अनुलोमन, अग्निदीप्त, मल ढीला व चिकना तथा स्नेहसे उद्वेग और ग्लानि होती है । ठीक स्नेहन न होनेपर इससे विपरीत लक्षण होते हैं । स्नेहनके अतियोगसे पाण्डुता तथा नासिका, मुख और गुदसे स्राव होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अस्निग्धातिस्निग्धचिकित्सा ।

रूक्षस्य स्नेहनं कार्यमतिस्निग्धस्य रूक्षणम् ।
श्यामाककोरदूषान्नतक्रपिण्याकसक्तुभिः ॥ २६ ॥

रूक्षतामें (स्नेहके अयोगमें) स्नेहन तथा अतिस्निग्धके लिये सांवा कोदोंका भात, मट्ठा, तिलकी खली और सत्तू खिलाकर रूक्षण करना चाहिये ॥ २६ ॥

सद्यःस्नेहाः ।

बालवृद्धादिषु स्नेहपरिहारासहिष्णुषु ।
योगानिमाननुद्वेगान्सद्यःस्नेहान्प्रयोजयेत् ॥ २७ ॥

स्नेहके नियमोंको न पालन कर सकनेवालों तथा बालकों व वृद्धोंके लिये उद्वेग न करनेवाले तथा तत्काल स्नेहन करनेवाले इन योगोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ २७ ॥

स्नेहनयोगाः ।

भृष्टे मांसरसे स्निग्धा यवागूः स्वल्पतण्डुला ।
सक्षौद्रा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहनमुच्यते ॥२८ ॥

भूने मांसरसमें थोड़ेसे चावलोंकी यवागू बना स्नेह मिला शहदके साथ सेवन करनेसे तत्काल स्नेहन होता है ॥ २८ ॥

पाञ्चप्रसृतिकी पेया ।

सर्पिस्तैलवसामज्जातण्डुलप्रसृतैः शृता ।
पाञ्चप्रसृतिकी पेया पेया स्नेहनमिच्छता ॥ २९ ॥

घी, तैल, वसा, मज्जा तथा चावल प्रत्येक एक प्रसृत (८ तोला) छोड़कर बनायी गयी (तथा उपयुक्त जल मिला कर) पेया सद्यः स्नेहन करती है, इसे " पाञ्चप्रसृतिकी पेया " कहते हैं ॥ २९ ॥

योगान्तरम् ।

सर्पिष्मती बहुतिला तथैव स्वल्पतण्डुला ।
सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहनमुच्यते ॥३०॥
शर्कराघृतसंसृष्टे दुह्याद्गां कलशेऽथवा ।
पाययेदच्छमेतद्धि सद्यः स्नेहनमुच्यते ॥ ३१ ॥

अधिक तिल, थोड़े चावल और घी मिलाकर (तथा उपयुक्त जलमें) बनायी गयी यवागू गरम गरम पीनेसे तत्काल स्नेहन होता है । अथवा शक्कर, व घी दोहनीमें छोड़ ऊपर छन्ना रख गाय दुहकर तत्काल पीनेसे सद्य स्नेहन होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

स्नेहविचारः ।

ग्राम्यानूपौदकं मांसं गुडं दधि पयस्तिलान् ।
कुष्ठी शोथी प्रमेही च स्नेहने न प्रयोजयेत् ॥३२ ॥
स्नेहैर्यथास्वं तान्सिद्धैः स्नेहयेदविकारिभिः ।
पिप्पलीभिर्हरीतक्या सिद्धैस्त्रिफलया सह ॥ ३३ ॥

कुष्ठ, शोथ तथा प्रमेहसे पीड़ित पुरुषोंके लिये ग्राम्य, आनूप या औदकमांस, गुड़, दही, दूध व तिलका प्रयोग स्नेहनके लिये न करना चाहिये । उनका उनके रोगोंको शान्त करनेवाली ओषधियों, पीपल, हर्र, त्रिफला, आदिसे सिद्ध, विकार न करनेवाले स्नेहोंसे स्नेहन करना चाहिये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

उपसंहारः ।

स्नेहमग्रे प्रयुञ्जीत ततः स्वेदमनन्तरम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नस्य संशोधनमथान्तरम् ॥ ३४ ॥

पहिले स्नेहन करना चाहिये, फिर स्वेदन करना चाहिये । स्नेहन, स्वेदन हो जानेपर संशोधन, वमन विरेचन, करना चाहिये ॥ ३४ ॥

इति स्नेहाधिकारः समाप्तः ।

अथ स्वेदाधिकारः ।

सामान्यव्यवस्था ।

वातश्लेष्मणि वाते वा कफे वा स्वेद इष्यते ।
स्निग्धरूक्षस्तथा स्निग्धो रूक्षश्चाप्युपकल्पितः ॥१॥
व्याधौ शीते शरीरे च महान्स्वेदो महाबले ।
दुर्बले दुर्बलः स्वेदो मध्यमे मध्यमो मतः ॥ २ ॥
आमाशयगते वाते कफे पक्वाशयाश्रये ।
रूक्षपूर्वो हितः स्वेदः स्नेहपूर्वस्तथैव च ॥ ३ ॥

वातकफमें स्निग्ध रूक्ष, केवल वातमें स्निग्ध तथा केवल कफमें रूक्ष स्वेद करना हितकर है । तथा शीतजन्य तथा बलवान् रोग और बलवान् शरीरमें महान् स्वेद और दुर्बलमें हीन तथा मध्यममें मध्य स्वेद हितकर है । तथा आमाशयगत वायुमें पहिले रूक्ष स्वेद फिर स्निग्ध स्वेद करना चाहिये । इसी प्रकार पक्वाशयगत कफमें पाहिले स्निग्ध स्वेद करना चाहिये । अर्थात् आमाशय कफका स्थान है, अतः कफकी शान्तिके लिये पाहिले रूक्ष स्वेद करके ही स्निग्ध स्वेद करना चाहिये । इसी प्रकार पक्वाशय वायुका स्थान होनेसे वहांपर पहुँचे कफकी चिकित्सा करनेके लिये पहिले स्थानीय वायुकी शान्तिके लिये स्निग्ध स्वेद करके ही रूक्ष स्वेद करना चाहिये ॥ १–३ ॥

अस्वेद्याः ।

वृषणौ हृदयं दृष्टी स्वेदयेन्मृदु वा न वा ।
मध्यमं वङ्क्षणौ शेषमङ्गावयवमिष्टतः ।

न स्वेदयेदतिस्थूलरूक्षदुर्बलमूर्च्छितान् ॥ ४ ॥
स्तम्भनीयक्षतक्षीणविषमद्यविकारिणः ।
तिमिरोदरवीसर्पकुष्ठशोषाढ्यरोगिणः ॥ ५ ॥
पीतदुग्धदधिस्नेहमधून्कृतविरेचनान् ।
भ्रष्टदग्धगुदग्लानिक्रोधशोकभयार्दितान् ॥ ६ ॥
क्षुत्तृष्णाकामलापाण्डुमेहिनः पित्तपीडितान् ।
गर्भिणीं पुष्पितां सूतां मृदुर्वात्ययिके गदे ॥ ७ ॥

अण्डकोश हृदय और नेत्रोंका स्वेदन करना ही न चाहिये । अथवा अधिक आवश्यकता होनेपर मृदु स्वेदन करना चाहिये । वङ्क्षणसन्धिमें मध्य तथा शेष अवयवोंमें यथेष्ट स्वेदन करना चाहिये । अतिस्थूल, रूक्ष, दुर्वल, मूर्छित, स्तम्भनीय, क्षत क्षीण, विष तथा मद्यविकारवाले, तिमिर, उदर, विसर्प, कुष्ठ, शोष, ऊरुस्तम्भवाले, तथा जिन्होंने दूध, दही, स्नेह या शहद पिया है, अथवा जिन्होंने विरेचन लिया है, तथा जिनकी गुदा भ्रष्ट या दग्ध है, तथा ग्लानि, क्रोध, शोक या भयसे तथा भूख, प्यास, कामला, पाण्डु, प्रमेह और पित्तसे पीड़ित तथा गर्भिणी, रजस्वला और प्रसूता स्त्रियां स्वेदनके अयोग्य हैं । अधिक आवश्यकता होनेपर इनका मृदु स्वेदन करना चाहिये ॥ ४-७ ॥

अनाग्नेयः स्वेदः ।

स्वेदो हितस्त्वनाग्नेयो वाते मेदःकफावृते ।
निर्वातं गृहमायासो गुरुप्रावरणं भयम् ॥ ८ ॥
उपनाहाहवक्रोधभूरिपानक्षुधातपाः ।
स्वेदयन्ति दशैतानि नरमग्निगुणादृते ॥ ९ ॥

मेद तथा कफसे आवृत वायुमें अनाग्नेय स्वेद हितकर है । वातरहित स्थान, परिश्रम, भारी रजाई, भय, पुल्टिस, युद्ध, क्रोध, अधिक मद्यपान, भूख और धूप यह दश "अनाग्नेय स्वेद" अर्थात् अग्निके विना ही स्वेदन करते हैं ॥ ८ ॥९ ॥

सम्यक्स्विन्नलक्षणम् ।

शीतशूलव्युपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे ।
संजाते मार्दवे स्वेदे स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ १० ॥

शीत और शूलके शान्त हो जाने, जकड़ाहट और भारीपन नष्ट हो जाने और शरीरके मृदु हो जानेपर स्वेदन बन्द कर देना चाहिये ॥ १० ॥

अतिस्विन्नलक्षणं चिकित्सा च ।

स्फोटोत्पत्तिः पित्तरक्तप्रकोपो
मदो मूर्च्छा भ्रमदाहौ क्लमश्च ।
अतिस्वेदे सन्धिपीडा तृषा च
क्रियाः शीतास्तत्र कुर्याद्विधिज्ञः ॥ ११ ॥

अतिस्वेदन हो जानेपर फफोले पित्तरक्तका प्रकोप, नशा, मूर्छा, चक्कर, दाह, ग्लानि तथा सन्धियोंकी पीड़ा और प्यास उत्पन्न होती है । इसमें विद्वानको शीतल क्रिया करनी चाहिये ॥ ११ ॥

स्वेदप्रयोगविधिः ।

सर्वान्स्वेदान्निवाते तु जीर्णान्ने चावचारयेत् ।
येषां नस्यं विधातव्यं बस्तिश्चापि हि देहिनाम् ॥१२
शोधनीयास्तु ये केचित्पूर्वं स्वेद्यास्तु ते मताः ।
पश्चात्स्वेद्या हृते शल्ये मूढगर्भानुपद्रवाः ॥ १३ ॥
सम्यक्प्रजाता काले च पश्चात्स्वेद्या विजानता ।
स्वेद्याः पश्चाच्च पूर्वं च भगन्दर्यर्शसस्तथा ॥ १४ ॥

समस्त स्वेद निवातस्थानमें तथा अन्न पच जानेपर करना चाहिये । तथा जिन्हें नस्य या बस्ति देना है, अथवा जिनका शोधन करना है, उनका पहिले ही स्वेदन करना चाहिये तथा मूढगर्भाके शल्य निकल जाने और कोई उपद्रव न होनेपर बादमें स्वेदन करना चाहिये तथा जिसके यथोक्त समयपर सुखपूर्वक बालक उत्पन्न हुआ है, उसका भी बादमें स्वेदन करना चाहिये । भगन्दर और अर्शवालोंको शस्त्रक्रियाके पहिले तथा अन्तमें भी स्वेदन करना चाहिये ॥ १२-१४ ॥

स्वेदाः ।

तप्तैः सैकतपाणिकांस्यवसनैः स्वेदोऽथवाङ्गारकै-
र्लेपाद्वातहरैः सहाम्ललवणस्नेहैः सुखोष्णैर्भवेत् ।
एवं तप्तपयोऽम्बुवातशमनक्वाथादिसेकादिभि-
स्तप्ते तोयनिषेचनोद्भववृहद्बाष्पैः शिलादौ क्रमात् १५
तापोपनाहद्रवबाष्पपूर्वाः
स्वेदास्ततोऽन्त्यप्रथमौ कफे स्तः ।
वायौ द्वितीयः पवने कफे च
पित्तोपसृष्टे विहितस्तृतीयः ॥ १६ ॥

गरम की हुई बालूकी पोटली, हाथ, कांस्यपात्र, कपड़ा, अंगार अथवा वातहर पदार्थ, काञ्जी, नमक, स्नेह मिलाकर गरम किया लेप अथवा गरम जल, दूध अथवा वातनाशक क्वाथादिका सेक अथवा पत्थरको गरम कर ऊपरसे वातनाशक क्वाथ अथवा जल छोड़कर उठी हुई भाप इनमेंसे यथायोग्य स्वेदन करना चाहिये । सामान्यतः ताप, उपनाह, द्रव और बाष्प भेदसे स्वेद ४ प्रकारका है । उनमें ताप और बाष्प कफमें, उपनाह वायुमें तथा पित्तयुक्त कफ वा वायुमें द्रव स्वेद हितकर है ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति स्वेदाधिकारः समाप्तः ।

अथ वमनाधिकारः ।

सामान्यव्यवस्था ।

स्निग्धस्विन्नं कफे सम्यक्संयोगे वा कफोल्वणे ।
श्वोवम्यमुत्क्लिष्टकफं मत्स्यमांसतिलादिभिः ॥ १ ॥
यथाविकारं विहितां मधुसैन्धवसंयुताम् ।
कोष्ठं विभज्य भैषज्यमात्रां मन्त्राभिमन्त्रिताम्॥ २ ॥

कफज तथा कफप्रधान संयोगजव्याधिमें ठीक ठीक स्नेहन, स्वेदन कर पहिले दिन कफकारक मछलियाँ मांस और तिल आदि खिला कफ बढाकर दूसरे दिन प्रातःकाल रोगके अनुसार बनायी गयी औषधमात्रामें शहद व सेंधानमक मिला मंत्रद्वारा अभिमंत्रितकर रोगीको पिलाना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

मन्त्रः ।

"ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः ।
ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसङ्घाश्च पान्तु ते ॥ ३ ॥
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा ।
सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते" ॥ ४ ॥

यह मंत्र सार्थक है । मंत्रार्थ-ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, इंद्र, भूमि, चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि, ऋषि, ओषधियां और भूतगण तुम्हारी रक्षा करें । तथा यह औषध ऋषियोंके लिये रसायन, देवताओंके लिये अमृत तथा उत्तम नागोंके लिये सुधाके समान तुम्हें गुणकारी हो ॥ ३ ॥ ४ ॥

वमनौषधपाननियमः ।

पूर्वाह्णे पाययेत्पीतो जानुतुल्यासने स्थितः ।
तन्मना जातहृल्लासप्रसेकश्छर्दयेत्ततः ॥ ५ ॥
अंगुलीभ्यामनायस्तनालेन मृदुनाथवा ।

वमनकारक औषध प्रातःकाल पिलाना चाहिये । तथा पीलेनेपर घुटनेके बराबर ऊँचे आसनपर वमन करनेके विचारसे बैठना चाहिये । फिर मिचलाई तथा मुखसे पानी आनेपर वमन करना चाहिये । यदि इस प्रकार वमन न हो, तो अंगुली डालकर अथवा मृदु नालसे वमन करना चाहिये ॥ ५ ॥-

वमनकरा योगाः ।

वृषेन्द्रयवसिन्धूत्थवचाकल्कयुतं पिबेत् ।
यष्टिकषायं सक्षौद्रं तेन साधु वमत्यलम् ॥ ६ ॥
तण्डुलसलिलानिष्पिष्टं यः पीत्वा वमति पूर्वाह्णे ।
फलिनीवल्कलमुष्णं हरति गरं पित्तकफजं च ॥७॥
क्षौद्रलीढं ताम्ररजो वमनं गरदोषनुत् ॥ ८ ॥
आटरूषं वचां निम्बं पटोलं फलिनीत्वचम् ।
काथयित्वा पिबेत्तोयं वान्तिकृन्मदनान्वितम् ॥ ९ ॥

मौरेठीके काथमें अडूसा, इन्द्रयव, सेंधानमक व बचका कल्क और शहद मिलाकर पीनेसे ठीक वमन होता है । इसी प्रकार प्रियंगुकी छाल चावलके जलमें पीस गरम कर गुनगुना २ पीनेसे कृत्रिम विष व पित्तकफज रोग शान्त होते हैं और वमन ठीक होता है । तथा ताम्रभस्मको शहदके साथ चाटकर वमन करनेसे गरदोष (कृत्रिमविष) नष्ट होता है । इसी प्रकार अडूसाका पञ्चांग, बच, नीम, परवल व प्रियंगुकी छालका क्वाथ बना मैनफल मिला पीनेसे वमन होता है ॥ ६-९ ॥

वमनार्थं क्वाथमानम् ।

क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके ।
चतुर्भागावशिष्टं तु वमनेष्ववचारयेत् ॥ १० ॥

१६ तो० क्वाथ्य द्रव्य ले जल ६ सेर ३२ तोला मिलाकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर वमनके लिये काममें लाना चाहिये ॥ १० ॥

निम्बकषायः ।

निम्बकषायोपेतं फलिनीगदमदनमधुकासिन्धूत्थम् ।
मधुयुतमेतद्वमनं कफतः पूर्णाशये सदा शस्तम् ॥११॥

नीमकी पत्ती व छालके काढेमें प्रियङ्गु, कूठ, मैनफल, मौरेठी व सेंधानमकका कल्क और शहद मिला पीकर वमन करना कफपूर्ण कोष्ठवालेको सदा हितकर होता है ॥ ११ ॥

वमनद्रव्याणि ।

फलजीमूतकेक्ष्वाकुकुटजाः कृतवेधनः ।
धामार्गवश्च संयोज्याः सर्वथा वमनेष्वमी ॥ १२ ॥

वमनके लिये मैनफल, बन्दाल, कडुई तोम्बी, कुड़ेकी छाल, कडुई तोरई और अर्रा तरोईका सब प्रकार (क्वाथ, कल्क, चूर्ण, अवलेह आदिका) प्रयोग करना चाहिये ॥ १२ ॥

सम्यग्वमितलक्षणम् ।

क्रमात्कफः पित्तमथानिलश्च
यस्यैति सम्यग्वमितः स इष्टः ।
हृत्पार्श्वमूर्धेन्द्रियमार्गशुद्धौ
तनोर्लघुत्वेऽपि च लक्ष्यमाणे ॥ १३ ॥

जिसके कफ, पित्त व वायु क्रमशः आते हैं, हृदय, पसलियां, मस्तक और इन्द्रियां तथा मार्ग शुद्ध होते हैं, तथा शरीर हल्का होता है, उसे ठीक वमित समझना चाहिये ॥ १३ ॥

दुर्वमितलक्षणम् ।

दुश्छर्दिते स्फोटककोठकण्डू-
वक्त्राविशुद्धिर्गुरुगात्रता च ।
तृण्मोहमूर्च्छानिलकोपनिद्रा-
बलादिहानिर्वमितेऽतिविद्यात् ॥ १४ ॥

द्विगुण त्रिफलाक्वाथ अथवा दूधके साथ पीनेसे शीघ्र विरेचन होता है ॥ १५ ॥

सम्यग्विरिक्तलिंगम् ।

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसम्प्रसादौ
लघुत्वमूर्जोऽग्निरनामयत्वम् ।
प्राप्तिश्च विट्पित्तकफानिलानां
सम्यग्विरिक्तस्य भवेत्क्रमेण ॥ १६ ॥

ठीक विरेचन हो जानेपर शरीरके समस्त स्रोतस् शुद्ध, इन्द्रियां प्रसन्न, शरीर हल्का, अग्नि बलवान्, आरोग्यता तथा क्रमशः मल, पित्त, कफ और वायुका आगमन होता है ॥ १६ ॥

दुर्विरिक्तलिंगम् ।

स्याच्छ्लेष्मपित्तानिलसंप्रकोपः
सादस्तथाग्नेर्गुरुता प्रतिश्या ।
तन्द्रा तथा छर्दिररोचकश्च
वातानुलोम्यं न च दुर्विरिक्ते ॥ १७ ॥

ठीक विरेचन न होनेपर कफपित्त और वायुका प्रकोप, अग्निमान्द्य, भारीपन, जुखाम, तन्द्रा, वमन तथा अरुचि होती है। और वायुका अनुलोमन नहीं होता ॥ १७ ॥

अतिविरिक्तलक्षणम् ।

कफास्रपित्तक्षयजानिलोत्थाः
सुप्त्यङ्गमर्दक्लमवेपनाद्याः ।
निद्राबलाभावतमः प्रवेशाः
सोन्मादहिक्काश्च विरेचितेऽति ॥ १८ ॥

विरेचनका अतियोग होनेपर कफ, रक्त व पित्तकी क्षीणतासे बढे वायुके रोग, सुप्ति, अङ्गमर्द, ग्लानि, शरीरकम्प, निद्रानाश, बलनाश तथा नेत्रोंके सामने अँधेरा छा जाना, उन्माद और हिक्का आदिरोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १८ ॥

पथ्यनियमः ।

मन्दाग्निमक्षीणमसाद्विरिक्तं
न पाययेत्तद्दिवसे यवागूम् ।
विपर्यये तद्दिवसे तु सायं
पेयाक्रमो वान्तवदिष्यते तु ॥ १९ ॥
यथाणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैः
सन्धुक्ष्यमाणो भवति क्रमेण ।
महान्स्थिरः सर्वसहस्तथैव
शुद्धस्य पेयादिभिरन्तरग्निः ॥ २० ॥

विरेचन हो जानेके अनन्तर जिसकी अग्नि दीप्त नहीं हुई [illegible] क्षीण नहीं है, उसे उस दिन पथ्य न देना चाहिये । [illegible] होनेपर उसी दिनसे वमनके अनुसार पेयादिक्रम सायंकालसे प्रारम्भ कर देना चाहिये । जिस प्रकार थोड़ी अग्नि थोड़े थोड़े तृण या गोबर आदिसे धीरे धीरे बढ़ानेसे बहुत समय तक रहनेवाली तथा सब कुछ जला देनेकी सामर्थ्य युक्त हो जाती है । इसी प्रकार शुद्ध पुरुषकी अन्तराग्नि पेयादि सेवन करनेसे दीप्त हो जाती है ॥ १९ ॥ २० ॥

यथावस्थं व्यवस्था ।

कषायमधुरैः पित्ते विरेकः कटुकैः कफे ।
स्निग्धोष्णलवणैर्वायावप्रवृत्ते च पाययेत् ॥ २१ ॥
उष्णाम्बु स्वेदयेच्चास्य पाणितापेन चोदरम् ।
उत्थानेऽल्पे दिने तस्मिन्भुक्त्वान्येद्युः पुनः पिबेत् ॥
अदृढस्नेहकोष्ठस्तु पिबेदूर्ध्वं दशाहतः ।
भूयोऽप्युपस्कृततनुः स्नेहस्वेदैर्विरेचनम् ॥ २३ ॥
यौगिकं सम्यगालोच्य स्मरन्पूर्वमनुक्रमम् ।
दुर्बलः शोधितः पूर्वमल्पदोषः कृशो नरः ।
अपरिज्ञातकोष्ठस्तु पिबेन्मृद्वल्पमौषधम् ॥ २४ ॥
रूक्षबह्वनिलक्रूरकोष्ठव्यायामसेविनाम् ।
दीप्ताग्नीनां च भैषज्यमविरेच्यैव जीर्यति ॥ २५ ॥
तेभ्यो वस्तिं पुरा दद्यात्ततः स्निग्धं विरेचनम् ।
अस्निग्धे रेचनं स्निग्धं रूक्षं स्निग्धेऽतिशस्यते ॥२६

पित्तमें कषैले तथा मधुर द्रव्योंसे, कफमें कटु द्रव्योंसे वायुमें चिकने, गर्म और नमकीन द्रव्योंसे विरेचन देना चाहिये । इस प्रकार दस्त न आनेपर ऊपरसे गरम जल पिलाना चाहिये। तथा हाथोंको गरम कर पेटपर फिराना चाहिये । उस दिन कम दस्त आनेपर दूसरे दिन फिर विरेचन देना चाहिये । पर जो पुरुष दृढ तथा स्निग्धकोष्ठ न हो, उसे दश दिनके बाद फिर स्नेहन, स्वेदनसे शरीर ठीक कर तथा पूर्वके क्रमको ध्यानमें रखते हुए ठीक ठीक विचार कर विरेचन देना चाहिये । दुर्बल पुरुष, पूर्वशोधित, अल्पदोष तथा कृश पुरुष और अपरिज्ञात कोष्ठवालेको पहिले मृदु व अल्पमात्र औषध देना चाहिये। तथा रूक्ष, अधिक वायु, क्रूरकोष्ठ तथा व्यायाम करने वालोंको विना विरेचन किये ही औषध हजम हो जाती है। अतः ऐसे लोगोंको प्रथम स्नेहवस्ति देकर फिर स्निग्ध विरेचन देना चाहिये । जो रूक्ष हैं, उन्हें स्निग्ध विरेचन तथा जो अधिक स्निग्ध हैं, उन्हें रूक्ष विरेचन देना चाहिये। जिसको स्नेहका अभ्यास है, उसे पहिले रूक्षण कर फिर स्नेहन करना चाहिये, तब विरेचन देना चाहिये ॥ २१-२६ ॥

अतियोगचिकित्सा ।

विरूक्ष्य स्नेहसात्म्यं तु भूयः स्निग्धं विरेचयेत् ।
पद्मकोशीरनागाह्वचन्दनानि प्रयोजयेत् ॥ २७ ॥
अतियोगे विरेकस्य पानालेपनसेचनैः ।
सौवीरपिष्टाम्रवल्कलनाभिलेपोऽतिसारहा ॥ २८ ॥

विरेचनके अतियोगमें पीने, लेप तथा सिञ्चनके लिये पञ्चाख, खश, नागकेशर और चन्दनका प्रयोग करना चाहिये । तथा काञ्जीमें पिसी आमकी छालका नाभिपर लेप करनेसे विरेचन बन्द होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

अविरेच्याः ।

आविरेच्या बालवृद्धश्रान्तभीतनवज्वराः ।
अल्पाग्न्यधोगपित्तास्रक्षतपाय्वतिसारिणः ॥ २९ ॥
सशल्या स्थापितक्रूरकोष्ठातिस्निग्धशोषिणः ।
गर्भिणी नवसूता च तृष्णार्तोऽजीर्णवानपि ॥३०॥

बालक, वृद्ध, थके हुए, डरे, नवज्वरवाले, अल्पाग्नि तथा अधोगामी रक्तपित्तवाले तथा जिनकी गुदामें व्रण है, तथा अतीसारवाले, सशल्य तथा जिन्हें आस्थापन वस्ति दी गयी है, तथा क्रूरकोष्ठवाले अतिस्निग्ध, राजयक्ष्मावाले, गर्भिणी, नवप्रसूता तथा अजीर्णी यह सब विरेचनके अयोग्य हैं, इन्हें विरेचन न करना चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥

इति विरेचनाधिकारः समाप्तः ।

अथानुवासनाधिकारः ।

वातोल्बणेषु दोषेषु वाते वा बस्तिरिष्यते ।
यथोचितात्पादहीनं भोजयित्वानुवासयेत् ॥ १ ॥
न चाभुक्तवते स्नेहः प्रणिधेयः कथञ्चन ।
सूक्ष्मत्वाच्छून्यकोष्ठस्य क्षिप्रमूर्ध्वमथोत्पतेत् ॥२॥

वातप्रधान दोषोंमें तथा केवल वायुमें वस्ति देना चाहिये और भोजनका जैसा अभ्यास हो, उससे चतुर्थांश कम भोजन कराकर वस्ति देना चाहिये । विना भोजन कराये स्नेहवस्ति न देना चाहिये । क्योंकि स्नेह सूक्ष्म होनेसे शून्यकोष्ठवाले पुरुषके शीघ्र ही ऊपर आ जाता है ॥ १ ॥ २ ॥

स्नेहमात्राक्रमौ ।

षट्पली च भवेच्छ्रेष्ठा मध्यमा त्रिपली भवेत् ।
कनीयसी सार्धपला त्रिधा मात्रानुवासने ॥ ३ ॥
प्राग्देयमाद्ये द्विपलं पलार्ध-
वृद्धिर्द्वितीये पलमक्षवृद्धिः ।
कर्षद्वयं वा वसुमाषवृद्धि-
र्बस्तौ तृतीये क्रम एष उक्तः ॥ ४ ॥

छः पल (२४ तोला) की "श्रेष्ठ," ३ पल (१२ तो०) की "मध्यम" और १॥ पल (६ तोला) की "हीन" इस प्रकार अनुवासनकी ३ मात्राएँ होती हैं । पर वस्तिमात्रा पहिलेसे ही पूर्ण न देनी चाहिये । श्रेष्ठ मात्रा पहिले २ पल देना फिर आधा आधा पल बढाना चाहिये । मध्य मात्रामें पहिले १ पल देना चाहिये । फिर एक कर्षके क्रमसे बढाना चाहिये । हीन मात्रामें पहिले २ कर्ष फिर ८ माशे (वर्तमान ६ माशे) प्रतिदिन बढाते हुए पूर्ण मात्रा करनी चाहिये । यह मात्रा-वृद्धिका क्रम है ॥ ३ ॥ ४ ॥

विधिः ।

माषमात्रे पले स्नेहे सिन्धुजन्मशताह्वयोः ।
स तु सैन्धवचूर्णेन शताह्वेन च संयुतः ॥ ५ ॥
भवेत्सुखोष्णश्च तथा निरेति सहसा सुखम् ।
विरिक्तश्चानुवास्यश्चेत्सप्तरात्रात्परं तदा ॥ ६ ॥

१ पल स्नेहमें सेंधानमक और सौंफ १ माशे मिलाना चाहिये और कुछ गरम कर वस्ति देना चाहिये । इससे वस्ति शीघ्रही प्रत्यावर्तित हो जाती है । तथा विरेचनके साथ दिनके अनन्तर अनुवासन वस्ति देना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ बस्तिबस्तिनेत्रविधानम् ।

सुवर्णरूप्यत्रपुताम्ररीति-
कांस्यायसास्थिद्रुमवेणुदन्तैः ।
नलैर्विषाणैर्मणिभिश्च तैस्तैः
कार्याणि नेत्राणि सुकर्णिकानि ॥ ७ ॥
षड्द्वादशाष्टाङ्गुलसम्मितानि
षड्विंशतिद्वादशवर्षजानाम् ।
स्युर्मुद्गकर्कन्धुसतीनवाहि-
च्छिद्राणि वर्त्या पिहितानि चापि ॥ ८ ॥
यथा वयोऽङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां
मूलाग्रयोः स्युः परिणाहवन्ति ।
ऋजूनि गोपुच्छसमाकृतीनि
श्लक्ष्णानि च स्युर्गुडिकामुखानि ॥ ९ ॥
स्यात्कर्णिकैकाग्रचतुर्थभागे
मूलाश्रिते बस्तिनिबन्धने द्वे ।
जारद्गवो माहिषहारिणो वा
स्याच्छौकरो बास्तिरजस्य वापि ॥ १० ॥
दृढस्तनुर्नष्टशिरोविबन्धः
कषायरक्तः सुमृदुः सुशुद्धः ।
नृणां वयो वीक्ष्य यथानुरूपं
नेत्रेषु योज्यस्तु सुबद्धसूत्रः ॥ ११ ॥

सोनो, चांदी, रांगा, तांबा, पीतल, कांसा, लोहा, हड्डी वृक्ष, बांस, दांत, नरसल, सींग और मणि आदिमेंसे किसी एकसे उत्तम नेत्र (नल) बनाना चाहिये । नेत्रके अग्रभागमें चतुर्थांश छोड़कर कर्णिका (अंकुर) रखना चाहिये ।

और छः वर्षके बालकके लिये ६ अंगुल, बारह वर्षवालेके लिये ८ अंगुल और २० वर्षवालेके लिये १२ अंगुलका नेत्र (नल) बनाना चाहिये और उनमें क्रमशः मूंग, मटर और छोटे बेरके बराबर छिद्र होना चाहिये । नेत्रका मुख बत्तीसे बन्द रखना चाहिये, तथा अवस्थाके अनुसार न्यूनाधिकका भी निश्चय करना चाहिये । नेत्र सामान्यतः मूलमें अँगूठेके समान और अग्रभागमें कनिष्ठिकाके समान मोटा, गोपुच्छसदृश चढा उतार तथा चिकना बनाना चाहिये और मुखपर गुटिका बनानी चाहिये । अग्रभागमें जो कर्णिका बनायी जाय, वह चौथाई हिस्सा आगेका छोड़कर बनाना चाहिये और मूलमें वस्ति बांधनेके लिये २ कर्णिका (कंगूरा) रहना चाहिये । वस्ति पुराने बैल, भैंस, हरिण, सुआ या बकरेकी दृढ, पतली, शिराओंरहित, कषायरङ्गसे रङ्गी हुई, मुलायम, शुद्ध तथा रोगीकी अवस्थाके अनुसार लेनी चाहिये और उसे सूत्रसे नेत्रमें बांधना चाहिये ॥ ७–११ ॥

निरूहानुवासनमात्रा ।

निरूहमात्रा प्रथमे प्रकुञ्चो वत्सरात्परम् ।
प्रकुञ्चवृद्धिः प्रत्यब्दं यावत्षट्प्रसृतास्ततः ॥ १२ ॥
प्रसृतं वर्धयेदूर्ध्वं द्वादशाष्टादशस्य तु ।
आसप्ततेरिदं मानं दशैव प्रसृताः परम् ॥ १३ ॥
यथायथं निरूहस्य पादो मात्रानुवासने ।

निरूहणकी मात्रा प्रथम वर्षमें ४ तोला, फिर प्रतिवर्ष ४ तोला बढाना चाहिये जबतक ४८ तोला न हो जाय। और फिर प्रति वर्ष ८ तो० बढाना चाहिये, जबतक कि ९६ तो० न हो जाय। इस प्रकार १८ वर्षसे ७० वर्षतक यही मान अर्थात्, ९६ तो० रखना चाहिये । तथा ७० वर्षके बाद ८० तोला की ही मात्रा देनी चाहिये । निरूहणकी चतुर्थांश मात्रा अनुवासन वस्तिकी देनी चाहिये । (क्वाथप्रधान वस्तिको " निरूहणवस्ति " और स्नेहप्रधान वस्तिको " अनुवासन वस्ति " कहते हैं) ॥ १२ ॥ १३ ॥

वस्तिदानविधिः ।

कृतचङ्क्रमणं मुक्तविण्मूत्रं शयने सुखे ॥ १४ ॥
नात्युच्छ्रिते न चोच्छीर्षे संविष्टं वामपार्श्वतः ।
संकोच्य दक्षिणं सक्थि प्रसार्य च ततोऽपरम् ।
वस्तिं सव्ये करे कृत्वा दक्षिणेनावपीडयेत् ॥ १५॥
तथास्य नेत्रं प्रणयेत्स्निग्धे स्निग्धमुखं गुदे ।
उच्छ्वास्य वस्तेर्वदनं बद्ध्वा हस्तमकम्पयन्॥१६॥
पृष्ठवंशं प्रति ततो नातिद्रुतविलम्बितम् ।
नातिवेगं न वा मन्दं सकृदेव प्रपीडयेत् ।
सावशेषं प्रकुर्वीत वायुः शेषे हि तिष्ठति ॥ १७॥

निरूहदानेऽपि विधिरयमेव समीरितः ।
ततः प्रणिहिते स्नेहे उत्तानो वाक्शतं भवेत् ।
प्रसारितैः सर्वगात्रैस्तथा वीर्यं प्रसर्पति ॥ १८ ॥
आकुञ्चयेच्छनैस्त्रिस्त्रिः सक्थिबाहू ततःपरम् ।
ताडयेत्तलयोरेनं त्रींस्त्रीन्वाराञ्छनैः शनैः ॥ १९ ॥
स्फिचोश्चैनं ततः श्रोणिं शय्यां त्रिरुत्क्षिपेच्छनैः ।
एवं प्रणिहिते वस्तौ मन्दायासोऽथ मन्दवाक् ॥२०
अस्तीर्णे शयने काममासीताचारिके रतः ।
योऽन्यः शीघ्रं निवृत्तेऽन्यःतिष्ठन्न कार्यकृत् ॥ २१ ॥

थोड़ा चला फिराकर दस्त व लघुशंका साफ हो जानेपर सुखदायक, न बहुत ऊँची, न बहुत ऊंचे तकियेवाली शय्यापर रोगीको वाम करवट लिटा, दहिना पैर समेट वाम पैर फैलाकर वैद्यको वाम हाथमें वस्ति लेकर दहिने हाथसे दबाना चाहिये । वस्ति देनेके पहिले नेत्रमें तथा गुदामें स्नेह लगा लेना चाहिये तथा वस्तिका मुख फुला औषध भरकर बांध देना चाहिये । फिर हाथ न कंपाते हुए न बहुत जल्दी न बहुत देरमें न बडे वेगसे न मन्द ही एक बारगी (आगे मुखकी बत्ती निकालकर) दबाना चाहिये तथा कुछ औषध रख छोड़ना चाहिये । क्योंकि शेषमें वायु रहती है । निरूहदानकी भी यही विधि है । इस प्रकार स्नेहवस्ति देनेपर १०० मात्रा उच्चारण कालतक समस्त अङ्ग फैलाकर उताने सोना चाहिये । इस प्रकार औषधकी शक्ति बढती है । इससे अनन्तर ३ बार धीरे धीरे हाथ, पैर समेटना व फैलाना चाहिये तथा तीन तीन बार पैरके तलवों तथा चूतड़ोंको ठोकना चाहिये, फिर ३ बार धीरे धीरे शय्या तथा कमर उठाना चाहिये तथा वस्ति दे देनेपर कम परिश्रम करना तथा कम बोलना चाहिये । बिछी हुई चारपाईपर सुखपूर्वक बैठना या सोना चाहिये । पर आचारका ध्यान रखना चाहिये । स्नेहवस्तिद्वारा प्रयुक्त स्नेहके शीघ्र ही निकल जानेपर शीघ्र ही फिर स्नेहवस्ति देना चाहिये । क्योंकि स्नेह विना कुछ देर रुके कार्यकर नहीं होता ॥ १४–२१ ॥

सम्यगनुवासितलक्षणम् ।

सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य वै ।
विना पीडां त्रियामस्थःस सम्यगनुवासितः ॥२२॥

जिसका स्नेह ९ घण्टेतक रहकर विना पीड़ा किये वायु और मलके साथ निकलता है, उसे ठीक अनुवासित समझना चाहिये ॥ २२ ॥

अनुवासनोत्तरोपचारः ।

क्वाथार्धमात्रया प्रातर्धान्यशुण्ठीजलं पिबेत् ।
पित्तोत्तरे कदुष्णाम्भस्तावन्मात्रं पिबेद्वा ॥ २३ ॥
तेनास्य दीप्यते वह्निर्भक्ताकाङ्क्षा च जायते ।
अहोरात्रादपि स्नेहः प्रत्यागच्छन्न दुष्यति ॥२४॥

कुर्याद्वास्तिगुणांश्चापि जीर्णस्त्वल्पगुणो भवेत् ।
यस्य नोपद्रवं कुर्यात्स्नेहबस्तिरनिःसृतः ॥ २५ ॥
सर्वोऽल्पो वा वृतो रौक्ष्यादुपेक्ष्यः संविजानता ।

दूसरे दिन षडंगपानीय विधिसे सिद्ध धनियाँ और सोंठका जल क्वाथकी आधी मात्रामें देना चाहिये । तथा पित्तकी प्रधानतामें केवल गुनगुना जल ही देना चाहिये । इससे अग्नि दीप्त होती तथा भोजनमें रुचि होती है । स्नेह यदि ९ घण्टेमें न आकर २४ घण्टेमें आ जावे, तो भी कोई दोष नहीं होता और वस्तिके गुणोंको करता है । किन्तु स्नेह पच जानेपर गुण कम करता है । पर जिसका रूक्षताके कारण थोड़ा या सभी स्नेह न निकले, उसकी उपेक्षा करनी चाहिये ॥२३-२५॥-

स्नेहव्यापच्चिकित्सा ।

अनायान्तमहोरात्रात्स्नेहं सोपद्रवं हरेत् ॥ २६ ॥
स्नेहबस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ।
अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः॥२७॥
तदांगसदनाध्मानशूलाः श्वासश्च जायते ।
पक्वाशयगुरुत्वं च तत्र दद्यान्निरूहणम् ॥ २८ ॥
तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधैरेव सिद्धं चाप्यनुवासनम् ।
स्नेहबस्तिर्विधेयस्तु नाविशुद्धस्य देहिनः ॥ २९ ॥
स्नेहवीर्ये तथादत्ते स्नेहो नानुविसर्पति ।
अशुद्धमपि वातेन केवलेनाभिपीडितम् ॥ ३० ॥
अहोरात्रस्य कालेषु सर्वेष्वेवानुवासयेत् ।
अनुवासयेत्तृतीयेऽह्नि पञ्चमे वा पुनश्च तम् ॥३१॥
यथा वा स्नेहपक्तिः स्याद्तोऽप्युल्बणमारुतान् ।
व्यायामनित्यान् दीप्ताग्नीन् रूक्षांश्च प्रतिवासरम्३२
इति स्नेहैस्त्रिचतुरैः स्निग्धे स्रोतोविशुद्धये ।
निरूहं शोधनं युञ्ज्यादस्निग्धे स्नेहनं तनोः ॥३३॥
विष्टब्धानिलविण्मूत्रस्नेहो हीनेऽनुवासने ।
दाहज्वरपिपासार्तिकरश्चात्यनुवासने ॥ ३४ ॥

रातदिनमें वापिस न आनेवाले तथा उपद्रवयुक्त स्नेहको (संशोधन बस्तिद्वारा) निकाल देना चाहिये । तथा स्नेहवस्तिके वापिस न आनेपर अन्य स्नेहवस्ति न देना चाहिये । तथा जिसका संशोधन ठीक नहीं हुआ है, ऐसे पुरुषका मलयुक्त स्नेह वापिस न आनेपर शरीरमें शिथिलता, पेटमें गुड़गुड़ाहट, शूल और श्वास उत्पन्न कर देता है । पक्वाशय भारी हो जाता है । ऐसी दशामें तीक्ष्ण निरूहणवस्ति अथवा तीक्ष्ण ओषधियोंसे सिद्ध स्नेहसे अनुवासनवस्ति देना चाहिये । जिसका ठीक शोधन नहीं हुआ, उसे स्नेहवस्ति न देना चाहिये । क्योंकि ऐसी दशामें स्नेहकी शक्ति नष्ट हो जाती है। अतएव स्नेह फैलता नहीं । परन्तु अशुद्ध पुरुष भी यदि केवल वायुसे पीड़ित हो, तो उसे रातदिनमें किसी समय अनुवासन दे देना चाहिये । फिर उसे तीसरे या पांचवें दिन अनुवासन कराना चाहिये । अथवा जैसे स्नेहका परिपाक हो, वैसे ही अनुवासन कराना चाहिये । अतएव जिनके वायु अधिक बढ़ा हुआ है, उन्हें तथा कसरत करनेवालों, दीप्ताग्नि और रूक्ष पुरुषोंको प्रतिदिन अनुवासन कराना चाहिये । इस प्रकार तीन चार स्नेहोंसे स्निग्ध हो जानेपर स्रोतोंकी शुद्धिके लिये शोधन निरूहण वस्ति देना चाहिये और यदि फिर भी स्नेहन ठीक न हुआ हो, तो स्नेहनवस्ति ही देना चाहिये । हीन अनुवासनमें वायु, मल और मूत्र तथा स्नेह स्तब्ध हो जाता है । तथा अति अनुवासनमें दाह, ज्वर, प्यास और बेचैनी होती है ॥ २६-३४ ॥

विशेषोपदेशः ।

स्नेहबस्तिं निरूहं वा नैकमेवातिशीलयेत् ।
स्नेहात्पित्तकफोत्क्लेशो निरूहात्पवनाद्भयम् ॥ ३५ ॥

स्नेहवस्ति अथवा निरूहणवस्ति एक ही अधिक न सेवन करना चाहिये । केवल स्नेहवस्ति ही लेनेसे पित्त कफकी वृद्धि तथा केवल निरूहणसे वायुसे भय होता है ॥ ३५ ॥

नानुवास्याः ।

अनास्थाप्या येऽभिधेया नानुवास्याश्च ते मताः ।
विशेषतस्त्वभुक्ता पाण्डुकामलामेहपीनसाः ॥ ३६ ॥
निरन्नप्लीहविड्भेदिगुरुकोष्ठकफोदराः ।
अभिष्यन्दिभृशस्थूलकृमिकोष्ठाढ्यमारुताः ॥ ३७ ॥
पीते विषे गरेऽपच्यां श्लीपदी गलगण्डवान् ।

जिन्हें आस्थापनका निषेध आगे लिखेंगे, उन्हें अनुवासन भी न करना चाहिये । और विशेषकर पाण्डु, कामला, प्रमेह और पीनसवाले, जिन्होंने भोजन नहीं किया उन्हें, तथा प्लीहा, अतीसारयुक्त, गुरुकोष्ठ कफोदरवाले, अभिष्यन्दी, बहुत मोटे, क्रिमिकोष्ठ तथा ऊरुस्तम्भवाले तथा विष पिये हुए अथवा कृत्रिमविष, अपची, श्लीपद और गलगण्डवाले अनुवासनके अयोग्य हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अनास्थाप्याः ।

अनास्थाप्यास्त्वतिस्निग्धःक्षतोरस्को भृशं कृशः॥३८
आमातिसारी वमिमान्संशुद्धो दत्तनावनः
श्वासकासप्रसेकार्शोहिकाध्मानाल्पवन्हयः ॥३९ ॥
शूलपायुः कृशाहारो बद्धच्छिद्रदकोदरी ।
कुष्ठी च मधुमेही च मासान्सप्त च गर्भिणी ॥४०॥
न चैकान्ते न निर्दिष्टेऽप्यत्राभिनिविशेद् बुधः ।
भवेत्कदाचित्कार्या या विरुद्धापि मता क्रिया ॥४१॥
छर्दिर्हृद्रोगगुल्मार्ते वमनं सुचिकित्सिते ।
अवस्थां प्राप्य निर्दिष्टं कुष्ठिनां वस्तिकर्म च ॥४२॥

अतिस्निग्ध, उरःक्षती, बहुत पतले, आमातिसारी, वमनवाले, संशुद्ध, नस्य लेनेवाले, श्वास, कास, हृल्लास, प्रसेक (मुखसे पानी आना) अर्श, हिक्का, आध्मान, मन्दाग्नि तथा गुदशूलसे पीड़ित, आहार किये हुए, बद्धोदर, छिद्रोदर और दकोदरवाले तथा कुष्ठी व मधुमेही तथा सात मासकी गर्भिणी इन्हें आस्थापनवस्ति न देनी चाहिये, । किंतु जिनके लिये आस्थापनका निषेध किया गया है, उनके लिये सर्वथा निषेध ही न मान लेना चाहिये । क्योंकि विरुद्ध क्रिया भी कभी अत्यावश्यक होनेपर अनुकूल अतएव कर्तव्य हो जाती है । यथा अवस्थाविशेषमें छर्दि, हृद्रोग व गुल्मवालोंके लिये वमन और कुष्ठवालोंके लिये वस्ति कही गयी है ॥ ३८-४२ ॥

इत्यनुवासनाधिकारः समाप्तः ।

अथ निरूहाधिकारः ।
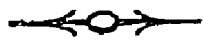
सामान्यव्यवस्था ।

अनुवास्य स्निग्धतनुं तृतीयेऽह्नि निरूहयेत् ।
मध्याह्ने किञ्चिदावृत्ते प्रयुक्ते बलिमङ्गले ॥ १ ॥
अभ्यक्तस्वेदितोत्सृष्टमलं नातिबुभुक्षितम् ।
मधुस्नेहनकल्काख्यकषायावापतः क्रमात् ॥ २ ॥
त्रीणि षड् द्वे दश त्रीणि पलान्यनिलरोगिषु ।
पित्ते चत्वारि चत्वारि द्वे द्विपञ्चचतुष्टयम् ॥ ३ ॥
षट् त्रीणि द्वे दश त्रीणि कफे चापि निरूहणम् ।

अनुवासनवस्तिद्वारा स्निग्ध पुरुषको तीसरे दिन निरूहण वस्ति देना चाहिये । उसका क्रम यह है कि कुछ दो पहर लौट जानेपर बलि मंगलाचरण आदि कर मालिश तथा स्वेदन करा मलत्याग किये हुए पुरुषको जिसे अधिक भूख न हो, उसे आस्थापन वस्ति देना चाहिये । आस्थापन वस्तिमें वातरोगीके लिये शहद १२ तो०, स्नेह २४ तो०, कल्क ८ तो०, क्काथ ४० तो० और प्रक्षेप १२ तो० छोड़ना, । पित्तरोगीके लिये शहद १६ तो०, स्नेह १६ तो, कल्क ८ तो०, क्काथ ४० तोला और आवाप १६ तोला । तथा कफज रोगमें शहद २४ तो०, स्नेह १२ तो०, कल्क ८ तोला, क्काथ ४० तो० और प्रक्षेप १२ तोला छोड़कर देना चाहिये ॥ १-३ ॥-

द्वादशप्रसृतिको वस्तिः ।

दत्त्वादौ सैन्धवस्याक्षं मधुनः प्रसृतद्वयम् ॥ ४ ॥
विनिर्मथ्य ततो दद्यात्स्नेहस्य प्रसृतद्वयम् ।
एकीभूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृतं क्षिपेत् ॥ ५ ॥
संमूर्च्छिते कषाये तु पञ्चप्रसृतसंमितम् ।
वितरेत्तु यथावापमन्ते द्विप्रसृतोन्मितम् ॥ ६ ॥
वस्त्रपूतस्ततोष्णाम्बुकुम्भीवाष्पेण तापितः ।
एवं प्रकल्पितो वस्तिर्द्वादशप्रसृतो भवेत् ॥ ७ ॥

पहिले १ तोला महीन पिसा सेंधानमक किसी पत्थर या कांचके पात्रमें छोड़ १६ तो० शहद मिला मथकर १६तो० स्नेह मिलाकर फिर मथना चाहिये । इस प्रकार स्नेह मिल जानेपर ८ तोला कल्क छोड़कर फिर मथना चाहिये । फिर कल्क मिल जानेपर क्काथ ४० तोला छोड़ना चाहिये । फिर अन्तमें १६ तो० प्रक्षेप छोड़ना चाहिये । फिर इसे महीन कपड़ेसे छानकर गरम जल भरे हुए घड़ेके ऊपर रखकर उसी जलकी भाफसे गरम करना चाहिये । इस प्रकार सिद्ध वस्ति "द्वादशप्रसृतिक" कही जाती है । इसमें १ तो० सैंधवको छोड़कर शेष १२ प्रसृत (९६ तो०) द्रव्य होते हैं ॥ ४-७ ॥

सुनियोजितवस्तिलक्षणम् ।

न धावत्यौषधं पाणिं न तिष्ठत्यवलिप्य च ।
न करोति च सीमन्तं स निरूहः सुयोजितः ॥८ ॥

औषध हाथोंमें न चिपके तथा लिपकर एक जगह बैठ न जाय और न किनारे बने । यह "सुनियोजित" वस्तिके लक्षण हैं ॥ ८ ॥

वस्तिदानविधिः ।

पूर्वोक्तेन विधानेन गुदे वस्तिं निधापयेत् ।
त्रिंशन्मात्रास्थितो वस्तिस्ततस्तूत्कटको भवेत् ॥९ ॥
जानुमण्डलमावेष्ट्य कुर्य्याच्छोटिकया युतम् ।
निमेषोन्मेषकालो वा तावन्मात्रा स्मृता बुधैः ॥१०॥
द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथार्थतः ।
सम्यङ् निरूढलिङ्गे तु प्राप्ते वस्तिं निवारयेत् ॥११॥

पूर्वोक्त (अनुवासनोक्त) विधानसे गुदामें वस्ति देना चाहिये । वस्तिदानके अनन्तर ३० मात्रा उच्चारणकालतक वैसे ही रहकर फिर उटकुरुवा बैठना चाहिये । जानुमण्डलके ऊपर हाथ घुमाकर चुटकी बजाना या निमेषोन्मेष (पलक खोलना बन्द करना) के समान कालको १ "मात्राकाल" कहते हैं । इस प्रकार ३० मात्रा उच्चारण कालतक उत्कट बैठना चाहिये । इसके अनन्तर आवश्यकतानुसार दूसरी तीसरी या चौथी वस्ति देना चाहिये । सम्यङ् निरूढ लक्षण प्रगट होनेपर वस्ति देना बन्द कर देना चाहिये ॥ ९-११ ॥

सुनिरूढलक्षणम् ।

प्रसृष्टविण्मूत्रसमीरणत्व-
रुच्यग्निवृद्ध्याशयलाघवानि
रोगोपशान्तिः प्रकृतिस्थता च
बलं च तत्स्यात्सुनिरूढलिङ्गम् ॥ १२ ॥
अयोगश्चातियोगश्च निरूहेऽस्ति विरिक्तवत् ॥१३॥

विष्ठा, मूत्र और वायुका शुद्ध होना, रुचि, अग्निवृद्धि और आशयोंका हलका होना, रोगकी शान्ति, स्वाभाविक अवस्थाकी प्राप्ति और बलका होना "सुनिरूढ" के लक्षण होते हैं। तथा निरूहमें अयोग और अतियोग विरिक्तके समान समझना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥

निरूहमर्यादा।

स्निग्धोष्ण एकः पवने समांसः
द्वौ स्वादुशीतौ पयसा च पित्ते ॥ १४ ॥
त्रयः समूत्रा कटुकोष्णरूक्षाः
कफे निरूहा न परं विधेयाः।
एकोऽपकर्षत्यनिलं स्वमार्गात्
पित्तं द्वितीयस्तु कफं तृतीयः ॥ १५ ॥

वायुमें स्नेहयुक्त, उष्ण, मांससहित १ वस्ति, पित्तमें मीठे, शीतल पदार्थों तथा दूधके साथ २ वस्ति तथा कफमें मूत्रके सहित कटु तथा रूक्ष पदार्थोंसे निर्मित गरम कर ३ वस्ति देना चाहिये। एकबार वस्ति दिया गया वायुको (वाताशय समीप होनेके कारण) अपने स्थानसे निकालता, २ बार वस्ति देनेपर पित्तको (पित्ताशय, वाताशयकी अपेक्षा दूर होनेके कारण) निकालता, तथा ३ बार वस्ति देनेपर कफ अपने आशयसे निकलता है। इसके अनन्तर वस्ति देना आवश्यक नहीं ॥ १४ ॥ १५ ॥

निरूहव्यापच्चिकित्सा।

अनायान्तं मुहूर्तान्ते निरूहं शोधनैर्हरेत्।
निरूहैरेव मतिमान्क्षारमूत्राम्लसंयुतैः ॥ १६ ॥
विगुणानिलविष्टब्धश्चिरं तिष्ठन्निरूहणः।
शूलारतिज्वराटोपान्मरणं वा प्रयच्छति ॥ १७ ॥
न तु भुक्तवते देयमास्थापनमिति स्थितिः।
आमं तद्धि हरेद् भुक्तं छर्दिदोषांश्च कोपयेत् ॥ १८ ॥
आवस्थिकः क्रमश्चापि मत्वा कार्यो निरूहणे।
अतिप्रपीडितो वस्तिरतिक्रम्याशयं ततः ॥ १९ ॥
वातेरितो नासिकाभ्यां मुखतो वा प्रपद्यते।
छर्दिहल्लासमूर्छादीन्प्रकुर्याद्दाहमेव च ॥ २० ॥
तत्र तूर्णं गलापीडं कुर्याच्चाप्यवधूननम्।
शिरःकायविरेकौ च तीक्ष्णौ सेकांश्च शीतलान् २१

दो घड़ीतक वस्तिद्रव्य वापिस न आनेपर क्षार, मूत्र तथा काञ्जीयुक्त शोधन निरूहण वस्तियों द्वारा निकाल देना चाहिये। क्योंकि विकृत वायुसे रुका हुआ निरूहण द्रव्य शूल, बेचैनी, ज्वर, अफारा और मृत्युतक कर देता है। और भोजन किये हुएको भी वस्ति नहीं देना चाहिये। क्योंकि वह आमभोजनको ही निकालता तथा छर्दि आदि दोष उत्पन्न कर देता है। तथा रोगीकी अवस्था देखकर जैसा उचित प्रतीत हो, व्यवस्था करनी चाहिये। तथा वस्ति देते समय अधिक जोरसे वस्ति न दबाना चाहिये, नहीं तो वह वस्तिद्रव्य आशयोंको लांघकर नासिका अथवा मुखसे निकलने लगता है। उस समय वमन, मिचलाई, मूर्छा और दाह आदि कर देता है। उसी समय शीघ्र ही धीरेसे गला दबाना तथा रोगीको हिला देना चाहिये। तथा तीक्ष्ण शिरोविरेचन, कायविरेचन और शीतल सेक करना चाहिये ॥ १६–२१ ॥

सुनिरूढे व्यवस्था।

सुनिरूढमथोष्णाम्बुस्नातं भुक्तरसौदनम्।
यथोक्तेन विधानेन योजयेत्स्नेहवस्तिना ॥ २२ ॥
तदहस्तस्य पवनाद्भयं बलवदिष्यते।
रसौदनस्तेन शस्तस्तदहश्चानुवासनम् ॥ २३ ॥

ठीक निरूहण हो जानेपर गरम जलसे स्नान करा मांस व भातका भोजन कराना चाहिये। फिर यथोक्त विधिसे स्नेहवस्ति देना चाहिये। उस दिन उसे वायुसे विशेष भय रहता है। अतएव उसी दिन उसे मांस और भातका भोजन कराना तथा अनुवासन वस्ति देना चाहिये ॥ २२ ॥ २३ ॥

अर्द्धमात्रिको बस्तिः।

दशमूलीकषायेण शताह्वाक्षं प्रयोजयेत्।
सैन्धवाक्षं च मधुनो द्विपलं द्विपलं तथा ॥ २४ ॥
तैलस्य पलमेकं तु फलस्यैकत्र योजयेत्।
अर्धमात्रिकसंज्ञोऽयं वस्तिर्देयो निरूहवत् ॥ २५ ॥
न च स्नेहो न च स्वेदः परिहारविधिर्न च।
आत्रेयानुमतो ह्येष सर्वरोगनिवारणः ॥ २६ ॥
यक्ष्मघ्नश्च क्रिमिघ्नश्च शूलघ्नश्च विशेषतः।
शुक्रसञ्जननो ह्येष वातशोणितनाशनः।
बलवर्णकरो वृष्यो वस्तिः पुंसवनः परः ॥ २७ ॥

दशमूलके काढ़ेमें सौंफका चूर्ण व सेंधानमकका चूर्ण प्रत्येक १ तोला, शहद ८ तोला, तैल ८ तोला तथा मैनफल ४ तोला मिलाकर निरूहके समान ही देना चाहिये। इसे "अर्द्धमात्रिकवस्ति" कहते हैं। यह आत्रेयसे अनुमत समग्र रोग

---

१ यद्यपि प्रथम "चतुर्थं वा प्रयोजयेत्" से ४ वस्तितकका विधान किया है। पर यहां ३ से अधिक वस्ति देना व्यर्थ बताते हैं। यह परस्पर विरोधी होते हुए भी विरुद्ध न समझना चाहिये। प्रथमका विधान ३ वस्तियोंसे जो नहीं शुद्ध हुआ, उसके लिये विशेष वचन है। उत्तरका सामान्य वचन है।

१ इसमें यद्यपि क्वाथकी मात्रा नहीं लिखी, पर इसे "अर्द्धमात्रिक" कहते हैं, अतः पूर्वोक्त मानसे आधा क्वाथ अर्थात् २०–

नष्ट करनेवाला है तथा विशेषकर यक्ष्मा, क्रिमि और शूलको नष्ट करता, शुक्रको उत्पन्न करता, वातरक्त नष्ट करता तथा बल, वर्ण उत्तम बनाता और वृष्य तथा सन्तान उत्पन्न करनेवाला है ॥ २४-२७ ॥

अनुक्तौषधग्रहणम् ।

स्नेहं गुडं मांसरसं पयश्च
अम्लानि मूत्रं मधुसैन्धवे च ।
एतान्यनुक्तानि च दापयेच्च
निरूहयोगे मदनात्फलं च ॥ २८ ॥
लवणं कार्षिकं दद्यात्पलमेकं तु मादनम् ।
वाते गुडः सिता पित्ते कफे सिद्धार्थकादयः ॥२९॥

निरूहणके प्रयोगमें न कहनेपर भी स्नेह, गुड़, मांसरस, दूध, काञ्जी, गोमूत्र, शहद, सेंधानमक और मैनफल छोड़ना चाहिये । सेंधानमककी मात्रा १ तो०, मैनफल ४ तोला छोड़ना चाहिये, तथा वायुमें गुड़, पित्तमें मिश्री और कफमें सरसों आदि मिलाकर निरूह वस्ति देना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ क्षारवस्तिः ।

सैन्धवाक्षं समादाय शताह्वाक्षं तथैव च ।
गोमूत्रस्य पलान्यष्टावम्लिकायाः पलद्वयम् ॥ ३० ॥
गुडस्य द्वे पले चैव सर्वमालोड्य यत्नतः ।
वस्त्रपूतं सुखोष्णं च वस्तिं दद्याद्विचक्षणः ॥ ३१ ॥
शूलं विट्सङ्गमानाहं मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ।
क्रिम्युदावर्तगुल्मादीन्सद्यो हन्यान्निषेवितः ॥ ३२ ॥

सेंधानमक १ तोला, सौंफ १ तो०, गोमूत्र ३२ तोला, इमली ८ तोला, गुड़ ८ तो० सब यत्नसे एकमें मिला कपड़ेसे छान कुछ गरम कर वस्ति देना चाहिये । यह वस्ति शूल, मलकी रुकावट, अफारा, कठिन मूत्रकृच्छ्र, क्रिमिरोग, उदावर्त, गुल्म आदि रोगोंको सेवन करनेसे शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ३०-३२ ॥

वैतरणवस्तिः ।

पलशुक्तिकर्षकुडवैरम्लीगुडसिन्धुजन्मगोमूत्रैः ।
तैलयुतोऽयं वस्तिः शूलानाहामवातहरः ॥ ३३ ॥
वैतरणः क्षारवस्तिर्भुक्ते चापि प्रदीयते ॥ ३४ ॥

इमली ४ तोला, गुड़ २ तोला, सेंधानमक १ तो०, गोमूत्र ३२ तोला तथा थोड़ासा तिलतैल मिलाकर दिया गया वस्ति "वैतरणवस्ति" कहा जाता है । यह वस्ति शूल आनाह और आमवातको नष्ट करता है । वैतरणवस्ति व क्षारवस्ति भोजन कर लेनेपर भी दी जाती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

पिच्छिलवस्तयः ।

बदर्यैरावतीशेलुशाल्मलीधन्वनाङ्कुराः ।
क्षीरसिद्धाः सुसिद्धाः स्युःसास्राः पिच्छिलसंज्ञिताः३५॥
वाराहमाहिषौरभ्रवैडालैणेयकौक्कुटम् ।
सद्यस्कमसृगाजं वा देयं पिच्छिलवस्तिषु ॥ ३६ ॥
चरकादौ समुद्दिष्टा वस्तयो ये सहस्रशः ।
व्यवहारो न तैः प्रायो निबद्धा नात्र तेन ते ॥३७॥

बेर, नागवला, लसोढ़ा, सेमर तथा धामिनके नये अङ्कुर इनमेंसे किसी एक अथवा सबको अष्टगुण दूध तथा २४ गुण जलमें मिला क्षीरपाकविधिसे पकाकर छानना चाहिये । फिर उसमें रक्त मिलाकर देना चाहिये । इन्हें "पिच्छिलवस्तियां" कहते हैं । सुअर, भैंसा, भेड़, बिल्ली, कृष्णमृग, मुर्गा अथवा बकरा इनमेंसे किसी एकका ताजा रक्त छोड़ना चाहिये । (इसकी मात्रा अर्द्धमात्रिक वस्तिके समान देना चाहिये) चरकादिमें दो हजारों वस्तियाँ लिखी गयी हैं, उनसे प्रायः व्यवहार नहीं होता, अतः उनका वर्णन यहां नहीं किया गया ३५-३७

वस्तिगुणः ।

वस्तिर्वयः स्थापयिता सुखायुर्बलाग्निमेधास्वरवर्णकृच्च ।
सर्वार्थकारी शिशुवृद्धयूनां निरत्ययः सर्वगदापहश्च ३८

वस्ति अवस्था स्थापित रखता तथा सुख, आयु, बल, अग्नि, मेधा और स्वर तथा वर्णको उत्तम बनाता, बालक, वृद्ध तथा जवान सबको बराबर लाभ करनेवाला, कोई आपत्ति न करनेवाला तथा समस्त रोगोंको नष्ट करता है ॥ ३८ ॥

इति निरूहाधिकारः समाप्तः ।

अथ नस्याधिकारः ।

नस्यभेदाः ।

प्रतिमर्शोऽवपीडश्च नस्यं प्रधमनं तथा ।
शिरोविरेचनं चेति नस्तः कर्म च पञ्चधा ॥ १ ॥

(१) प्रतिमर्श, (२) अवपीड, (३) नस्य, (४) प्रधमन और (५) शिरोविरेचन ये नस्यके पाँच भेद हैं ॥ १ ॥

प्रतिमर्शविधानम् ।

ईषदुच्छिङ्घनात्स्नेहो यावान्वक्त्रं प्रपद्यते ।
नस्तो निषिक्तं तं विद्यात्प्रतिमर्शं प्रमाणतः ॥ २ ॥

—तोला छोड़ना चाहिये, तथा नीचे लिखे अनुक्त औषध भी (गुड़ आदि) इतनी मात्रामें मिलाना चाहिये, जिसमें सब मिलकर ४८ तोला वस्तिका मान हो जाय । अतः ६ तोला गुड़ आदि मिलकर होना चाहिये । क्योंकि ४८ तोला उपरोक्त द्रव्य हो जाते हैं ।

१अत्र दुग्धस्याप्येको भागः त्रयो भागाः जलस्येति शिवदासः ।

प्रतिमर्शस्तु नस्यार्थं करोति न च दोषवान् ।
नस्तः स्नेहाङ्गुलिं दद्यात्प्रातर्निशि च सर्वदा ॥३॥
न चोच्छिङ्घेदरोगाणां प्रतिमर्शः स दार्ढ्यकृत् ।
निशाहर्भुक्तवान्ताहःस्वप्नाध्वश्रमरेतसाम् ॥ ४ ॥
शिरोऽभ्यञ्जनगण्डूषप्रस्रावाञ्जनवर्चसाम् ।
दन्तकाष्ठस्य हास्यस्य योज्योऽन्तेऽसौ द्विबिन्दुकः ५

जितना स्नेह कुछ जोरसे सूंघनेसे मुखमें पहुँच जाय, उसे "प्रतिमर्शका" प्रमाण समझना चाहिये। प्रतिमर्शमें विशेषता यह है कि, वह नस्यके गुणोंको करता है और कोई आपत्ति नहीं करता । प्रातःकाल तथा सायंकाल स्नेहमें अंगुलि डुबोकर दो बून्द नाकमें छोड़ना चाहिये और उसे ऊपर खींचकर थूकना चाहिये । यह आगे पुरुषोंको बलवान् बनाता है । इसे रात्रि दिनके भोजन, वमन, दिननिद्रा, मार्गश्रम, शुक्रत्याग, शिरोऽभ्यङ्ग, गण्डूष, प्रसेक (मुखसे पानी आने), अञ्जन, मलत्याग, दन्तधावन तथा हसनेके अनन्तर दो बिंदुकी मात्रामें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ २–५ ॥

अवपीडः ।

शोधनः स्तम्भनश्च स्यादवपीडो द्विधा मतः ।
अवपीड्य दीयते यस्मादवपीडस्ततस्तु सः ॥ ६ ॥

अवपीड़क नस्य शोधन व स्तम्भनभेदसे दो प्रकारका होता है । यह अवपीड़ित (दवा निचोड़) कर दिया जाता है, अतः इसे " अवपीड़क " कहते हैं ॥ ६ ॥

नस्यम् ।

स्नेहार्थं शून्यशिरसां ग्रीवास्कन्धोरसां तथा ।
बलार्थं दीयते स्नेहो नस्तः शब्दोऽत्र वर्तते ॥ ७ ॥
नस्यस्य स्नैहिकस्याथ देयास्त्वष्टौ तु बिन्दवः ।
प्रत्येकशो नस्तकयोर्नृणामिति विनिश्चयः ॥ ८ ॥
शुक्तिश्च पाणिशुक्तिश्च मात्रास्तिस्रः प्रकीर्तिताः ।
द्वात्रिंशद्बिन्दवश्चात्र शुक्तिरित्यभिधीयते ॥ ९ ॥
द्वे शुक्ती पाणिशुक्तिश्च देयात्र कुशलैर्नरैः ।
तैलं कफे च वाते च केवले पवने वसाम् ॥ १० ॥
दद्यान्नस्तः सदा पित्ते सर्पिर्मज्जा समारुते ।

जो स्नेह नासिका द्वारा शून्य मस्तिष्कवालोंके लिये तथा ग्रीवा, स्कन्ध और छातीके बलार्थ और स्नेहनार्थ दिया जाता है उसे "नस्य" कहते हैं । स्नैहिक नस्यकी मात्रा ८ बिन्दु प्रत्येक नासापुटमें छोड़नेकी है, तथा सामान्यतः शुक्ति, पाणिशुक्ति और पूर्वोक्त प्रत्येक नासापुटमें ८ बिन्दु इस प्रकार नस्यकी ३ मात्राएँ हैं । ३२ बिंदु " शुक्ति " तथा ६४ बिन्दु " पाणिशुक्ति " कही जाती है । कफ और कफवातजरोगमें तैल, केवल वायुमें चर्बी और वायुसहित पित्तमें घी और मज्जाकी नस्य देनी चाहिये ॥ ७–१० ॥

प्रधमनम् ।

ध्मापनं रेचनश्चूर्णो युञ्ज्यात्तं मुखवायुना ॥ ११ ॥
षडङ्गुलद्विमुखया नाड्या भेषजगर्भया ।
स हि भूरितरं दोषं चूर्णत्वादपकर्षति ॥ १२ ॥

"ध्मापन" रेचनचूर्णके नस्यको कहते हैं । इसके प्रयोगकी विधि यह है कि, एक ६ अंगुल लंबी पोली नली लेकर औषध भरना चाहिये, फिर उस नलीका एक शिरा मुखमें और दूसरी शिरा नासिकामें लगाकर मुखकी वायुसे फूंक देना चाहिये । यह चूर्ण होनेके कारण बहुत दोष निकालता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

शिरोविरेचनम् ।

शिरोविरेचनद्रव्यैः स्नेहैर्वा तैः प्रसाधितैः ।
शिरोविरेचनं दद्यात्तेषु रोगेषु बुद्धिमान् ॥ १३ ॥
गौरवे शिरसः शूले जाड्ये स्यन्दे गलामये ।
शोषगण्डक्रिमिग्रन्थिकुष्ठापस्मारपीनसे ॥ १४ ॥
स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्य प्राक्कृतावश्यकस्य च ।
निवातशयनस्थस्य जत्रूर्ध्वं स्वेदयेत्पुनः ॥ १५ ॥
अथोत्तानर्जुदेहस्य पाणिपादे प्रसारिते ।
किञ्चिदुन्नतपादस्य किञ्चिन्मूर्धनि नामिते ॥ १६ ॥
नासापुटं पिधायैकं पर्यायेण निषेचयेत् ।
उष्णाम्बुतप्तं भैषज्यं प्रणाड्या पिचुना तथा ॥१७॥
दत्ते पादतलस्कन्धहस्तकर्णादि मर्दयेत् ।
शनैरुच्छिङ्घ्य निष्ठीवेत्पार्श्वयोरुभयोस्ततः ॥१८॥
आभेषजक्षयादेवं द्विस्त्रिर्वा नस्यमाचरेत् ।
स्नेहं विरेचनस्यान्ते दद्याद्दोषाद्यपेक्षया ॥ १९ ॥
त्र्यहात्त्र्यहाच्च सप्ताहं स्नेहकर्म समाचरेत् ।
एकाहान्तरितं कुर्याद्रेचनं शिरसस्तथा ॥ २० ॥

शिरोविरेचन द्रव्य अथवा उन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध स्नेहोंसे वक्ष्यमाण (शिरोविरेचनसाध्यरोगोंमें) शिरोविरेचन देना चाहिये । शिरोविरेचनसे शिरका भारीपन, पीड़ा, जड़ता, अभिष्यन्द, गलरोग, शोष, गलगण्ड, क्रिमि, ग्रन्थि, कुष्ठ, अपस्मार और पीनसरोग नष्ट होते हैं । उत्तमांगका स्नेहन, स्वेदन कर पहिले मलमूत्रादि त्याग कर वातरहित स्थानमें जत्रुसे ऊपर स्वेदन करना चाहिये । इसके अनन्तर उत्तानसीधी देह सुला तथा पैर कुछ ऊँचे और शिर कुछ नीचे कर एक नासापुट बंद कर दूसरेमें फिर दूसरा बंद कर पहिलेमें पर्यायसे उष्णजलमें गरम की हुई औषधि नली अथवा फोहासे छोड़ना चाहिये । औषध छोड़ देनेपर पैरके तलुवे, कंधे, हाथ और कान आदिका मर्दन

करना चाहिये । फिर धीरेसे खींचकर दोनों ओर (जिधर सुविधा हो) थूकना चाहिये । जबतक औषधका अंश साफ न हो जावे । इस प्रकार दो तीन वार नस्य देना चाहिये और विरेचनके अनन्तर दोषादिके अनुसार स्नेहन नस्य लेना चाहिये । इस प्रकार तीसरे दिन विरेचन लेना चाहिये । बीचमें एक दिन स्नेहननस्य दूसरे दिन विरेचन इस प्रकार ७ वारतक विरेचन-नस्यका प्रयोग करना चाहिये ॥ १३-२० ॥

सम्यक्स्निग्धादिलक्षणम् ।

सम्यक्स्निग्धे सुखोच्छ्वासस्वप्नबोधाक्षिपाटवम् ।
रूक्षेऽक्षिस्तब्धता शोषो नासास्ये मूर्धशून्यता ॥२१
स्निग्धेऽतिकण्डूर्गुरुताप्रसेकारुचिपीनसाः ।
सुविरिक्तेऽक्षिलघुतावक्त्रस्वरविशुद्धयः ॥ २२ ॥
दुर्विरिक्ते गदोद्रेकः क्षामतातिविरेचिते ।

ठीक स्नेहन हो जानेपर सुखपूर्वक उच्छ्वास, निद्रा, होश और नेत्रोंकी शक्ति प्राप्त होती है । रूक्षणमें (सम्यक् स्नेहन न होनेमें) नेत्रोंकी जकड़ाहट नासा व मुखमें शोष तथा मस्तक-शून्यता उत्पन्न होती है । तथा अतिस्नेहनमें खुजली, भारीपन, मुखसे पानी आना, अरुचि और पीनसरोग उत्पन्न हो जाते हैं । तथा सम्यक्विरेचन हो जानेपर नेत्र हल्के तथा मुख और स्वर शुद्ध होते हैं । दुर्विरेचनमें रोगकी वृद्धि तथा अतिविरेचनमें शुष्कता होती है ॥ २१ ॥ २२ ॥-

नस्यानर्हाः ।

तोयमद्यगरस्नेहपीतानां पातुमिच्छताम् ॥ २३ ॥
भुक्तभक्तशिरःस्नातस्नातुकामस्रुतासृजाम् ।
नवपीनसरोगार्तसूतिकाश्वासकासिनाम् ॥ २४ ॥
शुद्धानां दत्तवस्तीनां तथानार्तवदुर्दिने ।
अन्यत्रात्ययिके व्याधौ नैषां नस्यं प्रयोजयेत्॥२५॥
न नस्यमूनसप्ताब्दे नातीताशीतिवत्सरे ।

जिन्होंने जल, शराब, कृत्रिम विष अथवा स्नेहपान किया है, अथवा जिनकी पीनेकी इच्छा है, अथवा जिन्होंने भात खाया या शिरसे स्नान किया है, या स्नान करनेकी इच्छा है, तथा जिनका रक्त निकाला गया है, तथा नये जुखामसे पीड़ित व सूतिका स्त्री तथा श्वास, कासवाले तथा शुद्ध (वमन विरेचन द्वारा) तथा जिन्होंने वस्ति ली है, तथा अनार्तव, दुर्दिन(वर्षाकालसे अतिरिक्त मेघोंसे आच्छन्न गगनमण्डलयुक्त दिन) में परमावश्यकताके सिवाय नस्य न देना चाहिये । तथा ७ वर्षके पहिले और ८० वर्षके अनन्तर भी नस्य न देना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥-

धूमादिकालनिर्णयः ।

न चोनद्वादशे धूमः कवलो नोनपञ्चमे ॥ २६ ॥
न शुद्धिरूनदशमे न चातिक्रान्तसप्ततौ ।
आजन्ममरणं शस्तः प्रतिमर्शस्तु वस्तिवत् ॥२७॥

बारह वर्षसे कम अवस्थामें धूमपान, पांच वर्षसे कम अवस्थामें कवलधारण तथा दश वर्षसे प्रथम और ७० वर्षके बाद शुद्धि न करना चाहिये । पर प्रतिमर्श वस्तिके समान जन्मसे मरण पर्यन्त हितकर है । (वमन, विरेचन, अनुवासन वस्ति, आस्थापन वस्ति और नस्य यह "पञ्चकर्म" कहे जाते हैं)२६॥२७

इति नस्याधिकारः समाप्तः ।

अथ धूमाधिकारः ।

धूमभेदाः ।

प्रायोगिकः स्नैहिकश्च धूमो वैरेचनस्तथा ।
कासहरो वामनश्च धूमः पञ्चविधो मतः ॥ १ ॥

(१) प्रायोगिक, (२) स्नैहिक, (३) वैरेचन, (४) कासहर तथा (५) वमन करानेवाला पांच प्रकारका धूम होता है ॥ १ ॥

धूमनेत्रम् ।

ऋजुत्रिकोषफलितं कोलास्थ्यग्रप्रमाणितम् ।
वस्तिनेत्रसमद्रव्यं धूमनेत्रं प्रशस्यते ॥ २ ॥
सार्धत्र्यंशयुतः पूर्णो हस्तः प्रायोगिकादिषु ।
नेत्रे कासहरे त्र्यंशहीनः शेषे दशाङ्गुलः ॥ ३ ॥

वस्तिनेत्रके समान द्रव्यों (सोना, चाँदी आदि) से सीधा ३ स्थानोंसे घूमा हुआ तथा अग्रभागमें बेरकी गुठलीके बराबर छिद्रवाला "धूमनेत्र" उत्तम कहा जाता है । तथा नेत्रकी लम्बाई प्रायोगिक धूमके लिये ३६ अंगुल, स्नैहिकके लिये ३२ अंगुल, वैरेचनिकके लिये २४ अंगुल और कासहरके लिये १६ अंगुल तथा वामक धूमके लिये १० अंगुल होनी चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

धूमपानविधिः ।

औषधैर्वर्तिकां कृत्वा शरगर्भां विशोषिताम् ।
विगर्भामग्निसंप्लुष्टां कृत्वा धूमं पिबेन्नरः ॥ ४ ॥
वक्त्रेणैव वमेद् धूमं नस्तो वक्त्रेण वा पिबन् ।
उरःकण्ठगते दोषे वक्त्रेण धूममापिबेत् ॥ ५ ॥
नासया तु पिबेद्दोषे शिरोघ्राणाक्षिसंश्रये ।

सींकको भिगोकर उसके ऊपर औषधियोंके कल्कका लेप कर बत्ती बना सुखा सींक अलग निकाल कर बत्ती धूमनेत्रमें रख अग्निसे जलाकर धूम पीना चाहिये । रोगके अनुसार धूम नाक अथवा मुखसे पीना चाहिये । पर धूमका वमन मुखसे ही करना चाहिये । उर तथा कण्ठगत दोषोंमें मुखसे धूम पीना चाहिये । तथा शिर, नासिका और नेत्रोंमें स्थित दोषोंमें नासिकासे धूम पीना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥-

धूमवर्तयः ।

गन्धैरकुष्ठतगरैर्वर्तिः प्रायोगिके मता ॥ ६ ॥
स्नैहिके तु मधूच्छिष्टस्नेहगुग्गुलुसर्जकैः ।
शिरोविरेचनद्रव्यैर्वर्तिर्वैरेचने मता ॥ ७ ॥
कासघ्नैरेव कासघ्नी वामनैर्वामनी मता ।

प्रायोगिक धूममें कूठ और तगरको छोड़कर शेष गन्धद्रव्योंसे बत्ती बनानी चाहिये । तथा स्नैहिक धूममें मोम, स्नेह, गुग्गुलु और रालसे बत्ती बनानी चाहिये । विरेचन धूमके लिये शिरोविरेचनीय द्रव्योंसे तथा कासघ्न धूमके लिये कासघ्न द्रव्योंसे और वामकधूमके लिये वमनकारक द्रव्योंसे बत्ती बनानी चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

धूमानर्हाः ।

योऽया न पित्तरक्तार्तिविरिक्तोदरमेहिषु ॥
तिमिरोर्ध्वानिलाध्मानरोहिणीदत्तबस्तिषु ।
मत्स्यमद्यदधिक्षीरक्षौद्रस्नेहविषाशिषु ॥ ९ ॥
शिरस्यभिहते पाण्डुरोगे जागरिते निशि ।

पित्तरक्तवाले, विरिक्त, उदर और प्रमेहसे पीड़ित तथा तिमिर, ऊर्ध्ववात, अफारा और रोहिणीसे पीड़ित, तथा जिन्हें बस्ति दी गयी है तथा मछलियाँ, मद्य, दधि, दूध, शहद, स्नेह और विष इनमेंसे कोई पदार्थ जिन्होंने खाया या पिया है, तथा जिनके शिरमें चोट लगी है, तथा पाण्डुरोगसे पीड़ित अथवा रात्रिजागरण करनेवाले धूमके अयोग्य हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

धूमव्यापत् ।

रक्तपित्तान्ध्यबाधिर्यतृण्मूर्च्छामदमोहकृत् ॥ १० ॥
धूमोऽकालेऽतिपीतो वा तत्र शीतो विधिर्हितः ।
एतद् धूमविधानं तु लेशतः सम्प्रकाशितम् ॥ ११ ॥

अकालमें तथा अधिक धूम पीनेसे रक्तपित्त, आन्ध्य, बहिरापन, प्यास, मूर्च्छा, मद, तथा मोह उत्पन्न हो जाते हैं । ऐसी दशामें शीत उपचार करना चाहिये । यह धूमपानविधान संक्षेपसे कहा गया ॥ १० ॥ ११ ॥

इति धूमाधिकारः समाप्तः ।

अथ कवलगण्डूषाधिकारः ।

सामान्यभेदाः ।

स्निग्धोष्णैः स्नैहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः ।
पित्ते कट्वम्ललवणरूक्षैः संशोधनः कफे ॥ १ ॥
कषायस्वादुतिक्तैश्च कवलो रोपणो व्रणे ।
सुखं सञ्चार्यते या तु सा मात्रा कवले हिता ॥२॥
असञ्चार्या तु या मात्रा गण्डूषे सा प्रकीर्तिता ।
तावच्च धारणीयोऽयं यावद्दोषप्रवर्तनम् ॥ ३ ॥
पुनश्चान्योऽपि दातव्यस्तथा क्षौद्रघृतादिभिः ।

वातकी शान्तिके लिये स्निग्ध तथा उष्ण पदार्थोंसे स्नेहन, पित्तकी शान्तिके लिये मीठे और शीतल पदार्थोंसे प्रसादन, तथा कफकी शांतिके लिये कटु, अम्ल, लवण रसयुक्त तथा रूक्ष पदार्थोंसे संशोधन, तथा व्रणशांतिके लिये कषैले, मीठे और तिक्त पदार्थोंसे रोपण कवल धारण करना चाहिये । गण्डूष और कवलमें केवल इतना ही अन्तर है कि, जो मात्रा मुखमें सुखपूर्वक घुमायी जा सके, वह "कवल" और जो न घुमायी जा सके, उसे "गण्डूष" कहते हैं । तथा इनका धारण उस समयतक करना चाहिये, जबतक दोषोंकी प्रवृत्ति न होने लग जाय । पुनः दोषोंके निकल जानेपर फिर शहद तथा घी आदिका कवल धारण करना चाहिये ॥ १-३ ॥

सुकवलितलक्षणम् ।

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम् ॥ ४ ॥
इन्द्रियाणां प्रसादश्च कवले शुद्धिलक्षणम् ।

व्याधिकी हीनता, तुष्टि, मुखकी स्वच्छता, लघुता और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता कवलधारणजन्य शुद्धिके लक्षण हैं ॥ ४ ॥

विविधा गण्डूषाः ।

दाहतृष्णाव्रणान्हन्ति मधुगण्डूषधारणम् ॥ ५ ॥
धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनम् ।
तदेवालवणं शीतं मुखशोषहरं परम् ॥ ६ ॥
आशु क्षाराम्लगण्डूषो भिनत्ति श्लेष्मणश्चयम् ।
सुखे हितं वातहरं तैलगण्डूषधारणम् ॥ ७ ॥

शहदका गण्डूष धारण करनेसे जलन, तृष्णा और व्रण नष्ट होते हैं । काञ्जीका गण्डूष मुखकी विरसता, मल और दुर्गन्धको नष्ट करता है । तथा विना नमककी काञ्जीका गण्डूष ठण्डा और मुखशोषनाशक होता है । तथा क्षार मिली काञ्जीका गण्डूष सञ्चित कफको शीघ्र ही काट देता है । तथा तैलका गण्डूष स्वस्थ पुरुषके लिये हितकर तथा शीघ्र ही वातको नष्ट करता है ॥ ५-७ ॥

इति कवलगण्डूषाधिकारः समाप्तः ।

अथाश्च्योतनाद्यधिकारः ।

आश्च्योतनविधिः ।

सर्वेषामक्षिरोगाणामादावाश्च्योतनं हितम् ।
रुक्तोदकण्डूघर्षाश्रुदाहरागनिबर्हणम् ॥ १ ॥
उष्णं वाते कफे कोष्णं तच्छीतं रक्तपित्तयोः ।
निवातस्थस्य वामेन पाणिनोन्मील्य लोचनम् ॥२॥
शुक्त्या प्रलम्बयान्येन पिचुवर्त्या कनीनिके ।
दश द्वादश वा बिन्दून्द्व्यङ्गुलादवसेचयेत् ॥ ३॥
ततः प्रमृज्य मृदुना चैलेन कफवातयोः ।
अन्येन कोष्णपानीयप्लुतेन स्वेदयेन्मृदु ॥ ४ ॥

समस्त नेत्ररोगोंके लिये पहिले आश्च्योतन ही हितकर होता है । वह सुई चुभानेके समान पीड़ा, खुजली, किरकिरी, आँसू, जलन और लालिमाको नष्ट करता है । वह आश्च्योतन वायुमें गरम, कफमें कुछ कम गरम तथा रक्तपित्तमें शीत ही छोड़ना चाहिये । इस प्रकार तैयार किया हुआ आश्च्योतन रोगीको वातरहित स्थानमें लिटा वाम हाथसे आँख खोल दक्षिण हाथसे लम्बी शुक्ति या फोहे द्वारा दश बारह बिन्दु २ अङ्गुलकी दूरीसे वैद्यको छोड़ना चाहिये । उसके अनन्तर मुलायम कपड़ेसे पोंछकर कफवातके लिये दूसरे गरम जलमें डूबे हुए कपड़ेसे मृदु स्वेदन करना चाहिये ॥ १–४ ॥

अत्युष्णादिदोषाः ।

अत्युष्णतीक्ष्णं रुग्रागदृङ्नाशायाक्षिसेचनम् ।
अतिशीतं तु कुरुते निस्तोदस्तम्भवेदनाः ॥ ५ ॥
कषायवर्त्मतां वर्षं कृच्छ्रादुन्मेषणं बहु ।
विकारवृद्धिमत्यल्पं संरम्भमपरिस्रुतम् ॥ ६ ॥

अधिक गरम तथा तीक्ष्ण आश्च्योतन पीड़ा, लालिमा तथा दृष्टिनाशतक कर देता है। तथा बहुत ठण्डा आश्च्योतन सूई चुभानेके समान पीड़ा व जकड़ाहट उत्पन्न कर देता है। तथा अधिक आश्च्योतन विन्नियोंकी जकड़ाहट, किरकिरी तथा कठिनतासे खुलना आदि दोष करता है। तथा अति न्यून आश्च्योतन रोगको बढ़ाता तथा यदि वस्त्रसे साफ न किया जाय, तो शोथ तथा लालिमा उत्पन्न कर देता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अञ्जनम् ।

अथाञ्जनं शुद्धतनोर्नेत्रमात्राश्रये मले ।
पक्वलिङ्गेऽल्पशोथार्तिकण्डूपैच्छिल्यलक्षिते ॥ ७ ॥
मन्दघर्षाश्रुरागेऽक्ष्णि प्रयोज्यं घनदूषिके ।
लेखनं रोपणं दृष्टिप्रसादनमिति त्रिधा ॥ ८ ॥
अञ्जनं लेखनं तत्र कषायाम्लपटूषणैः ।
रोपणं तिक्तकैर्द्रव्यैः स्वादुशीतैः प्रसादनम् ॥ ९ ॥

वमन, विरेचनादिसे शुद्ध पुरुषके केवल नेत्रमात्रमें दोषके रह जाने तथा सूजन, बेचैनी, खुजली, पिच्छिलाहट तथा किरकिरी, आँसू और लालिमा आदिकी कमी रूप पक्व लक्षण प्रकट होजानेपर और नेत्रमल (चीपर) कड़ा निकलनेपर अंजन लगाना चाहिये । अञ्जन (१) लेखन (खुरचनेवाला) (२) रोपण (घाव भरनेवाला) तथा (३) दृष्टिप्रसादन (नेत्रको बल देनेवाला) इस प्रकार ३ प्रकारका होता है) लेखन अञ्जन कषैले, खट्टे, नमकीन व कटु पदार्थोंसे तथा रोपण अञ्जन तिक्त पदार्थोंसे और प्रसादन अंजन मधुर द्रव्योंसे बनाना चाहिये ॥ ७–९ ॥

शलाका ।

दशाङ्गुला तनुर्मध्ये शलाका मुकुलानना ।
प्रशस्ता लेखने ताम्री रोपणे काललोहजा ॥ १० ॥
अङ्गुली च सुवर्णोत्था रूप्यजा च प्रसादने ।

शलाका १० अङ्गुलकी मध्यमें पतली तथा कलीके समान मुखवाली बनानी चाहिये । तथा लेखन अञ्जनके लिये ताम्रकी शलाका, रोपणके लिये कृष्णलोहकी तथा प्रसादनके लिये अङ्गुली अथवा सोने या चांदीकी शलाका काममें लानी चाहिये ॥ १० ॥–

अञ्जनकल्पना ।

पिण्डो रसक्रिया चूर्णं त्रिधैवाञ्जनकल्पना ॥ ११ ॥
गुरौ मध्ये लघौ दोषे तां क्रमेण प्रयोजयेत् ।
अथानुन्मीलयन् दृष्टिमन्तः सञ्चारयेच्छनैः ॥१२॥
अञ्जिते वर्त्मनी किञ्चिच्चालयेच्चैवमञ्जनम् ।
अपेतौषधसंरम्भं निर्वृतं नयनं यदा ॥ १३ ॥
व्याधिदोषर्तुयोग्याभिरद्भिः प्रक्षालयेत्तदा ।
दक्षिणाङ्गुष्ठकेनाक्षि ततो वामं सवाससा ॥ १४ ॥
ऊर्ध्ववर्त्मनि संगृह्य शोध्यं वामेन चेतरत् ।
निशि स्वप्ने न मध्याह्ने पानान्नोष्णगभस्तिभिः॥१५॥
अक्षिरोगाय दोषाः स्युर्वर्धितोत्पीडितद्रुताः ।
प्रातः सायं च तच्छान्त्यै व्यभ्रेऽर्केऽतोऽञ्जयेत्सदा॥
कण्डूजाड्येऽञ्जनं तीक्ष्णं धूमं वा योजयेत्पुनः ।
तीक्ष्णाञ्जनाभितप्ते तु चूर्णं प्रत्यञ्जनं हितम् ॥१७॥

(१) गोली, (२) रसक्रिया अथवा (३) चूर्ण प्रक्रियाभेदसे ३ प्रकारका अञ्जन बनाया जा सकता है । उन्हें क्रमशः गुरु, मध्य और लघु दोषोंमें काममें लाना चाहिये । तथा अञ्जन विन्नियोंमें लगाकर अन्दर ही अन्दर धीरे धीरे चलाना चाहिये । फि

औषधवेग शान्त हो जाने और नेत्रके साफ हो जानेपर व्याधि-दोष तथा ऋतुयोग्य जलसे धोना चाहिये । फिर कपड़े लिपटे दहिने अँगूठेसे बायां नेत्र और बायें अँगूठेसे दाहिना नेत्र ऊपरकी विन्नियां पकड़ कर साफ करना चाहिये । रात्रिमें तथा मध्याह्नमें अञ्जन नहीं लगाना चाहिये । क्योंकि रात्रिमें सोनेके कारण और मध्याह्नमें अन्नपान तथा सूर्यकी किरणोंके कारण बढे हुए पीड़ित तथा चलित दोष नेत्ररोग उत्पन्न कर देते हैं । अतः सदा निर्मल आकाश होनेपर प्रातःकाल तथा सायङ्काल अञ्जन लगाना चाहिये । नेत्रोंकी खुजली और जकड़ाहटमें तीक्ष्णाञ्जन अथवा धूमका प्रयोग करना चाहिये। तथा तीक्ष्णाञ्जनसे नेत्रोंमें दाह उत्पन्न हो जानेपर शीघ्र प्रत्यञ्जन (दाहशामक शीतल अञ्जन) लगाना चाहिये ॥ ११–१७ ॥

अञ्जननिषेधः ।

नाञ्जयेद्भीतवमितविरिक्ताशितवेगिते ।
क्रुद्धज्वरितभ्रान्ताक्षशिरोरुक्शोषजागरे ॥ १८ ॥
अदृष्टेऽर्के शिरःस्नाते पीतयोर्धूममद्ययोः ।
अजीर्णेऽप्यर्कसंतप्ते दिवास्वप्ने पिपासिते ॥ ११ ॥

डरे हुए, वमन किये हुए, विरेचन किये हुए, भोजन किये हुए तथा मूत्र पुरीष आदिके वेगसे पीड़ित, क्रोधी, ज्वरवाले, भ्रान्त नेत्रवाले (अथवा " तान्ताक्षः " इति पाठः । तस्यार्थः सूर्य या सूक्ष्म पदार्थोंके अधिक देखनेसे विकृत नेत्रवाले) शिरःशूल, शोषसे तथा जागरणसे पीड़ित तथा शिरसे स्नान किये हुए अथवा धूम या मद्य पिये हुए तथा अजीर्णसे पीड़ित तथा सूर्यकी गरमीसे सन्तप्त होनेपर तथा दिनमें सोनेपर अनन्तर तथा पिपासित पुरुषोंको अञ्जन न लगाना चाहिये। तथा जिस दिन मेघोंसे आच्छन्न होनेके कारण सूर्य न दिखलायी पड़े, उस दिन भी अञ्जन न लगाना चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥

तर्पणम् ।

निवाते तर्पणं योज्यं शुद्धयोर्मूर्धकाययोः ।
काले साधारणे प्रातः सायं वोत्तानशायिनः ॥२०॥
यवमाषमयीं पालीं नेत्रकोषाद्बहिः समाम् ।
द्व्यङ्गुलोच्चां दृढां कृत्वा यथास्वं सिद्धमावपेत्॥२१
सर्पिर्निमीलिते नेत्रे तप्ताम्बु प्रविलायितम् ।
नक्तान्ध्यवाततिमिरकृच्छ्रबोधादिके वसाम् ॥ २२॥
आपक्ष्माग्रादथोन्मेषं शनैस्तस्य कुर्वतः ।
मात्रां विगणयेत्तत्र वर्त्मसन्धिसितासिते ॥ २३ ॥
दृष्टौ च क्रमशो व्याधौ शतं त्रीणि च पञ्च च ।
शतानि सप्त चाष्टौ च दश मन्थेऽनिले दश ॥२४॥
पित्ते षट् स्वस्थवृत्ते च बलासे पञ्च धारयेत् ।
कृत्वापाङ्गे ततो द्वारं स्नेहं पात्रे निगालयेत् ॥२५॥
पिबेच्च धूमं नेक्षेत व्योमरूपं च भास्वरम् ।
इत्थं प्रतिदिनं वाते पित्ते त्वेकान्तरं कफे ॥ २६ ॥
स्वस्थे च द्व्यन्तरं दद्यादातृप्तेरिति योजयेत् ।

तर्पणका प्रयोग वातरहित स्थानमें शिर और शरीरके शुद्ध होनेपर साधारण समयमें प्रातः और सायंकाल उत्तान सुलाकर नेत्रकोषके बाहर चारों ओर २ अङ्गुल ऊँची तथा दृढ यव और उड़दके आटेको पानीमें सानकर मेड़ बनाना चाहिये । फिर नेत्रोंको बन्दकर दोषोंके अनुसार सिद्ध घृत गरम जलके ऊपर ही गरम कर छोड़ना चाहिये।तथा रतौंधी, वातज तिमिर तथा कृच्छ्रबोधादिमें चर्बीका प्रयोग करना चाहिये । फिर धीरे धीरे नेत्र खोलना और बंद करना चाहिये । तथा तर्पण छोड़कर विन्नियोंके रोगमें १०० मात्रा उच्चारणकालतक, संधिभागमें ३०० मात्रा उच्चारणकालतक, सफेद भागके रोगमें ५०० मात्रा उच्चारणकालतक, कृष्णभागमें ७०० मात्रा उच्चारणकालतक, दृष्टिरोगमें ८०० मात्रा उच्चारणकालतक, मन्थरोगमें १०००, अनिलरोगमें १०००, पित्तरोगमें ६००, स्वस्थवृत्तमें ६००, तथा कफरोगमें ५०० मात्रा उच्चारणकालतक रखना चाहिये । फिर अपाङ्गमें (नेत्रके बाहिरी कोनेमें मेड़का द्वार बनाकर स्नेह किसी पात्रमें गिरा लेना चाहिये । फिर धूमपान करे तथा आकाश और प्रकाशयुक्त पदार्थ सूर्यादि) न देखे । इस प्रकार वायुमें प्रतिदिन, पित्तमें एकदिनका अन्तर देकर तथा कफ और स्वस्थवृत्तके लिये २ दिनका अन्तर देकर जबतक नेत्र तृप्त न हो जावें, प्रयोग करना चाहिये ॥ २०–२६ ॥–

तृप्तलक्षणम् ।

प्रकाशक्षमता स्वास्थ्यं विशदं लघु लोचनम् ॥२७॥
तृप्ते विपर्ययोऽतृप्तेऽतितृप्ते श्लेष्मजा रुजः ।

ठीक तर्पण हो जानेपर नेत्र स्वच्छ, हल्के तथा प्रकाश देखनेमें समर्थ और स्वस्थ होते हैं । तथा ठीक तर्पण न होनेपर इससे विपरीत और अतितृप्त हो जानेपर कफजन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २७ ॥–

पुटपाकः ।

पुटपाकं प्रयुञ्जीत पूर्वोक्तेष्वेव पक्ष्मसु ॥ २८ ॥
सवाते स्नेहनः श्लेष्मसहिते लेखनो मतः ॥ २८ ॥
दृग्दौर्बल्येऽनिले पित्ते रक्ते स्वस्थे प्रसादनः ॥२९॥
बिल्वमात्रं पृथक् पिण्डं मांसभेषजकल्कयोः ।
उरुबूकवटाम्भोजपत्रैः स्निग्धादिषु क्रमात् ॥ ३०॥
वेष्टयित्वा मृदालिप्तं धवधन्वनगोमयैः ।
पचेत्प्रदीप्तैरग्न्याभं पक्वं निष्पीड्य तद्रसम् ॥ ३१॥

नेत्रे तर्पणवद्युञ्ज्याच्छतं द्वे त्रीणि धारयेत् ।
लेखनस्नेहनान्त्येषु कोष्णः पूर्वो हिमोऽपरः ॥३२॥
धूमपोऽन्ते तयोरेव योगास्तत्र च तृप्तिवत् ॥ ३३ ॥
तर्पणं पुटपाकं च नस्यानर्हे न योजयेत् ।
यावन्त्यहानि युञ्जीत द्विगुणो हितभग्भवेत् ॥३४

पुटपाकका प्रयोग भी पूर्वोक्त (तर्पणोक्त) रोगोंमें ही करना चाहिये । तथा वातजरोगमें स्नेहन, कफजमें लेखन तथा दृष्टिकी दुर्बलता और वायु, पित्त तथा रक्तके रोगमें व स्वस्थ पुरुषके लिये प्रसादन पुटपाक देना चाहिये। तथा पुटपाकके लिये मांस और औषधका कल्क ४ तोले ले पिण्ड बना स्नेहनके लिये एरण्ड, लेखनके लिये बरगद और प्रसादनके लिये कमलके पत्तोंको पिंडके ऊपर लपेट ऊपरसे मिट्टीका लेप कर सुखा धव, धामिन या कंडोंके अंगारोंमें पकाना चाहिये । मिट्टी जब अग्निके अंगारेके समान लाल हो जाय, तब निकाल ठण्डा कर औषधका रस निचोड़कर नेत्रमें तर्पणके समान (मेंड आदि बना) छोड़ना चाहिये । तथा लेखनमें १०० मात्रा, स्नेहनमें २०० मात्रा और प्रसादनमें ३०० मात्रा उच्चारणकालतक आंखोंमें धारण करना चाहिये । तथा स्नेहन व लेखन पुटपाकका रस कुछ गरम तथा प्रसादन पुटपाकका रस ठण्डा छोड़ना चाहिये । तथा स्नेहन व लेखनके ही अन्तमें धूमपान करना चाहिये । इसमें योगायोगादि तृप्तिके समान ही समझना चाहिये। तथा जिन्हें नस्यका निषेध है, उन्हें तर्पण व पुटपाक भी नहीं देना चाहिये। तथा जितने दिनतक तर्पण या पुटपाकका प्रयोग करे , उससे दूने समयतक पथ्य सेवन करे ॥ २८–३४ ॥

इत्याश्च्योतनाद्यधिकारः समाप्तः ।

अथ शिराव्यधाधिकारः ।

अथ स्निग्धतनुः स्निग्धरसान्नप्रतिभोजितः ।
प्रत्यादित्यमुखं स्विन्नो जानूच्चासनसंस्थितः ॥ १ ॥
मृदुपट्टात्तकेशान्तो जानुस्थापितकूर्परः ।
अङ्गुष्ठगर्भमुष्टिभ्यां मन्ये गाढं निपीडयेत् ॥ २ ॥
दन्तसम्पीडनोत्कासगण्डाध्मानानि चाचरेत् ।
पृष्ठतो यन्त्रयेच्चैनं वस्त्रमाविष्टयन्नरः ॥ ३ ॥
कन्धरायां परिक्षिप्य न्यस्यान्तर्वामतर्जनीम् ।
एवमुत्थाप्य विधिना शिरां विध्येच्छिरोगताम्॥४॥
विध्येद्धस्तशिरां वाहावनाकुञ्चितकूर्परे ।
बद्ध्वा सुखोपविष्टस्य मुष्टिमङ्गुष्ठगर्भिणीम् ॥५॥
ऊर्ध्वं वेध्यप्रदेशाच्च पट्टिकां चतुरङ्गुले ।
पादे तु सुस्थितेऽधस्ताज्जानुसन्धेर्निपीडिते ॥ ६ ॥
गाढं कराभ्यामागुल्फं चरणे तस्य चोपरि ।
द्वितीये कुञ्चिते किञ्चिदारूढे हस्तवत्ततः ॥ ७ ॥
बद्ध्वा विध्येच्छिरामित्थमनुक्तेष्वपि कल्पयेत् ।
तेषु तेषु प्रदेशेषु तत्तद्यन्त्रमुपायवित् ॥ ८ ॥
ततो व्रीहिमुखं व्यध्यप्रदेशे न्यस्य पीडयेत् ।
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु तलप्रच्छादितं भिषक् ॥ ९ ॥
वामहस्तेन विन्यस्य कुठारीमितरेण तु ।
ताडयेन्मध्यमाङ्गुल्याङ्गुष्ठविष्टब्धमुक्तया ॥१०॥

जिसका शिराव्यध करना है, उसे स्नेहन तथा स्निग्ध मांसरस भोजन करा सूर्यकी ओर मुख कराकर घुटनेके बराबर ऊँचे आसनपर बैठाल कर पसीना आ जानेपर बालोंको मुलायम कपड़ेसे बाँधना चाहिये । फिर शिरोगत शिराओंके व्यध करनेके लिये घुटनेपर दोनों कोहनियां रखकर अँगूठेके सहित बन्धी मुठ्ठियोंसे गलेके बगलकी शिराएँ जोरसे दबानी चाहियें । तथा दाँतोंको कटकटाना, खासना और गालोंको फुलाना चाहिये । फिर रोगीके पीछे खड़े हुए पुरुषको वस्त्र लपेटते हुए गरदन और दोनों हाथोंकी मुठ्ठियोंको अपने हाथकी वाम तर्जनी अँगुलीके बीचमें डाल कर बाँधना चाहिये । इस प्रकार शिरका उत्थापन कर शिरोगत शिराका व्यध करना चाहिये । इसी प्रकार हाथकी शिराका व्यध हाथ फैलाकर करना चाहिये । तथा सुखपूर्वक बैठाल अँगूठेके सहित मुट्ठी बांध व्यध करनेके स्थानसे चार अङ्गुल ऊपर पट्टी बाँधकर शिराव्यध करना चाहिये । तथा यदि पैरकी शिरा वेधनी हो, तो एक पैरको बराबर रखकर जिस पैरमें व्यध करना है, उसे दोनों हाथोंसे जोरसे गुल्फतक दबाकर कुछ समेट भूमिपर सुस्थिर रखे हुए पैरपर रख बाँधकर शिरा उत्थित हो जानेपर व्यध करना चाहिये । इसी प्रकार अनुक्त स्थानोंमें भी जिस प्रकार शिरा उठ सके, उसी प्रकार बाँधकर शिराव्यध करना चाहिये । फिर व्यध करनेके स्थानमें व्रीहिमुख शस्त्र लगाकर अँगूठे व तर्जनी अंगुलीसे दबाना चाहिये । तथा तलसे ढका रखना चाहिये । और यदि कुठारीसे शिराव्यध करना हो, तो कुठारीको वामहस्तमें ले व्यध्य स्थानपर रखकर दहिने हाथके अंगूठेके साथ मध्यमा अङ्गुली फंसाकर जोरसे छोड़ देना चाहिये ॥ १–१० ॥

व्रीहिमुखकुठारिकयोः प्रयोगस्थानम् ।

मांसले निक्षिपेद्देशे व्रीह्यास्यं व्रीहिमात्रकम् ।
यवार्धमस्थ्नामुपरि शिरां विध्यन्कुठारिकाम् ॥११॥

मांसल स्थानोंमें व्रीहिमुखनामक शस्त्रसे व्रीहिमात्र शस्त्र प्रविष्ट करना चाहिये । तथा हड्डियोंके ऊपर कुठारिकासे अर्द्ध व्रीहिमात्र व्यध करना चाहिये ॥ ११ ॥

अयोगादिव्यवस्था ।

असम्यगस्रे स्रवति वेल्लव्योषनिशानतैः ।
सागारधूमलवणतैलैर्दिह्याच्छिरामुखम् ।
सम्यक् प्रवृत्ते कोष्णेन तैलेन लवणेन च ॥ १२ ॥
अशुद्धौ बलिनोऽप्यस्रं न प्रस्थात्स्रावयेत्परम् ।
अतिस्रुतौ हि मृत्युःस्याद्दारुणा वानिलामयाः १३॥
तत्राभ्यङ्गरसक्षीररक्तपानानि भेषजम् ।

ठीक रक्त न बहनेपर वायविडंग, त्रिकटु, हल्दी, तगर, गृहधूम, लवण और तैल मिलाकर शिरामुखपर लेप करना चाहिये । तथा बलवान् पुरुषका भी एक एक प्रस्थसे अधिक रक्त न निकलने देना चाहिये । क्योंकि अधिक रक्त निकल जानेपर मृत्यु अथवा कठिन वातरोग हो जाते हैं । ऐसी अवस्थामें मालिश करना तथा मांसरस दूध, और रक्त पिलाना हितकर है ॥ १२ ॥ १३ ॥–

उत्तरकृत्यम् ।

स्रुते रक्ते शनैर्यन्त्रमपनीय हिमाम्बुना ॥ १४ ॥
प्रक्षाल्य तैलप्लोताक्तं बन्धनीयं शिरामुखम् ।
अशुद्धं स्रावयेद् भूयः सायमह्न्यपरेऽपि वा ॥१५॥
रक्ते त्वतिष्ठति क्षिप्रं स्तम्भनीमाचरेत्क्रियाम् ।
लोध्रप्रियङ्गुपत्तङ्गमाषयष्ट्याह्वगैरिकैः ॥ १६ ॥
मृत्कपालाञ्जनक्षौममसीक्षीरित्वगङ्कुरैः ।
विचूर्णयेद्व्रणमुखं पद्मकादिहिमं पिबेत् ॥ १७ ॥
तामेव वा शिरां विध्येद्व्यधात्तस्मादनन्तरम् ।
शिरामुखं वा त्वरितं दहेत्तप्तशलाकया ॥ १८ ॥
सशेषमप्यसृग्धार्यं न चातिस्रुतिमाचरेत् ।
हरेच्छृङ्गादिना शेषं प्रसादमथवा नयेत् ॥ १९ ॥
मर्महीनं यथासन्नप्रदेशे व्यधयेच्छिराम् ।

रक्त निकल जानेपर धीरेसे यन्त्र खोल ठण्डे जलसे धो तैलसे तर कपड़ेसे शिरामुख बाँधना चाहिये। यदि अशुद्ध रक्त रह गया हो, तो सायंकाल अथवा दूसरे दिन पुनः शिराव्यध करना चाहिये। यदि रक्त रुकता न हो, तो शीघ्र ही रक्त रोकनेका उपाय करना चाहिये । लोध, प्रियंगु, लाल चन्दन, उड़द, मौरेठी, गेरू, मिट्टीका खपड़ा, सुरमा, अलसीके वस्त्रकी भस्म तथा क्षीरिवृक्षोंकी छाल और अंकुर सबका महीन चूर्ण कर व्रणके ऊपर उर्राना चाहिये । तथा पद्मकादि हिम पीना चाहिये ।

१ " पद्मकपुण्ड्रौ वृद्धितुगर्द्ध्यः शृङ्ग्यमृता दशजीवनसंज्ञाः । स्तन्यकरा घ्नन्तीरणपित्तं प्रीणनजीवनबृंहणवृष्याः "

अथवा उसी शिराको व्यध्यप्रदेशसे कुछ ऊपर व्यध कर देना चाहिये । अथवा गरम शलाकासे शिरामुख दाग देना चाहिये । यदि कुछ दूषित रक्त रह जावे, तो भी कुछ हानि नहीं । पर अधिक स्राव न करना चाहिये । शेष रक्त सिंगी आदिसे निकालना अथवा शुद्ध कर लेना चाहिये । मर्मस्थानको छोड़कर जहांसे दूषित रक्त निकल सके, वहां शिराव्यध करना चाहिये॥१४-१९

शिराव्यधनिषेधः ।

न तूनषोडशातीतसप्तत्यब्दस्रुतासृजाम् ॥ २० ॥
अस्निग्धास्वेदितात्यर्थस्वेदितानिलरोगिणाम् ।
गर्भिणीसूतिकाजीर्णपित्तास्रश्वासकासिनाम् ॥२१॥
अतिसारोदरच्छर्दिपाण्डुसर्वाङ्गशोषिणाम् ।
स्नेहपीते प्रयुक्तेषु तथा पञ्चसु कर्मसु ॥ २२ ॥
नायन्त्रितां शिरां विध्येन्न तिर्यङ् नाप्यनुत्थिताम् ।
नातिशीतोष्णवाताभ्रेष्वन्यत्रात्ययिकाद्गदात् ॥२३॥

सोलह वर्षसे कम और ७० वर्षसे अधिक अवस्थावालोंकी शिरा न वेधनी चाहिये । तथा अस्निग्ध, अस्वेदित, अधिक स्वेदित तथा वातरोगवाले, गर्भिणी, सूतिका, अजीर्ण, रक्तपित्त, श्वास, कास, अतीसार, उदररोग, छर्दि, पाण्डुरोग तथा सर्वांगशोफवाले पुरुषोंकी शिरा न वेधनी चाहिये । तथा स्नेह पी लेनेपर व पञ्चकर्म कर लेनेपर शिराव्यध न करना चाहिये। तथा विना यन्त्रण किये भी शिराव्यध न करना चाहिये। तथा तिरछी या विना उठी शिरा न वेधनी चाहिये। तथा अधिक आवश्यकता न होनेपर अतिठण्डे, अतिगरम, अतिवायु तथा अतिमेघयुक्त समयमें शिराव्यध न करना चाहिये ॥ २०–२३ ॥

पथ्यव्यवस्था ।

नात्युष्णशीतं लघु दीपनीयं
रक्तेऽपनीते हितमन्नपानम् ।
तदा शरीरं ह्यनवस्थितासृक्
वह्निर्विशेषेण च रक्षणीयः ॥ २४ ॥
नरो हिताहारविहारसेवी
मासं भवेदाबललाभतो वा ।

रक्त निकल जानेपर न बहुत गर्म, न बहुत ठण्डा, लघु तथा दीपनीय अन्न पान हितकर है । उस समय शरीरका रक्त संक्षुब्ध रहता है, अतः अग्नि विशेषतः रक्षणीय है । इस प्रकार एक मासतक अथवा जबतक बल न आ जाय, मनुष्यको हितकारक आहार विहार सेवन करना चाहिये॥२४॥

विशुद्धरक्तिनो लक्षणम् ।

प्रसन्नवर्णेन्द्रियमिन्द्रियार्था-
निच्छन्तमव्याहतपक्तृवेगम् ।

सुखान्वितं पुष्टिबलोपपन्नं
विशुद्धरक्तं पुरुषं वदन्ति ॥ २५ ॥

जिसका रक्त शुद्ध हो जाता है, उसकी इन्द्रियाँ प्रसन्न, वर्ण उत्तम तथा इन्द्रियोंके विषयोंकी इच्छा और अग्नि दीप्त होती है । तथा पुरुष सुखी, बल व पुष्टिसम्पन्न होता है ॥ २५ ॥

इति शिराव्यधाधिकारः समाप्तः ।

अथ स्वस्थवृत्ताधिकारः ।

दिनचर्याविधिः ।

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः ॥ १ ॥
प्रातर्भुक्त्वा च मृद्वग्रं कषायकटुतिक्तकम् ।
भक्षयेद्दन्तपवनं दन्तमांसान्यबाधयन् ॥ २ ॥
नाद्यादजीर्णवमथुश्वासकासज्वरार्दितः ।
तृष्णास्यपाकहृन्नेत्रशिरःकर्णामयी च तत् ॥ ३ ॥

स्वस्थ पुरुषको आयुरक्षाके लिये ब्राह्ममुहूर्तमें उठना चाहिये । तथा शरीरकी अवस्थाका विचारकर शौच आदि विधि करनी चाहिये । तदनन्तर कषाय, कटु, या तिक्तरस युक्त दन्तधावनको दाँतोंसे खूब चबाचबाकर मुलायम कूची बना उसी कूचीसे दाँतोंको इस प्रकार रगड़ना चाहिये कि दाँतोंके मांस न कट जावें । तथा जिसे अजीर्ण, वमन, श्वास, कास, ज्वर, प्यास, मुखपाक तथा हृदय, नेत्र, शिर या कर्णके रोग हैं, उसे दन्तधावन न करना चाहिये ॥ १-३ ॥

अञ्जनादिविधिः ।

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोः प्रयोजयेत् ।
सप्तरात्रेऽष्टरात्रे वा स्रावणार्थं रसाञ्जनम् ।
ततो नावनगण्डूषधूमताम्बूलभाग्भवेत् ॥ ४ ॥
ताम्बूलं क्षतपित्तास्ररूक्षोत्कुपितचक्षुषाम् ।
विषमूर्च्छामदार्तानामपथ्यं चापि शोषिणाम् ॥ ५ ॥

काला सुरमा नेत्रोंके लिये हितकर है । अतः इसका प्रतिदिन प्रयोग करना चाहिये । तथा सातवें या आठवें दिन स्रावणके लिये रसौंतका प्रयोग करना चाहिये । फिर नस्य, गण्डूष, धूमपान और ताम्बूलका सेवन करना चाहिये । पर ताम्बूल व्रण, रक्तपित्त, रूक्ष, नेत्ररोग, विष, मूर्छा तथा नशासे पीड़ित और शोषवालोंके लिये हानिकर है ॥ ४ ॥ ५ ॥

अभ्यङ्गव्यायामादिकम् ।

अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा ।
शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ॥ ६ ॥
वर्ज्योऽभ्यङ्गः कफग्रस्तकृतसंशुद्ध्यजीर्णिभिः ।
शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवर्द्धिनी ॥ ७ ॥
देहव्यायामसंख्याता मात्रया तां समाचरेत् ।
वातपित्तामयी बालो वृद्धोऽजीर्णी च तं त्यजेत् ॥ ८
उद्वर्तनं तथा कार्यं ततः स्नानं समाचरेत् ।
उष्णाम्बुनाधःकायस्य परिषेको बलावहः ॥ ९ ॥
तेनैव तूत्तमाङ्गस्य बलहृत्केशचक्षुषाम् ।
स्नानमर्दितनेत्रास्यकर्णरोगातिसारिषु ॥ १० ॥
आध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम् ।
नीचरोमनखश्मश्रुर्निर्मलाङ्घ्रिमलायनः ॥ ११ ॥
स्नानशीलः सुसुरभिः सुवेषो निर्मलाम्बरः ।
धारयेत्सततं रत्नसिद्धमन्त्रमहौषधीः ॥ १२ ॥

मालिश प्रतिदिन करनी चाहिये । वह मालिश थकावट, वृद्धावस्था और वायुको नष्ट करती है । तथा शिर, कान और पैरोंमें उसका प्रयोग विशेष कर करना चाहिये । तथा कफग्रस्त, संशोधन किये हुए और अजीर्णवालोंको अभ्यङ्ग न करना चाहिये । जो शरीरकी चेष्टा शरीरको बलवान् बनाती तथा स्थिर रखती है, उसे "व्यायाम" कहते हैं । उसे मात्रासे करना चाहिये । पर वातपित्तरोगयुक्त, बालक, वृद्ध और अजीर्णवालोंको व्यायाम न करना चाहिये । इसके अनन्तर उबटन लगाना चाहिये । फिर स्नान करना चाहिये । शिरको छोड़ गरम जलसे स्नान करना पैरोंको बलवान् बनाता है । पर उसीसे शिर धोना बालों और नेत्रोंके लिये हानिकर होता है । पर स्नान अर्दित, कर्णरोग, नेत्ररोग, मुखरोग, आध्मान (पेटका फूलना), पीनस तथा अजीर्णसे पीड़ित तथा भोजन किये हुए पुरुषोंको न करना चाहिये । तथा रोम, नख, दाढ़ी, मूँछ छोटे रखना अर्थात् बनवाये रहना चाहिये । तथा पैर और मलस्थान साफ रखना चाहिये ।

---

१ "प्रातर्भुक्त्वा च" का अर्थ यद्यपि प्रातःकाल और भोजन कर है, तथा चरकमें "द्वौ कालौ दन्तपवनं भक्षयेन्मुखधावनम्" से दो बार दन्तधावन बताया है । पर अधिकतरप्रचलित पद्धति प्रातःकालके लिये है । अतः प्रातःकालके लिये ही लिखा है ॥

२ "रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः ।
स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने" ।

स्नान, सुगन्धयुक्त पदार्थोंका उपयोग, उत्तम वेष, विमलवस्त्र तथा सदा रत्न, सिद्धमन्त्र तथा औषधियां धारण करना चाहिये ॥ ६–१२ ॥

सामान्यनियमाः ।

सातपत्रपदत्राणो विचरेद्युगमात्रदृक् ।
निशि चात्ययिके कार्ये दण्डी मौली सहायवान् १३
जीर्णे हितं मितं चाद्यान्न वेगानीरयेद्बलात् ।
न वेगितोऽन्यकार्यः स्यान्नाजित्वा साध्यमामयम् १४
दशधा पापकर्माणि कायवाङ्मानसैस्त्यजेत् ।
काले हितं मितं ब्रूयादविसंवादि पेशलम् ॥ १५ ॥
आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकाम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥ १६ ॥
नक्तंदिनानि मे यान्ति कथंभूतस्य संप्रति ।
दुःखभाङ् न भवत्येवं नित्यं सन्निहितस्मृतिः ॥ १७ ॥

जूता पहिन तथा छाता लेकर बाहर जाना चाहिये । तथा चार हाथ आगे देखकर चलना चाहिये। रात्रिमें आवश्यक कार्य होने पर ही जाना चाहिये । तथा हाथमें दण्डा रखना चाहिये । शिरमें साफा बांधकर जाना चाहिये। और सहायक साथमें रखना चाहिये । अन्न पच जानेपर ही हितकारक तथा मात्रामें भोजन करना चाहिये । वेगोंको बलपूर्वक न निकालना चाहिये । तथा वेग उपस्थित होनेपर उससे निवृत्त होकर ही दूसरा काम करना चाहिये । तथा साध्य रोगकी उपेक्षा न करनी चाहिये । सब कामोंको छोड़कर सर्व प्रथम रोगनिवृत्तिका उपाय करना चाहिये। शरीर, मन तथा वाणीसे दश प्रकार (हिंसा, चोरी, व्यर्थका काम, दूसरेका बुरा चाहना, चुगली, कठोर शब्द कहना, झूँठ बोलना, असम्बद्ध प्रलाप, ईर्ष्या, दुःख देना, बुरे भावसे देखना) के पाप त्याग देने चाहियें । तथा समयपर हितकारक थोड़ा, मधुर, तथा सन्देहरहित बोलना चाहिये । अपने ही समान दूसरे यहां तक कि कीड़े तथा चीटियोंको भी जानना चाहिये । जो दूसरेका व्यवहार अपनेको बुरा लगे वह दूसरोंके साथ नहीं करना चाहिये । मेरे रात दिन किस प्रकार बीतते हैं, इसका ध्यान रखनेवाला कभी दुःखी नहीं होता, क्योंकि उसकी स्मरणशक्ति ताजी रहती है। तथा बेकार नहीं रहता ॥ १३–१७ ॥

ऋतुचर्याविधिः ।

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात्षडृतवः स्मृताः ।
शिशिरोऽथ वसन्तश्च ग्रीष्मवर्षाशरद्धिमाः ॥ १८ ॥

माघादि दो दो महीनोंसे ६ ऋतु होते हैं । उनके नाम क्रमशः शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् तथा हेमन्त हैं॥ १८

हेमन्तचर्याविधिः ।

बलिनः शीतसंरोधाद्धेमन्ते प्रबलोऽनलः ।
सेवेतातो हिमे स्निग्धस्वाद्वम्ललवणान् रसान् ।
गोधूमपिष्टमांसेक्षुक्षीरोत्थविकृतीः सुराम् ॥ १९ ॥
नवमन्नं वसां तैलं शौचकार्ये सुखोदकम् ।
युक्त्यार्ककिरणान्स्वेदं पादत्राणं च सर्वदा ॥ २० ॥
प्रावाराजिनकौशेयप्रवेणीकुथकास्तृतम् ।
उष्णस्वभावैर्लघुभिः प्रावृतः शयनं भजेत् ॥ २१ ॥
अङ्गारतापसंतप्तगर्भभूवेश्मनि प्रियाम् ।
पीवरोरुस्तनश्रोणीमालिङ्ग्यागुरुचर्चिताम् ॥ २२ ॥

हेमन्तऋतुमें बलवान् पुरुषका अग्नि शीतसे ढके रहनेके कारण बलवान् होता है । इसलिये इस ऋतु (मार्गशीर्ष, पौष) में चिकने, मीठे, खट्टे और नमकीन रसोंका सेवन करना चाहिये । अतः गेहूँ, उड़दकी पिट्ठी, मांस, ईख और दूधसे बने पदार्थ, नवीन अन्न, चर्बी तथा तैलका अधिक उपयोग करना चाहिये । तथा युक्ति (जहां तक सहन हो तथा सूर्यकी ओर पीठ कर) से सूर्यकी धूपमें घूमना चाहिये । और शौचादिके लिये गरम जलका उपयोग करना चाहिये । अग्नि तापनी चाहिये । पैरोंको सदा गरम रखना चाहिये । गद्दा, मृगचर्म, रेशमी वस्त्र, रेड़ी या कम्बल बिछी शय्यापर गरम स्वभाववाले तथा हल्के वस्त्र ओढकर सोना चाहिये । अंगीठी रखकर गरम किये हुए कमरोंमें गर्भगृह तथा भूगृहमें शय्या (चारपाई) बिछाना चाहिये ।तथा अगुरुसे लिप्त स्थूल ऊरु, कुच तथा कमरयुक्त प्रियाका आलिंगन कर सोना चाहिये ॥ १९–२२ ॥

शिशिरचर्या ।

अयमेव विधिः कार्यः शिशिरेऽपि विशेषतः ।
तदा हि शीतमधिकं रौक्ष्यं चादानकालजम् ॥ २३ ॥

शिशिरऋतुमें भी यही विधि सेवन करनी चाहिये । उस समय शीत अधिक होता है। और आदान कालजन्य रूक्षता बढ जाती है, अतः अधिक उष्ण तथा स्निग्ध आहार विहार सेवन करना चाहिये ॥ २३ ॥

वसन्तचर्या ।

कफश्चितो हि शिशिरे वसन्तेऽर्कांशुतापितः ।
हत्वाग्निं कुरुते रोगांस्ततस्तत्र प्रयोजयेत् ॥ २४ ॥
तीक्ष्णं वमननस्याद्यकवलग्रहमञ्जनम् ।
व्यायामोद्वर्तनं धूमं शौचकार्ये सुखोदकम् ॥ २५ ॥
स्नातोऽनुलिप्तः कर्पूरचन्दनागुरुकुङ्कुमैः ।
पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूल्यभुक् ।
प्रपिबेदासवारिष्टसीधुमार्द्वीकमाधवान् ॥ २६ ॥
वसन्तेऽनुभवेत्स्त्रीणां काननानां च यौवनम् ।
गुर्वम्लस्निग्धमधुरं दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ॥ २७ ॥

शिशिरऋतुमें सञ्चित हुआ कफ वसन्त ऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे तपनेसे पिघलकर अग्नि मंद करता हुआ अनेक रोग उत्पन्न कर देता है । अतः इस ऋतुमें तीक्ष्ण, वमन, नस्य, कवलग्रह,

भोजन और अञ्जन प्रयुक्त करना चाहिये। तथा व्यायाम, उवटन और धूमका प्रयोग करना चाहिये। शौचादिके लिये कुछ गुनगुना जल सेवन करना चाहिये। तथा स्नान कर कपूर, चंदन, अगर और केशरका लेप करना चाहिये। तथा पुराने यव, गेहूं, शहद तथा कोयलोंपर पकाया जांगल प्राणियोंका मांस खाना चाहिये। और मुनक्का तथा शहद छोड़कर बनाये गये आसव, अरिष्ट तथा सीधु पीना चाहिये। तथा इस ऋतुमें स्त्रियोंका तथा वनोंका आनंद लेना चाहिये। तथा भारी, गरम, चिकने और मीठे द्रव्य तथा दिनमें सोना त्याग देना चाहिये ॥ २४–२७ ॥

ग्रीष्मचर्या ।

मयूखैर्जगतः स्नेहं ग्रीष्मे पेपीयते रविः ।
स्वादु शीतं द्रवं स्निग्धमन्नपानं तदा हितम् ॥२८॥
शीतं सशर्करं मन्थं जाङ्गलान्मृगपक्षिणः ।
घृतं पयः सशाल्यन्नं भजन्ग्रीष्मे न सीदति ॥२८॥
मद्यमल्पं न वा पेयमथवा सुवहूदकम् ।
मध्याह्ने चन्दनार्द्राङ्गः स्वप्याद्धारागृहे निशि ॥३०॥
निशाकरकराकीर्णे प्रवाते सौधमस्तके ।
निवृत्तकामो व्यजनैः पाणिस्पर्शैः सचन्दनैः ॥ ३१॥
सेव्यमानो भजेदास्यां मुक्तामणिविभूषितः ।
लवणाम्लकटूष्णानि व्यायामं चात्र वर्जयेत् ॥३२॥

ग्रीष्मऋतुमें सूर्य भगवान् अपनी किरणों द्वारा संसारका स्नेह खींच लेते हैं, अतः इस ऋतुमें मीठे, शीतल पतले तथा स्नेहयुक्त अन्नपान हितकर होते हैं। शक्कर व जल मिलाकर पतले सत्तू, जांगल प्राणियोंका मांस, घी, दूध और चावलका इस ऋतुमें सेवन करनेवाला दुःखी नहीं होता। मद्य पीना ही न चाहिये। और यदि पीवे ही तो थोड़ा पीना चाहिये। और बहुत जल मिलाकर पीना चाहिये। मध्याह्नमें शरीरपर चन्दनका लेप कर फुहारे चलते हुए घरमें सोना चाहिये, रात्रिमें चन्द्रमाकी रोशनीसे युक्त हवा लगनेवाली महलकी अटारीपर चन्दनके जलसे तर, खसके पंखोंकी हवा खाते हुए मुक्ता मणिसे विभूषित कामका सेवन न करते हुए सोना चाहिये। नमकीन, खट्टे, कडुए और गरम पदार्थ त्याग देने चाहियें। तथा व्यायाम न करना चाहिये ॥ २८–३२ ॥

वर्षाचर्या ।

भूबाष्पान्मेघनिस्यन्दात्पाकादम्लाज्जलस्य च ।
वर्षास्वग्निबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः ॥ ३३ ॥
भजेत्साधारणं सर्वमूष्मणस्तेजनं च यत् ।
आस्थापनं शुद्धतनुर्जीर्णं धान्यं कृतान्रसान् ॥३४॥
जाङ्गलं पिशितं यूषान्मध्वरिष्टं चिरन्तनम् ।
दिव्यं कौपं शृतं चाम्भो भोजनं त्वतिदुर्दिने ॥३५॥
व्यक्ताम्ललवणस्नेहं संशुष्कं क्षौद्रवल्लघु ।
नदीजलोदमन्थाहः स्वप्नायासातपांस्त्यजेत् ॥३६॥

वर्षाऋतुमें पृथ्वीकी भाफ, मेघोंके बरसने और जलके खट्टे पाक होनेके कारण वातादिक दोष कुपित होते हैं। अतः इस ऋतुमें समस्त साधारण तथा अग्निदीपक पदार्थोंका सेवन करना चाहिये। तथा आस्थापन वस्तिसे शुद्ध शरीर होकर पुराने धान्य, बनाये गये रस, जांगलमांस, यूष, पुराना मध्वरिष्ट तथा आकाशका वर्षा हुआ अथवा कुएका जल गरमकर सेवन करना चाहिये। और अति दुर्दिनमें (जब मेघ घेरे ही रहें) अम्ल, लवण, स्नेह और शहद मिला हुआ सूखा भोजन करना चाहिये। तथा वर्षाऋतुमें नदीका जल, सत्तुओंका मन्थ, दिनमें सोना, परिश्रम और धूप इनको त्याग देना चाहियें ॥ ३३–३६ ॥

शरच्चर्या ।

वर्षाशीतोचिताङ्गानां सहसैवार्करश्मिभिः ।
तप्तानामाचितं पित्तं प्रायः शरदि कुप्यति ॥ ३७ ॥
तज्जयाय घृतं तिक्तं विरेको रक्तमोक्षणम् ।
तिक्तस्वादुकषायं च क्षुधितोऽन्नं भजेल्लघु ॥ ३८ ॥
इक्षवः शालयो मुद्गाः सरोऽम्भः क्वथितं पयः ।
शरद्येतानि पथ्यानि प्रदोषे चेन्दुरश्मयः ॥ ३९ ॥
शारदानि च माल्यानि वासांसि विमलानि च ।
तुषारक्षारसौहित्यदधितैलरसातपान् ॥ ४० ॥
तीक्ष्णमद्यदिवास्वप्नपुरोवातातपांस्त्यजेत् ।

वर्षाऋतुमें कुछ शीतका अभ्यास रहता है, पर शरद्ऋतुमें सहसा अङ्ग गरम हो जाते हैं। अतः सञ्चित पित्त कुपित हो जाता है। उसकी शान्तिके लिये तिक्त घृत, रक्तमोक्षण और विरेचन लेना चाहिये। और भूख लगनेपर तिक्त, मीठा, कषैला और हल्का अन्न खाना चाहिये। तथा ईखके पदार्थ, चावल, मूँग, तालावका जल, गरम दूध और सायङ्काल चन्द्रकिरणोंका सेवन करना ये सब इस ऋतुमें लाभदायक हैं। और शरद् ऋतुमें उत्पन्न होनेवाले पुष्पोंकी मालाएँ तथा स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिये। तथा बर्फ, क्षार, तृप्तिपर्यंत भोजन, दही, तैल, मांसरस, धूप, तीक्ष्ण मद्य, दिनमें सोना, पूर्वकी वायु और धूप त्याग देने चाहियें ॥ ३७–४० ॥

सामान्यर्तुचर्या ।

शीते वर्षासु चाद्यांस्त्रीन्वसन्तेऽन्त्यान्रसान्भजेत्४१
स्वादून्निदाघे शरदि स्वादुतिक्तकषायकान् ।
शरद्वसन्तयो रूक्षं शीतं घर्मघनान्तयोः ॥ ४२ ॥
अन्नपानं समासेन विपरीतमतोऽन्यथा ।
नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ ॥ ४३
ऋत्वोराद्यन्तसप्ताहावृतुसन्धिरिति स्मृतः ।
तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात् ४४
इत्युक्तमृतुसात्म्यं यच्चेष्टाहारव्यपाश्रयम् ।
उपशेते यदौचित्यादोकसात्म्यं तदुच्यते ॥ ४५ ॥

शीत तथा वर्षामें मीठे, खट्टे और नमकीन पदार्थ, वसन्त-ऋतुमें कटु, तिक्त और कषैले पदार्थ, ग्रीष्ममें मीठे और शरदृतुमें मीठे तिक्त तथा कषैले पदार्थ सेवन करना चाहिये। यह संक्षेपतः अन्नपान बताया है। इसके विपरीत हानिकर समझना चाहिये। नित्य सभी रसोंका सेवन करना चाहिये। पर अपने अपने ऋतुमें अपने अपने रसकी अधिकता होनी चाहिये। दो ऋतुओंके मध्यके दो सप्ताह (बीतते हुए ऋतुका अन्तिम सप्ताह और आनेवाले ऋतुका प्रथम सप्ताह) "ऋतुसन्धि" कहा जाता है। उसमें क्रमशः पूर्वकी विधि छोड़नी और आगेकी विधि ग्रहण करनी चाहिये। यह ऋतुसात्म्य चेष्टा और आहारके अनुसार बताया और जो अभ्यास होनेके कारण सदा लाभ ही करता है, उसे "ओकसात्म्य" कहते हैं॥ ४१-४५ ॥

उपसंहारः ।

देशानामामयानां च विपरीतगुणं गुणैः ।
सात्म्यमिच्छन्ति सात्म्यज्ञाश्चेष्टितं चाद्यमेव च ४६
तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते ।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत् ॥४७॥
नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी यथा ।
स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येष्ववहितो भवेत् ॥ ४८ ॥

देश और रोगोंके गुणोंसे विपरीत गुणयुक्त कर्म तथा भोजन "सात्म्य" कहे जाते हैं। उस विधिका नित्य प्रयोग करना चाहिये, जिससे स्वास्थ्यकी प्राप्ति हो और अनुत्पन्न रोग उत्पन्न ही न हों। जिस प्रकार नगरका स्वामी नगरके कार्योंमें तथा रथका स्वामी रथके विषयमें सावधान रहता है, उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्यको अपने शरीरकी रक्षाके लिये सावधान रहना चाहिये ॥४६-४८॥

इति स्वस्थवृत्ताधिकारः समाप्तः ।

ग्रन्थकारपरिचयः ।

गौडाधिनाथरसवत्यधिकारिपात्र-
नारायणस्य तनयः सुनयोऽन्तरङ्गात् ।
भानोरनुप्रथितलोध्रवलीकुलीनः
श्रीचक्रपाणिरिह कर्तृपदाधिकारी ॥ १ ॥
यः सिद्धयोगलिखिताधिकसिद्धयोगा-
नत्रैव निक्षिपति केवलमुद्धरेद्वा ।
भट्टत्रयत्रिपथवेदविदा जनेन
दत्तः पतेत्सपदि मूर्धनि तस्य शापः ॥ २ ॥

गौडाधिनाथ (नयपाल नामक नृपति) के पाकशालाके अधिकारी तथा प्रधान मंत्री नारायणके पुत्र सुनीतिज्ञ तथा अन्तरङ्ग पदवी प्राप्त भानुके छोटे भाई, प्रसिद्ध लोध्रवंशमें उत्पन्न श्रीचक्रपाणिजीने यह ग्रन्थ बनाया है। जो पुरुष (वृन्दप्रणीत) सिद्ध योगसे अधिक लिखे गये इस ग्रंथके योगोंको सिद्ध योगमें ही मिला दे (सिद्धयोगके ही सब योग बता दे) अथवा इस ग्रंथसे ही निकाल दे, उसके ऊपर भट्टत्रय (कारिका, बृहट्टीका, चन्द्रटीका) और ऋग्यजुःसामरूप तीनों वेदोंके जाननेवालेको शाप पड़े १॥२॥

इति श्रीमन्महामहिम-चरकचतुरानन-चक्रपाणिप्रणीतः चिकित्सासारसंग्रहापरनामकः चक्रदत्तः समाप्तः ।

टीकाकारपरिचयः ।

उन्नाम (उन्नाव) नामास्ति विशालमण्डलं
ग्रामः पटीयानि (पटियांरां) वि तत्र विश्रुतः ।
तत्राभवद् भूरितपा महात्मा
यो वाजपेयीत्युपमन्युवंश्यः ॥ १ ॥
श्रीद्वारकानाथ इति प्रसिद्धः
पुत्रस्तदीयोऽयमतीव नम्रः ।
श्रीयादवाद्वियगणप्रपूजिता-
दधीत्य वेदं खिलनित्यगस्य ॥ २ ॥
श्रीविश्वनाथस्य प्रिया प्रसिद्धा
काशीपुरी येन सुशोभतेऽद्य ।
श्रीविश्वविद्यालयनामकोऽस्ति
विद्यालयो विश्वविलब्धकीर्तिः ॥ ३ ॥
यस्स्थापको विदितविश्वजनीनवृत्तो
विच्छिन्नधर्मपथशुद्धिधृतावतारः ।
श्रीहिन्दुमानपरिरक्षणवर्द्धनोक्तः
पूज्यः सतां मदनमोहनमालवीयः ॥ ४ ॥
अध्यापने तेन नियोजितोऽयं
वैद्यो जगन्नाथप्रसादशर्मा ।
विशोधयन्निर्मितवान्सुबोधिनीं
श्रीचक्रदत्तस्य गतार्थटीकाम् ॥ ५ ॥
रामाष्टाङ्कमृगाङ्काब्दे व्यासपूजनवासरे ।
पूर्तिमाप्ता यतस्तस्मादर्पिता गुरुहस्तयोः ॥ ६ ॥

इति श्रीमदायुर्वेदाचार्यपण्डितजगन्नाथप्रसादशर्मणा प्रणीता सुबोधिन्याख्या चक्रदत्तस्य व्याख्या समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण—बम्बई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
खेतवाडी—बम्बई.

क्रय्य पुस्तकें-वैद्यकग्रन्थाः ।
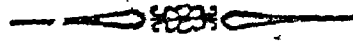
नाम.	की० रु० आ०
अष्टाङ्गहृदय-(वाग्भट) मूल, वाग्भटविरचित । इसमें सूत्रस्थान शारीरस्थान, निदानस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान, उत्तरस्थान इत्यादिमें संपूर्ण रोगोंकी उत्पत्ति, निदान, लक्षण और क्वाथ, चूर्ण, रस, घी, तैल आदिसे अच्छी चिकित्सा वर्णित है.	४-०
अष्टाङ्गहृदय-(वाग्भट) भाषाटीकासहित । इस वाग्भटकृत मूलकी " शिवदीपिका " नामक भाषाटीका पटियाला राज्यके प्रधान चिकित्सक वैद्यरत्न पं० रामप्रसादजी राजवैद्यके सुपुत्र पं० शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्यजीने ऐसी सरल बनाई है कि जो सर्वसाधारणके परमोपयोगी है.	१०-०
अष्टाङ्गहृदय-(वाग्भट) सूत्रस्थान-वाग्भटकृत मूल तथा अरुणदत्तकृत सर्वाङ्गसुन्दर, चन्दनदत्तकृत पदार्थचन्द्रिका, हेमाद्रिकृत आयुर्वेदरसायन और कठिन स्थलपर पटियाला-राजवैद्य वैद्यरत्न पं० रामप्रसादजीकृत टिप्पणीसहित. (शेष स्थान छप रहे हैं)	६-०
अष्टाङ्गहृदय (वाग्भट) सूत्रस्थान-वाग्भटविरचित तथा पटियाला राजवैद्य वैद्यरत्न पं० रामप्रसादजीके सुयोग्य पुत्र, विद्यालंकार शिवशर्मकृत भाषाटीका और संदिग्ध विषयोंपर संस्कृत टिप्पणीसहित	३-०
अमृतसागर-भाषा । इसमें सर्व रोगोंके वर्णन और यत्न हैं । इसके द्वारा विना गुरु वैद्य हो सकते हैं । ग्लेज कागज.	३-०
अमृतसागर-भाषा । उपरोक्त रफ कागज	२-८
अर्कप्रकाश-(लंकापति रावणकृत) भाषाटीकासहित इसमें नाना प्रकारके यन्त्रोंसे ओषधियोंका अर्क खींचना और गुणवर्णन भले प्रकारसे किया गया है.	१-८
अनुपानदर्पण-भाषाटीकासहित । इसमें रस-धातु बनानेकी क्रिया और रोगानुसार औषधोंके अनुपान वर्णित हैं.	१-०

(बडी सूची अलग है सो मंगाकर देखिये)

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्-प्रेस,

कल्याण-बम्बई.